KADMBINI · JUNE-SEP 1975 · G.K.U.

कादम्बिनी

भारतीय भाषाओं की विशिष्ट पत्रिका

आनन्द भी, आराम भी, अवकाश भी

जून १९७५

२ रुपया

10 ml.
Incremin
drops LYSINE-VITAMINS
TONIC APPETITE
STIMULANT
INC-364 G/75 Hin

सोचो, युवक, सोचो–और स्वप्न देखो...

कठोर श्रम करो और तब तक करते रहो जब तक लक्ष्य प्राप्त न हो जाय.

याद रखो, बैंक ऑफ़ इन्डिया आपके साथ है:

क्या आपको उच्च शिक्षा के लिए धन चाहिए?

बैंक ऑफ़ इन्डिया उदार शर्तों पर शैक्षणिक कर्ज़ देता है जिससे गुणी व बुद्धिमान छात्र भारत में ग्रेजुएट/पोस्ट-ग्रेजुएट तथा विदेशों में पोस्ट-ग्रेजुएट की शिक्षा ले सकें।

शिक्षा पूरी कर लेने के बाद, आप क्या करना चाहेंगे?

● बैंक ऑफ़ इन्डिया में शामिल होना चाहेंगे? यदि आप में योग्यता है तो आपका स्वागत है। ● कारोबार या उद्योग शुरू करना चाहेंगे? बैंक ऑफ़ इन्डिया अनेक प्रकार से आपकी मदद कर सकता है? ● खेती करना या कस्टम सर्विस यूनिट शुरू करना अथवा कृषि बिक्री केन्द्र खोलना चाहेंगे? बैंक ऑफ़ इन्डिया आपकी मदद कर सकता है। ● एक डाक्टर, दंत विशेषज्ञ आदि के रूप में व्यवसाय शुरू करना चाहेंगे? बैंक ऑफ़ इन्डिया आपको उपकरण खरीदने के लिए धन दे सकता है।

आज ही शुरूआत कीजिए: सिर्फ ५ रु. से सेविंग्स बैंक खाता खोलिये।

बैंक ऑफ़ इन्डिया

RAAS/B/164A HIN

● विशालाक्ष

निम्नलिखित शब्दों के जो सही अर्थ हों उन पर चिह्न लगाइए और पृष्ठ १४ पर दिये उत्तरों से मिलाइए।

१. **अवदात**—क. उज्ज्वल, ख. आनंदजनक, ग. व्याकुल, घ. अनुपम।

२. **धर्मध्वजी**—क. महात्मा, ख. साधु, ग. पुरोहित, घ. पाखंडी।

३. **पर्यायशः**— क. समान अर्थ के अनुसार, ख. दूसरे रूप में, ग. क्रमशः, घ. तोड़-तोड़ करके।

४. **चरणदासी** — क. सेविका, ख. जूता, ग. विनीता, घ. आज्ञाकारिणी।

५. **व्याजोक्ति**—क. बहाना, ख. कपट, ग. मन में कुछ रखना, कहना कुछ और, घ. सूद का तकाजा।

६. **आपेक्षिक**—क. प्रतीक्षक, ख. आशावान, ग. खोजी, घ. सापेक्ष।

७. **तोताचश्म**— क. सुंदर आंखों-वाला, ख. बेमुरौवत, ग. पैनी दृष्टिवाला, घ. प्रेमी।

८. **बरकाना**—क. बौराना, ख. पीछा करना, ग. टालना, घ. भड़काना।

९. **व्यासंग**—क. अत्यधिक आसक्ति, ख. अलिप्तता, ग. निष्ठा, घ. व्यसन।

१०. **प्रसाधन**—क. प्रसन्न करना, ख. शृंगार, ग. आभूषण, घ. सौंदर्य।

११. **अवमानना**—क. निंदा, ख. सम्मान, ग. अभिमान, घ. तिरस्कार।

१२. **अठखेली**—क. विनोद-क्रीड़ा, ख. सुख, ग. उछल-कूद, घ. खेल।

१३. **वीतराग** — क. सन्यासी, ख. वासनामुक्त, ग. प्रबुद्ध, घ. प्रेमी।

१४. **वर्चस्व**—क. पूजार्हता, ख. अहंकार, ग. प्रवरता, घ. महानता।

१५. **उच्छिष्ट**— क. फेंका हुआ ख. छोड़ा हुआ, ग. उपभुक्त, घ. जूठा।

१६. **कारयिता**—क. करानेवाला, ख. ब्रह्मा, ग. कार्यपालक, घ. कारागार।

१७. **तद्भव**— क. उससे उत्पन्न, ख. संस्कृत शब्द का अपभ्रंश, ग. उद्भिज, घ. अन्न।

१८. **झंझोड़ना**—क. झकझोरना, ख. झटके देना, ग. झोंके देना, घ. मार डालना।

१९. **यमज**— क. जुड़वां बच्चे, ख. सूर्य, ग. कुबेर, घ. यमसुत।

शब्द-सामर्थ्य के उत्तर

१. क. उज्ज्वल । **अवदात** दंत-पंक्ति । **अवदात** चरित्र । तत्., वि. उ. लिं. । **शुभ्र, शुद्ध, उत्तम, सुंदर।**

२. घ. पाखंडी । साधु-वेश में धन ऐंठनेवाले **धर्मध्वजी** । तत्., वि., पुं ।

३. ग. क्रमशः । **पर्यायशः** जागते, **पर्यायशः** सोते थे । यथाक्रम, बारी-बारी से । तत्., क्रि. वि. ।

४. ख. जूता । अब से इन **चरणदासियों** का परित्याग कर दो । तत्., सं., स्त्री. । **पनही ।**

५. ग. मन में कुछ रखना, कहना कुछ और, छलपूर्ण बात । उसकी **व्याजोक्ति** से सभी को धोखा हो गया । तत्. (स. व्याज=कपट+उक्ति=कथन) स्त्री. । **छल, कपट-भरी बात ।**

६. घ. सापेक्ष । **आपेक्षिक** प्रवीणता, सुंदरता, गुरुत्व । तत्., वि., उ. लिं. । **तुलनात्मक ।**

७. ख. बेमुरौवत । कैसा **तोताचश्म** है ! फा., वि., पुं. । **शीलरहित, बेलिहाज ।**

८. ग. टालना । उसे **बरका** कर निकल गया । लो. भा., क्रि. ।

९. क. अत्यधिक आसक्ति । द्यूत में यह **व्यासंग** उसके विनाश का लक्षण है । (वि=विशेष+आसंग=आसक्ति) तत्., सं., पुं. । **व्यासक्ति ।**

१०. ख. शृंगार । **प्रसाधन**-सामग्री, **प्रसाधन** - विधि, **प्रसाधन** - विशेष । तत्. सं., पुं. । **अलंकार, अलंकरण ।**

११. घ. तिरस्कार । वेदों की **अवमानना** हमारी धार्मिक विकृतियों का कारण हुई । तत्. (अव+मानना), सं., स्त्री. । **अपमान, अनादर, उपेक्षा ।**

१२. क. विनोद - क्रीड़ा । लहरें तट से, पत्तों से छन-छनकर आनेवाली किरणें भूमि से **अठखेलियां** करती थीं । तद्. (सं., —अष्टक्रीड़ा), तद., स्त्री. । **कल्लोल ।**

१३. ख. वासनामुक्त । गुरुदेव **वीतराग** थे । तत्. सं., वि., पुं. । **अनासक्त ।**

१४. ग. प्रवरता । भारतीय शासनकार्य में अब भी अंगरेजी का **वर्चस्व** है । तत्. (वर्चस्=शक्ति, शौर्य, दीप्ति), सं., पं. । **प्रधानता, श्रेष्ठता ।**

१५. घ. जूठा । **उच्छिष्ट** भोजन, भोजी, भोक्ता । तत्. (उत्+शिष्ट), वि., उ. लिं. ।

१६. करानेवाला । उपद्रव का **कारयिता** कौन है ? तत्., वि., पुं. । कार्य का प्रेरक । स्त्री.-कारयित्री ।

१७. क. उससे उत्पन्न तथा ख. संस्कृत शब्द का अपभ्रंश, जो भाषा में प्रयुक्त होता हो—'काठ' संस्कृत 'काष्ठ' का **तद्भव** रूप है । तत्. (तत्+भव), वि., सं., पुं. । **तज्जन्य ।**

१८. क. झकझोरना । बिल्ली ने चूहे को **झंझोड़** डाला । लो. भा., क्रि. स. । **भंभोरना ।**

१९. क. जुड़वां बच्चे । ये दोनों **यमज** हैं । तत्., वि., पुं. । **यमल ।**

मई अंक में 'सागर पर सात दिन' जब पढ़ रहा था तब लगा कि मैं सुंदरी क्रिस्टीना के साथ यात्रा कर रहा होऊं। 'अंधी मौत का पिंजरा' (सार-संक्षेप) खूब रोमांचक लगा।

—मो. अकरम लारी, देवरिया

'समय के हस्ताक्षर' में बड़ी निर्भयता से याद दिलाया गया है कि हिंदी के साथ किया जा रहा खिलवाड़ किसी षड्यंत्र की तरह स्पष्ट होता जा रहा है। शासन यदि इसी तरह हिंदी के प्रति उदासीनता दिखाता रहा तो मुमकिन है जनता को अंत में कोई सख्त कदम उठाना पड़े। 'मुद्रण की कहानी' ज्ञानवर्द्धक रचना रही।

—बसन्तकुमार चकोर, मुजफ्फरपुर

'सागर पर सात दिन' में लेखक के लिए व्यवस्था के 'घंटे' ठीक ही खलनेवाले हैं। 'सूर्य-किरण से बिजली' और 'वह जख्मी हिरनी' तथा 'प्रकृति प्रदत्त अमृत' उपयोगी लेख हैं। 'खारी धरती' और 'फ्रीजर में लगे संबंध' का मनोवैज्ञानिक धरातल विस्मरणीय नहीं है।

—मंगलीप्रसाद 'निष्काम', कानपुर

'एक तटस्थ देश जो लाल हो गया' लेख में दुर्गाप्रसाद शुक्ल ने कुछ महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष प्रस्तुत किये हैं। '...अब अमरीका के हटने के बाद ... भले ही महाशक्तियां न आयें, पर परोक्ष रूप से वे इस क्षेत्र पर अपना 'वर्चस्व' बनाये रखने की कोशिश

आपके पत्र

मई अंक में 'समय के हस्ताक्षर' में 'हिंदी को दया की नजरों से मत देखिए' राष्ट्रभाषा के प्रति हमारे हीन दृष्टिकोण को दूर करनेवाला है। वे कितने अभागे हैं जो अपनी ही 'मां' पर दया दिखाने का ढोंग रचते हैं। 'विश्व हिंदी सम्मेलन' के बाद हमारे राष्ट्रनायक चुप क्यों हैं ? क्यों नहीं, संसद में हिंदी को राष्ट्रसंघ की भाषा बनाने की गूंज उठती है !

'काल चिंतन' रात के चौथे प्रहर में पढ़ते समय प्रार्थना के कुछ स्वर कानों में गूंज गये।

करेंगी'—बहुत सटीक टिप्पणी है। फिलहाल तो, रूस का प्रभाव बढ़ा है। बहुत से पर्यवेक्षक शायद सहमत न हों, पर वर्तमान स्थिति यह है कि चीन का राजनीतिक प्रभाव घटा ही है। सिहानुक अपने पीकिंग-प्रवास के दौरान भी ऐसे वक्तव्य देने से बचते रहे जो रूस-विरोधी हों। चीनी सरकार के मेहमान होने के बावजूद रूस के प्रति चीन की शत्रुतावाले प्रश्न पर तटस्थता दिखाना बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह बात सही है कि पहले का तटस्थ देश

बिक्री प्रारम्भ

राष्ट्रीय पंचांग

शक सम्वत् 1897 (1975-76)

भारत सरकार द्वारा 12 भाषाओं में जारी .

(अंग्रेजी, संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, बंगला, उड़िया, तेलुगु, तमिल, मलयालम, कन्नड़, मराठी और गुजराती)

यह राष्ट्रीय पंचांग भारत के राष्ट्रीय कैलेंडर, शक सम्वत् पर आधारित है। इसमें नवीनतम ज्योतिष सिद्धान्तों के अनुसार प्राप्त सूर्य और चन्द्रमा की स्थिति के आधार पर तिथि, नक्षत्रों, योग.आदि की गणना की गयी है और उनकी समाप्ति का सूक्ष्मतम अन्तर दर्शाया गया है। राष्ट्रीय पंचांग में सभी महत्वपूर्ण और आवश्यक जानकारी दी गई है। यह ज्योतिर्विदों, पंचांग तैयार करने वालों और आम जनता के दैनिक प्रयोग के लिये बहुत उपयोगी है।

मिलने का पता :

1. मैनेजर आफ पब्लिकेशन्स,
   सिविल लाइन्स, दिल्ली-6
2. निदेशक,
   रिजनल मिटिरियोलाजिफल सेन्टर,
   नाटिकल आलमानैक यूनिट,
   अलीपुर, कलकत्ता-27
3. प्रमुख नगरों मे भारत सरकार के
   प्रकाशनों की बिक्री करने वाले एजेंट

आज.ही अपनी प्रति खरीदिये

मूल्य 75 पैसे

davp 75/21

'लाल' हो गया है, भले ही रूस की पसंद वाला 'लाल' हुआ हो।

—महेशस्वरूप श्रीवास्तव, मंदसौर

'रवीन्द्रनाथ टैगोर को दिया गये प्रशस्ति-पत्र' में लेखिका कुन्था जैन ने कई चौंकानेवाले रहस्योद्‌घाटन किये हैं। नोवल-पुरस्कार प्रदान करते समय जो प्रशस्ति टैगोर को भेंट की गयी थी, वह काफी अपमानास्पद थी। प्रशस्ति का प्रधान स्वर यही है कि भारतीय भाषाओं और संस्कृति को मिशनरी यदि सहायता न देते तो परिणाम खराब होता। मेरी समझ में नहीं आता कि कविवर टैगोर ने इस दंभोक्ति को कैसे स्वीकार किया होगा, क्योंकि पुरस्कार मिलने का समाचार पाकर कलकत्तावासी जब उन्हें बधाई देने गये थे तब कवि ने उनको यह कहकर लताड़ दिया था कि मेरे काव्य का महत्त्व तुम अब समझे हो! स्वदेशी बंधुओं के प्रति यह नाराजगी (वह भी अकारण!) और विदेशी प्रशंसकों द्वारा भारतीय भाषाओं तथा संस्कृति के प्रति अवमानना के जवाब में कवि द्वारा भेजा गया यह तार क्या प्रदर्शित करता है—

"मैं स्वीडिश अकादमी की उस व्यापक बोध-शक्ति की विशालता के प्रति अपनी कृतज्ञ प्रशंसानुभूति निवेदित करता हूं, जो दूर को निकट लायी और जिसने अजनबी को बंधु बना लिया।"

—डॉ. प्रमोद शर्मा, सिकंदराबाद

'रामायण पुरातत्त्व की दृष्टि में' लेख में बताया गया है कि ई. पू. ३०० से पूर्व भारत में छेदवाली कुल्हाड़ी का फल नहीं था। यह भ्रामक है, क्योंकि सिंधु-घाटी की सभ्यता में भी इसे प्राप्त किया जा चुका है।

—असीसकुमार, सहरसा

—अशोक चतुर्वेदी, पाली मारवाड़

डा० हंसमुख धी. सांकलिया का लेख विचारणीय है। पुरातत्त्व की दृष्टि से रामायण का संदर्भ एक विराट विषय है, जिसका संबंध हमारी आध्यात्मिक मान्यताओं से अधिक अतीत की गौरव-पूर्ण सभ्यता और संस्कृति से है। उत्खनन कार्य की अल्पता के आधार पर काल-निर्धारण समीचीन नहीं होगा।

—किशन पंत, भोपाल

सुशील कालरा का व्यंग्य-चित्र ('चलते-चलते') सामयिक रहा। इन राजनीतिज्ञ-हाथियों के युद्ध में जनता पिस जाती है।

कादम्बिनी

वर्ष १५; अंक ८

जून, १९७५

आकल्पं कविनूतनाम्बुदमयी कादम्बिनी वर्षतु

निबंध एवं लेख

सम्पादक

राजेन्द्र अवस्थी

कविताएं

कथा-साहित्य

सार-संक्षेप

मुखपृष्ठ : डॉ. एस. एस. अग्रवाल

स्थायी स्तंभ

सह-संपादक : शीला झुनझुनवाला, उप-संपादक : कृष्णचन्द्र शर्मा, दुर्गाप्रसाद शुक्ल, विजयसुन्दर पाठक, चित्रकार : सुकुमार चटर्जी

—अमरता ?

—सीधा-सादा शाब्दिक अर्थ है जो मरता नहीं।

—कौन है जो चिरंजीवी है ?— अश्वत्थामा, जिसके बारे में कहा जाता है, आज भी वह वन-खंडों, नगर-प्रांतरों और महानगरों में अदृश्य घूमता रहता है !

—आज तक किसी को वह मिला नहीं।... मिथ एक आवरण है जो भीतर से खोखला है और जिसके चारों ओर से सब कुछ बाहर निकल जाता है।

—अश्वत्थामा की अमरता का मिथ मात्र प्रतीक है उसके गुणों का, क्योंकि अमरता का अर्थ अ-मृत्यु नहीं है।

—मृत्यु एक नैसर्गिक घटना है और जीवन मनुष्य की रेल-यात्रा का सह-यात्री है अथवा सराय में ठहरा हुआ क्षण है।

●

—'मृत्यु की सार्थकता को समझते हुए भी अमरता की बात क्यों उठायी जाती है ?' परोक्ष-रूप से युधिष्ठिर ने महाभारत के वनपर्व में इसी को दुनिया का सबसे बड़ा आश्चर्य कहा है ?

—युधिष्ठिर से बड़ी आधुनिकता कबीर में थी, जिन्होंने कहा है "हम न मरैं मरि है संसारा, हमकू मिल्या जियावन हारा !"

—यह अमरत्व-बोधक आध्यात्मिकता है और इसी की सही दृष्टि ने कबीर को अमर बनाया है।

—कबीर के अंतिम शब्दों का संकेत आस्तिकता में नहीं ढूंढ़ा जा सकता, कबीर अनास्थावादी थे।

—उन शब्दों की खोज में ही उठाये हुए प्रश्न का उत्तर निहित है !

●

—महाकवि अकबर इलाहाबादी का एक शेर है :

कोई बैठ के लुत्फ उठायेगा क्या
कि जो रौनके बज्म तुम्हीं न रहे !

—यह कबीर से एकदम दूसरी दृष्टि है। इसकी प्रासंगिकता यारों और दोस्तों की महफिल में ढूंढ़ी जा सकती है।

—कबीर महफिल-प्रेमी नहीं थे। वे तो सबको घर फूंककर सड़क पर नंगा खड़ा कर देने पर आमादा थे।

—मनुष्य अकेला आया है, अकेला जाएगा—उसमें सामाजिकता का सूचनांक ही अमरता का बोध है।
—सही अर्थों में अमरता एक कैलेंडर है, जो कभी दीवार से नहीं हटता, बोरियत को मिटाने के लिए केवल उसके संकेत पलट दिये जाते हैं।
—बोरियत से ज्यादा दर्द और किसी रोग में नहीं है।
—इसी को हटाने के लिए आदमी की दौड़ का अध्याय शुरू हुआ है।
—अन्यथा जिंदगी के संदर्भ हैं : बरसात में चिकौड़े की तरह बढ़ना, गरमी में सूखकर मिट्टी में मिल जाना और फिर अगली बरसात के लिए अज्ञानी, शून्य और दिक्भ्रम आकाश की प्रतीक्षा करना।
—यही भ्रम किसी तरह मनुष्य को बांधे भी रहता है। आखिर जीने के लिए कोई सहारा तो चाहिए।
—दूसरा सहारा ज्योतिषी देता है, लेकिन जब आयु का पता लगाने के लिए हम उसके पास जाते हैं तो वास्तव में हम अपनी मृत्यु ही तो पूछते हैं।
—पूछना चाहिए, अपनी अमरता को, लेकिन उसका संबंध न तो जीवन से है और न मृत्यु से।
—अमरता का सीधा संबंध कर्म से है और कर्म स्वयं में गत्यात्मक साधना है।
—लार्ड टेनीसन ने लिखा है : 'मृत्यु एक महोत्सव है। उसके बाद सफाई करने-वाले ठेकेदारों का कब्जा हो जाता है। जब वे अपना काम निबटा लेते हैं, तब वास्तव में आदमी की परख होती है, वही उसकी अमरता है।'
—एलबर्ट श्वाइत्जर ने आकांक्षा की थी : 'मैं जीवन-मूल्यों और आदर्शों को परख लूं और शाश्वतता का आलिंगन करूं।'

●

—आदमी के भीतर निरंतर बगूले उठते रहते हैं, अंत में वे सब शांत हो जाते हैं, शेष रह जाती है प्राणों की आंधी। यही आंधी सार-तत्त्व है।
—इसी में कबीर के अंतिम शब्दों का अर्थ छिपा है : कौन है वह 'जियावन हारा' ?
—अमरता ही तो !
—और अमरता है—अपने कार्यों से निरंतर स्मृतियों में जीवित रहना !
—इसी से मैंने कहा था, अमरता मृत्युबोध नहीं है और न अ-मृत्यु है। वह सत्यों के परे एक और असीम सत्य है—स्मृतियां ही तो इतिहास लिखाती हैं।
—स्मृतियां ही जीवन का जागृति-केंद्र हैं, जिसे वे मिल गयीं, शेष क्या रह गया ?

समय के हस्ताक्षर

शेख साहब : हम कहां हैं ?

हम कहां हैं ? एक प्रश्न है, जो निरंतर घेरे रहता है। एक दिन अचानक एक घटना देखकर उसका समाधान मिल गया : पानी के एक डबरे में किनारे पर एक मेंढक बैठा था। एक कुढ़ल उसे पकड़ने का प्रयत्न कर रही थी। इसी बीच एक कौआ वहां आ गया। कौए को देखकर कुढ़ल भाग खड़ी हुई। अब कौए की घात मेंढक पर थी, परंतु कुढ़ल भी इतनी असावधान नहीं थी। दूर होकर भी उसकी नजर मेंढक से नहीं उठ पायी थी। बेचारे एक मेंढक पर कौआ और कुढ़ल दोनों घात लगाये थे। उसी समय ऊपर से अचानक एक चील उड़ती हुई आयी और एक ही झपट्टे में मेंढक को अपनी चोंच में दबाकर उड़ गयी।

यह एक बहुत साधारण घटना है, लेकिन इसी में आज के राजनीतिक संदर्भ ढूंढ़े जा सकते हैं। यह प्रसंग हमें कुछ समय पहले जम्मू-कश्मीर के मुख्यमंत्री (जिनके 'डेजिग्नेशन' का भी अभी तक फैसला नहीं हुआ) शेख अब्दुल्ला की घोषणा से याद आ गया। उन्होंने गर्व के साथ कहा है कि जम्मू-कश्मीर का सारा प्रशासन 'स्ट्रीमलाइन' हो गया है। अब दफ्तरों में कर्मचारी समय पर आने लगे हैं। वे अपना समय व्यर्थ नहीं गंवाते। छात्रों ने तोड़-फोड़ बंद कर दी है और परीक्षाओं में होनेवाली नकल को रोक दिया गया है। अफसर फाइलें रोककर नहीं रखते, फैसले शीघ्र हो जाते हैं।

शेख साहब की बातें आम आदमी के लिए उत्साहप्रद हो सकती हैं। हम तो इनसे जो सूत्र निकालते हैं, वह दूसरा है—समय पर दफ्तर आना, ईमानदारी से काम करना, परीक्षाओं में नकल न करना; ये तो बहुत सामान्य कार्य हैं और जब हम इतने छोटे-छोटे कार्यों को ही अपनी सफलता में गिनाने लगते हैं तब आभास होता है, हम किस सीमा तक गिर गये हैं ? क्या ये वास्तव में 'अचीवमेंट' हैं ?

इसके साथ ही कई प्रसंग सामने आ जाते हैं—शिक्षा, बेकारी, प्रशासन, भ्रष्टाचार, मिलावट, चोरबाजारी, स्मगलिंग इत्यादि। शिक्षा की कोई सीमा नहीं रह गयी है और न उससे मिलनेवाली डिग्री की कीमत ही। सिफारिशों के आधार पर परीक्षाएं ली जाती हैं, डिवीजन दिये जाते हैं और फिर नौकरियां बनायी जाती हैं। प्रशासन में भ्रष्टाचारी अफसर 'नैतिक रूप' से सर्वश्रेष्ठ है और प्रभावशाली भी। हाल ही इनकमटैक्स और

कुछ और विभागों के जो मामले सामने आये हैं, इसके उदाहरण हैं। अफसरों के तबादले, पदोन्नतियां उनके नये 'नैतिक मूल्यों' और मानदंडों के आधार पर होती हैं।

मिलावट के प्रति सरकारी रवैया विचित्र है—होटलों में काम आनेवाले मसाले या मांस आदि को स्तर से नीचे कहकर जुर्माने किये जाते हैं। यह नहीं देखा जाता कि इनका मुख्य 'सोर्स' कहां है?

चोरबाजारी और स्मगलिंग की चर्चा करने के लिए तो 'महापुराण' चाहिए। इन्हीं के संदर्भ में 'मीसा', स्मगलरों की गिरफ्तारी और संसद में मधु लिमये के भाषण की याद आ जाती है। मधु लिमये ने कुछ दिन पहले ही संसद में एक गधे के घास चरने की कहानी सुनाकर सबको स्तब्ध कर दिया था। न्यायालयों में व्यक्ति-सत्ता का परिणाम है कि हर न्यायाधीश अलग मत रखता है और एक ही मामले में निर्णय भी अलग-अलग दिये जाते रहे हैं। इनके सामने संसद भी उलझन में है कि आखिर बखिया और हाजी-मस्तान-जैसे 'महा-योद्धाओं' के साथ कैसे निपटा जाए। मजे की बात यह है कि दिल के मरीज बखिया अस्पताल से छूटते ही इतने स्वस्थ हो गये कि जैसे दर्द की एलर्जी जेल में ही है। कई लोगों का यह अनुमान गलत नहीं है कि डाक्टरों से भी मनमाना लिखाया जा सकता है।

शमीम रहमानी का मामला अलग चौंका देनेवाला है। प्रेम, फिर प्रगाढ़ आनंद, हत्या, उसके बाद कारावास; कारावास की अवधि में सर्वोच्च न्यायालय की अंतिम मुहर और इसकी स्याही भी सूख नहीं पायी थी कि 'क्षमादान'। मिस रहमानी का रातों-रात हीरोइन बन जाना, प्रेस-कांफ्रेंस करना और अपनी मरजी का इजहार करना! राजनीतिक 'मूल्यों' में जो परिवर्तन इस तरह और इतनी जल्दी हो रहे हैं, किसी देश के साहित्य, समाज और शायद इतिहास में भी नहीं हुए। इसे देखते हुए हर 'प्रेमी' को कई बार अपने अस्तित्व के बारे में सोचना होगा। शमीम रहमानी की रिहाई को लेकर कई तरह की बातें सुनने में आ रही हैं, लेकिन उनमें से कोई भी आश्चर्य-जनक नहीं है। हमारी समूची सत्ता इंद्रलोक के आवरण में डूबी है। जीवन के भीतर से यदि यह 'सत्व' ले लिया जाए तो बुरा भी नहीं है।

फिर अब तो एक बड़ा अवसर आ रहा है—चुनावों का। चुनावों की महिमा प्रजातंत्र में अपरंपार है। अचानक आजकल बाजार सारी चीजों से लबालब भरने लगे हैं। दाम नीचे उतर रहे हैं, टैक्स क्रमशः कम किये जा रहे हैं और अनेक तरह की सुविधाएं सुविधा-भोगियों और गरीबों के रहनुमाओं को दी जा रही हैं। मार्च तक हिंदुस्तान में 'दूध-घी' की नदियां बहती रहेंगी, उसके बाद... !

एक बात और है—तंत्र की कृपा से इस बीच दो नयी जमातों को जन्म मिला है, एक है 'मिडिलमैन' या बिचौलिया।

आज सबसे संपन्न और सुखी यही व्यक्ति है, उद्योगपति बेचारा श्रम करते मरा जाता है, व्यापारी तेजी-मंदी की चिंता में है, लेकिन बिचौलिए को किसी चीज का दर्द नहीं है। दूसरी जमात ज्योतिषियों की है—जिंदगी का समूचा इतिहास और भविष्य की सारी घटनाएं आपकी हथेलियों में है। लायसेंस चाहिए, नौकरी में प्रोमोशन, चुनाव में टिकट या मंत्रिमंडल में हेर-फेर के वक्त अपनी सुरक्षा——सबका उत्तर आपकी हथेलियां देंगी।

इनका परिणाम यह हुआ है कि सामान्य आदमी निराश हो उठा है और उसकी सारी आस्थाओं और क्रियाशीलता पर एक प्रश्न-चिह्न लग गया है। उसकी सारी कोशिशों को अचानक एक चील आकर खत्म कर देती है। पिछले अंक में हमने कहा था कि हम 'क्राइसस ऑव कैरेक्टर' (नैतिक-मूल्यों के पतन) के दौर से गुजर रहे हैं, शेख अब्दुल्ला की घोषणाओं ने इन्हें और मजबूत कर दिया है और यह सिद्ध कर दिया है कि हम इस निम्नतम सीमा तक गिर गये हैं कि बहुत छोटी-छोटी उपलब्धियां भी बहुत बड़ी लगने लगी हैं। यह कुछ वैसा ही है, जैसे बंबई-जैसे महानगर में आपका शव श्मशान पहुंचे और आपका नंबर एक घंटे के भीतर आ जाए! अगर गलत दवाएं आपको मरने से बचा नहीं सकीं तो इतना तो सुधार हुआ ही है कि भस्म होने में आपको देर तो नहीं लग रही! ●

वियतनाम के संदर्भ में

● नेमिशरण मित्तल

दक्षिण-वियतनाम की अमरीका द्वारा समर्थित सरकार के आत्मसमर्पण की सूचना मिलते ही अमरीकी समाचार-पत्रों ने यह समाचार मुखपृष्ठों पर मोटे शीर्षकों में प्रकाशित किया——'अमरीका युद्ध में हार गया : वियतनाम में अमरीका की करारी हार : वियतनाम अमरीका के हाथों से निकल गया : अमरीका ने वियतनाम को खो दिया।' इन समाचारों पर टिप्पणी करते हुए अमरीकी सिनेटर एडलाई स्टीवेंसन ने कहा था : "अमरीका ने वियतनाम को खो दिया—यह मत कहो, क्योंकि इससे यह भ्रम होता है कि वियतनाम अमरीका का था।'

१२० वर्ष पहले वियतनाम पर फ्रांसीसियों ने अधिकार जमा लिया था। ३४ वर्ष पूर्व, १९४१ में फ्रांस हिटलर की एड़ी के नीचे दब गया तब जापानियों ने उपयुक्त अवसर पा, वियतनाम पर अधिकार कर लिया। फलतः हो ची मिन्ह ने गुरिल्ला-सेना संगठित कर जापानियों के विरुद्ध संघर्ष छेड़ दिया। १९४५ में जापान का पतन होने पर उसने वियतनाम की सत्ता प्राचीन वियतनामी राजवंश के उत्तराधिकारी बाओ दाई को सौंप

दी। लेकिन बाओ दाई हो ची मिन्ह के सामने टिक नहीं सका और उसी वर्ष २ सितंबर को उसके गद्दी त्यागने पर वियतनाम में गणतंत्र की स्थापना हुई, जिसके राष्ट्रपति हो ची मिन्ह बने।

फ्रांसीसी यह सहन नहीं कर सके। उन्होंने हिंदचीन साम्राज्य को फिर से प्राप्त करने के लिए ब्रिटेन की सहायता से हो ची मिन्ह के सैनिकों को काफी बड़े भाग से खदेड़ दिया और पुनः बाओ दाई को सिंहासन पर बिठा दिया। १९५० में ब्रिटेन के अतिरिक्त अमरीका ने भी बाओ दाई सरकार को मान्यता दे दी। मगर हो ची मिन्ह के वियतकांग सैनिक
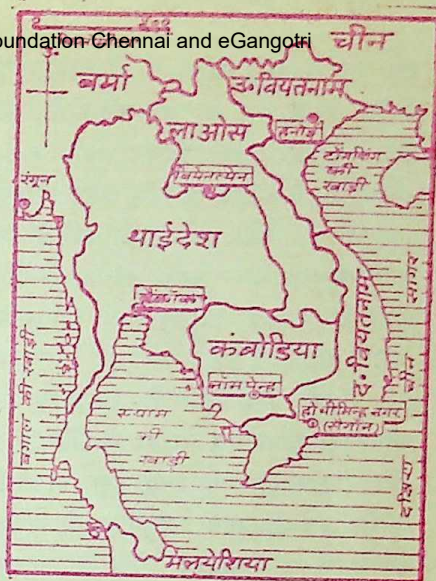
तीस लाख मनुष्यों की बलि से शांति

खामोश बैठनेवाले न थे। उन्होंने दियेन बियेन फू के मोर्चे पर फ्रांसीसियों को निर्णायक रूप से हरा दिया। यह बात १९५४ की है। इसके तुरंत बाद जिनेवा-सम्मेलन बुलाया गया, जिसमें वियतनाम को दो भागों में बांट दिया गया—उत्तरी वियतनाम में राष्ट्रपति हो ची मिन्ह की सरकार को मान्यता दी गयी तथा दक्षिण-वियतनाम को तब तक के लिए एक स्वतंत्र राज्य मान लिया गया जब तक कि निष्पक्ष जनमत-संग्रह द्वारा संपूर्ण वियतनाम के एकीकरण के लिए जनता का निर्णय न प्राप्त कर लिया जाए। दक्षिण-वियतनाम को फ्रांसीसियों ने अमरीका के संरक्षण में सौंप दिया, क्योंकि उस समय वे स्वयं अमरीका की सहायता पर आश्रित थे। अमरीका ने १९५५ में बाओ दाई के भाग्य का निर्णय करने के लिए जनमत-संग्रह कराया, जिसमें भारी बहुमत ने सम्राट के विरुद्ध मत दिया। बाओ दाई वियतनाम छोड़कर फ्रांस चले गये, जहां वे आज भी फ्रांस सरकार के मेहमान हैं।

इधर दक्षिण-वियतनाम में गणतंत्र की स्थापना का नाटक रचा गया। अमरीका में राष्ट्रपति आइजनहावर और उनके विदेशमंत्री जान फास्टर डलेस

का जमाना था। डलेस ने ही वास्तव में वियतनाम के बारे में अमरीकी नीति तय की थी, जो अंततः विफल सिद्ध हुई। डलेस ने जोड़तोड़ करके अपने पिट्ठू न्गो दिन्ह दियेम को दक्षिण-वियतनाम का राष्ट्रपति बना दिया। डलेस वियतनाम को स्थायी तौर पर दो भागों में बांटना चाहते थे।

उत्तरी वियतनाम के राष्ट्रपति हो ची मिन्ह वियतनाम के स्थायी विभाजन को स्वीकार करने के लिए तैयार न थे। उनके लिए यह अपनी मातृभूमि की मुक्ति का संघर्ष बन गया। दक्षिण-वियतनाम के असंख्य लोग भी देश का एकीकरण चाहते थे तथा उनको अंतर्राष्ट्रीय राजनीति और सैनिक संधियों के मामले में असंलग्न रखना चाहते थे। उन्होंने राष्ट्रीय मुक्ति-मोर्चे का संगठन कर लिया तथा 'वियतकांग' नाम से एक गुरिल्ला-सेना बना ली। संघर्ष का बिगुल बज गया और डलेस ने अमरीका को उस संघर्ष में दक्षिण-वियतनाम के संरक्षक के नाते उलझा दिया। द्वितीय महायुद्ध काल में अमरीका ने अस्त्र बनाने के बड़े-बड़े कारखाने खड़े कर लिये थे, जो उत्पादन करते जा रहे थे। अमरीका की भूमि पर तो कोई युद्ध आज तक हुआ नहीं, वह तो अस्त्रों का सौदागर रहा है। इस व्यवसाय से वह काफी मालदार हुआ है। उसके सामने सबसे बड़ा प्रश्न यह था कि उसके अस्त्रों की खपत किस तरह हो।

अमरीका ने यह ढिंढोरा पीटना शुरू किया कि संसार को साम्यवाद से बचाने के लिए वह दुनिया में कहीं भी बिना किसी फीस के पहरा देने के लिए तैयार है। इतना ही नहीं, उसने संसार भर में सैनिक संधि-संगठनों का जाल बिछा डाला।

अमरीका को अमरीकी अस्त्र बेचने की स्थायी व्यवस्था करनी थी और उनके संग्रह के लिए अड्डों की आवश्यकता थी। दूसरी ओर उसे संसार में अपना प्रभाव-क्षेत्र बढ़ाना था और यह सिद्ध करना था कि वह साम्यवादी देशों की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली और विकसित है। इसके लिए

यह आवश्यक था कि संसार को दो टुकड़ों में बांट दिया जाता और जो देश साम्यवाद पसंद नहीं करते उन्हें अमरीका अपने प्रभाव-क्षेत्र में बनाये रखने की स्थायी व्यवस्था करता। इस क्षेत्र के देशों में अस्त्र खरीदने की क्षमता पैदा करने के लिए अमरीका ने आर्थिक सहायता देकर विकास-कार्यों को बढ़ाया। यों जिन देशों ने अमरीकी योजना स्वीकार की उनमें से लगभग प्रत्येक का बंटवारा हुआ—पाकिस्तान का भी—और उनमें से प्रत्येक युद्धों में पिटा ही नहीं बुरी तरह तानाशाही का शिकार भी हुआ।

१९६० के बाद दक्षिण-वियतनाम के मुक्ति-मोर्चे ने दक्षिण-वियतनाम में नियमित रूप से गुरिल्ला-युद्ध आरंभ कर दिया। उस समय तक अमरीका ने वियतनाम में अपने सैनिक नहीं भेजे थे, वह दक्षिण-वियतनाम को भारी मात्रा में शस्त्रास्त्र ही दे रहा था। राष्ट्रपति केनेडी के समय में दक्षिण-वियतनाम में केवल ६८५ अमरीकी सैनिक सलाहकार थे। केनेडी की हत्या के बाद जब राष्ट्रपति जानसन ने कार्य-भार संभाला, तब शुरू के वर्षों में उनकी संख्या १६ हजार हो गयी। अगले पांच वर्षों में यह संख्या तीस गुनी हो गयी। अमरीका के सैनिक पूरे बारह वर्षों तक दक्षिण-वियतनाम में राष्ट्रीय मुक्ति-मोर्चे का सामना करने में लगे रहे, मगर उन्होंने महसूस किया कि अमरीका दक्षिण-वियतनाम को अपने पंजे से मुक्त होने से रोक नहीं सकता, अतः १९७३ में राष्ट्रपति निक्सन ने पुनः एक जिनेवा-सम्मेलन बुलाया तथा उसमें यह घोषणा कर दी कि अमरीका दक्षिण-वियतनाम से अपनी सेनाएं वापस बुला लेगा। इस निर्णय के पीछे स्वयं अमरीका में वियतनाम-नीति का घोर विरोध था।

युद्ध के इन चौदह वर्षों में वियतनाम में कुल तीस लाख से अधिक लोगों का रक्त बहाया गया है, जिनमें से कोई ५६ हजार अमरीकी सैनिक और नागरिक थे। इनके अतिरिक्त कोई तीन लाख अमरीकी सैनिक गंभीर रूप से घायल हुए और तीन हजार
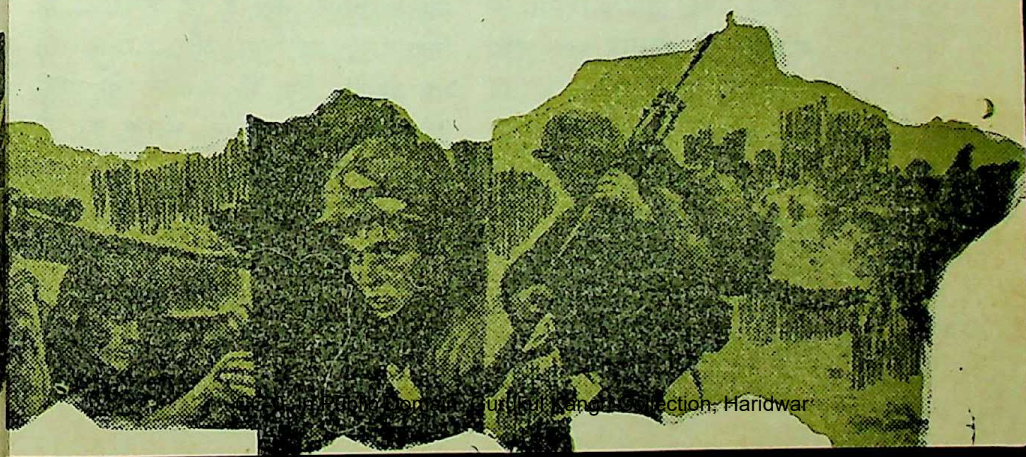
लापता हो गये । अमरीका ने दक्षिण-वियतनाम के युद्ध पर एक सौ बीस खरब से अधिक रुपयों की रकम बरबाद की है । यदि यह राशि युद्ध पर नष्ट न करके वियतनाम को विकास-कार्यों के लिए दी जाती तो प्रत्येक वियतनामी के हिस्से में करीब साठ हजार रुपयों की राशि आती ।

इसके विपरीत उत्तरी वियतनाम
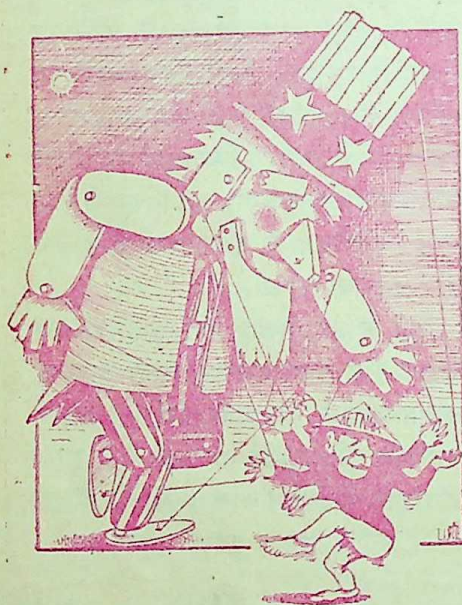
न्यूजवीक से साभार

को इन चौदह वर्षों में रूस और चीन, से कुल दस खरब रुपये की मदद मिली है तथा उसकी ओर से एक भी रूसी या चीनी सैनिक ने युद्ध में भाग नहीं लिया । अमरीका ने अपने आक्रमणों को दक्षिण-वियतनाम तक ही सीमित नहीं रखा वरन उसने उत्तरी वियतनाम पर नियमित रूप से वर्षों तक बमबारी करके बदला लेने और उसका दम तोड़ने की कोशिश की, लेकिन आजादी की तड़प उन्हें जिंदा और मजबूत रखे रही, जिसके कारण वे अंततः विजयी हुए । हिंदचीन क्षेत्र के तीन देशों लाओस, कंबोडिया और वियतनाम में वहां की छह से दस प्रतिशत तक जनता युद्ध में मारी गयी है ।

श्रीमती गांधी ने कहा है कि वियतनाम या यों कहें कि समूचे एशिया के लोगों की भावना को अमरीका सही तौर पर समझ नहीं पाया । एशियावासियों के लिए साम्य-वाद के भूत की अपेक्षा साम्राज्यवाद का दैत्य अधिक भयंकर था तथा राष्ट्रपति हो ची मिन्ह साम्यवादी की अपेक्षा देशभक्त अधिक थे । अमरीका चाहे कितना भी प्रचार करे कि वियतनाम में राष्ट्रवादियों की विजय साम्यवाद की विजय है, परंतु वास्तव में वह राष्ट्रवादी शक्तियों की विजय है और स्वतंत्रता के स्वप्न की सिद्धि भी । श्रीमती गांधी का यह विश्लेषण सही है कि अमरीका ही वियतनाम, कंबोडिया और लाओस को समाजवादी खेमे में धकेलने के लिए जिम्मेदार है । उन्होंने भारत का ही उदाहरण देते हुए कहा कि भारत को समाजवादी देशों की सहायता लेने के लिए अमरीका की नीति ने ही मजबूर किया । अमरीका आर्थिक सहायता और ऋण के बदले राष्ट्रीय नीतियों पर नियंत्रण जमाने

की कोशिश करता है जिसे कोई भी स्वाभिमानी राष्ट्र सहन नहीं करेगा।

कंबोडिया के राष्ट्राध्यक्ष राजकुमार नरोत्तम सिंहानुक ने भी आत्मकथा में लिखा है कि मैं साम्यवादी नहीं था और न कंबोडिया में साम्यवाद की स्थापना चाहता था, लेकिन अमरीकी साम्राज्यवाद ने मुझे अपने देश की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए समाजवादी शिविर में धकेल दिया। यही बात राष्ट्रपति हो ची मिन्ह के बारे में भी सच है।

वियतनाम की धरती पर अमरीका ने सत्तर लाख टन बम डाले। यह मात्रा उस बारूद की डेढ़ सौ गुनी है जो मित्रराष्ट्रों ने द्वितीय महायुद्ध के दौरान जरमनी पर डाला था। वियतनाम धान के खेतों और जंगलों का देश था, किंतु अमरीका ने उन पर दो करोड़ टन विषैले रासायनिक द्रव्य डालकर उन्हें नष्ट कर दिया। अमरीका ने लाखों टन नापाम-बम वियतनाम पर बरसाये, जिसके फलस्वरूप वहां के लाखों लोग मरे या अपंग हो गये।

दक्षिणपूर्व एशिया के देश पूर्वी यूरोप के देशों की तरह साम्यवादी सत्ता (यहां चीन वहां रूस) के उपग्रह बनकर नहीं रह सकते, यह इस बात से प्रकट है कि कंबोडिया और वियतनाम दोनों ने घोषणा की है कि वे तटस्थता की नीति को बनाये रखेंगे।

—डी-६४९ मंदिर मार्ग
नयी दिल्ली-११०००१

क्या था तुम्हारे पास?

वह क्या था तुम्हारे पास
ऐ वियतनाम
कि तुम इतना घमासान झेलते गये वर्षों
विनाश, अग्नि, विषैली हवाएं, नापाम...
वह क्या था जिसके लिए तुम
लड़ते गये, उजड़ते गये, मरते गये, जीते गये
बताओ कौन वह भाव था
जो लगातार बढ़ते घावों में
अटूट हरियाली-सा डहडहा घना था
कौन-सा उफान था
कि तुम समुद्र हो रहे अथाह
कौन-सा आकाश था जहां
तुम्हारी आंखें गड़ी थीं अपलक समाधि में
वह जरूर कुछ ऐसा था
जहां तुम, समूचे तुम थे
जहां तुम आंधी में आग-से उपस्थित
बाकी सब गुम थे
वह स्थान कैसा होगा
मैं जानता हूं वह रहस्य तुम्हारी धरती में
गहरा गड़ा है
मैं जानता हूं वह रहस्य आदमी से बहुत,
बहुत बड़ा है
हां, मैं जानता हूं ऐसी मिट्टी का रहस्य
जहां सब युद्ध जी-जी कर मरते हैं
पर ऐसे देश ही उजड़कर संवरते हैं

—बलदेव वंशी
—सी १/१७३ लाजपत नगर, नयी दिल्ली-२४

अवसर विवाह : फीरोज और इंदिरा

फीरोज गांधी से लड़ने में मजा आता था

● नन्दकिशोर
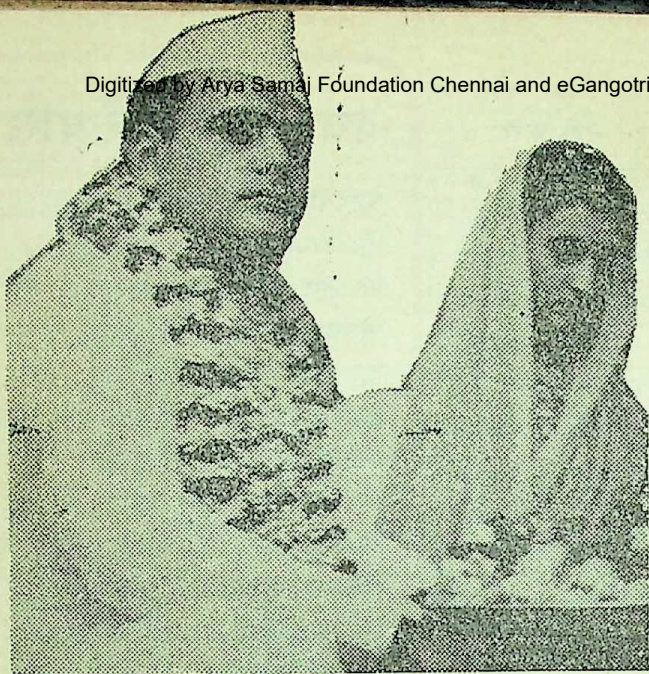
आज की भारतीय राजनीति में अनास्था, परस्पर अविश्वास और संदेह का जैसा वातावरण व्याप्त हो गया है, उससे तो यही लगता है कि बीते हुए अच्छे दिन पुनः नहीं आयेंगे।

बात सन १९५७ की है। रायबरेली संसदीय क्षेत्र में मैं श्री फीरोज गांधी का प्रतिद्वंद्वी था। दिल्ली कैंप कालेज से अर्थशास्त्र में एम. ए. करके ज्यों ही बाहर निकला, डॉ. लोहिया के संपर्क में आया। उनके संपर्क का प्रभाव था कि मैं तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित नेहरू के दामाद और वर्तमान प्रधानमंत्री श्रीमती गांधी के पति श्री फीरोज गांधी के खिलाफ चुनाव लड़ रहा था।

पता नहीं क्या बात है, जब कभी मैं एकांत में बैठता हूं तब मुझे दो व्यक्तियों की बहुत याद आती है, एक श्री फीरोज गांधी की, जिनका मैं प्रबल प्रतिद्वंद्वी रहा और दूसरे डॉ. राममनोहर लोहिया की जिनका मैं लगभग आठ साल तक निजी सचिव रहा।

सन १९५७ के चुनाव में मैं श्री फीरोज गांधी से कुछ ही हजार मतों से हारा, लेकिन फीरोज साहब के व्यक्तित्व का प्रभाव तो देखिए कि उनके प्रति कटुता के बजाय मेरे मन में ऐसा आदर और स्नेह भर गया है कि मैं किसी भी दिन उनकी याद किये बिना नहीं रहता।

फीरोज साहब ने कभी भी मेरी जाति के प्रति किसी प्रकार का कड़ा कटाक्ष नहीं किया। सिर्फ एक बार सार्वजनिक सभा में हलका व्यंग्य किया, जिसकी बाद में उन्होंने माफी मांग ली।

मैं उनसे उम्र में बहुत ही छोटा था, इसलिए वे बड़े होने के नाते, सदैव मुझको स्नेह और प्यार की दृष्टि से देखते थे। चुनाव के दौरान भी उनका यही क्रम रहा और मुझे कभी भी यह नहीं अनुभव हुआ कि फीरोज साहब मुझको किसी तरह दबा रहे हैं।

मैं बहुत ही गरीब घर का युवक था। जमानत जमा करने के लिए मेरे पास ५०० रुपये भी नहीं थे। किसी तरह मैंने ३०० रुपये इकट्ठे कर लिये थे। जिस दिन फीरोज साहब जमानत जमा करनेवाले थे, उसी दिन मैंने भी जमानत जमा करने का निश्चय किया। मेरे सहयोगियों को मालूम था कि मेरे पास जमानत के पूरे पैसे नहीं हैं, इसलिए रायबरेली कचहरी में चंदा होना शुरू हुआ। तीन बजे तक केवल सौ रुपये इकट्ठा हो पाये। फीरोज साहब को मालूम हुआ कि रुपये के अभाव में मेरी जमानत नहीं जमा हो पा रही है, इसीलिए वे भी कचहरी आ गये और मेरे साथ ही खड़े हो गये। उन्होंने कई बार कोशिश की कि मैं उनसे रुपये लेकर जमानत के रुपये जमा कर दूं। लेकिन मैं तो उनका प्रतिद्वंद्वी था, मैंने उनसे रुपये लेना स्वीकार नहीं किया। मेरे सहयोगियों ने, फिर कचहरी में दो-दो, चार-चार आना चंदा लेना शुरू किया और किसी तरह निश्चित अवधि के आधा घंटा पहले पचास रुपये ही इकट्ठे हो पाये। अब भी मेरी जमानत में पचास रुपये कम पड़ रहे थे और समय तेजी से बीत रहा था। इतने में एक आदमी भागा-भागा आया और पचास रुपये दे गया। इस तरह मेरी जमानत जमा हुई। लेकिन जब तक मेरी जमानत जमा नहीं हो गयी, फीरोज साहब खड़े रहे और रुपये लेने के लिए जोर देते रहे और डांटते भी रहे।

इसके बाद चुनाव का घनघोर दौर आया। भाषणों में तीक्ष्णता और गरमी आने लगी। हम दोनों एक-दूसरे को सार्वजनिक भाषणों में खूब सुनाते, लेकिन शाम को चाय साथ-साथ पीते थे। मेरा तो कोई चुनाव-कार्यालय भी नहीं था। हां, जब मैं रायबरेली में रहता था तब वहां के एक वकील सरवर साहब के यहां निवास करता था। सरवर साहब भी उस समय मेरे दल (सोशलिस्ट पार्टी) से एक अन्य स्थान से चुनाव लड़ रहे थे। रायबरेली शहर में, जब कभी सरवर

साहब के यहां न मिलता, मेरे कार्यकर्ता फीरोज साहब के यहां ही मेरा पता लगाते थे। जब मैं चुनाव-दौरे से थककर आता तब शाम को फीरोज साहब के साथ चाय पीता और उन्हीं के साथ गप्प लगाता—"फीरोज साहब, आज मैंने आपका एक गढ़ तोड़ डाला।" फीरोज साहब भी इसी तरह का उत्तर देते कि मैंने आज तुम्हारे दो गढ़ तोड़ डाले। कभी-कभी तो मैं भोजन करके वहीं सो जाता और मेरे कार्यकर्ता मुझे ढूंढ़ते हुए वहां आते, मुझे जगाकर ले जाते।

मुझे अच्छी तरह याद है कि फीरोज साहब जब अपनी एक लंबी जीप से चुनाव-दौरा करते, तब मैं रास्ते में कभी-कभी उन्हें पैदल ही मिल जाता था, क्योंकि कभी-कभी मुझे अपनी साइकिल किसी कार्यकर्ता को देनी पड़ जाती थी। ऐसी हालत में मैं फीरोज साहब को तत्काल यह चौपाई सुना देता था—"रावण रथी विरथ रघुवीरा!" फीरोज साहब कहते, "आओ, तुम भी रावण बन जाओ।" मैं फीरोज साहब की जीप में ही बैठकर उनके खिलाफ प्रचार करने के लिए उस दिन दौरा करता था। बात ऐसे होती थी कि फीरोज साहब की जीप से, मैं किसी गांव के पहले ही उतर जाता। गांव में लोगों से मिलकर, फिर मैं जल्दी-जल्दी गांव के बाहर पहुंच जाता और फीरोज साहब को फिर वही चौपाई सुना देता। फिर फीरोज साहब उसी तरह मुझे रावण बना लेते। लगता है, राम-रावण का यह खेल इस जिंदगी में अब देखने को नहीं मिलेगा।

फीरोज साहब इतने अच्छे आदमी थे कि वे अपनी बात कभी-कभी सार्वजनिक रूप से स्वीकार कर लेते थे। सन '५७ में चुनाव के तुरंत बाद मतों की गणना शुरू हो जाती थी। प्रतापगढ़ जिले में कुंडा विधायक-क्षेत्र में फीरोज साहब मुझसे बुरी तरह हारे थे। जब उनको इस बात का पता लगा तब मतों की गणना नहीं होने दी। वे यह अच्छी तरह जानते थे कि अगर रायबरेली जिले में लोगों को पता लग गया, वे बुरी तरह हार जाएंगे। चुनाव पूरा हुआ और फीरोज साहब जीत गये।

हजारों आदमी चुनाव-परिणाम सुनने आये थे। जब फीरोज साहब जीते तब उन्होंने सार्वजनिक रूप से अपने भाषण में स्वीकार किया कि 'अगर मैं प्रधानमंत्री का दामाद न होता, तो नंदकिशोर से न जीतता।' शाम को फीरोज साहब चाय पीने बैठे, सैकड़ों आदमी उनको बधाई देने आये थे, लेकिन फीरोज साहब अकेले चाय कैसे पीते! इधर मैं पराजय से खिन्न होकर रायबरेली शहर में इधर-उधर घूमकर अपना दुःख कम कर रहा था, उधर फीरोज साहब हठ किये बैठे थे कि 'मैं नंदकिशोर के बगैर चाय नहीं पिऊंगा'। जितने अधिकारी और कांग्रेसी कार्यकर्ता थे, मुझे शहर में ढूंढ़ने निकल पड़े। मुझे

खोजकर ले गये। फीरोज साहब ने मेरी पीठ ठोंकी, "शाबाश लड़के, अच्छा मुकाबला किया!" उन्होंने मेरे साथ चाय पी। उनका यह स्नेह देखकर हारने का दुःख दूर हो गया। ऐसे थे मेरे प्रतिद्वंद्वी श्री फीरोज गांधी।

चुनाव के बाद तो फीरोज साहब मुझे बहुत ही चाहने लगे थे। जब कभी वे लखनऊ आते थे, तब कॉफी-हाउस में एक कोने में, जो उस समय फीरोज-कार्नर कहलाता था, बैठते थे। जब भी मुझे कॉफी-हाउस में देखते, 'सोशलिस्ट नेता' कहकर बुलाते, कॉफी पिलाते और बिना कुछ सुने-सुनाये न जाने देते।

जब हम दोनों कॉफी-हाउस में बैठते तब वे सोशलिस्टों, कांग्रेसियों और कम्युनिस्टों को सुनाकर कहा करते, "भई, असली सोशलिस्ट तो हम (फीरोज गांधी) और नंदकिशोर हैं। हम पारसी हैं और नंदकिशोर नाई, जिनकी संख्या कुछ नहीं है, और दोनों सिद्धांतों के बल पर लड़ते हैं, जाति के बल पर नहीं।"

फीरोज साहब जब संसद-सदस्य होकर दिल्ली आये, तब प्रधानमंत्री-आवास से अलग रहते थे। वे प्रायः बीमार रहते थे। जब कभी मैं दिल्ली आता, उनसे जरूर मिलता। अगर मैं उनसे न मिलता, तो वे बहुत उलाहना देते और यह जरूर कहते कि तुम अपने को बड़ा प्रतिद्वंद्वी समझते हो! मैं मुसकरा देता, उनके साथ खूब चाय पीता और गप्प लगाता।

अवमूल्यन

पराजित होने पर
व्यर्थ-सी होने लगीं
नेताजी की
सभी मुद्राएं
बंदरघुड़की देकर
लगे वह कहने
चमड़े के सिक्के
अब कहां चलाएं?

—स.प्री.

सन १९५८ में, सोशलिस्ट पार्टी की ओर से सत्याग्रह किया गया। मुझे तीन महीने की जेल हो गयी। मैं रायबरेली जेल में बंद था। फीरोज साहब को पता लगा कि मैं जेल में हूं तो उन्होंने मेरी खोज-खबर के लिए श्री बैजनाथ कुरील को भेजा। इतना खयाल रखते थे फीरोज गांधी अपने प्रतिद्वंद्वी का!

फीरोज साहब से संबंधित कितनी ही सुखद स्मृतियां हैं। एक जमाना था जब फीरोज साहब-जैसे प्रतिद्वंद्वी से लड़ने में मजा आता था। लगता था कि अपने बड़े भाई के मुकाबले लड़ रहा हूं, मर्यादा का ध्यान रहता था। बड़ा भाई भी सोचता था कि छोटे को ठेस न पहुंचे।

—सेक्टर ५/१४९५, रामकृष्णपुरम,
नयी दिल्ली—२२

रामायण पुरातत्त्व की दृष्टि में

● डॉ. हंसमुख धी. सांकलिया

राम, दशरथ आदि के ऐतिहासिक प्रमाण अभी मिले नहीं हैं। इसलिए प्राचीन साहित्य का आधार लेना पड़ता है। पुराण, जैन-स्तोत्र और आंशिक रूप में वेद तथा उपनिषद के अध्ययन के बाद इतना कह सकते हैं कि राम इक्ष्वाकु-वंश के थे और सीता जनकपुरी मिथिला की। ये दोनों राजवंश आर्य अथवा गौरवर्णी जातियों के होने चाहिए। इसके विपरीत रावण और उनके संबंधी काले रंग के या गोंड जाति के होने चाहिए और ये गंगा-यमुना के दक्षिण में पूर्वी मध्यप्रदेश

सुप्रसिद्ध पुरातत्त्वविद डॉ. सांकलिया ने अपने इस लेख में रामायण की ऐतिहासिकता, स्थानों और अनेक मान्यताओं के संबंध में एक नयी दृष्टि प्रस्तुत की है। सामान्य और सामाजिक प्रचलित तथ्यों से वे बहुत भिन्न हैं। उनका यह लेख विचार और शोध के लिए काफी गुंजाइश छोड़ता है। इस अंश में उन्होंने अनेक तत्कालीन संदर्भों को चुनौती दी है।

—संपादक

तथा छोटा नागपुर प्रदेश में रहते होंगे। इस विशाल प्रदेश में गोंड, कोरकु, शवर आदिवासी आज तक रहते हैं।

यद्यपि आज हम रावण की १० सिरवाले और २० हाथवाले राक्षस के रूप में कल्पना करते हैं, तथापि वाल्मीकि-रामायण में ही अरण्य, सुंदर और युद्ध-कांड में रावण को एक सिर तथा दो हाथ-वाले साधारण मनुष्य के रूप में वर्णित किया गया है। इन सबमें सर्वाधिक महत्त्व का सुपार्श्व का वृत्तांत है, जो नितांत प्राकृतिक है। जटायु के भाई संपाति का पुत्र सुपार्श्व कहता है कि एक दिन वह विंध्यपर्वत के एक संकरे मार्ग के प्रवेश-द्वार में शाम के समय बैठा था। नीचे कुछ दूर तालाब या सागर पर जाना था। तभी एक काला व्यक्ति सूर्य-जैसी तेजस्वी स्त्री को हाथों में लेकर आया और मार्ग देने की विनती की। यह विनती इतनी नम्रतापूर्वक की गयी कि सुपार्श्व ने तनिक भी आनाकानी किये बिना मार्ग दे दिया। बाद में पूछताछ करने पर सुपार्श्व को पता चला कि सीता का हरण कर ले जाने-

वाला वह व्यक्ति रावण था। हनुमान भी रावण को दो हाथवाला और एक सिरवाला बताते हैं (सुंदरकांड)। युद्ध-कांड में जब रावण राम के हाथ से घायल होता है और मृत्युशय्या पर गिरता है तब भी यही प्रकट होता है। इस प्रकार आद्य-रामायण का रावण एक ही सिर और दो हाथवाला मानव था।

अतिशय बलशाली होने के कारण ही उसे कई सिरों और हाथोंवाला वर्णित किया जाने लगा। कवियों ने उसे ब्रह्मा का पौत्र मानकर ब्रह्मराक्षस की श्रेणी में रखा। इस तरह धीरे-धीरे रावण की मूल जाति और प्रकृति तथा लोक-प्रचलित जाति और प्रकृति में जमीन-आसमान का अंतर आ गया।

रावण कौन हो सकता है? स्वयं मूल रावण गोंड जाति का होने की संभावना है। अभी तक गोंड लोग रावण को अपना राजा और स्वयं को रावणवंशी मानते हैं। रावण के स्थान को लंका या लक्का के नाम से संबोधित किया जाता है। यह लंका हमेशा एक टेकरी या एकांत जगह पर अथवा तालाब या सरोवर में मानी जाती रही है।

डॉ. रामदास ने आज से करीब ४० वर्ष पूर्व यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया था कि बालि, सुग्रीव और वानर छोटा नागपुर के आदिवासियों, कोरकु, शवर आदि जातियों के होने चाहिए।

वनवास के दौरान राम जिन-जिन स्थलों पर गये थे, उन्हें नक्शे में देखने से एक बहुत ही अर्थपूर्ण जानकारी मिलती है। राम, सीता, लक्ष्मण त्रिवेणी के पास से गंगा-यमुना अथवा कालिंदी को पार करने के पश्चात सर्वप्रथम चित्रकूट गये। वहां कुछ समय रहकर दंडकारण्य में प्रवेश किया। यह दंडकारण्य, जो इक्ष्वाकु-वंश के दंडक राजा के नाम से जाना जाता था, छोटा नागपुर और विंध्याचल प्रदेश में होना चाहिए। परंतु विभिन्न मान्यताओं के कारण कुछ लोग महाराष्ट्र में नासिक, तो कुछ गुजरात में डांग आदि प्रदेशों को दंडकारण्य मानने लगे।

उत्खनन में प्राप्त एक शुंगकालीन मूर्ति

रामायण के गहन अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि दंडकारण्य नर्मदा का उत्तरी प्रदेश और गंगा-यमुना का दक्षिणी प्रदेश ही हो सकता है।

गोदावरी नदी वर्तमान गोदावरी नहीं, वरन चित्रकूट पर्वत से ११ मील दूर बहनेवाली इसी नाम की एक छोटी-सी नदी है। अब यह नदी लुप्तप्राय है। इसके बाद शृंगवेरपुर, ऋष्यशृंग तथा महेंद्र-द्वार, जबलपुर से उत्तर या उत्तर-पूर्व में विंध्य-गिरिमाला में स्थित हैं।

इन सब बातों की पुष्टि का एक नया प्रमाण शालवृक्ष ने दिया है। शालवृक्ष रामायण में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। राम ने एक ही बाण से सात शालवृक्ष बींधकर बालि को मारने की योग्यता सिद्ध की। वानर और राक्षसों के युद्ध में वानर और राक्षस शालवृक्ष उखाड़कर उसके तने के टुकड़ों से एक-दूसरे को मारने लगते हैं। ये शालवृक्ष पूर्वी मध्यप्रदेश या अमरकंटक के पठारी भाग, छोटा नागपुर अर्थात दक्षिणी बिहार और पश्चिमी उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल तथा उत्तरी उड़ीसा के कुछ भागों में होते हैं।

इस प्रदेश में, विशेषतया जबलपुर के आसपास, कितने ही छोटे-बड़े प्राकृतिक तालाब हैं। इन्हीं में से एक तालाब को, जिसके मध्य में लंका बसी हुई थी, श्री परमशिव अय्यर ने प्रकाश में लाने का प्रयत्न किया है। उनके कथनानुसार त्रिकूट, जिस पर लंका बसी हुई थी, इस समय इंद्राणी नाम की पहाड़ी है। इस पहाड़ी के दक्षिण-पश्चिम में एक अन्य पहाड़ी है, जो रामायण की सुवेल पहाड़ी होनी चाहिए। राम ने इस पर अपनी छावनी डाली थी। आज जिसे सिंगोरगढ़ कहते हैं वह प्राचीन ऋष्यमूक स्थान होना चाहिए। इसी तरह जबेरा का तालाब पंपा सरोवर और भानरेर की पर्वतमाला रामायणकालीन प्रसवण पहाड़ी होना चाहिए।

किष्किंधा की गुफा इसी प्रदेश में एक निचले भाग में स्थित थी और उसका एक द्वार भी था। श्री अय्यर के अनुसार यह स्थान आज के गोरख और पहरीयह गांवों के निकट है। इस तरह ऋष्यमूक, पंपा, प्रसवणगिरि, महेंद्रद्वार, मलयगिरि, सुवेल और त्रिकूट ये सभी विंध्याचल के दक्षिण में और नर्मदा के उत्तर में हैं।

सरदार कीबे के मतानुसार लंका अमरकंटक के पठारी भाग में स्थित थी। अन्य स्थान भी उन्होंने यहीं बताये हैं। दंडकारण्य और लंका की स्थिति जबलपुर से उत्तर-पूर्व या उत्तर में थी। पुरातत्त्वीय, भौगोलिक तथा नृवंशविज्ञान और वनस्पति-शास्त्र के अध्ययन से एक ही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि आद्य-रामायण का कथानक एक निश्चित प्रदेश में घटित हुआ था, न कि उत्तर में अयोध्या से लेकर दक्षिण में रामेश्वरम और भारत से बाहर श्रीलंका तक के विस्तृत प्रदेश में। यह प्रदेश गंगा-यमुना के दक्षिण में और नर्मदा

के उत्तर में स्थित विंध्याचल प्रदेश ही है। इस बात की पुष्टि करनेवाला एक श्लोक रामायण से प्राप्त हुआ है। जब राम वालि को बाण से बींधते हैं तब वह कहता है, 'हे राम, हम कंद-मूलादि पर निर्वाह करनेवाले वनचर हैं। आपने मुझे किस लिए मारा?' इसके उत्तर में राम कहते हैं, 'यह समस्त प्रदेश (अयोध्या से नर्मदा तक) इक्ष्वाकुओं के अधीन है। यदि कोई इस राज्य-विस्तार में अनाचार करता है तो उसे दंड देने का मुझे अधिकार है।' इक्ष्वाकु उत्तरी कोशल, दक्षिणी कोशल और अयोध्या में राज्य करते थे।

ऐसी स्थिति में गंगा-यमुना के मैदान के सत्ताधीशों और छोटा नागपुर अथवा पूर्वी विंध्याचल के आदिवासियों के बीच संघर्ष होना स्वाभाविक है। आदिवासियों में से किसी अति-बलशाली या प्रभावी व्यक्ति ने वहां वनवास के लिए आये राजकुमार की पत्नी का अपहरण किया।

इस सीधी-सादी कथा को वाल्मीकि ने बहुत ही हृदयद्रावक काव्य में गुंफित किया। मूल काव्य ई. पू. पांचवी शताब्दी से पूर्व रचित होना चाहिए। इसकी रचना में उस समय के विचारों—खासकर राम का पत्नीव्रत, सीता का राम के प्रति अचल प्रेम, भरत और लक्ष्मण का भ्रातृप्रेम और सेवा—का भी समावेश कर लिया गया।

इस आद्य-रामायण में समय-समय पर परिवर्धन और परिवर्तन होते गये और इसी कारण आज नेपाली, कश्मीरी, बंगाली,

अयोध्या से प्राप्त मूर्ति का भग्नावशेष

उत्तरी, पश्चिमी और दक्षिणी रामायण की परंपरागत प्रतियां प्राप्त होती हैं।

रामायण में हुए इस परिवर्धन और परिवर्तन का हम पुरातत्त्व की सहायता से विश्लेषण कर सकते हैं। पहले हम अयोध्या के वर्णन को लें। यद्यपि प्राचीन अयोध्या की स्थापना ई. पू. ८०० या १००० में हो चुकी होगी, तथापि जो वर्णन हम पढ़ते हैं वह ई. पू. १००-२०० का होना चाहिए। इस समय का कुछ अनुमान भरहुत, सांची और मथुरा के स्तूपों के तोरणों पर नक्काशी के काम से हो सकता है।

(क्रमशः)
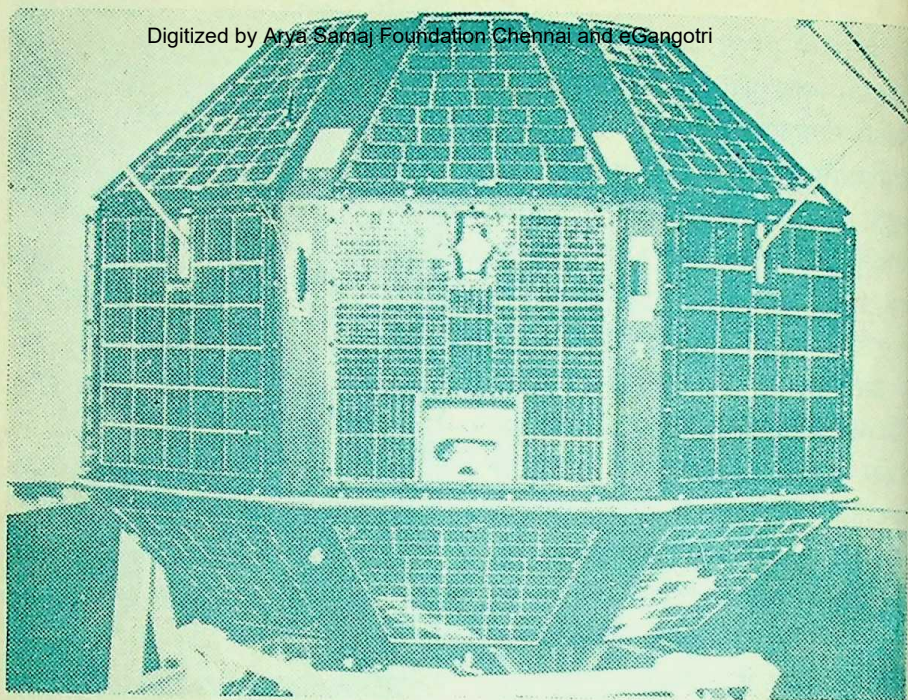
भारत का प्रथम भू-उपग्रह

उपग्रह विज्ञान के आदि प्रणेता :

भारत के प्रथम कृत्रिम भू-उपग्रह के छूटते ही आर्यभट का नाम समय द्वारा भूमि की सीमाओं से बाहर उछाल दिया गया है । कौन था यह आर्यभट जिसके नाम पर भारत को अंतरिक्ष युग में पहुंचानेवाले प्रथम कृत्रिम भू-उपग्रह का नामकरण किया गया ।

इस प्रश्न के उत्तर में मुझे १८७४ ई. में हॉलैंड में डॉ. केर्न द्वारा प्रकाशित 'आर्यभटीय' की प्रस्तावना में उद्धृत एक श्लोक याद आता है—

'सिद्धांतपञ्चकविधावपिदृग्विरुद्ध मौढ्यो
पराग मुख खेचर चारक्लृप्तौ।
सूर्यः स्वयं कुसुमपुर्यभवत् कलौ तु भूगोल
वित् कुलप आर्यभटाभिधानः ॥

अर्थात् प्रंच सिद्धांत—(सूर्य, सोम, वशिष्ठ, रोमश और ब्रह्म) पद्धति के रहते हुए भी ग्रहों के अस्त और ग्रहणादि विषयों में दृग्विरोध होते देखकर ग्रहों की गति की कल्पना करने के लिए सूर्य कुसुमपुर में आर्यभट नाम से स्वयं अवतीर्ण हुए।'

यह श्लोक किसने तथा कब लिखा है—

कहना कठिन है; किंतु इसके आधार पर आर्यभट के विषय में ये कुछ निष्कर्ष तो निकाल ही सकते हैं: (१) आर्यभट का जन्म कुसुमपुर नामक स्थान में हुआ था; (२) आर्यभट अपने समय में सबसे योग्य ज्योतिर्विद् हुए हैं तथा (३) यह प्रशस्ति उनके कुछ समय बाद ही लिखी गयी।

आर्यभट के जन्म के संबंध में प्रमाण उनके ग्रंथ से ही मिल जाता है। कालक्रियापाद की दसवीं आर्या में उन्होंने लिखा है:

'षण्ट्यब्दानां षष्टिर्यदा व्यतीतास्त्रयश्च युगपादाः।
त्र्यधिका विंशतिरब्दास्तदेह मम जन्मनोऽतीताः।।

इस श्लोक से यह पता चलता है कि तीन युगपाद (सतयुग, त्रेता और द्वापर) तथा (कलियुग के) ३६०० वर्ष बीतने पर (शक संवत् ४२१) आर्यभट की आयु के २३ वर्ष बीत चुके थे। इसका अर्थ यह हुआ कि आर्यभट का जन्म शक सम्वत् ३९८ अर्थात् ४७६ ई. में हुआ था। इस हिसाब से १९७६ ई. में उनकी पंद्रहवीं जन्म-शताब्दी पड़ती है।

'आर्यभटीय'—लोकप्रचारित ज्योतिषशास्त्र

आर्यभट की देश-कालातीत ख्याति उनके एकमात्र (उपलब्ध) ग्रंथ 'आर्यभटीय' पर ही आधारित है। इस ग्रंथ के दो भाग हैं—(१) दशगीतिका और (२) आर्याष्टशत। अपने ग्रंथ के विषय में आर्यभट ने

आर्यभट

• कैलाश भारद्वाज

लिखा है, "आदिकाल में जिस ज्योतिष-शास्त्र को वेद से निकालकर लोक में प्रचारित किया गया था, उसी को मैंने 'आर्यभटीय' नाम से प्रकाशित किया है।"

इस गणित-खगोल संबंधी ग्रंथ में चार पाद हैं: (१)गीतिकापाद (२) गणितपाद, (३) कालक्रियापाद और (४)गोलपाद। गीतिका पाद में १३ गीतिका, गणितपाद में ३३ आर्या, कालक्रियापाद में २५ आर्या और गोलपाद में ५० आर्या हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर 'आर्यभटीय' में १२१ श्लोक हैं।

अंकों के लिए अक्षर

(दश) गीतिकापाद के खण्ड में ग्रह-भगणादि मान तथा अंक स्थान का वर्णन है। अंक-स्थान के लिए 'अक्षरांक' और भी उपयुक्त शब्द रहेगा, क्योंकि आर्यभट ने बड़े अद्‌भुत ढंग से अक्षरों के अंक निश्चित किये हैं जैसे अ के लिए १, इ के लिए १००, उ के लिए १०,००० इत्यादि।

गणितपाद में 'दशगुणोत्तर संख्याओं के नाम, वर्ग, घन, वर्गमूल, घनमूल, त्रिभुज, वृत्त और अन्य क्षेत्र, इनके क्षेत्रफल, घन, गोल, इनके घनफल, भुजज्या-साधन और भुजज्या संबंधी कुछ विचार, श्रेढ़ी, त्रैराशिक, भिन्नकर्म (अपूर्णांक), त्रैराशिक अथवा बीजगणित संबंधी, दो एक चमत्कारिक उदाहरण और कुहक

भारतीय उपग्रह अंतरिक्ष में

१९ अप्रैल, १९७५ को दोपहर १ बजे सोवियत संघ के किसी अंतरिक्ष केंद्र से ३६० किलोग्राम वजनी, २६ मुखी, १.६ मीटर व्यासवाले हीरे के आकार के नीले एवं बैंगनी इस भारतीय उपग्रह को सोवियत राकेट की सहायता से अंतरिक्ष की कक्षा में स्थापित कर दिया गया। इसकी गति ८ कि. मी. प्रति सेकंड है। पृथ्वी से अधिकतम एवं न्यूनतम ऊंचाई क्रमशः ६२३ एवं ५६४ कि. मी. है। यह प्रति ९६.४१ मिनट में पृथ्वी की परिक्रमा पूरी करता है।

सोवियत राकेट से भारतीय उपग्रह छोड़ने का समझौता १० मई, १९७२ को हुआ था, और बंगलौर के पास पीन्या में दिसंबर, १९७२ में भारतीय वैज्ञानिकों ने इसका निर्माण शुरू किया। आंध्र में श्रीहरिकोटा एवं मास्को के पास बीयर्स लेक के भू-उपग्रह-केंद्र उपग्रह से संपर्क बनाये हुए हैं। उपग्रह जब केंद्रों के ऊपर से गुजरता है तब उसमें रखे टेप-रिकार्डरों पर अंकित सूचनाएं ग्रहण कर ली जाती हैं। एक फ्रांसीसी अंतरिक्ष केंद्र, एवं अमरीकी 'स्मिथ सोनियन इंस्टीट्यूट' भी इसकी टोह ले रहे हैं।

उपग्रह का अधिकांश भारत में निर्मित है, पर कुछ अधिक संश्लिष्ट विद्युत उपकरण, टेप-रिकार्डर, निकल काडमियम बैटरियां, सोलर सेल एवं अपने कक्षा-पथ में उपग्रह को

विषय हैं।'

इस पाद में वृत्त के व्यास और परिधि का अत्यंत सूक्ष्म गुणोत्तर आर्यभट ने बतलाया है :

चतुरधिकं शतमष्टगुणं द्वाषष्टिस्तया सहस्राणाम्।
अयुतद्वय विष्कम्भस्यासन्नो वृत्त परिणाहः॥'
गणितपाद –१०

अर्थात दो अयुत (२०,०००) परिमित व्यास की आसन्न परिधि का परिमाण ६२,८३२ है अर्थात व्यास से परिधि ३.१,४१६ गुणित है तथा इन गुणोत्तरों को भी आसन्न (Approximate) कहा गया है।

काल-क्रियापाद में समय-विभाग, सौर-वर्ष, चांद्रमास, सावन दिन, नाक्षत्र दिन, अधिमास, ग्रह-व्यवस्था, ग्रहगति, ग्रह-संबंधी स्थितियों का गणन, तथा भूमि से ग्रहों की वास्तविक दूरियों इत्यादि का उल्लेख किया गया है।

काल-क्रियापाद के एक श्लोक के अनुसार जितने काल में सूर्य का एक भगण (चक्र) पूरा होता है, उस काल को सौर वर्ष कहते हैं। जितने काल में सूर्य और चंद्रमा का योग होता है, उसे चांद्र-मास कहते हैं। सूर्य का पृथ्वी-भ्रमण के तुल्य सावन दिन (भू दिवस) होता है और जितने समय में नक्षत्र-मंडल का भ्रमण

संतुलित करनेवाली टिटेनियम की कंप्रेस्ड नाइट्रोजन गैस बोतलें सोवियत संघ ने दी हैं।

उपग्रह ढाई वर्ष तक पृथ्वी की प्रदक्षिणा करेगा, पर अंतरिक्ष-अनुसंधान एवं सूचनाओं के आदान-प्रदान का काम लगभग छह महीने तक चलेगा क्योंकि उसके बाद संतुलनकारी गस चुक जाएगी और उपग्रह संतुलन खो बैठेगा।

विद्युत शक्ति के लिए इसमें १,८०० सिलिकोन सेल लगे हैं जो सूर्य से शक्ति प्राप्त करके यंत्रों को व २० बैटरियों को देंगे। जब उपग्रह सूर्य से परे, पृथ्वी की छाया में चला जाएगा और सूर्य से शक्ति मिलनी बंद हो जाएगी तो बैटरियां कार्य करने लगेंगी और उपग्रह सक्रिय रहेगा।

यह अंतरिक्ष अनुसंधान के तीन क्षेत्रों में परीक्षण एवं खोज कर रहा है—आकाशगंगा एवं उससे आगे एक्स नक्षत्रों की खोज, उग्र सौर गतिविधियों के दौरान सूर्य से निसृत न्यूट्रोन एवं गामा किरणों का अध्ययन, और आइनोस्फीयर में इलेक्ट्रांस की खोज एवं रात्रि आकाश में पराबैंगनी विकिरण का अध्ययन।

अंतरिक्ष में इसे +७५अंश एवं-१००अंश के चरम तापक्रमों से गुजरना होगा। उपग्रह १३६ मेगासाइकल्स पर सांकेतिक शब्दों में रेडियो-संदेश भेज रहा है, और यह संप्रेषण श्रीहरिकोटा एवं बीयर्स लेक केंद्रों के आदेश पर ही होता है।

होता है, वह नाक्षत्र दिवस कहलाता है।

'आर्यभटीय' का अंतिम पाद 'गोल' है। इसमें आकाश में ग्रह-गतियों को प्रकट करने की विधियां बतलायी गयी हैं, खमध्य-रेखा, क्षितिज, विषुवत-रेखा, क्रांति-वृत्त आदि की व्याख्या की गयी है, चंद्रमा व उसके पात, चंद्र-सूर्य-ग्रहण, ध्रुव-वर्णन तथा भूमि की दैनिक गति के स्पष्टी-करण दिये गये हैं।

पृथ्वी प्रतिदिन अपने अक्ष पर घूमती है—इस सिद्धांत को मानने वाले एकमात्र भारतीय वैज्ञानिक आर्यभट ही हैं। गोल-पाद की नवीं आर्या में इन्होंने लिखा है: 'जिस प्रकार नाव में बैठा हुआ व्यक्ति तट के पेड़-पौधों को उलटी दिशा में जाते अनुभव करता है, उसी प्रकार स्थायी नक्षत्र-मंडल भी (भूमि की गति के कारण) पश्चिम की ओर चलता हुआ प्रतीत होता है।'

इसके अतिरिक्त दशगीतिका की चौथी आर्या में आर्यभट ने **'प्राणेनैति कला भूः'** (अर्थात भूमि प्राण नामक काल-परिमाण में एक कला चलती है) कहकर पृथ्वी की दैनिक गति का स्पष्ट उल्लेख किया है।

मान्यताओं का घोर विरोध

कहना न होगा कि 'आर्यभट की इस मान्यता का हमारे देश में घोर विरोध हुआ। 'आर्यभटीय' की भटप्रकाशिका टीका के लेखक ने आर्यभट की तत्संबंधी आर्या में अचलत्व सिद्ध करने की चेष्टा की।

आर्यभट की एक अन्य देन उनकी औदायिक व अर्धरात्रिक दिवस-व्यवस्थाएं हैं। 'आर्यभटीय' में अर्धरात्रिक दिवस-गणना का उल्लेख नहीं मिलता। इससे यह अनुमान होता है कि संभवतः आर्यभट का कोई अन्य ग्रंथ भी रहा होगा, जो आज उपलब्ध नहीं है। अलबरूनी ने आर्यभट के एक अन्य ग्रंथ 'तंत्र' का उल्लेख किया भी है।

'आर्यभटीय' का एक और उल्लेख-नीय विषय उसकी ग्रहण-व्याख्या है। प्राचीन काल से चले आ रहे राहु-केतु-सिद्धांत को आर्यभट ने नहीं माना है। इस विषय में गोलपाद (३७) में उन्होंने लिखा है:

चंद्रोजलमर्कोऽग्निर्मृद्भूश्छायापि या तमस्तद्धि।
छादयति शशी सूर्यंशशिनं महती च भूच्छाया।।

अर्थात् जलस्वरूप चंद्रमा, अग्नि-स्वरूप सूर्य और मृत्तिकास्वरूप भूमि है। भूमि की छाया का नाम अंधकार है। सूर्य-ग्रहण में चंद्रमा सूर्य को आच्छादित कर लेता है और चंद्रग्रहण में पृथ्वी की छाया चांद को ढक लेती है।

इसके अतिरिक्त ग्रहण संबंधी प्रभूत सामग्री गोल-पाद में उपलब्ध है।

'आर्यभटीय' में (उत्तरी व दक्षिणी) ध्रुवों का भी वर्णन है। इसमें उत्तरी ध्रुव को 'मेरु' और दक्षिणी ध्रुव को 'बड़वा-

मुख' कहा गया है। मेरु स्वर्ग-संज्ञक और बड़वामुख नरक-नामी है। ध्रुवों के विपरीत दिशाओं में होने के कारण स्वर्ग (उत्तरी ध्रुव) में रहनेवाले अमरगण समझते हैं कि नरकवासी प्रेतादि उनके नीचे रहते हैं और नरकवासी समझते हैं कि स्वर्गवासी उनके नीचे निवास करते हैं।

हमारे यहां 'आर्यभटीय' को प्रथम पौरुष-ज्योतिष-ग्रंथ माना गया है। इसके रचयिता का महत्त्व इस बात में है कि भारत में ज्योतिष के क्षेत्र में जो क्रांतिकारी विकास हुआ उसका नायक आर्यभट ही था।

आर्यभट ने खगोल को एक अन्य ही प्रकार की महिमा से मंडित कर दिया। ग्रहों-नक्षत्रों के ज्ञान को उसने सर्वोच्च ज्ञान से संबद्ध किया तथा यहां तक कह दिया कि गणितज्ञ लोग ग्रह-नक्षत्रों के चरित को जानकर ब्रह्म को प्राप्त होते हैं।

जो लोग किसी महान कार्य में नायक की भूमिका निभाते हैं, वे उचित-अनुचित आलोचना के शिकार भी निश्चय ही होते हैं। आर्यभट के साथ ऐसा ही हुआ। जाने-माने खगोलशास्त्री ब्रह्मगुप्त ने तो उनकी बहुत ही कटु आलोचना की। फिर भी ब्रह्मगुप्त ने न केवल उनके अर्धरात्रिक दिन-गणना सिद्धांत को स्वीकार किया, अपितु अपने ग्रंथ 'खण्डखाद्य' की प्रथम आर्या में यह स्वीकारोक्ति भी प्रस्तुत की है **'वक्ष्यामि खण्डखाद्यकमाचार्यार्यभट तुल्य फलम्।'** अर्थात मैं आचार्य आर्यभट के ग्रंथ जैसा ग्रंथ बना रहा हूं।

कहना न होगा कि कालांतर में कुसुमपुर के इस सूर्यावतार को ग्रहण लग गया था। लोग आर्यभट को भूल ही गये थे। अब इस देश ने अपने प्रथम उपग्रह का नामकरण अपने प्रथम ज्योतिर्विद् के नाम पर करके भारत के इस वरदपुत्र को वस्तुतः उचित श्रद्धांजलि दी है।

—भारद्वाज आश्रम, रानीतालबाग, नाहन (हि. प्र.)

आर्यभट्ट या आर्यभट

भारत के प्रथम भू-उपग्रह के नाम के संबंध में व्यर्थ का भ्रम चल गया है। कुछ उसका नाम 'आर्यभट' लिखते हैं, और कुछ लोग 'आर्यभट्ट'। इस संबंध में 'भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संस्थान' के अध्यक्ष प्रोफेसर सतीश धवन ने जो स्पष्टीकरण दिया है, वह विभिन्न प्रकार की अटकलबाजियों को समाप्त करने के लिए काफी होना चाहिए। प्रोफेसर धवन ने कहा, "मैं स्वयं संस्कृत-साहित्य का अध्येता रहा हूं। लेकिन उपग्रह के नामकरण की शुद्धता के संबंध में मैंने संस्कृत साहित्य के कई सुप्रसिद्ध विद्वानों से परामर्श किया। उन्होंने एकमत से 'आर्यभट' शुद्ध माना।" एक तथ्य और है। 'भट्ट' गुजरात में एक जाति होती है। खगोलशास्त्री 'आर्यभट' का जन्म पटना के समीप कुसुमपुर में हुआ था।

तस्करों के जाल में कलाकृतियां

निर्जन स्थानों में बने मंदिरों की प्राचीनतम एवं कलात्मक मूर्तियां तस्करों के माध्यम से गायब हो रही हैं। इस संबंध में प्रस्तुत है सुप्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता डॉ. परमेश्वरीलाल गुप्त से एक विशेष भेंट

मैंने डॉ. परमेश्वरीलाल गुप्त से पूछा, **"भारत गरीब देश है। कलाकृतियों और ऐतिहासिक वस्तुओं का संग्रह यहां के कुछ ही लोगों का, विशेषकर नव-कुबेरों का शौक है, जबकि विदेशों में स्थिति लगभग इसके विपरीत ही होगी!"**

डॉ. परमेश्वरीलाल गुप्त अपनी किसी पुस्तक के लिए सामग्री की खोज के संबंध में वाराणसी से 'प्रिंस ऑव वेल्स म्यूजियम' बंबई में आये हुए थे।

"भारत क्या और विदेश क्या, दोनों जगह एक ही स्थिति हो गयी है। कलाकृतियों का संग्रह अब तस्करी-सा बन गया है। अब तो हमारे गांव-गांव में कलाकृति-विक्रेताओं के कमीशन-एजेंट घूमते-फिरते हैं और सौदा करते हैं। अब अमरीकियों ने भारतीय कला-विक्रेताओं के साथ सीधा संपर्क ही स्थापित कर लिया है।"

"एक जगह आपने लिखा है कि 'देश में जितने भी संग्रहालय बने हैं उनकी

● प्रस्तोता : रतीलाल शाहीन

बहुत-सी मूर्तियों का इतिहास चोरी का इतिहास है' —इस बात की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालने का कष्ट करेंगे? और, कलाकृतियों की व्यापक तस्करी का आप क्या कारण मानते हैं? उसे रोकने का उपाय क्या हो सकता है?"

"जब स्वतंत्रता के पश्चात देश में सर्वत्र प्रगति की योजना गूंज उठी तब पंच-वर्षीय योजना के अंतर्गत संग्रहालयों के विकास की बात भी सामने आयी। इसके लिए केंद्रीय और प्रांतीय सरकारों ने पैसा दिया। संग्रहालयों के विकास की रूपरेखा बनाते समय कलाकृतियों को खरीदकर प्राप्त करने की ही बात को प्रमुखता दी गयी। इसके लिए केंद्रीय

डॉ. परमेश्वरीलाल गुप्त
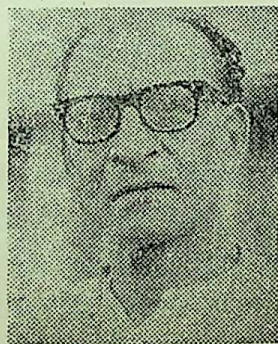
एवं प्रांतीय सरकारों ने राष्ट्रीय कलानिधि क्रय-समितियों की स्थापना की। फलतः देश में कला-कृतियों औ मूर्ति-विक्रेताओं के एक ऐसे नये समाज का जन्म हुआ जिसने अपना लक्ष्य बनाया—जिस प्रकार भी हो और जहां से भी हो, मूर्तियों को प्राप्त किया जाए और अधिक-से-अधिक पैसा खसोटा जाए।

पटना-संग्रहालय की मूर्तियों से संबंधित पुरानी फाइलों को टटोलते हुए ऐसे कितने ही नाम मेरे सामने आये जिनसे मूर्तियां क्रय की गयी हैं। सच तो यह है कि भारत के संग्रहालयों के संस्थापकों-संचालकों ने अपने हित में चोरी के जिस व्यवसाय को जन्म दिया, पनपाया और प्रोत्साहित किया, वही आज उनके लिए एक खतरा बन बैठा है। यूरोप और अमरीका-जैसे जबर्दस्त विदेशी मार्केट इन तस्करों के लिए खुले पड़े हैं, जहां कला कृतियों का मुंह मांगा दाम मिलता है। इसीलिए इस देशघाती धंधे में शिक्षित-अशिक्षित व्यक्तियों का एक बहुत बड़ा वर्ग लगा हुआ है। कलाकृतियों एवं मूर्तियों की चोरी रोकने के लिए मेरे विचार से सर्वप्रथम आवश्यकता यह है कि प्राचीन ऐतिहासिक और कलात्मक वस्तुएं, चाहे वे भूमिगत हों या प्रकट, राष्ट्र की संपत्ति घोषित कर दी जाएं। इससे छोटी-बड़ी सभी प्राचीन वस्तुओं का अपने स्थान से हटाना मात्र

संदिर के गर्भगृह से तस्कर के जाल में

"क्या दोनों का एक-सा ही कार्य होता है? आपका क्या अनुभव रहा है?"

"कुछ अर्थों में आप ऐसा कह सकते हैं जैसे मेरी 'चंदायन' की खोज ही जासूसी का कार्य कहा जा सकता है। इस रोमांचक घटना से पुरातत्त्वज्ञ के जासूस होने का आभास मिल सकता है। 'चंदायन' के कुछ पृष्ठ भारत कला-भवन 'प्रिंस ऑव वेल्स म्यूजियम' में मिलने के बाद इन पृष्ठों को प्रकाशित करने के लिए जब मैं भूमिका के लिए सामग्री एकत्र कर रहा था तब मेरा ध्यान गार्सा द तासी के इतिहास 'हिंदी और हिंदुई साहित्य का इतिहास' के उस भाग की ओर गया जिसमें उन्होंने ड्यूक ऑव ससेक्स की लाइब्रेरी में एक सचित्र ग्रंथ के होने का संदेह किया था और उसमें हूरक और हंदा की कहानी होने की बात कही थी। यह अंश उनके इतिहास पढ़नेवालों के सामने अनेक बार आया है, किंतु किसी ने इस पर ध्यान नहीं दिया कि हूरक और हंदा वस्तुतः लूरक और चंदा हैं जो फारसी लिपि के प्रमादपूर्ण पठन से इस प्रकार पढ़ा गया है। इस प्रकार, मेरे सम्मुख 'चंदायन' की एक ऐसी प्रति की कल्पना उभरी जो मुझे

भी अपराध होगा। इसके लिए राजद्रोह के समकक्ष दंड निर्धारित किया जाए।

वे कला-कृतियां जिनकी राष्ट्र के लिए कोई उपयोगिता नहीं है, यदि सरकार स्वयं वैध ढंग से विदेशी संग्रहकर्ताओं को बेचे तो इससे तस्कर-व्यापार लगभग बंद हो जाएगा। उन मूर्तियों के विक्रय से डालर की एक अच्छी-खासी रकम भी पायी जा सकती है, जिसका उपयोग राष्ट्रीय संग्रहालयों के विकास और विस्तार के लिए किया जा सकता है और इन संग्रहालयों के संरक्षण तथा सुरक्षा के लिए एक समुचित सिक्योरिटी-गार्ड की नियुक्ति भी की जा सकती है।

उपलब्ध सामग्री से कहीं अधिक बड़ी थी। तब मेरे लिए आवश्यक हो गया कि मैं उस मूल प्रति की तलाश करूं।

"गार्सा द तासी ने यह प्रति सन १८३४ के आस-पास लिखी थी। दूसरे लोग स्वाभाविक ढंग से यह सोच और समझ सकते थे कि जब वह ड्यूक ऑव ससेक्स की लाइब्रेरी में उस समय थी तब अब भी वहीं होगी। किंतु मैं ऐसा स्वीकार करने को तैयार न था, क्योंकि मैं इस सामान्य तथ्य से परिचित था कि कला-कृतियों और पुस्तक-संग्रहकर्ताओं के मरने के पश्चात प्रायः उनके उत्तराधिकारी धन-कर अथवा मृत्यु-कर अदा करने के लिए उनके संग्रह को ही सुलभ मानते हैं, क्योंकि विरला ही ऐसा संग्रहकारी होता है जिसे इस प्रकार के संग्रह में रुचि है। अतः मैंने सोचा कि सन १८३४ में जो ससेक्स के ड्यूक रहे होंगे उनके मरने के पश्चात नये ड्यूक ने निश्चय ही उनके पुस्तक-संग्रह को बेचा होगा और उसे पुरानी पुस्तकों के किसी विक्रेता ने खरीदा और फिर उसे फुटकर रूप में बेचा होगा। अपनी इस धारणा के आधार पर मैंने उन दिनों के प्राचीन पुस्तक-विक्रेताओं द्वारा प्रकाशित पुस्तक-सूचियों का इंडिया ऑफिस (लंदन) और ब्रिटिश म्यूजियम में पता लगाया। तब मुझे पता लगा कि लिली नामक पुस्तक-विक्रेता ने ससेक्स के संग्रह को खरीदा था और उसकी एक सूची प्रकाशित की थी। सूची को देखने पर पुस्तक का जिक्र मिला, जिसका उल्लेख गार्सा द तासी ने किया था।

"अब प्रश्न था कि लिली ने वह पुस्तक किसके हाथ बेची? पता लगा कि मोशियो ग्लांड ने, जो फारसी और अरबी के फ्रेंच विद्वान थे, इस संग्रह की अरबी-फारसी पुस्तकों का क्रय किया था। उनके पुस्तक-संग्रह का पता लगाना शुरू किया तो ज्ञात हुआ कि ग्लांड महोदय मर चुके हैं और उनका पुस्तक-संग्रह बिक चुका है।

"अब मोशियो ग्लांड का पुस्तक-संग्रह किसने लिया और वह कहां है, यह मेरी खोज की अगली कड़ी थी। इस खोज के परिणामस्वरूप यह पता लगा कि उनकी पुस्तकों के संग्रह का एक बड़ा भाग इंगलैंड के किसी अर्ल ने खरीदा। मैंने अर्ल के नाम एक पत्र लिखा, जिसका उत्तर मुझे उनके उत्तराधिकारी तत्कालीन अर्ल से प्राप्त हुआ, जिसमें उन्होंने बताया कि उनके पिता का संग्रह मैनचेस्टर विश्वविद्यालय के रिलैंड पुस्तकालय में है। पुस्तक उसी रूप में वहां सुरक्षित थी जिस रूप में डयूक ऑव ससेक्स ने रखी थी। पुरातात्त्विक जासूसी के दृष्टिकोण से मुझे एक दूसरी घटना याद आती है।

"सन १९६२ में जब मैं इंगलैंड से लौटते हुए बर्लिन रुका था तब उन दिनों वहां भारतीय कला के एक संग्रहालय का निर्माण हो रहा था। इस कला-संग्रहालय के संयोजक एवं निदेशक डॉ. हर्टल ने मुझे उन कलाकृतियों को दिखाया जो

उन्होंने संग्रहालय के लिए प्राप्त की थीं। इसी बीच उन्होंने मुझे बुद्ध-मूर्ति के सिर का एक फोटोग्राफ दिखाया। उस चित्र को मैंने कुछ देर ध्यानपूर्वक देखा। दिमाग में कुछ बिजली-सी कौंधी। मैंने कहा—'मथुरा शैली की मूर्ति है।' उन्होंने स्वीकारात्मक उत्तर दिया। तब मैंने कहा—'इस बुद्ध-मुंड का सादृश्य उस बुद्ध-मुंड से बहुत है जो मथुरा-संग्रहालय में अमुक स्थान पर है।' उन्होंने चित्र मेरे हाथ से ले लिया। कुछ देर तक वे उसे ध्यानपूर्वक देखते रहे। फिर उठे, अलमारी से चित्रों का एक एलबम निकाला। यह एलबम उन मूर्तियों के चित्रों का था जिसे उन्होंने अपने अध्ययन के निमित्त अपनी भारत-यात्रा में खींचा था। दोनों चित्र सामने रखे गये। अंत में, इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि दोनों चित्र एक ही मूर्ति के हैं और वह मूर्ति मथुरा-संग्रहालय से चुरायी जाकर उन्हें बेची जा रही है।

"मैं जब भारत आया और अपनी खोज की सूचना उत्तर प्रदेश सरकार को दी तो वहां के एक अधिकारी मथुरा-संग्रहालय भेजे गये। उस मूर्ति के संबंध में उन्होंने पूछताछ की। तब मथुरा-संग्रहालय के अधिकारी भी आश्चर्य-चकित रह गये! उन्हें वह मूर्ति ढूंढ़े भी न मिली। इस घटना से पूर्व संग्रहालयों से मूर्ति-चोरी होने का किसी को अंदेशा भी न था। इसके बाद सतर्कता बरती जाने लगी और खोज-बीन शुरू हुई।" ●

विवेकानंद का महाप्रयाण

• आशा प्रसाद

६ दिसंबर, १९०० की शीत से सिहरती रात। दस बजे ही बेलूर मठ के चारों ओर आधी रात का सन्नाटा घिर आया है। मठ के एक कोने में हलकी-सी रोशनी टिमटिमा रही है। बरामदे में संन्यासी लोग भोजन के लिए भूमि पर पंक्तिबद्ध बैठे हैं। मठ के फाटक के वाहर एक बग्घी आकर रुकी। कोने में बैठे माली ने देखा, लंबा कोट और टोप लगाकर कोई साहव बग्घी से उतरे। फाटक खोलने के लिए चाबी लाने वह जल्दी से अंदर भागा, किंतु फाटक खोलने पर बग्घी सूनी थी। इधर साहव माथे का टोप कुछ सामने की ओर झुकाकर भोजनालय के द्वार पर खड़ा था। एक संन्यासी दीया लेकर साहव के सामने आ खड़ा हुआ। 'अरे, यह कोई साहब-वाहब नहीं, ये तो हमारे स्वामी विवेकानंद हैं!' अचानक गुरुभाई संन्यासी के मुंह से हर्षाश्चर्य-मिश्रित वाणी फूट निकली। क्षण भर में स्वामी अपने गुरुभाइयों और शिष्यों के बीच घिर गये। 'स्वामीजी आ गये', 'स्वामीजी आ गये' की हर्षध्वनि होने लगी। स्वामी ने जोर से हंसते हुए बताया कि बाहर से भोजन की घंटी सुन वे चहारदीवारी फांदकर आ गये थे। फिर उन्होंने कहा, "मुझे बहुत भूख लगी है, कुछ खाने को दो।" आसन लगाया गया और थाल में खिचड़ी परोसी गयी। स्वामी बहुत दिनों बाद खिचड़ी का आनंद लेते हुए अपने गुरुभाइयों से बातें करने लगे।

इतने दिनों बाद बेलूर मठ लौटकर विवेकानंद के आनंद की सीमा नहीं थी। उन्हें यह जानकर और भी प्रसन्नता हुई कि उनकी अनुपस्थिति में वहां का सभी काम योजनावद्ध चल रहा था। बेलूर में उन्हें अनेक कार्य निबटाने थे, किंतु इन सबके पहले उनके लिए मायावती आश्रम जाना आवश्यक था। मायावती के अध्यक्ष श्री सेवियर के निधन के बाद आश्रम का कार्य कैसे चल रहा है तथा श्रीमती सेवियर वहां किस प्रकार हैं, इसे देखने-जानने की इच्छा वे नहीं रोक सके। अतः बेलूर आते ही उन्होंने मायावती जाने की तैयारी कर दी। काठगोदाम से मायावती का मार्ग भयंकर हिमपात से अवरुद्ध हो गया था, किंतु स्वामी ने यात्रा रोकी नहीं। बड़ी कठिनाई से कष्टप्रद मार्ग तय हुआ। मंजिल पर पहुंचते-पहुंचते स्वामी बीमार हो गये। एक तो पहले से ही अस्वस्थ शरीर, दूसरे यात्रा की मुसीबतें। पर मायावती पहुंचते ही वे

मार्ग के श्रम को भूल गये। उन्होंने श्रीमती सेवियर से कहा—"वास्तव में मेरा स्वास्थ्य अब टूट गया है, परंतु मेरा मस्तिष्क अभी पूर्ववत सवल और क्रियाशील है।"

आश्रम के संन्यासियों ने आश्रम के एक कक्ष को मंदिर बना डाला था। वहां श्रीरामकृष्ण की मूर्ति की फलफूल, धूप-दीप द्वारा पूजा की जाती थी। भोग लगाया जाता, भजन गाया जाता। अद्वैत आश्रम में इस प्रकार की बाह्य पूजा देखकर स्वामी को दुःख हुआ। संध्या समय जब अग्निकुंड के चारों ओर सभी लोग हवन के लिए एकत्र हुए, तब उन्होंने इस पूजा को अनुचित ठहराया। फिर भी बाह्य पूजा-पाठ को शीघ्र बंद कर देने की आज्ञा उन्होंने नहीं दी। संन्यासियों के हृदय को ठेस पहुंचाना उनका उद्देश्य नहीं था। पर अद्वैत आश्रमवासियों ने अपनी भूल अनुभव कर श्रीरामकृष्ण की पूजा बंद कर दी। स्वामी जब मायावती से बेलूर लौटे, तब वहां के गुरुभाइयों और शिष्यों से कहा, "मेरा विचार था कि कम से कम हमारा एक ऐसा मठ होगा जहां श्रीरामकृष्ण की मूर्ति की बाह्य पूजा-अर्चना नहीं होगी, पर वहां जाकर मैंने देखा कि वे वृद्ध वहां भी आसन जमाकर बैठे हैं!"

दमा की बीमारी में स्वामी का आहार और निद्रा बहुत ही कम हो गये थे। उन दिनों मठ में नया 'इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका' खरीदा गया था। सुंदर पुस्तकों को देखकर स्वामी का मुखमंडल बाल-सुलभ प्रसन्नता से खिल उठा। अपनी शारीरिक स्थिति पर विचार करते हुए वे कुछ दुखी होकर बोल उठे—"इतनी पुस्तकें एक जीवन में पढ़ना कठिन है!" परंतु रात्रि के सूने में जब किसी तरह नींद नहीं आती, तब वे इन पुस्तकों को ही अपना साथी बनाते। कुछ ही रातों में दस खंडों का अध्ययन समाप्त कर जब स्वामी ने ग्यारहवां खंड पढ़ना आरंभ किया तब एक शिष्य को इसका पता चला। उसने उन दसों खंडों में से कई बातें पूछीं और स्वामी ने सबके ठीक-ठीक उत्तर दिये। कई स्थानों पर तो पृष्ठ पर पृष्ठ पुस्तक की भाषा ही उद्धृत कर दी।

बेलूर मठ के शांत और निर्जन स्थान में स्वामी के मनोरंजन के लिए साथियों की कमी नहीं थी। उनके सदय व्यवहार और प्रेम की डोर से बंधे हुए अनेक पशु-पक्षी, स्वामिभक्त कुत्ता 'बाघा', दूध के समान सफेद बकरी 'हंसी', घने रोमोंवाली भेड़ें, सफेद, काली, भूरी, चितकबरी गायें और उनके उछलते-कूदते बछड़े, पोखर में तैरते हंस-हंसिनी, छज्जों पर प्रेमलीला करते कबूतरों के जोड़े, लंबी गरदनवाले सारस, बड़ी-बड़ी भावपूर्ण आंखोंवाले मृग—ये सब आश्रम-परिवार के अभिन्न अंग थे। ग्रहण के बाद जब आश्रम में शंख-नाद होता और सभी संन्यासी गंगा में डुबकी लगाते तब 'बाघा' भी गंगा में डुबकी लगाता।

स्वामी के कमरे में एक सोफा (जो

उनके किसी विदेशी मित्र का उपहार था) रखा हुआ था। 'हंसी' बकरी को वह सोफा बड़ा पसंद था। अकसर वह स्वामी के कक्ष में उसी सोफे पर विश्राम किया करती थी। उसके बच्चे 'मटरू' की पतली गरदन में स्वामी ने रुनझुन घंटी बांध रखी थी। वे प्रायः संध्या समय 'मटरू' के साथ भाग-दौड़ का खेल खेला करते और अकसर कहा करते, "यह मेरे पूर्वजन्म का संबंधी है।" वे अपने पशु-साथियों के साथ मानवी भाषा में बातें करते। जंतुओं के प्यार की अभिव्यक्ति मूक भाषा में होती, जिससे स्वामी भली भांति परिचित थे। उस व्यक्ति का वैरागी-योगी और दार्शनिक रूप यहां बिल्कुल गौण हो जाता। रह जाता एक अति साधारण मानव, सांसारिक ममत्व में लिपटा हुआ।

विवेकानंद की सजग आंखें मठ में हो रहे छोटे-से-छोटे, सूक्ष्म-से-सूक्ष्म कार्य की निगरानी किया करतीं। पशु-पक्षियों के दाना-पानी, उनके निवास-स्थानों की स्वच्छता, उनके कष्ट-रोग, शाक-सब्जी एवं फूलों की क्यारियां, प्रायः पौधों को रोगी करनेवाले कीटाणु, रसोईघर की स्वच्छता, पीने के पानी की शुद्धता आदि उनकी रोज की चिंता के विषय थे। उन्होंने मठ के कार्यों से बहन निवेदिता को बराबर अवगत रखा। उन्होंने उनके पास एक बार लिखा—'वर्षा होने पर मठ के अंदर जल रुक जाता है। उसे निकालने के लिए एक गहरी नाली खोदी जा रही है। इस कार्य में कुछ हाथ बटाकर अभी-अभी लौट रहा हूं।'

१९०१ में वे दुर्गापूजा समारोह के साथ मनाने की बलवती इच्छा को नहीं रोक सके। हृदय से अद्वैतवादी होने पर भी उनमें द्वैतवादी संस्कार कभी-कभी उभर आते। किंतु सर्वत्यागी संन्यासियों को 'संकल्पपूर्वक' पूजा-अर्चना करने का अधिकार नहीं था। अतः काफी दिनों तक

स्वामी कुछ निश्चय नहीं कर पाये कि क्या करना चाहिए। सिर्फ पूजा के दस-बारह दिन पहले मठ में विवेकानंद के मुख से लोगों को मालूम हुआ कि इस बार मठ में दुर्गा की प्रतिमा रखकर उसकी पूजा की जाएगी।

इस पूजा-आराधना के बाद स्वामी पुनः एक बार रोग के चंगुल में फंसे। उनका शरीर बुरी तरह रोग से परास्त हो चुका
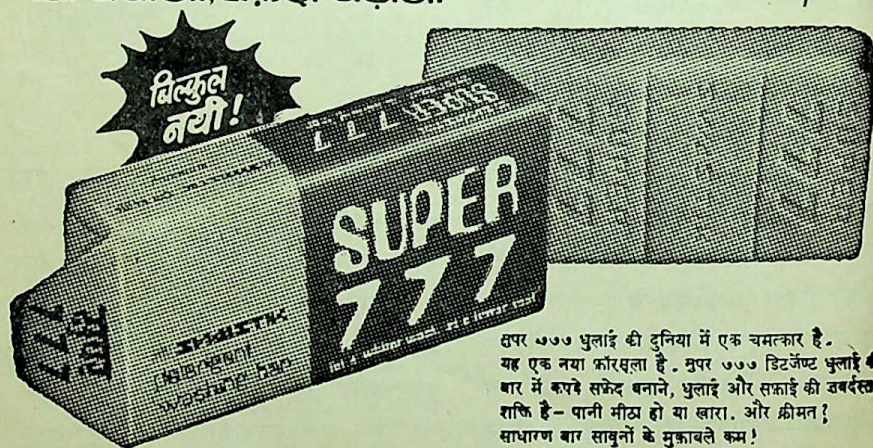
था। दमा, बहुमूत्रता, पांव की सूजन, सब एकसाथ। पुनः आयुर्वेदिक चिकित्सा होने लगी।

मृत्यु के तीन दिन पूर्व मठ के मैदान में स्वामी प्रेमानंद के साथ टहलते हुए विवेकानंद ने गंगा के तट पर एक विशेष स्थान की ओर अंगुलि से संकेत करते हुए कहा, "जब मैं शरीर-त्याग करूं, तब मेरा संस्कार वहां करना।" आज उस पावन स्थान पर उनकी स्मृति में एक मंदिर स्थित है। अंतिम दिनों की उनकी कुछ बातें, व्यवहार जाने या अनजाने अर्थपूर्ण और रहस्यमय होते थे। इसका विश्लेषण लोगों ने बाद में किया।

सन १९०२ की २ जुलाई। बुधवार का दिन। आज एकादशी है। स्वामी ने उपवास रखा है। बहन निवेदिता अपने विद्यालय के विषय में उनसे कुछ परामर्श लेने आयी हैं। वे पूछ रही हैं कि विद्यालय में विज्ञान की पढ़ाई शुरू की जाए या नहीं। उनका अपना विचार है कि विज्ञान का विषय विद्यालय के लिए आवश्यक है। कुछ सोचते हुए स्वामी अनमने भाव से बोलते हैं, "शायद तुम ठीक सोचती हो। किंतु मेरा मस्तिष्क किसी दूसरी चीज में व्यस्त है। मैं मृत्यु की तैयारी में हूं।"

प्रातःकाल का भोजन तैयार था—सादा चावल, उबले हुए आलू तथा कटहल के बीज और बर्फ के समान ठंडा दूध। आसन पर बहन निवेदिता भोजन के लिए बैठी हैं। स्वामी उनके सामने रखी हुई थाली में चावल, आलू और कटहल के बीज बड़े उत्साह के साथ डाल रहे हैं। उनकी आंखों में संतोष और चेहरे पर मुसकान है। मधुर हास्य के साथ परोसी हुई वस्तुओं से संबंधित मनोरंजक बातें भी चल रही है। शिष्या तथा अन्य संन्यासी स्वामी के इस परिवर्तित रूप को देखकर मन ही मन विस्मित हैं। भोजन समाप्त होता है। वे उठकर हाथ धोने को बढ़ती हैं, किंतु स्वामी स्वयं उनके जूठे हाथों पर पानी उंडेलने लगते हैं। शिष्या को गुरु के इस व्यवहार से कुछ झिझक-सी होती है, तभी गुरु शिष्या के दोनों हाथों को तौलिये से पोंछने लगते हैं। "ऐसा तो मुझे आपके लिए करना चाहिए था स्वामीजी, आपको मेरे लिए नहीं।" शिष्या ने सहमते हुए विरोध किया। "ईसा मसीह ने तो अपने शिष्यों के चरण धोये थे" गुरु की शांत गंभीर वाणी से शिष्या चौंक पड़ती है, "लेकिन वह तो जब वे अंतिम बार मिले,"—गले में आकर यह बात अटक-सी जाती है। होंठ खुलते हैं बोलने के लिए, किंतु शब्द मुखरित नहीं हो पाते। वास्तव में वे अंतिम बार उनसे मिलीं।

शुक्रवार, चार जुलाई। स्वामी विवेकानंद आज बड़े सवेरे ही उठ गये हैं। बीमारी के बाद से इतने पहले शय्या त्यागने की आदत छूट-सी गयी थी। वे अपने कमरे से नीचे आते हैं, फिर संन्यासियों के साथ बैठकर ध्यान करते हैं। कुछ देर के बाद सभी के साथ चाय पीते हुए, अतीत की

छोटी-छोटी झलकियां प्रस्तुत करते हुए वे बातों में निमग्न हो जाते हैं। अचानक उन्हें कुछ याद आता है। वे काली मंदिर की ओर बढ़ जाते हैं। मंदिर में प्रवेश करने के बाद उसकी खुली खिड़की और दरवाजों को अंदर से बंद कर लेते हैं। यह उन्हें एकाएक क्या हो गया? ऐसा तो वे कभी नहीं करते थे। गुरुभाइयों और शिष्यों को आश्चर्य होता है। वे कुछ समझ नहीं पाते। करीब तीन घंटे बाद लोग उन्हें मंदिर की सीढ़ियों से धीरे-धीरे उतरते हुए देखते हैं। लगता है जैसे वे अपने चारों ओर के वातावरण से अछूते किसी दूसरे भावलोक में विचरण कर रहे हों। आंखें खोयी-खोयी हैं। होंठों से मां काली का एक भजन 'मन चल निज निकेतने' गुनगुना रहे हैं। उन्हें इस अर्ध-चेतन अवस्था में देखकर किसी को साहस नहीं रहा है कि उनके पास जाए या उनसे बातें करे। स्वामी मंद स्वर में भजन गाते हुए मठ के प्रांगण में टहलने लगते हैं।

रात्रि के आठ बजे हैं। हाथ में रुद्राक्ष की माला लिये हुए स्वामी आसन से उठते हैं। द्वार पर आज्ञा की प्रतीक्षा में खड़ा संन्यासी लपककर स्वामी की सेवा के लिए कमरे में आ जाता है। 'बड़ी गरमी है, जरा सिर पर पंखा तो झल।' कहते हुए स्वामी भूमि पर बिछे हुए अपने बिस्तर पर लेट जाते हैं। लेटते ही पलकें बंद हो जाती हैं। लगता है जैसे तुरंत उन्हें नींद आ गयी। संन्यासी पंखा झलता रहता है। लगभग एक घंटा बीतने को आया, किंतु स्वामी की निद्रा भंग नहीं हुई। कुछ अनहोनी-सी बात थी। इस प्रकार असमय तो स्वामी कभी नहीं सोते थे। शायद लेटे हुए ही समाधि-रत हो गये हों। संन्यासी सोचता रहा। नौ बजे रात्रि के भोजन के लिए नीचे बजती हुई घंटी की ध्वनि कमरे के शांत वातावरण को आलोड़ित कर गयी। संन्यासी की आंखें स्वामी पर केंद्रित हैं। स्वामी की दोनों भुजाओं में थोड़ा कंपन होता है। फिर दो बार क्षीण कराह के साथ गहरी सांसें—चौड़ा वक्ष फूलकर ऊपर उठता है, नीचे गिरता है, ऊपर उठता है, नीचे गिरता है। तत्पश्चात तकिये पर रखा सीधा सिर झटके के साथ बगल में झुक जाता है। अरे, यह सब क्या हो रहा है! संन्यासी भागता हुआ नीचे जाता है।

खबर मिलते ही मठ के दो प्रमुख संन्यासी, स्वामी प्रेमानंद और स्वामी निश्चयानंद विवेकानंद के कमरे में आते हैं और उनके पीछे-पीछे अन्य शिष्य, गुरुभाई आदि। स्वामी का शरीर नितांत निष्पंद और निश्चल है। दोनों गुरुभाई स्वामी के हृदय और कलाई पर अपनी अंगुलियां घुमा-फिरा कर कुछ टटोलने की कोशिश कर रहे हैं। उनके मुखमंडल पर स्वेदकण उभर आये हैं, किंतु वे अपने प्रयास में असफल रहते हैं। स्वामी के हृदय और नाड़ी की गति बंद हो गयी है। कठोर सत्य पर उन्हें विश्वास नहीं हो

रहा है। संभव है, यह निर्विकल्प समाधि का कोई दुष्कर रूप हो। जो भी हो, स्वामी की चेतना अब वापस आनी ही चाहिए। प्रेमानंद एवं निश्चयानंद गुरुदेव श्रीरामकृष्ण का पावन नाम स्वामी के कर्ण-कुहरों के पास उच्चरित करना आरंभ कर देते हैं। इसी बीच कलकत्ते के ख्याति-प्राप्त डॉक्टर आ पहुंचते हैं। वे स्वामी

इन पीड़ाओं, इन आंसुओं और भौतिक
सुखों से परे
जिस तट की महिमा को
ये रवि, शशि, उडुगन और विद्युत भी
अभिव्यक्ति नहीं देते
महज उसके प्रकाश का प्रतिबिंब लिये
फिरते हैं
ओ मां, मृगपिपासा से भरे स्वप्नों के ये
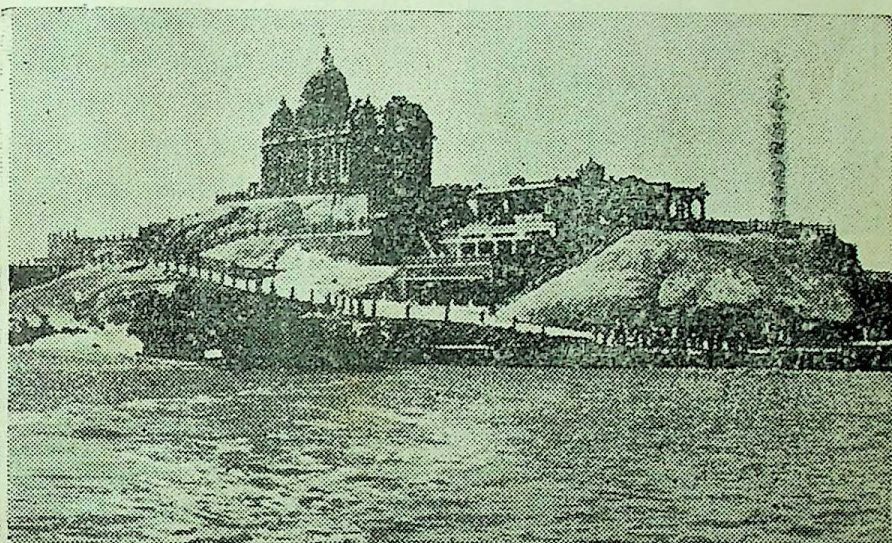
कन्याकुमारी में विवेकानंद-शिला-स्मारक

के शरीर की पूर्ण रूप से परीक्षा करते हैं। उनका निष्कर्ष है कि स्वामी की चेतना किसी हालत में नहीं लौट सकती।

सात साल पहले विवेकानंद ने मां काली से प्रार्थना की थी:

मां, मुझे उस तट तक पहुंचाओ
जहां ये संघर्ष न हों

आवरण
तुम्हें देखने से मुझे न रोक सकें
मेरा खेल समाप्त हो रहा है मां
ये श्रृंखला की कड़ियां तोड़ो
मुक्त करो मुझे!

आज मां काली ने उनकी यह प्रार्थना सुन ली। ●

अभिनंदन-ग्रंथ और ताजमहल

आजादी के बाद 'अभिनंदन-ग्रंथ समर्पण' की परंपरा किसी अमर बेल की तरह बड़ी तेजी से फूली-फली है। आजादी के पहले 'अभिनंदन-ग्रंथ समर्पण' के अपने कुछ अलिखित नियम थे, अलिखित नैतिक मूल्य थे। पर यह जमाना मूल्यों में क्रांतिकारी परिवर्तन का है, इसलिए यदि अभिनंदन-ग्रंथों के समर्पण के नियम और मूल्य भी बदल गये हों तो क्या आश्चर्य ! पहले कभी-कभी अभिनंदन-ग्रंथ समर्पित किये जाते थे। 'कभी-कभी' यों कि तब उनके पीछे अनेक विद्वानों की साधना होती थी, परिश्रम होता था, पर आज आये-दिन हमें अभिनंदन-ग्रंथ समर्पण समारोह के निमंत्रण मिलते रहते हैं।

इस 'बहती गंगा' में हाथ धोने आप क्यों चूकते हैं ? यदि आपकी जे[ब] गरम है तो आप भी बड़ी आसानी से स्[व] को अभिनंदन-ग्रंथ भेंट करवा सकते हैं (यों कुछ बुद्धिमानों ने स्वयं रसीद छपव[ा] कर, अभिनंदन-ग्रंथ के लिए 'फाइनें[स]' जुटाने का आसान रास्ता भी अपना[या] है।) हमने इस विधा में माहिर कु[छ] लोगों से भेंट करने तथा शोध करने [के] बाद एक आचार-संहिता तैयार की है।

आचार-संहिता के नियम निम्न हैं

१. अपने सम्मान में प्रशस्ति-पत्र लि[ख]वाइए। यदि वे आपको उच्चकोटि [के] न लगें तो उन्हें स्वयं लिख डालिए।
२. बड़े लोगों की विनम्रता बिलकुल भू[ल] जाइए और भूले से भी अपने दु[र्ब]लक्षणों की कहानी जबान पर न लाइए।
३. अभिनंदन-ग्रंथ में आपबीती लिख[ते] हुए आप महात्मा गांधी की 'आत[्म]कथा' को आधार मत बनाइए, क्यों[कि] 'सत्य के अनुभूत प्रयोगों' के नाम [प]र गांधीजी ने अपनी भूलों को खु[ले]आम स्वीकार किया है। आप[की] छोटी-से-छोटी कमजोरी का प्रका[श] सारे किये-कराये पर पानी फेर सक[ता] है। आपके ग्रंथ में प्रशस्ति-गाथा[ओं] का ही खजाना होना चाहिए।
४. अभिनंदन-ग्रंथ को कई खंडों में वि[भ]

जित कीजिए । यदि आप राजनीति के क्षेत्र में हैं तो उसमें समकालीन (विशेषकर दिवंगत) शीर्षस्थ नेताओं के साथ अपने घनिष्ठ संबंधों की चर्चा कीजिए और यदि साहित्यकार हैं तो समकालीन छोटे-बड़े साहित्यकारों से अपनी श्रेष्ठता का 'ढिंढोरा' पीटिए । भले आपने कोई कहानी न लिखी हो, या कोई कविता न रची हो, पर आप बड़ी आसानी से स्वयं को 'श्रेष्ठ, समर्थ साहित्यकार' घोषित कर सकते हैं।

५. अभिनंदन-ग्रंथ के लिए भारी-भरकम व्यक्तित्वोंवाला एक संपादक-मंडल बनाइए । संपादक-मंडल में बड़े-बड़े नामों का होना उन लोगों से आपका श्रेष्ठ होना अपने-आप सिद्ध करेगा ।

६. अभिनंदन-पत्र में कोई आलोचनात्मक अंश हो तो निर्ममता से काटिए, और अगर प्रशंसात्मक रचनाएं न हों तो उन्हें स्वयं लिखिए और अपने मित्रों के नाम पर प्रकाशित कीजिए ।

७. लेखों के चयन एवं संपादन के दौरान उनकी सामयिकता, उपयोगिता के बारे में रंचमात्र भी परेशान न हों, क्योंकि ऐसे अभिनंदन-ग्रंथों की न कोई सामयिकता होती है, और न कोई उपयोगिता । वे पढ़े नहीं जाते, सरसरी तौर पर देखे जाते हैं और 'शेल्फों का शृंगार' होते हैं । सही अर्थों में वे 'म्यूजियम' की शोभा बढ़ाते हैं । आपको इस बात की खुशी होनी चाहिए कि काल के अंतराल में यदि ये अभिनंदन-ग्रंथ कहीं बच भी गये तो उनके पृष्ठ वर्षों पूर्व किसी 'अजूबा लिपि' के प्रचलित होने का प्रमाण देंगे और शोध-छात्र सिद्ध कर सकेंगे कि उस सदी में जो लिपि लिखी जाती थी उसे आज तक कोई विज्ञ पाठक नहीं पढ़ सका है ।

८. अभिनंदन-ग्रंथ यदि समय पर पूरा न छप पाये तो निराश न होइए । कोरे कागजों की ही सुंदर जिल्द बंधवाकर, सोने या चांदी की पेटिका में रखवाकर उसे भेंट किया जा सकता है ।

हमारी राय में अभिनंदन-ग्रंथ आपके लिए ताजमहल से कम नहीं सिद्ध होंगे । यों ताजमहल किसी के वास्तविक प्रेम का प्रतीक है, पर अभिनंदन-ग्रंथ में आत्मानुभूति और आत्म-पांडित्य को अपने ही हाथों लिखकर छापाखाने में छपवाने, प्रूफ देखने, उन्हें सुंदर कागज में छपवाकर संगमरमरी कागज में रखने का संतोष है ।

और अंत में

...एक बार जब आप अभिनंदन-ग्रंथ पा चुकते हैं तो यदि आप लेखक हैं तो लेखन के क्षेत्र में, और यदि राजनीतिज्ञ हैं, तो राजनीति के क्षेत्र में रहने का प्रयोजन व्यर्थ है । कारण ?

कारण, ताजमहल तो बन चुका !

—अश्वमेध

सम्राट का प्रतिरूप

● गोविंदराम गुप्त

जुलाई २८, सन १९०० ई. । इटली के सम्राट उम्बर्टो (प्रथम) मांझा (मिलान के निकट) के एक भव्य होटल में भोजन कर रहे थे। सेनापति पांजियो वल्गिया उनके अंगरक्षक थे।

सम्राट भोजन तो कर रहे थे, किंतु उनका ध्यान एक प्रौढ़ व्यक्ति पर केंद्रित था। उसके बड़ी-बड़ी श्वेत और आकर्षक मूंछें थीं। वह परिचारकों को आदेश दे रहा था और सतर्कतापूर्वक व्यवस्था का निरीक्षण कर रहा था कि सम्मानित अतिथि की परिचर्या में कोई त्रुटि न हो जाए।

सहसा सम्राट ने सेनापति से कहा, "ऐसा याद पड़ता है कि मैंने इस व्यक्ति को पहले कहीं देखा है। उसे जरा यहां बुलाओ। मैं जानना चाहता हूं कि इससे पूर्व हमारी भेंट कहां हुई है।"

सेनापति ने उस व्यक्ति को इशारे से निकट बुलाया। उसने आकर अत्यंत नम्रतापूर्वक सम्राट को प्रणाम किया और प्रश्न सुनकर विनयपूर्वक निवेदन किया, "दास को क्षमा प्रदान हो। श्रीमान ने मेरी शक्ल कदाचित अपने आइने में देखी हो। सुनता हूं श्रीमान से मेरी आकृति बहुत मिलती है।"

सम्राट बोले, "यह सच है। निःसंदेह तुम्हारे चेहरे की आकृति बिलकुल मेरी जैसी है। कितना अद्‌भुत सादृश्य है! चेहरा, आकार, डीलडौल, सब कुछ समान! भला तुम्हारा नाम क्या है?"

"श्रीमान, मुझे उम्बर्टो कहते हैं। मेरा यह नाम इसलिए रखा गया था कि मेरा जन्म १४ मार्च, १८४४ को प्रातः १०-३० बजे हुआ था।"

"यही तो हमारा भी जन्मदिन और जन्म का समय है" सम्राट ने कहा, और पूछा, "तुम्हारा जन्म कहां हुआ था?"

"श्रीमान, मेरा जन्म-स्थान टूरिन है।" उसने उत्तर दिया।

"टूरिन तो हमारी भी जन्मभूमि है।" सम्राट विस्मयपूर्वक बोले और कुछ रुककर पूछा, "उम्बर्टो! तुम विवाहित हो?"

"श्रीमान, मेरा विवाह २ अप्रैल, १८६६ को हुआ था। मेरी पत्नी का नाम मर्घरिता है।" उम्बर्टो ने कहा।

"अरे! यही तो हमारे विवाह की भी तारीख है और सम्राज्ञी का जन्म-नाम भी मर्घरिता है।"

सेनापति यह सब सुनकर चकित थे। उन्होंने उत्सुकतापूर्वक पूछा, "क्या तुम्हारे कोई संतान है?"

उम्बर्टो ने उत्तर दिया, "मेरा एक

पुत्र है, नाम है विट्टोरियो।"

सम्राट भर्राये हुए स्वर में बोले, "युवराज का भी तो यही नाम है। बड़े आश्चर्य की बात है, हम लोगों की पहले कभी मुलाकात नहीं हुई। क्या तुम काफी अर्से से होटल चला रहे हो?"

"मालिक, मैंने यह होटल ९ जनवरी, १८७८ को खोला था।" उम्बर्टो ने बताया।

"यही तो हमारे राज्याभिषेक की भी तारीख है। वास्तव में इससे अधिक विचित्र बात क्या होगी? मैं तुमसे फिर यह पूछना चाहता हूं कि हम अब तक कभी मिले क्यों नहीं?" सम्राट ने कहा।

"श्रीमान, सेवक को क्षमा प्रदान करें। हम पहले मिले हैं। इस दास को दो बार श्रीमान के पास खड़े होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। प्रथम बार सन १८६६ में और दूसरी बार सन १८७० में। इन अवसरों पर हम दोनों वीरता के लिए सम्मानित हुए हैं।"

"तुम्हारे वक्ष पर जो पदक टंगा हुआ है, वह तुम्हारे सम्मान का प्रतीक है। मुझे उस समय तुम्हारा ध्यान ही नहीं रहा!" सम्राट ने आश्चर्य व्यक्त किया।

"प्रथम अवसर पर दास एक साधारण सैनिक था जबकि श्रीमान थे कर्नल। दूसरी बार जब हम साथ थे, श्रीमान रिसाले के कमांडर थे और सेवक सार्जेंट।" उम्बर्टो ने स्पष्ट किया।

सम्राट मेहरबान होकर बोले, "ऐसे विचित्र समागम का अवसर हमारे जीवन में पहले कभी नहीं आया।" कहकर वे विचारमग्न हो गए।

"क्या मैं आशा करूं कि दास पर श्रीमान की कृपा-दृष्टि सदैव बनी रहेगी? क्या प्रभु भविष्य में मुझे अपनी सेवा का अवसर प्रदान करने का अनुग्रह करेंगे?"

सम्राट उम्बर्टो और उनका प्रतिरूप

उम्बर्टो ने विनयपूर्वक कहा।

"अवश्य! भविष्य में हम जब भी मांझा आयेंगे, तुम्हारा आतिथ्य स्वीकार करेंगे।" सम्राट ने आश्वासन दिया और पूछा, "क्या व्यायाम और खेलकूद में भी तुम्हारी अभिरुचि है?"

उम्बर्टो ने उत्तर दिया, "कल स्टेडियम पर, खेलकूद के पारितोषिक-वितरण के अवसर पर दास प्रभु की सेवा में उप-

आगामी अंक में

- स्वर्गीय जयशंकर प्रसाद के जीवन के अनेक मार्मिक प्रसंगों का उद्घाटन करनेवाली नयी लेखमाला

छायावाद—मन्वंतर के मनु

- प्रसिद्ध समालोचक डॉ. नगेन्द्र का आत्म-साक्षात्कार

मैंने जीवन को मात्र भोगा नहीं है !

- दो दिलचस्प यात्रा-वृत्त

—यात्रा अफ्रीका की
— मेरी यूरोप - यात्रा

रामदरश मिश्र और अनीता राकेश की कहानियां

स्थित होगा ।"

सम्राट ने कहा, "बहुत ठीक ! कल हम तुम्हारी प्रतीक्षा करेंगे और तुम्हें एक विशेष उपाधि से विभूषित करेंगे।"

होटल का मालिक वहां से गया तो सम्राट ने सेनापति से कहा, "मेरा विचार है कि मैं इसे कल उत्सव के समय 'इटली के सम्राट का अश्वारोही' उपाधि प्रदान करूं। इस संबंध में समुचित व्यवस्था करो ।"

दूसरे दिन स्टेडियम पर, पारितोषिक-वितरण के समय सम्राट अपने प्रतिरूप की उत्कंठापूर्वक प्रतीक्षा करते रहे, किंतु वह कहीं भी नजर नहीं आया। सम्राट ने व्यग्र होकर सेनापति को आज्ञा दी, "उम्बर्टो को शीघ्र पेश करो।"

सेनापति ने अधीर होकर निवेदन किया, "श्रीमान, मुझे प्रभु को यह सूचना देते हुए घोर दुख हो रहा है कि आज प्रातः होटल के मालिक की मृत्य हो गयी। पुलिस को संदेह हुआ कि उसने आत्महत्या कर ली है, लेकिन खोज से पता चला कि अकस्मात बंदूक चल गयी और इस प्रकार दुर्घटनाग्रस्त होने से उम्बर्टो की मृत्यु हो गयी।"

"बड़े ही शोक की बात है। जरा पता लगाओ, उसकी अर्थी कब उठेगी। हम उसे कंधा देना चाहते हैं।" सम्राट ने कहा। उनकी आंखों में आंसू भर आये थे।

यह चर्चा चल ही रही थी कि एकाएक "बैंग, बैंग, बैंग !" गुप्त-घातक की दागी हुई बंदूक की तीन गोलियां सम्राट के लगीं, जिनमें से दो उनके हृदय को पार कर गयीं। तत्काल सम्राट की मृत्यु हो गयी और उनका शरीर टूटे हुए वृक्ष की भांति धरती पर गिर पड़ा। सम्राट की मृत्यु के साथ समानता की अत्यंत विचित्र शृंखला की समाप्ति हुई।

—बी ७३, राजेन्द्र मार्ग, बापूनगर, जयपुर-३०२००४

जुड़वां युवतियों का रहस्य

• मालती शंकर

बी. एस-सी. (होम साइंस) का एक कालेज ! पीरियड फ्री है इसलिए लड़कियां मौज में हैं। मीनू पानी पीने बाहर जाती है। कुछ देर बाद अन्य लड़कियां चौंककर कहने लगती हैं और एक-साथ चीख उठती हैं—"मीनू, तूने ये कपड़े क्यों बदल लिये ?" कोई यह पूछने लगती है कि तूने हेयर स्टाइल क्यों बदल डाला। "अभी-अभी तो तू गयी थी, और इतनी जल्दी लौट भी आयी ?" दूसरी पूछती है।

इन सवालों की बौछार से ठिठकी खड़ी लड़की अब खिलखिलाकर हंस पड़ती है—"मैं मीनू नहीं बीनू हूं।" अब उन छात्राओं के ठिठकने की बारी है।

उपर्युक्त दृश्य किसी फिल्म या उपन्यास में से नहीं है। यह सत्य घटना है लेडी हार्डिंग कालेज में जो दो वर्ष पहले घटी थी। मीनू तब बी. एस-सी. (होम साइंस) में थी। दोनों बहनें जब नर्सरी में पढ़ने जाती थीं तब उनकी मां उनके माथे पर पट्टियां बांधकर उन पर दोनों के नाम लिख दिया करती थीं। नाटकों में दो गुलाबों की भूमिका करनेवाली कलियां अब स्मार्ट टीनएजर्स में बदल चुकी हैं।

मेरे सामने दोनों बतिया रही थीं। एक ने कहा, "बाहर हम दोनों निकलते हैं तो लोग कहते हैं 'अरे! देखो तो दोनों एक-सी हैं।' बड़ा अजीब लगता है हमें तब ! इसीलिए हमने अलग-अलग रंग के कपड़े पहनना शुरू किये।" इनमें से एक ने बाल कटा लिये हैं।

बीनू बताती है—'मीनू जब द्वितीय वर्ष में पहुंची तब मैंने भी होम साइंस में एडमीशन ले लिया। सीनियर लड़कियां रैगिंग करने के खयाल से मुझे बुलातीं तो मैं झट कहती कि मैं मीनू हूं, बीनू नहीं। बेचारी सीनियर्स! 'सॉरी' कहकर चल देतीं। दोनों बहनें इस पर खिलखिलाकर हंस पड़ीं। बातचीत का लहजा ही नहीं,

मीनू या बीनू — पहचानना मुश्किल है

दोनों की हं[illegible] कभी-कभी दोनों एक जैसी बातें सोचने लगती हैं।

श्रीमती दुग्गल बताने लगीं—"एक बार मैंने कहीं जाने के लिए मीनू से पूछा कि कौन-सी साड़ी पहनकर जाऊं। उसने एक साड़ी पसंद कर दी। कुछ देर बाद बीनू आयी। मैंने उससे पूछा, तो उसने भी वही साड़ी पसंद की। दोनों के शौक तो एक-से हैं, बस आदतों में इतना अंतर अवश्य है कि बड़ी लड़की अधिक गंभीर है। छोटी मीनू बचपन में उसका खिलौना छीन लेती तो वह बेचारी चुप हो जाती, वरना दोनों की पसंद एक और दोस्त एक।"

मैंने जुड़वां बच्चों के इन माता-पिता से उन बच्चों के विवाह के बारे में पूछा तब उन्होंने कहा कि एक घर में हम बच्चों का विवाह नहीं करना चाहेंगे। जो माता-पिता अपने ऐसे बच्चों का विवाह कर चुके थे, उन्होंने केवल यह उत्तर दिया कि हमें एक घर में ऐसे उपयुक्त पात्र नहीं मिल पाये, अतः कोई विशेष प्रमाण नहीं जुटा सकी।

विदेशों में इस विषय में काफी अध्ययन हुआ है। कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के मनोचिकित्सा विभाग के डॉक्टर शॉरलॉट टेलर ने ऐसे ६० जोड़ों का अध्ययन किया है जिनमें जुड़वां बहनें जुड़वां भाइयों को ब्याही हैं।

एक सुबह अखबार में विवाह के जोड़े की दो तसवीरें प्रकाशित हुईं। तसवीरें [illegible] थीं पर जोड़ा एक ही लग रहा था! लोगों को भ्रम हुआ कि शायद प्रमादवश एक ही चित्र दो बार छप गया है। चित्र-परिचय पढ़ने पर स्थिति स्पष्ट हुई कि जुड़वां बहनों के ये जुड़वां पति हैं। अब तो चर्चा चल निकली।

डॉ. टेलर द्वारा प्रस्तुत सर्वेक्षण के अनुसार इस तरह के ६० जोड़ों में ५४ का विवाह सफल रहा (पश्चिमी समाज को देखते हुए यह आंकड़ा चौंकानेवाला है)। डॉ. टेलर को पता चला कि ऐसे जोड़े अधिकतर एक ही स्थान पर रहते हैं, और अपनी आय, कार, काम-काज तथा बच्चे तक शेयर करते हैं। बच्चों को लेकर माता-पिता में स्पर्धा या छोटे-बड़ेपन की भावना नहीं रहती, लेकिन यौन संबंधों में वे मुक्त न होकर पारंपरिक ही हैं।

प्रायः देखा जाता है कि जब दो सामान्य युगल पास-पास रहते हैं तो दोनों में विवाहेतर आकर्षण की संभावना रहती है, अतः धारणा बनती है कि हमशक्ल युगलों में ऐसी संभावना अधिक होगी। रॉबर्ट ए. रैविक्लस की शोध के अनुसार ऐसा नहीं है क्योंकि जुड़वां बहनों या भाइयों के बचपन से ही साथ-साथ रहने के कारण उनमें अत्यंत प्रेम होता है जबकि सामान्य युगलों में ऐसा नहीं होता। एक बड़ा लाभ यह है कि जुड़वां-युगलों में से किसी एक के ही बच्चा है तो दूसरे युगल को एकाकीपन नहीं महसूस होता।

जुड़वां बच्चों के संबंध में सदैव से

कुछ न कुछ प्रयास करते रहे हैं। एक समय ऐसा था कि जापान, आस्ट्रेलिया तथा अफ्रीका की कुछ जन-जातियों तथा एस्किमो लोग जुड़वां बच्चों में से छोटे बच्चे को मार डाला करते थे। भारत इस दृष्टि से सदैव उदार रहा है। नर-बलि का प्रचलन रहने के बावजूद लव-कुश को सदैव एक-सा दुलार मिला।

चिकित्सकों का कहना है कि जुड़वां बच्चों का जन्म उनकी मां की जैविक प्रक्रिया पर निर्भर होता है। सर्वेक्षण के अनुसार मां की अवस्था ३५ तथा ४० के मध्य होने पर उसके जुड़वां बच्चे होने की अधिक संभावना होती है। नीग्रो जातियों में अधिक जुड़वां बच्चों का जन्म होता है। नाइजीरिया की योरुबा (Yoruba) जाति का दावा है कि २० में से एक बार जुड़वां का जन्म हो ही जाता है।

भारत के संबंध में विशेष आंकड़े तो नहीं प्रस्तुत किये जा सकते, पर एक अनुमान अवश्य लग सकता है। दिल्ली के सफदरजंग अस्पताल में १९७३ में जन्मे बच्चों के संबंध में कुछ आंकड़े इस प्रकार हैं—

कुल बच्चे ८,६५५, जुड़वां बच्चे ९३, लड़के ९२, लड़कियां १९२, प्रसव संख्या ९००१, एवं स्टिल बर्थ (मृत प्रसव) ४४६। यद्यपि जुड़वां बच्चों की शकलें आपस में मिलती ही हैं, पर कुछ बिलकुल हमशक्ल होते हैं और कुछ एकदम एक दूसरे से उलटे। लखीमपुर-खीरी के एक वकील श्री लक्ष्मीनारायण आगा के दोनों बेटे जब पहली बार देखे तब पता चला कि वे तो जुड़वां हैं और सगे भाई हैं। इनमें से एक वकील हैं तथा दूसरे प्रोफेसर, यानी रुचियों में अंतर! ऐसा क्यों होता है? इस पहेली को सुलझाने में डॉक्टर टेलर को काफी प्रयास करना पड़ा।

एक-सी दो कलियां—बड़ी होकर भी एक-सी ही रहीं

डॉ. टेलर ने जुड़वा बच्चों को दो

भागों में विभाजित किया है—मोनो-जाइगाटिक (Monozygotic) यानी हम-शकल, और डिजिगॉटिक (Dizygotic) यानी साथी।

हमशक्ल बच्चे तब होते हैं जब गर्भाधान के बाद स्त्री-अंडाणु दो समान कक्षों में बंट जाता है और किन्हीं अज्ञात कारणों से सारे क्रोमोसोम ठीक दो भागों में बंट जाते हैं, यानी दो भ्रूण पलने लगते हैं। ये बच्चे अधिकतर एक ही लिंग (सेक्स) के होते हैं। 'साथी' तब होते हैं जब दो अंडस्थापना एक ही समय में हो जाती है और दोनों ही एकसाथ उर्वरित हो जाते हैं। बचपन में इन बच्चों की शकलें एक-सी जरूर लगती हैं, पर बड़े होकर अंतर आ जाता है। जुड़वां में २० प्र. श. हमशकल और ८० प्र. श. 'साथी' होते हैं।

ये हमशक्ल बच्चे ऐसे लगते हैं मानो सांचे में ढली दो कलाकृतियां हों। रूप ही नहीं, आदतें, स्वभाव और स्वास्थ्य भी एक–जैसा होता है। एक बीमार हो तो दूसरे को भी वही बीमारी होती है, चाहे वह उससे कोसों दूर हो। डॉक्टरी जांचों से पता चला है कि ऐसे बच्चों की दिमागी बनावट बिलकुल एक-सी होती है और अकसर वे एक ही बात सोचते या बोलते हैं। उदाहरणार्थ, डेबी और बेकी दो जुड़वां बेटियों के पिता बताते हैं कि एक बार बेकी के चोट लग गयी। जब उसका प्लास्टर छुड़ाया जाने लगा तब बेकी तो दर्द दबा गयी पर डेबी अपने कमरे में पलंग पर पड़ी दर्द से कराहती रही।

एक जुड़वां बहन, जो अपना नाम लिखाना नहीं चाहतीं, बताती हैं कि उनकी और उनकी बहन की शकलें इतनी ही मिलती हैं जितनी बहनों में मिलना चाहिए। रुचियों और स्वभाव में बिलकुल अंतर है, किंतु छोटी यदि आगरे में बुखार से जलती है तो बड़ी लखनऊ या रुड़की में। एक बार बड़ी छोटी के घर गयी कि प्रसव के अवसर पर उसकी संभाल करेगी किंतु इधर तो छोटी को प्रसव पीड़ा शुरू हुई उधर बड़ी की भी बिना बात वही हालत होने लगी। असली मोनोजाइ-गॉटिक कौन है, यह पता करना इतना आसान नहीं है। यूं इसकी एक महत्त्वपूर्ण कसौटी यह है कि यदि एक की खाल दूसरे में ग्राफ्ट की जाए तो ठीक बैठती है। आंतरिक अंग भी बदले जा सकते हैं।

जुड़वां बच्चों का एक और रूप है, वह है उनका शारीरिक रूप से जुड़ा होना, जिन्हें चिकित्साशास्त्र में पाइगोपेगस (Pygopagous) कहते हैं।

सन १८११ में स्याम देश में जन्मे चंग और एंग बंकर ऐसे ही दो भाई थे जो बासठ वर्ष तक जिए। सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि शारीरिक रूप से जुड़े होने पर भी उन्होंने दो बहनों से विवाह किया और दोनों के २२ बच्चे हुए। वैसे दोनों काफी सुखी और समृद्ध

थे। आज ऐसे जोड़ों को स्यामी ट्विन (Siamese Twin) कहा जाता है। सबसे लंबा दीर्घ जीवन जीनेवाले हैं नार्वे के गुल ग्रांट और मोर्टकार्ड, जिन्होंने १०० वर्ष से अधिक उम्र पायी।

भारत की जो जुड़वां बहनें बहुत मशहूर हुई हैं उनके नाम हैं—गंगाम्मा और गौराम्मा। उनका जन्म १९१० में भापसूर के एक ग्राम अरिकेरि में हुआ। कूल्हे से जुड़े इन बच्चों को देखकर माता-पिता डर गये। वे उन्हें भापसूर महाराज के दरबार में ले गये। कहते हैं, उन्होंने रहम करके बच्चियों को चिड़ियाघर में पलने के लिए भेज दिया। जब ये बच्चियां दस वर्ष की हुईं तब श्री के. एस. शेट्टी नामक एक सज्जन इन्हें अपने साथ ले गये। श्री शेट्टी की व्यवसायकुशल बुद्धि ने इन्हें हुबली की प्रदर्शनी में प्रदर्शित किया और शर्त लगायी कि जो यह सिद्ध करेगा कि ये बाह्य रूप से जोड़ी गयी हैं, उन्हें १०,००० रुपये का पुरस्कार मिलेगा। उन्हें पेरिस ले जाया गया। उन्हें देखने के लिए काफी भीड़ जमा हो गयी थी। १९५२ में दोनों पक्षाघात के कारण कुछ ही अंतर से स्वर्गवासी हो गयीं।

आश्चर्यजनक बात यह है कि इन जुड़वां बच्चों के चक्कर में एक रूसी फेडर वेसलिटे की पत्नी ने २७ बार में ६९ बच्चों को जन्म दिया जिनमें १६ बार दो-दो, सात बार तीन-तीन और चार बार चार-चार बच्चे हुए। यूं तो आमतौर पर जुड़वां बच्चों का जन्म कुछ मिनटों या घंटों के अंतर से ही होता है पर कभी-कभी कुछ दिन या सप्ताह तक लग जाते हैं। ओहिओ (अमरीका) में एक मां ने पहले एक लड़के को जन्म दिया और ४८ दिन बाद दो जुड़वां लड़कियों को। वजनी बच्चों में डरबीशायर की एक महिला बाजी मार ले गयीं। उनके

हमशकल बहनें

जुड़वां बच्चों में बड़े का वजन १७ पौंड ८ औंस था, और छोटे का १८ पौंड।

लगभग एक दशक पहले कुछ महिलाओं को गर्भाधान के लिए हारमोंस दिये गये थे, किंतु मात्रा आदि की गड़बड़ी के कारण एक की जगह ५-५, ६-६ बच्चे हुए। शीघ्र ही डॉक्टरों ने सही मात्रा पहचान ली जिससे कोई गलत असर न पड़े। वैसे भी आज चिकित्सा-विज्ञान,

बहुत आगे बढ़ गया है। पिछले दो वर्षों में ऐसे तीन सामान्य शिशु भी इस संसार में आ चुके हैं जिनका जन्म परखनलियों में किया गया और विकास के लिए उन्हें माताओं के गर्भ में रखा गया। यद्यपि लीड्स विश्वविद्यालय के प्रोफसर डगलस डेविस ने कहा है कि ये तीनों जन्म किसी चिकित्सा सफलता के कारण नहीं, वरन 'भाग्य' के कारण हुए हैं। क्या इसे हम प्रोफेसर साहब की विनम्रता मानकर विज्ञान का करिश्मा नहीं कहेंगे?

प्राकृतिक रूप से जुड़वां न हो सके, ऐसी कोई गोली अभी नहीं निकल पायी है। एक्स-रे द्वारा जन्म से पहले बताया जरूर जा सकता है कि क्या गर्भ में जुड़वां हैं। जुड़वां होना 'इत्तफाक' या 'भाग्य' जरूर माना जा सकता है और माताओं ने यह भी स्वीकार किया है कि शुरू के कुछ महीनों को छोड़कर जब दोनों आधी रात को एकसाथ 'हुआ' 'हुआ' कर रो उठते हैं, या बीमार पड़ते हैं, जुड़वां को पालने में आसानी होती हैं क्योंकि दोनों एक-दूसरे से खेलते रहते हैं किंतु इसी के साथ अनेक समस्याएं भी उठ खड़ी होती हैं। युवराज के जन्म पर इस बात का विशेष ध्यान रखना होता होगा कि यदि दो हैं तो कौन बड़ा। फिर हमशक्ल और एक ही लिंग के बच्चों को एक ही समझकर उनके साथ व्यवहार किया जाता है। इससे उनके प्रथक व्यक्तित्व का विकास अवरुद्ध हो जाताा है। घरवाले ही नहीं, वाहरवाले भी तो उन्हें अकसर एक-सा ही समझते हैं। डेवी और बेकी के पिता बताते हैं कि जब उनकी बेटियां सात वर्ष की थीं, एक पड़ोसी छोटा लड़का टिमोथी-परिवार की लड़कियों का दोस्त बन गया। एक बार लड़के ने अपनी मां से स्वीकार कि उसने दोनों में से एक को चूमा है। "किसे ?" मां ने पूछा। "मुझे नहीं पता, पर फर्क ही क्या पड़ता है! दोनों बिलकुल एक हैं।"

यदि मां-बाप या वाहरवाले एक की तुलना दूसरे से करने लगते हैं तो एक का व्यक्तित्व दूसरे पर हावी हो उठता है। तब प्रश्न उठता है कि क्या दोनों को एक स्कूल में पढ़ाना चाहिए, एक-सा पहनाना चाहिए . . .

शिक्षाशास्त्री इस प्रश्न का अभी कोई निश्चित उत्तर नहीं दे सके हैं। पर हां, मैंने नर्सों के लिए जुड़वां बच्चों की मां को ये कहते जरूर सुना है, "कपड़े अलग-अलग डालिएगा वर्ना दवा और घुट्टी एक को दो बार दे जाएगी, दूसरा रह ही जाएगा।"

—३४, नार्दर्न रेलवे कालोनी, सरदार पटेल मार्ग, नयी दिल्ली

मंत्री महोदय ज्योतिषी को अपनी जन्मपत्री दिखा रहे थे।

ज्योतिषी ने कहा, "और सभी ग्रहों का चक्कर तो अब दूर हो गया, लेकिन यह 'सत्याग्रह' पीछे पड़ा रहेगा . . ."

छाया : प्रेम कपूर

दो जुड़वां बहनें--मीनू और बीनू
एक-दूसरे के बिना पहचान मुश्किल है।
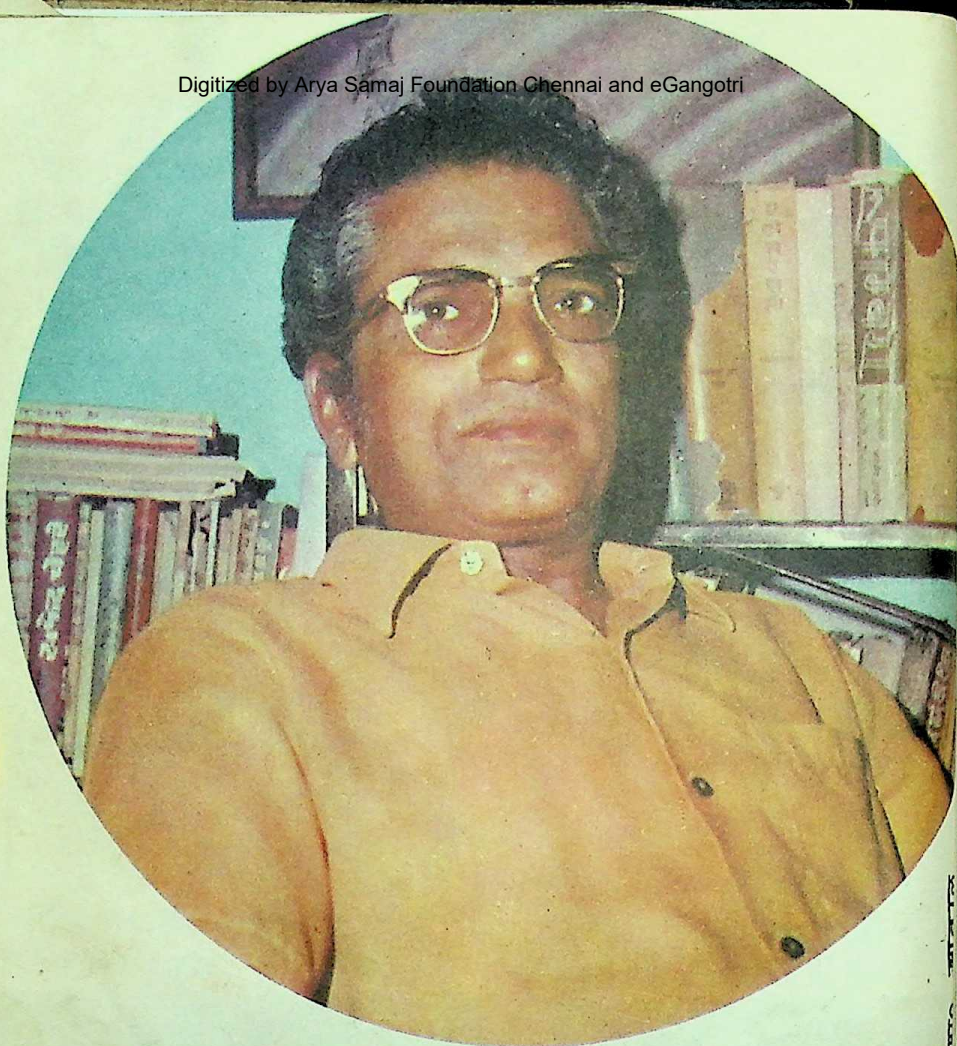
जीवन के उत्तरकाल में पहुंचकर सारे अक्षांश-देशांतर कैसे दूर चले गये लगते हैं! कैसे अपने चारों ओर उदास पगडंडियां, पेड़ों की आड़ी-तिरछी परछाइयों, फाल्गुनी पीले पत्तों के ढेर पर पैसिफिक समुद्र की परियों-सी बैठी हुई धूप, गुलाब की जलाकुल क्यारियां, खिड़कियों पर हवाहीन वातावरण में दंडित भाव से लटके हुए पर्दे ही पर्दे घिरे लगते हैं! समय के बीत जाने पर कैलेंडरों के तिथिमुखों की चमक कैसी उतर जाती है! और तो और, नाम की गरमी तथा उसकी वह आत्मगंधा भाप तक कैसी पुस्तकीय लगती है!

आत्म-साक्षात्कार

मैं मिथुन-लग्नी

● श्री नरेश मेहता

आयु, अनुभव और असफलताओं के इस द्वीप पर पहुंचकर सब शेष हुआ लगता है। कैसे प्रतीक्षाहीन-प्रतीक्षा में खिचे हुए एकांत रास्ते आप तक मौन चलकर आते हैं, जिन पर एकांत धूप और अनाम वनपाखी इन निर्जन पथों को सजीव करने की चेष्टा करते होते हैं। अरण्य बोलने का आभास देता है तथा आकाश उड़ने का, अन्यथा हवाओं की तेज सीत्कारी तथा सागर के पछाड़-घोष के अतिरिक्त न कोई शब्द, न यात्रा। आप अपने ही पैरों चलकर इस द्वीप तक आये हुए होते हैं। आपके और शेष समकालीनता के बीच की सारी रागात्मिकाओं, प्रतिद्वंद्विताओं, जयकारों के बीच तापस एकांत समुद्र कैसा ठाठें मार रहा होता है! ऐसा लगता है कि न जाने कितने वांछित, अवांछित, ज्ञात-अज्ञात द्वीपों, महाद्वीपों तथा प्रायद्वीपों की सफल-असफल यात्राएं कर अगत्या कैसे इस छोटी-सी काटेज में आ पहुंचे हैं, जहां यात्राओं ने आपको एक निरीह राबिनसन क्रूसो की संज्ञा देकर आपके चारों ओर स्मृतियों तथा गाथाओं की शंख-सीपियां बिखरा दी हैं। आप चाहें तो इनसे शंख-मुकुट, सीपी-संसार अथवा शंख-सृष्टि तक निर्मित कर सकते हैं। कैसी भयावह है रचनात्मकता की यह अनंतता! जब राबिसन क्रूसो की भांति आपके लिए सारा वर्तमान, सारी समकालीनता और सारा अतीत केवल चमकदार पत्थरों की अर्थहीनता, भाषाहीनता में बिखर उठे, तब अपने भीतर कैसा नारियल के अकेले वृक्ष-सा लगता है कि समुद्र की सारी खारी हवाएं, आंधियों-तूफानों के तेज पंजे

आपकी देह और मन झेल रहे होते हैं। आकाश के उस अगाध गुंबद को उठाये अकेला नारियल क्या ग्रीक-गाथाओं के सरल वयस्क एटलस-सा नहीं लगता ? प्रत्येक युग में मनस्वी की यही नियति रही है ? कभी अपनी महत्त्वाकांक्षाओं के अकेले सागर-तट पर खड़े होकर उन दिशाओं की ओर के आकाश तथा क्षितिज को देखा है जहां सफलताएं समकालीनों के रूप में प्रसन्नचित्त सुगंधित हुई रहती हैं ? सफलता स्वयं ही एक उत्सव होती है। उस पार संपन्न हो रहे समकालीनता के उत्सव को इस एकांत-तट से खड़े होकर पुकारने से क्या होगा ? बंधु ! औत्सविकों की नसों में सफलताएं प्रवाहित होती हैं।

अपने में लौटना कितना खतरनाक !

और आप तब घिरती सांझ में परदे खींच लेते हैं। जो थोड़ी-बहुत द्वीपीय विपुलता थी वह अब परदों के खींच लिये जाने पर और भी समाप्त हो जाती है। आप पूरी तरह से अपने में लौट आते हैं। लोग नहीं जानते कि इस तरह अपने में लौट आना कितना खतरनाक हुआ करता है ! अब केवल इस टूटी-फूटी काटेज में आप, आपके पैरों की उत्तरकालीन आहट, मोमबत्ती का कांपता प्रकाश तथा इस कांपते प्रकाश में दीवारों-फर्शों पर नाचती, डराती विविध आकृतियां ग्रहण करती चीजें ! चीजें कभी-न-कभी अपने वास्तविक आकार उतारकर कुछ ऐसे स्वरूप और अस्तित्व ग्रहण कर लेती हैं जो उन्हें अज्ञात, अनबांची पांडुलिपि के पृष्ठों में बदल देती हैं, और आप अपनी उस एकांत काटेज में चीजों के उन भाषाहीन शिलालेखों में से एक बन जाने के लिए कैसे बाधित लगते हैं !

यही रचनाकार का वह भग्न संसार होता है जहां केवल स्मृतियां भाषाहीन, अर्थहीन तथा संदर्भहीन रूपों में फैली हुई होती हैं और जिन पर बैठा हुआ वह कभी कापालिक, कभी अघोरी, कभी मांत्रिक तो कभी ऋषि लगता है। कभी किसी

लेखक के साथ हैं 'अपनी ही नायिका' महिमा, पुत्र ईशान तथा पुत्री वान्या
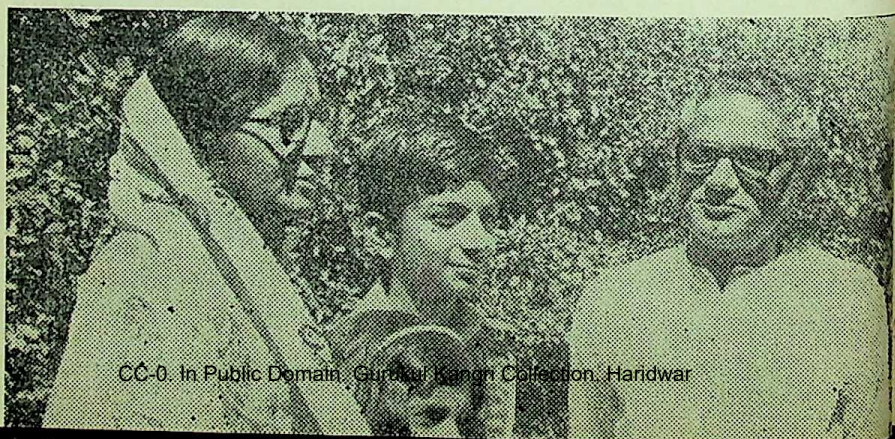
तलघर से आती कोई आवाज सुनी है? उस आवाज का न कोई शब्द होता है और न कोई अर्थ, बल्कि उसमें भाषा के टूटने की कराह होती है।

तुम तक रचनाएं एक फूल, एक गंध, एक राग, एक मुद्रा, एक उत्सव बनकर आएंगी और तुम्हें उसी से संतुष्ट होना चाहिए। राबिनसन क्रूसो को अकेले कठ-फोड़वे की भांति जंगलों, एकांतों में भट-कने दो। सहज और साधारण ही नहीं बल्कि सफल व्यक्ति भी कभी उन जंगलों की ओर नहीं जाया करते, क्योंकि उन जंगलों से व्यक्ति नहीं रचनाएं ही लौटा करती हैं।

जीवन के इस महाभारत की अठारहवीं संध्या पर युद्धहीनता की स्थिति में खड़े होकर वितृष्णा न भी सही तो भी एक वैचारिक ठंडापन, पुरुषार्थ की अपात्रता, मानवीय उष्मा की निरर्थकता यदि अनु-भव हो तो क्या बहुत गलत होगा? जब मानवता, व्यक्तित्व आदि के अर्थ, पदार्थ और वस्तुओं के पर्याय भर बनकर रह जाएं तब क्या ऐसा नहीं लगता है कि आप ही माघ के वह अंतिम शेष जीर्ण-पत्र हैं जिसके न झरने के कारण सारा वसंत और उसका वह उत्सवप्रिय पुष्प-सार्थ रुका हुआ है। माघ और फाल्गुन के बीच आप ही वह अवरोध-पत्र हैं जिसे झरना है। अस्तु।

नरेश मेहता बनाम श्री नरेश मेहता

इस सारी स्थिति को देखकर मुझे व्यक्ति नरेश मेहता से सदा सहानुभूति रही है। पर इससे होता क्या है? किसे दोष दिया जाए और क्यों? महत्त्वाकांक्षा, अव्याव-हारिकता तथा स्वप्नदर्शिता किसी को किस खतरनाक स्थिति में सरे आम पहुंचा देते हैं, इसके प्रमाण हैं कवि श्री नरेश मेहता; और शालीन समर्पण, वैष्णवी संकोची व्यक्तित्व किसी को कैसे दिन-दहाड़े संपूर्ण अप्रासंगिक बना देते हैं, इसके उदाहरण हैं व्यक्ति नरेश मेहता।

देवताओं में शंकर एकमात्र मिथन-

प्रेम प्रसंग : बाहर जाने के दिन बीत चुके!

लग्नी हैं। मिथुनलग्नी द्विस्वभावी होता है। आज जिन्हें नरेश मेहता की संज्ञा से जाना जाता है वस्तुतः उनका नाम है पूर्णशंकर और वे मिथुनलग्नी हैं। सती का शव उठाये शिव जिस प्रकार परिक्रमा पर निकले थे, कहीं ऐसा तो नहीं कि वृश्चिक राशि के कवि श्री नरेश मेहता, कन्या राशि के पूर्णशंकर अर्थात नरेश मेहता को शववत ही कंधे पर उठाये-उठाये जीवन-यात्रा कर रहे हों? वैसे यह असंभव भी नहीं है, क्योंकि नरेश मेहता ने श्री नरेश मेहता के वर्चस्व, उदात्तता, अक्खड़पन और जिद के सामने सन १९४० से ही आत्म-समर्पण करना शुरू कर दिया था। मुझे वह प्रथम घटना याद है जब अपने चाचाजी से पंद्रह दिनों के भीतर ही दोबारा सौ रुपये मंगवाये तब रुपये भेजते हुए कूपन पर उन्होंने जो एक वाक्य लिख भेजा था उसे नरेश मेहता ने तो बिलकुल उचित माना था परंतु कवि श्री नरेश मेहता ने उसे अपना अपमान माना और उसके बाद फिर कभी न चाचाजी और न उनकी संपत्ति की ओर देखा। पिता के शांत वैष्णव संस्कार तथा चाचाजी के राजस शैव व्यक्तित्व ने नरेश मेहता और श्री नरेश मेहता का विरोधी भाव-भूमियों पर निर्माण किया।

पैतृक संपत्ति और पूर्वजों का मालवा छोड़ते समय दूसरों ने तथा नरेश मेहता ने भी विवेक, दूरदर्शिता तथा व्यावहारिकता का ही परामर्श श्री नरेश मेहता को दिया होगा, परंतु जब एक दिन कुल-गोत्रहीन, बंधु, बांधवहीन काशी के अपरिचित परिवेश में श्री नरेश मेहता ने नरेश मेहता को वस्तुतः एक भिखारी की स्थिति में ला खड़ा किया तब नरेश मेहता के लिए सिवा समर्पण के और कौन-सा मार्ग था? रेडियो में किस प्रकार नरेश मेहता गये, यह तो मैं जानता हूं। मां की एकमात्र अंगूठी बेचकर दिल्ली इंटरव्यू के लिए गये थे। निश्चित ही कवि श्री नरेश मेहता कभी ऐसा नहीं करते। नौकरी, सुख-सुविधा, व्यक्तित्व की गंगा के लिए प्रशांत मैदान होते हैं। नदी मैदान में ही तो कुल-कुटुंब-वाली मातृपदी होती है। जल, मैदान के संपर्क में आकर ही आरण्यक वानस्पतिकता के स्थान पर फसलों की सामाजिकता ग्रहण करता है। लखनऊ के उन दिनों में नरेश मेहता भी कुछ ऐसा ही प्रशस्त अनुभव करने लगे थे, परंतु वर्चस्वी श्री नरेश मेहता भी चुप नहीं थे। यह वह राजनीतिक युग था जब कम्युनिस्ट होना खतरे की घंटी था और श्री नरेश मेहता घोषित रूप से कम्युनिस्ट हो गये। नतीजा स्पष्ट था कि कई जगह भटककर अगत्या रेडियो छोड़ना पड़ा।

लेकिन अभी भी श्री नरेश मेहता को व्यवस्थित देखने की कामना उनके भाई श्री नन्दकिशोर भट्ट, संसद-सदस्य के मन में थी, इसीलिए वे उन्हें सीधे दिल्ली ले गये और गांधी-स्मारक-निधि

में पूरे सम्मान के साथ काम भी दिलवाया। नरेश मेहता को विश्वास नहीं था कि श्री नरेश मेहता यहां टिक सकेंगे और हुआ भी वही। कुछ ही महीनों में निधि से भी पल्ला झाड़कर अलग हो गये। इस बार भाई ने एक मजदूर साप्ताहिक का आयोजन मात्र इसलिए करवाया कि श्री नरेश मेहता निश्चित होकर लेखन कर सकें। इस बीच सहसा श्री नरेश मेहता ने विवाह का निर्णय ले लिया, जो सबको कई कारणों से आश्चर्यचकित कर गया। अनेक प्रकार के तनाव, गलतफहमियां हुईं और फलत: एक दिन बड़े ही अनुत्सवी ढंग से श्री नरेश मेहता अपने भाई, दिल्ली, 'कृति' मासिक तथा मित्रों को छोड़कर सपत्नीक प्रयाग आ बसे।

दोनों में तनाव की स्थिति

सच तो यह है कि श्री नरेश मेहता ने कभी भी नरेश मेहता के साथ सहयोग नहीं किया, जिसके कारण दोनों में तनाव ही नहीं, क्रमश: संलाप की स्थिति भी नहीं रही। प्राय: तो अब दोनों एक-दूसरे को तरह ही देते हैं। 'हम पे आया न गया, तुम पे बुलाया न गया' के कारण एक-दूसरे से साक्षात किये भी महीनों गुजर जाते हैं। किसी तीसरे की उपस्थिति में भले ही दोनों प्रसन्न-वदन दिखने की औपचारिक चेष्टा करें, परंतु अकेले में दोनों पट्टीदार का-सा ही व्यवहार करते हैं। क्या श्री नरेश मेहता यह दावा कर सकते हैं कि जिस लेखकीय व्यक्तित्व की गरिमा की रक्षा के लिए दुनिया-जहान एक किया, वह अच्युत रह सका? व्यक्तित्व की कौन-सी गरिमा-मूर्ति घटनाओं के गजनवी के हाथों बच सकी? पुरातत्त्व की महिमा के योग्य वे मूर्तियां भले ही हों, पूजा के योग्य तो नहीं ही रहीं। क्या व्यवहार जगत के ओछेपन, स्वार्थों का सामना नहीं करना पड़ा? क्या श्री नरेश मेहता का यह नितांत स्वार्थी दृष्टिकोण नहीं है कि अपने लेखकीय अहं की तुष्टि में नरेश मेहता, पत्नी और बच्चे शुद्ध-शुद्ध अपमानित अनुभव करें? कवि महाशय के पास इसका क्या उत्तर है कि विवाह के तत्काल बाद पत्नी श्रीमती महिमा मेहता कानपुर की अपनी अच्छी-खासी नौकरी उनके कहने पर छोड़ दें और चार वर्ष बाद प्रयाग में सत्तर रुपये की मास्टरी करने के लिए बाध्य हों? कितना आसान है 'यह पथ बन्धु था' लिखना और उससे भी कितना रोमांटिक है 'सरो' जैसी नायिका का प्रणयन करना, परंतु अपनी ही नायिका महिमा के टूटने की कोई प्रतीति अनुभव न करने को क्या कहें?

जब लेखन द्वारा जीवनयापन करना कठिन है तब श्री नरेश मेहता ने मात्र उदासीन हो जाने के कौन-सा व्यावहारिक कदम उठाया? प्रोफेशनल लेखक हो जाने पर भी हमेशा 'स्वान्त:सुखाय' की मनोवृत्ति से लेखन किया। आलस्य, प्रमाद और अराजकता से ग्रस्त श्री नरेश मेहता ने क्या किसी दिन भी अपने काव्य

की वैदिकता के लिए सूर्योदय के दर्शन किये? गद्य लिखने बैठे तो कविता सूझ रही है! लिखना उपन्यास है और खंड-काव्य लिख रहे हैं! और तुर्रा यह कि न नरेश मेहता, न पत्नी, न मित्र, न प्रकाशक कोई भी उनसे कुछ कह नहीं सकता। एक प्रकाशक वर्षों से आधा दर्जन पुस्तकों की रायल्टी नहीं दे रहा है, परंतु श्री नरेश मेहता उसके 'हृदय-परिवर्तन' की प्रतीक्षा में बैठे हुए हैं और शील तथा संकोच इतना कि क्या किसी नयी वधू को होगा! हालांकि वृश्चिक राशि के श्री नरेश मेहता अपने व्यंग्यों, वाक्पटुता के लिए न केवल साहित्यकारों में जाने जाते हैं बल्कि कइयों से जन्मों की शत्रुता मोल लिये बैठे हैं।

विवाद और उपेक्षा के पात्र

स्वयं लेखन के क्षेत्र में भी श्री नरेश मेहता जिस प्रकार से निरंतर विवाद, स्थायी मनोमालिन्य तथा घोर उपेक्षा के पात्र हैं उसमें स्वयं इन श्रीमान का भी कम हाथ नहीं है। हिंदी में बंगला का-सा माधुर्य, नाद नहीं है तो क्या किया जाए? मगर नहीं, श्री नरेश मेहता अपनी भाषा की डेढ़ ईंट की मसजिद अलग बनाने में जुटे हुए हैं। समकालीनों के बीच श्री नरेश मेहता की भाषा और साहित्य दोनों ही बावले गांव का ऊंट है। प्रयोगवाद और प्रगतिवाद से निकलकर श्री नरेश मेहता सीधे या तो वेद पर पहुंचे या भक्ति-आंदोलन से टकराने लगे हैं। कतई धार्मिक नहीं हैं, परंतु धर्म की दुहाई गली के नुक्कड़ तक सुनायी देगी। लोग आधुनिकता के पीछे शहीद हुए जा रहे हैं तो श्रीमान वैष्णवता की जय-पताका फहराने में लगे हैं। इस सबका नतीजा यह है कि किसी समकालीन के सामने आपने भूल से भी यदि श्री नरेश मेहता का नाम ले लिया, तो बस समझ लीजिए कि आपने लाल कपड़ा दिखा दिया। लेकिन कभी श्री नरेश मेहता से इस बारे में बाते करें तो वे अपनी विनम्रता प्रकट करेंगे।

कई उपन्यास और महाकाव्य, दसियों विचार-ग्रंथ, काव्य-नाटक आदि की तो स्पष्ट योजनाएं हैं, परंतु बातें करते हुए ऐसे दर्जनों ग्रंथों के बारे में बताने लग जाएंगे जिनका साहित्य से कोई संबंध नहीं। ब्राह्मणों के विशाल इतिहास से लेकर 'भारतीय संस्कृति ग्राम्य संस्कृति है' तक पर साधिकार चर्चा करेंगे। ऐसे-ऐसे पचासों वाग्जाल श्री नरेश मेहता के चारों ओर मिल जाएंगे जिसमें कोई भी उलझ सकता है। यदि किसी दिन चाय की वैदिकी व्याख्या से संबंधित उनकी कोई पुस्तक आ जाए तो कृपया चौंकें नहीं, क्योंकि वे न केवल 'अनप्रिडिक्टेबल' नहीं हैं बल्कि कन्या राशि की भस्म में से वृश्चिक राशि का मिथुनलग्नी यात्रा और प्रणयन कर रहा है। भगवान जाने इस ग्रहदशा और ग्रहयोग का साहित्य और उनके परिवार पर क्या प्रभाव पड़ता है!

इति नमस्कारान्ते।

—९९ ए, लूकरगंज, इलाहाबाद

कहानी

• राही मासूम रजा

'शीर्षक है मौत।'

उसने गला साफ किया। भीड़ की तरफ देखा। भीड़ उसकी तरफ देख रही थी। भीड़। अनजाने चेहरे। अजनबी आंखें और आंखों की अजनबी चमक। अजनबी माथों पर लिखी हुई अजनबी तकदीरें। अजनबी सीनों में धड़कते हुए अजनबी दिल। और उन अजनबी दिलों में दुबके हुए अजनबी अरमान, सपने, डर...

उसे इन अजनबी भीड़ों की आदत थी। बीस, पच्चीस बरसों से मुशायरे पढ़ रहा था और मुशायरे मार रहा था। उसका नाम पुकारा जाता तो भनभनाता हुआ मजमा एकदम से चुप हो जाता। बूढ़े, जवान, औरत, मर्द—सभी चुप हो जाते क्योंकि सबको लगता कि वह खास उन्हीं के दिल की बात कह रहा है। सबको लगता कि उसकी आवाज जैसे खास उन्हीं की आवाज है और वह खास उन्हीं से बात कर रहा है। तब यह भीड़ अजनबी नहीं थी। ये चेहरे अजनबी नहीं लगते थे। उसे लगता कि यह भीड़ एक आईना है और वह अपने अक्स से बातें कर रहा है। पर अब, अब तो न जाने क्या हो गया है! वह सोचता, इतना सोचता कि उसका पूरा व्यक्तित्व इस सोच की आग में पिघलता हुआ-सा मालूम होता। पर वह यह न तय कर पाता कि खुद वह बदल गया है कि सामने बैठी हुई यह भीड़ बदल गयी है—या

दोनों ही बदल गये हैं? वह इन तीन सवालों का बंदी होकर रह गया था।

मौज-दर-मौज है दर्द
आस पट्टी से लगी बैठी है
वक्त के हाथ हुए जाते हैं सर्द

कहीं दूर से उसकी अपनी आवाज आयी। उसकी अपनी आवाज जो सामने वाले मजमे की आवाज नहीं थी। मजमा आईना भी नहीं था। उसे अपना अक्स भी नहीं दिखायी दे रहा था। वह बिलकुल अकेला था। क्या यह सामने बैठे हुए लोग, लोग नहीं परछाइयां हैं? फिर इन तक आवाज क्यों नहीं जाती? और यदि आवाज जाती है तो इनके चेहरों से पसंद, नापसंद—कुछ तो झलके। पता तो चले कि बात इनकी समझ में आ रही है कि नहीं? ये सहमत हैं कि असहमत?

मौज-दर-मौज है दर्द
आस पट्टी से लगी बैठी है
वक्त के हाथ हुए जाते हैं सर्द

कहीं ऐसा तो नहीं कि यह केवल उसे लग रहा हो कि वह बोल रहा है और वास्तव में वह बोल ही न रहा हो? होंठ हिल रहे हों और आवाज निकल ही न रही हो, क्योंकि यदि सामने वाली भीड़ तक आवाज जा रही होती तो वह कुछ तो 'रिऐक्ट' करती।

वह हैरान था कि सामने वाली से भीड़ से उसका रिश्ता टूट कैसे गया? इसी भीड़ के लिए तो कल उसने बोलना सीखा था। कल! . . . वह कल कितना दूर जा चुका है। साफ दिखायी नहीं देता। कल। अतीत — वह अंदर ही अंदर कांप उठा। क्या वह अतीत है? क्या यह वर्तमान इसीलिए उसे नहीं पहचानता? क्या यह भीड़ कोई और है? परंतु कल जब यह वर्तमान भविष्य का सपना था तब तो यह इतना बेमुरव्वत नहीं था। शायद इसलिए कि सपनों को आंखों की जरूरत पड़ती है तो क्या वह उस सपने के लिए केवल एक मोहरा था जो खेल आगे बढ़ा तो पिटवाकर बिसात से अलग कर दिया गया? उसने खुद वह सपना देखा था या सपने ने उसकी आंखों को इस्तेमाल किया था? क्या सपना उन आंखों से बड़ा है जिन्होंने पलकों के किवाड़ बंद करके उसे देखा? क्या आंखों की कोई कीमत ही नहीं—

आस पट्टी से लगी बैठी है
वक्त के हाथ हुए जाते हैं सर्द
आस्मां खाली है
सूरज है न चांद
चांदनी आंखों की अफसुर्दा है
धूप चेहरे की है मांद

भीड़ फिर भी चुप रही। कोई पान खाने में लगा हुआ था। कोई सिगरेट जला रहा था। पीछे एक गोल ने शायद किसी आपसी मजाक पर कहकहा लगाया— यह कोई आपसी मजाक है या हूटिंग?

हूटिंग!

यह बेदर्द शब्द कहां से आ गया उसके और इस भीड़ के बीच में। हूटिंग

तो हमेशा दूसरों के लिए होती रही है। उसे अपना पहला मुशायरा याद आया।

तब वह रहा होगा यही कोई बीस बाईस बरस का एक कच्चा आदमी और कच्चा शायर। मजाज और अखतर शीरानी की कहानियां सुनकर उसने अभी कुछ ही दिनों पहले शराब पीना शुरू किया था और लीला, कामिनी कौशल, नरगिस और नलिनी जयवंत को दिमाग से निकालकर पहली बार एक जीती-जागती सांवली सलोनी लड़की पर आशिक हुआ था। हर अच्छा शायर शराब पीता है और आशिक होता है। तो यह काम उसने पहले ही कर लिया ताकि उसके अच्छा शायर होने में कोई कसर ही न रह जाये। शराब तो अच्छी नहीं लगी। बू भी खराब थी और मजा भी अच्छा नहीं था, पर सफीया महल भी अच्छी थी और मजा भी। इतने दिनों बाद भी सफीया का खयाल आते ही उसके बदन में झुरझुरी आ गयी। कनपटियों पर दबाव पड़ने लगा।

अजीब लड़की थी वह सफीया। उसके दिल से निकलकर पाकिस्तान चली गयी। अपने बाप और अपने होनेवाले मियां के साथ पाकिस्तान चली गयी . . . पाकिस्तान का खयाल आते ही बदन का तनाव खत्म हो गया और वह फिर उसी मुशायरे में लौट आया।

सामने वही बेदर्द मजमा था। वही बेदर्द शोर था—

'वी वांट बेकल। वी वांट बेकल . . .'

उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसका नाम तो बेकल नहीं है फिर यह मजमा किसे पुकार रहा है। बेकल? कौन है यह बेकल? उसके दिल की बेकली को यह मजमा क्यों नहीं देख रहा है? क्या हो गया है इस मजमे को, इस पुराने दोस्त को। पहले तो यह मेरे होते किसी और से बात करने पर तैयार ही नहीं होता था।
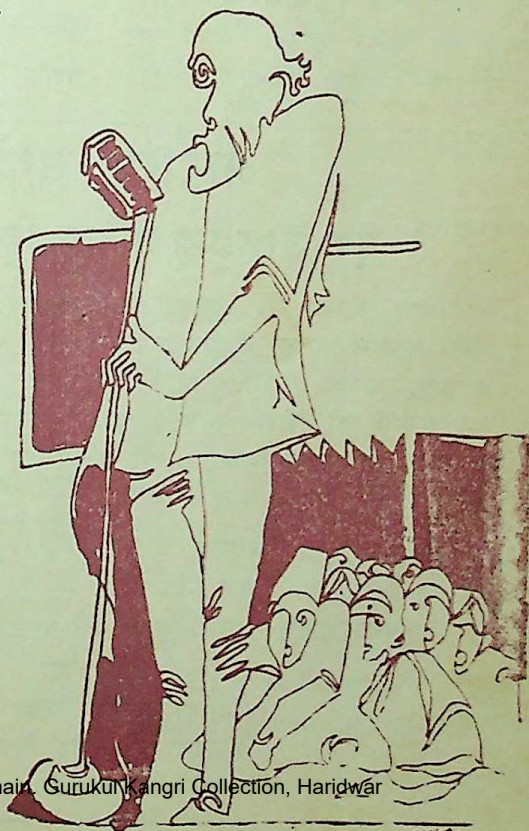
यह तो बस यह चाहता था कि मैं इससे बातें करता रहूं और यह मेरी बातें सुनता रहे। वह इसकी मुहब्बत और वफादारी से बोर हो जाया करता था। इससे पिंड छुड़ा के भाग जाना चाहता था। ऑटोग्राफ देते-देते वह झल्ला जाया करता था। फेंक दिया करता था ऑटोग्राफ बुक। पर यह मजमा कभी और उसकी किसी बात का बुरा नहीं माना करता था। गिड़गिड़ाया करता था कि वह इसकी मनपसंद गजल सुना दे। कभी-कभी उसे भी जिद हो जाती कि नहीं सुनाएगा। वह अपनी जगह पर जाकर बैठ जाता। कोई और शायर बुलाया जाता, पर मजमा उसके शेर सुनने से इंकार कर देता। अब मुशायरे का कनवीनर खुशामदें कर रहा है कि वह मजमे के चहेते शायर के शेर फिर सुनवाएगा। पर मजमा है कि ठना हुआ है और वह है कि झल्ला रहा है। लगातार इनकार कर रहा है कि वह बोर हो गया है शेर सुनाते-सुनाते। अब हरगिज नहीं सुनाएगा। लोगों को बुरा-भला कह रहा है। मैं क्या शेर सुनाने की मशीन हूं! नहीं सुनाऊंगा——पर दिल ही दिल में खुश हो रहा है यह सोच कर कि आसपास बैठे हुए शायर उससे जल रहे होंगे। दिल ही दिल में उसे गालियां दे रहे होंगे। . . . आखिर वह उठता और मजमा वह तालियां बजाता कि पंडाल उड़ जाता और वह कोई नज्म

शुरू करता और चिलमन के पीछे बैठी हुई लड़कियां जल्दी-जल्दी उसकी नज्म किसी कागज के टुकड़े या कापी पर उतारने लगतीं।——वह जानता था कि लड़कियों का कलम जरा सुस्त चलता है तो सुनाने में इसका खयाल रखता कि लिखने में लड़कियां पिछड़ न जाएं। और फिर न जाने कितनी सलमाओं, नजमाओं, रेहानाओं, सफीयाओं, जाहिराओं, रुकैयाओं, बिलकीसों . . . के खत आते—हाय क्या शायरी करते हैं आप! अल्ला, अपनी एक तसवीर जरूर भेजिए—और वह इन खतों को हिकारत से एक तरफ फेंक दिया करता था। वक्त कहां था इन खतों को पढ़ने और जवाब देने का। . . . और अब कोई दो, तीन साल से वह इंतजार कर रहा है। कोई खत आये, क्या हो गया है उन खत लिखनेवालियों को? शायद शादियां हो गयी होंगी। हां, मगर दूसरी लड़कियां जवान भी तो हुई होंगी उन खत लिखनेवालियों की जगह लेने के लिए।

चांदनी आंखों की अफसुर्दा है
धूप चेहरे की है मांद
दिल की धड़कन में किसी और की चाप
और वह, जिसका कोई रंग, कोई रूप नहीं
दिल के आंगन में कहीं धूप नहीं

उसने अपने उलझे हुए बालों पर हाथ फेरा, खुद से पूछा; दिल के आंगन की धूप कहां चली गयी है? सूरज को किसी ने चुरा तो नहीं लिया?

सामने मजमे में शोर हो रहा था: 'वी वांट बेकल। वी वांट बेकल . . .'

मुशायरे के कंडक्टर ने हलके से उसकी आस्तीन खींची। उसने नहीं देखा तो कंडक्टर ने उसके हाथ में एक परचा दिया। वह खुश हो गया कि किसी नज्म की फरमाइश आयी होगी। समय एकदम से पीछे चला गया। उसने शोर करते हुए मजमे की तरफ प्यार से देखा—

दिल के आंगन में कहीं धूप नहीं
फिक्र आईना सही
लेकिन आईने पे है याद की गर्द

वह जल्दी-जल्दी यादों के रूमाल से उस आईने को साफ करने लगा और कंडक्टर के परचे को भूल गया। उसने फिर आस्तीन खींची। परचा याद आ गया। वह मुसकुराया। 'सुनाता हूं साहब। यह नज्म तो खत्म कर लूं——'

मजमे ने कहा, 'वी वांट बेकल। वी वांट बेकल—'

उसने मुसकरा कर कहा; 'पर बेकल तो मेरी किसी नज्म का उन्वान नहीं है।'

कंडक्टर ने कहा, 'परचा पढ़िए साहब!'

उसने परचा पढ़ा। लिखा था, 'मुशायरा न उखाड़िए। आपको बाद में पढ़ने का मौका दूंगा।'

मौका दूंगा? मुझे मौका दिया जाएगा पढ़ने का!

मौका! उसने अपनी सारी जिंदगी में इससे ज्यादा गंदी गाली नहीं सुनी थी।

दिल के आंगन में कहीं धूप नहीं
फिक्र आईना सही
लेकिन आईने पे है याद की गर्द
मौज दर मौज है दर्द
वक्त के हाथ हैं सर्द

नज्म 'मौत' खत्म हो गयी ।

कंडक्टर की आवाज आ रही थी, 'अब मैं हजरत बेकल सुलतानपुरी से दरख्वास्त करता हूं . . .'

उसने मुड़ कर देखा । एक नौजवान लड़का अपनी जगह से उठकर माइक्रोफोन की तरफ आ रहा था। उसने सामने देखा। मजमा खुशी से तालियां बजा-बजाकर पागल हुआ जा रहा था। चिलमनों के पीछे छिड़क-छिड़ककर देखा जा रहा था कि कलमों में रोशनाई है या नहीं। उसने सोचा, पहले तो यह सब मेरे आने पर हुआ करता था। तो आज यह सब मेरे जाने पर कैसे हो रहा है? . . . बेकल माइक्रोफोन पर आ गया। वह माइक्रोफोन से हट गया और अपनी जगह पर वापस जाकर चुपचाप बैठ गया। आज वह बाकी शायरों की बिरादरी में शामिल हो गया था। बिरादरी के बाहर तो बेकल था जो भीड़ के आईने में अपना अक्स देखकर खुद से बातें कर रहा था।

बेकल की आवाज जैसे उसे चिढ़ा रही थी, 'यह बड़े अफसोस की बात है कि आपने इतने अच्छे शायर को नहीं सुना।'

यह तकरीर हजारों बार कर चुका था और जानता था कि इस तकरीर का मतलब वह नहीं जो तकरीर के शब्दों से निकल रहा है। इस तकरीर का मतलब यह है कि मैं आपका आभारी हूं कि आपने उसे हूट कर दिया जो न जाने कबसे अपने आपको बहुत बड़ा शायर समझता चला आ रहा है।

बेकल की तकरीर का मतलब समझने के बाद भी न जाने क्यों वह बेकल का आभारी था कि वह ठुकराये हुए तमाम शायरों में से केवल उसकी तारीफ कर रहा है। उसके दिल में क्या है यह भला सामनेवाली भीड़ को क्या मालूम? उसके दिल में क्या है यह आसपास बैठे हुए शायरों को भी क्या मालूम? वह ठुकराये हुए शायरों में तो सबसे अच्छा है।

वह सोचने लगा कि कैसा अच्छा हो अगर बेकल सामनेवाली भीड़ से यह कह दे कि जब तक वह मेरी शायरी नहीं सुनेगी वह उसे एक शेर भी नहीं सुनाएगा।

पर बेकल ने ऐसा नहीं किया।

खुद उसने कभी ऐसा नहीं किया था।

एकदम से उसका बदन सिकुड़ने लगा। वह इतना छोटा हो गया कि खद भी दिखायी देना मुश्किल हो गया।

दूसरे दिन के अखबारों में यह खबर छपी कि रात का आल इंडिया मुशायरा किसी शायर के पागल हो जाने से गड़बड़ हो गया।

किसी समाचारपत्र में उस शायर का नाम नहीं छपा।

—१०, देवदूत, बैंड स्टैंड, बांदरा, बंबई-५०

तारकुंडे-समिति के संदर्भ में

निष्पक्ष चुनाव कैसे हों?

● डॉ. श्यामलाल मांडावत

अगस्त, १९७४ में जनता की ओर से स्वतंत्र तथा निष्पक्ष चुनाव की मांग के प्रश्न पर सिलसिलेवार एवं ठोस विचार करने के उद्देश्य से श्री जयप्रकाश नारायण ने श्री वी. एम. तारकुंडे की अध्यक्षता में एक समिति गठित की थी। समिति को वर्तमान चुनाव-प्रणाली तथा नियमों का जिन संदर्भों में अध्ययन करना था वे हैं भारतीय चुनावों में धन-शक्ति का उपयोग, सरकारी तंत्र तथा सत्ता का दुरुपयोग, अन्य प्रकार के भ्रष्ट तौर-तरीके, प्राप्त मतों तथा सीटों के बीच भारी अंतर, वर्तमान चुनाव-कानूनों में कमियां तथा चुनाव-याचिकाओं के निबटारे में विलंब। इसके अतिरिक्त समिति को चुनाव के बारे में ठोस सुझाव देना था।

अपनी अंतिम रिपोर्ट में समिति ने स्पष्ट किया है कि १९७१ के बाद से संपूर्ण-चुनाव-व्यवस्था में जन-सामान्य का विश्वास निरंतर गिरता जा रहा है। १९७४ में जन-विश्वास में यह गिरावट अपने चरम बिंदु पर पहुंच चुकी थी। ऐसी स्थिति में समिति ने जिन तथ्यों को उजागर किया है और निष्पक्ष चुनाव के लिए जो सिफारिशें की हैं, उनकी समीक्षा आवश्यक है।

सत्ता का दुरुपयोग ?

तारकुंडे समिति का अभिमत है कि पिछले कुछ वर्षों से चुनाव आयोग की स्वतंत्रता बराबर सीमित करने के प्रयास किये गये हैं। चुनाव-आयोग में जन-विश्वास अक्षुण्ण रखना अनिवार्य है तथा इसके लिए वर्तमान व्यवस्था में परिवर्तन करना होगा। संविधान की ३२४ वीं धारा के दूसरे अनुभाग में यह स्पष्ट है कि एक मुख्य चुनाव-आयुक्त के साथ कई अन्य चुनाव-आयुक्तों की नियुक्ति की जा सकती है। केंद्रीय स्तर पर चुनाव आयोग की स्थिति लोकसेवा-आयोग के ही समकक्ष है और निष्पक्षता के लिहाज से उसे त्रिसदस्यीय रूप देना ही अधिक उपयुक्त होगा। चुनाव-आयोग के इन सदस्यों की नियुक्ति के बारे में तारकुंडे-समिति का कहना है कि राष्ट्रपति द्वारा इनकी नियुक्ति सिर्फ प्रधानमंत्री की सलाह पर नहीं, अपितु लोकसभा में विपक्ष के नेता (अथवा विपक्ष द्वारा मनोनीत किसी सदस्य) तथा सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की भी सलाह लेकर की जानी चाहिए।

हमारे कुल मतदाताओं की संख्या

लगभग ३० करोड़ है। मतदाताओं की इतनी बड़ी संख्या को ध्यान में रखते हुए तारकुंडे-समिति ने चुनाव-कार्य सुचारु रूप से चलाने हेतु क्षेत्रीय अथवा राज्य स्तर पर भी चुनाव-आयुक्तों की नियुक्ति की अभिशंसा की है। संसद की पूर्वानुमति लिये बिना आम चुनाव से कुछ ही समय पहले, चुनाव-नियमों में परिवर्तन करने की प्रवृत्ति रोकने के लिए भी तारकुंडे-समिति ने 'जन-प्रतिनिधित्व-कानून १९५१' में संशोधन की मांग की है।

कामचलाऊ सरकार

उपचुनावों में जानबूझकर विलंब करने के कई मामले देखने के बाद तारकुंडे-समिति ने यह सुझाव दिया है कि कोई भी रिक्त स्थान उपचुनाव द्वारा छह माह के भीतर भरने की कानूनी व्यवस्था की जानी चाहिए। समिति का सुझाव है कि चुनाव में सत्ता का दुरुपयोग रोकने की दृष्टि से एक ऐसी परंपरा डाली जानी चाहिए जिसमें लोकसभा अथवा विधान सभा को भंग करने की घोषणा से लेकर चुनाव की तारीख तक सिर्फ कामचलाऊ सरकार हो। इस अवधि के दौरान कामचलाऊ सरकार द्वारा नयी नीति लागू करने , ऋण या अनुदान देने, वेतन-वृद्धि करने तथा सरकारी स्तर पर बड़े समारोह आयोजित करने-जैसे कार्य नहीं किये जाने चाहिए। कामचलाऊ सरकार की कार्यावधि में मंत्रियों आदि को सरकारी खर्च पर यात्रा नहीं करनी चाहिए और न ही सरकारी वाहनों अथवा हेलिकॉप्टरों का उपयोग करना चाहिए । आमसभाओं में मंच आदि के निर्माण का कार्य भी पी. डब्लू. डी. द्वारा नहीं किया जाना चाहिए। रेडियो तथा टेलिविजन पर सभी दलों को पिछले चुनाव में मिले वोटों के अनुपात में समय दिया जाना चाहिए। चुनाव की अवधि में प्रसारित समाचारों को प्रचारात्मक रूप न दिया जाए, इसके लिए भी निरीक्षण की व्यवस्था करने का सुझाव दिया गया है।

चुनाव में पैसा

भारतीय चुनावों में रुपये-पैसे का जोर बढ़ता जा रहा है। काले धन का चुनावों में खुलकर इस्तेमाल होता है। तारकुंडे-समिति का ऐसा विश्वास है कि १९७४ के उत्तर प्रदेश तथा उड़ीसा के विधानसभाई चुनावों में बहुत रुपया बहाया गया है। हाल ही में जब सर्वोच्च न्यायालय ने श्री कंवरलाल गुप्तवाले मामले में शासक-दल के खिलाफ फैसला दिया तब शासक दल ने संविधान में ही संशोधन कर डाला!

पार्टी द्वारा उम्मीदवार पर किये जानेवाले खर्च को उम्मीदवार के खर्च में शामिल न करना भ्रष्ट तरीकों के लिए कानूनी छूट हासिल कर लेने के बराबर नहीं तो और क्या है ?

धन की शक्ति से चुनाव जीतने पर रोक लगाने के लिए तारकुंडे-समिति ने सुझाव दिया है कि विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा अपने प्रत्याशियों पर खर्च किये

गये रुपयों का सही विवरण प्रस्तुत किया जाना चाहिए और उसकी जांच की व्यवस्था होनी चाहिए। चुनाव के निमित्त जो भी पैसा खर्च हो वह या तो स्वयं प्रत्याशी द्वारा खर्च किया जाए या फिर उसके चुनाव-अभिकर्ता द्वारा। बढ़ी हुई कीमतों के संदर्भ में, तारकुंडे-समिति ने लोकसभाई तथा विधानसभाई चुनाव-खर्च को दोगुना करने की सिफारिश की रिश, वोट देने की अल्पतम आयु २१ से घटाकर १८ वर्ष करने की है। ऐसा इसलिए किया गया है कि इस आयु-वर्ग के युवक अधिक शिक्षित एवं जागरूक हैं। मतदाता-सूचियों में रद्दोबदल करने के बाद मतदान की आयु प्राप्त करनेवाले लोगों को मत दे सकने का अधिकार दिलाने हेतु व्यवस्था करने का भी सुझाव दिया गया है। इसके अलावा १९७२ में मत-

चुनावों की निष्पक्षता कसौटी पर ... एक आदिवासी-क्षेत्र में होता यह मतदान कितना स्वैच्छिक रहा होगा ?
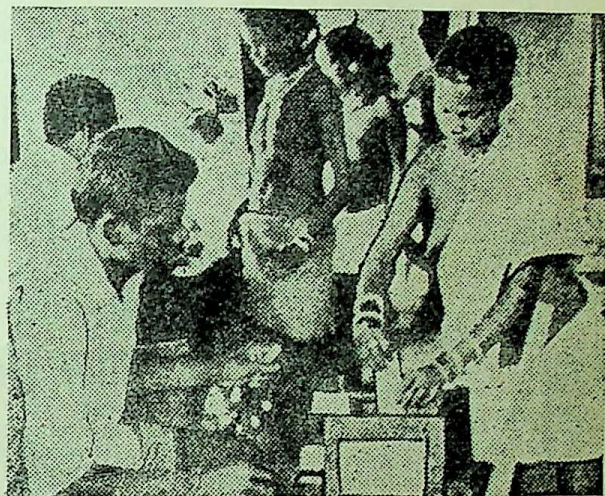
है। साथ ही जमानतों की रकम, लोकसभा-चुनाव में ५०० से बढ़ाकर २,००० रुपये और विधानसभा-चुनाव में २५० से १,००० रुपये करने की बात कही गयी है। कारपोरेशन द्वारा चंदे दिये जाने पर लगी वर्तमान कानूनी रोक का समिति ने समर्थन किया है।

मतदान की आयु

तारकुंडे-समिति की एक महत्त्वपूर्ण सिफा-

पत्रों के प्रति-रूप पर अंगूठा लगवाने या हस्ताक्षर करवाने की प्रणाली को बेकार बताते हुए समाप्त करने की बात कही गयी है। समिति ने मत की गणना में होनेवाली देर को समाप्त करने तथा बूथवार गणना की पुरानी पद्धति को ही फिर से लागू करने का भी सुझाव दिया है।

मतदाताओं को जागरूक बनाने

के लिए स्वेच्छा से मतदाता-परिषदों के गठन की बात पर काफी बल दिया गया है। किसी भी दल से संबंध न रखनेवाली ये मतदाता-परिषदें मतदाताओं को उनके कर्तव्यों तथा अधिकारों की जानकारी देने में सहायक हो सकती हैं। आयोग ने विभिन्न राष्ट्रीय राजनीतिक दलों द्वारा एक चुनाव-परिषद स्थापित करने का सुझाव भी दिया है, जो चुनाव-कार्य का स्वतंत्र रूप से निरीक्षण करेगी तथा किसी भी अनियमितता को सामने लाएगी।

अंतिम महत्त्वपूर्ण सिफारिश चुनाव-याचिकाओं का शीघ्र फैसला करने के संबंध में की गयी है। नामांकनपत्र रद्द करने पर होनेवाले विवादों का अंतिम निबटारा जिला न्यायालयों द्वारा शीघ्रातिशीघ्र करने की व्यवस्था का सुझाव दिया गया है। चुनाव-याचिकाओं पर छह माह के भीतर उच्च न्यायालय का फैसला हो जाना चाहिए। काम जल्दी निबटाने के लिए हाईकोर्ट के अवकाशप्राप्त न्यायाधीशों को यह काम सौंपा जा सकता है।

यह सही है कि कुछ महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर तारकुंडे-समिति स्पष्ट हल नहीं सुझा पायी है, फिर भी चुनाव निष्पक्ष एवं स्वतंत्र रूप से करवाने के लिए समिति द्वारा कई उपयोगी और व्यावहारिक सुझाव दिये गये हैं। आनेवाले चुनावों में इनका समावेश कर सत्तारूढ़ दल जन-विश्वास को पुनः प्राप्त कर सकते हैं।

—२९ ए, भूपालपुरा, उदयपुर

महिला-वर्ष का उपहार : जेल-यातना

दुनिया भर में महिला-वर्ष मनाया जा रहा है। इस अवसर पर देश-विदेश की सरकारों ने महिलाओं को जो उपहार दिये हैं, उनकी चर्चा इसी साल कर लेना आवश्यक है। स्वतंत्रता का अधिकार मांगनेवाली महिलाएं मजे से जेल-यातनाएं भुगत रही हैं !

एक समाचारपत्र के अनुसार दुनिया भर की २५२ महिलाएं जेलों में बंद हैं। इनमें से अनेक पर मुकदमे तक नहीं चलाये गये हैं।

गिरफ्तारी और जेल-यातना का कारण अनेक दृष्टियों से उनका अधिकार मांगना है—वह राजनीतिक हो सकता है, सामाजिक या फिर क्रांतिकारी भी।

जेल में बंद महिलाओं की संख्या इस प्रकार है :

इंडोनेशिया—	६०
स्पेन—	३८
पूर्वी जरमनी—	२५
चिली और सोवियत संघ—	१३
दक्षिणी अफ्रीका—	११

इनके अतिरिक्त भी अन्य देशों में महिलाएं जेलों में बंदी हैं।

इन सभी देशों की सरकारों को धन्यवाद ! देखें, दुनिया भर की महिलाएं कितनी संगठित हैं !

होटल

एक सज्जन होटल में चावल खा रहे थे कि उनके दांत कड़कड़ा उठे।

"क्यों सा'ब, कंकड़ हैं क्या?" बैरे ने बनावटी व्यग्रता से पूछा।

"नहीं, कहीं-कहीं चावल भी हैं।"

★

दो मित्र होटल में खाना खा चुके, तो बैरे ने उनके हाथ धुलाये और खूंटी से कोट उतारकर अपने हाथ से पहना दिया। उसने बैरे को दो रुपये इनाम दिये।

"इतना इनाम क्यों दे दिया?" दूसरे मित्र ने पूछा।

"क्यों, क्या दो रुपये में यह कोट महंगा है?" पहले ने प्रति-प्रश्न किया।

★

होटल का बैरा अपने बच्चे को चिड़िया-घर दिखाने ले गया। बच्चे ने देखा कि चिड़ियाघर का आदमी शेर के पिंजड़ों के अंदर मांस का टुकड़ा दूर से ही खाने के लिए फेंक देता है।

बच्चे ने पूछा, "बाबूजी, यह आदमी शेरों को ठीक से खाना क्यों नहीं देता?"

पिता ने जवाब दिया, "ये शेर अच्छी 'टिप' नहीं देते बेटे!"

कचहरी और जेल

पुराने कैदी ने नये आये कैदी से पूछा "तुम्हें कितनी सजा हुई है?"

"नब्बे वर्ष की, और तुम्हें?"

"अस्सी साल की।"

"तो फिर तुम दरवाजे के पास सो जाओ। तुम्हें मुझसे पहले जाना होगा न!"

★

मृत्युदंड प्राप्त कैदी ने जेलर से पूछा, "आप कल सुबह की जगह आज शाम मुझे फांसी नहीं दे सकते?"

"क्यों, कल सुबह क्या दिक्कत है?" जेलर ने पूछा।

"सुबह-सुबह ऐसा करने से मेरा सारा दिन खराब गुजरेगा," कैदी ने जवाब दिया। —अरविन्द जैन

★

सरकारी वकील ने छड़ी से कैदी की ओर संकेत करते हुए कहा, "हुजूर, इस छड़ी के सिरे पर एक शैतान है!"

कैदी ने उत्सुकतापूर्ण स्वर में पूछा "कौन-से सिरे पर हुजूर?"

★

कई दिन तक वकील साहब को कोई केस नहीं मिला, तो उन्हें चिंता हुई कि

कुछ दिन और कचहरी न गये तो कहीं जज साहब भूल न जाएं! उन्होंने एक तांगा किया और कचहरी पहुंच गये। तांगेवाले ने जब पैसे मांगे तब वे उसे झिड़ककर बोले, "क्या पैसे-पैसे लगा रखी है? अरे, कचहरी में तो खड़ा है, चला दे मुकदमा!"

पड़ोसी

"तो तुम्हारी पड़ोसी से लड़ाई हो गयी है!"

"हां! एक दिन सुबह-सुबह मेरी पत्नी मशीन पर सिलाई कर रही थी। पड़ोसी ने मशीन के तेल की एक शीशी भिजवायी और कहलाया कि मशीन में तेल डाल लें ताकि शोर कम हो।"

"फिर क्या हुआ?'

"मैंने वह शीशी ज्यों-की-त्यों वापस करवा दी और कहला दिया कि उसे वे अपने रेडियो में डाल दें। रात को ग्यारह बजे तक शोर करता रहता है तो हमारी नींद हराम हो जाती है।"

बातचीत

"क्यों साहब, आप बीस मिनट से फोन पकड़े हुए हैं, लेकिन एक शब्द भी आपके मुंह से नहीं निकला। जरा रिसीं-वर छोड़ दें, मैं जल्दी में हूं।"

"जनाब! मैं अपनी पत्नी से बात कर रहा हूं।"

—सुकांत

हंसिकाएं काव्य में

वकालत

मौलिकता पर
करने लगे जिरह
कहने लगे—
मेरा प्रेम भी मौलिक है
मेरे उपन्यासों की तरह
हर संस्करण में
वह 'रिवाइज' होता है
तभी तो
हाथोंहाथ बिकता है!

स्थितियां

पुरातन प्रेम की
स्थितियों की जांच करते हुए
मिले उन्हें (त्रिनेत्रधारी) शिव
पार्वती से आंखें पांच करते हुए

लीला

कृष्णलीला सुनकर
अबोध बालक बताता था
कि कृष्ण
गोपियों के कपड़े चुराकर
द्रोपदी का चीर बढ़ाता था

प्रेमिका-संदर्भ

अपनी आलोचना से चिढ़कर
एक लेखक ने आलोचक पर
यह आरोप लगाया
कि आपको भी हमने सदा
औरों की
इड़ा, श्रद्धा के पास पाया

—डॉ. सरोजनी प्रीतम

कुछ विचित्र हड़तालें ये भी

• सुरेन्द्र श्रीवास्तव

वस्तुतः 'हड़ताल' शब्द आज जिस विस्फोटक स्वरूप में दृष्टिगोचर होता है, पहले ऐसा नहीं था। आज कुछ हड़तालों का स्वरूप विनाशक भी हो जाता है, जबकि अतीत में अनेक रोचक हड़तालें हुई हैं। प्रस्तुत हैं उनकी कुछ बानगी।

सन १९२० में इटली में एक बड़ी मजेदार हड़ताल हुई। देश के प्रत्येक पोर्ट्रेट-पेंटर (चित्रकार) ने एक दिन के लिए 'ब्रश डाउन' हड़ताल की थी। इस हड़ताल में चित्रकारों का साथ मूर्तिकारों, शिल्पकारों, माडलों, तसवीरों के व्यापारियों तथा कैनवस बनानेवालों ने भी दिया।

इस हड़ताल की वजह यह थी कि ब्रिटेन के लार्ड ल्यूवर होम ने स्वयं अपने एक चित्र का सिर काट दिया था। लार्ड का चित्र एक इटालियन चित्रकार ऑगस्टस जॉन ने बनाया था। लार्ड के इस कार्य का चित्रकारों पर इतना बुरा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने हड़ताल कर दी तथा लंदन के कला-छात्रों के साथ मिलकर हाइड पार्क में लार्ड का पुतला जलाया। इन चित्रकारों के समर्थन में इटली के सभी पोर्ट्रेट-पेंटरों ने हड़ताल कर दी थी।

वियना में हुई एक हड़ताल भी बड़ी विचित्र थी। एक दिन तीन शव विभिन्न स्थानों से कब्रगाह में लाये गये। श्मशान-घाट आकर लोगों को मालूम हुआ कि कब्र खोदनेवाले हड़ताल पर हैं। कब्र खोदनेवालों से बात हुई तो उन्होंने साफ कह दिया कि कब्र में सिर्फ ताबूत उतारे जा सकते हैं, उन पर मिट्टी नहीं डाली जा सकती। शवों के साथ गये पादरियों और अन्य लोगों ने स्वयं कब्रें भरना चाहा,
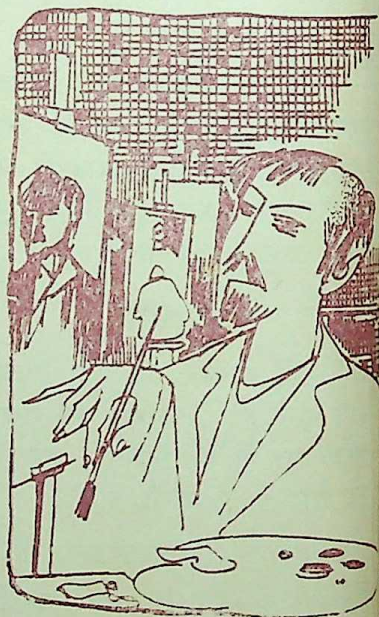
लेकिन उन्हें चेतावनी दे दी गयी कि यदि ऐसा किया गया तो हड़तालें और फैल जाएगी। कई घंटों की बातचीत के बाद मामला सुलझ पाया।

कुछ हड़तालें तो घंटे-दो घंटे में समाप्त हो जाती हैं, जबकि अन्य काफी लंबी चलती हैं।

अल्पकालिक हड़तालें

१९६८ में इटली के कोयला-खान मजदूरों ने वेतन-वृद्धि के लिए हड़ताल की। मजदूरों ने कोयले के बोरे तहखाने में पहुंचाने के बजाय बाहर पटरी पर फेंक दिये। ग्राहकों ने जब यह देखा तब वे क्रोधित हो उठे। इससे प्रबंधकों को तुरंत मजदूरों की वेतन-वृद्धि करनी पड़ी। यह हड़ताल कुछ ही घंटे रही।

दूसरी अल्पकालीन हड़ताल स्टाकहोम में लिफ्टमैनों की हुई। किसी बात पर लिफ्टमैनों का मालिकों से मतभेद हो गया। शहर के सभी लिफ्टमैनों ने हड़ताल कर दी। बीस-बाईस मंजिलोंवाली इमारतों में रहनेवाले किरायेदारों को जब सीढ़ियां चढ़कर जाना पड़ा, तब वे बहुत बिगड़े। मामला इमारतों के मालिकों तक पहुंचा और दो घंटे के अल्पकाल में ही लिफ्टमैनों से समझौता हो गया।
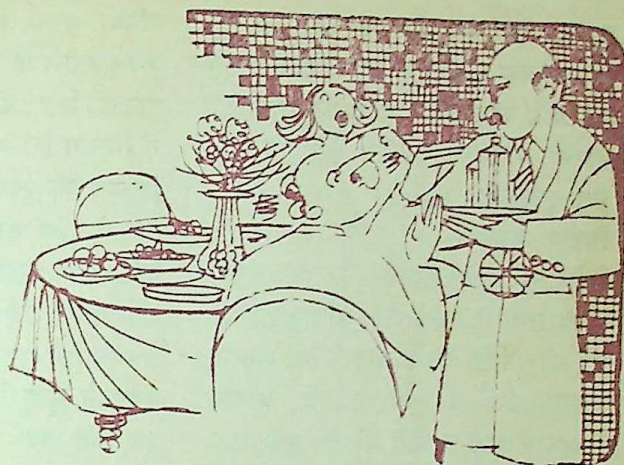
दीर्घकालीन हड़तालें

लंबे समय तक चलने वाली एक रिकार्ड हड़ताल डबलिन नगर में हुई थी और लगातार १४ वर्ष ९ मास तक चली थी। जिम डॉनी नामक एक व्यक्ति एक 'पब' (मदिरालय) का मालिक था। उसने एक बारमैन को नौकरी से निकाल दिया। यूनियन की ओर से जिम पर काफी दबाव डाला गया, लेकिन वह उस कर्मचारी को बहाल करने से इनकार करता रहा। अंततः कर्मचारीगण 'पब' के आगे धरना देकर बैठ गये। यह लंबी हड़ताल तब समाप्त हुई जब 'पब' का संचालन नये मालिक ने आकर संभाल लिया।

हैंबर्ग में एक बार वेटरों ने बड़े विचित्र ढंग से हड़ताल की। हैंबर्ग के होटलों के मालिकों ने वेटरों को ग्राहकों से टिप लेने को मना कर दिया। वेटरों को यह

बात बहुत बुरी लगी। सबने मिलकर एक युक्ति निकाली और जान-बूझकर सूप एवं सब्जियां ग्राहकों के ऊपर गिरानी शुरू कर दीं। इससे ग्राहक टूटने लगे। आखिर हारकर मालिकों ने टिप लेने पर लगी रोक हटा ली।

छिटपुट हड़तालें

ब्रिटेन में नाटिंघमशायर के ४०० रेल-कर्मचारियों ने एक बार इसलिए हड़ताल कर दी क्योंकि रेल-विभाग ने जो अलार्म-घड़ियां उन्हें दी थीं वे तेज आवाज में अलार्म नहीं बजाती थीं, जिसके फलस्वरूप समय पर उनकी नींद नहीं खुलती थी। हड़ताल सफल रही और कर्मचारियों को दूसरी तेज आवाजवाली अलार्म-घड़ियां दी गयीं।

१९६९ में शिकागो के स्कूली बच्चों ने हड़ताल की एक नयी मिसाल कायम की। बच्चों ने हड़ताल का कारण अपने अध्यापकों की वेशभूषा का साफ-सुंदर न होना बतलाया। बाद में वे तभी अपनी कक्षाओं में आकर बैठे जब उनके अध्यापकों ने अपनी वेशभूषा सुधारने का आश्वासन दिया।

ब्रिटेन की ब्राइटन थियेटर कंपनी के एक कर्मचारी नट रैनो ने स्वयं को कंपनी के अनुबंध से मुक्त कराने के लिए हड़ताल की। वह ३७ घंटे तक तेज बारिश में ४५ फुट ऊंचे खंभे पर बैठा रहा और थियेटर-अधिकारियों द्वारा अनुबंध-मुक्ति का पत्र दिये जाने पर ही नीचे उतरा।

एथेंस में एक बार औरतों ने अपने पतियों तथा प्रेमियों के विरुद्ध प्रभावपूर्ण हड़ताल की। इस हड़ताल का उल्लेख एकिस्टोफेन्ज की पुस्तक 'लाइसिसट्राटा' में मिलता है। औरतों ने एक स्वर में कहा कि जब तक पुरुष युद्ध बंद नहीं कर देते तब तक वे (औरतें) पुरुषों से कोई संबंध नहीं रखेंगी। औरतों की यह धमकी कारगर साबित हुई।

अंत में एक हड़ताल ऐसी हुई जिसकी वजह से मृत्यु के मुंह में गये व्यक्ति को २४ घंटे का जीवन और मिल गया। घटना अमरीका की है। न्यूयार्क की सिंग-सिंग जेल में एक हत्यारे को लाया गया। जिस दिन उसे फांसी दी जानी थी, संयोगवश उस दिन जेल के सभी कर्मचारी अधिक वेतन की मांग करते हुए हड़ताल पर थे। कर्मचारियों की हड़ताल के कारण हत्यारे को दूसरे दिन फांसी दी गयी, यानी उसे २४ घंटे का जीवन-दान मिल गया।

—८९, सरस्वती भवन, टी. आई. टी., बिरला कॉलोनी, भिवानी-१२५०२१

फेरीवाला : बीबीजी, आपको बिजली की इस्तरी लेनी है?

गृहस्वामिनी : नहीं, पड़ोसियों को दे दो। उनकी पुरानी इस्तरी खराब हो गयी है। हम तो उन्हीं से मांगकर काम चला लेते हैं।

महायोगी पशुपति

• जैनेन्द्र वात्स्यायन

भारतीय लोकधर्म का कोई देवी-देवता ऐसा नहीं है, जिसके साथ किसी न किसी रूप में शिव का संबंध न स्थापित किया गया हो। लोकधर्म में शिवोपासना का सर्वाधिक प्राचीन साक्ष्य है—सैंधव-सभ्यता से प्राप्त अवशेष। सैंधव सभ्यता में सर्वाधिक लोकप्रिय उपासना थी—मातृदेवी और पशुपति की। इस सभ्यता में देवी की उपासना के साथ-साथ एक पुरुष देवता की पूजा होती थी, जिसे संभवतः देवी का पति माना जाता था। यहां से प्राप्त हुई एक मुहर पर योगासन की मुद्रा में बैठे और अनेक पशुओं से घिरे एक पुरुष की आकृति का अंकन किया गया है। इस आकृति को नग्न दिखाया गया है। संभवतः इसमें तीन मुख हैं और इसकी शिरोभूषा तीन कोनों-वाली है। मुहर पर देवता के दोनों ओर एक सिंह, एक गज, एक भैंसे और एक गैंडे की आकृति अंकित है। सिंहासन के नीचे दो हिरन अंकित हैं। इसी मुहर से मिलती-जुलती कुछ और भी मुहरें प्राप्त हुई हैं जिनमें

पुरुष आकृति का अंकन है। इसी मुहर के आधार पर इतिहासकारों ने यह अनुमान लगाया है कि यहां पर हमें ऐतिहासिक शिव के महायोगी पशुपति के आदि-रूप का प्रारूप प्राप्त होता है।

वेदों में शिव को रुद्र कहा गया है। वे पशुपति भी हैं। प्रारंभ में वे पशुओं के हंता के रूप में आते हैं, किंतु शीघ्र ही उनका यह रूप रक्षक के रूप में बदल जाता है। ऋग्वेद में रुद्र के अस्त्रों का उल्लेख मिलता है, जिसके द्वारा वे पशुओं का संहार करते हैं। रुद्र से प्रार्थना की गयी है कि वे अपने अस्त्रों को उनसे दूर रखें और उनके द्विपदों तथा चतुष्पदों की रक्षा करें। यहां पर स्पष्ट रूप में उनसे पशुओं तथा अश्वों का विनाश न करने की प्रार्थना की गयी है, किंतु इसके पश्चात ही ऋग्वेद में रुद्र को पशुओं का रक्षक या पशुप कहकर संबोधित किया गया है। वेदों में रुद्र को खुले क्षेत्रों का स्वामी कहा गया है। इसलिए उन्हें उन क्षेत्रों में विचरण करनेवाले पशुओं का पति (पशूनाम पतिः) कहा गया है। आगे चलकर पशुपति शिव का एक विशिष्ट नाम बन गया। यजुर्वेद में रुद्र का पशुपति नाम अच्छी तरह से स्थापित हो गया था। अथर्ववेद में रुद्र के संरक्षण में पशुओं को रखकर उन्हें प्रसन्न किया गया है। उन्हें पशुपति कहा गया है और पशुवृद्धि की प्रार्थना की गयी है। अथर्ववेद में गो, अश्व, मनुष्य, अजा व भेड़—इन पांच प्रकार के पशुओं को पशुपति की संपत्ति कहा गया है। 'शतरुद्रिय' में भी शिव का एक नाम पशुपति है।

ब्राह्मण-साहित्य में भी रुद्र को पशुपति कहा गया है और पशुओं को उनके नियंत्रण और संरक्षण में रखा गया है, तथापि वहां भी उनकी कल्पना निश्चित ही पशुहंता के रूप में की गयी है। 'कौशीतकी ब्राह्मण' में स्पष्ट रूप से एक स्थान पर स्तोता प्रार्थना करता है कि उसके पशु रुद्र के संपर्क में न आयें।

सूत्र-साहित्य में भी रुद्र के लिए पशुपति शब्द का प्रयोग किया गया है। मानवगृह्य सूत्र में रुद्र के लिए किये जानेवाले शूलगव होम का वर्णन है, जिसमें उन्हें प्रसन्न करने के लिए पशु-बलि दी जाती थी। गृह्य सूत्रों के अनुसार वसंत या हेमंत ऋतु के शुक्लपक्ष में यह यज्ञ किया जाता था। यज्ञ का स्थान नगर अथवा बस्ती से दूर तथा यजमान के आवास से उत्तर-पूर्व दिशा में होता था। इस स्थान पर यज्ञ की अग्नि प्रज्ज्वलित कर, वेदी पर दूर्वा बिछाकर, एक गाय की विधिवत बलि रुद्र को दी जाती थी। फिर रक्त को आठों दिशाओं में छिड़क दिया जाता था तथा प्रत्येक बार 'शतरुद्रिय' के पहले मंत्र से प्रारंभ होनेवाले एक-एक अनुवाक का पाठ किया जाता था। इसके पश्चात पशु की खाल उतारी जाती थी तथा उसके हृदय आदि भीतरी अंगों को निकालकर रुद्र पर चढ़ाया जाता था।

उपनिषदों में श्वेताश्वतर उपनिषद को तो पाशुपत मत का उपनिषद माना जाता है। इस उपनिषद में कहा गया है कि रुद्र के ज्ञान के लिए पाशुपत व्रत को धारण करना चाहिए। शंकरानंद ने व्रत का स्वरूप इस प्रकार बताया है—"लोभ एवं क्रोध का त्याग कर देना चाहिए। क्षमा का अनुभव करना चाहिए। ओम का जप करना चाहिए। भक्तों को मंत्र-जप के बाद भस्म लगाना चाहिए।" इसे आत्मा को बंधन से छुटकारा दिलानेवाला कहा गया है। इस उपनिषद में पशु शब्द का प्रयोग आत्मा के अर्थ में एवं पाश शब्द का प्रयोग बंधन के अर्थ में हुआ है।

प्रारंभ में शिव को पशुओं का स्वामी होने के कारण ही पशुपति कहा गया है, किंतु परवर्ती शैव दर्शन के विकास के साथ ही पशु और पति का विशेष अर्थ हो गया। शैव दर्शन में आत्मा को पशु और उनके स्वामी शिव को पति कहा गया है और इस प्रकार अब पशुपति का अर्थ आत्माओं का अधिपति हो गया। पाशुपत संप्रदाय के प्रवर्तक लकुलीश को भगवान पशुपति का अवतार माना जाता है। शंकराचार्य का मत है कि स्वयं भगवान पशुपति ने पाशुपत संप्रदाय के पांच सिद्धांत—कार्य, कारण, योग, विधि और दुःखांत का प्रतिपादन किया था। पाशुपत संप्रदाय में कार्य को स्वतंत्र नहीं माना गया है। कार्य तीन प्रकार के हैं—विद्या, अविद्या और पशु। विद्या पशु का गुण है और

प्रेत-लीला

भूत-प्रेत में विश्वास करनेवालों का जमाना अभी लदा नहीं है। हाल में ब्रिटेन में टेलर नामक एक व्यक्ति ने अपनी पत्नी की हत्या कर दी थी और उसे पागल घोषित कर मुक्त कर दिया गया था। बाद में लोगों ने हत्या की जांच की मांग की। जांच के फलस्वरूप जो निर्णय दिया गया उसमें इसे 'दुर्दैव' ही बताया गया।

घटना इस प्रकार है—चर्च ऑव इंगलैंड के पादरी और एक मेथॉडिस्ट पुरोहित ने टेलर के सिर से २४ भूतों को भगाने के लिए गिरजाघर के ही एक भाग में रात भर झाड़-फूंक की। व्यभिचार और पशुता के भूतों सहित और सब भूतों को तो उतार दिया गया, किंतु हत्या का एक भूत उसके सिर पर बना रह गया। घर जाकर उसने अपनी पत्नी की आंखें और जीभ निकालकर उसकी हत्या कर दी।

कैंटरबरी के आर्कबिशप डॉ. कोगन ने इस बात का समर्थन किया है कि भूत-प्रेतों से ग्रसित लोगों को उनसे मुक्त कराना ईसाई धर्म का कर्तव्य है। डॉ. कोगन का कहना है कि आवश्यकता होने पर इस कार्य में डाक्टरी सहयोग लिया जा सकता है।

टेलर को मेरी राबिनसन नामक एक अदक्ष धर्मप्रचारिका ने धार्मिक संस्कार कराके ईसाई बिरादरी में प्रविष्ट कराया था। इस महिला पर शैतान की पुजारिन होने का आरोप लगाया गया था।

यह दो प्रकार की है, बोधस्वभावा और अबोधस्वभावा। बोधस्वभावा विद्या भी दो प्रकार की है, व्यक्त और अव्यक्त। अबोधस्वभावा विद्या के भी दो रूप हैं, धर्म और अधर्म, इन्हीं के लिए पशु यानी जीव प्रयत्नशील होता है। अबोधस्वभावा विद्या उन नियमों को निर्धारित करती है जिनका जीव को पालन करना होता है। कला और चेतन पशु के अधीन हैं और स्वयं अचेतन हैं। पशु भी दो प्रकार के हैं, मलयुक्त और निर्मल। मलयुक्त पशु वह है जो शरीर और कलाओं (कार्य व इंद्रियों) से संबद्ध नहीं रहता है। कारण स्वयं शिव हैं। उन्हें पति कहा गया है। शैव दर्शन में पति का अर्थ है ज्ञान एवं क्रिया की निरतिशय शक्तियों से संपन्न होना। अतएव पति ही शाश्वत शासक है। वे नित्य ऐश्वर्य संपन्न तथा सृष्टि, संहार और जीवों पर अनुग्रह करनेवाले हैं।

शैव मत में परम तत्त्व शिव को पति ही कहा गया है। पति यानी शिव पशुओं अर्थात जीवात्माओं को उनके कर्मों के अनुसार भोग और उनके साधनों को संपन्न करते हैं। वे स्वतःसिद्ध, स्वतःपूत, अंतर्ज्ञान, बुद्धि, अनंत ज्ञान, नित्य-मुक्त, अनंत करुणा, सर्वशक्तिमान, अनंत आनंद आदि गुणों से मुक्त हैं। उन्हें सर्वव्यापक और त्रिकालदर्शी भी कहा गया है। पति अर्थात ईश्वर का शरीर जीव के समान प्राकृत नहीं है, वरन शक्तिनिर्मित है। अपनी शक्तियों के द्वारा परमेश्वर शिव पांच कार्य करते हैं—सर्जन, पालन, संहार, आवरण और अनुग्रह।

पशु जीवात्मा है। यह नित्य एवं सर्वव्यापी, सक्रिय और अनेक है। मुख्यरूप से पशु तीन प्रकार के हैं, विज्ञानकाल, प्रलयकाल और सकल। विज्ञानकाल वे हैं जिन्होंने ज्ञान-योग द्वारा या कृत कर्मों के द्वारा संस्कारों का क्षय करके समस्त कलाओं से अपना संबंध विच्छिन्न कर लिया है एवं जिनमें मलमात्र शेष रह गये हैं। प्रलयकाल वे हैं जिनकी कलाओं का क्षय जगत के प्रलय द्वारा होता है। वे कर्म एवं मल दोनों से युक्त रहते हैं। सकल वे हैं जो मल, कर्म एवं माया—इन तीनों से युक्त हैं। ये पशु, इस संसार में अविद्या-रूपी पाश से बांधे जाते हैं। मल वह पाश है जो ज्ञान एवं क्रिया शक्ति को तिरोहित कर देता है। फल की इच्छा से किया गया कार्य कर्म है। इसमें धर्म और अधर्म दोनों आते हैं। माया वह शक्ति है जिसमें प्रलय-काल में समस्त संसार परिमित हो जाता है और सृजन-काल में उद्भूत होता है। रोध शक्ति शिव की शक्ति है, जो अन्य तीनों पाशों से अधिष्ठित होकर पशु के यथार्थ स्वरूप को छिपा देती है और इसीलिए स्वयं भी पाश कहलाती है। जब पाश हट जाता है, तब वह नित्य और निरतिशय ज्ञान क्रिया-शक्तियों से संपन्न होकर चैतन्य रूप शिव बन जाता है।

—द्वारा-मैसर्स कलाधर प्रसाद ऐंड सन्स
नीची बाग, वाराणसी-२२०००१

• पी. टी. सुंदरम्
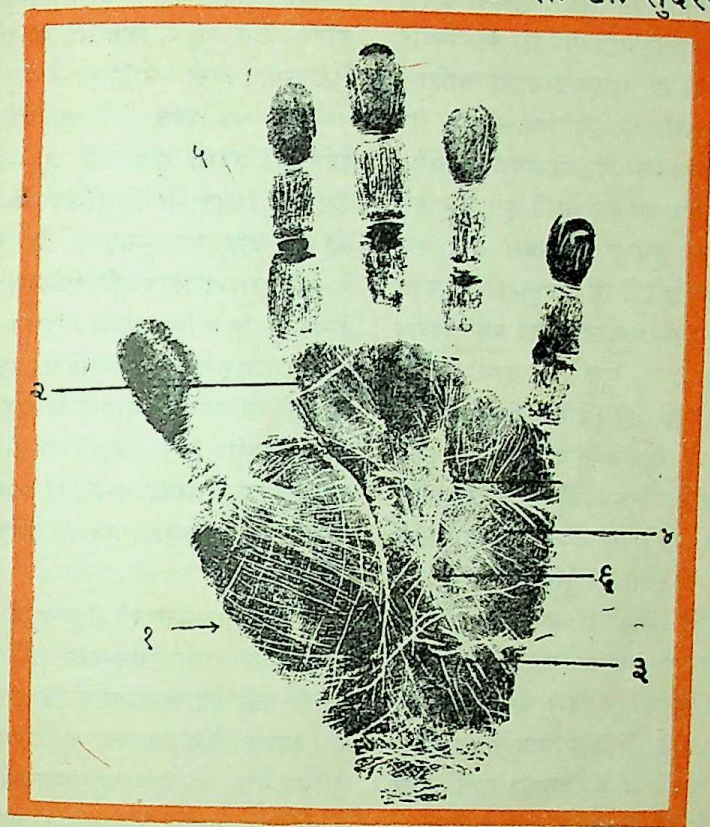
बुध-प्रबल रेखाएं : प्रतिष्ठानों से जुड़ा भाग्य

पिछले अंकों में प्रो. सुंदरम् ने हाथ की विभिन्न रेखाओं के संबंध में जानकारी दी थी। इस अंक से हम कुछ विशिष्ट हाथों के अध्ययन का क्रम आरंभ कर रहे हैं। इस स्तंभ में जिन व्यक्तियों के हाथों की रेखाओं का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है, उनके नाम हम जानबूझकर प्रकाशित नहीं कर रहे हैं। —संपादक

किसी भी व्यक्ति के हाथ का अध्ययन करते समय सबसे पहले हमें उसकी यानी हाथ की बनावट देखनी चाहिए। उसके बाद पर्वतों की स्थिति और रेखाओं का अध्ययन करना चाहिए। यहां हम इसी क्रम से पिछले पृष्ठ पर प्रकाशित हाथ की छाप का अध्ययन करेंगे।

हाथ की बनावट देखते हुए हम इसे 'मरकुरियन' अथवा बुध-प्रबल हाथ कह सकते हैं। हथेली में स्थित सभी पर्वत अच्छे हैं। इनमें शुक्र तथा चंद्र पर्वत विशेष रूप से दृष्टव्य हैं। शुक्र पर्वत काफी शक्तिशाली और बड़ा है। **(देखिए चित्र में : १)** अच्छे और बड़े शुक्र पर्वत वाला व्यक्ति पूजा-पाठ, संगीत आदि कलाओं में गहरी रुचि रखता है। वह आमोद-प्रमोद प्रिय तथा स्नेहशील भी होता है। ऐसे व्यक्ति की रुचि सेक्स संबंधी विषयों में अपेक्षाकृत अधिक होती है। इस हाथ के शुक्र पर्वत से यही बात पता चलती है किंतु जैसा कि हमने पहले भी बताया है कि भविष्य-कथन केवल एक पर्वत या रेखा को देखकर नहीं, वरन पूरे हाथ के सम्यक अध्ययन के बाद करना चाहिए। जैसे इस हाथ में गुरु पर्वत के नीचे सोलोमन-वृत्त या 'रिंग ऑव सोलोमन' है। **(चित्र में—२)** इस वृत्त के कारण व्यक्ति अपनी सेक्स संबंधी भावनाओं को दबाने में और इस तरह व्यर्थ की कठिनाइयों से छुटकारा पाने में सफल हो जाता है। यही बात इस हाथ के संबंध में है कि व्यक्ति विषयी स्वभाव का है किंतु सोलोमन-वृत्त के कारण वह उसमें उलझता नहीं है। सद्‌वृत्तियां बुरी प्रवृत्तियों पर विजयी होती हैं। 'सोलोमन-वृत्त' के कारण उसे गुह्य विद्याओं के प्रति भी दिलचस्पी होनी चाहिए।

अब चंद्र पर्वत लें। चंद्र पर्वत, शुक्र पर्वत की अपेक्षा कुछ लंबा है—साथ ही उस पर रेखाएं भी हैं **(चित्र में—३)**। यह इस बात का सूचक है कि परिवार के प्रति उत्तरदायित्व की जबर्दस्त भावना के कारण यह व्यक्ति हमेशा परेशान रहता है तथा मानसिक दुश्चिंताएं उसे घेरे रहती हैं।

यों परिवार के मामले में यह व्यक्ति सौभाग्यशाली है। विदुषी पत्नी, योग्य पुत्र एवं भाग्यशाली कन्या के कारण इस व्यक्ति का परिवार हमेशा प्रसन्नता से पूर्ण रहता है।

सोलोमन-वृत्त की महत्त्वपूर्ण भूमिका

चूंकि ऊपर सोलोमन-वृत्त की चर्चा हुई है, यहां यह भी बता दें कि इस चिह्न के कारण यह व्यक्ति चरित्रवान एवं धार्मिक-वृत्ति का है। वह स्वभाव से दयालु है एवं सदा दूसरों की सहायता करता है। अपने इन्हीं गुणों के कारण वह अपने क्षेत्र में लोकप्रिय भी है। लोकप्रियता का एक कारण इस व्यक्ति का सहज स्वभाव भी है, जिसके कारण वह शीघ्र ही लोगों में घुल-मिल जाता है। यह बात हमें चंद्रपर्वत की ओर जानेवाली मस्तिष्क रेखा एवं उसके और हृदय रेखा के मध्य बने सुंदर चतुर्भुज से भी पुष्ट होती है।

(चित्र में—४) यह चतुर्भुज भी यही दर्शाता है कि यह व्यक्ति दूसरों पर अनुग्रह करनेवाला एवं दूसरों की सहायता में सदा तत्पर रहता है।

अनामिका से बड़ी तर्जनी

इस व्यक्ति की तर्जनी, अनामिका से बड़ी है, अतः संभव है इस व्यक्ति ने विज्ञान या चिकित्सा के क्षेत्र में कभी गहरी रुचि ली होगी। इस वृत्ति के छूट जाने पर 'बिजनेस एक्जीक्यूटिव' बनने के योग हैं। (चित्र में—५)

एक साथ तीन भाग्य रेखाएं

अब रेखाओं का अध्ययन! सबसे पहले हम भाग्य रेखा को लें। भाग्य रेखा से ज्ञात होता है कि यद्यपि यह व्यक्ति बहुत अच्छे परिवार से संबंधित है फिर भी जीवन की प्रारंभिक अवस्था में उसे प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। २१ वर्ष से २६ वर्ष की अवस्था में इस व्यक्ति ने यात्राएं की और इसी बीच उसकी नियुक्ति भी हुई। २७ वर्ष की अवस्था से इस व्यक्ति का भाग्योदय हुआ।

ध्यान से देखने पर पता चलेगा कि २७ वर्ष की अवस्था से इस व्यक्ति के हाथ में तीन भाग्य रेखाएं शुरू होती हैं। एक सीधे सूर्य पर्वत की ओर जाती है तो दूसरी शनि पर्वत की ओर। तीसरी भाग्य रेखा बुध पर्वत की ओर जाती है। (**चित्र में—६**) इस व्यक्ति के जीवन में भाग्योदय का यह क्रम ४५ वर्ष की अवस्था तक रहा। उसके बाद जीवन में दुश्चिंताओं और

कुछ बुध-प्रबल नेता

बुध-प्रबल हाथवाले व्यक्तियों ने जीवन के अनेक क्षेत्रों में यथा, राजनीति, दर्शन, साहित्य आदि में अद्भुत सफलताएं प्राप्त की हैं। हमारे देश के निम्नलिखित नेता बुध-प्रबल हाथवाले व्यक्ति थे:

डॉ. राधाकृष्णन

श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

वी. के. कृष्णमेनन

कठिनाइयों का दौर शुरू हुआ। भाग्य रेखा को काटती हुई रेखाएं इसी बात की द्योतक हैं। यह बात हृदय रेखा के टूटने से भी स्पष्ट है।

इन सब बातों से यही पता चलता है कि इस अवधि में इस व्यक्ति-विशेष को काफी चिंताओं और कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इस बीच उसका स्वास्थ्य भी ठीक नहीं रहा। ४५ से ५३ वर्ष की अवस्था तक भी उसे ऐसी ही स्थितियों का सामना करना पड़ा—उदाहरण के लिए उसका स्वास्थ्य हमेशा खराब रहा और चिंताएं परेशान करती रहीं।

५३ वर्ष की अवस्था के बाद हम देखते हैं कि जीवन अपेक्षाकृत अधिक सुखी और अच्छा है। प्रगति की गति भले कुछ धीमी हो, पर वह सुनिश्चित है। हम देखते हैं कि ५३ वर्ष की अवस्था के बाद इस व्यक्ति के जीवन में अधिक उन्नति है।
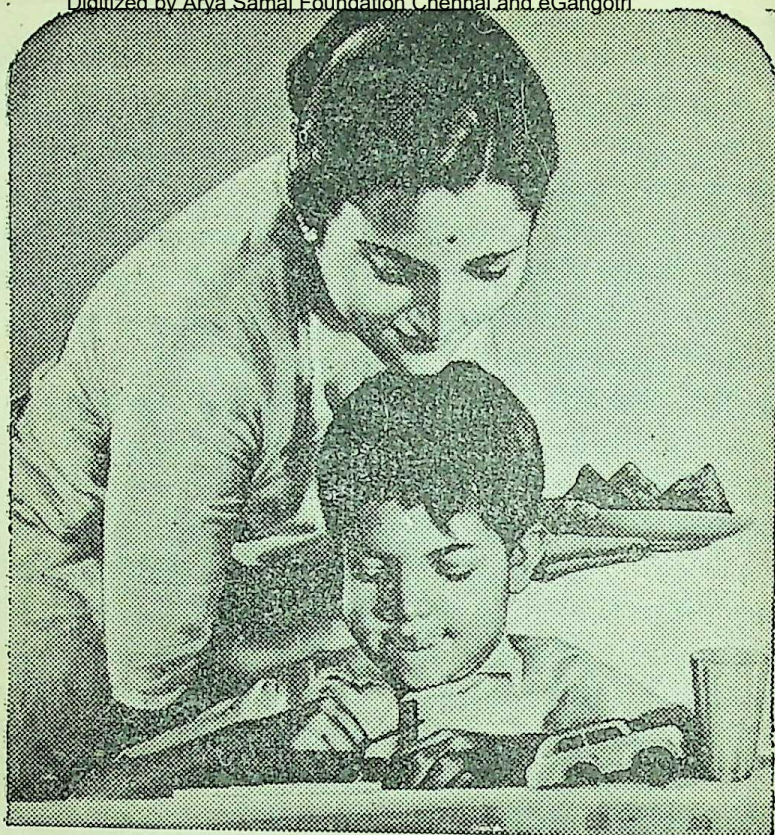
अब सूर्य रेखा को देखें। सूर्य रेखा, सफलता की, यश की सूचक मानी गयी है। इस हाथ में सूर्य रेखा की स्थिति काफी अच्छी है। ध्यान से देखने पर मालूम होगा कि इस हाथ में अनामिका के नीचे दोहरी सूर्य रेखा है। वह कई शाखाओं में विभाजित भी है। इससे पता चलता है कि यह व्यक्ति अपने क्षेत्र में लोकप्रिय होगा। वह अपने विषय का अच्छा ज्ञाता भी होगा। चूंकि इस व्यक्ति का शुक्र पर्वत भी काफी विकसित और अच्छा है एवं सूर्य रेखा भी अच्छी है अतः इस व्यक्ति की नृत्य, कला, संगीत आदि कलाओं में भी गहरी रुचि होनी चाहिए।

हम पहले बता चुके हैं कि चंद्र पर्वत पर स्थित आड़ी रेखाएं यात्रा की सूचक होती हैं। इस हाथ में चंद्र पर्वत पर स्थित गहरी और स्पष्ट यात्रा रेखा अंत में दो शाखाओं में विभाजित है। इससे पता चलता है कि इस व्यक्ति के लिए प्रत्येक यात्रा कष्टप्रद होगी।

संक्षेप में यह एक अध्यवसायी, सहृदय और कलाप्रिय व्यक्ति का हाथ है। बुध-प्रबल होने के कारण यह व्यक्ति विनोदी, व्यवहार-चतुर एवं मानव-स्वभाव का जानकार भी है। आम तौर पर बुध-प्रबल व्यक्ति अच्छे, सफल चिकित्सक सिद्ध होते हैं, किंतु किसी कारण से वे यदि व्यवसायिक क्षेत्र में निकल आते हैं तो वहां भी सफल होते हैं।

प्रत्येक ग्रह के कुछ विशिष्ट गुण और अवगुण होते हैं। जैसे बुध-प्रबल व्यक्ति अस्थिर वृत्ति का, अपने निर्णयों पर दृढ़ न रहनेवाला होता है। इससे कई बार वह दूसरों को अप्रसन्न भी कर सकता है। ऐसा व्यक्ति अक्सर कानों का कच्चा होता है और तात्कालिक प्रभावों में आ जाता है। यह उस व्यक्ति की विवशता है। उसे ऐसे अवसरों पर तात्कालिक प्रभावों से बचने का प्रयत्न करना चाहिए। वैसे बुध-प्रबल व्यक्ति साहित्यकारों, लेखकों और कलाकारों से प्रेम रखनेवाला और उनकी मित्रता का इच्छुक होता है। यह अच्छी दृष्टि उसके संस्कारों को प्रभावित करती है और वह सम्मान पा सकता है।

यह पहले बताया जा चुका है कि ५३ वर्ष की अवस्था के बाद इस व्यक्ति के जीवन में भाग्योदय का एक नया अध्याय शुरू होगा और वह नयी ऊंचाइयों तक पहुंचेगा। उसके मान-सम्मान एवं आय में पर्याप्त वृद्धि होगी।

यह हाथ जिन सज्जन का है, वे एक औद्योगिक प्रतिष्ठान के उच्च पदस्थ अधिकारी हैं। बिना किसी तरह की जानकारी दिये उनके हाथ का प्रिंट हमने प्रो. सुंदरम् के पास भेजा था। उन्होंने जो बातें बतायीं, जब हमने उपर्युक्त अधिकारी से उनकी सचाई जानना चाही, तो सारी बातें पूरी तरह सही उतरीं।

नई सिग्नल केवल दावे ही नहीं करती

पेश है सबूत:
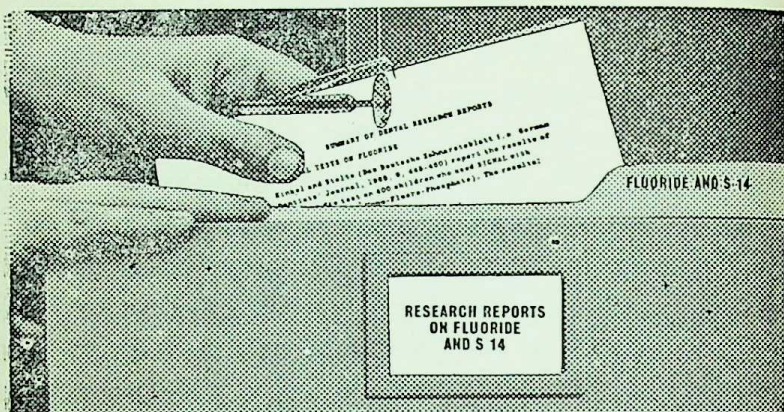
केवल नई सिग्नल फ़्लोराइडयुक्त वास्तव में दांतों की सड़न और सांस की बदबू को रोक देती है.

दंत-सफ़ाई के अनोखे आधार में

वैज्ञानिकों किंकेल और स्टोल्ट द्वारा जर्मनी में किए गए परीक्षणों ने यह सिद्ध किया है कि इससे दांतों की सड़न में ३३% तक की कमी हो गई।

सियास लैबोरेटरीज, यू. एस. ए. के डा. लिंड द्वारा S-14 पर किए गए परीक्षणों ने सिद्ध किया है कि इससे मुंह की बदबू ६५% कम हो गई।

यू. आर. लैबोरेटरी, आइलवर्थ, यू. के. ने सिद्ध किया है कि दंत-सफ़ाई के इस अनोखे आधार से दांत ऐसे साफ़ हो जाते हैं जैसे डाक्टर ने किए हों।
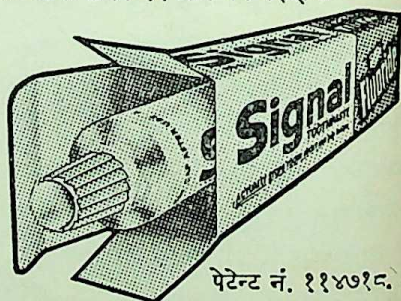
पेटेन्ट नं. ११४७१८.

क़िसी भी दूसरी टूथपेस्ट में फ़्लोराइड और S-14 एकसाथ मौजूद नहीं.

सिग्नल हिन्दुस्तान लीवर द्वारा गारन्टीप्राप्त है

लिंटास - SGF.64C-75 HI

● कनूराय

विष एक सूक्ष्म निस्तब्ध अस्त्र है जो रहस्यमय ढंग से, गुप्त रूप से और बिना बल-प्रयोग के जीवन का अंत कर सकता है। मनुष्य-मात्र आदिम-काल से इसके प्रति मोह-ग्रस्त रहा है।

इतिहास गवाह है कि तरह-तरह के विषों ने अवसर के अनुसार प्रणय और पाप में अपराध-वृत्ति की ओर अपना बल दिखाया है। विष-प्रयोग की कुछ घटनाएं स्मरण हो आयी हैं।

अमरीका में एक अपराधी जवाहरात चुराने के अपराध में जेल की कोठरी में बंद था। एक दिन उससे एक संभ्रांत महिला मिलने आयी, जिसने अपने को अपराधी का रिश्तेदार बताया। लंबे, छरहरे शरीरवाली वह स्त्री मूल्यवान वस्त्र पहने थी। जिस बड़ी चमकीली कार से वह जेल के अहाते में उतरी उसे शोफर चला रहा था। स्त्री के पास जेल के उच्च-अधिकारी का अनुमति-पत्र था। चमकीले रंगोंवाले रेशमी वस्त्र से पूरी तरह ढंके होने के कारण उसका चेहरा बिलकुल ही नहीं दिखायी पड़ रहा था। एक सिपाही ने उसे अपराधी की कोठरी के सामने लाकर सीखचों के बाहर खड़ा कर दिया। दोनों धीरे-धीरे बातें करते रहे, जिसे सिपाही सुन नहीं सका, यद्यपि वह उनसे थोड़ी ही दूर पर खड़ा हुआ था।

चुंबन में जहर

वापस जाने के थोड़ी देर पहले उस स्त्री ने अपना घूंघट उठाया और अचानक उस अपराधी के होठों पर सीखचों के बीच से काफी देर के लिए एक गहरा चुंबन दिया। कुछ ही क्षणों में वह आदमी लड़खड़ाता हुआ, अपने सिर को दोनों हाथों से थामे बेंच पर गिर पड़ा। ठीक उसी समय वह स्त्री पुनः अपने चेहरे को पूरी तरह ढके, सिसकियां लेती हुई जल्दी से बाहर आयी और कार में बैठकर चल दी। सिपाही लौटकर अपराधी की कोठरी के समीप आया और उसे बेंच पर पड़े हुए देखा। जांच के बाद वह मृत पाया गया। उस कैदी के होठों के बीच में एक मसला हुआ सिगरेट का पतला कागज था जिसका

रंग उड़ चुका था। शीघ्र ही जेल का डॉक्टर बुलाया गया और सिगरेट के कागज की विधि-पूर्वक जांच करने के बाद ज्ञात हुआ कि कागज में पोटैशियम सायनाइड विष लगा हुआ था।

सिपाही के कथन से यह निष्कर्ष निकाला गया कि सिगरेट का कागज स्त्री के होठों के बीच दबा हुआ था जिसे उसने गहरे चुंबन के समय अपराधी के मुंह में ठूंस दिया था। कैदी ने कागज से सायनाइड विष को थूक के साथ निगल लिया था। फिर कभी उस स्त्री का पता नहीं चला। मालूम ही नहीं हो सका कि वह कौन थी, कहां से आयी थी और अपराधी को इस प्रकार दंड देने का क्या कारण था?

जहरीली पालिश

कुछ वर्ष पूर्व शरीर में जूतों के द्वारा विष प्रयोग करने की चतुर विधि ने लोगों को आश्चर्यचकित कर दिया था। एक तरुण बॉल डांस में गया था। नाचते-नाचते अचानक वह बेहोश हो गया और चार घंटे के भीतर उसकी मृत्यु हो गयी। कुछ दिनों तक उसकी मृत्यु का कारण पुलिस की समझ में नहीं आया और एक रहस्य बना रहा। उसके कमरे की तलाशी लेने के पश्चात काली बूट पालिश की शीशी मिली। इसी पालिश से उसने रात को नाच में जाने से पहले, संध्या समय अपने जूतों को चमकाया था। पालिश जूतों के चमड़े को भेदकर उसके महीन मोजों और पैरों तक आ गयी थी। पैरों पर उसका काला रंग लग गया था। पालिश की परीक्षा करने पर ज्ञात हुआ कि उसमें खतरनाक विष बेनजलडी हाईड काफी मात्रा में घुला हुआ था। डॉक्टरों का कहना था कि नाचते-नाचते उसके गरम पैरों के पसीने के साथ यह विष पूरी तरह घुल-मिल गया था जो उसकी मृत्यु का कारण बना।

एक अन्य घटना अमरीका के मेरीलैंड में घटित हुई थी। क्रिसमस के दिन की पहली रात को मि. ट्रिग तथा मिस मेरी लूसर, जिनसे मेरीलैंड के प्रायः सभी लोग पूर्ण रूप से परिचित थे, मिस लूसर के ड्राईंग रूम में सोफे पर अगल-बगल सीधे तने हुए बैठे पाये गये। दोनों मृत अवस्था में थे। एक घंटा पहले भी मिस लूसर की मां ने दोनों को उसी तरह पास बैठे हुए जीवित अवस्था में देखा था। उस समय दोनों क्रिसमस के दिन होनेवाली अपनी शादी के विषय में और भविष्य के सुनहरे दिनों के सुख-सपनों की प्रेमपूर्ण चर्चा कर रहे थे। एक घंटे बाद मां जब पुनः कमरे में आयी तब उसने ट्रिग और अपनी बेटी को उसी अवस्था में बैठे हुए पाया, लेकिन मृत। बहुत खोजने पर भी कमरे में ऐसा कुछ नहीं पाया गया, जिससे इस आकस्मिक मृत्यु का संबंध स्थापित किया जा सकता।

इस अचानक और भयानक मृत्यु से पहले मां ने दोनों को हंसते और प्रेमा-

लाप करते सुना था। तभी उसके टेलीफोन की घंटी वजी थी और उसने अपनी बेटी को अपनी सहेली से अगले दिन की शादी के बारे में चहचहाते हुए शादी का विवरण देते सुना था।

च्यूइंग-गम में विष

डॉक्टर ने जांच के वाद दोनों के होठों को जला हुआ पाया। मि. ट्रिग के मुंह में च्यूइंग-गम का टुकड़ा भी मिला, जिसमें डॉक्टर के मत से, विष मिला होना संभव था।

शव-परीक्षण के पश्चात दोनों के शरीर में किंचित मात्रा में पोटैशियम सायनाइड पाया गया, लेकिन दोनों के पेट के भीतर विष गया कैसे, इसका पता खोजने पर भी नहीं लगा। सिर्फ दोनों की जीभ और होठ जले पाये गये। मि. ट्रिग के पेट में अधिक मात्रा में विष मिला।

अमरीका में च्यूइंग-गम का चूसना प्रचलित है। उसी की एक डव्वी जमीन पर पड़े हुए पतले कागज के साथ मि. ट्रिग के शयन-कक्ष में मिली। डव्वी में एक च्यूइंग-गम कम था। प्रश्न स्वाभाविक था कि क्या च्यूइंग-गम मृत्यु का कारण है, क्या डब्वी से निकाली हुई एक ही च्यूइंग-गम को दोनों ने आधा-आधा वांटकर खाया?

लड़की की मां ने आत्महत्या को असंभव बताया क्योंकि दोनों में गहन प्रेम था और दोनों में कभी किसी कारण से मनमुटाव नहीं हुआ था। मिस लूसर की एक छोटी बहन थी जो वहुत संदर थी। मि. ट्रिग बड़ी वहन से पहले उसी के प्रति आकृष्ट हुए थे। उसने वतलाया कि उस पर भी सायनाइड का वहुत कम अंश में प्रयोग किया गया था, पर भाग्यवश वह खतरनाक सिद्ध नहीं हुआ।

विशेष डॉक्टर ने वतलाया, "जव मैं ड्राइंग रूम में आया तव मैंने दोनों को सोफे पर सीधे तने हुए, अगल-वगल वैठे हुए देखा। लड़की के ऊपर और नीचे के दांत आपस में भिंचे हुए थे। उसकी सांस वंद होने को ही थी। दोनों होठों के कोनों से झाग निकल रहा था जो पोटैशियम-सायनाइड या हाइड्रोजन के असर से ही संभव हो सकता था। छोटी वहन के कमरे में जाने से एक तीव्र गैस की गंध मिली। वह उस समय अपने कमरे में ही थी।"

सभी बातों को जोड़कर यह निष्कर्ष निकाला गया कि ट्रिग अचानक किसी कारण से, अंतिम समय में बड़ी बहन से शादी करना नहीं चाहता था। इसीलिए च्यूइंग-गम में विष प्रयोग कर उसने उसे खिला दिया होगा और स्वयं भी च्यूइंग-गम का छोटे से छोटा टुकड़ा यह सोचकर खा लिया होगा कि इसका उस पर किंचित भी प्रभाव नहीं होगा। फिर भी, डॉक्टरी रिपोर्ट के अनुसार च्यूइंग-गम में पोटैशियम सायनाइड मिली। च्यूइंग-गम में सायनाइड मिलायी कैसे गयी, यह नहीं मालूम हो सका।

—९७, स्वामी विवेकानंद रोड, मलाड, बंबई—४०००६४

• विवेकी राय

वह मिला स्टेशन पर। बोला, "तेरह जने को पालिश किया है।" फिर तो चौदहवां एक मैं भी हो गया। मेरी एक समस्या को भी पालिश लग गयी। चमक गयी। वास्तव में वह बहुत भद्दी समस्या है। बेरोजगारी की समस्या है। है न भद्दी ? इस देश का हर नौजवान बेकार है। सबको नौकरी चाहिए, सिर्फ नौकरी चाहिए। हाईस्कूल फेल और थर्ड डिवीजन पास को भी नौकरी चाहिए। अकेले मेरे पास सत्रह कैंडीडेट हैं। उनमें एम. ए., बी. ए., इंटर भी हैं, चूंकि उन सबके सभी प्रमाणपत्र थर्ड डिवीजन के हैं, अतः प्रामाणिक योग्यता हाईस्कूल ही मानी जाएगी। वे ग्रामसेवक, नलकूप ऑपरेटर, कंडक्टर, अध्यापक, क्लर्क और चपरासी कुछ भी हो सकते हैं। नौकरी भी एक अव्वल पालिश है कि शिक्षा का फटा-पुराना जूता भी चमक जाता है। लेकिन मुझे इस पालिश के बारे में चिंता है। चिंता है कि स्टेशन से घर पहुंचते-पहुंचते उसका रंग उड़ न जाए।

वह पालिश कर रहा था। हम लोग चाय पी रहे थे। अचानक सिर उठाकर पूछता है, "क्या बजा होगा बाबू?"

"अपना काम कर। 'बजे' जानकर क्या करेगा?"

"अभी कुछ मुंह में नहीं डाला है," उसने कहा।

"और कितना कमा लिया?" मेरे मित्र ने पूछा।

इस सवाल के उत्तर में उसने झटके से पाकेट से निकालकर अपनी नन्ही-नन्ही हथेलियों पर एक रुपये का नोट और दस-दस नये पैसे के तीन सिक्के फैला दिये। एक रुपया तीस नया पैसा !

वह दस वर्ष का छोकरा। फटी कमीज, गंदा पैंट और एक बहुत गंदा झोला, झोले में ब्रश, पालिश के डिब्बे, बस। रंग सांवला है। बाल छोटे-छोटे

लेखक

हैं। दांत कुछ निकले हैं। बदन की छरहरी बनावट के अनुरूप मुंह कुछ लंबा है। आंखों में चमक है। जो कुछ है प्रत्यक्ष है, एकदम खुला, मुक्त, शिक्षा-दीक्षा रहित-सहित !

घड़ी साढ़े आठ बजा रही थी। उसने अभी कुछ मुंह में नहीं डाल रखा है। यह मुंह धोने के पूर्व की कमाई है। सारा दिन आगे पड़ा है, जैसे सारी जिंदगी आगे पड़ी है। लेकिन चिंता क्या है? आबाद रहें जूता पहननेवाले ! धूल झाड़ देगा तो पैसे बन जाएंगे। हाथ चला देगा तो हवा में उड़ते नोट पकड़ में आ जाएंगे।

"कुछ पढ़ा-लिखा है ?" मैंने पूछा।

"नहीं।" उसने दृढ़ता से उत्तर दिया और मुसकराने लगा। उसकी मुसकान की भाषा बड़ी जोरदार थी। उसे और जोरदार बनाने के लिए उसने तानकर अंगूठा दिखा दिया ! बड़ा नटखट शैतान है। अंगूठा दिखा रहा है। किसे दिखा रहा है ? कब जाना कि अंगूठा माने अपढ़ ? कैसे जाना कि अंगूठा माने एक भारी व्यंग्य ? कितने तुच्छ हो गये उस नाचीज लड़के के आगे सारी दुनिया के पढ़े-लिखे लोग ? उसका अंगूठा एक जबरदस्त चुनौती की तरह तन गया।

बेशक उसने अंगूठा दिखा दिया उन बड़ी-बड़ी यूनिवर्सिटियों को ; जहां से गाढ़ी कमाई खरचकर और भारी-भरकम डिगरियों को लेकर अहंकार में फूले बेकार लोग निकल रहे हैं, उन महान शिक्षा-

शास्त्रियों को, मोटी-मोटी पुस्तकों में अटके भारी-भरकम सिद्धांतों को जिन्हें घोंटकर प्रशिक्षित किये गये लोग अपने गुरुओं पर सोडावाटर की बोतलें, पेट्रोल, छुरा और बम लेकर पिल पड़ते हैं, ज्ञान-विज्ञान और काव्य-कला से पूर्ण उन मूल्यवान पाठ्य-पुस्तकों को जिनके भीतर से अनुशासन-हीनता, भ्रष्टाचार, बाबूगिरी, शोषण, परोपजीविता, नंगई, स्वार्थपरता, अमानवता और देशद्रोहादि के दैत्य डपट रहे हैं; उन सोने की खान-सी परीक्षाओं को जिनको उत्तीर्ण करने में ही जीवन निचुड़ जाता है और उत्तीर्ण करने के बाद जो कुछ बच जाता है वह एकदम खोखली,

आपके रूप के अनेक चहेते...
आपकी त्वचा के अनेक दुश्मन
पॉण्ड्स वैनिशिंग क्रीम को अपना साथी बनाइए.
हवा, धूल और मौसम के तीखे प्रभाव से आपकी त्वचा की रक्षा करती है पॉण्ड्स वैनिशिंग क्रीम. आपके रूप को और भी सलोना बनाने के लिए इसमें एक खास पदार्थ ह्युमेक्टेंट मिला है जो आपकी त्वचा की नमी को सुरक्षित रखता है. तभी आपका मुखड़ा मोतीयारा दीखता है और तैलमुक्त भी.
इसे आप आदर्श पाउडर बेस के रूप में प्रयोग कर सकती हैं. घंटों-पहरों यह आपके सौंदर्य को अम्लान और मोहक बनाए रखती है. आप इसे संपूर्ण सौंदर्य प्रसाधन के रूप में भी प्रयोग कर सकती हैं.
आप तो जानती ही हैं, आपकी त्वचा को भी उतना ही प्यार-दुलार चाहिए जितना कि आपको.
पॉण्ड्स वैनिशिंग क्रीम - आदर्श पाउडर बेस
PONDS
VANISHING CREAM
चीज़ब्रो-पॉण्ड्स इन्कॉ.
(सीमित दायित्व सहित यू.एस.ए. में संस्थापित)

विरस और कूड़े-सी जीवन की खोल ! सचमुच उसने सबको अंगूठा दिखा दिया !

उसने अंगूठा दिखाया देश के उन कोटि-कोटि अभिभावकों को जो अपने बच्चों को आदमी बनाने के लिए स्वयं बैल बन जाते हैं, टट्टू बन जाते हैं, खपते-खपते खप जाते हैं, थहरा जाते हैं, थसक जाते हैं। और बच्चा स्कूल-स्कूल की चहारदीवारियों को लांघता, गाढ़ी कमाई गलाता जो चीज लेकर लौटता है वह है रोजगार-दफ्तर का रजिस्ट्रेशनकार्ड !

रोजगार - दफ्तर का रजिस्ट्रेशन-कार्ड ? मेरे मन में एक बहुत ही हास्यास्पद और गलत सवाल पैदा हुआ कि उससे पूछूं कि तुमने भी रजिस्ट्रेशन कराया है ? क्योंकि वह नाबालिग बच्चा नहीं लग रहा था। फिर मैंने सोचा कि उसकी पालिश के ब्रश से तो झड़-झड़कर इंटर कालेज की लेक्चररशिप निकलती है, सब-इंसपेक्टर का मूल वेतन मय महंगाई-भत्ते के निकलता है, तहसीलदारी और ओवरसियरी निकलती है। वह काहे को कहीं किसी एम्प्लायमेंट की खाक छाने ? उसकी पालिश की डिबिया एक जादुई रोजगार-दफ्तर है। वह अखिल आजीविका का प्रस्तोता है।

मुझे लगा कि अपने सत्रहों बेकार उम्मीदवारों को , जो उस बूढ़े बालक के आगे सचमुच नाबालिग लगते थे, हांककर उसके सामने खड़ा कर देना चाहिए।

पालिश करना सीखो तुम एम. ए. पास, वर्षों से ऊंची नौकरी खोजते-खोजते थककर एक नये टुटहे हाई स्कूल में डेढ़ सौ पर हस्ताक्षर कर पचास पर जमाने की मार झेलने में भी असफल होकर अब अपने को बेकार कहते शरमानेवाले !

पालिश करना सीखो तुम बी. ए. पास, बहुत उत्साह से बी. एड. कर रोज समाचार-पत्रों में विज्ञापन देखनेवाले ! पालिश करना सीखो तुम इण्टर पास, अंगरेजी-हिंदी दोनों का टाइप करना सीखकर किंकर्तव्यविमूढ़ !

और पालिश करना सीखो तुम हाई-स्कूल पास, ओ थर्ड डिवीजनर्स, तुम्हारे लिए दुनिया में कहीं जगह नहीं है। तुम नौकरी के भूखे, विधायकों के आश्वासनों से पेट नहीं भरता, सिफारिशी कागज की नाव नाकाम सिद्ध होती है, डूब रहे हो। तुम्हारी मति का उच्चाटन हो गया है। तुम आकाश में उड़ते हो। धरती की ओर नहीं देखते। तुम्हारे हाथों में जंग लग गया है। बित्ते भर का लड़का अपने बराबर ब्रश से नौकरी बुहार रहा है, तुम घोड़े बराबर जवान नौकरी के फोड़े को हाथ में पाले अंगद बने बैठे हो. . . !

और मैं बड़ी देर तक भावुकता के इस प्रवाह में बहता रहा। तभी मेरे मित्र ने उससे दूसरा सवाल पूछा—

"यह पैसा घर किसको दोगे ?"

"किसको देंगे ?" उसने भी प्रश्नात्मक उत्तर दिया।

"हां, बताओ ! बाप को दोगे ?"

मच्छर बढ़ते ही जाते हैं...

replex
मुफ्त!
रिप्लैक्स की
हर ट्यूब के
साथ रंगीन
क्लो-पेग्ज़

"नहीं ।"

"तब किसको ? मां को दोगे ?"

"नहीं !"

"तब ? सिनेमा देखेगा क्या ?"

"नहीं । मैं सिनेमा कभी नहीं देखता ।"

"तब पैसा क्या करोगे ? अपने पास रखोगे ?"

"नहीं ।"

"अच्छा ! विचित्र हो ! आखिर पैसा क्या होगा ?"

"भैया को देंगे ।"

"भैया को क्यों दोगे ? तुम्हारा मां-बाप नहीं है ?"

"हैं, परंतु उन्हें नहीं दूंगा । वे घर-खर्च कर देंगे ।"

"तब तुम भैया को काहे दोगे ?"

"भैया कालेज में पढ़ते हैं ।"

और उसका यह उत्तर सुनकर मेरे मन की पालिश बदरंग पड़ने लगी । ऊंचाई पर मंडराता मन परकटे-पक्षी की भांति नीचे धरती पर गिरकर छटपटाने लगा । सारी फिजा बदल गयी । अब कौन-सा संशोधन करूं ? इसकी पालिश की डिबिया रोजगार-दफ्तर नहीं; वह सुपरिचित काजल की कोठरी निकली जिसमें रहने-वाले सभी कालिमा में रंगे हैं । मैंने साहस करके पूछा, "क्या तुम्हारे पिता तुम्हारे भैया को पढ़ाना नहीं चाहते ?"

"नहीं, वे कहते हैं कि पढ़-लिखकर क्या करेगा ? दर-दर की ठोकर खाएगा । नन्हे पर से ही कुछ काम सीखो और कुछ नहीं तो चिनियाबादाम का खोंमचा ही लगा । क्लर्कों से अधिक मिलेगा । रिक्शा ही हांक, मुर्दारसी से अधिक आजाद और फायदे में रहेगा, पर भैया नहीं मानते ।"

"तो, तुम क्यों पैसा देते हो उसे ?"

"काहे नहीं दूं ? पढ़ना-लिखना कौन खराब काम है ? बिना पढ़े आदमी पशु कहलाता है ।"

"तो तुम खुद क्यों नहीं पढ़ते ?"

"पढ़-लिखकर लोग बेकार हो जाते हैं ।"

अब मैंने उसे छकाना चाहा ।

"तो इसका मतलब यह कि तुम पैसा खर्च करके अपने भाई को बेकार बनाना चाहते हो ?"

"नहीं साहब, वह पढ़-लिखकर बड़ा आदमी बनेगा । अच्छी सर्विस करेगा !"

"तो तुम खुद वही क्यों नहीं करते हो ? क्यों नहीं स्कूल में जाकर पढ़ते हो ?"

"पढ़ने पर मेरी यह सर्विस चली जाएगी और इससे अच्छी सर्विस नहीं मिलेगी ।"

"तुम अपने माता-पिता को पैसे नहीं देते । वे जरूर तुमसे नाराज होंगे ।"

"नहीं साहब, वे बहुत खुश रहते हैं कि अपने भाई को पढ़ा रहा है !"

—और मुझे लगा कि सचमुच ही इस छोकरे ने, पालिश कर दिया, पढ़ा दिया ।

—प्रोफेसर्स कालोनी, सकलेनाबाद, गाजीपुर (उ. प्र.)

गौतम भारद्वाज, जयपुर : 'आइसोमर' क्या होते हैं?

'आइसोमर' वे यौगिक हैं जिनके कणों में अवयव तत्त्वों के अणु एक ही अनुपात में, किंतु भिन्न व्यवस्था-क्रम में आते हैं। ये यौगिक रसायन-शास्त्र में हिंदी में 'समावयवी' कहलाते हैं।

गोविंदराय 'नीलकंठ', मुजफ्फरपुर : मनुष्य की श्वसन-प्रक्रिया के संबंध में मुझे एक विचारोत्तेजक तथ्य मालूम हुआ है कि श्वसन-प्रक्रिया केवल श्वास-नलिका और फेफड़ों से ही नहीं, शरीर की पूरी त्वचा से चलती है। यहां तक कि एड़ियों की कठोर खाल और बालों से ढंकी खोपड़ी की त्वचा से भी आदमी 'सांस' लेता है। इसी संबंध में मुझे यह आश्चर्यजनक जानकारी मिली है कि छाती, पीठ और पेट की त्वचा में श्वास-प्रक्रिया सबसे अधिक सघन होती है, यहां तक कि फेफड़ों से भी अधिक। शरीर-विज्ञान के अनुसार यदि हम त्वचा और फेफड़ों के सर्वाधिक श्वसनशील दो समान खंडों की तुलना करें तो पाएंगे कि त्वचा फेफड़ों की अपेक्षा २८ प्रतिशत अधिक आक्सीजन सोखती है और ५४ प्रतिशत अधिक कार्बन डाइआक्साइड बाहर निकालती है। क्या इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि क्षय आदि रोगों से फेफड़ों के खराब हो जाने पर भी त्वचा की श्वसन-प्रक्रिया से मनुष्य को जीवित रखा जा सकता है? तथ्यपरक संतोषजनक उत्तर दें।

आप कोई बहुत दूर की कौड़ी नहीं लाये हैं। जीव-विज्ञान का सामान्य छात्र भी इन तथ्यों से परिचित होता है। आपने 'त्वचा और फेफड़ों के सर्वाधिक श्वसनशील दो समान खंडों की तुलना' करके यह तो बता दिया कि त्वचा अधिक श्वसनशील है, किंतु इस तथ्य पर ध्यान नहीं दिया कि मनुष्य के शरीर की त्वचा की पूरी सतह मुश्किल से दो वर्ग मीटर होती है, जब कि फेफड़ों की पूरी सतह को फैलाया जाए तो वह ९० से १०० वर्ग मीटर तक होगी यानी त्वचा की कुल सतह से ४५-५० गुना अधिक! साथ ही यह ध्यान रखिए कि फेफड़ों की इस सतह में ७०,००,०० ००० वायुकोष्ठिकाएं होती हैं और ये सूक्ष्म वायुकोष्ठिकाएं ही वातावरण और रक्त के बीच श्वसन-संबंध कायम रखती हैं।

सत्पुरुष स्वामिनाथन्, मद्रास : दिक्काल (स्पेस एंड टाइम) की वर्तमान अवधारणा के अनुसार वर्तमान से अतीत

में लौटना संभव नहीं माना जाता, किंतु क्या यह वास्तव में ही असंभव है? क्या कालचक्र को उलटा घुमाने में हम किसी भी प्रकार समर्थ नहीं हो सकते? कृपया इसकी वैज्ञानिक संभावनाओं पर, यदि कुछ हों तो, प्रकाश डालें।

कालचक्र को उलटा घुमाने की कल्पना बड़ी रोमांटिक है और यह विज्ञान-कथाकारों को ही नहीं, बहुत-से दार्शनिकों तथा वैज्ञानिकों तक को आकृष्ट करती रही है, परंतु है यह कल्पना ही। कारण यह है कि कालचक्र जैसी कोई चीज नहीं होती। 'चक्र' से ऐसा आभास होता है जैसे प्रकृति की तमाम प्रक्रियाएं एक ही ढंग से बार-बार दोहरायी जाती रहती हैं, जबकि वास्तव में ऐसा नहीं है। विश्व की परम वास्तविकता पदार्थ है, जो अपने असंख्य विभिन्न रूपों, संबंधों, गतियों एवं अंतर्क्रियाओं में दिक्काल को अंतर्निहित किये हुए है। वैज्ञानिक लोग जब यह कहते हैं कि पदार्थ का अस्तित्व दिक्काल में होता है, तब उसका मतलब यह नहीं समझना चाहिए कि दिक् (स्पेस) और काल (टाइम) का पदार्थ से पृथक कोई अस्तित्व है, या वे बर्तन जैसी चीजें हैं जिनमें पदार्थ भरा रहता है। वास्तव में इस गलत समझ से ही कालचक्र और उसे उलटा घुमाने की कल्पनाएं पैदा होती हैं। वास्तव में पदार्थ को दिक्काल से पृथक नहीं किया जा सकता। पदार्थ की विभिन्न रूपाकृतियों के ढांचों तथा उनके विस्तार और सहअस्तित्व से 'स्पेस' का बोध होता है एवं पदार्थ में होनेवाले परिवर्तन, उन परिवर्तनों के बीच की अवधि, परिवर्तनों की श्रृंखला तथा कारण-परिणाम के क्रमिक संबंधों से 'टाइम' का। इस प्रकार काल की गति और दिशा हमेशा सीधी, अर्थात अतीत से वर्तमान की ओर एवं वर्तमान से भविष्य की ओर ही होती है। यदि इस क्रम को उलटा किया जाए (जो असंभव है) तो प्रकृति के बहुत-से आधारभूत नियमों में व्यतिक्रम होगा। उसका अर्थ होगा सारी की सारी जैव, अजैव, यांत्रिक, रासायनिक, तापीय, चुंबकीय, आणविक, परमाणविक आदि प्रक्रियाओं को उलटा करना। उदाहरण के लिए तब ईंधन से आग और धुआं पैदा न होकर आग और धुएं से ईंधन पैदा होगा। इस प्रकार प्रकृति के आधारभूत नियमों, उनके अनुसार बनी कारण-कार्य परंपरा, और उसकी निरंतर भविष्योन्मुखी गति का कोई मतलब ही नहीं रह जाएगा। पहले परिणाम सामने आएंगे, बाद में उनके कारण; और चूंकि वे कारण भी किसी अन्य कारण के परिणाम होंगे, इसलिए फिर उनके कारण सामने आयेंगे और इस प्रकार किसी भी चीज का मूल कारण जानना असंभव हो जाएगा। फलस्वरूप हमारी ज्ञान-प्रक्रिया भी बिलकुल उलट-पलट हो जाएगी। पदार्थ की क्रिया और प्रतिक्रिया का क्रम उलट जाने पर किसी भी प्रकार की अंतःक्रियाएं भी असंभव हो

जाएंगी और शायद पदार्थ का अस्तित्व ही खटाई में पड़ जाएगा। लेकिन ऐसा कोई नियम प्रकृति में नहीं है, जो कारण-कार्य और क्रिया-प्रतिक्रिया की तमाम प्रक्रियाओं को इस तरह उलट दे।

श्रीकृष्ण तैलंग, इंदौर : हिंदी में 'धन्यवाद' शब्द अंगरेजी के 'थैंक्स' के पर्यायवाची के रूप में प्रचलित है, किंतु संस्कृत में 'धन्य' का अर्थ धनवान पाया जाता है, जिसके अनुसार 'धन्यवाद' का अर्थ होगा "धनवान कहना'। तब 'थैंक्स' से इसकी क्या संगति बैठती है?

आपका कहना सही है। संस्कृत में 'धन्य' का अर्थ धनवान, भाग्यवान, सर्वोत्तम, पुण्यात्मा आदि होता है और 'वाद' का अर्थ कहना, वर्णन करना आदि। इस प्रकार 'धन्यवाद' का अर्थ हुआ किसी को धनवान कहना, भाग्यवान कहना, पुण्यवान कहना आदि। इससे खींचतान कर यह अर्थ निकाला जा सकता है कि यह किसी अनुग्रह, उपकार आदि के बदले में कृतज्ञता प्रकट करने के लिए उसकी प्रशंसा का सूचक शब्द है। किंतु अंगरेजी के 'थैंक्स' का समानार्थी शब्द संस्कृत में 'साधुवाद' है। 'थैंक्स' के अर्थ में 'धन्यवाद' शब्द हिंदी में शायद बंगला से आया है, क्योंकि हिंदी में प्रयुक्त होने से बहुत पहले से यह शब्द बंगला में चलता था।

मृदुला सूर्यकांत पारेख, अहमदाबाद : विक्रम संवत चलानेवाले राजा विक्रमादित्य के विषय में इतिहास की पुस्तकों में भिन्न-भिन्न सूचनाएं मिलती हैं। दूसरे, विक्रमादित्य नाम के अनेक राजाओं के उल्लेख मिलते हैं, इसलिए भी काफी भ्रम होते हैं। कृपया स्पष्ट करें कि इस नाम के कुल कितने राजा हुए हैं (यह वास्तविक नाम है या उपाधि, यह भी) और विक्रम संवत वास्तव में किसने चलाया।

विक्रमादित्य वास्तविक नाम न होकर प्राचीन पराक्रमी राजाओं द्वारा धारण की जानेवाली उपाधि (विरुद) ही है। ये राजा प्रायः विदेशी शक्तियों को चुनौती देने और उन्हें परास्त करनेवाले राजा रहे हैं। इस प्रकार के विक्रमादित्य कम से कम पांच अवश्य हुए हैं-१. आदि विक्रमादित्य (५७-५६ ई. पू.), २. चंद्रगुप्त विक्रमादित्य (लगभग ३७५-४१४ ई.), ३. स्कंदगुप्त विक्रमादित्य (लगभग ४५५-४६७ ई.), ४. मालवा का यशोधर्मन (लगभग ५३२-३३ ई.) और ५. रेवाड़ी का हेमचंद्र विक्रमादित्य (लगभग १५५६ ई.)। कुछ इतिहासकार चालुक्य विक्रमादित्यों को भी गिनते हैं।

विक्रम संवत आदि विक्रमादित्य ने चलाया, ऐसा माना जाता है, किंतु इस आदि विक्रमादित्य का इतिहास अत्यंत संदिग्ध है।

चलते चलते एक प्रश्न और...

कु. क. ख. ग : मनुष्य की सर्वोत्तम रचना?

अभी तक रची नहीं गयी।

—बिंदु भास्कर

समर्थ रामदास को छत्रपति शिवाजी अपना गुरु मानते थे। उन्होंने अपना सारा राजपाट गुरुजी को ही अर्पित कर दिया था। उनका भी शिवाजी के प्रति अगाध स्नेह था। एक बार समर्थ रामदास अपने शिष्यों के साथ शिवाजी से मिलने जा रहे थे। रास्ते में एक नदी के किनारे उन्होंने डेरा डाला। सबको जोरों की भूख लगी, पर उनके पास खाने को कुछ भी न था। पास ही एक गन्ने का खेत था। गुरुजी के शिष्यों ने गन्ने तोड़े और चूसने लगे। खेत का मालिक निगरानी कर रहा था। उसने आव देखा न ताव, तोड़े हुए गन्नों से ही सबको खूब मारा। गुरुजी को भी इतना मारा कि उनकी पीठ छिल गयी।

पैदल-यात्रा करते, दो दिन बाद समर्थ रामदास शिष्यों सहित शिवाजी के दरबार में पहुंचे। शिवाजी ने उनका खूब आदर-सत्कार किया और स्वयं उनकी सेवा में जुट गये। वे जब गुरुजी को स्नान कराने लगे तब उन्हें उनकी पीठ पर चोट के निशान दिखायी दिये। शिवाजी ने इसका कारण पूछा। पहले तो गुरुजी ने टालने का प्रयत्न किया, किंतु बहुत पूछने पर आपबीती सुना दी।

सुनकर शिवाजी के क्रोध की सीमा न रही। जिन गुरु के चरणों में सारा राज्य अर्पित है, उन्हीं को राज्य का एक अदना-सा आदमी अपमानित करे, यह उनके लिए असहनीय था। शिवाजी ने किसान को कठोर दंड देने का निश्चय किया। वे अभी सोच ही रहे थे कि समर्थ रामदास ने कहा, "यदि तू मेरा सच्चा शिष्य है तो उस किसान को वह जंगल दे दे। यही मेरी सच्ची सेवा होगी।"

शिवाजी को गुरु की आज्ञा के सम्मुख नतमस्तक होना पड़ा और उन्होंने उस किसान को बुलाकर वह सारा जंगल उसे दान में दे दिया।
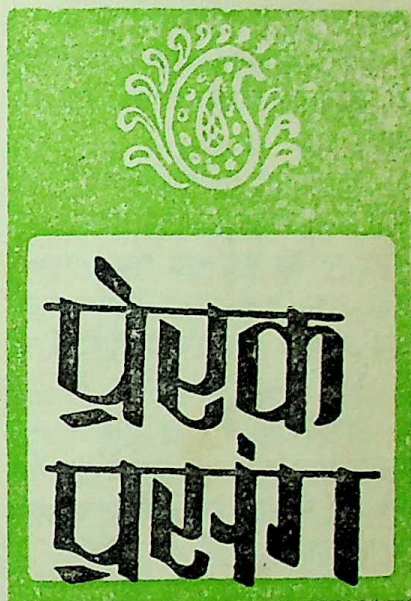
महाराणा प्रताप की सेना में रघुपति-सिंह नामक एक वीर सरदार था। उसके मारे मुगल सेना का नाक में दम था। मुगल सेनापति ने उसे पकड़कर लाने-वाले को बहुत बड़ा इनाम देने की घोषणा की।

एक बार अकबर की सेना ने चित्तौड़-

गढ़ को घेर लिया। महाराणा प्रताप राजपूत सरदारों सहित अरावली पर्वत के वनों में जा छिपे। एक दिन रघुपतिसिंह को समाचार मिला कि उसका इकलौता बेटा बहुत बीमार है। उसका दिल अपने पुत्र को देखने के लिए बहुत व्याकुल हो उठा। वह उसी समय घोड़े पर चढ़कर अपने घर के लिए रवाना हुआ।

नगर के पहले दरवाजे पर पहुंचते ही पहरेदार ने क़ड़ककर पूछा, "तुम कौन हो?"

रघुपतिसिंह झूठ नहीं बोलना चाहता था। उसने अपना नाम बता दिया। पहरेदार मन ही मन बहुत खुश हुआ और कहने लगा, "तुम्हें पकड़ने के लिए सेनापति ने बहुत बड़ा इनाम घोषित किया है। मैं तुम्हें बंदी बनाऊंगा।"

रघुपतिसिंह बोला—"भाई! मेरा लड़का सख्त बीमार है, उसका मुंह देख लेने दो। मैं थोड़ी देर में लौटकर अपने आपको तुम्हारे सिपुर्द कर दूंगा।"

थोड़ी आनाकानी के बाद पहरेदार मान गया। रघुपतिसिंह अपनी स्त्री और पुत्र को धीरज बंधाकर पहरेदार के पास लौट आया। पहरेदार उन्हें सेनापति के पास ले गया। पूरी बात सुनकर सेनापति ने पूछा, "रघुपतिसिंह, क्या तुम्हें मालूम नहीं था कि पकड़े जाने पर तुम मौत के मुंह में जाओगे? फिर तुम पहरेदार के पास क्यों लौटे?"

रघुपतिसिंह ने उत्तर दिया, "मैं मरने से नहीं डरता। राजपूत वचन देकर उससे डिगते नहीं और किसी के साथ विश्वासघात नहीं करते।"

सेनापति रघुपतिसिंह की सच्चाई पर मुग्ध हो गया और उसने रघुपतिसिंह के मुक्त किये जाने की आज्ञा दे दी।

—लक्ष्मी थदानी

सन १७२० में फ्रांस के मार्सेल्स नगर में भयंकर महामारी फैली। डॉक्टरों ने व्याधि का कारण खोजने का काफी प्रयत्न किया, लेकिन असफल रहे। अंत में यह सोचा गया कि महामारी से मरे व्यक्ति का शव चीरकर जांच करने पर ही यह ज्ञात हो सकता है कि रोग का मनुष्य के शरीर पर कैसे प्रभाव पड़ता है। किंतु ऐसा करना स्वयं डॉक्टर के लिए खतरे से खाली नहीं था।

तभी हेनरी गायन नामक एक नौजवान डॉक्टर आगे आया और बोला, "मैं इसके लिए तैयार हूं। मैं अविवाहित हूं। यदि इसमें काम भी आ जाऊं, तो कोई बात नहीं।"

हेनरी इस बीमारी से मरे आदमी का शव चीरने लगा। शव से भीषण दुर्गंध उड़ रही थी। हेनरी शव चीरता रहा। उसे जो दिखायी दिया, सब नोट करता गया। नोट किये हुए कागजों को महामारी के प्रभाव से बचाने के लिए वह उनमें रसायन लगाकर रखता जाता था।

अभी हेनरी [illegible] पूरा भी नहीं कर पाया था कि ज्वर ने उसे घर दबोचा और बारह घंटे बाद वह सदा के लिए सो गया। उसके सहयोगी डॉक्टरों ने उसके कागजों का गहरा अध्ययन किया और उससे उन्हें रोग के संबंध में उपयोगी जानकारी मिली। **—संजय गौड़ पथिक**

एक दिन गुरु नानक अकेले बैठे थे, तभी एक डाकू उनके पास आया और उनके चरणों पर गिरकर कहने लगा, "मैं अपने जीवन से तंग हूं। मैं अपने पापों से मुक्ति चाहता हूं और अपना जीवन सुधारना चाहता हूं।"

गुरु नानक पहले उस डाकू के हाव-भाव देखते रहे, फिर बोले, "तुम आज से ही बुरे कर्म करना छोड़ दो, सब ठीक हो जाएगा।" गुरु नानक की शिक्षाएं सुनकर और उन्हें प्रणाम करके डाकू लौट गया, लेकिन कुछ दिनों के बाद वह पुनः लौटा और कहने लगा, "आपकी शिक्षाओं पर अमल करने की भरसक कोशिश की, मगर मुझे इसमें सफलता न मिल सकी। मैं अपनी आदत से लाचार हूं, अब मेरे सुधरने का और कोई उपाय बताइए।" उसने गुरु के चरणों में सिर रख दिया।

अब गुरु जी सोच में पड़ गये कि आखिर इसे सुधारने के लिए क्या उपाय बताया जाए! फिर उन्होंने ओठों पर मुसकान लाते हुए कहा, "अच्छा, जो तुम्हारे मन में आय करो, लेकिन सब कुछ करने के बाद रोजाना लोगों के सामने अपने किये गये कामों का बखान कर दो।"

डाकू को यह उपाय आसान मालूम हुआ। वह प्रणाम करके चला गया। एक दिन अचानक जब गुरुजी ध्यानमग्न थे, डाकू उनके सामने आ खड़ा हुआ। गुरुजी ने जब उसे पास खड़े देखा तो कहा, "बहुत दिन बाद लौटे हो!"

डाकू ने कहा, "मैं तो आपके बताये उपाय को बहुत आसान समझता था, लेकिन वह तो बहुत कठिन निकला। लोगों के सामने अपनी बुराइयां कहने में बड़ी ग्लानि होती है, इसलिए मैंने बुरे काम करना ही छोड़ दिया है।" **—आज्ञाराम प्रेम**

श्रेष्ठ मनुष्य इस बात से दुःखी नहीं होता कि लोग उसकी योग्यता को मान्यता नहीं देते, उसे दुःख तब होता है जब उसकी योग्यता को सीमाओं में बांध दिया जाता है।

—कनफ्यूशियस

जन-वृद्धि

हमें मालूम नहीं
धरती उपजाऊ है या बंजर
पर हर वर्ष
पैदा होते जा रहे हैं
रंग-बिरंगे बंदर

नीली छतरीवाला

नेताजी के आश्वासनों से
थमी है
आम आदमी की जुबान
बजते हैं मंदिरों में घंटे
होती है मस्जिदों में अजान
वर्ना
चली गयी होती जमीन ऊपर
आ गया होता नीचे आसमान

जादू

नेताजी के पास है
एक बड़ा कमाल
आश्वासन देने और उसे
पूरा न कर पाने के अफसोस के बीच
डालते हैं जेबों में नोट
निकालते हैं खाली रूमाल

—सुखवीर विश्वकर्मा

तरस

नृत्य-विशारदा पत्नीजी
पति पर इतना तरस खाती हैं
कि उन्हें दिन-रात
अंगुली पर नचाती हैं

संवेदना

मंत्रीजी की मृत्यु पर
सहृदय नेताजी करने गये मातमपुर्सी
वेदना के स्वर में बोले
"ईश्वर मृतात्मा को शांति
शोकाकुल परिवार को धैर्य दे
और मुझे दे कुरसी !"

—वाल्मीकि ऋषीश्वर

पूछताछ

एक्सक्यूज मी
शराब की दूकान किधर है
जी ! बस... थोड़े आगे
'गांधी-मार्ग' पर है

—बृजकिशोर सिंह 'किशोर'

प्रगति

चीजों के भाव
आसमान पर चढ़ गये हैं
देखिए, हम
अंतरिक्ष-युग में
कितना आगे
बढ़ गये हैं

—सूर्यकुमार पांडेय

● भगवतीशरण सिंह

पराजित हाथी

पिछली तीन पीढ़ियों से मेरे परिवार में शिकार का शौक चलता आया है, लेकिन हमारे लिए शिकार कोई अमानुषिक व्यसन मात्र नहीं है, बल्कि इसमें साहस, शौर्य और मानवीय आनंद का समन्वय होता है। जंगल में हम जब शिकार खेलने जाते हैं तब रात में हमारे साथी आसमान में झिलमिलाते हुए तारे, नक्षत्र और ग्रह ही होते हैं। वहां हमारे साथ कुतुबनुमा तो होता नहीं, इसलिए रास्ता भूल जाने पर यही तारे रास्ता बताते हैं और दिशा दिखाते हैं। इन्हीं से पता चलता है कि कितनी रात बीत चुकी है और कितनी रात बाकी है।

शिकारी का प्रकृति से निकट का संपर्क रहता है। उत्तर प्रदेश में कोटद्वार के रास्ते पर लंबे अतीत से एक पेड़ जमा हुआ था जिसे वहां के लोग 'पानीवाला पेड़' कहा करते थे। उस पेड़ में कटोरदान के आकार का एक खोखल था। उस खोखल में धीरे-धीरे टप-टप करता हुआ पेड़ का रस टपका करता था। यह रस पानी के स्वाद वाला ही होता था। थोड़ी देर में ही एक-दो चुल्लू पानी भर जाता था। उस रास्ते से आने-जाने वाले यात्री मई-जून की गरमी में भी उसी पानी से अपनी प्यास बुझा लिया करते थे। मैंने भी उस वृक्ष का जल पिया है और अलौकिक तृप्ति का अनुभव किया है। जंगल विभागवालों ने न जाने क्यों अब उस वृक्ष को कटवा डाला है।

अनजाने जंगलों में सड़क बनाने का काम करनेवाले मजदूरों, स्त्रियों और उनके बच्चों के मन में टेसू के फूले हुए वृक्ष कितना आनंद भर देते होंगे, इसका अनुभव शिकारी को हो सकता है, शहरों में रहनेवाले साहित्यकारों को नहीं। बोक्सा, कंजर आदि जंगली जातियों का अपने ढंग का अलग जीवन होता है। शिकार में इन लोगों से काफी सहायता मिलती है।

वैसे तो मुझे शिकार खेलने और शिकारी मित्रों के साथ रहने का लगभग ४० वर्ष का अनुभव है, लेकिन हाथी के शिकार की एक रोमांचक घटना मैं अभी तक नहीं भूल पाया हूं। हिंदुओं का विश्वास है कि हाथी को नहीं मारना चाहिए। गणेशजी के मुखारविंद पर हाथी की सूंड़ सुशोभित थी, इसलिए लोग हाथी को गणेश का प्रतीक मानते हैं। लेकिन शिकारियों

के लिए इस भावना का कोई अर्थ नहीं होता, क्योंकि कभी-कभी हाथी जब आक्रामक हो उठता है तो उसे मारना अनिवार्य हो जाता है।

हाथियों के प्रत्येक झुंड का एक सरदार होता है। जब तक वह समर्थ, बलवान और जीवंत रहता है, तभी तक उसे सरदार माना जाता है। जब वह अक्षम, वृद्ध या जीर्ण-शीर्ण हो जाता है, तब दल के अन्य हाथी एक मत से उसे अपदस्थ कर देते हैं। पद से हटाये जाने का संकेत पाते ही वह सरदार झुंड के सभी हाथियों से लड़ता है। कई हाथियों से एक साथ लड़ने पर उसका हारना निश्चित है।

यह सरदार हाथी हार जाने पर पराजय की खीझ के कारण भयावह हो उठता है। अंगरेजी में उसे 'रोग' कहा जाता है। यह दुष्ट हाथी जंगलों में एकाकी घूमा करता है। अन्य हाथियों के साथ संघर्ष में उसके एकाध दांत टूट चुके होते हैं। यह चिन्ह देखते ही सावधान हो जाना चाहिए कि यह पाजी हाथी कभी भी अकारण ही आक्रमण कर सकता है। ऐसे दुष्ट, एकाकी हाथी को मारने के लिए प्रायः पुरस्कार घोषित किया जाता है।

वैसे भी जंगली हाथियों में एक प्रवृत्ति होती है कि वे जंगल के आसपास के खेतों में लगी फसलों को कुचल दिया करते हैं। गन्ना हाथियों को बहुत प्रिय होता है। हाथियों के झुंड खेतों में घुस जाते हैं और जितना खाते नहीं, उससे अधिक गन्ने उखाड़ते हैं और पूरे के पूरे खेत रौंद डालते हैं। ऐसे दुष्ट हाथियों का शिकार करना शिकारियों का परम कर्तव्य हो जाता है।

मुरादाबाद और बिजनौर की सीमा पर ताजपुर नामक रियासत है। राजा जसजीत सिंह उसी रियासत के स्वामी और मेरे प्रिय मित्र थे। उनके सामने उनकी प्रशंसा करना ठीक न होता, इसलिए जब वे संसार में नहीं हैं, तब उस साहसी शिकारी की चर्चा सभी के लिए प्रेरणादायक हो सकती है।

कोटद्वार के आगे गंगा के किनारे खारा का जंगल है। हम लोग हाथियों के एक उत्पाती झुंड का मुकाबला करने के लिए उस जंगल में गये हुए थे। शिकारी-दल में राजा जसजीत सिंह के साथ उनका भांजा, मैं और मेरा बड़ा पुत्र था।

हाथियों का शिकार न तो पेड़ पर और न मचान पर चढ़कर किया जा सकता है क्योंकि इस तरह के छोटे-मोटे अवरोध हाथी के लिए कोई बाधा नहीं उत्पन्न कर पाते। हाथी का शिकार या तो हाथी पर बैठकर या पैदल चलकर ही किया जा सकता है। अधिक से अधिक ताकतवर गोली का भी हाथी पर कोई खास असर नहीं होता, अगर निशाना सही न बैठे। जब तक हाथी का मस्तक या भेजा नहीं फटता तब तक वह नहीं मरता।

हाथी के मस्तक पर निशाना साधने के लिए ४० डिग्री का ऐंगिल बनाना पड़ता

है और ऐसे शिकार के लिए प्रायः हाथी से २०-२५ गज की दूरी पर खड़ा होना होता है। यह दूरी बहुत कम होती है। यदि दुर्भाग्यवश हाथी शिकारी को निशाना साधते हुए देख ले तो आक्रमण अवश्य करेगा, और ऐसी संकटपूर्ण स्थिति में शिकारी ने अगर भागने की कोशिश की तो हाथी उसे दौड़ाकर मार डालेगा। जंगल में हाथी कितना तेज दौड़ता है, इसका अनुभव किसी शिकारी को ही हो सकता है।

स्थिति ऐसी हो रही थी कि उसे सरदार के पद से हटाया जानेवाला था, इसीलिए उसमें जिद्दीपन और दुष्टता की प्रवृत्ति साफ झलक रही थी। कुल छह हाथियों के झुंड में से यह सरदार हाथी ही हमारी तरफ दौड़ा, उसके आक्रमण का लक्ष्य राजा साहब थे। ऐसी स्थिति में वे पीछे भागने के बजाय हाथी की ओर पांच गज दौड़े और करीब पंद्रह गज की दूरी से उस पर गोली दागी।

ऐसी ही संकटपूर्ण स्थिति में, हम सब भी फंस गये थे। हम लोग शिकार के लिए पूरी तरह तैयार भी नहीं थे कि अचानक हाथियों का उत्पाती झुंड दिखायी पड़ा। हमने उन्हें भगाने के लिए हवा में रायफल दागी ताकि उन्हें किसी अन्य स्थान पर घेरकर शिकार किया जा सके। रायफल की आवाज सुनकर अन्य हाथी तो भाग गये लेकिन उनका सरदार नहीं भागा। यह हाथी यद्यपि अभी तक अपने झुंड में अपदस्थ नहीं किया गया था, लेकिन उसकी

राजा साहब के पास ४७६ बोर की रायफल थी जो बड़ी ताकतवर मानी जाती है। इसकी गोली लगती है तो माथे के ऊपर तो छोटा-सा सुराख ही दिखायी पड़ता है, लेकिन अंदर भयंकर विस्फोट होता है। राजा साहब का निशाना ठीक बैठा और गोली लगते ही हाथी किसी बड़े बोरे की तरह भहरा कर गिर पड़ा। इस शिकार में राजा साहब के निजी शौर्य, साहस ने ही उन्हें सफलता दिलायी।

—११ ए, गोल्फलिंक, नयी दिल्ली-३

भारत का प्रथम सरकस

• मनुहरि पाठक

बंबई के एक बड़े मैदान में एक विशाल कुएं के चारों ओर भारी भीड़ ! भीड़ में अनेक जरमन तथा बंबई के संभ्रांत नागरिक भी हैं। कुएं के आरपार व्यास रेखा पर ढाई इंच चौड़ी लकड़ी की मजबूत पट्टी रस्सों से कसी है। मराठा वेशभूषा में एक चालीस वर्षीय पुरुष पट्टी के एक छोर पर श्याम-कर्णी बढ़िया नस्ल के घोड़े पर सवार है।

घुड़सवार ने जनसमूह की ओर एक गर्वभरी दृष्टि डाली और देखते-देखते कुएं पर रखी पट्टी को पार कर गया। तालियों की गड़गड़ाहट के बीच घोड़े से नीचे छलांग लगाकर मूंछों पर ताव देते हुए भीड़ में खड़े जरमनों को उसने चुनौती दी—"कोई और ऐसा कर सकता है ?"

जरमनों के सिर झुक गये और घुड़सवार का प्रण पूरा हुआ।

१८७८ की जनवरी माह की घटना है यह ! प्रो. विलसन हर्मिस्टन एक प्रसिद्ध जरमन सरकस के नट एवं कलाकार थे। बंबई के धोबी-तालाब मैदान में उनका सरकस लगा हुआ था। सरकस में हजार से अधिक कलाकार, शेर, दरियाई घोड़ा, हाथी, घोड़े आदि थे। भारतवासियों के लिए सरकस का यह प्रथम परिचय था। दूर-दूर से लोग देखने आये थे।

सरकस में विभिन्न प्रकार के करतब दिखाये गये। घोड़ों के खेल दिखाने के बाद जरमन रिंगमास्टर ने दर्शकों की ओर हाथ करके कहा, "हमारे सरकस में घोड़े के जो करतब दिखाये गये हैं, कोई भारतीय नहीं दिखा सकता।"

दर्शकों में सतारा जिले के विष्णुपंत छत्रे नामक एक व्यक्ति बैठे थे। यह दर्पभरी चुनौती उन्हें खटक गयी। वे तपाक से खड़े हुए और जरमनों से कहा, "इस चुनौती का जवाब तुम्हें एक सप्ताह में मिल जाएगा, आ जाना मैदान में।"

हर्षभरी तालियों के बीच छत्रे वहां से निकल पड़े। भीड़ उनके पीछे थी। व्यवस्थापक ने खेल की समाप्ति की घोषणा के साथ कहा, "यूरोपवासी ही इस प्रकार के शानदार सरकस का पराक्रमपूर्ण प्रदर्शन कर सकते हैं, यह भारतवासियों के वश की बात नहीं।"

तंबू से बाहर आते हुए छत्रे ने जब यह सुना तब वे आवेश में आकर पीछे मुड़े और रोषयुक्त स्वर में ललकारा—"आप हम भारतवासियों का अपमान

कर रहे हैं । आपको अपने शब्द वापस लेने होंगे ।" दर्शकों की ओर मुड़कर उन्होंने प्रतिज्ञा की कि साल भर में भारतीय सरकस तैयार करके दिखा दूंगा ।"

दर्शकों का रोष तथा एक भारतीय की आवेश-भरी प्रतिज्ञा सुनकर जरमन व्यवस्थापकों ने अपने शब्द वापस लिये । १८७८ वर्ष पूरा होते-होते भारत के प्रथम 'छत्रे ग्रैंड सरकस' की स्थापना हो गयी । जरमनों की गरदन झुकानेवाले विष्णुपंत छत्रे ही थे जिन्होंने सरकस के प्रथम चरण के रूप में कुएं से आर-पार घोड़े पर सवार होकर प्रदर्शन किया था ।

विष्णुपंत छत्रे का जन्म सतारा जिले के अंकलखोप गांव में हुआ था । वे तीन भाई थे । विष्णु मंझले थे । दादी मां के प्यार में विष्णु का बचपन कुत्ते, बिल्ली, बंदर, कबूतर आदि पशु-पक्षियों के साथ

जरमन सरकस से ली सील मछली

प्रदर्शन के समय घोड़े पर खेल दिखाते हुए विष्णुपंत छत्रे

खेलते हुए बीता । एक बार विष्णु के भाई ने इनके पालतू बंदर के पिल्ले को नदी में डुबा दिया । इस पर उन्होंने तीन दिन तक अन्न-जल ग्रहण नहीं किया ।

विष्णु को घुड़सवारी का एवं गायन का भी शौक था । शौक पूरा करने एवं इन कलाओं में प्रवीणता प्राप्त करने के लिए वे सोलहवें वर्ष में ग्वालियर आये । वहां सिंधिया के सरदार, 'अश्व-विद्या निष्णात' बाबासाहेब आपटे की सेवा में रहकर विष्णु ने अश्वविद्या में बहुत चमत्कार दिखाये । साथ में, प्रसिद्ध गायक हद्दुखां से संगीत - शिक्षा भी प्राप्त की ।

बारह वर्ष पश्चात वे अपनी जन्मभूमि में लौट आये । माता-पिता
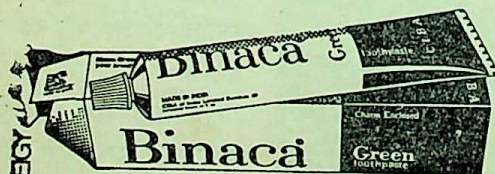
छोटा नगर

कैनवास पर बिखरी
आड़ी-तिरछी लकीरें हैं
मेरा शहर

छोटे नगर का
अपना कोई व्यक्तित्व नहीं होता
यहां लोग जीते हैं
महानगरों का-सा काल्पनिक व्यक्तित्व
और थोड़ी-सी हीनता-ग्रंथि
जो महानगर से आये
अपने किसी पुराने हमशहर से
मिलते ही
अपनी पहचान को उसके माध्यम से
प्रकट करने के प्रयास में
अपने बौने व्यक्तित्व को
और भी बौना बना देते हैं

बहस यहां भी लोग करते हैं
पर बहस करने के लिए
उनके पास
बातें नहीं, मुहावरे होते हैं
ये मुहावरे वे स्वयं नहीं बनाते
मुहावरे उन्हें बनाते हैं
और फिर वे स्वयं स्वयं नहीं रह जाते
मुहावरे बन जाते हैं

—सुरेश उनियाल
२६४६, नेताजी नगर,
नयी दिल्ली—११००२३

छद्म सत्य

अश्वत्थामा मारा गया
नर या कुंजर
तुमने तो सत्य ही बोला था
युधिष्ठिर
किंतु वे
तुम्हारे ही साथी थे धनुर्धर
जिन्होंने गुंजाया था शंख-स्वर
जब तुमने कहा था
या कुंजर
ठीक है
तुम सत्यव्रती बने रहे
और काम भी हो गया
युद्ध जीत गये दुनिया में
बड़ा नाम हो गया
किंतु उस क्षण
जो संप्रेषित हुआ था
तुम्हारे द्वारा
तुम्हें पता था
असत्य था

गुरु द्रोण
पुत्र-वध सुनकर नहीं मरे
शिष्य का
छद्म सत्य देख
लज्जा से
देह छोड़ चले गये

—रमेश कौशिक
दिल्ली परिवहन—इंद्रप्रस्थ एस्टेट,
नयी दिल्ली—११०००१

हवा के पंखों पर

• डॉ. धनवन्त किशोर गुप्त

प्राचीन काल से ही मनुष्य हवा में उड़ने की इच्छा करता रहा है। चिड़ियों को उड़ते देखकर वह भी उड़ना चाहता था। सभी प्राचीन लोक-कथाओं में उड़ने का वर्णन आता है। कहीं उड़न-खटोला था तो कहीं उड़नेवाला गलीचा। किंतु उड़ने की अदम्य अभिलाषा होते हुए भी लंबे समय तक मनुष्य का उड़ना असंभव माना जाता रहा। बाद में कुछ लोगों ने चिड़ियों की भांति उड़ने के बारे में गंभीर रूप से विचार करना आरंभ किया। इनमें से प्रमुख था इतालवी चित्रकार तथा इंजीनियर लियोनार्दो द विंची। उसने पंख फड़फड़ानेवाले एक यंत्र की कल्पना की। यद्यपि उसने इस यंत्र की ड्राइंग आदि भी तैयार की तथापि वह उसे प्रयोग की स्थिति तक लाने में असफल रहा। फिर भी उसे पूरा विश्वास था कि मनुष्य एक दिन अवश्य उड़ेगा।

उड़ने की दिशा में प्रारंभ में सभी प्रयोग असफल रहे। इन सभी प्रयोगों में नकली पंख फड़फड़ाकर उड़ने की व्यवस्था थी। चिड़ियों का शरीर अत्यंत हलका बना होता है, अतः वे अपेक्षाकृत कम शक्ति व्यय करके पृथ्वी के आकर्षण के विपरीत उड़ सकती हैं, परंतु थलचर जीवों का शरीर भारी होता है। मनुष्य को अपना शरीर ऊपर उठाने के लिए जितनी ऊर्जा आवश्यक होगी उतनी ऊर्जा मनुष्य अपने शरीर में उत्पन्न नहीं कर सकता। इसीलिए प्रारंभ में सभी प्रयोग असफल रहे।

हवा में 'तैरना'

उड़ने की दिशा में सफल प्रयोग सर्वप्रथम फ्रांस में १७८३ में हुआ। उसमें चिड़ियों की तरह उड़ने की विधि से सर्वथा भिन्न विधि का उपयोग किया गया। उस वर्ष सितंबर में पेरिस में जोसेफ मोंगोल्फियर तथा एटीने मोंगोल्फियर नामक दो भाइयों ने एक बड़े गुब्बारे में गरम हवा भरकर उसे फुलाया तथा उसके नीचे एक टोकरी बांधकर उसमें एक भेड़, मुर्गी तथा बत्तख को बैठा दिया। गरम हलकी हवा से भरा यह गुब्बारा आठ मिनट तक हवा में उड़ता रहा, फिर एक पेड़ से टकरा गया। मनुष्य की पहली उड़ान दो महीने बाद, नवंबर, १७८३ में हुई। पेरिस में ही डे रोजिए तथा द अलांदे नामक दो व्यक्तियों ने गरम हवा से भरे एक विशाल गुब्बारे में स्वयं बैठकर पेरिस नगर के ऊपर छह

मील तक यात्रा की। वे २५ मिनट तक हवा में रहे और अंत में सकुशल पृथ्वी पर उतर आये। इस छोटी-सी उड़ान से ही उड़ान के युग का आरंभ हुआ। फ्रांस में इन प्रयोगों से यूरोप में तहलका मच गया। इसके बाद लगभग सभी यूरोपीय देशों में लोग गुब्बारों में उड़ने लगे। ये गुब्बारे थोड़ी देर तक ही उड़ पाते थे, क्योंकि ऊपर जाकर जब हवा ठंडी हो जाती थी तब गुब्बारे नीचे उतर आते थे। आगे चलकर गुब्बारों में हाइड्रोजन गैस भरी जाने लगी। यह गैस हवा से लगभग सत्रह गुनी हलकी होती है। परंतु अभी यह वास्तव में 'उड़ना' न होकर हवा में 'तैरना' ही था। गुब्बारे भी हवा की दिशा में 'बहते' जाते थे।

जब मनुष्य गैस के गुब्बारे में बैठकर ऊपर जाने लगा तब उसकी इच्छा हुई कि गुब्बारे को मनचाही दिशा में चलाया जाए। इस दिशा में भी पहला सुझाव एक फ्रेंच इंजीनियर ने दिया, जिसका नाम माइसनर था। उसने सुझाव दिया कि गोल गुब्बारों के बदले लंबे गुब्बारे बनाये जाएं तथा उनको इच्छित दिशा में चलाने के लिए इंजन से चलनेवाले प्रोपेलरों का उपयोग किया जाए, परंतु १७८३–१७८४ में केवल वाष्प-इंजन ही ज्ञात थे। ये इंजन बहुत भारी होते थे तथा इनमें साथ ही भट्ठी होती थी, जिससे हाइड्रोजन गैस में आग लग सकती थी। इन कारणों से माइसनर का सुझाव व्यवहार में नहीं लाया जा सका।

हवा की दिशा: उड़ने का क्रम
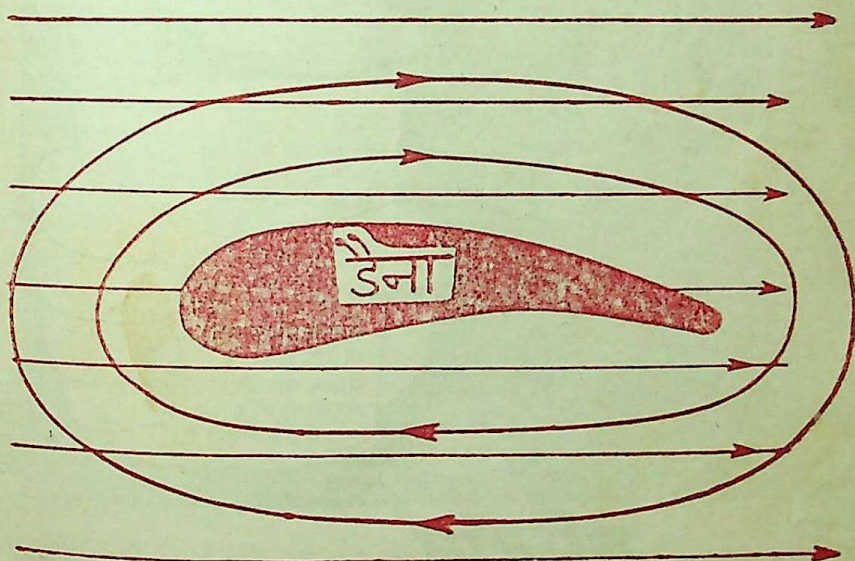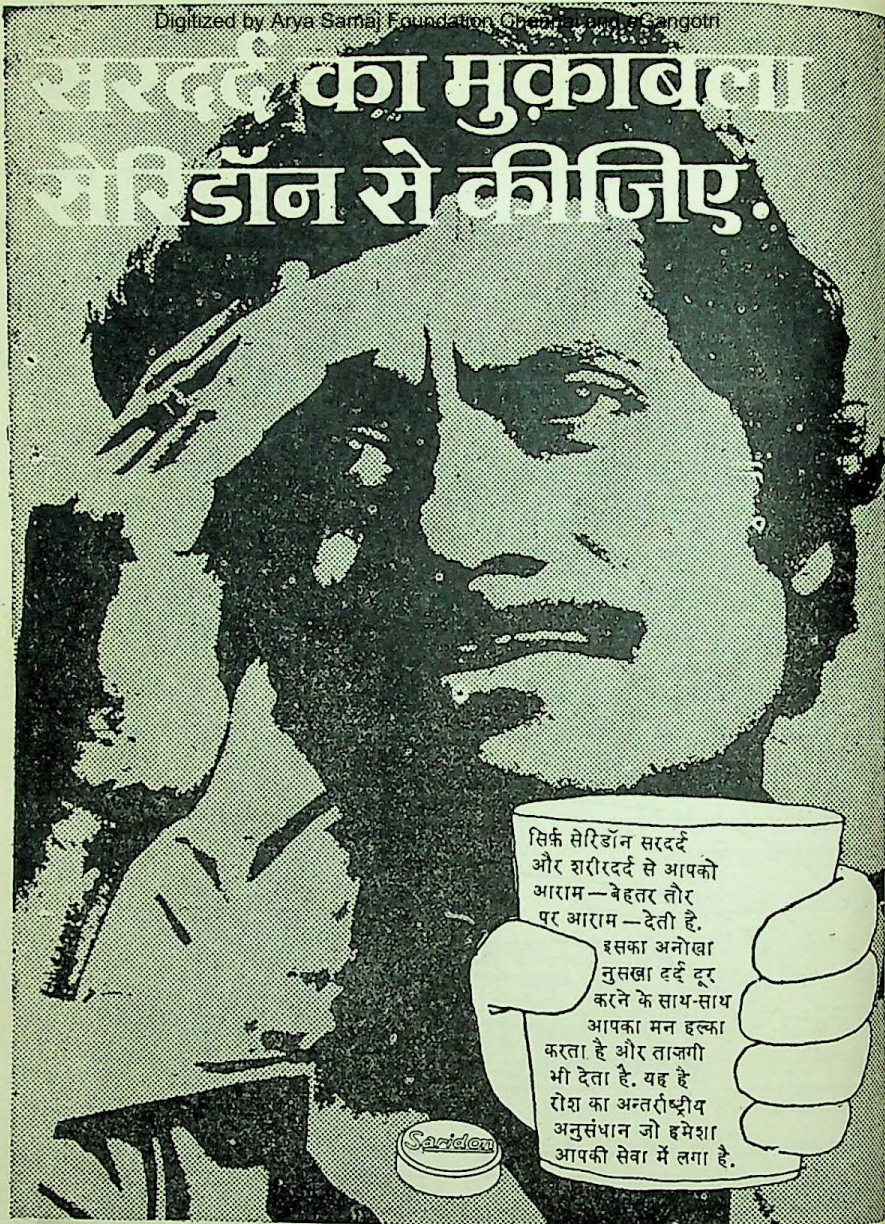
प्रोपेलर-युक्त गुब्बारे

प्रोपेलर से इच्छित दिशा में चलनेवाला गुब्बारा लगभग १०० वर्ष बाद तैयार हुआ। तब पेट्रोल-इंजन का आविष्कार हो चुका था। जरमनी के ग्राफ जैपलिन ने, जो सेना में अफसर था, सिगार के आकार का एक गुब्बारा बनाया। इसमें अल्यूमीनियम का ढांचा था तथा इस पर रबड़-चढ़े कपड़े का खोल मढ़ा था। यह कई कक्षों में विभाजित था, जिनमें हाइड्रोजन गैस भरी थी। नीचे यात्री-कक्ष था तथा यह पेट्रोल-इंजन की सहायता से चलनेवाले प्रोपेलरों से नियंत्रित दिशा में उड़ाया जा सकता था। उसने इस गुब्बारे में पहली उड़ान सन १९०० में की तथा इसमें बैठकर कांस्टैंस झील पार की। १९१० में उसने बहुत बड़े गुब्बारे बनाये, जिनमें कई यात्री बैठ सकते थे तथा काफी सामान ढोया जा सकता था। १९२९ में एक बड़े गुब्बारे 'ग्राफ जैपलिन' ने २१ दिन में दुनिया का एक पूरा चक्कर लगाया। इस गुब्बारे ने जरमनी तथा अमरीका के बीच नियमित यात्रा प्रारंभ कर दी।

'ग्लाइडर' से उड़ान

यद्यपि जैपलिन के गुब्बारे युद्ध तथा शांति-काल दोनों में ही सफलतापूर्वक कार्य कर रहे थे, फिर भी यह हवा में 'तैरना' ही था। चिड़ियों की भांति डैने फैलाकर हवा में मंडराने की नकल करके एक ब्रिटिश वैज्ञानिक कैले ने सन १८०४ में एक 'ग्लाइडर' बनाया था। यह एक बड़े डैनेवाला ढांचा था जिसको पकड़कर आदमी लटक जाता था। इसे किसी ऊंची पहाड़ी से नीचे धकेल दिया जाता था और यह धीरे-धीरे नीचे आ जाता था। ग्लाइडर के साथ अनेक प्रयोग किये गये। इनमें सबसे अधिक सफलता जरमन इंजीनियर ऑटो लीलिएनथल को मिली। उसने १८९१ में चमगादड़ के डैनों के आकार का ग्लाइडर बनाया तथा उसमें दो हजार बार 'उड़ा'। वह हजार फुट की दूरी तक चला जाता था। १८९६ के अगस्त महीने में उसके ग्लाइडर का संतुलन बिगड़ गया तथा वह गिरकर गंभीर रूप से घायल हो गया। मरते समय उसने कहा था—"प्रगति के लिए हमें बलिदान तो करना ही होगा।"

ग्लाइडर की उड़ान से अनेक नयी बातों का ज्ञान प्राप्त हुआ। यद्यपि मुख्यतः ग्लाइडर नीचे की ओर ही उतरता था, तथापि यह भी देखा गया कि जब ग्लाइडर विपरीत दिशा से आनेवाले तेज हवा के प्रवाह में पड़ जाता था तब यह नीचे गिरने के बजाय ऊपर उठने लगता था। इस ज्ञान के आधार पर प्रथम ग्लाइडर-निर्माता कैले ने यह सुझाव दिया था कि यदि किसी हलके इंजन से चलनेवाले प्रोपेलरों से ग्लाइडर के पंखों पर विपरीत दिशा में हवा प्रवाहित की जाए तो स्वतः 'उड़न-मशीन' बन सकती है। पेट्रोल-इंजन का हाल ही में आविष्कार हो चुका था, परंतु यह इंजन अभी 'उड़ने' की स्थिति में नहीं था। हां, जैपलिन-गुब्बारों के साथ यह हवा में

'तैरने' लगा था।

हवा से भारी उपकरण को अपनी शक्ति से उड़ाने का वास्तविक श्रेय अमरीका के राइट-बंधुओं को मिला। अमरीका के ओहियो प्रदेश में डेटन में इनका साइकिल-मरम्मत का कारखाना था। ओरविल राइट तथा विल्बर राइट नामक दोनों भाई बचपन से 'उड़ने' में रुचि रखते थे। उन्होंने ग्लाइडर से प्राप्त अनुभवों का गहन अध्ययन किया और सन १९०० में एक सुधरा हुआ ग्लाइडर बनाया। वे 'किटी हाक' नामक गांव के निकट समुद्र के किनारे अपने ग्लाइडर से प्रयोग करते थे। वहां तेज समुद्री हवा सदैव बहती रहती थी। उन्होंने यह पाया कि विपरीत तेज हवा में ग्लाइडर ऊपर उठ जाता था। अधिक प्रयोग करने के लिए उन्होंने 'वात-सुरंग' (विंड-टनल) का निर्माण किया। उसमें पंखे की सहायता से तीव्र गति से हवा प्रवाहित कराते थे। ग्लाइडर के छोटे प्रतिरूप रखकर उन पर हवा के प्रवाह के प्रभाव का अध्ययन किया गया।

यह पाया गया कि विपरीत दिशा से आती हवा के कारण पंखे के चारों ओर हवा का एक प्रकार से वृत्तीय प्रवाह होने लगता है। पंखे के ऊपर सीधे प्रवाह तथा वृत्तीय प्रवाह की दिशा समान होने से प्रवाह का परिणामी वेग बढ़ जाता है। इसके कारण पंखे के ऊपर हवा का दाब कम हो जाता है। इसके विपरीत पंखे के नीचे दोनों प्रवाह परस्पर विपरीत दिशा में होते हैं, अतः यहां परिणामी वेग घट जाता है, फलस्वरूप वायु का दाब बढ़ जाता है। डैने के ऊपर कम तथा नीचे अधिक दाब लगने से ग्लाइडर ऊपर उठ जाता है।

इससे यह निष्कर्ष निकला कि पंखों पर जितनी ही तीव्र गति से वायु का प्रवाह होगा, वायुयान उतनी ही शक्ति से ऊपर उठेगा। इसके लिए तीव्रगति से चलनेवाले प्रोपेलरों की सहायता से पंखों पर वायु का प्रवाह उत्पन्न करने का विचार किया गया। ये प्रोपेलर ही वायु को काटकर हवाईजहाज को आगे भी बढ़ाते हैं। अतः ये प्रोपेलर जितनी तीव्र गति से वायु को पीछे फेंकेंगे, वायुयान उतनी ही शक्ति से ऊपर उठेगा तथा उतनी ही अधिक गति से आगे बढ़ेगा। हवाईजहाज में तीव्र गति से प्रोपेलर चलाने के लिए मुख्य आवश्यकता थी एक हलके तथा शक्तिशाली पेट्रोल-इंजन की। उस समय तक उपलब्ध पेट्रोल-इंजन यथेष्ट हलके तथा शक्तिशाली नहीं थे। अतः राइट-बंधुओं ने स्वयं ही एक अच्छे इंजन का निर्माण किया।

'उड़न-मशीन' का प्रदर्शन

१७ दिसंबर, १९०३ को उन्होंने पहली बार अपना वायुयान उड़ाया। ओरविल इसमें लेटकर इसे चलाता था। पहली उड़ान में यह केवल १२ सेकंड तक उड़ा और इतनी देर में इसने १२० फुट की दूरी पार की।

आजकल जेट अर्थात नोद-विधि का उपयोग करके जहाज उड़ाये जाने लगे हैं। इसमें वायु सामने से चूसकर अधिक

दाब पर पीछे की ओर छोटे छिद्रों से प्रवाहित की जाती है। वायु पीछे जाती है तो प्रतिक्रियास्वरूप जहाज आगे बढ़ता है। इस प्रकार डैनों पर वायु का प्रवाह उत्पन्न होता है, जो जहाज को ऊपर उठाता है।

पृथ्वी से ऊपर वायुमंडल का दाब तथा ताप बहुत कम होता है। अतः वायुयान के अंदर भी वायु का दाब तथा ताप कम हो जाता है। नागरिक उड्डयन-विमानों में बाहरी वायुमंडल से वायु खींचकर उसे संपीड़ित करके केबिन में दाब पृथ्वी-तल पर वायु के दाब के बराबर रखते हैं तथा केबिन को वातानुकूलित रखते हैं, जिससे यात्रियों को ठंड अथवा गरमी न लगे। जिस समय जहाज ऊपर उठने लगता है, उस काल में इंजनों की संपूर्ण शक्ति गुरुत्वाकर्षण के विरुद्ध लगती है, अतः केबिन में दाब का संतुलन नहीं हो पाता। फलस्वरूप केबिन में वायु का दाब कम हो जाता है। इससे कान के पर्दों में दर्द होने लगता है। इसका कारण यह है कि पर्दे के पीछे, कान के भीतर तो वायु का दाब पृथ्वी-तल पर दाब के तुल्य होता है, परंतु बाहर केबिन में वायु का दाब कम होता है। इससे पर्दे पर तनाव पड़ता है तथा तकलीफ होती है। यदि उस समय कुछ चबाया जाए तो दोनों ओर वायु का दाब बराबर होने लगता है तथा दर्द कम हो जाता है। इसलिए वायुयान उठते समय चबाने के लिए परिचारिका लेमन-ड्राप अथवा टॉफी देती है। पहले कान में ठूंसने के लिए रुई भी [illegible] जाती थी।

केबिन में सांस लेने के कारण [illegible] दूषित होती रहती है। केबिन के भी[illegible] की दूषित वायु बाहर निकलकर तथा बा[illegible] से स्वच्छ वायु लेकर केबिन में वायु स्व[illegible] रखी जाती है, परंतु वायुयान उठते अ[illegible] उतरते समय इंजनों की शक्ति वायुया[illegible] को साधने में लगती है, इसलिए वायु [illegible] विनिमय करनेवाले उपकरण बंद [illegible] दिये जाते हैं। इसीलिए उस काल में धू[illegible] पान निषिद्ध होता है, परंतु आजकल [illegible] जेट-विमान इतनी शीघ्रता से ऊपर उ[illegible] या नीचे उतरते हैं कि ये कठिना[illegible] नगण्य हो गयी हैं।

उड़ान की दिशा में गोल्फियर [illegible] गुब्बारे से लेकर आधुनिक जेट-विमा[illegible] तक बहुत अधिक उन्नति हुई है। परंतु ए[illegible] बात सभी में पायी जाती है, वह है दुर्घट[illegible] तथा उससे जान-माल की हानि। गुब्बा[illegible] में उड़नेवाला पहला व्यक्ति डे रोजि[illegible] गुब्बारा फटने से गिरकर मरा था। जे[illegible] लिन के सबसे बड़े गुब्बारे 'हिंडनब[illegible] में आग लग जाने से ३६ व्यक्ति मर ग[illegible] थे। लीलिएनथल ग्लाइडर से गिरक[illegible] मर गया तथा आधुनिक जेट-विमान [illegible] गिरने से भी लोग मरते हैं। फिर [illegible] जैसा कि लीलिएनथल ने कहा था, "प्रग[illegible] के लिए बलिदान तो करना ही होगा।"

—उप-निदेशक, भौतिकी क[illegible]
काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी-[illegible]

रोम हवाईअड्डे पर लियोनार्दो दा विंची की मूर्ति। मूर्ति के हाथ में उड़न-मशीन का प्रतिरूप है।
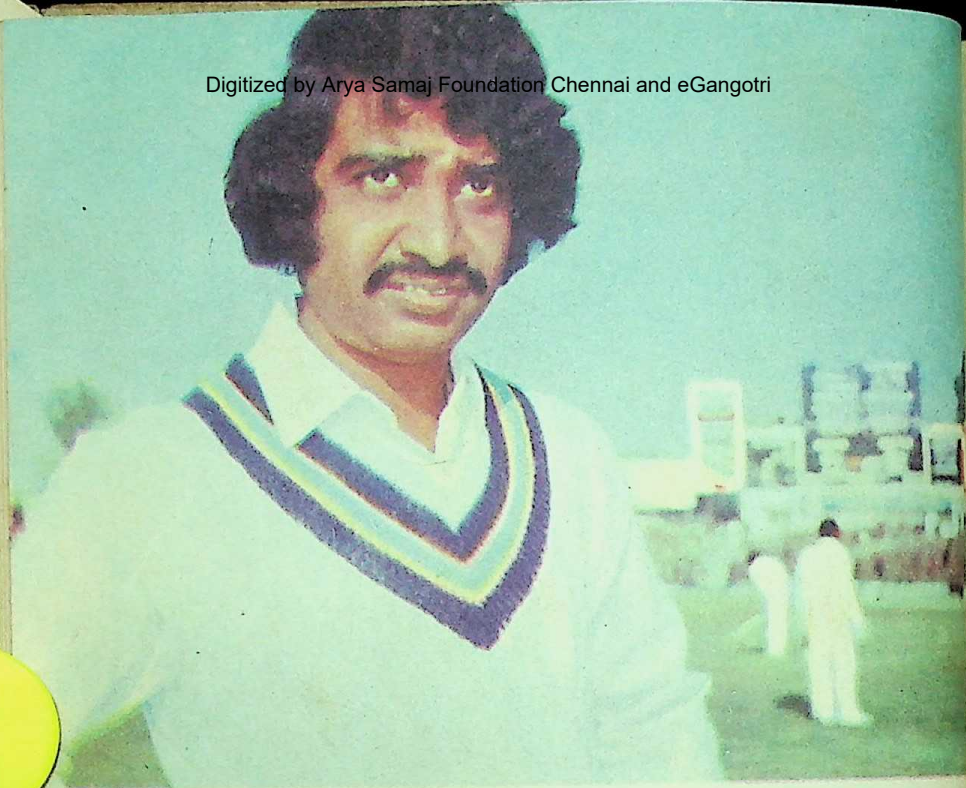
किसी भी टेस्टश्रृंखला के समाप्त होने के बाद खिलाड़ियों के खेल-प्रदर्शन के आधार पर अकसर क्रिकेट के जानकार लोग बल्लेबाजी और गेंदबाजी का औसत-क्रम निकालते हैं। भारत और वेस्टइंडीज (१९७४-७५) की टेस्ट-श्रृंखला समाप्त होने के बाद जब दोनों टीमों का 'बल्लेबाजी औसत-क्रम' निकाला गया तो वेस्टइंडीज की टीम में पहला स्थान कप्तान क्लाइव लॉयड को मिला और भारतीय टीम में पहला स्थान भारत के विश्वस्त बल्लेबाज गुंडप्पा रंगनाथ विश्वनाथ को प्राप्त हुआ। उक्त टेस्ट-श्रृंखला में विश्वनाथ ने १० पारियों में ६३.११ रनों के औसत से कुल ५६८ र

बनाये थे और उसमें उनका सर्वोच्च स्कोर १३९ रन का था।

यों भी विश्वनाथ भारत के ऐसे खिलाड़ी हैं जिन्होंने भारत की उस पुरानी धारणा को तोड़ा है जिसमें यह कहा जाता था कि जो खिलाड़ी अपने जीवन के पहले टेस्ट में शतक बनाने में सफल हो जाता है वह कभी पुनः शतक बनाने में सफल नहीं हो पाता। विश्वनाथ ने पहला शतक १९६९ में कानपुर में ऑस्ट्रेलिया के विरुद्ध अपना पहला टेस्ट खेलते हुए बनाया था, जिसमें उन्होंने १३७ रन बनाये थे। दूसरा शतक उन्होंने १९७३ में बंबई में इंगलैंड के विरुद्ध शृंखला का आखिरी टेस्ट खेलते हुए बनाया था, जिसमें उन्होंने ११३ रन बनाये थे। तीसरा शतक उन्होंने ३१ दिसंबर, १९७४ को ईडन गार्डन में वेस्टइंडीज-शृंखला के तीसरे टेस्ट में बनाया, जिसमें उन्होंने १३९ रन बनाये, जो उनका अब तक का सर्वाधिक स्कोर है। यह टेस्ट भारत ने ८५ रनों से जीता था और इस जीत का सारा श्रेय विश्वनाथ को ही था। उस टेस्ट-शृंखला में भारत ने केवल दो टेस्ट (कलकत्ता और मद्रास) जीते थे और इन दोनों टेस्टों के हीरो विश्वनाथ बने। यह ठीक है कि मद्रास के चिदंबरम स्टेडियम में खेले गये चौथे टेस्ट में विश्वनाथ शतक पूरा नहीं कर पाये और वे ९७ रन बनाने पर अविजित रहे, लेकिन मानना होगा कि जिन संकट की घड़ियों में उन्होंने ९७ रन

• योगराज थानी

बनाये, उनका महत्त्व शतक से तो क्या दोहरे शतक से भी ज्यादा था। यह बात अभी तक बहुत-से लोगों को याद होगी कि मद्रास में खेले गये चौथे टेस्ट की पहली पारी में भारतीय टीम १९० रनों पर आउट हो गयी थी, अर्थात जितने रन अकेले विश्वनाथ ने बनाये थे उतने भारत की पूरी टीम नहीं बना पायी थी। तभी तो इस छोटे-से कदवाले खिलाड़ी को भारतीय टीम का आधार-स्तंभ माना जाता है, अर्थात जब तक विश्वनाथ क्रीज पर डटे रहते हैं तब तक भारत की जीत की आशा बनी रहती है और उनके आउट होते ही सारी आशा धूमिल पड़ जाती है।

मुझे अच्छी तरह याद है कि १९७४-'७५ की भारत-वेस्टइंडीज टेस्ट-शृंखला के दौरान एक पिता ने अपने ८ वर्षीय बालक को, जो हर समय रेडियो के साथ चिपका रहता था, फटकारते हुए कहा था कि तुम्हारे इम्तिहान होने वाले हैं और तुम्हारा पढ़ाई-लिखाई में बिलकुल कोई ध्यान नहीं है। इतना कहने के बाद पिता ने गुस्से में आकर रेडियो बंद कर दिया था, लेकिन उस छोटे-से बालक ने भोले भाव से कहा था कि अगर मैं पढ़ना शुरू कर दूं और इसी बीच विश्वनाथ आउट हो जाए तो मेरा पढ़ाई में मन कैसे लगेगा? जी हां, आज विश्वनाथ बच्चे, बूढ़े, जवान, स्त्री और पुरुष

सब के हीरो हैं और उनके आउट हो जाने पर सब मायूस हो जाते हैं। तभी तो उनकी क्रिकेट-सेवाओं के लिए भारत सरकार ने १९७१ में उन्हें पद्मश्री से अलंकृत किया था।

विश्वनाथ, जो अपने घर बंगलौर में 'विसू' नाम से पुकारे जाते हैं, सर्वगुण-संपन्न एक शास्त्रीय बल्लेबाज हैं। उनका आत्मविश्वास, एकरूपता, धैर्य और सतर्कता देखते ही बनती है। दर्शक उनके हर स्ट्रोक पर 'वाह-वाह' कह उठते हैं। मैच भले ही साधारण हो या टेस्ट-मैच, इससे उनके खेल-प्रदर्शन पर कोई विशेष अंतर नहीं पड़ता। हां, कब वे रक्षात्मक ढंग से खेलेंगे और कब आक्रामक ढंग से, इसका भेद आसानी से किसी की समझ में नहीं आता। उनके खेल की सबसे बड़ी विशेषता उनकी उत्तेजना और संयम का समन्वय है। १९६९–'७० में कानपुर में आस्ट्रेलिया के विरुद्ध अपना पहला टेस्ट खेलते हुए उन्होंने ९६ रनों से १०० रन तक पहुंचने में एक घंटे का समय लगा दिया था और जो लोग घर में बैठकर रेडियो सुनने लग गये थे उन्हें उस दिन अपने काम पर पहुंचने में भी बहुत देर हो गयी थी। यह बात २० नवंबर, १९६९ की है जब उन्होंने पहले टेस्ट में अपने शतक का शुभ समाचार सुनाने के लिए भारतीय क्रिकेट-प्रेमियों को काफी समय तक बेचैन किये रखा था। उस दिन ९० रन बनाने के बाद उन्होंने बहुत ही संभल-संभलकर खेलना शुरू कर दिया था। इधर वे किसी भी कीमत पर शतक बनाने का यह स्वर्ण अवसर अपने हाथ से खोना नहीं चाहते थे और उधर आस्ट्रेलिया के कप्तान बिल लॉरी ने उन्हें आउट करने के लिए सभी प्रकार के हथकंडे अपनाने शुरू कर दिये थे, लेकिन विश्वनाथ के धैर्य के आगे आस्ट्रेलिया के गेंदबाजों को अपने घुटने टेकने पड़े और इस प्रकार विश्वनाथ अपने जीवन के पहले टेस्ट में शतक पूरा करने में सफल हो गये।

विश्वनाथ भारत के ऐसे छठे खिलाड़ी हैं जिन्हें अपने पहले ही टेस्ट में शतक बनाने का गौरव प्राप्त हुआ है। इससे पहले यह गौरव लाला अमरनाथ, दीपक शोधन, कृपालसिंह, अब्बास अली बेग और हनुमंत सिंह को प्राप्त हुआ था; लेकिन इनमें से किसी भी खिलाड़ी को आस्ट्रेलिया के विरुद्ध खेलते हुए अपने टेस्ट में शतक बनाने का अवसर नहीं मिला। लाला अमरनाथ ने १९३३-३४ में बंबई में इंगलैंड के विरुद्ध अपना पहला टेस्ट खेलते हुए ११८ रन बनाये। संयोग से टेस्ट में शतक बनाने वाले वे प्रथम भारतीय खिलाड़ी थे। इसके १९ वर्ष बाद कलकत्ता में पाकिस्तान के विरुद्ध खेलते हुए दीपक शोधन ने अपने पहले टेस्ट में ११० रन (और आउट नहीं) बनाये। १९५५-'५६ में हैदराबाद में न्यूजीलैंड के विरुद्ध खेलते हुए मद्रास के कृपालसिंह ने १०० रन (और आउट नहीं) बनाये। उसके बाद

१९५९ में मैनचेस्टर में इंगलैंड के विरुद्ध खेलते हुए अब्बास अली बेग ने ११२ रन बनाये और १९६३-६४ में नयी दिल्ली में इंगलैंड के विरुद्ध खेलते हुए हनुमंत सिंह ने १०५ रन बनाये। उसके बाद १९६९-७० में आस्ट्रेलिया के विरुद्ध अपना पहला टेस्ट खेलते हुए विश्वनाथ ने १३७ रन बनाने का गौरव प्राप्त किया था।

विश्वनाथ को जब पहली बार भारतीय टीम में शामिल किया गया तो उनकी उम्र केवल २० साल थी। इससे पहले उन्होंने रणजी प्रतियोगिता में खेलते हुए आंध्र के विरुद्ध २३० रन बनाये थे। आज भी वे कहते हैं कि जिस समय मुझे कानपुर टेस्ट के लिए पहली बार चुना गया तब इस समाचार से मुझे कोई विशेष हैरानी नहीं हुई, बल्कि मुझे इस बात का पक्का यकीन था कि मुझे टीम में जरूर शामिल किया जाएगा। प्रसन्नता की बात तो यह थी कि मुझे उचित समय पर एक सुंदर अवसर मिला, लेकिन जिस दिन टेस्ट शुरू हुआ उस दिन मुझे लगा कि जैसे मुझ पर एक विशेष जिम्मेदारी डाल दी गयी है।

गुंडप्पा विश्वनाथ का जन्म १२ फरवरी, १९४९ को बंगलौर में हुआ। १४ साल की उम्र से ही उन्होंने बंगलौर के फोर्ट हाईस्कूल में क्रिकेट खेलना शुरू

विश्वनाथ खेल के मैदान में

कर दिया था। उनके माता-पिता ने उनसे स्पष्ट रूप से कह दिया था कि हमें तुम्हारे क्रिकेट-प्रेम से कोई एतराज नहीं है, लेकिन इतना ध्यान रहे कि पढ़ाई-लिखाई पर कोई प्रतिकूल असर नहीं पड़ना चाहिए।

सबसे पहले उन्होंने अपने गली-महल्ले के बच्चों के साथ ही क्रिकेट खेलना शुरू किया था। पड़ोसी के घर की दीवार पर कोयले से विकेट बना लिये, एक 'घर का बना' बल्ला ले लिया और टेनिस की गेंद से काम चला लिया। अपने स्कूल की क्रिकेट-टीम में उन्हें इसलिए शामिल नहीं किया जाता था क्योंकि चुनाव करने वालों की निगाह में वे बहुत कमजोर थे।

१९६८ में उन्होंने रणजी हाकी के मैचों में भाग लेकर प्रथम श्रेणी के मैचों में खेलना शुरू कर दिया था और उसी वर्ष बंगलौर के स्टेट बैंक में उन्हें नौकरी मिल गयी थी। विश्वनाथ का कहना है कि मुझे शुरू से ही क्रिकेट से लगाव था और इस खेल के अतिरिक्त मैंने और किसी खेल में हिस्सा नहीं लिया।

भारतीय क्रिकेट-प्रेमियों के हीरो भले ही विश्वनाथ हों, लेकिन स्वयं विश्वनाथ नील हार्वे को अपना हीरो मानते हैं और कहते हैं, "नील हार्वे को पंद्रह साल की उम्र में मैंने बंगलौर में खेलते हुए देखा था और उनकी त्रुटिहीन और संयतशैली का कायल हो गया था।"

गेंदबाजों की चर्चा करते हुए विश्वनाथ कहते हैं, "मैंने आज तक जिन गेंदबाजों का सामना किया है उन सब में एलन कॉनोली को सर्वश्रेष्ठ गेंदबाज मानता हूं।" तेज गेंदबाजों की चर्चा करते हुए वे कहते हैं, "प्रारंभ में मुझे जरूर तेज गेंदबाजों से डर लगता था, लेकिन वेस्टइंडीज के तेज गेंदबाजों का सामना करने के बाद वह डर अब जा रहा है।"

उनके शब्दों में—"मैंने जो कुछ सीखा है, खुद खेलकर या औरों को खेलते हुए देखकर। हां, मांजरेकर ने जरूर थोड़े बहुत गुरुमंत्र बताये थे।" आज विश्वनाथ की गिनती भारत के कुछ गिने-चुने चोटी के बल्लेबाजों में की जाती है और उन्हें 'पूर्ण बल्लेबाज' की संज्ञा दी जाती है। कुछ लोग यह भी पूछते हैं कि क्या उनके छोटे कद का उनके खेल पर कोई प्रतिकूल असर नहीं पड़ता?

लेकिन विजय मर्चेंट छोटे कद के नहीं थे? फिर दुनिया के सर्वश्रेष्ठ बल्लेबाज डॉन ब्रेडमैन का कद भी कोई बहुत ज्यादा नहीं था।

विश्वनाथ मध्यपंक्ति के विश्वसनीय बल्लेबाज हैं, जिनके पास सही तकनीक और सही स्ट्रोक हैं। उनके खेल की उत्कृष्टता को देखकर लोगों का विश्वनाथ में जैसे-जैसे विश्वास बढ़ता जा रहा है वैसे-वैसे विश्वनाथ का आत्म-विश्वास भी बढ़ता जा रहा है।

—९९९२ रोहतक रोड, सराय रोहिल्ला स्टेशन के पास, नयी दिल्ली-

राजतरंगिणी की दो कथाएं

● डॉ. रघुनाथ सिंह

हूण नरेश मिहिरकुल वसुकुल का पुत्र था। उसका राज्य पंजाब, कश्मीर से बलख तक फैला था। उसकी दो राजधानियां थीं—भारत की सियालकोट और अफगानिस्तान, तुर्किस्तान की बलख ! मिहिरकुल की क्रूरता की कहानियां बहुत प्रसिद्ध हैं। उसकी क्रूरता के आगे यम भी लजा जाते थे।

एक दिन मिहिरकुल ने अपनी रानी को सिंहलदेश का बना कपड़ा पहने देखा। कपड़े पर पैरों की सुनहरी छाप थी। देखते ही उसने चिल्लाकर पूछा, "यह किसके पैरों की छाप है ?" उत्तर मिला, "सिंहल के राजा की।" उसने तुरंत सिंहल पर आक्रमण करने का आदेश दिया। सिंहलराज को दंड दिये बिना उसे चैन नहीं मिल रहा था।

●●

मिहिरकुल की सेना की बाढ़ समुद्र की चिंघाड़ती तरंगें नहीं रोक सकीं। लंका-विजय कर उसने वहां के राजा को सिंहासन से उतार दिया। दूसरे राजा को सिंहासन पर बैठाकर चोल, कर्णाटक, गुजरात जीतता हुआ वह कश्मीर लौटा।

विजयपताका फहराते, मिहिरकुल ने कश्मीर में प्रवेश किया। वह हस्तिवेज नामक स्थान पर पहुंचा। वहां उसकी सेना के कुछ हाथी मार्ग संकीर्ण होने के कारण ऊंची पहाड़ी से सैकड़ों फुट नीचे गिर गये थे। वे तड़प रहे थे, रो रहे थे, सूंड़ और पैर पटक रहे थे। उन्हें कराहते, मरते देखकर मिहिरकुल की क्रूरता तुष्ट हो गयी। वह खड़ा होकर उनके मरने का तमाशा देखने लगा। उनके सांस तोड़ते ही वह उदास हो गया।

उसे उसी तरह हाथियों को रोते,

छटपटाते, तड़पते, चिल्लाते, कराहते, मरते देखने की इच्छा हुई। उसने सैकड़ों हाथियों को नीचे गिरवा दिया। हाथी लुंड-मुंड, लुढ़कते-पुढ़कते, चिल्लाते, चिंघाड़ते सैकड़ों फुट नीचे गिर गये। उनका दुःखद मरना देखकर मिहिरकुल की क्रूर मुसकान जाग उठी।

●●

मिहिरकुल चंद्रकुल्या (नहर) निकलवा रहा था। मार्ग में एक शिला पड़ती थी। शिला हटाने में मिहिरकुल की क्रूरता सहायक नहीं हो सकी। प्रयास बेकार देखकर, वह कठोर तपस्या करने लगा। उसका शरीर पिंजरमात्र रह गया। एक दिन उसे स्वप्न हुआ--इस शिला पर बलवान ब्रह्मचारी यक्ष बैठा है। अगर कोई सती स्त्री इसको छू दे, तो शिला आप से आप हट जाएगी।

सती-देश, सती-सर कश्मीर में सती स्त्रियों की खोज होने लगी। चारों ओर से स्त्रियों को बुलाकर, शिला स्पर्श करायी गयी, किंतु शिला नहीं हटी।

तभी एक कुम्हार की स्त्री, चंद्रावती, आयी। उसके स्पर्श करते ही शिला हट गयी। मिहिरकुल ने चंद्रावती के नाम पर नहर का नाम चंद्रकुल्या रख दिया।

मिहिरकुल को स्त्रियों का अ-सती होना देखकर गुस्सा आया। उसने अ-सती स्त्रियों को उनके बंधु-बांधवों, संबंधियों सहित मारने का आदेश दिया। इस भयंकर नर-संहार के पश्चात मिहिरकुल का नाम 'त्रिकोटिहन' पड़ गया।

●●

भूलोक-भैरव मिहिरकुल ने सत्तर वर्ष कश्मीर में राज्य किया। वृद्ध हुआ। शरीर उसके मन मुताबिक काम नहीं करता था। साथ नहीं देता था। क्रुद्ध होकर उसने शरीर को दंड देने का निश्चय किया।

राज्य में घोषणा की गयी-- स्वयं का साथ न देनेवाले शरीर को राजा दंड देगा--ऐसी सजा जैसी किसी कहानी में न कही गयी थी, न सुनी गयी थी, न देखी गयी थी।

मिहिरकुल ने बहुत बड़ी चिता रचायी। चिता इस प्रकार बनायी गयी कि किसी भी तरह वह आग से निकलकर भाग न सके। उसने चिता को तेज जलनेवाली धूप, गंध, घृत आदि दाहक वस्तुओं से भर दिया ताकि पानी बरसने, पत्थर पड़ने, बर्फ गिरने पर भी चिता न बुझ सके।

उसने चिता पर लोहे का एक तख्त रखा। उस पर तेज धारवाली छुरियां और कांटे जड़े थे, मानो वही उसकी अरथी थी। उसने लोहे का तख्त इसलिए रखा था कि कांटों, छुरियों से शरीर बिंधता, खून बहाता, कष्ट पाता, भुनता रहे। आग में सिर्फ जल जाना उसे पसंद नहीं था। जलने से शरीर को उतनी पीड़ा, उतना कष्ट नहीं मिल सकता था जितना

मिलना चाहिए था। वह अपनी इस क्रूर कल्पना से प्रसन्न हो गया। किसी की हिम्मत नहीं हुई कि राजा को उसकी क्रूर कल्पना से विरत करता।

समय आया। मिहिरकुल ने चिता में आग लगायी। चिता जलने लगी। लोहे का तख्त लाल हो गया। कांटें और छुरियां लाल हो गयीं। उनसे चिनगारी निकलने लगी। राजा उठा। वितस्ता में स्नान किया। फिर मामूली उज्ज्वल वस्त्र से तन ढक लिया।

उसने ज्येष्ठेश्वर और सारिका शिखरों की ओर देखकर प्रणाम किया। चिता को नमन किया, परिक्रमा की।

जनता उमड़ आयी थी। वह दुःखी थी, भयभीत थी। राजा की समझ में नहीं आ रहा था—वह सजा दे रहा था अपने शरीर को। लेकिन दूसरे क्यों दुःखी तथा भयभीत थे?

राजा को दहकती, हू-हू करती, चिटकती, श्मशान-शय्या कमल-शय्या की तरह पसंद आयी। वह मुसकराया। देखते-देखते चिता में कूद पड़ा। छुरियों पर, कांटों पर गिरा। उसके शरीर से रक्त-धारा निकल पड़ी और धुआं बनकर उड़ने लगी।

इस समय भी वह संयत था। तपते लौह तख्त पर सीधा सोया था। कांपा नहीं। सिकुड़ा नहीं। चिल्लाया नहीं। देखते-देखते वह राख का ढेर बन गया।
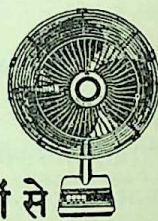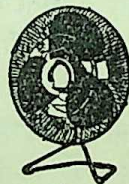
विश्व की पहली राजमाता

मथुरा का घेरा था। कंस की ओर से गोनंद लड़ रहा था। वहां श्रीकृष्ण ने कश्मीर के राजा गोनंद को युद्ध में हरा दिया। उसका पुत्र दामोदर था। रानी यशोमती थी।

दामोदर ने सुना—सिंधु नदी के किनारे गांधार देश में रचे स्वयंवर में श्रीकृष्ण यादव-सेना के साथ भाग लेने जा रहे हैं। दामोदर ने श्रीकृष्ण को सेना-सहित घेर लिया। स्वयंवर बन गया रण-भूमि। दामोदर युद्ध में मारा गया।

भारत में शत्रु राजा या सेनापति कैदी नहीं बनाये जाते थे। वे मारे नहीं जाते थे। श्रीकृष्ण को सूचना मिली। कश्मीरी सैनिक छावनी में गर्भवती रानी यशोमती थी। उन दिनों स्त्रियां भी युद्ध में जाती थीं। श्रीकृष्ण ने उन्हें बुलाया।

रानी अपनी मंत्रि-परिषद के साथ आयी। रानी को देखते ही श्रीकृष्ण ने द्वारपाल से कहा, "विप्रों को बुलाओ।"

यशोमती कुछ समझ न सकी। कश्मीरी-परिषद शंकित हुई। श्रीकृष्ण ने रानी से कहा, "कश्मीर का राज-सिंहासन सूना नहीं रह सकता।"

यादव-मंत्रिमंडल कुछ और चाहता था। कश्मीरी हार गये थे। कश्मीर अब उनका था। श्रीकृष्ण को ज्ञात हुआ।

उन्होंने उनसे कहा, "कश्मीर-भूमि पार्वती है। वहां का राजा शिव का अंश है। अगर राजा बुरा हो तो भी विद्वज्जन उसकी अवज्ञा नहीं करते। पुराण का यह वचन याद होगा। रानी यशोमती राज-सिंहासन पर बैठेगी। उसका अभिषेक होगा।"

"यशोमती विधवा है। स्त्री है। वह कैसे सिंहासन पर बैठेगी?" यादवों

ने कहा। विप्रों ने मस्तक हिलाकर उनके मत का समर्थन किया।

"रानी यशोमती गर्भवती है। गर्भ का शिशु राज्य करेगा। कश्मीर पर पुण्यबल से राज किया जा सकता है, शस्त्रबल से नहीं।"

यादव मंत्रि-परिषद उदास हो गयी। कश्मीर पर राज करने का सपना समाप्त हो गया।

"विप्रगण", श्रीकृष्ण ने कहा, "कश्मीर के सिंहासन पर यशोमती का अभिषेक इसी समय और यहीं कीजिए।"

"राजधर्म इसे नहीं स्वीकार करता।" विप्रों ने कहा।

"विप्रवर, विधवा भी प्राणी है। उसे भी अभिमान है। जीने की इच्छा है।"

"यह अशुभ होगा," विप्रों ने कहा।

"वह राजमाता है। प्रजा की माता है। बहन है। अर्धांगिनी है। देवी है। आज से यही राजधर्म होगा। विधवा को भी संपत्ति का, अपने राजा के राज्य पर अधिकार होगा। कश्मीर के राज-सिंहासन पर अगर पुरुष बैठ सकता है, तो स्त्री क्यों नहीं बैठेगी?"

●●

यशोमती कश्मीर मंत्रि-परिषद के साथ श्रीकृष्ण की सभा में आयीं। उन्होंने संकेत किया। मंगलगान होने लगे। मंगल-वाद्य बजने लगे। श्रीकृष्ण ने अपने हाथों से देवी यशोमती का तिलक किया। देवी का उन्नत ललाट चमक उठा। देवी के दोनों नेत्रों से गंगा-यमुना की तरह कृतज्ञता की धारा वह चली।

श्रीकृष्ण ने कश्मीर के मंत्रि-परिषद को आदेश दिया, "देवी यशोमती कश्मीर की रानी है। आप लोग उसके आदेश से शासन कीजिए। राजमाता यशोमती को कश्मीर का राज सौंपता हूं।"

भारतीय नारियों को इस दिन से संपत्ति रखने, राज करने का अधिकार, राजमाता कहलाने का गौरव मिल गया। भारतीय परंपरा में एक और राजमाता की परंपरा जुड़ गयी।

—औरंगाबाद, वाराणसी

सही जांच

एक न्यायाप्रिय काजी के पुत्र ने अपने पिता से कहा, "अब्बा हुजूर, मेरा एक मित्र अपने वचनों से मुकर रहा है। क्या उस पर दावा दायर कर दूं?" काजी ने पुत्र की बातें सुनकर सहमति में सिर हिलाया।"

दूसरे दिन सभी गवाहियां सुनने के बाद काजी ने अपने पुत्र के दावे के विपरीत निर्णय दिया। निराश होकर पुत्र ने कारण पूछा। काजी ने मंतव्य स्पष्ट करते हुए कहा, "यदि तुम्हें मुकदमे के लिए प्रेरित न करता तो दावे की सही जांच कैसे हो पाती?"

—श्यामबिहारी आलोक

बुद्धि-विलास

१. **एक** कक्षा में एक नये शिक्षक ने प्रवेश करते ही पूछा, "इस कक्षा में छात्र और छात्राओं की अलग-अलग कितनी संख्या है ?" एक चतुर छात्र ने शिक्षक की बुद्धि को चक्कर में डालते हुए कहा, "श्रीमान, इस कक्षा में छात्रों की संख्या अधिक है और छात्र-छात्राओं की संख्याओं का जोड़ दोनों की संख्याओं के अंतर का तीन-गुना है ।" अब शिक्षक ने पूछा, "कुल संख्या कितनी है ?" चट एक छात्रा ने कहा, "श्रीमान, आप १ से ५ तक की गिनती लिखें और उसमें से हर दो अंकों के बीच के अंक मिटा दें, जो कुछ रह जाए उतनी ही हमारी कुल संख्या है।" बताइए, सही उत्तर क्या होगा ?"

२. **यदि** किसी महीने की ९ तारीख शनिवार से तीन दिन पहले पड़ती है तो २१ तारीख को कौन-सा दिन होगा ?

३. **वह** कौन-सी चीज है जो जनवरी में एक बार और फरवरी में दो बार आती है, लेकिन मई में एक बार भी दिखायी नहीं देती ?

४. **निम्नलिखित** में से कौन-सा इस पूरे समूह में मेल नहीं खाता, क्यों ? (१) रेलगाड़ी (२) मोटर (३) बस (४) जहाज ।

५. **दो** वृक्षों पर कुछ चिड़ियां बैठी हैं। एक वृक्ष पर बैठी चिड़ियों ने दूसरे वृक्ष की चिड़ियों से कहा कि यदि हममें से एक तुम्हारे पास चली जाए तो तुम्हारी संख्या हमसे दुगुनी हो जाएगी और तुममें से एक हमारे पास चली आये तो दोनों की संख्या बराबर हो जाएगी। बताइए, दोनों पेड़ों पर कितनी-कितनी चिड़ियां हैं ?

६. **एक** बालक गणित पढ़ते समय 'बम कर भगत गया जमुना घाट' गुन-गुनाता रहता था। उसके पिता ने एक बार उसे टोका तो वह बोला, "पिताजी, "मैं गा नहीं रहा, पढ़ रहा हूं।" लड़के के इस कथन में कितनी सचाई थी ?

७. **पृथ्वी** के व्यास और उसकी . . .

अपनी बुद्धि पर जोर डालिए और यहां दिये प्रश्नों के उत्तर खोजिए। उत्तर इसी अंक में कहीं मिल जाएंगे। यदि आप सारे प्रश्नों के ही उत्तर दे सकें तो अपने साधारण ज्ञान को श्रेष्ठ समझिए, आधे से अधिक में सामान्य और आधे से कम में अल्प।

—संपादक

परिधि के आंकड़े दीजिए।

८. क्या दुनिया में ऐसा भी कोई सागर है जिसमें मनुष्य डूब नहीं सकता ?

९. वह कौन-सी चीज है जिसकी उपमा उपनिषदों में पत्ते की नोक से लटकती पानी की बूंद से दी गयी है ?

१०. टेंपलटन पुरस्कार क्या है ? वह किस भारतीय को मिला ?

११. 'मोनालिसा' के चित्रकार कौन थे—क. पिकासो, ख. माइकेल ऐंजिलो, ग. लियोनार्डो द विंची ?

१२. आई.एन.एस. विक्रांत क्या है —क. टैंक, ख. पनडुब्बी, ग. विध्वंसक विमान, घ. विमानवाहक पोत ?

१३. ३८ वें संविधान-संशोधन में किस बात की व्यवस्था की गयी है ?

१४ भारत के प्रथम कृत्रिम उप-ग्रह का क्या नाम है ? वह कब और कहां से छोड़ा गया ?

१५. स्वतंत्र भारत के प्रथम गवर्नर-जनरल कौन थे — क. चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, ख. डॉ. राजेन्द्रप्रसाद, ग. लार्ड माउंटबेटन ?

१६. 'सागर-सम्राट' के बारे में आप क्या जानते हैं ?

१७. भारत की आर्थिक व्यवस्था किस नाम से जानी जाती है ? उसका उद्देश्य क्या है ?

१८. भारत में इलायची मुख्यतया किस राज्य में पैदा होती है ?

१९. वह कौन-सी चिड़िया है जो किसी प्रकार का खतरा होने पर अपना सिर बालू में छिपा लेती है और समझती है कि अब वह सुरक्षित है ?

२०. ऊपर दिये गये चित्र को ध्यान से देखिए और बताइए यह क्या है ?

२१. एक लड़का एक स्थान से पूर्व की ओर सीधे ४ किलोमीटर दौड़ता है। दूसरा लड़का उसी स्थान से उत्तर की ओर सीधे ३ किलोमीटर दौड़ता है। तत्पश्चात दोनों लड़के एक-दूसरे की ओर सीधी रेखा में एक ही रफ्तार से दौड़ते हैं। बताइए, दोनों अपने दोबारा दौड़ने के स्थानों से कितनी दूर जाकर मिलेंगे ?

२२. तीन ऊंट हैं और हरेक के मुंह में दो-दो डंडों के सिरे हैं। बताइए कम से कम कितने डंडों से काम चल सकता है ?

२३. पेड़-पौधों में पत्तियों का मुख्य कार्य क्या है—क. पानी का वाष्पीकरण, ख. आक्सीजन तथा कार्बन डाई-आक्साइड गैसों की अदला-बदली, ग. पेड़-पौधों के लिए भोजन तैयार करना ?

परी-कथाओं का अमर लेखक

● डॉ. श्रीप्रसाद

हैंस क्रिश्चियन ऐंडरसन ने विश्व के बालकों को अमर परीकथाएं प्रदान की हैं। उन्होंने विश्व की व्याख्या कल्पना-प्रसूत परियों के माध्यम से की है। सवा सौ बरस से भी पूर्व ऐंडरसन ने इन परीकथाओं की रचना की थी। इसके बावजूद आज भी ये उतनी ही लोकप्रिय हैं।

ऐंडरसन का जन्म ओडेंस (डेनमार्क) में सन १८०५ में हुआ था। परिवार अत्यंत निर्धन था। पिता जूता गांठने का काम करते थे और मां कपड़े धोया करती थीं, पर आत्म-शिक्षित चर्मकार बेटे को जोर-जोर से इतिहास और बाइबिल पढ़कर सुनाता था, और इसके साथ ही सुनाया करता था डेनमार्क के मौलियर के रूप में प्रसिद्ध हौलबर्ग के नाटक। जब पिता, पुत्र हंसते तब हैंस क्रिश्चियन की मां कुछ भी नहीं समझ पाती थी। बेटे की कल्पना की उड़ान तक पहुंचने में वह सदा असमर्थ रहती थी, पर बेटे पर वह असीमित स्नेह न्योछावर किये रहती थी। वास्तविकता यह है कि पिता की कल्पनाशीलता और मां की व्यवहार-कुशलता ने हैंस क्रिश्चियन का निर्माण किया था।

पिता ने उसके लिए एक छोटी-सी नाट्यशाला बना दी थी, बालक हैंस क्रिश्चियन वहां गुड़ियापात्रों के लिए नाटक लिखा करता था। जब उसकी उम्र लगभग ग्यारह वर्ष की थी, तब उसने उन नाटकों की सूची बनायी थी, जिन्हें वह लिखना चाहता था। दादी को पौत्र पर नाज था। वह उसे भूतों की कहानियां सुनाती थी।

ऐंडरसन की बाल्यावस्था की अनेक स्मृतियां उसकी कहानियों में मिलती हैं जैसे 'रेड शूज' का संबंध नाचनेवाले जूतों की उस विशेष जोड़ी से हो सकता है, जिसे उसके पिता ने बनाया था। 'द स्नो

सी. ए. जानसन कृत ऐंडरसन का रेखाचित्र (१८३६)

क्वीन' कहानी में जिस बक्से को 'के' और 'गर्डा' अपना बाग कहती हैं, (क्योंकि उनमें झाड़ियां और दो गुलाब के नन्हें पौधे उगे थे) उनके विषय में ऐंडरसन ने 'मेरे जीवन की कहानी' में लिखा है—'पड़ोस के घर के आगे बरसाती नाले में मिट्टी से भरा हुआ एक बक्स रखा है, जिसमें कुछ झाड़ियां उगी हैं और यही एकमात्र बाग मेरी मां के पास था, मेरी कहानी 'द स्नो क्वीन' में यह बाग अब भी फल-फूल रहा है।'

जब वह दस वर्ष का था, पिता का देहांत हो गया। तीन वर्ष बाद मां ने दूसरी शादी कर ली। पत्नी से पंद्रह वर्ष छोटा पति सौतेले पुत्र के प्रति निर्दय तो न था, पर उसके मन में ऐंडरसन के लिए कोई रुचि न थी और मां भी वैसी देखभाल अब नहीं कर सकती थी, जैसी पहले करती थी। अतः उसका विचार बना कि बेटे को दरजी का काम सिखा दे। वैसे भी वह अपने गुड़िया-पात्रों के लिए पोशाकें बनाया ही करता था। लेकिन वह तो दूसरी बात ठाने बैठा था। उसने कोपेनहेगन जाकर अभिनेता बनने की इच्छा प्रगट की। मां को पहले तो उसके इस विचार से धक्का-सा लगा, पर बाद में बेटे के तर्क के सामने मान गयी। हैंस परीकथाओं के नायकों की तरह बैले से संबंधित किन्हीं श्रीमती शाल के नाम मात्र एक पत्र लेकर भाग्य खोजने चल पड़ा।
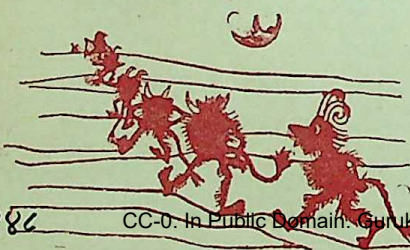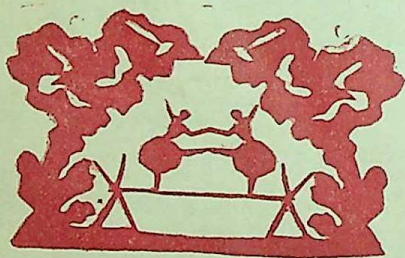
ऐंडरसन का विशेष कृतित्व

कई वर्ष संघर्ष में गुजरे। गायन, नृत्य, सभी क्षेत्रों में उसने उद्योग किया, पर उन व्यक्तियों को प्रभावित करने की जिनके द्वारा रंगमंच तक पहुंचने का मार्ग सरल हो सकता था, उसकी सारी कलाएं असफल हो गयीं। लेकिन उसकी ईमानदारी, उत्सुकता और उत्साह ने लोगों को प्रभावित किया। उसने अनेक अच्छे मित्र बनाये और वहां टिका रहा। अंत में, राजा फ्रेडरिक ने शाही व्यय पर उसे स्कूल भेजा। १८२९ में जब ऐंडरसन चौबीस वर्ष का था, उसकी पहली पुस्तक प्रकाशित हुई। यह होल्मेंस कनल से एमगर के पूर्वी छोर तक की यात्रा संबंधी एक फंतासी थी। कोपेनहेगन विश्वविद्यालय में मैट्रिकुलेशन में अध्ययन करने के समय से जो विचार उसके मन में उमड़-घुमड़ रहे थे, उनको कथानक के एक सूत्र के द्वारा पिरो दिया गया था। अनुभूतियां

इतनी सजीव थीं कि कोपेनहेगन प्रभावित हुए बिना न रह सका ।

१८३० में ऐंडरसन का काव्य-संकलन प्रकाशित हुआ । उसके एक दुखद प्रेम-प्रसंग के उपरांत शीघ्र ही उसके मित्रों ने अनुभव किया कि यात्रा द्वारा उसके मन को बदलने की आवश्यकता है । राजा की ओर से मार्ग-व्यय की सुविधा होने से यात्रा संभव हो गयी । वापस आने पर अपने अनुभवों के आधार पर उसने एक छोटी-सी पुस्तक लिखी 'ट्रेवल सिलियू-एट्स' । समालोचकों ने इसकी प्रशंसा की । फिर उसने दो वर्ष तक जरमनी, फ्रांस और इटली की यात्रा की और १८३५ में 'इम्प्रोवाइजेटर' नामक उपन्यास लिखा । इसके प्रकाशन के बाद उसके जीवन में नया मोड़ आया ।

इसी वर्ष ऐंडरसन ने वह कार्य आरंभ किया जिसके महत्त्व को वह नहीं समझता था । उसने बच्चों के लिए चार परी-कथाएं लिखीं, जो एक नन्ही पुस्तिका के रूप में छपी । नाम रखा 'ट्रिफ़ुल्स' । फिर उसने कहानियों की दूसरी छोटी पुस्तक तैयार की, क्योंकि वह जहां जाता, उसे उसकी पहली कहानियां पढ़े हुए बच्चे मिलते । उसने इन कहानियों को ठीक उसी रूप में लिखा था जिस रूप में वे उसे सुनायी गयी थीं तथा जिस रूप में उसने उन्हें बच्चों को सुनाया था । दूसरी पुस्तक में पहले की चार कहानियां—'द टिंडर-बॉक्स', 'बिग क्लाज ऐंड लिटिल क्लॉज', 'द प्रिंसेज ऑन द पी' तथा 'लिटिल इडाज फ्लावर्स' के साथ थीं 'थंबेलिना', 'द नॉटी ब्वॉय' और 'द ट्रेवलिंग कम्पे-

ऐंडरसन की कहानी 'द लिटिल मैच गर्ल' पर आधारित एक रेखाचित्र, जो जे. टी. लुंडबाई द्वारा १८४५ में बनाया गया

नियन'।

१८३८ में राजा ने उसे पेंशन प्रदान की और तब वह आत्मनिर्भर हो गया। नाट्य रचना में व्यस्त रहने के बावजूद बच्चों के लिए उसने दो कहानियां और लिखीं 'डेजी' तथा 'द डॉण्टलेस टिन सोल्जर'। यात्रा से ऐंडरसन को हमेशा ताजगी मिलती थी। अतः उसने फिर इटली, यूनान और टर्की की यात्रा की। परी-कथाओं का एक छोटा-सा संग्रह उसका प्रकाशित होता जाता था, अतः डेनमार्क के बाहर भी उसकी ख्याति फैल रही थी। यद्यपि ऐंडरसन अपनी कहानियों को 'बच्चों के लिए आश्चर्यजनक कहानियां' कहता था, पर उसका उद्देश्य बालकों और प्रौढ़ों, दोनों को प्रभावित करने का था।

यह दोहरी प्रभावशीलता उसकी कहानियों में तब भी थी, जब उससे बच्चों की तरह बड़ों को, कहानी सुनाने का आग्रह किया जाता था और आज भी है। 'द डॉण्टलेस टिन सोल्जर', 'अगली डकलिंग', 'नाइटेंगेल', 'द वाइल्ड स्वान्स', और 'द स्नो क्वीन' बच्चों को आनंदित करने के साथ-साथ उनकी उम्र के अनुसार परिवर्तित होती जाती हैं और बालकों को उनकी बालबोध की सीमा से परे का ज्ञान प्रदान करने लगती हैं। जैसा ऐंडरसन ने अपनी जीवनी में बताया है उसने पहले स्मृति में संचित बचपन की सुनी कहानियां लिखीं, फिर जैसे-जैसे लेखन और प्रकाशन में गति आती गयी, उसका अपने मौलिक कृतित्व पर विश्वास बढ़ता गया।

अपनी जरमनी यात्रा के समय एक बार उसने ग्रिम बंधुओं से भेंट करने का निश्चय किया। नौकरानी ने जैकब ग्रिम से उसकी भेंट करायी, पर जैकब ऐंडरसन नाम से उसे न पहचान सका, फलतः ऐंडरसन को बहुत शर्म महसूस हुई। यह साक्षात्कार असफल हो गया। दूसरी बार ग्रिम बंधुओं (जैकब ग्रिम, विलहेल्म ग्रिम) से उसकी भेंट सफल हुई। उस समय विलहेल्म ग्रिम ने उससे कहा—'पिछली बार जब आप यहां आये थे, उस समय यदि मेरे पास आये होते तब मैं आपको पहचान लेता।' और ऐंडरसन ने जैसा कि अपनी आत्मकथा में लिखा है, उत्तर दिया—'आप दोनों अत्यंत प्रतिभाशील और मित्रतापूर्ण भाइयों को मैं प्रतिदिन ही प्रायः देखा करता था। जिन संस्थाओं में मैं बुलाया गया, उन पर आप लोगों का अधिकार था। यह सोचकर मुझे खुशी होती थी कि आप लोग, जिनका नाम जरमन लोक-कथा क्षेत्र में अजर-अमर है, मेरी छोटी-छोटी कहानियों को सुनेंगे और उनमें भाग लेंगे।'

गरीब माता-पिता का पुत्र ऐंडरसन, जिसने कोपेनहेगन में लगभग भूखे रहकर अपनी बाल्यावस्था गुजारी थी, अब बड़े लोगों के साथ आराम से दिन बिता रहा था। लोग उसकी पुस्तकें, उसके सामाजिक कार्य, उसकी बातचीत तथा उसकी मनोरंजक कहानियां—सबकी प्रशंसा करते थे। उसे लोगों के ग्रामीण घरों में, उनके जंगलों में और झीलों में जहां हंस धीरे-धीरे शान के साथ तैरते थे, शांति और प्रसन्नता मिलती थी। सन १८४२ में उसने अभिशप्त प्रारंभिक जीवन और शानदार वर्तमान पर विचार करते हुए 'अगली डकलिंग' लिखी। रोजमर्रा की सहज शैली में लिखी यह बालकों की कहानी है, साथ ही अन्य कहानियों की तरह इसमें बड़ों के लिए भी गंभीर अर्थ है।

ऐंडरसन की परी-कथाओं में एक अद्भुत गुण और है। जैकब और विलहेल्म ग्रिम ने बौने, परियां तथा जंगल के बोलते हुए पशुओं की सृष्टि की, फ्रांसीसी कथाकार पैरोल्ट, मेद अलनों तथा दूसरों ने शानदार कोचों पर सवार राजा, रानियों तथा दरबारियों के चरित्रों को चुना, जबकि ऐंडरसन ने घरेलू वातावरण के या कृषि परिवेश के चरित्रों की रचना की और घरेलू सामग्री का उपयोग करके निर्जीव वस्तुओं के जगत को सजीव बना दिया। उसने खेती और घरों से संबद्ध पशु-पक्षियों को भी जीवंतता प्रदान की। उसकी कहानियां, खूंटियां, हरी मटर, टीन के सिपाही, सीने-पिरोने की सुइयां, कमीजी कालर, अबाबील, घोंघे, बिल्लियों, बत्तखों और सेब के वृक्षों से भरी पड़ी हैं। इन कहानियों में उच्च कोटि की स्पष्टता और वैयक्तिकता है। ये प्राणी उसी प्रकार सोचते, बात करते हैं जैसे बच्चे।

ऐंडरसन की मृत्यु १८७५ में हुई थी।

—के ३४/५ चौखंबा, वाराणसी

कहां मैं चाहता था, प्राध्यापक बनूं पर जीवन के निर्णायक मोड़ ने कार्यालय का सहायक बना दिया। इस जैसी नौकरी के लिए भी बड़ी कुर्बानी देनी पड़ी है। घर-परिवार सब छूट चुका है। तीन साल होने को हैं। मिलने पर परिवारवाले पूछते हैं—'अब क्या वेतन पाते हो ? कुछ ऊपरी आमदनी वगैरह है या नहीं ?' छात्र-जीवन में रिश्वत का विरोधी था, पर अब कब तक ?

घर से ४८० किलोमीटर हूं, अतः एकाध बार घर जा पाता हूं। घर के लोग रुष्ट हैं क्योंकि मैं उन्हें रुपये भी नहीं भेज पाता। वेतन २८० रुपये माहवार मिलता है। सत्तर रुपये प्रतिमाह से कम कोई मकान किराये पर नहीं मिलता इस शहर में और वह भी मुझ नितांत अकेले के लिए ! मेरे अधिकारी मेरे कार्य से काफी संतुष्ट हैं, इसके बावजूद वे मुझे अतिरिक्त भत्ते देने में असमर्थ हैं !

अधिकांश साथी मास में पंद्रह दिन भ्रमण पर रहते हैं। यदा-कदा बाजार में किसी से मुलाकात होती है तो शिकायत शुरू कर देते हैं—"क्या करें भाई ? अधिक भ्रमण करने पर भत्ता ही नहीं मिलता, इसलिए घर बैठकर कार्यक्रम समाप्त कर लेता हूं।" कभी मैं सोचने लगता हूं—'जब सभी घर बैठे वेतन पाते हैं, तब मैं क्यों समय पर कार्यालय जाऊं' ? धीरे-धीरे मेरी कार्यक्षमता पर विपरीत प्रभाव पड़ता जा रहा है।

भ्रमणशील साथियों का भत्ता-बिल जब मेरे सम्मुख कार्यवाही के लिए आता है तब मन करता है कि राशि में आधी कटौती कर दूं। रिश्वत का लोभ भी मन में आता है, फिर सोचता हूं कि इस छोटी-सी रिश्वत में रखा ही क्या है ? रिश्वत लूं या नहीं ? इन्हीं द्वंद्वों के बीच जी रहा हूं। परिवार के लिए तो मैं नाकारा हूं ही। मैंने एक बार सरकारी आवास-आवंटन हेतु आवेदन किया। उस पर यह लिखकर लौटा दिया गया कि 'जिलाधिकारी के आवासीय कोटे से आपको सरकारी आवास आवंटन करना संभव नहीं है क्योंकि आप सांख्यिकी निदेशालय के हैं और सांख्यिकी विभाग

इस स्तंभ के अंतर्गत चपरासी से लेकर मंत्री तक के संस्मरणों का स्वागत है। संस्मरण व्यक्तिगत हों, पर १५० शब्दों से अधिक नहीं होने चाहिए। —संपादक

ने अपने कर्मचारियों के लिए सरकारी आवास नहीं बनाया है'। है कोई सीमा मेरे दुर्भाग्य की !

—गंगेशकुमार सिंह, 'गुंजन', रांची

तब मैं राजस्थान के एक जिले में प्रथम श्रेणी-मजिस्ट्रेट था। मेरे कोर्ट में चार व्यक्तियों के विरुद्ध अस्पृश्यता-विरोधी विधान के अंतर्गत पुलिस द्वारा आरोप-पत्र प्रस्तुत हुए। मैंने विधि के अनुसार कार्य-वाही की और साक्ष्य के आधार पर केवल एक अभियुक्त को चेतावनी देते हुए शेष को बरी कर दिया। निर्णय सुनाने के तुरंत पश्चात मुझे समकक्षी न्याया-धीशों ने बतलाया कि मैंने सरकार की इच्छानुसार निर्णय नहीं दिया है और मुझे इसका कटु फल भोगना पड़ेगा। मेरे निर्णय के विरुद्ध सरकार ने उच्च न्यायालय में निगरानी (रिविजन) का निवेदन किया, पर वह खारिज हो गया।

लगभग डेढ़-दो वर्ष पश्चात सचिवा-लय से सूचित किया गया कि उपर्युक्त निर्णय से संबंधित वर्ष में मेरी गोपनीय पंजिका में 'अत्यंत अनुभवहीन' की प्रविष्टि अंकित की गयी है। कहना न होगा कि उपर्युक्त प्रविष्टि करानेवाले जिलाधीश राजस्थान राज्य की सेवाओं के एकीकरण के समय एक बहुत छोटे राज्य के परगने में थे तथा मैं एक बहुत बड़े राज्य के परगने में अधिकारी था। उनका अनुभव एवं विधि का ज्ञान मेरी अपेक्षा बहुत कम था, पर आइ. ए. एस. में पदोन्नति हो जाने के कारण वे जिलाधीश बना दिये गये थे क्योंकि वे मुख्यमंत्री के विशेष कृपापात्र थे।

—डॉ. सुरेन्द्रप्रसाद गर्ग, जयपुर

मैं १९७२ में राजस्थान के खान एवं भू-विज्ञान विभाग की चेकपोस्ट पर नियुक्त था। मेरे साथ एक खान-रक्षक की ड्यूटी लगी थी। उसका कार्य बैरियर बंद करके खनिज ले जानेवाले प्रत्येक ट्रक को रोकना था। मैं चेकपोस्ट में कुरसी पर बैठा था। उसी समय एक ट्रक गिट्टी का आया और चेकपोस्ट पर रुके बिना तेजी से निकल गया। इतने में ही हमारे इंजीनियर साहब मोटर साइकिल से चेकपोस्ट पर चेकिंग के लिए आ गये। मुझसे पूछा कि ट्रक सीधा कैसे निकल गया ? मुझे मोटर साइकिल पर बैठाकर उन्होंने ट्रक का पीछा किया। वापस घुमाकर वे ट्रक को चेकपोस्ट पर ले आये और नियमा-नुसार रायल्टी वसूल की।

मुझ पर वे यह कहते हुए नाराज होते रहे कि तुमने ट्रक को निकाला है, अतः मैं तुमको निलंबित करूंगा। मैंने बहुत कहा की कि मैं अंदर था, यह ड्यूटी तो खान-रक्षक की थी पर उन्होंने मेरी बात नहीं सुनी। खान-रक्षक को उन्होंने यों बचा लिया मानो उसकी ड्यूटी ही न हो।

—फजल रहमान खान,
पो. सरमथुरा, जिला भरतपुर

बंबई धुएं की बांहों में

• डॉ. देवकी नंदन
• कृष्णकुमार

किसी ने सच कहा है कि स्वर्ग और नरक दोनों इस पृथ्वी पर ही हैं। मिसाल के तौर पर कश्मीर को स्वर्ग कहा जाता है। इसी प्रकार युद्धबंदियों के लिए हिटलर ने जो कैंप स्थापित किये, उन्हें नरक माना गया। इन कैंपों में हाइड्रोजन सायनाइड के 'गैस चैंबर' थे, जिनमें उन अभागे बंदियों को यंत्रणा तथा मृत्यु एकसाथ बांटी जाती थी। हाल ही में एक और नरक की खोज हुई है और उसके अन्वेषक हैं महाराष्ट्र विधानसभा के कांग्रेस सदस्य श्री वी. के. टेंबे। संपूर्ण भारत में अपने 'ट्रैफिक-सेंस' के लिए प्रसिद्ध, अरब सागर के तट पर बसे ६० लाख की आबादीवाले महानगर बंबई के उत्तर-पूर्वी भाग चेंबूर-ट्रांबे की ओर इंगित करते हुए श्री टेंबे ने कहा, "नरक यहां है!" उनके साथ दौरा करते पत्र-प्रतिनिधियों ने भी स्पष्ट अनुभव किया कि इस क्षेत्र में स्थित एस्सो, इंडियन आयल तथा बर्मा शेल तेल-शोधक कारखानों, उर्वरक कारखाना, टाटा ताप-बिजली-घर, बंबई पेंट-फैक्टरी आदि की पाइपलाइन तथा छोटी-बड़ी चिमनियों से रात-दिन निकलते विभिन्न रंगों और गंधोंवाले गैसीय पदार्थों तथा कार्बन धूल के दमघोटू आवरण में यहां के ५ लाख लोग कसमसा रहे हैं। अब कार्बन, सल्फर और नाइट्रोजन आक्साइड, हाइड्रोजन सल्फाइड और फ्लोराइड तथा कैंसर पैदा करनेवाले हाइड्रो-कार्बन-जैसे प्रदूषकों से निर्मित विषाक्त आवरण इस इलाके के

पेड़-पौधों का भी शनैः-शनैः नाश कर रहा है। सरकारी आंकड़ों के अनुसार इस क्षेत्र में मृत्यु-दर बंबई के अन्य क्षेत्रों से १८ प्र. श. बढ़ गयी है। विशेषज्ञों के अनुसार यहां रक्त-कैंसर, श्वास-रोग बढ़ रहे हैं और आंख तथा गले की शिकायतें आम हो गयी हैं। विषैली गैसों से भरे ऐसे चैंबर को 'गैस-चैंबर' कहने में क्या हर्ज है?

ट्रांबे में 'भाभा परमाणु-अनुसंधान केंद्र' के रिएक्टरों तथा प्लूटोनियम-प्लांट आदि से वायु में हानिकर रेडियो-सक्रियता के संभावित प्रवेश को नकारा नहीं जा सकता। । साथ ही इस केंद्र द्वारा समुद्र में छोड़े गये रेडियो-सक्रिय व्यर्थ पदार्थों द्वारा समुद्री पानी से बननेवाले नमक के दूषित हो जाने की आशंका है।

बंबई की प्राणवायु को कलुषित करने की जिम्मेदारी केवल चेंबूर-ट्रांबे के उद्योग-केंद्रों पर डाल देना अनुचित होगा, भला बंबई के संपूर्ण नक्शे पर छायी बड़ी-बड़ी फैक्टरियों के इस दिशा में योग-दान को कैसे अनदेखा किया जा सकता है! ५६६ कपड़ा मिलों तथा २५६ रसाय-नोत्पादक कारखानों के अलावा प्लास्टिक, धातुकर्मी, रबड़, चमड़ा, लकड़ी, कागज आदि के उद्योगों के माध्यम से देश की आर्थिक स्थिति में हो रही सुदृढ़ता भले ही प्रत्यक्ष न दीख रही हो, परंतु इसके साथ-साथ पनप रहे प्रदूषण का असर बंबई की घनी आबादियों को स्पष्ट अनुभव हो रहा है। इन उद्योगों का जमाव दादर, परेल, लालबाग, बंबई सेंट्रल क्षेत्र में सबसे अधिक है, जहां आबादी भी अत्यधिक घनी है। बंबई गैस कंपनी द्वारा वायु माध्यम से मुफ्त वितरित ईंधन-गैस इस क्षेत्र के गरीब लोगों में टी.बी. तथा कैंसर बढ़ाने में 'सहायक' सिद्ध हुई प्रतीत होती है! बंबई से जुड़े थाना-बेलापुर की हालत भी यही है। इस इलाके में लगभग ७०० फैक्टरियां हैं।

चलती-फिरती चिमनियां

'विश्व स्वास्थ्य संगठन' ने १९६९ में एक ऐसी रिपोर्ट तैयार की जिससे सर्वसाधारण का ध्यान ऊंची-ऊंची चिमनियों से हटकर बंबई जैसे महानगर की सड़कों पर इतराती-इठलाती 'चिमनियों' की ओर सहसा केंद्रित हो गया है। ये चिमनियां हैं डीजल तथा पेट्रोल की आंतरिक दहन-इंजनों से युक्त कारों, बसों, स्कूटरों, ट्रकों आदि की चौबीस घंटे विषैली, गंधहीन कार्बन-मोनोक्साइड उगलती निकास-नलियां। शुद्ध हवा लील-कर गंदी हवा छोड़नेवाले, प्रदूषण के मुख्य स्रोत ये वाहन बंबई में खतरनाक संख्या में इकट्ठे हो गये हैं। बंबई महानगर की सड़कों पर चल रही लगभग डेढ़ लाख गाड़ियां पूरे महाराष्ट्र राज्य में चल रही गाड़ियों की आधी से अधिक हैं और भारत में चल रहे कुल वाहनों का दसवां भाग। रासायनिक विश्लेषण से ज्ञात हुआ है कि इस वायु में हाइड्रोकार्बन तथा सल्फर-डाई-अक्साइड आदि के अतिरिक्त १० प्रतिशत तक कार्बन-मोनोक्साइड भी है। इनके अलावा टायरों से अनवरत रूप से झड़ते रबड़ के परागनुमा कण भी हवा में व्याप्त हो जाते हैं। अनुमानतः रोजाना टनों रबड़ हवा में मिलती है।

वायु-प्रदूषण की दृष्टि से बंबई की एक और बड़ी समस्या है कूड़ा-कचरा। म्युनिसिपल कार्पोरेशन की गाड़ियां रोज २,००० टन से अधिक कूड़ा-कचरा सारे शहर और उपनगरों से इकट्ठा कर धारवी, देवनार, घाटकोपर, मुलुंड, मलाड तथा बोरिवली के कूड़ा-केंद्रों पर पहुंचाती हैं। इस प्रकार प्रतिवर्ष लगभग आठ-दस लाख टन कूड़ा पैदा होता है, जिसका करीब ६० प्र. श. ज्वलनशील है जो, अंततः वायु में पहुंच जाता है। अनुमान लगाया गया है कि इतने ही वजन का पांचवां हिस्सा अनधिकृत रूप से लोगों द्वारा जला दिया जाता है, और चूंकि यह आवादी के इलाकों में जलता है इसलिए प्रदूषण में इसका भी बड़ा हाथ है।

अधिक ईंधन अधिक प्रदूषण

बंबई के डेढ़ लाख वाहन और सैकड़ों कारखाने ही ईंधन नहीं जला रहे हैं बल्कि दैनिक जीवन में घर में खाना बनाने से लेकर सुनार की दूकान में गहने ढालने तक के लिए ईंधन जलाया जाता है। इस प्रकार धुएं के जनक लकड़ी, कोयला, पेट्रोल, डीजल और गैस शहर में हर जगह प्रदूषणों को पैदा कर रहे हैं। १९६७-६८ में बंबई में कुल मिलाकर १,०८५ हजार टन कोयला, ९६ हजार टन गैस, ५२० हजार टन पेट्रोलियम, २२९ हजार टन मिट्टी का तेल तथा ५३२ हजार टन डीजल तथा ८२१ हजार टन कूड़ा-कचरा जला। तब से आबादी और उद्योग का विस्तार हुआ है। केवल बड़े उद्योगों में इन ईंधनों के जलने से बंबई में प्रतिदिन ७०८ टन कार्बन-मोनोक्साइड, १६० टन

सल्फर-डाई-आक्साइड, १०६ टन नाइ-ट्रोजन आक्सइड तथा २६५ टन कार्ब-निक पदार्थों के अलावा १२० टन धूलि-कण, ७ टन हाइड्रोजन-सल्फाइड तथा १४ टन अमोनिया हवा में प्रविष्ट हो रही है। सौभाग्य से भारतीय कोयले में गंधक का अंश लगभग ०.५ प्रतिशत होता है जो विदेशी कोयले से बहुत कम है। यही गंधक आक्साइड बनकर कंठ-रोग तथा गंभीर चर्मरोग उत्पन्न करता है और बंबई-जैसे नगर में, जहां वायु में पर्याप्त नमी है, अम्ल में परिवर्तित हो इमारतों और धातु की बनी चीजों को खाने लगता है। अमरीकी अनुसंधानकर्ताओं के अनुसार बड़े नगरों में प्रदूषण के बढ़ने से आनुवंशिक प्रक्रिया के प्रभावित होने से विकलांग तथा अस्वस्थ बच्चों की संख्या में वृद्धि होगी। प्रदूषण चूंकि अंतर्राष्ट्रीय समस्या है, जैसा कि स्टाकहोम में प्रदूषण पर हुए अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन (५ व १६ जून, १९७२) से स्पष्ट है, इस दिशा में बड़े स्तर पर शोध-कार्य प्रारंभ हो गया है और शीघ्र ही इन विभिन्न प्रदूषकों के कुप्र-भावों पर विस्तृत प्रकाश पड़ने की आशा की जा सकती है। परंतु इस प्रतीक्षा में ही बैठे रहना अनिष्टकारी होगा। बंबई की वायु की स्वच्छता के बारे में यदि शीघ्र ही कदम न उठाये गये तो डर है कहीं यह महानगर १९५२ का धुएं में लिपटा लंदन न बन जाए, जिसमें दो सप्ताह में ही हजारों नागरिकों को इस विचित्र स्मॉग के कारण अपनी जान से हाथ धोना पड़ा था।

बिन पानी सब सून

कपड़ा-मिलों के शहर बंबई में छोटे-छोटे गांव भी हैं। चेंबूर-ट्रांबे में भाभा परमाणु-केंद्र से लगभग एक किलोमीटर दूर एक छोटा-सा गांव है गवनपाडा। इस गांव में एक ही कुआं है जो कि गांव के लिए पानी का मुख्य स्रोत रहा है। आज इस कुएं में कूड़ा-कचरा तथा तैलीय पदार्थों से युक्त जल है। कुछ माह पूर्व बंबई के सेंट जार्ज अस्पताल में पीने के पानी के दूषित हो जाने से अनेक मरीजों को पीलिया हो गया था। इस पेय जल की स्वच्छता बनाये रखना भी समस्या बन गया है। वायुमंडल के साथ-साथ बंबई में जल का प्रदूषण भी एक अरसे से होता आ रहा है। बंबई के चरणों को छूते सागर को कूड़ा-कचरा, मल, जहरीले रसायन, अन्य औद्योगिक अवशिष्ट आदि प्रदूषित कर रहे हैं। फलस्वरूप न तो समुद्र में स्नान का आनंद लिया जा सकता है, न मछलियां पकड़ने का। कहीं-कहीं मछ-लियां तो कांटे में ही नहीं फंसती, क्योंकि वे जहरीले जल से मर चुकी होती है। अन्य समुद्री खाद्य-पदार्थ भी विषाक्त होता जा रहा है।

बारिश के चार महीनों को छोड़कर साल के शेष आठ महीनों में बड़े-बड़े पाइपों में बहते औद्योगिक व्यर्थ को उप-चार द्वारा सुखा दिया जाता है, लेकिन फिर

यही शुष्क मल, जो कि लगभग २,५४० टन होता है, बरसात के दिनों में समुद्र में विसर्जन-हेतु छोड़ दिया जाता है। किंतु 'स्केवेंजर' पत्रिका के अनुसार बंबई के मल प्रदूषित जल का ८० प्रतिशत बिना उपचार किये ही समुद्र में धकेल दिया जाता है। बंबई में प्रतिदिन १४ करोड़ गैलन मल-व्यर्थ पैदा होता है और यह मात्रा रोज बढ़ ही रही है। इसके अतिरिक्त बहुत-सा कूड़ा-कचरा भी समुद्र में प्रवेश कर रहा है। इस तरह समुद्र का प्रदूषण हो रहा है और ऐसी स्थिति में स्नान का आनंद खतरे से खाली नहीं। जुहू, चौपाटी को छोड़कर अन्य सभी स्थान बहुत दूषित हो चुके हैं।

कुछ समय पहले तक माहिम-क्रीक में मछली के शिकार से रोजाना ६०० टोकरी मछली इकट्ठी कर लगभग ३०० परिवार गुजर-बसर कर रहे थे, लेकिन अब यह केवल भूतकाल की बात रह गयी है। यही हाल थाना-क्रीक की शुक्ति-मछलियों तथा हॉर्नवी वेलार्ड के पास समुद्र के किनारे की सार्डीन मछलियों का हुआ है। उद्योगों द्वारा छोड़े गये गरम तथा प्रदूषित पानी से समुद्री पानी का ताप सामान्य ताप से अधिक हो जाने के कारण कोमल समुद्री जीवों को खतरा हो जाता है। अनेक स्थानों पर प्रदूषण से पानी में आक्सीजन की कमी के कारण जलजीवों पर आ बनी है और वे या तो भाग रहे हैं या मर रहे हैं और जो विषपान कर जीवित हैं वे स्वयं विष बन गये हैं।

गंदगी हटाओ अभियान

कुछ विदेशियों ने बंबई को भारत का एक बहुत बड़ा गंदा नगर कहा है। आखिर सड़कों पर चारों ओर फैले मैले-कुचैले भिखारी और सैकड़ों गंदी बस्तियों के दर्शन कर कोई क्या निष्कर्ष निकालेगा? बंबई में झुग्गी-झोंपड़ीवाली ५३७ गंदी बस्तियां हैं। इन बस्तियों में सवा दो लाख परिवार हैं, जिनकी कुल जनसंख्या लगभग १२ लाख है, अर्थात बंबई के २० प्र. श. लोग इन झुग्गियों में ही रहते हैं। इसके अलावा हजारों बेघर लोग फुटपाथों की स्वच्छता का सर्वनाश कर रहे हैं। महाराष्ट्र हाउसिंग बोर्ड ने इन झोपड़ियों को हटाकर इनके निवासियों के लिए अच्छी बस्तियां बसाने के कार्य का श्रीगणेश कर दिया है, लेकिन कुर्ला रेलवे-स्टेशन के बाहरी प्लेटफार्म-जैसे स्थानों पर जो नयी गंदी बस्तियां बस रही हैं उनका क्या होगा?

प्रश्न उठता है कि क्या किया जाए? १९५२ में घटी 'लंदन स्मॉग' दुर्घटना के पश्चात वायु-प्रदूषण को कम करने के लिए जो विधियां प्रयुक्त हुईं, वे उद्योगों में सामान्य वृद्धि के बावजूद काफी सफल रही हैं और वस्तुतः लंदन को अब एक स्वच्छ महानगर कहा जा सकता है। इसी प्रकार अमरीका में पिट्सबर्ग में प्रयुक्त विभिन्न नियंत्रण-विधियों के अत्यंत संतोषप्रद परिणाम निकले हैं। इन बड़े देशों में प्रदूषण की समस्या अधिक गंभीर

होने के कारण अनुसंधान तथा विकास-कार्य काफी आगे बढ़ा हुआ है। हमारी आर्थिक विपन्नता बड़े पैमाने पर इस दिशा में अनुसंधान करने में कठिनाई है। उदाहरण के तौर पर, ताप-बिजलीघरों द्वारा पैदा होनेवाले धूलिकणों को संयंत्र में जज्ब कर लेनेवाले 'यांत्रिक संग्राहक' तथा 'स्थिरविद्युत अवक्षेपक' अब विदेशों में इस्तेमाल किये जा रहे हैं। हम केवल विदेशों का मुंह ताकें, यह अनुचित होगा। कुछ अनुसंधान तथा विकास-कार्य हमें भी करना होगा। महाराष्ट्र सरकार ने वायु-प्रदूषण के संबंध में एक 'सतर्कता-समिति' बनायी है जिसने बंबई में प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए काम शुरू कर दिया है। इसी प्रकार सारे देश में महानगरों की प्रदूषण-स्थिति का पता लगाने तथा प्रदूषण की रोकथाम के लिए कई सरकारी एवं गैरसरकारी कमेटियां तथा संगठन बनाये हैं। पांचवीं पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत प्रदूषण-निराकरण के लिए विशिष्ट योजनाएं बन रही हैं। महानगरों की जनता को चाहिए कि प्रदूषण-रूपी विपत्ति से निबटने के लिए वह सरकार और उद्योगपतियों का साथ दे, चाहे वह बिजली की बढ़ी कीमतों के रूप में हो अथवा प्रत्यक्ष प्रदूषण-कर की शकल में।

—द्वारा, हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद, सेंट्रल कांप्लेक्स, भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, बंबई-८५

बुद्धि-विलास के उत्तर

१. छात्र—९०, छात्राएं—४५, २. सोमवार, ३. र, ४. (४) मेल नहीं खाता, क्योंकि अन्य सभी वाहन जमीन पर चलनेवाले हैं। ५.५ व ७,६. इस पंक्ति के प्रत्येक शब्द के प्रथम अक्षर में गणित के चिह्नों को क्रम से हल करने का संकेत निहित है—ब—ब्रेकेट (कोष्ठक), क—का, भ—भाग, ग—गुणा, ज—जमा, घ—घटाना) ७. व्यास—विषुवतेरखीय— ७,९२६.६८ मील, ध्रुवीय—७,८९९.९८ मील, परिधि—विषुवतरेखीय—२४,९०२ मील, ध्रुवीय—२४,८६० मील, ८. हां, मृत-सागर, ९. जीवन की क्षणभंगुरता, १०. लगभग ७ लाख रु. का ब्रिटिश पुरस्कार, जो धर्म और दर्शन के क्षेत्र में श्रेष्ठतम योगदान के लिए दिया जाता है— स्व. डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन; ११. ग, १२. घ., १३. सिक्किम को भारतीय संघ के २२वें राज्य के रूप में मान्यता, १४. 'आर्यभट्ट', १९ अप्रैल, '७५ को रूस में किसी अज्ञात स्थान से छोड़ा गया, १५. ग., १६. एक जहाज, जिसकी सहायता से बंबई के निकट समुद्र में तेल की खोज की जा रही है, १७. मिश्रित अर्थ-व्यवस्था— सार्वजनिक तथा निजी उद्योगों के द्वारा देश का विकास, १८. सिक्किम, १९. शुतुरमुर्ग, २०. सेब का डंठल, २१. २॥ कि. मी. पर, २२. ३ डंडे, २३ ग.

कविरत्न रूपनारायण पांडेय

• नरेन्द्र पांडेय

द्विवेदी-युग के एक दृढ़ स्तंभ कविरत्न स्वर्गीय पंडित रूपनारायण पांडेय उन हिंदी-सेवकों में प्रमुख थे जिनकी तपस्या एवं साधना पर आज हिंदी का भव्य भवन आधृत है। उन्होंने संस्कृत और बंगला के अनेकानेक सफल अनुवादों से भारती के भंडार की रिक्तता-पूर्ति की थी। वर्तमान गद्य के निर्माण में उनका निस्पृह योगदान अविस्मरणीय है। हिंदी-जगत उन्हें मुख्यतः एक उत्कृष्ट अनुवादक और 'माधुरी', 'सुधा', 'इंदु' 'नागरी प्रचारक' आदि के सुयोग्य संपादक के रूप में जानता है, पर मूलतः वे एक भावप्रवण और कुशल कवि थे। यद्यपि उनका कवि-रूप प्रच्छन्न रह गया है, तथापि कविता वे स्वांतःसुखाय करते थे। अनुवाद आदि से उन्हें धन-प्राप्ति होती थी। ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों पर उनका समान अधिकार था। उनकी प्रारंभिक कविताएं ब्रजभाषा में हैं, पर वर्तमान शती के प्रारंभिक दशक में खड़ी बोली के उन्नयन और समृद्धि के लिए संकल्प लेने के बाद उन्होंने अधिकांश कविताएं खड़ी बोली में ही लिखीं।

तेरह वर्ष की अवस्था में गृहस्थी का भार पांडेयजी के कंधों पर आ पड़ा और पंद्रह वर्ष की अवस्था में उन्होंने जो लिखना आरंभ किया तो आजीवन लिखते ही रहे। वे सच्चे साधक और श्रमजीवी लेखक थे।

लखनऊ तब उर्दू का गढ़ था जब पांडेयजी ने वहां से हिंदी के प्रचार-प्रसार-हेतु 'नागरी प्रचारक' पत्र का सूत्रपात किया था। पत्र में एक छंद अंकित रहता था जो पत्र के उद्देश्य का प्रतीक था:

अर्थ निकरत है, अनर्थ न करत
बर बरन हरत हिय, हिय में बिचारिये
सुद्ध औ सरस, पद कोमल, अमल अंग
गूढ़ धुनि, पुनि बहुभूषन संवारिये
सुंदर, सुलच्छन, बिलच्छन चमतकार
बिगत बिकार, ताहि काहे को बिसारिये
नागर-निरादर सों नागरी-सी छीन
यह नागरी गरीबनि कौ नैकुं तौ निहारिये

इस छंद में नागरी की नागरी (नारी) से तुलना की गयी है। जैसे वह नागरी (नारी) कोई अनर्थ या असंगत कार्य नहीं करती वैसे ही इस नागरी की लिखावट से उर्दू की तरह अर्थ का अनर्थ नहीं होता, कुछ का कुछ नहीं पढ़ा जाता। उस नागरी का वर्ण (रंग) हृदयहारी होता है और इस नागरी के वर्ण (अक्षर) भी सौंदर्य से हृदय को हरनेवाले हैं। वह नागरी शुद्ध (सच्चरित्र) है और यह भी शुद्ध लिखी-पढ़ी जाने के कारण शुद्ध है। वह नागरी सरस या रसीली है तो इस नागरी के पढ़ने में भी रस (आनंद) मिलता है। उसके पैर कोमल हैं, इसकी कविता के पद भी कोमल हैं। उसके हाथ-पैर आदि अंग निर्मल-निर्दोष हैं, इसके भी अंग (दशांग साहित्य) निर्मल-निर्दोष हैं। उसकी ध्वनि, अर्थात आवाज कुल-कामिनी होने के कारण सबको सुनायी नहीं पड़ती, इसकी भी कविता में ध्वनि गूढ़ रहती है। इस नागरी को भी अनेक शब्दार्थालंकारों से सजाया जा सकता है। दोनों ही सुंदर हैं। उस नागरी में सब अच्छे लक्षण हैं तो यह नागरी भी अच्छी लक्षणा से युक्त है। दोनों का चमत्कार विलक्षण है। फिर ऐसी नागरी को आप क्यों भूले हुए हैं? जैसे नागर (नायक) से निरादर पाकर नागरी (नायिका) दिन-दिन दुबली होती जाती है, वैसे ही नागरों (नगरनिवासियों) द्वारा किये गये निरादर से क्षीण होती चली जा रही इस गरीब नागरी की ओर तनिक तो देखिये—इसकी सुध लीजिए।

सोलह वर्ष की अवस्था में रचित उपर्युक्त छंद पांडेयजी की क्षमता, एकनिष्ठ साधना और उर्दूमय लखनऊ को हिंदी की ओर अग्रसर करने के संकल्प का प्रतीक था। उनकी सतत साधना का सुफल था कि जहां मुशायरों की ही धूम रहती थी वहां कवि-सम्मेलन भी होने लगे और उनमें कालांतर में महाकवि निराला के अलावा अवधी के भी श्रेष्ठ कवि पं. वंशीधर शुक्ल, पं. बलभद्र दीक्षित 'पढ़ीसजी', अनूपजी आदि भाग लेते थे।

उस समय हिंदी में अतुकांत कविता अधिक प्रचलित न थी, पर पांडेयजी की 'तारा' का ओजस्वी स्वर अतुकांत पद्य में अनुपम प्रतीत होता है :

सेनापति—

रानी! जननी पुकारती जब स्वयं ऊंचे स्वर से खड़ी, कौन तब खोह में छिपा रहेगा? किसको इतना भीत है प्राणों का? बस चलो, विकट हुंकार से टूट पड़ें हम शत्रु-सैन्य पर, युद्ध में

जीतेंगे या प्राण वहीं देंगे—चलो तारा—
तो फिर आओ, चलो; बुलाओ जोश से सब सेना को। कहो उच्च स्वर से कहो 'डरो नहीं।' तुम डरो नहीं—मैं साथ हूं

खड़ी बोली को सुगठित-सशक्त बनाने का बीड़ा उठानेवाले पांडेयजी की कविताओं की प्रमुख विशेषता सरलता, सहजता और अभिव्यंजना की सादगी थी। उनकी 'वन-विहंगम' नामक लंबी कविता इस दृष्टि से उनकी प्रतिनिधि रचना है :

बन बीच बसे थे, फंसे थे ममत्व में एक
कपोत-कपोती कहीं
दिन-रात न एक को दूसरा छोड़ता ऐसे
हिलेमिले दोनों वहीं

पांडेयजी की प्रेम-संबंधी कविताएं भी मनोहर हैं, परंतु वे लौकिक न होकर ईश्वरात्मक हैं, उदाहरणार्थ :

वह चंचलता गयी, हुए वे दिन सपने-से
अर्पण ही कर दिया हृदय अपना अपने से
पतित कहो तो भले गले से नहीं लगाओ
चरण-चिह्न तो हृदय बीच आकर कर जाओ

पांडेयजी सच्चे मानवतावादी थे। उन्होंने अछूतोद्धार–जैसे विषयों पर भी लेखनी चलायी है। इस संबंध में भी उनकी दृष्टि राजनीति-रहित और शुद्ध मानवतावादी रही है :

अपना ही अंग हैं ये अंत्यज असंख्य इन्हें
गले न लगाया तो अवश्य पछताओगे
ममता के मंत्र से विषमता का विष जो
उतरा नहीं, जाति को तो जीवित न पाओगे
पक्षाघात-पीड़ित समाज जो रहेगा फि
उन्नति की दौड़ में कहां से जीत जाओगे
साधना स्वराज्य की सफल कभी होगी नहीं
अगर अछूतों को न आप अपनाओगे

भाषा-सौष्ठव और काव्य-कला की दृष्टि से उनकी कविता चिरस्मरणीय रहेगी। निम्नलिखित छंद में एकलव्य का चित्रण अतीव आकर्षक और सजीव बन पड़ा है। भाषा की प्रवहमानता दृष्टव्य है :

मृगचर्म कटि में लपेटा कसा फेंटा बंधा
कंधों पर व्याघ्रचर्म सव्य अपसव्य था
मांसपेशियों भरा बल था उबल रहा
रूप भी अनूप भूप अनुरूप भव्य था
आंखें थी अरुण नववय का तरुण
जान पड़ता कि इंद्र या वरुण कोई नव्य था
काल की कला-सा अंग सांचे में ढला-सा
और
नाम भी भला-सा बिरला-सा एकलव्य था

तत्काल समस्या-पूर्ति करने में वे बड़े सुदक्ष थे। एक बार एक गोष्ठी में उन्हें समस्या दी गयी 'कारे की', जिसकी सरस पूर्ति उन्होंने कुछ ही क्षणों बाद इस प्रकार की :

बंसीबट जमुना के तट के निकट
पनघट पै निहारि छबि नटवर न्यारे की
बौरी-सी, बिकानी-सी बिकल बृषभानु
सुता
मुरि मुसकान पर वारी प्रान प्यारे की
आयी देखिहौं मैं परी बोलत न डोलत है
खोलत न नैन सुधि ओढ़े ना उघारे की

महर को जायो अरी जहर बुझायो वह
कारे की डसनि है हंसनि कान्ह कारे की

वर्तमान शती के प्रथम दशक में, जब खड़ी बोली का स्वरूप स्थिर और सुगठित होना शेष था, उन्होंने खड़ी बोली में एक छंद लिखा था, जो भाषा की दृष्टि से आज भी उत्कृष्ट है:

काम के, क्रोध के, लोभ के, मोह के
कैसे खड़े हैं कड़े पहरे प्रभु
पापी, सुरापी, प्रतापी बने, कर धर्म के
कर्म गिरे गहरे प्रभु
लाख पुकारिये घोर विपत्ति में
आप नहीं सुनते बहरे प्रभु
क्यों जन आपके पीड़ित हों नहीं
आप 'जनार्दन' जो ठहरे प्रभु

'जनार्दन' का अर्थ है दुष्टों को दंडित करनेवाला, किंतु यहां उसका शाब्दिक अर्थ लिया गया है—जन-अर्दन, अपने जनों को सतानेवाला।

उनकी प्रायः सभी कविताओं में अलंकारों की स्वाभाविक छटा दृष्टिगत होती है। अनुप्रास की दृष्टि से उनका यह दोहा अद्वितीय है:

गुरु गणेश गंगा गिरा गौरी गौरीनाथ
गो गोपी गोपाल की गाऊं मैं गुन-गाथ

पर पांडित्य और ज्ञान-गरिमा के साथ ही उनका अभिमानरहित आत्म-निवेदन कालिदास का स्मरण कराता है:

कवि जस चाहौं मंदमति मैं उछाह के साथ
ज्यों वामन ऊंचे फलहिं उचकि चलावै हाथ

वस्तुतः पांडेयजी की क्षमता असीम थी। साहित्य के हर क्षेत्र में उनका समान अधिकार था। कभी किसी ने उनसे किसी की निंदा नहीं सुनी। साहित्य के वे ऐसे 'शंकर' थे जो दैनिक अभावों और असुविधाओं का विषपान करते हुए भी सदा मुसकराते रहते थे और साहित्य-साधना में कठोर श्रम करते रहते थे। नाम की इच्छा से कोसों दूर, केवल काम में विश्वास करनेवाले पांडेयजी सच्चे अर्थों में प्रगतिशील और श्रमजीवी साहित्यकार थे। अपने जीवन के ७५ वें वर्ष में १२ जून, १९५८ को उन्होंने महायात्रा की। उनकी यश-गाथाएं ही शेष रह गयीं।

अंततः पांडेयजी के ही इन शब्दों से धैर्य धारण करना पड़ता है:

है विकास सर्वत्र नाश का सूचक हममें
होकर पूर्ण सुधांशु तूर्ण होता है तम में
किंतु चंद्र तो हाय, दृष्टि में फिर आता है
हममें से जो गया, सदा ही को जाता है

पंडित श्रीनारायण चतुर्वेदी के शब्दों में "हिंदी का जो आज स्वरूप है और उसे आज जो स्थान प्राप्त है, उसे बनाने और संवारने में जिन्होंने 'नींव की ईंटों' का काम किया है, उनमें पांडेयजी का स्थान प्रमुख है। यदि हममें कृतज्ञता की तनिक भी भावना है तो हम उनके कार्य और व्यक्तित्व को कभी नहीं भूल सकते। यदि हम उन्हें भुला देंगे तो भावी पीढ़ियों के लिए प्रेरणा का स्रोत ही सूख जाएगा।"

—ई-१/१८५, लाजपतनगर, नयी दिल्ली

लंबी यातना

• पॉस्तोव्स्की

मनुष्य अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए नरक की आग में से भी गुजर जाएगा और बड़े-से-बड़े करिश्मे कर दिखाएगा।

इस दृष्टि से एडवर्ड डेक्कर का जीवन एक अच्छा उदाहरण है। वह एक डच लेखक था और अपने उपनाम 'मुलतातुली' से लोगों में प्रसिद्ध था। यह लैटिन का शब्द है, जिसका अर्थ है 'लंबी यातना'।

दुर्भाग्य से मुलतातुली की सर्वश्रेष्ठ रचनाएं हम तक पहुंच नहीं सकी हैं। उसके जीवन के सबसे उदास वर्षों की कहानी यहां प्रस्तुत है।

बाल्टिक सागर के रेतीले इलाकों में एक छोटे-से घर में बैठे हुए मेरे विचार डेक्कर की ओर गये हैं—शायद इसलिए कि यही वीरान समुद्र नीदरलैंड की धरती को छूता है, जो कि डेक्कर की मातृभूमि थी। अपनी मातृभूमि के बारे में उसने बड़ी तलखी और लज्जा से कहा है : "मैं नीदरलैंड का बेटा हूं—डाकुओं की उस धरती का बेटा जो क्रिसलैंड और शेल्डर के बीच फैली हुई है।"

पर डेक्कर का यह कथन गलत है। बेशक हालैंड में सभ्य डाकू हैं, पर वे बहुत कम संख्या में हैं, और उनसे डच लोगों के बारे में अनुमान बिलकुल नहीं लगाया जा सकता। सभी जानते हैं कि हालैंड बहुत मेहनती लोगों का देश है और उनमें "क्लास" और "थिल उइलैंस्पाइगेल" की बागी रूह है। क्लास की रूह बहुत-से डच लोगों में समायी हुई है, जैसे कि वह मुलतातुली में समायी हुई थी।

मुलतातुली ने एक उच्च घराने में जन्म लिया था। उसने बहुत सम्मानपूर्वक विश्वविद्यालय की शिक्षा समाप्त की थी और जल्दी ही वह जावा में एक सरकारी ओहदे पर नियुक्त हो गया था। बाद में वह वहां के एक प्रांत का गवर्नर बन गया था। प्रसिद्धि, धन-दौलत, असर-रसूख—सब उसकी प्रतीक्षा में थे। यहां तक कि उसके वाइसराय बनने की भी संभावना थी। पर उसके अंदर क्लास की जो बागी रूह थी, वह दुनियावी सम्मान और धन-दौलत से घृणा करती थी।

बड़ी बहादुरी और दृढ़ता के साथ वह जावा को अपने देश हालैंड की गुलामी से आजाद कराने के लिए लड़ा। उसने

हमेशा जावा की गरीब जनता का साथ दिया और उनके दुःख-दर्दों को दूर करने का प्रयत्न किया। उसके शासन में हर रिश्वतखोर को सख्त सजा दी गयी। जब जावा के लोग अपने शासकों के विरुद्ध खड़े हुए तो मुलतातुली ने उच्च सरकारी अफसर होने के बावजूद 'उन विश्वसनीय बच्चों' के साथ सहानुभूति प्रकट की। जावा के लोगों को वह 'विश्वसनीय बच्चे' ही कहा करता था। उसने अपने देश-वासियों की कठोर और अन्यायपूर्ण नीति का विरोध किया। मुलतातुली ने डच जनरलों की धोखेबाजी से भरी सरकारी चालों की निंदा की।

जावा के लोगों को स्वच्छता से बेहद प्यार है। वास्तव में स्वच्छता उनके जीवन में ही समायी हुई है और वे हर प्रकार की गंदगी से घृणा करते हैं। सेनानायकों ने उनकी इस सफाईपसंदी का बेजा फायदा उठाया। उन्होंने अपने सिपाहियों को जावा के बागी लोगों पर मल-मूत्र फेंकने का हुक्म दिया। जावा के लोग दृढ़ता से डच तोपों के सामने डटे रहे, लेकिन वे सेनाधिकारियों के इस हथकंडे का मुकाबला न कर सके और मोर्चे छोड़कर भाग खड़े हुए।

मुलतातुली अपने सेनाधिकारियों की इस घृणित चाल के साथ-साथ वाइसराय की कूटनीति को भी बुरा कहने से डरा नहीं। आखिर शासन ने उसे अपनी राह से हटाने का फैसला किया। मुलतातुली को उसके ओहदे से बर्खास्त करके हालैंड भेज दिया गया, पर उसे वहां की पार्लियामेंट की सदस्यता से हटाना संभव नहीं था। कई वर्ष तक वह पार्लियामेंट में यह मांग करता रहा कि जावावासियों से अच्छा व्यवहार किया जाए। वह निर्भीकता से अपने विचार लोगों के सामने रखता रहा, पर उसकी आवाज दीवारों से टकराकर रह गयी। आखिर यह घोषित किया गया कि वह सनकी है। यहां तक कि उसे पागल करार दे दिया गया। उसका परिवार भूखों मरने लगा।

उस समय उसके दिल में लिखने की आकांक्षा उठी। यह आकांक्षा उसके अंदर पहले भी सुलगती रही थी, पर अब वह उसे दबाकर नहीं रख सकता था। उसने जावा में रहनेवाले डचों के बारे में "मैक्स हावेलाट" नामक एक उपन्यास

"हंसने का आज आखिरी दिन है, कल तो बेचारे की शादी हो जाएगी।"

लिखा, जिसमें उन पर भरपूर वार किया गया था। लेखन-क्षेत्र में अपने इस पहले प्रयत्न में वह एक लेखक के रूप में अपना रास्ता खोज रहा था। पर 'प्यार के खत' नाम की जो पुस्तक उसके बाद उसने लिखी वह उसके सशक्त लेखन का सबूत देती है। इस पुस्तक में उसने संसार में कई जगह हो रहे भयानक अन्याय के विरुद्ध अपनी आवाज उठायी। उसने शासकों का मजाक उड़ाया और उन पर करारी चोटें कीं। पुस्तक के अंत में उसने मनुष्यता में फिर वह विश्वास पैदा करने का प्रयत्न किया है जो कि बचपन और जवानी की विशेषता है।

आखिर मुलतातुली रोजगार की खातिर हालैंड छोड़कर दूसरे मुल्कों में गया। उसकी पत्नी और बच्चों को हालैंड में ही रहना पड़ा, क्योंकि उन्हें साथ ले जाने के लिए मुलतातुली के पास पैसे नहीं थे।

यूरोप के शहरों में गरीबी से संघर्ष करते हुए मुलतातुली लिखता ही रहा। सम्मानित समाज में उसका कोई स्थान नहीं था। वहां हर जगह उसे ठोकरें खानी पड़ीं। घर से पत्नी का कभी-कभार ही कोई पत्र आता था। गरीबी की यह हद थी कि उसकी पत्नी के पास लिफाफा या कार्ड खरीदने लायक भी पैसे नहीं थे। पर, मुलतातुली अपनी पत्नी और बच्चों को भूला नहीं, खासकर अपने सबसे छोटे पुत्र को। उसे डर था कि नीली आंखोंवाला उसका पुत्र कहीं इस उम्र में ही लोगों पर विश्वास न खो बैठे। अतः वह पत्नी को लिखता रहा कि वह उसे अनावश्यक निराशाओं से बचा कर रखे।

मुलतातुली को अपनी पुस्तकों के लिए कोई प्रकाशक नहीं मिल रहा था।

पर, एकाएक हालात बदले। कुछ प्रसिद्ध डच प्रकाशक इस शर्त पर उसकी पुस्तकें प्रकाशित करने के लिए तैयार हो गये कि वह उनके सारे हक उन्हें दे दे। कठिनाइयों से लड़ते हुए मुलतातुली थक गया था, अतः वह मान गया। वह अपने देश लौटा। प्रकाशकों ने उसे पेशगी के तौर पर कुछ पैसे दिये, पर उसकी पुस्तकें छापी नहीं गयीं। यह शासकों की चाल थी, जो उन्होंने प्रकाशकों द्वारा खेली थी। वे उस बागी लेखक की रचनाओं को नष्ट कर देना चाहते थे, जिनमें उसने डच व्यापारियों और सरकारी अफसरों को नंगा करके रख दिया था, और जिन्हें अपने चारों ओर खतरा महसूस होने लगा था।

मुलतातुली इतने बड़े अन्याय को देखता हुआ मर गया। हालात इतने बुरे न होते तो वह और कई वर्षों तक जीवित रहता और कई पुस्तकें लिखता—ऐसी पुस्तकें जो दिल के लहू से लिखी जाती हैं। मुलतातुली लड़ा और लड़ता हुआ मरा। वह कभी डगमगाया नहीं। उसका जीवन एक निर्भीक राजनीतिज्ञ और साहसी लेखक का जीवन था।

—अनु. सुखबीर

प्रथम

"आयु—१८ वर्ष। वनस्थली विद्यापीठ में कला के द्वितीय वर्ष में अध्ययन कर रही हूं। इस छोटे-से जीवन-काल में ही जीवन को इतने निकट से जिया है कि जब कभी उसकी पीड़ा का भार आहत मन झेल पाने में असमर्थ हो उठता है, तब कागज-कलम ले उसे बांट लेती हूं।"

टूटते संबंध

किसी नयी उगी कोंपल की तरह
नये-नये संबंध
उगते हैं, फलते-फूलते हैं
और फिर एकाएक, सूखे पत्तों की तरह
झर जाते हैं
किंतु मेरे और तुम्हारे संबंध
जो कभी उगे थे, फले-फूले थे
आज सूखकर भी जुड़े हुए हैं
लेकिन, कभी ये टूट जाएं
तो तुम शोक मत करना
शाख हो तुम तो
तुम्हें नये संबंध मिलेंगे
सूखा पत्ता तो मैं हूं
कि टूटकर धूल में मिल जाने के सिवा
जिसके पास और कोई चारा ही नहीं
फिर भी मैं, इंतजार करूंगी
कि हवा का कोई झोंका आये
और मुझे तुमसे तोड़कर दूर ले जाए
क्योंकि, सूखकर भी
जुड़े रहने की पीड़ा से
टूटकर गिर जाने का दर्द
कहीं बहुत कम है

—किरन भारिल्ल
(हॉस्टल शांता विहार,
वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान)

• गुलाबदास ब्रोकर

डॉक्टर रमाकांत हर तरह से सुखी थे, निरोगी और स्वस्थ। दो पुत्र और सुंदर-सी दो पुत्रियां थीं। पत्नी घर की व्यवस्था समझदारी और स्नेहपूर्वक चलाती थी। डॉक्टर अपने व्यवसाय से अच्छा-खासा कमाते तो थे ही उसी तरह खर्च भी करते थे। फिर भी खर्च से आय अधिक थी, इसलिए डॉक्टर के पास थोड़ी-बहुत बचत जमा हो गयी थी। एक पुत्री का विवाह हो गया था, इसलिए उसकी चिंता नहीं थी, लेकिन दूसरी पुत्री अब विवाह-योग्य हुई थी, उसके विवाह में और उससे छोटे दोनों बेटों की पढ़ाई-लिखाई में उस बचत का उपयोग कैसे हो, इस संबंध में डॉक्टर ने एक योजना मन में बना रखी थी।

डॉक्टर का यह सुख उनके विनोदी-गुलाबी स्वभाव में, ममत्वपूर्ण व्यवहार में और उनके निस्पृह-निर्लोभी आचरण में प्रतिबिंबित होता दिखायी देता था। मित्र उन्हें चाहते थे और सगे-संबंधी भी उनके प्रति स्नेह-भाव रखते थे। डॉक्टर भी, जितना संभव होता उतना, उनके लिए उपयोगी बनने का निरंतर प्रयत्न करते रहते थे। इस तरह उनके चारों तरफ प्रेमभरा वातावरण घिरा रहता था।

...लेकिन पिछले कुछ महीनों से डॉक्टर के उस निर्मल सुख में कई बाधाएं दिखायी पड़ने लगी थीं। बावन वर्ष का होने पर उनके शरीर में कुछ विकार अनुभव होने लगा था। अन्यथा अब तक तो उन्हें सिरदर्द-जैसा छोटा रोग भी नहीं हुआ था। और इस बात का उन्हें गर्व भी था। इसीलिए अभी-अभी जब उनके शरीर में कुछ-कुछ कष्ट शुरू हुआ, तब उनके मन में एक साथ दो प्रकार की प्रतिक्रियाएं हुईं, एक आश्चर्य की और दूसरी लापरवाही की। स्वयं नियमित रहते थे, और अब तक यों भी हर तरह से निरोगी रहे थे, फिर इस तरह के हलके-फुलके रोग उन्हें हो भी कैसे सकते थे, इस बात का आश्चर्य! और यदि कुछ हुआ भी तो वह मात्र साधारण शिकायत ही होगी और अपने आप ही ठीक हो जाएगी—उनकी दृढ़ आस्था से उत्पन्न हुई यह लापरवाही! इस कारण भी उन्होंने शरीर-विकार की ओर कोई ध्यान नहीं दिया।

लेकिन जैसे-जैसे दिन बीतते गये, वैसे-वैसे शिकायतें समाप्त होने के बजाय बढ़ती गयीं। अब डॉक्टर सावधान होने लगे, फिर भी घर के लोगों को पता नहीं चलने दिया, लेकिन धीरे-धीरे ऐसी स्थिति आती गयी जब वह न तो लापरवाही कर सकते थे और न घरवालों से छिपा सकते थे। डॉ. की खुराक धीरे-धीरे घटती गयी और इस सीमा तक घट गयी कि इसके लिए उन्हें कुछ करने की जरूरत महसूस हुए बिना न रह सकी।

डॉक्टर कुछ अधिक नियमित हो गये। थोड़ा-बहुत व्यायाम तो वह हमेशा करते ही थे, लेकिन अब अपनी आयु के अनुसार उन्होंने व्यायाम बढ़ा लिये थे। लेकिन इन सारे प्रयत्नों के बावजूद भूख तो घटती ही गयी। डॉक्टर को अब दवा लेने की आवश्यकता महसूस होने लगी थी।

अच्छा से अच्छा डॉक्टर भी अपना इलाज शायद ही कर पाता है। इसलिए वह सीधे एक बहुत प्रसिद्ध और अनुभवी डॉक्टर के पास गये। उन्हें क्या होता है, उन्होंने स्वयं क्या-क्या उपचार किये हैं, सभी बातें उन्हें बतलायीं। खून आदि की जांच करायी। उसमें भी कुछ खास नहीं निकला। दूसरे डॉक्टर ने उनकी अच्छी तरह जांच की, बारीकी से देखा, लेकिन रोग की जड़ उसे भी नहीं मिली।

फिर वह जैसे इस बात को कोई खास महत्त्व न दे रहा हो, इस तरह लापरवाही-से उसने रमाकांत से कहा, "डॉक्टर, एकाध एक्स-रे कराके देखें तो..."

"एक्स-रे? इसकी क्या आवश्यकता है, डॉक्टर? मुझे... मुझे... आपको ऐसा तो नहीं लगता न कि मुझे..." डॉक्टर रमाकांत कुछ घबरा गये थे।

"नहीं-नहीं।" वह डॉक्टर हंसा। लेकिन वह हास्य उसके विश्वास का सूचक बनने के बजाय सामनेवाले में विश्वास उत्पन्न करने के लिए किया गया प्रयत्न हो, ऐसा बन गया। उसने आगे कहा, "ऐसा कुछ खास मुझे लगता तो नहीं, लेकिन निश्चित हो जाना अच्छा है न?"

"हां, हां, यह तो ठीक ही है।" रमाकांत भी हंस पड़े, फीकी-फीकी और भय-मिश्रित हंसी। थोड़ी देर बाद फिर पूछ लिया, "आपको ऐसा तो नहीं लगता न

डॉक्टर, कि . . . कि . . .मुझे . . ." जिस शब्द को अब तक उन्होंने कभी अपने तक नहीं पहुंचने दिया था वह बाहर निकलने के लिए बल लगाने लगा और उन्हें बोलना ही पड़ा . . ."कि . . . मुझे कैंसर हुआ हो ?"

"नहीं, भाई, नहीं ?" फिर से वह डॉक्टर, विश्वास न हो इस प्रकार हंसने का प्रयत्न करता हुआ बोला, "लेकिन हमें निदान कर लेना अच्छा है, क्यों ?"

"जरूर-जरूर !" कहते हुए रमाकांत बाहर निकले। जिस वस्तु की कल्पना को वह अब तक दूर धकेल रहे थे वह वस्तु उनके शरीर में प्रवेश पा चुकी है, इसका विश्वास उन्हें हो चुका था। उसमें भी जो कुछ शंका की मात्रा बाकी बची थी उसे एक्स-रे की प्लेट ने क्षण भर में निर्मूल कर दिया और डॉक्टर को रोगी बना दिया।
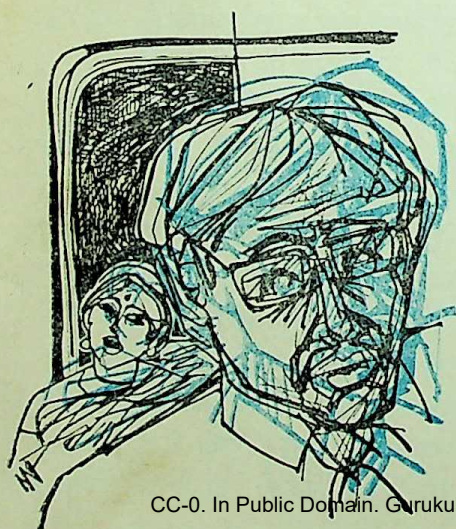
फिर तो काफी सावधानीपूर्वक डॉक्टर रमाकांत ने स्वयं अपना उपचार शुरू कर दिया, घर में किसी को इस भयंकर रोग की जानकारी दिये बगैर ही। इस रोग का नाम सुनकर ही घर में सबकी क्या हालत होगी, इसे वे जानते थे। लेकिन यह छिपा कब तक रह सकता था ? सौराष्ट्र के इस शहर में इसका उपचार भी पूरी तरह कहां संभव था ? बंबई गये बिना छुटकारा नहीं था इसलिए एक बार काम का कुछ बहाना निकालकर डॉक्टर बंबई पहुंच गये। चार-छह दिन रुककर पूरी तरह जांच करा ली। था तो कैंसर ही पेट का ! ऑपरेशन करना जरूरी था। ऑपरेशन से भी हमेशा के लिए ठीक हो जाएगा, इसकी कोई गारंटी नहीं थी। अब घरवालों को अंधेरे में रखना उचित नहीं था, संभव भी नहीं था।

इन चार-छह दिनों के दरम्यान डॉक्टर ने काफी-कुछ मानसिक स्वास्थ्य प्राप्त कर लिया था। ईश्वर के प्रति उनकी श्रद्धा ने स्वास्थ्य प्राप्त करने में उनकी पूरी-पूरी सहायता की थी। घर वापस लौटकर एक दिन भोजन के बाद पत्नी के साथ बैठे बातें कर रहे थे। बातचीत में ही डॉक्टर ने पत्नी से कहा, "यह मेरा पेट का रोग तो मिटता नहीं लगता।"

"खुराक कितनी कम हो गयी है आपकी ?" पत्नी ने कहा, "आप अच्छी तरह उपचार ही नहीं करते !"

"उपचार क्या काम आएगा ? भगवान की इच्छा होगी तभी दर्द मिटेगा।"

"तब तो दवा भी बंद कर दें।" पत्नी व्यंग्य में हंसी, "इस ज्ञान से आपके रोगियों को लाभ होगा, आपको नहीं !"

"गलत कहता हूं ? मैं डॉक्टर नहीं हूं ? रोग नहीं समझता हूं ? दवा भी करता ही हूं ! लेकिन मुझे कोई लाभ हुआ ? आज कितने महीने हुए ?"

"लेकिन ऐसा क्या है?" पत्नी ने पूछा, "इतना काम करते हैं और दवा भी खाते हैं, फिर भी भूख नहीं लगती, ऐसा क्यों होता है?"

"ऐसा भी होता है। रोग ऐसा ही हो तो !"

"ऐसा यानी कैसा ?"

"कैंसर जैसा।"

"क्या !" पत्नी की जबान में जैसे ताला लग गया। भय-भरी मुद्रा में वह डॉक्टर की तरफ देखने लगीं।

"इसमें आश्चर्य क्या, पगली ?" डॉक्टर हंसे, प्रेमपूर्वक पत्नी की ओर देखने लगे, "हमें कैंसर नहीं हो सकता, यही न ?"

"आप ऐसी बातें न करें ! मुझे ऐसा मजाक अच्छा नहीं लगता !"

यह मजाक नहीं, बल्कि कठोर सत्य है, इस बात का विश्वास जब पत्नी को हुआ तब वह आंसुओं से भींग गयी। डॉक्टर ने उसे ईश्वर में श्रद्धा रखकर सब कुछ सह लेने के लिए भरसक समझाया।

डॉक्टर को फिर दोबारा उपचार के लिए बंबई जाना पड़ा। अन्य उपचारों से कोई खास फर्क नहीं पड़नेवाला था, ऑपरेशन के सिवा दूसरा चारा नहीं था। इससे तत्काल कुछ समय के लिए तो राहत मिल सकेगी। उन्होंने ऑपरेशन भी कराया, लेकिन वर्ष-डेढ़ वर्ष बाद पुनः वही स्थिति आ गयी। वे फिर बंबई गये।

डॉक्टरों ने जांच के बाद कहा, "ऑपरेशन तो पुनः हो जाएगा, लेकिन यहां यह सब करने का कोई खास लाभ नहीं। रोग मिट जाए और जिंदगी बच जाए, ऐसा ऑपरेशन कराना हो तो अमरीका जाना होगा। यहां नहीं है वहां-जैसी व्यवस्था, सुविधा या उतनी योग्यता ! आपको वहीं जाना चाहिए।"

डॉक्टर ने बात सुन ली, हंसे। अमरीका में यह ऑपरेशन सफल हो तब भी अब पचपन वर्ष की आयु में इतने बड़े ऑपरेशन के बाद उनकी जिंदगी आखिर कितने वर्ष तक बढ़ सकेगी ?

"और खर्च कितना होगा ?"

डॉक्टर ने पूछा।

"बीस-पच्चीस हजार तो होंगे ही।"

रमाकांत डॉक्टरों का आभार मान अपने घर वापस लौट आये। घर पर सभी ने अमरीका जाकर ऑपरेशन करा आने का खूब आग्रह किया, लेकिन डॉक्टर नहीं माने। उनका एक ही जवाब था, "वहां जाने के बाद भी यह मिट जाएगा, इसका विश्वास नहीं है। वह न भी ठीक हो, तब फिर यहां तुम सब लोगों के बीच रहकर चला जाऊं इसमें क्या हानि है ?"

रमाकांत हमेशा उदार रहे थे, हठी कभी नहीं बने थे। सबको आशा थी कि अभी भले वे मना करें, लेकिन हम उन्हें अमरीका भेजने में सफल हो जाएंगे।... लेकिन उन लोगों का यह सोचना गलत हुआ। डॉक्टर नहीं माने। उनकी पत्नी जब उनकी बिगड़ती हालत और दुराग्रह से तंग आ गयी तो उसने धमकी दी, "आप हमारी बातें नहीं मानेंगे तो मैं भी अन्न-जल छोड़ दूंगी।"

तब डॉक्टर ने उसे एक बार पास बुलाकर प्रेमपूर्वक पूछा, "तुम्हें मैं पागल लगता हूं ?"

"इस एक बात में तो लगते ही हैं।" पत्नी ने रुआंसे स्वर में कहा।

"आज तक इतने वर्षों में बिना विचार किये मैंने कुछ किया है, ऐसा तुम्हें लगता है ?"

"नहीं लगता है, इसीलिए तो इतना अधिक दुःख होता है न ?"

"तो देखो, मैं तुम्हें अपने मन की बात बताता हूं। यह बात एक तुम और दूसरा मैं, यही दो जानें, इस शर्त पर।"

ऐसी क्या बात होगी, इसकी जिज्ञासा पत्नी को हुई और वह पति के निकट खिसक आयी।

डॉक्टर ने कहा, "लो सुनो! हमारी आय अच्छी है और हम अच्छी तरह रह सके हैं, लेकिन यह आय तो मैं हूं तब तक है! हमारे दोनों लड़के छोटे हैं और उन्हें कमाने में अभी एकाध दशक बीत जाएगा।"

"इस बात में क्या है? वे भी अपने आप कमाएंगे, समय आने पर।" पत्नी ने कहा।

"वे कमाएंगे . . . यदि उच्च शिक्षा प्राप्त करने की सुविधा और साधन मिलें तब तो।"

"वह तो मिलेंगे ही न!"

"कैसे मिलेंगे? जिन पैसों से उन्हें यह सुविधा मिलनेवाली है वही धन मैं अमरीका जाकर अपने इलाज में खर्च कर दूं तो ?"

"यानी ?" पत्नी की समझ में कुछ नहीं आ रहा था।

"अमरीका जाकर ऑपरेशन कराने के लिए एक व्यक्ति को साथ ले जाना पड़ेगा और इस सब में तीस-चालीस हजार खर्च हो जाएंगे। हमारे पास बहुत अधिक बचत नहीं है, क्योंकि हमारा

रहन-सहन अच्छा रहा है। वह जो थोड़ी बहुत बचत है वह यदि मैं खर्च कर दूं और फिर... फिर भी . . ." डॉक्टर की आवाज कुछ लड़खड़ायी। उनके शब्दों की पत्नी पर हुई प्रतिक्रिया ने उन्हें थोड़े पल के लिए खामोश कर दिया। लेकिन स्पष्ट बात किये बगैर छुटकारा नहीं था। उन्होंने फिर कहना शुरू किया, "और यदि मैं ठीक नहीं ही हुआ तो सब बच्चों की स्थिति कैसी हो जाएगी? बच्चों के भाग्य में फिर शिक्षा के अवसर कहां से आएंगे?"

"लेकिन किसने कहा कि आप उसके बाद ठीक नहीं होंगे?" पत्नी ने विषाद भरे चेहरे से कहा।

"और सोचो, मैं ठीक हो भी गया तो क्या? मेरे पचपन वर्ष तो होने को आये। ठीक हो भी गया तो पांच-सात वर्ष भाग्य में अधिक होंगे! उसमें भी मेरी आज की तरह की काम करने की शक्ति तो रहेगी नहीं। बचत सारी समाप्त हो जाएगी और नयी बचत संभव नहीं होगी। आखिर जब लड़के बड़े हों और उन पर किया गया खर्च सार्थक होनेवाला हो तब न रहूं मैं या न रहे पैसा!"

"लेकिन इससे क्या, इस तरह क्या जीवन बरबाद किया जाता है? आप हैं, यही सबके लिए बहुत है। बच्चों को मालूम हो कि इस कारण से आप ऐसा कर रहे हैं तो वे बेचारे कितने दुखी होंगे?"

"इसीलिए तो मैं उन्हें यह पता नहीं चलने देता न? तुमसे भी न कहता,

ज्ञान-गंगा

शरणागतः क्षुधार्तश्च शत्रुभिश्चाप्युपद्रुतः।
चिरोषितश्च स्वगृहे पातव्यः सर्वदा भवेत्॥

शरण में आये हुए, भूख से व्याकुल, शत्रुओं द्वारा पीछा किये जाते हुए और चिरकाल से अपने घर में रहनेवाले की सदा रक्षा करनी चाहिए।

प्रियं ब्रूयादकृपणः शूरः स्यादविकत्थनः।
दाता नापात्रवर्षी च प्रगल्भः स्यादनिष्ठुरः॥

उदार पुरुष को मीठा बोलना चाहिए, शूर को अपनी प्रशंसा नहीं करनी चाहिए। दाता का कुपात्र को दान देना उचित नहीं है और बुद्धिमान वक्ता को दयालु होना चाहिए।

वैद्यो गुरुश्च मंत्री च यस्य राज्ञः प्रियः सदा।
शरीरधर्मकोषेभ्यः क्षिप्रं स परिहीयते॥

जिस शासक के पास वैद्य, गुरु और मंत्री सदा 'हां में हां' मिलानेवाले हों वह शीघ्र ही शरीर, धर्म और कोष से रहित हो जाता है।

भावमिच्छति सर्वस्य नाभावे कुरुते मनः।
सत्यवादी मृदुर्दान्तो यः स उत्तमपूरुषः।

जो सबका कल्याण चाहता है, किसी के अकल्याण की बात भी मन में नहीं लाता, जो सत्यवादी, कोमल और जितेन्द्रिय है, वही उत्तम पुरुष है।

प्रस्तोता : ब्रह्मदत्त शर्मा

लेकिन इतने वर्षों तक कोई बात तुमसे कहे बिना रह सका हूं?" डॉक्टर हंसे और पत्नी की आंखों में आंसू उमड़ आये। उन्हें पोछते हुए डॉक्टर ने आगे कहा, "और मैंने कम सुख भोगा है? तुम-जैसी पत्नी मिली है। इतने सुंदर बच्चे मिले हैं! थोड़ी कीर्ति भी मिली है, धन मिला है! मेरी अभी कोई अभिलाषा वाकी रह गयी है, जो दो-चार वर्ष अधिक जीने के लोभ में मैं अपने उन बच्चों को जिनके लिए बचत की है, भिखारी बनाता जाऊं? और यह दो-चार वर्ष जीकर भी मुझे अब कौन-सा बड़ा लाभ मिलनेवाला है? इसकी अपेक्षा तो..."

पत्नी ने उन्हें आगे नहीं बोलने दिया। उनसे लिपट पड़ी और खूब-खूब रोयी। उसकी पीठ पर हाथ फिराते हुए डॉक्टर ने आगे कहा, "काठियावाड़ के इस नगर में हमारी इस छोटी बचत में भी सब सुख से रह सकेंगे। मेरे बीमा के कुछ रुपये मिलेंगे, इसलिए यह रकम इतनी छोटी भी नहीं होगी। मेरी करनी से मेरे बच्चों को नये सिरे से जिंदगी शुरू करनी पड़े ऐसा मुझसे कैसे हो सकता है?"

"लेकिन फिर क्या किया जाए?"

"करना कुछ नहीं है। ईश्वर जो करता है, उसे देख लो और हंसते हुए सहो।"

...और वास्तव में, उसके बाद साल डेढ़ साल में उनकी आत्मा शरीर को छोड़ गयी। तब तक डॉक्टर रमाकांत हंसते रहे और सहते रहे। बीच में ऑपरेशन भी हुए। कभी हालत सुधर जाती और कभी बिग जाती, फिर भी वे सदा हंसते ही रहे। अंतिम दिनों में तो कष्ट बहुत बढ़ ग थी, फिर भी उनके चेहरे की मुस्क सूखी नहीं... एक तरह का आत्म-संतो एक तरह की कृतकृत्यता का भाव उ चेहरे को हमेशा प्रकाशित बनाये रखत अंतिम दिन, पत्नी और बच्चों को अ पास बुलाकर जैसे विदा लेते हुए उन्हें कहा, "अब अधिक दिन रह सकूं, ऐसा न लगता। हमेशा प्रसन्न रहना तुम लोग!"

छोटी पुत्री और बड़े बेटे से न रहा गया। दोनों रोते हुए लगभग ए साथ बोल उठे, "बापू, सबका कहना मा होता और आप अमरीका चले गये हो तो..."

"तो इस अंतिम घड़ी, मन में इत सुख और संतोष न होता बेटा!" उन्हों कहा और पत्नी की तरफ दृष्टि कर ली

पत्नी को आंसुओं की ओट से उस दृष्टि में, स्नेह और संतोष का पारावा तथा एक प्रकार की कृतकृत्यता का भा दिखायी दिया।

—अनु. गोपालदास नागर

एक मंत्री महोदय भाषण देकर घ लौटे तो नौकर से कहा, "बहुत थक गय हूं, जरा पैर तो दबा दो।"

"सरकार, गले में ज्यादा तकली हुई होगी। लाइए, पहले गला ही दबा द बाद में पैर दबा दूंगा।"

कालेज के कम्पाउंड से

छब्बीस जनवरी की तैयारी के लिए एन. सी. सी. परेड में राइफल चलाने का अभ्यास काफी जोर-शोर से चल रहा था। प्रतिदिन कालेज के मैदान में स्थित टारगेट पर निशानेबाजी करायी जा रही थी। एक दिन फायरिंग होने के थोड़े समय पूर्व हमारे एन. सी. सी. के प्राध्यापक महोदय हम लोगों को समझा रहे थे कि फायरिंग के लिए चार नियमों को ध्यान में रखना आवश्यक है। इन चारों नियमों का जो पालन करेगा उसका निशाना अवश्य ही ठीक बैठेगा। यह समझाने के तुरंत बाद फायरिंग करने का समय आ गया। यद्यपि हम सभी की गोलियां किसी प्रकार ठीक निशाने पर लगीं, फिर भी हम लोगों को प्राध्यापक महोदय से काफी बातें सुननी पड़ीं। इसके बाद जब परेड करानेवाले इंसट्रक्टर द्वारा फायरिंग की बारी आयी, तब मेजर साहब ने प्राध्यापक महोदय को भी फायरिंग करने के लिए कहा। पहले तो वे काफी सकुचाये, किंतु बहुत कहने के बाद उन्होंने भी फायरिंग की। अन्य सभी का तो निशाना अच्छा बैठा था, किंतु प्राध्यापक महोदय की एक भी गोली 'बुल्स आई' में तो क्या, टारगेट में भी नहीं लगी। इस पर मैं प्राध्यापक महोदय से पूछ बैठा कि आप फायरिंग करते वक्त कौन-सा नियम भूल गये जो एक भी गोली ठीक जगह पर नहीं लगी। इतना सुनते ही सभी विद्यार्थी हंसने लगे, लेकिन प्राध्यापक महोदय मुझे गुस्से से घूरने लगे।

—प्रमोदानंद झा 'दिवाना', दर्शनसाह महाविद्यालय, कटिहार (बिहार)

प्रयाग विश्वविद्यालय में एम. ए. (हिंदी) की कक्षा चल रही थी। डॉ. जगदीश गुप्त काव्यशास्त्र के अंतर्गत नाटक के संबंध में पढ़ा रहे थे। विषय गंभीर था, इसलिए सभी छात्र-छात्राएं एकाग्र होकर एक-एक शब्द को ग्रहण करने के लिए तत्पर थे। कक्षा शुरू होने के बीस मिनट बाद दरवाजा खुलने की ध्वनि हुई। सहसा सभी का ध्यान दरवाजे की ओर चला गया। एक सज्जन का प्रवेश हुआ। कक्षा की शांति और गंभीरता को देखते हुए उन्होंने मौन-भंग किये बिना सांकेतिक भाषा का प्रयोग करते हुए प्रवेश की अनुमति मांगी। डॉक्टर साहब ने भी उसी सांकेतिक भाषा में स्वीकृति प्रदान कर दी। वे सज्जन पीछे की सीट पर बैठ गये। बैठते ही शायद उन्हें याद आया कि वे

बायें से : सीमा श्रीवास्तव, अरविंद मालवीय, प्रमोदानंद झा

तो इस कक्षा के विद्यार्थी ही नहीं हैं । वे तुरंत खड़े हुए, बाहर जाने का मौन संकेत करते हुए बाहर चले गये । उनके बाहर जाने से पुनः दरवाजा खुलने की ध्वनि हुई और लोगों का ध्यान उधर चला गया ।

इतनी देर में विषय की गंभीरता टूट चुकी थी । इस पर डॉ. जगदीश गुप्त ने टिप्पणी करते हुए कहा, "आइए अब पुनः विषय पर आ जाएं । इन सज्जन का इतनी ही देर का अभिनय था ।"

—अरविन्द मालवीय,
विश्वविद्यालय डेलीगेसी, इलाहाबाद-३

एक बार हम लोग कालेज की तरफ से पिकनिक पर गये। वहां एक मजेदार खेल यह भी हुआ कि हर लड़की को कागज की एक पर्ची उठानी पड़ती थी और हर पर्ची में अलग-अलग विषय लिखे होते थे। पर्ची में जो विषय निकलता, पर्ची उठानेवाली लड़की को वही करना पड़ता ।

अहिंदीभाषी क्षेत्र की एक लड़की को यह विषय मिला कि 'आदर्श पत्नी के बारे में बोलो'। तब वह बोली, "आदर्श पत्नी को इस प्रकार से कार्य करना चाहिए कि घर के सभी लोग स्वर्गवासी हो जाएं।" उसका इतना कहना था कि हंसते-हंसते हम लोगों का बुरा हाल हो गया।

—सीमा श्रीवास्तव
गवर्नमेंट वोमन पॉलीटेकनीक, इंस्टीट्यूट भोपाल (म. प्र.)

इस स्तंभ के लिए अपने 'एनकडोट्स' भेजते समय अपना चित्र और कालेज का पता लिखा, टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजें, अन्यथा रचना पर विचार नहीं किया जा सकेगा। साथ ही अपने घर का पता भी भेजें। स्तंभ के कुछ लेखकों के पारिश्रमिक लौट आये हैं। जिन लोगों को पारिश्रमिक नहीं मिला हो वे पूर्ण विवरण के साथ सूचित करें।
—संपादक

गुजराती की पुरस्कृत कहानियां

सोलह कहानियों का यह संग्रह गुजराती कहानी के इतिहास की झलक देता है। कहानी - विकास के विभिन्न चरणों की ओर संकेत करती हुई ये सभी कहानियां विभिन्न पत्र - पत्रिकाओं तथा संस्थाओं से सम्मानित हो चुकी हैं।

सभी कहानियां किसी न किसी रूप में जीवन के सूक्ष्म और गहरे धरातल पर टिकी हैं। 'भेड़िया और श्री पापी' तथा 'बुरी छाया' जिंदगी के खंडहरों में भटकते राहियों की कहानियां हैं जो कभी ठहराव और कभी गति को तलाशती हैं। 'तप' कहानी आंचलिक पुट लिये हुए है, जो भावना, त्याग और समर्पण की बात करती है। लाखु अपने पति मोहन के जेल जाने पर उसकी प्रतीक्षा में अपना यौवन दांव पर लगा देती है, किंतु जेल से लौटा मोहन अपनी युवा इच्छाओं की तृप्ति एक अठारह - वर्षीया युवती से विवाह करके करता है और लाखु कभी न बुझने वाली यज्ञाग्नि में अपने को समर्पित कर देती है। मानवीय संवेदना पर आधारित यह कहानी पाठकों की करुणा जाग्रत करती है। 'तीसरी आंख' इस संग्रह के संपादक आबिद सुरती की व्यंग्यात्मक कहानी है, जो जीवन की वास्तविकता को अत्यंत वीभत्स रूप में उभारती है। शिव का तीसरा नेत्र प्रलयंकारी माना जाता है। जीवन में जब यह नेत्र खुलता है तब सारी सुख-व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जाती है। करोड़पति सेठ को संतोष है कि उसके परिवार के सभी सदस्य आदर्श पात्र हैं, किंतु एक चश्मे की करामात से उन आदर्शों के पीछे छिपे घृणित रहस्य उसे विक्षिप्त कर देते हैं। कहा भी जाता है कि कभी-कभी जीने के लिए भ्रम आवश्यक होते हैं। उनका टूटना एक दुःखद स्थिति होती है। इसी प्रकार 'कांच के पीछे' एक ऐसी कहानी है जिसे केवल शीशे के

पीछे से देखा भर जा सकता है, छुआ नहीं। मातृत्व स्त्री की पूर्णता है, पर जब यह मातृत्व किसी अन्य पात्र से दान लिया हुआ होता है तब उसमें पूर्णता के स्थान पर रिक्तता घर कर जाती है। 'आर्टिफिशल इन्सेमिनेशन' की चिकित्सा-प्रणाली को कहानी में मनोवैज्ञानिक धरातल पर प्रस्तुत किया है। मन की ही सूक्ष्म गुत्थियों से उलझती कहानी है 'मैं-दो' और 'झिलमिलाते चेहरे'। सुख-दुःख के दारुण समुद्र-मंथन में से जन्मे ममत्व के अमृत क्षणों की निश्चल चट्टान पर खड़ी कहानी है—

'खुले आकाश का एक टुकड़ा'। इनके अतिरिक्त 'छोटी-सी घटा', 'क्ष पर से कोई गीत गाता है' आदि कहानियां उत्तम हैं।

इस संग्रह में स्वतंत्रता के बाद जन्मे लेखकों की कहानियां आधुनिक तकनीक और परिवेश लिये हुए हैं। सामान्य पाठकों के लिए ऐसी कहानियां कुछ बोझिल हो जाती हैं। अनुवाद की दृष्टि से एक-दो कहानियों को छोड़कर, जिनके वाक्य-विन्यास में गुजराती भाषा की झलक है, शेष ठीक हैं।

गुजराती की पुरस्कृत कहानियां
सं.—आबिद सुरती, प्रकाशक—पराग प्रकाशन, विश्वासनगर, शाहदरा, दिल्ली-३२, पृष्ठ—१५२, मूल्य—२०.०० रुपये

दो उपन्यास

मैं दासी : मैं सराय : नेपाल के लोकप्रिय उपन्यासकार धूस्वां सायमि का मार्मिक उपन्यास है। इसकी नायिका चंद्रलक्ष्मी एक पढ़ी-लिखी नेपाली युवती है, जिसे मात्र पारिवारिक दरिद्रता के कारण अपनी ही एक सहेली के संबंधी की घरेलू सेविका बनकर अमरीका जाना पड़ता है। चंद्रलक्ष्मी को यह बात हमेशा कचोटती रहती है कि वह मात्र सेविका है, दासी है। कालांतर में उसकी भेंट एक उदार-हृदय स्वदेशी सुंदरमान से हो जाती है। इस भेंट के बाद चंद्रलक्ष्मी दासी नहीं रहती, सुंदरमान की पत्नी बन जाती है, किंतु शीघ्र ही उसे स्पष्ट होने लगता है कि वह पति के लिए मात्र सराय है। चंद्रलक्ष्मी इस नये दासत्व से मुक्ति के लिए विद्रोह कर उठती है, पर परिस्थितियां कुछ ऐसी बन जाती हैं कि उसे आत्महत्या का निर्णय करना पड़ता है।

धूस्वां सायमि नेपाल की नेवाड़ी भाषा के साहित्यकार हैं, पर उन्होंने हिंदी में भी कहानियां और उपन्यास लिखे हैं। यह उपन्यास भी उन्होंने मूलतः हिंदी में ही लिखा है। आत्म-कथात्मक शैली में लिखे गये इस उपन्यास का प्रथम खंड जितना मर्मस्पर्शी और सहज है, उतना द्वितीय खंड नहीं।

होटल का सपना : बंगला के मूर्धन्य उपन्यासकार विभूतिभूषण बंद्योपाध्याय का एक रोचक उपन्यास है। नायक हजारी एक गरीब रसोइया है। अन्याय को चुपचाप सहकर, अन्यायी की मंगल-कामना करना उसका सहज स्वभाव है। हजारी का एक सपना है, और वह है अपना होटल खोलना। उसका यह सपना पूरा भी होता है, पर सफलता हजारी को गर्वीला बनाने के बजाय विनम्र ही बनाती है।

परंपरागत शैली के बंगला-उपन्यासों की तरह यह उपन्यास भी हास्य एवं करुण रस से ओतप्रोत है और पाठकों को बांधे रखता है।

मैं दासी : मैं सराय
लेखक—धूस्वां सायमि, प्रकाशक—राधाकृष्ण प्रकाशन, २ अंसारी रोड, दरियागंज, दिल्ली, पृष्ठ—१२८, मूल्य—८.०० रुपये

होटल का सपना
लेखक--विभूतिभूषण वंद्योपाध्याय, प्रकाशक--साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, पृष्ठ--१४०, मूल्य--१२.०० रुपये

लोकोपयोगी विज्ञान

जीवनदाता सूर्य : लोकोपयोगी विज्ञान-माला के अंतर्गत प्रस्तुत पुस्तक सूर्य के विषय में सामान्य जानकारी देती है। सूर्य का इतिहास, उसका स्वरूप, विभिन्न कार्य तथा महत्त्व आदि के विषय में अनेक शंकाओं का समाधान करती हुई यह पुस्तक बच्चों के लिए विशेष उपयोगी है।

--डॉ. शशि शर्मा

जीवनदाता सूर्य
लेखक--हरीश अग्रवाल, प्रकाशक--नेशनल बुक ट्रस्ट, नयी दिल्ली, पृष्ठ--८१, मूल्य--४.५० रुपये

काव्य-संकलन

इस यात्रा में : लीलाधर जगूड़ी की चौंतीस कविताओं का संकलन है। कवि की यात्रा में कोई विशिष्ट रंग, भाषा या स्वर तो नहीं है; हां, कविताओं में व्यक्तिगत संबंध यथार्थ कटु जीवन की पीड़ा-यात्रा तय करते हुए, जन-समुदाय के बीच से उसी का अंग बनकर उन समस्याओं के साथ सामने आये हैं, जो आज जन-समुदाय की हैं।

समय के साथ बदलते मानव-मूल्यों से जन्मी है टूटन, निराशा, पलायन, संबंधों का बहिष्कार, अमर्यादा, विघटन और नव-स्थापन के नाम पर भारी उथल-पुथल—**यह मैं हूं बंदी / किसी उच्छृंखलता में/ किसी उल्लंघन में / बेकार फड़फड़ाता ध्वस्त मर्यादा की / मृत्यु-घोषणा का अपराध-पत्र . . . हम तीनों को समेट सकने के लिए अब छोटे पड़ गये हैं / मां के हाथ / जबकि वह हमारे घाव छूना चाहती हैं / हमारे बहाने वह अब भी देखना चाहती हैं / संसार को अपने काबू में. . .**यह पुरातन मूल्यों से नारी का मोह है, जो आज के संदर्भ में अनधिकारिक प्रयत्न भर लगता है।

प्रसंग से कटकर कुछ कविताओं में स्थितियों के प्रति निरीहता के बावजूद विश्वास की उष्णता है, किंतु संशय की ध्वनि के साथ! विद्रोह है तो आकार-हीन! अंततः वर्तमान स्थितियों में सर्व-जन की तकलीफों को वैयक्तिक भाषा में व्यक्तिगत संबोधनों के माध्यम से रूपायित किया गया है। अपनी बात कहने के लिए प्रकृति के विभिन्न रूपों का वातावरण चित्रित करना तथा प्रतीक रूप में धरती, पेड़, जंगल, नदी, पहाड़, पत्ते का प्रयोग कवि की व्यक्तिगत निष्ठा है, जो प्रकृति से उसकी निकटता को दर्शाती है।

इस यात्रा में
लेखक—लीलाधर जगूड़ी, प्रकाशक—साहित्य भारती, के–७१, कृष्णनगर, दिल्ली-५१, पृष्ठ—७०, मूल्य—१०.०० रुपये

काली कविताएं : 'कालखंड' और 'अंधेरे की स्मृति में' नामक दो खंडों में विभाजित लघु-कविताओं का संकलन

वचन-वीथी

प्रसिद्धि अगर मृत्यु के बाद होनेवाली है, तो मुझे उसकी कोई जल्दी नहीं है।

—मार्शल

जितना अधिक आप अपने बारे में बोलेंगे, उतना ही अधिक आपके मुंह से झूठ निकलने की आशंका है। —जिमरमैन

परिस्थितियां किसी व्यक्ति को मजबूत या कमजोर नहीं बनातीं, किंतु वे यह दिखाती हैं कि वह व्यक्ति है क्या।

—टामस ए. केंप

जीवन उनके लिए दुःखमय है जो महसूस करते हैं और उनके लिए सुखमय है जो चिंतन करते हैं।

—लॉ ब्लायर

गतिहीन जीवन की सड़ांध ही मनस्ताप है। उसका इलाज है परिश्रम और गतिशीलता।

—जॉनसन

सबसे बुरा आदमी अकसर सबसे अच्छी सलाह देता है।

—पी. जे. बेली

है। कविताओं को पढ़कर बराबर यह महसूस होता है कि कवि का चित्रकार-मन कविता रचते समय बाधक बनता है, क्योंकि लगभग सभी कविताएं काल्पनिक मन-भूमि की रचनाएं हैं। कवि की दृष्टि से मानवीय धरातल के जो खुरदरे दृश्य या प्रसंग गुजरे हैं वे कविताओं में सूक्ष्म और अस्पष्ट चित्र के रूप में झलकते भर हैं। रंग, ध्वनि, गंध की अतिरेक कल्पना कविताओं की चित्रात्मकता को और धुंधला तथा अस्पष्ट करती है, अर्थ की सूक्ष्मता में भले ही ये कविताएं मानव-नियति और संभावनाओं के द्वार तक की यात्रा की भूमिका लगें।

अंधेरे की स्मृति में आंतरिक प्रकाश की गरिमा कविताओं में रूपायित हुई है। महाशून्य में विलय का अनुभव करते हुए जिन रचनाओं का जन्म हुआ है, उनकी भाषा अपनी प्रतीकात्मकता अथवा अप्रतीकात्मकता के संदर्भ में क्रमशः कोई निश्चित विन्यास ही उजागर करे, यह आवश्यक नहीं है। शायद इसीलिए संकलन की कविताएं व्यक्ति-मानस को वाणी देने के बावजूद सामान्य पाठक के लिए सहज-पाठ्य नहीं हैं।

—मीना सिंह

काली कविताएं

लेखक—प्रणवकुमार वंद्योपाध्याय, प्रकाशक—इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, के-७१, कृष्णनगर, दिल्ली-५१, पृष्ठ—८७, मूल्य—१०.०० रुपये

भविष्य का आघात

एल्विन टॉफलर

आज की दुनिया में क्या घट रहा है? संगठन, उत्पादन, यहां तक कि मित्रता और प्रेम के आधार भी बदल रहे हैं। उद्योगोपरि संसार के जन्म से आनेवाले कल का पारिवारिक जीवन तथा मानवीय संबंध का उद्घाटन अस्थायी हो चला है। 'भविष्य का आघात' (फ्यूचर शॉक) आनेवाली ऐसी दुनिया की कहानी है जो प्रत्येक पाठक को उकसाने, डराने तथा प्रोत्साहित करने के साथ-साथ बदल भी डालेगी। इस रोचक पुस्तक का सार-संक्षेप प्रस्तुत किया है विंग-कमांडर विश्वमोहन तिवारी ने

विगत ३०० वर्षों से पाश्चात्य औद्योगिक सभ्यता परिवर्तन की बाढ़ में बही जा रही है। इसके फलस्वरूप साइकेडेलिक गिरजे घर, हिप्पी संप्रदाय, 'पत्नी अदला-बदली क्लब' आदि कुकुरमुत्तों की तरह उगते नजर आ रहे हैं। परिवर्तन के बढ़ते वेग का प्रभाव सीधे हमारे मानस पर आघात करता है। तरह-तरह के मानसिक रोग पैदा करनेवाले आघात को हम 'भविष्य का आघात' कह सकते हैं। इसके स्रोत तथा लक्षणों की जानकारी से बहुत-सी अजीब घटनाएं आसानी से समझी जा सकती हैं। 'भविष्य के आघात' के दुष्परिणाम को कम किया जा सकता है तथा

उचित कार्यों द्वारा उसे लाभ में भी बदला जा सकता है।

सांस्कृतिक आघात का कार्य-क्षेत्र बहुत छोटा तथा अल्पकालिक होता है, जबकि भविष्य का आघात समय के आयाम की घटना है जिसमें नयी संस्कृति पुरानी पर हमला करती है। इसके फलस्वरूप दिक्, काल, कार्य, प्रेम, धर्म, यौन आदि की धारणाएं बदल जाती हैं।

हमारे जीवन में आज अत्यंत वेग से परिवर्तन हो रहे हैं। इतिहास में उनकी समानता पाना बहुत कठिन है। एक प्रसिद्ध चिंतक केन्नेथ बोल्डिंग के अनुसार, "आज का संसार मेरे जन्म के समय के संसार से उतना ही भिन्न है जितना कि मेरे जन्म के समय का संसार जूलियस सीजर के समय से भिन्न था। मेरा जन्म
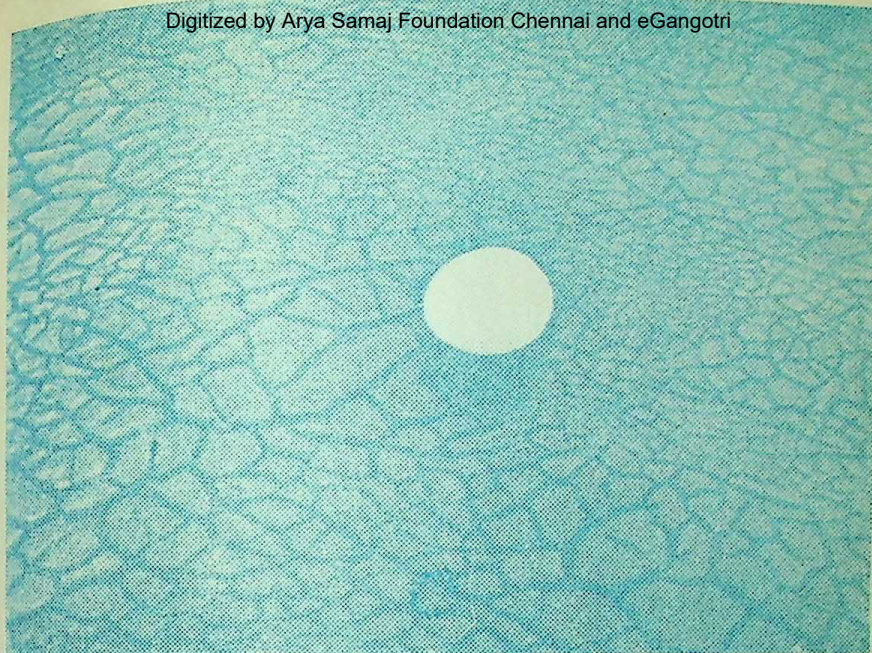
मानव-इतिहास के लगभग मध्य में हुआ, अर्थात मेरे जन्म के पश्चात लगभग उतनी ही प्रगति हुई जितनी मेरे जन्म से पूर्व के संपूर्ण काल में हुई थी।"

मानव के पिछले ५०,००० वर्षों के इतिहास को यदि ६२ वर्षों के जीवनकालों में बांटें तो लगभग ८०० ऐसे जीवनकाल आते हैं। इनमें से कम से कम ६५० तो पत्थरों की गुफा में बीते हैं, पिछले ६ जीवन-कालों में मुद्रण हो सकता है, पिछले दो में विद्युत उपकरण आये हैं तथा कार, वायुयान, स्वचालित मशीनें, टेलीविजन, कंप्यूटर जैसी सभी उत्कृष्ट सुविधाएं वर्तमान, अर्थात ८०० वें जीवन-काल में उपलब्ध हुई हैं। इसी जीवनकाल में समाज पर से सभ्यता के मूल आधार कृषि का प्रभुत्व समाप्त हो गया है। विकसित देशों में सक्रिय आबादी का १५ प्र. श. से भी कम भाग कृषिकार्य कर अपनी आवश्यकता से अधिक पैदावार कर लेता है। आर्थिक विकास की दूसरी विशाल सीढ़ी-उद्योगवाद भी पार की जा चुकी है। अमरीका में गैर-किसान आबादी में से आधे से अधिक लोग फैक्ट्रियों के नीले कालर-वालों के स्थान पर सफेद कालरवाले लोग हैं। दूसरे अर्थों में सभ्यता श्रेष्ठ उद्योगवाद की तीसरी सीढ़ी पर है। इसमें साधन-स्रोत निर्णयों को नहीं वरन निर्णय साधन-स्रोतों को निर्धारित करते हैं।

त्वरण नया सामाजिक बल है तथा

क्षणिकता उसका मानसिक प्रतिरूप है। इन दोनों के समझे बिना आधुनिक मानव-व्यवहार समझना असंभव है। उन्हें समझने के बाद ही हम नयी संस्कृति के अनुरूप अपने को ढाल सकेंगे। अधिकांश लोगों ने बचाव के धोखे में इसकी तरफ से आंखें ही बंद कर ली हैं।

समय और परिवर्तन : १८५० में दस लाख से अधिक आबादीवाले नगरों की कुल संख्या मात्र ४ थी, १९०० में १९ हुई और १९६० में १४१। १८२५ में प्रथम वाष्प इंजन का वेग लगभग १३ मी. प्र. घं. था जो कि १८८० में १०० मी. प्र. घं. हो गया। १९३८ में वायुयान ४०० मी. प्र. घं. की रफ्तार से उड़ रहे थे। १९६० में राकेटयान ४,००० मी. प्र. घं. तथा आजकल व्योमयान १८,०००-२५,००० मी. प्र. घं. उड़ान कर रहे हैं।

प्रगति के इस त्वरित तेजी के मुख्य कारण हैं—औद्योगिकी का और अधिक औद्योगिकी को संभव बनाना तथा औद्योगिकी विकास के तीन कदमों, यथा सर्जनात्मक विचार, व्यावहारिक अनुप्रयोग तथा समाज-प्रसारण की आपसी दूरी का तेजी से कम होता जाना।

औद्योगिकी आविष्कारों से केवल शारीरिक श्रम करने वाले यंत्रों का ही आविष्कार नहीं होता वरन वे मनुष्य के संपूर्ण बौद्धिक पर्यावरण, उसके सोचने-विचारने के ढंग को प्रभावित करते हैं, इस तरह औद्योगिकी स्वयं ही अपने विस्तार तथा विकास को बढ़ाती है तथा औद्योगिकी और ज्ञान एक-दूसरे के लिए पारस्परिक ईंधन का काम करते हैं। ज्ञान की वृद्धि में भी वही त्वरण है। १५०० ई. में लगभग १,००० पुस्तकें प्रतिवर्ष छपती थीं और अब १,००० प्रतिदिन!

आज सामाजिक बलों में त्वरण सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बल है किंतु उसके विषय में जानकारी नगण्य है। त्वरण मनोवैज्ञानिक बल भी है क्योंकि अनुभव करने की मानसिक प्रणाली को यह सीधा प्रभावित करता है। यदि सरल ढंग कहें तो जीवन एक विशाल वाहिका है जिसमें अनुभवों की धारा बहती है। परिवर्तनों के त्वरण से इस वाहिका के अनुभव के प्रवाह में भी त्वरण आएगा। इसीलिए यह सुनने में आता है कि आधुनिक जीवन बहुत तेज, बहुत जटिल हो गया है। इस त्वरण तथा विविधता के कारण विभिन्न अनुभवों में पहले की अपेक्षा कहीं अधिक नयापन आता जा रहा है। इसके फलस्वरूप हमें न केवल जीवन (अनुभव) के तेज बहाव से मुकाबला करना पड़ता है वरन प्रत्येक अनुभव में हमें पिछले अनुभवों से अपेक्षाकृत बहुत कम सहायता मिलती है। इस साधारण से तथ्य के परिणाम विस्फोटक हो सकते हैं।

जीवन की रफ्तार : जीवन की रफ्तार मानव को विभिन्न भागों में बांट देती है। अमरीकी तथा यूरोपीय, पूर्व तथा पश्चिम-जैसे भौगोलिक भाग; पुरुष और

स्त्री-जैसे यौन-भेद; युवा और वृद्ध - जैसे वय-भेद, जीवन की रफ्तार के भेद भी हैं। इसी तरह कुछ व्यक्ति भी भूतकाल में, पुरानी कृषि विधिवाले, कुछ वर्तमान में (औद्योगिक समाज) और कुछ भविष्य में (श्रेष्ठ औद्योगिक समाज) रहते हैं। भविष्य में रहनेवाले लोग अधिक शिक्षित, धनवान तथा घुमक्कड़ी होते हैं और उनके जीवन की रफ्तार बहुत तेज होती है।

२. अल्पकालिकता

फेंकनेवाला समाज : हम अपने जीवन में पहले की अपेक्षा कई गुनी वस्तुओं का उपयोग करते हैं। इसलिए स्वभावतया प्रत्येक वस्तु से हमारे संबंध की अवधि भी लगभग उसी अनुपात में कम होती जा रही है। वस्तुओं के साथ इस अल्पकालिक संबंध का प्रभाव हमारे मानस पर, सोचने के ढंग पर भी पड़ेगा। ऐसे समाज में बच्चा यह देखगा कि उसका घर एक विशाल मशीन है जिसमें वस्तुएं आती रहती हैं और उपयोग के बाद फेंक दी जाती हैं। इसके जबरदस्त आर्थिक कारण हैं। पहला, बढ़ता हुआ उद्योग-विज्ञान मरम्मत की अपेक्षा निर्माण को अधिक किफायती बनाता जा रहा है। दूसरा, बढ़ते हुए उद्योग-विज्ञान में वस्तुएं ज्यादा बेहतर बनती जाती हैं। तीसरा, त्वरित परिवर्तनवाले संसार में भविष्य की आवश्यकताएं तथा रूप और अधिक अनिश्चित होते जा रहे हैं। अतएव टिकाऊ वस्तुओं में पूंजी लगाना आर्थिक बुद्धिमत्ता के खिलाफ हो जाता है। इन सब कारणों से स्थायित्व की अपेक्षा अल्पकालिकता का प्रभुत्व बढ़ता जा रहा है।

संवहनीय खेल का मैदान : तेज रफ्तार की, फेंकने के अतिरिक्त अन्य प्रतिक्रिया भी होती हैं। न्यूयार्क शहर के उपवन-विभाग ने बारह 'संवहनीय खेल के मैदान' बनाने का आदेश दिया है! यह, खेल के मैदानों की कमी को किन्हीं कारणवश खाली पड़े प्लाटों को अस्थायी खेल के
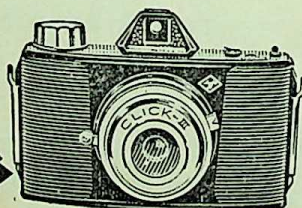
मैदान बनाकर पूरा करने की कोशिश है। जब उस प्लाट पर कुछ बनने लगेगा तब किसी अन्य खाली हुए प्लाट पर वही 'संवहनीय मैदान' ले जाया जाएगा। ऐसी ही अन्य निर्मितियां भी हैं, जो एक दीर्घकालिक आवश्यकता के स्थान पर अनेक अल्पकालिक आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं।

श्रेष्ठ औद्योगिकी में 'मात्रिक' (मॉड्युलर) निर्माण एक क्रांतिकारी प्रतिक्रिया है। यंत्रों, विशेषकर इलेक्ट्रॉनिक संयंत्रों में मात्रिक निर्माण अत्यंत आवश्यक हो गया है। अब यही बात मकानों, प्रमोदगृहों तथा शहरों पर भी लागू की जा रही है। इसका अच्छा उदाहरण, 'फन पैलेस' (आमोद-महल) की अद्भुत योजना है जिसमें बहुउद्देशीय प्रमोदगृह का निर्माण किया जाएगा। इसमें नाटक से लेकर राजनीतिक जनसभा एवं नृत्य से लेकर कुश्ती के प्रदर्शन तक की क्षमता होगी। इसमें एक मुख्य ढांचा बनेगा जिसमें क्रेन की सहायता से मात्रिक संभागों को मिलाकर मनचाहे प्रमोदगृह का निर्माण किया जा सकेगा।

जैसे-जैसे संपन्नता बढ़ती जाती है, मनुष्य की आवश्यकताएं जैविक अतिजीविता पर उतना ही कम निर्भर करती हैं तथा उसकी व्यक्तिगत इच्छाओं पर उतना ही अधिक।

नये जिप्सी : १९१४ में एक औसत अमरीकी एक वर्ष में औसतन १,६४० मील और अपने जीवनकाल में लगभग ८८,५६० मील घूमता था। अब वह वर्ष में (विमान-यात्रा के अलावा) लगभग १०,००० मील कार चलाता है। अपने जीवनकाल में कुल मिलाकर वह प्रायः ३० लाख मील, पुरानी पीढ़ी का लगभग तीस गुना, घूम लेता है। आर्य तथा मंगोलों के ऐतिहासिक प्रवासन, अमरीका में हो रहे प्रत्येक वर्ष के प्रवासनों की तुलना में नगण्य हैं।

मात्रिक मनुष्य : बड़े शहर के विरुद्ध यह आलोचना की जाती है कि आदमी वहां जाकर आत्मकेंद्रित तथा स्वार्थी हो जाता है। यह तो सच है कि ऐसे आदमी के अधिकांश संबंध दफ्तर, क्लब आदि तक ही सीमित रहते हैं। औद्योगिक जीवन तथा तेज रफ्तार के कारण शहरी आदमी न केवल अधिक स्थानों में जाता है वरन एक ही सप्ताह में उसकी मुलाकात इतने आदमियों से हो जाती है जितनी गांववाले की शायद एक वर्ष में भी न होती हो। अतएव गंवई की तरह शहरी के संबंध गहरे नहीं हो सकते। आधुनिक औद्योगिक जीवन में मुलाकात आवश्यक मात्रिकों (कार्य के लिए) के आधार पर ही व्यावहारिक हो सकती है। जैसे दूधवाले से संबंध मात्र दूध खरीदने तक रहता है उसके जीवन से नहीं। इस तरह शहरी समय तथा शक्ति बचाकर कुछ मनपसंद मित्रों से अधिक गहरे संबंध कर सकता है।

बढ़ती विशेषज्ञता के कारण विभिन्न कार्यों की संख्या बढ़ गयी है। उद्योग

उमंगभरे
सपने साकार....
सुन्दरता की बहार
और भी हैं कई रंगीले रंग; फूलों,
डिज़ाइनों व मोटिफ़ का निखार
और नये, निराले विचार—
अशोक का चमत्कार!
अशोक मिल्स के प्रिण्ट्स,
पॉप्लिन, कैम्ब्रिक, टेरीन
व कॉटन में आपके
विचारों का संसार!
अशोक मिल्स
लालभाई ग्रुप के
वस्त्र

विज्ञान के त्वरित विकास के फलस्वरूप किसी भी कार्य का जीवनकाल भी छोटा और अनिश्चित हो गया है। इन सब कारणों से मानव-मानव संबंध भी मानव-वस्तु संबंध की तरह अल्पकालिक तथा मात्रिक होता जा रहा है। इससे मनुष्य पर अत्यधिक तनाव आता है।

बढ़ता तदर्थवाद : भविष्य के समाज में साधारण नागरिक की स्थिति विशाल संगठन की मशीन में एक बेनाम पुर्जे के समान होगी——ऐसा लग सकता है, किंतु संगठन का सूक्ष्म अवलोकन करने से ऐसा निष्कर्ष निकलता है कि भविष्य में आदमी की स्थिति समुन्नत होगी। आधुनिक संगठन संरचना में व्यक्ति का संगठन से संबंध दीर्घकालिक होता है तथा उच्च वर्ग में उसकी स्थिति तथा जिम्मेदारियां निश्चित होती हैं। अमरीका में संगठन, विशेषकर व्यापारिक तथा औद्योगिक, आज बहुत तेजी से बदल रहे हैं। परिवर्तनों की तेजी देखते हुए एक स्वतः अनुकूलनीय संगठन ही इष्ट कार्य को उपलब्ध समय में पूरा करने की क्षमता रखता है। समितियों, तदर्थ टीमों, परियोजना-वर्गों आदि के बढ़ते उपयोग इस बात की पुष्टि करते हैं और दर्शाते हैं कि संगठन-मनुष्य का संबंध भी अल्पकालिक होता जा रहा है।

पहले कार्य अधिकतर नैत्यिकी होता था अब वह अधिकतर विशेष होता जा रहा है। इन्हें पूरा करने के लिए ही तदर्थ समितियां बनती हैं। सारांश में संगठन स्थायित्व से क्षणिकता की ओर तथा नौकरशाही से तदर्थवाद की ओर बढ़ रहा है।

भविष्य की तदर्थ समितियों में विभिन्न व्यवसायों के अपरिचित विशेषज्ञ काम करेंगे। उन संगठनों में कार्य संचालक (एक्जीक्यूटिव) तथा व्यवस्थापक विभिन्न अल्पकालिक कार्य-दलों के बीच समायोजन करेंगे, किंतु परंपरागत कार्य-स्थायित्व के स्थान पर अनेक क्षैणिक कार्यों का करना, त्वरित परिवर्तनों का सामना करना, अल्पकाल में ही अन्य सदस्यों से संबंध स्थापित करना (तथा तोड़ना भी)—यह सभी कठिनाइयां धीमी चाल में विकसित मनुष्य की अनुकूलनीयता पर भारी बोझ डालेंगी।

गत्यात्मक बिंब : १९६७ में एक बुद्धिमती लड़की से पूछा, "क्या तुम जॉन ग्लेन को 'हीरो' समझती हो?" उसका उत्तर अभिव्यक्ति पूर्ण था, "अरे नहीं, वह तो बहुत पुराना हो चुका है।" यह सच है कि हीरो लोगों की भरमार हो गयी है।

सामूहिक माध्यम द्वारा वास्तविक व्यक्तियों का आवर्धित बिंब करोड़ों व्यक्तियों के मानसपटल पर अंकित किया जाता है। इसी तरह औपन्यासिक चरित्र भी उतने ही त्वरण से आते और जाते हैं। ये सब चरित्र साधारण मनुष्य के लिए एक आदर्श का कार्य करते हैं। इसलिए इन बिंबों का त्वरित बहाव मनुष्यों के व्यक्तित्व में अस्थायित्व लाता है।

३. नवीनता

समुद्र विज्ञान तथा मौसम विज्ञान : आगामी ५० वर्षों में मानव समुद्र के ऊपर तथा भीतर पैठ चुका होगा। उसके उपयोगों में खनिज पदार्थ (हीरे, मोती भी), भोजन, कचरा-घर, आमोद-प्रमोद गृह आदि सभी होंगे। नये उद्योग, नयी सामुद्रिक संस्कृति होगी। शब्द, रूप, रस, गंध आदि में भी नवीनता होगी। भोजन में भी नवीनता होगी। इसे सामुद्रिक-क्रांति कहेंगे। मौसम विज्ञान की प्रगति के फलस्वरूप सारी पृथ्वी का मौसम नियंत्रित किया जा सकेगा।

जैव विज्ञान फैक्टरी : यदि भोजन की कमी इसी तरह चलती रही तब सन २,००० तक जैव-वैज्ञानिक जानवर के भोजन के लिए उपयोगी (और अंततोगत्वा मनुष्यों के लिए भी) सूक्ष्म जीवों का उपयोग करेंगे। १३,००० से अधिक लोग 'पेस मेकर' तथा लगभग १०,००० लोग कृत्रिम हृदय वाल्व का उपयोग कर रहे हैं। कत्रिम गुर्दों, नसों, फेफड़ों आदि का भी विकास हो रहा है। ऐसे संवेदक का विकास हो चुका है जो शरीर के अंदर निरोपित होकर रक्तचाप, नाड़ी, श्वास, प्रश्वास आदि के गलत होने की चेतावनी देगा। कंप्यूटर, भविष्य में मस्तिष्क के आधार पर बनेंगे, जिनमें इलेक्टॉनिकी अवयव जैव-अवयवों के प्रतिरूप होंगे। लगभग दस-बारह वर्षों में ही स्त्रियां मनचाही संतान के लिए प्रशीतित भ्रूण किसी केंद्र से खरीदकर डॉक्टर से गर्भाशय में निरोपित करवा सकेंगी। ऐसे क्रांतिकारी कार्यों से पत्नी, कुटुंब, प्रेम, यौन आदि मूलभूत संस्थाओं तथा व्यवहारों पर कितना क्रांतिकारी प्रभाव पड़ेगा? जन्म-औद्योगिकी की समस्याएं अंत में नैतिक तथा राजनीतिक होंगी, वैज्ञानिक तथा औद्योगिक नहीं। इन प्रश्नों को क्या हम हमेशा के लिए तब तक टालेंगे कि जब तक वह सिर पर न आ जाये?

समस्या को नकारना : सन १८६५ में एक संपादक ने लिखा था, 'बुद्धिमान यह अच्छी तरह जानते हैं कि धातु के तारों द्वारा आवाज भेजना असंभव है और यदि यह हो भी जाए तो इसका कोई व्यावहारिक मूल्य नहीं है।' इसके दस वर्ष के भीतर ही 'दूरभाष' आया और उसने दुनिया बदल दी।

हमने अंतरिक्ष यात्राओं, लेसर आदि अनेक उद्योगों के प्रभावों का अध्ययन नहीं किया है। किंतु इस लघु सर्वेक्षण से ही इसमें संदेह नहीं कि बढ़ती क्षणिकता तथा नवीनता मिलकर एक बड़ा खतरा पैदा कर रहे हैं। कोई भी क्रांति स्थापित संस्थानों तथा शक्ति-संबंधों को तहस-नहस कर देती है। यह आसन्न श्रेष्ठ-औद्योगिक क्रांति हमारे व्यक्तिगत जीवन में घुसकर हमारे कौटुंबिक बनाव तथा यौन व्यवहारों को बदल देगी। दूसरी ओर वह भूख, बीमारी, अज्ञान तथा दुष्टता को

समाप्त करने की भी क्षमता रखती है। वह व्यक्तिगत विकास, साहस तथा आनंद के लिए सुनहरे अवसर ला सकती है।

अनुभूति का निर्माण : विकास की एक सीमा तक पहुंचकर उद्योग 'माल' पैदा करने के साथ 'सेवाओं' का भी निर्माण करने लगता है। निकट भविष्य में विकसित देश प्रदूषण, कुरूपता, भीड़भाड़, शोर आदि को दूर करके जीवन-गुणों को समुन्नत करेंगे। अनेक विशेषज्ञ मिलकर ऐसे विलक्षण आमोद-गृहों का निर्माण करेंगे जिनमें ग्राहक अपने रोजमर्रा के कपड़े उतारकर विशेष कपड़े पहन एक नियोजित ढंग से उत्तेजनात्मक तथा आनंददायक अनुभूति से गुजरेंगे। इन आमोद-गृहों में साज-सज्जा तथा सुविधा के बाद, अगला कदम होगा एक सुंदर सहयोगी भी देना। ग्राहक, वास्तव में, मनचाहे अनुभव को जीवित, किंतु बनाये गये, पर्यावरण में भोग सकेगा।

हालांकि सन २,०००, बजाय १९३० की भयानक मंदी की अपेक्षा आज कहीं विकट है किंतु उस घोर विपत्ति के अनुभव से दबे अर्थशास्त्री नवीनता को नकारकर इन श्रेष्ठ औद्योगिकी प्रगतियों को जाने-पहचाने औद्योगिक भूतकाल का मात्र अ-क्रांतिकारी बड़ा भाई मानते हैं। जब मनुष्यों के अनुभवों में अनुभूति उद्योग द्वारा निर्मित बनावटी अनुभवों की संख्या चढ़ जाएगी तब मानसिक समस्याओं के भी बढ़ने का अंदेशा है।

टूटा परिवार : कृषि समाज के लिए उपयुक्त बड़े परिवार संवहनीय न होकर अचल ही रहते हैं। औद्योगिक समाज में कामगरों को स्थानांतरित होना पड़ता है, इसलिए परिवार छोटे हो गये। श्रेष्ठ-औद्योगिक समाज और अधिक संवहनीयता चाहेगा जिसके कारण बहुत-से लोग कुटुंब को शिशुरहित (मात्रिक रूप) रखेंगे और मातृत्व सीमित कुटुंबों में रह जाएगा, या वे शिशुओं को तब चाहेंगे जब वे थोड़ी स्थिरता प्राप्त कर लें या अवकाश प्राप्त करने के बाद शिशुओं का लालन-पालन करें। क्या समाज के हर कार्य में बढ़ती विशेषज्ञता इस ओर इंगित करती है कि कल के तेज, त्वरित समाज में बच्चों के लालन-पालन का कार्य भी पेशेवर लोगों का हो जाएगा? विकसित देशों में परिवारों के बहुत से प्रयोग चल रहे हैं। समूह विवाह, उनमें से, काफी लोकप्रियता प्राप्त कर रहा है। क्या प्रेम-विवाह तथा उसका एकाधिकार समाप्त हो रहा है?

प्रेम-विवाह के स्थायित्व की एक बड़ी आवश्यकता है पति, पत्नी का तुलनीय विकास, जिसकी तुल्यता बनाये रखना तेज त्वरित समाज में बहुत कठिन होगी। इसके फलस्वरूप विवाह भी अल्पकालिक होंगे। विद्वानों का अनुमान है कि औसतन एक व्यक्ति जीवन में चार विवाह करेगा। पहला, प्रायोगिक विवाह किशोरावस्था में करेगा। दूसरा प्रायोगिक

विवाह के असफल होने पर किशोरावस्था के बाद। तीसरा संतान के प्रायोगिक विवाह के पश्चात और चौथा विवाह अवकाश प्राप्त करने पर या साथी की मृत्यु पर होगा।

यह निकट भविष्य की संभावना है। सुदूर भविष्य में जब सरकारी 'शिशु-उद्योग' की दूकान से मनचाहे गुणोंवाले गर्भ को खरीदा जा सकेगा तब पितृत्व,

मातृत्व, नारीत्व तथा परिवार आदि की धारणाएं आमूल बदलना पड़ेंगी, और जब गर्भ बिकने लगेंगे तब क्या व्यापारिक संस्थाएं उन्हें खरीद सकेंगी? कितनी संख्या तक? क्या उन्हें वे बाद में बेच भी सकेंगी? या उन्हें दास बना सकेंगी? श्रेष्ठ औद्योगिकी द्वारा जैव-बंधनों से प्रदत्त मुक्ति हमारे लिए वरदान सिद्ध होंगी या अभिशाप?

४. विविधता

टॉयनबी तथा हिप्पी गुरु, सभी किस्म के अधिकांश विचारक कहते हैं कि औद्योगिकी का भीमकाय 'रोड रोलर' हमारी दैनिक तथा सांस्कृतिक विविधताओं को सपाट कर रहा है। भविष्य का मानव मानक शालाओं में पढ़ेगा, मानक समूह संस्कृति में पलेगा, मानक वस्तुओं से घिरा होगा, यहां तक कि जीवन भी मानक शैली में जिएगा।"

शिक्षा का भविष्य : आज विद्यार्थी आंदोलन कर रहे हैं क्योंकि उन्हें फैक्ट्री की संयोजन लाइन की एक वस्तु समझा जाता है, एक व्यक्ति नहीं। कल विद्यार्थी अधिकांश शिक्षा अपने कमरे में अपनी सुविधानुसार प्राप्त करेगा क्योंकि उसे कंप्यूटर भंडार से जानकारी चाहे जब मिल सकेगी तथा टेप,

वीडियो रिकार्डर आदि उसको सिखाने में और भी अधिक सुविधा देंगे।

समूह संस्कृति : अब ४,००० सीटवाले एक सिनेमा के स्थान पर २०० सीटवाले ४ सिनेमा बनते हैं क्योंकि दर्शक मनपसंद फिल्म ही देखना पसंद करता है। श्रेष्ठ औद्योगिकी ने इसे किफायती बना दिया है। लोकप्रिय पत्रिका के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के लिए प्रकाशन थोड़े भिन्न आने लगे हैं। स्थानीय पत्रिकाओं का भी पुनर्जन्म हुआ है। टेलीविजन अभी चाहे समूह संस्कृति का मानकीकरण करता है, भविष्य उसका भी विविधता की ओर है। इस बढ़ती विविधता की सीमा औद्योगिकी नहीं, वरन मनुष्यों की उस का लाभ उठाने की योग्यता निश्चित करेगी।

उपसंप्रदायों की बहुलता : तकनीकी विकास के साथ समाज में विशेषज्ञता तथा उपसांस्कृतिक विविधता बढ़ती है। उपसांस्कृतिक समूहों की अपनी विशेष पत्रिकाएं, सभाएं, गोष्ठियां तथा विधिवत संगठन होते हैं। भिन्न समूहों के लोग भिन्न भाषाओं में बात करते हैं, उनका व्यक्तित्व, सोचना, रहन-सहन, खान-पान, अलग होता है; किंतु उपसंप्रदायों की संख्या बढ़ने के साथ उनकी अल्पकालिकता भी बढ़ रही है।

आज के संसार में पुराने स्थापित जीवन मूल्यों का पतन हो रहा है। पुराने के स्थान पर अनेक नये मूल्य आते हैं और स्थिर होने के पहले ही बदलने लगते हैं, अर्थात उनमें भी विविधता तथा अल्पकालिकता आ गयी है। विभिन्न उपसंप्रदायों की बहुलता हमारे जीवन के मानचित्र को झकझोर देती है क्योंकि हमारी कोशिश पूरी जीवन-शैली में सामंजस्य लाने की रहती है। हिप्पियों का भी जीवन-दर्शन होता है और बिंब भी। टिमॅदी लिअरी ने चोगा, गुरिया माला पहनकर प्रेम तथा एल. एस. डी. पर कृत्रिम, रहस्यमय गहरे सत्यों को बुदबुदाकर हजारों-लाखों किशोरों को यह बिंब दिया। इसी तरह लोकप्रिय नायकों के बिंब युवा वर्ग के मानसिक तादात्म्य की अस्तित्वात्मक प्यास बुझाते हैं।

कल जहां गांधी, अल्बर्ट श्वाइत्जर आदि लोकप्रिय नायक अपने कार्यों से ऐसे बिंब बनाते थे, आज वही कार्य फैक्ट्रियों में होने लगा है।

अधिवस्तु : 'किसी का होने की' मनुष्य की तीव्र इच्छा सार्वकालिक है। आज के विशाल तथा जटिल तकनीकी समाज का होने में व्यक्ति को बहुत कठिनाई होती है। किसी के न होने का यह भाव अकेलापन, परकीयता तथा प्रभावहीनता का भाव पैदा करता है। इसके विपरीत अपने समाज के होने का भाव न केवल मित्रता, प्रेम तथा अनुमोदन की आशा देता है वरन सार्थकता की अनुभूति भी देता है, इन सबका वायदा करते हुए उपसंप्रदाय अधिवस्तु देते हैं, जिसमें चयन की भरमार से राहत मिलती है। पर बदलते अल्पकालिक उपसंप्रदायों के साथ मनुष्य का लगाव

क्रमशः कम होने लगता है तथा बाहर के स्थान पर वह अंदर भी देखने लगता है और स्वयं तथा स्वतंत्रता संबंधी नये आयाम पाता है। यदि हमें अल्पकालिक उपसंप्रदायों का शिकार न होकर, उनके द्वारा प्रदत्त स्वतंत्रता का उपयोग करना है तो समाज को वैज्ञानिक जानकारी द्वारा सुचारु रूप से ढालना होगा।

५. मानव-प्रकृति की सीमाएं

शारीरिक आयाम : मानव प्रकृति का लचीलापन जीवों में सर्वाधिक होते हुए भी असीमित नहीं है। इस पुस्तक का यह प्रतिपाद्य विषय है कि उसकी इस सीमा को जाना जा सकता है। मानव की प्रकृति के लचीलेपन एवं उसकी निर्णय प्रक्रिया पर अधिक बोझ पड़ने से जो शारीरिक तथा मानसिक व्यथा होती है, उसे 'भविष्य-आघात' की संज्ञा दी जा सकती है।

मानसिक आयाम : द्वितीय विश्व युद्ध में देखा गया कि दीर्घकालिक तथा तीव्र तनाववाले मैदानों में सैनिक का मानसिक स्वास्थ्य एकदम ढह जाता था। अपने बचाव की क्या, उसे जीने तक की इच्छा नहीं होती थी। आग, भूकंप, पूर तथा सांस्कृतिक आघात में भी यही देखने को मिलता है।

भावात्मक संन्यास

इंद्रियों पर बमबारी : अति उद्दीपन तीन प्रकार का होता है—संवेदनात्मक, संज्ञानात्मक तथा निर्णयात्मक। संवेदनात्मक अति उद्दीपन से हमारा यथार्थ बोध गलत हो जाता है और धीरे-धीरे उसके प्रति हमारी संवेदनशीलता कम होती जाती है। संज्ञानात्मक अति उद्दीपन से हमारा सोचना-विचारना गलत हो जाता है। पर्यावरण द्वारा प्राप्त जानकारी के आधार पर ही व्यक्ति निकट भविष्य की कल्पना तथा आयोजना कर सकता है। जब तीव्र त्वरित परिवर्तन इस निकट भविष्य की कल्पना को कठिन तथा अविश्वसनीय बना देता है तब तर्कसंगत व्यवहार कठिन हो जाता है।

शिकार की पहचान : जब संवेदनात्मक, संज्ञानात्मक अति उद्दीपन के साथ निर्णयात्मक प्रतिबल काम करते हैं, अर्थात भविष्य आघात करता है तब मनुष्यों का मानसिक अनुकूलन बिगड़ जाता है। सर्वप्रथम तो वे आघात के अस्तित्व का ही निषेध करते हैं। जैसे गिरा हुआ आदमी अकसर यही कहता है कि कुछ नहीं हुआ, वैसे ही शिकार को यह क्रांतिक परिवर्तन सतही लगता है। वे कहते हैं कि युवा वर्ग तो हमेशा विद्रोही रहा है। धीरे-धीरे हिंसा सभी सरकारी बुराइयों की दवा बन जाती है और विचार का स्थान आतंकवाद ले लेता है किंतु समस्याएं बढ़ती जाती हैं। साधारण मनुष्य विभ्रम, अनैश्चित्य, आत्म-विश्वास, चिंता तथा भय का शिकार हो जाता है। अंत में काम-

चलाऊ सन्यास ले लेता है।

६. बचाव के उपाय

श्रेष्ठ औद्योगिकी के विकास के साथ, भविष्य-आघात को सहने के लिए हमें भी नवीन व्यक्तिगत तथा सामाजिक परिवर्तन-नियामकों का अभिकल्प तथा आविष्कार करना होगा और अनेक प्रयोग करने होंगे।

स्थैतिक समूह : बहुत-सी बातों पर व्यक्ति का नियंत्रण ही नहीं होता। अतः हमें कुछ सामाजिक युक्तियों का उपयोग करना होगा, जैसे विशाल शहर में नये-नये आये लोगों के लिए एक क्लब हो सकता है। इस तरह के समूहों को 'स्थैतिक' समूह कह सकते हैं। सभी किस्म की क्रांतिक स्थितियों के लिए स्थैतिक समूह हो सकते हैं, जिनमें साधारण मनुष्य (दोनों भुक्त-भोगी तथा भुगतमान) तथा विशेषज्ञ भाग ले सकते हैं।

क्रमिक परिवर्तन : एक और उपाय है क्रमिक परिवर्तन। प्रगतिवादी जेलों में कैदियों को बंधे तथा निम्न उद्दीपन वातावरण से खुले तथा अति उद्दीपन समाज में एकदम से न ढकेलकर एक बीच की संस्था में ले जाया जाता है।

प्रयोग समाज : भविष्य के समाज में भविष्य-आघात पीड़ित लोगों के स्वास्थ्य-लाभार्थ भूतकालिक समाज के छोटे-छोटे केंद्र होंगे। ऐसे उपसमाज भी होंगे जिनमें लोग अपने भविष्य के अनुभव भी कर सकेंगे। इनमें एक तो वे लोग होंगे जिन्हें भविष्य की लहर पर चढ़ने में आनंद आता है और दूसरे वे जो भविष्य के जीवन से प्रयोग कर रहे होंगे।

शिक्षा का भविष्यकाल

शिक्षा फैक्ट्री : कुछ दशक पूर्व, परिवर्तन इतने धीरे होते थे कि पिता के समय की सीखी हुई जानकारी या हुनर बेटे के समय
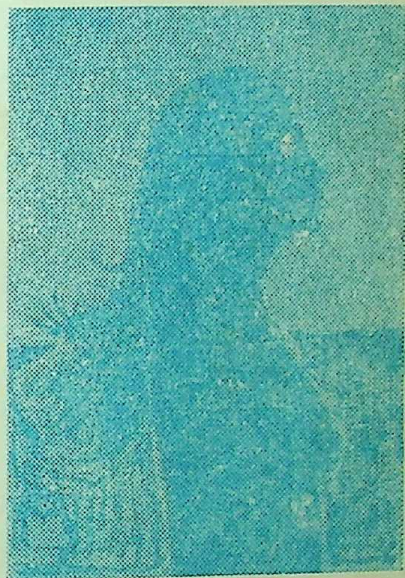
भी काम आती थी। बड़े बूढ़ों की बात बुद्धिमत्ता की होती थी। सारा संसार ही पाठशाला था। औद्योगिक युग के साथ समूह-शिक्षा का प्रसार हुआ, जिसमें विद्यार्थी समूहों (कच्चा माल) को विशाल शाला (फैक्ट्री) में शिक्षक (कुशल कारीगर) द्वारा शिक्षित (संयोजन/निर्माण प्रक्रिया)

किया जाता है। शालाओं का जीवन औद्योगिक जीवन के लिए उपयुक्त परिचय था। एकरूपता, व्यक्तित्वहीनता, समूह-विभाजन, श्रेणी-विभाजन, गुणांक के अनम्य तरीके तथा शिक्षक का सत्ताधारी पद आदि सब औद्योगिक समाज के लिए उपयुक्त थे और जब आज के हुनर कल काम नहीं आएंगे तब इस शिक्षा का रूप बदलना पड़ेगा।

श्रेष्ठ औद्योगिक समाज की शिक्षा : इसके लिए हमें २०-५० वर्ष तक के भविष्य का यथासंभव सही चित्र खींचना होगा—कौन-कौन से काम-धंधे, कुशलताएं, हुनर आदि की आवश्यकता होगी, कुटुंब तथा समाज में मानव-मानव संबंध कैसे होंगे, नैतिक तथा चारित्रिक समस्याएं क्या होंगी, आदि, आदि। इसके बाद शिक्षा का रूप निर्धारण करने के लिए 'भविष्य-परिषद' बनाना चाहिए।

शाला का स्थान : विविध तकनीकी युक्तियों के साथ-साथ कुशल माता-पिता की सहायता शालओं का शिक्षण समय बहुत कम कर देगी। पाठ्यक्रम में विविधता होगी, जिनमें से विद्यार्थी अपने वांछित मात्रिक पाठ्यक्रम लेकर अपनी शिक्षा-प्रणाली का निर्धारण स्वयं कर सकेगा।

परिषद के ध्येय : शिक्षा में इस भौगोलिक तथा सामाजिक फैलाव के साथ समय फैलाव भी आएगा। जानकारी की अल्पकालिकता के कारण एक अवस्था में (जैसे युवावस्था) सीखे हुनर, दूसरी अवस्था (जैसे प्रौढ़) में काम नहीं आएंगे। अतएव एक लंबी अवधि में पूर्ण शिक्षा के स्थान पर फैली हुई अल्पकालिक शिक्षाएं होंगी। समाज की विविधता के अनुसार शिक्षा की संगठनात्मक रचना के अनेक रूप होंगे।

कैसे सीखें ? : भविष्य के व्यक्तियों को सीखने के तरीकों के अतिरिक्त 'संबंध-संस्थापन' तथा 'चयन' में भी विशेष योग्यता प्राप्त करनी होगी। संक्षिप्त में 'कैसे सीखना ?' सीखना होगा।

क्रांतिक प्रश्न : विगत डेढ़ सौ, दो सौ वर्षों में संस्कृति का उद्भव बिना प्रबुद्ध नियंत्रण के हुआ है। अब समय आ गया है कि हम समझ-बूझकर इसका विकास करें। हमारे सामने बड़े क्रांतिक प्रश्न हैं : क्या जैव रसायन का उपयोग क्षीण बुद्धिवालों को साधारण स्तर पर लाने में किया जाए अथवा श्रेष्ठ प्रतिभाओं को पैदा करने में? क्या हम साधन-स्रोतों को सस्ती नाभिकीय ऊर्जा के शीघ्रतम उत्पादन में लगा दें? या उसे आक्रमण के जैव रासायनिक मूल के निर्धारण में लगा दें? क्या करोड़ों रुपये पराध्वनिक यात्री-वायुयान के विकास में लगा दें या कृत्रिम हृदयों के विकास में? क्या हम मानवीय जीवन के साथ खिलवाड़ करें? क्या श्रेष्ठ एल. एस. डी. या आक्रमण-विरोधी दवा या हक्सले-सोम का विकास कर सभी को नाश्ते में खिलायें? आदि आदि क्रांतिक प्रश्नों को किन मानवीय कसौटियों पर कसें? इसमें संदेह नहीं

कि उपर्युक्त भिन्न-भिन्न [illegible] वाले समाज नितांत भिन्न स्थानों पर पहुंचेंगे। चार कसौटियां सुझाव के रूप में दी जा रही हैं।

सामाजिक भविष्यवाद

नीति की आवश्यकता : विकसित देश औद्योगिकवाद तथा उसके साथ उद्योगतंत्र आयोजना का पतन देख रहे हैं। इसके मुख्य कारण तीन हैं—पहला, पूंजीवादी तथा साम्यवादी दोनों रूपों में उद्योग तंत्र आयोजना आर्थिक उत्पादन को अपना ध्येय मानती है। दूसरा—उद्योगतंत्र आयोजना अदूरदर्शी होती है तथा तीसरा—वह अप्रजातंत्रीय है। इसमें आयोजक तथा व्यवस्थापक कार्य की स्थानीय परिस्थितियों से अलग होते हैं तथा त्वरित गतिशील विकास में आंकड़ों तथा स्थितियों को भेजने के लिए समय यथेष्ट नहीं होता। इन सभी कारणों से समाज अनियंत्रित होता जा रहा है जिसके फलस्वरूप बुद्धिवाद से विरोध पैदा होता है। लोग नियंत्रणहीन स्थिति के लिए विज्ञान को जिम्मेदार मानते हैं, अतएव वे विज्ञानेतर विश्व बनाना चाहते हैं। नियंत्रणहीनता का एक और भयंकर परिणाम होता है, 'इसी क्षण से लगाव', 'जो कुछ करना अभी कर लो, कल की मत सोचो'। यही जीवन-दर्शन बन जाता है जो स्वभावतया मूल्यहीन होता है। अतएव हमें सामाजिक भविष्यवाद की नीति की आवश्यकता है।

आर्थिकेतर बल : भौतिक उन्नति का ध्येय औद्योगिक समाज के लिए अपने ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में चाहे उचित हो किंतु श्रेष्ठ औद्योगिकी के प्रादुर्भाव के साथ सार्थकता की अनुभूति, सामाजिक जिम्मेदारियां, सौंदर्य सिद्धि आदि आर्थिकेतर ध्येय उसके आर्थिक ध्येय से टक्कर लेने लगते हैं। रंग-भेद, पीढ़ियों का तनाव, अपराध, सांस्कृतिक एकाधिपत्य, हिंसा आदि के कारण आर्थिक अवश्य हैं परंतु केवल आर्थिक हलों से उनका सुधार नहीं हो सकता। माल उत्पादन से सेवा उत्पादन की ओर प्रगति, माल तथा सेवा दोनों में मानसिक तत्त्वों का बढ़ता प्रभाव तथा अंततः अनुभूति उत्पादन आर्थिक तत्त्वों को आर्थिकेतर बलों से बांध देते हैं।

समाज-सूचक : इस संबंध में न हमें शिक्षण की उपयोगिता, साहित्य, संगीत, कला की उन्नति, आपसी प्रेम, दया भाव, पर्यावरण सूचकांक, आदि जीवन-गुण दर्शानेवाले सामाजिक सूचकों की आवश्यकता है वरन विभिन्न समूहों तथा व्यक्तियों में अल्पकालिकता, नवीनता तथा सार्थकचयनता के सूचकों की अत्यंत आवश्यकता है।

भविष्य का पूर्वानुमान : भविष्य के पूर्वानुमान का महत्त्वपूर्ण परिणाम यह भी होता है कि वह भविष्य को बदलता है। इसके महत्त्व को समझते हुए सभी प्रकार के सर्जनात्मक मनुष्यों को भविष्य के पूर्वानुमान में हिस्सा लेना चाहिए। इसमें

उन्हें तकनीकी विशेषज्ञों की पूरी सहा-

यता मिलना चाहिए।

आदर्श समाज की उपयोगिता : आदर्श समाजों (अनादर्श भी) की कल्पना की भी आवश्यकता है। भविष्य में बढ़ती जटिलताओं के कारण इस कार्य के लिए एक व्यक्ति के स्थान पर उच्च विशेषज्ञों की आवश्यकता होगी। ऐसे समूहों की भी आवश्यकता होगी जिन पर भविष्य जीवन प्रणाली का प्रयोग किया जा सके। जब विधायकों के पास भविष्य का तर्कसंगत पूर्वानुमान होगा तब ही तो वे उपयुक्त योजना बना सकेंगे।

जनतंत्र का भविष्य : भविष्य के आदर्श तथा लक्ष्यों का निर्धारण कौन करे? नौकरशाही तथा उद्योगतंत्र में इसका स्वाभाविक उत्तर आता है—बॉस, व्यवस्थापक, आयोजक, नेता आदि, किंतु इनके लिए श्रेष्ठ औद्योगिक समाज के आदर्श तथा लक्ष्य बहुत ही जटिल होंगे तथा लक्ष्यों की उपलब्धि जनता की सहर्ष हिस्सेदारी पर भी निर्भर करती है। यह टटपुंजिए क्रांतिकारियों के बस की बात नहीं है। अधिक से अधिक लोगों को निर्णय लेने की प्रक्रिया में शामिल कर राजनीतिक जनतंत्र ने जानकारी के प्रतिसंभरण को व्यावहारिक रूप दे दिया है। त्वरित रूप से प्रगतिशील जटिल समाज के नियंत्रण के लिए जानकारी के इसी प्रतिसंभरण के परिमार्जित रूप की आवश्यकता होगी।

जैसे-जैसे त्वरित परिवर्तन विशाल सम[illegible] की अस्थिरता की ओर बढ़ाता है, वै[illegible] वैसे उस समाज के छोटे-छोटे उपसमू[illegible] की उस समाज को और भी अस्थिर बन[illegible] की ताकत बढ़ती जाती है। अतएव [illegible] समस्या के हल के लिए रोषपूर्ण त[illegible] असंतुष्ट उपसमूहों को समाज की प्र[illegible] में जनतांत्रिक रूप से पूरा हिस्सेदार बना[illegible] उचित है। ये सभाएं केवल भौगोलि[illegible] आधार पर न होकर उद्योग, मज[illegible] धार्मिक संस्थाएं, बुद्धिवादियों, ल[illegible] कला, महिला, जाति, विद्यार्थी आ[illegible] आदि सामाजिक इकाइयों के आधा[illegible] पर भी बनें। इनका कार्यकाल भवि[illegible] की अल्पकालिकता को ध्यान में रख[illegible] निर्धारित किया जाए। न्यायिक जू[illegible] प्रणाली से भी संविधानिक सभाओं [illegible] संरचना तथा कार्यप्रणाली के लिए ला[illegible] उठाया जाना चाहिए।

जब मानव के पास 'जीन' को बद[illegible] कर नयी श्रेष्ठ मानव जाति के निर्मा[illegible] की शक्ति आ गयी है तब यह आवश्यक [illegible] कि वह जैव विकास का नियंत्रण जानते [illegible] करे। बजाय आनेवाले कल का विरोध क[illegible] के उसे आनेवाले कल का निर्माण कर[illegible] चाहिए। सामाजिक भविष्यवाद का [illegible] उद्योगतंत्र आयोजना के स्थान पर मानव[illegible] दूरदर्शी तथा जनतांत्रिक आयोजना ल[illegible] मात्र ही नहीं है, वरन संपूर्ण जैव विका[illegible] का समझबूझकर नियंत्रण करता है।

दी हिन्दुस्तान टाइम्स लिमिटेड की ओर से रामनन्दन सिन्हा द्वारा हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नयी दिल्ली में मुद्रित तथा प्रकाशित

कादम्बिनी

भारतीय भाषाओं की विशिष्ट पत्रिका

१ रुपया

हिन्दुस्तान टाइम्स प्रकाशन

175 ml.
Incremin
syrup
TONIC APPETITE
Sista's INC-362 G/75 Hin

दाँतों के डाक्टरों की राय में

नियमित रूप से दाँत ब्रश करने और मसूढ़ों की मालिश करने से मसूढ़ों की तकलीफ़ और दाँतों की सड़न दूर ही रहती है

देखिए, फोरहॅन्स टूथपेस्ट नियमित इस्तेमाल करनेवालोंने अपने आप क्या लिखा है :

'बारह साल की उम्र से ही मैंने फोरहॅन्स से दाँत साफ़ करने शुरू कर दिये थे। आज मैं बीस साल का होने जा रहा हूँ। पहली बार फ़ोरहॅन्स इस्तेमाल करते समय मेरे मसूढ़ों में कुछ तकलीफ़ थी। अब वह तकलीफ़ नहीं रही। पहले, रात के समय दाँतों को ब्रश करने की मेरी आदत नहीं थी। बाद में रोज रात को १० बजे पढ़ाई करते समय आपके विज्ञापन सुन-सुनकर मेरी यह 'नयी आदत' पड़ गयी है।'

(सही) एस. मित्तल,
बी.ई. (इलेक्ट्रिकल), पटियाला।

'...लगभग एक साल पहले मैंने देखा कि मेरे दाँत पीले पड़ने लगे हैं, हालांकि मैं सिगरेट नहीं पीता...मेरे पिताजी ने,... जो पिछले ३० साल से "फ़ोरहॅन्स" से ही दाँत साफ़ करते रहे हैं, मुझे दूसरे टूथपेस्ट के बजाय "फ़ोरहॅन्स" से दाँत साफ़ करने की सलाह दी। कमाल है! मेरे दाँत जितने साफ़ और अच्छे होने चाहिए, वैसे हो गये। मुझे यह कहना पड़ेगा कि आपके आश्चर्यजनक टूथपेस्ट—**फ़ोरहॅन्स**—में वे सभी गुण हैं जिनका आप प्रचार करते हैं। इसका रहस्य यह है कि यह **दाँतों के डाक्टर का बनाया हुआ टूथपेस्ट है।**"

(सही) एस. एस. चटर्जी, एम.ए.
कोयम्बटूर।

(इन पत्रों की फोटोस्टॅट कॉपी आप जैफ्री मैनर्स एण्ड कं. लि. के किसी भी कार्यालय में देख सकते हैं)

दाँतों की समुचित देखभाल के लिए रोज सवेरे और रात को फ़ोरहॅन्स टूथपेस्ट और फ़ोरहॅन्स डबल-एक्शन टूथब्रश इस्तेमाल कीजिए...और नियमित रूप से डाक्टर की सलाह भी लेते रहिए!

मुफ़्त! "आपके दाँतों और मसूढ़ों की रक्षा" नामक रंगीन सूचना-पुस्तिका। K—9

अपनी प्रति*प्राप्त करने के लिए (डाक-खर्च के लिए) २५ पैसे के टिकट इस कूपन के साथ इस पते पर भेजिए: मैनर्स डेण्टल एडवाइज़री ब्यूरो, पोस्ट बैग नं. १००३१, बम्बई-१.

नाम: ______________ उम्र: ______

पता: ______________

* कृपया जिस भाषा की पुस्तिका चाहिए, उसके नीचे रेखा खींच दीजिए: अंग्रेजी, हिन्दी, मराठी, गुजराती, उर्दू, पंजाबी, बंगाली, आसामी, तामिल, तेलगु, मलयालम, कन्नड़।

फ़ोरहॅन्स दाँतों के डाक्टर का बनाया हुआ टूथपेस्ट

129 F-182 HIN

निम्नलिखित शब्दों के जो सही अर्थ हों उन पर चिह्न लगाइए और इसी पृष्ठ और १३ पर दिये उत्तरों से मिलाइए।

• विशालाक्ष

१. **अवद्य**—क. निंद्य, ख. बुरा, ग. कुरूप, घ. अनिंद्य।

२. **उपसर्ग**—क. पकड़ना, ख. त्यागना, ग. दैवी या भौतिक उत्पात, घ. शकुन।

३. **तत्सम**—क. संस्कृत शब्द, ख. समान, ग. व्याकरण-शुद्ध शब्द, घ. परिष्कृत।

४. **भग्नदूत**—क. पराजित दूत, ख. मेघदूत, ग. विफल दूत, घ. दौत्यकर्म।

५. **संवलित**—क. आच्छादित, ख. उत्पन्न, ग. बलप्राप्त, घ. युक्त।

६. **छिछोरापन**—क. ओछापन, ख. लघुता, ग. नीचता, घ. चंचलता।

७. **झुकमुख**—क. लज्जित, ख. झुट-पुटा, ग. झुकाना, घ. अंधकार।

८. **तकियाकलाम**—क. भाषण, ख. उलाहना, ग. कविता, घ. टेक।

९. **ईति-भीति**—क. आधि-व्याधि, ख. रोग का डर, ग. दैवी उत्पात का भय, घ. अकाल की आशंका।

१०. **प्रत्युत्पन्नमति**—क. बुद्धि, ख. सम्मति, ग. वाचालता, घ. हाजिरजवाबी।

११. **रामकहानी**—क. आपबीती, ख. आत्मकथा, ग. राम की कथा, घ. इतिहास।

१२. **नान**—क. दाल-भरी रोटी, ख. मैदा की मोटी खमीरी चपाती, ग. बाटी, घ. पराठा।

१३. **झांकी**—क. झांकने की वस्तु, ख. सजावट, ग. दिखावा, घ. स्वल्प दर्शन।

१४. **संबोधन**—क. उपदेश, ख. बात-चीत, ग. पुकारना, घ. उलाहना।

१५. **तपोपूत**—क. तपस्वी, ख. तप से पवित्र, ग. संन्यासी, घ. ऋषि।

१६. **प्रपंच**—क. दुनिया का झमेला, ख. झगड़ा, ग. झंझट, घ. प्रकरण।

१७. **लफंगा**—क. झूठा, ख. उठाई-गीरा, ग. शोहदा, घ. नटखट।

उत्तर

१. क. निंद्य। उसका कार्य **अवद्य है।** (अ+वद्य=न कहने योग्य), तत्., वि., पु.। जो कहने योग्य भी न हो, **कुत्सित, अधम**। तुलना—**अनवद्य**।

२. ग. दैवी या भौतिक उत्पात। वह बीमार हो गया, उस पर मुकदमा

आपके रूप के अनेक चहेते...
आपकी त्वचा के अनेक दुश्मन
पॉण्ड्स वैनिशिंग क्रीम को अच्छा साथी बनाइए.
हवा, धूल और मौसम के तीखे प्रभाव से आपकी त्वचा की रक्षा करती है पॉण्ड्स वैनिशिंग क्रीम. आपके रूप को और भी सलोना बनाने के लिए इसमें एक खास पदार्थ ह्युमेक्टेंट मिला है जो आपकी त्वचा की नमी को सुरक्षित रखता है. तभी आपका चेहरा मोतीयारा दीखता है और तेलमुक्त भी.
इसे आप आदर्श पाउडर बेस के रूप में प्रयोग कर सकती हैं. घंटों-पहरों यह आपके सौंदर्य को अम्लान और मोहक बनाए रखती है. आप इसे संपूर्ण सौंदर्य प्रसाधन के रूप में भी प्रयोग कर सकती हैं.
आप तो जानती ही हैं, आपकी त्वचा को भी उतना ही प्यार-दुलार चाहिए जितना कि आपको.
पॉण्ड्स वैनिशिंग क्रीम - आदर्श पाउडर बेस
POND'S
VANISHING CREAM
चीज़ब्रो-पॉण्ड्स इन्कॉ.
(सीमित दायित्व सहित यू.एस.ए. में संस्थापित)

चला, अब घर कुर्क हो गया—**उपसर्गों** का ठिकाना ही नहीं है! तत्., सं., पुं.। अप-शकुन, प्रेतबाधा।

३. क. संस्कृत शब्द, जो भाषा में जैसे-के-तैसे रूप-अर्थ में आये हों। मार्ग **शब्द तत्सम** है। तत्., वि., पुं.।

४. ग. विफल दूत। जाते तो हो, किंतु **भग्नदूत** बनकर न आना पड़े। मेघदूत के समान **भग्नदूत**। तत्., सं., पुं.। हार का समाचार लानेवाला दूत।

५. घ. युक्त। भाव-संवलित चित्र, काव्य, स्नेह-**संवलित** शिक्षा। तत्. (सं = पूर्णतः+वलित=[illegible]). वि., पुं.। सहित।

६. क. ओछापन। शेखी मारना, धोखा देना आदि **छिछोरेपन** के लक्षण हैं। लो. भा., सं., पुं.। क्षुद्रता।

७. ख. झुटपुटा। **झकमुख** में ही निकल जाना, तब समय पर पहुंचोगे। लो. भा., सं., पुं.।

८. घ. टेक। 'क्या नाम है' उसका **तकियाकलाम** है। फा., सं., पुं.। शब्द या वाक्यांश, जो कोई व्यक्ति बार-बार बोलता है। सखुन तकिया।

९. ग. दैवी उत्पात का भय। कृषकों को **ईति-भीति** से बचाओ। तत्. (ईति= खेती को हानि पहुंचानेवाले उपद्रव+ भीति = भय), सं., स्त्री.।

१०. घ. हाजिरजवाबी। तत्काल दो-टूक जवाब देता है, उसकी **प्रत्युत्पन्नमति** अद्‌भुत है। तत्., सं., स्त्री.। विशेषण—तत्पर बुद्धिवाला, बड़ा **प्रत्युत्पन्नमति** है।

११. क. आपबीती। अपनी-अपनी **रामकहानी** सुनाओ। लो. भा., सं., स्त्री.। लंबा-चौड़ा वृत्तांत, **पंवाड़ा**।

१२. ख. मैदा की मोटी खमीरी चपाती। **नान** तंदूर में सेंकी जाती है, पर अब मशीन में भी पकायी जाने लगी है। फा., सं., स्त्री.। नानबाई—नान बनाने-बेचने-वाला। नान-खताई—एक मीठी, खस्ता टिकिया।

१३. घ. स्वल्प दर्शन। देवता की झांकी, जीवन की **झांकी**। लो. भा., सं., स्त्री.।

१४. ग. पुकारना। कृष्ण, आओ! कृष्ण **संबोधन** है। तत्., सं., पुं.। **बुलाना, अभिभाषण, ज्ञान देना**।

१५. ख. तप से पवित्र। **तपोपूत** ऋषि, नेता, क्रांतिकारी। तत्., वि., पुं.।

१६. क. दुनिया का झमेला। घर छोड़कर **प्रपंच** से मुक्ति पाओगे? तत्., सं., पुं.। संसार और उसके प्रति दायित्वों का चक्कर।

१७. ग. शोहदा, बदमाश। संतों और **लफंगों** में क्या अंतर है? फा., सं., पुं.। **लंपट, लुच्चा, दुश्चरित्र**।

जून में 'समय के हस्ताक्षर' के अंतर्गत देश की सारी नैतिक, सामाजिक राजनीतिक व्यवस्था की सड़ांध और चिंतन की मौत पर जो तीखे प्रहार किये हैं उससे यह संतोष हुआ कि अभी कुछ लोग बाकी हैं जो इस निरंतर सड़ते गलते चिंतन के बीच सही गलत की अच्छी पहचान रखते हैं।

—श्रीकांत चौधरी, दमोह

एक साक्षात्कार

मई अंक बहुत ही खूबसूरत लगा। 'एक साक्षात्कार' में अमृतराय के दृष्टिकोण को मौजूदा हालात से काटकर अलग से पढ़ना या गुनना किसी भी नजरिये से बेहतर नहीं होगा। आत्म-साक्षात्कार के बहाने अमृतरायजी ने एक सामान्य आदमी के दुख-दर्दों को ही उजागर किया है।

—बी. सी. ठाकुर, देवास

आपके पत्र

'कादम्बिनी' के जून अंक में 'आर्यभट' के संबंध में सही स्पष्टीकरण सराहनीय है। डा० श्यामलाल मांडावत के निष्पक्ष चुनाव से संबंधित सुझावों से इंकार नहीं है। इन नियमों को शासन कार्यान्वित करे, तभी जनता चुनाव में अपने मताधिकार का उपयोग कर सकती है। सुरेन्द्र श्रीवास्तव ने 'हड़ताल' के फायदे को ही सामने रखा है, हमारे देश को तो इससे हानि ही हुई है।

—वसंतकुमार 'चकोर' पो. रमना (जि. मुजफ्फरपुर)

कई लेखक एक ही रचना इधर से उधर नचाते हैं। ऐसे लेखकों के प्रति चेतावनी देकर आपने फिर अपने साहस का परिचय दिया है।

—ओमप्रकाश पाण्डेय 'प्रकाश,' पटना

सागर पर सात दिन

मई अंक में 'सागर पर सात दिन' विशेष आकर्षक रहा। विदेशों में घूमने वाले भारतीय राजदूत—'हर्षवर्द्धन'—का पहली बार वर्णन प्रस्तुत करने के लिए बधाई! इस लेख के दौरान लेखक ने शिपिंग कारपोरेशन के सामने एक गंभीर समस्या उठायी है। कुछेक घंटों की विमान-यात्रा में यात्रियों के मन-बहलाव के लिए परिचारिकाएं होती हैं, किंतु पानी में इतने दिनों की लंबी यात्रा में इस तरह की कोई सुविधा या व्यवस्था नहीं है। उचित है कि धरती से अलगाव के दिनों में यात्रियों के लिए दुभाषी तथा चुस्त परिचारिकाएं हों, जिससे उनके डूबे हुए चेहरे खिल उठें। **—विंदेश्वरी प्रसाद विजय, अण्डाल (प. बंगाल)**

मई अंक के 'शब्द सामर्थ्य बढ़ाइए' शीर्षक में दिये गय 'झाईं' शब्द का 'प्रतिध्वनि' अर्थ एवं 'कुएं में चिल्लाओ तो झाईं सुनायी पड़ेगी' प्रयोग अशुद्ध है क्योंकि हिंदी में झाईं का अर्थ छाया ही है, विशेषकर नयनों के नीचे पड़नेवाले काले चिह्न।

—प्रो. देवेन्द्र व्यास, हिंदी विभाग, को. आ. महाविद्यालय, कासगंज (एटा)

रामायण : पुरातत्त्व की दृष्टि में

डॉ. सांकलिया ने उक्त निबंध में लिखा है कि रामायण में वर्णित अस्त्र-शस्त्रों का उल्लेख कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' में या 'अष्टाध्यायी' में नहीं मिलता। मैं प्रमाण देकर कहना चाहता हूं कि कौटिल्य ने अपने ग्रंथ में अस्त्र-शस्त्रों का व्यापक वर्णन किया है। उन्होंने अध्यक्ष प्रचार अध्याय १८, पृष्ठ १६७ में कवच, धनुष, खंग, बाणों का वर्णन करते हुए उनके निर्माण की विधि तथा उपयोगिता का भी उल्लेख किया है।

कवच के भेदों को प्रगट करते हुए इसे लोहजाल, लोहजालिका, लोह पट्ट, शिरस्त्राण, कुर्पास, कंचुक, वारवाण नागोदरिका आदि नामों से अभिहित किया है, जो शरीर के विभिन्न भागों में आच्छादित रहते थे। धनुष के लिए कार्मुक, कोदण्ड, कोरण्ड, द्रुण, आदि प्रकारों का उल्लेख किया गया है। ये ताड़, बांस, लकड़ी, सींग आदि से बनाये जाते थे। बाणों का उल्लेख करते हुए कौटिल्य ने लिखा है कि वेणु, शर, शलाका आदि साखू की लकड़ी से निर्मित किये जाते थे। खंग के लिए उन्होंने निस्त्रिंश, मण्डाग्र असियष्टि आदि नामों का उल्लेख किया है जो अपने आकार-प्रकार के कारण अनेक नामों से जाने जाते थे। इसकी मूठ, गैंडे या भैंस की सींग के साथ हाथी-दांत की भी बनायी जाती थी। वराहमिहिर ने भुजाली या बाहु तलवार का उल्लेख किया है। पतंजलि ने परशु के नामकरण के आधार पर उसे शत्रु को काटनेवाला कहा है।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में 'भिंडिपाल' नामक भाला का उल्लेख है जो फेंककर मारा जाता था। पतंजलि ने इसे भाला कहा है। इन प्रमाणों के आधार पर कैसे कहा जा सकता है कि कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में अस्त्रों का उल्लेख नहीं किया है?

—डॉ. श्रीकांत, जबलपुर

इस अंक का मुखपृष्ठ

ऊपर से नीचे—१. जंगलों में काम करनेवाले अभी भी पूरी मजदूरी से वंचित, २. सैलानी अपनी कार में जाइरे के जंगलों के बीच, ३. कार के लिए सड़कें तक नहीं, ४. दीन-हीन अफ्रीका को ताकती विदेशी नजरें

निबंध एवं लेख

कविताएं

कादम्बिनी

राजेन्द्र अवस्थी

कथा-साहित्य

सार-संक्षेप

मुखपृष्ठ : छाया—रुडोल्फ विर्जेज, रावेल लांबा (लड़की)

स्थायी स्तंभ

सह-संपादक : [illegible] कृष्णानंद शर्मा

दुर्गाप्रसाद शुक्ल, विजयसुन्दर पाठक। चित्रकार : सुकुमार चटर्जी

—दहाड़ते हुए आकाश ने अचानक सबको थर्रा दिया है। मैग्नीशियम के तारों की तरह सहसा एक चकाचौंध हुई और तिरोहित हो गयी।

—क्या हुआ कि सबने अपने दरवाजे बंद कर लिये ?

—गांव से लेकर शहर तक के आंगन भीग उठे हैं।

—मौसम ने करवट ली है, धरती पर टिका हुआ शून्य-क्षितिज फट पड़ना चाहता है!

—लेकिन कोई भयभीत नहीं हैं, एक नयी भूमिका का अभिनंदन करने के लिए हर कोई आतुर है।

—हे ईश्वर ! बादलों-सी शक्ति हमें भी दे और दूसरों के लिए मिट जाने का संकल्प हमारे भीतर पैदा कर !

●●

—आदिमानव से लेकर बीसवीं सदी के मशीनी आदमी के भीतर से भी यह भावना अभी नहीं गयी है।

—वह अब भी सूर्य को अर्घ्य देता है और प्रार्थना करता है, जिस तरह लोटे का जल वायुमंडल में बिखर जाता है, हमारा जीवन भी बिखर कर समष्टि को अर्पित हो जाए।

—हर नयी प्रगति के बावजूद आदमी का भय बढ़ा है और उसकी शांति भंग हुई है। संभवतः वह इसीलिए ऐसे क्षणों की तलाश में रहता है और पाते ही दोनों हाथों में समेट लेना चाहता है।

—बरसात के बादल भय और अशांति का संकेत देते हुए भी अपने भीतर धरती का हरापन लिये उतरते हैं, इसलिये स्वागतेय हैं।

—स्वागत धरती करती है, आकर्षण का बिंदु तो वही है, इसलिए उससे श्रेष्ठ विश्वमंडल का कोई दूसरा नक्षत्र नहीं है।

—बादलों का अस्तित्व भी तो धरती के साथ बंधा है। वह जो कुछ धरती से लेता है, धरती को ही देता है।

—गर्भिणी नारी की तरह अपना भीतरी भार मिटाने के लिए ही तो बादल मजबूरन नीचे टूटकर गिरता है।

—इसलिए बादल कभी गरजता है, कभी धड़कता है, कभी फटता है, फूटता है, तो कभी मंथर गति से प्यार के बगूले भी छोड़ता है।

—बादल स्वयं बादलों को छानता चलता है।

—अपने अस्तित्व-बोध और अस्तित्व-रक्षा के लिए वह निरंतर संघर्षरत है और

सतत शक्ति-प्रदर्शन को एक माध्यम के रूप में स्वीकार करता है।

—आज की दुनिया भी इसी संघर्ष की प्रक्रिया से गुजर रही है।

—युद्ध के समस्त आयाम और परमाणु-विस्फोट के सारे व्यायाम अपनी सत्ता को प्रस्थापित करने के संकल्प हैं।

—'माइट इज राइट' तब भी था जब आदमी के दोनों हाथ खाली थे और अब भी है जब दोनों हाथ भरे हुए हैं।

—संघर्ष, विनाश और वितृष्णा का केंद्र मनुष्य ही तो है। उसी से प्रकृति ने सारे उपादान ग्रहण किये हैं।

●●

—एक कुम्हार की तरह बनाते रहने और बिगाड़ते रहने में आदमी को हमेशा सुख मिला है, क्योंकि वह स्वयं बनने और बिगड़ने की नियति से बंधा है।

—कल तक का स्वच्छ और निर्मल आकाश इसी प्रक्रिया के दौर में कालिदास का संदेश-वाहक मेघ बनकर आच्छादित हो उठा है।

—वह बीसवीं सदी का शापित यक्ष ही नहीं है, सदियों के आदि-स्रोत से उभरा उदार पुरुष भी है। इसलिए बादल की एक गंध होती है जो सहज पहचानी जा सकती है।

—विमान से उड़ते हुए, बादलों के भीतर से उसके दिल की धड़कन भी सुनायी देती है। वह सन्निपात है तो फफोलों पर लगाया जानेवाला मरहम भी है।

—बादल में पानी भरा है, लेकिन उसमें न तैरा जा सकता है और न नाव ही चलायी जा सकती। इतना विवश बादल भय का प्रतीक नहीं हो सकता!

—वह याचक है, अभी खाली हो जाएगा और फिर फटेहाल भिखारी की मुद्रा में प्रणाम करता नजर आएगा।

—कालिदास ने बादल को पहचाना था, तभी तो प्रेम का नाजुक संदेश अपनी प्रिया के पास उसी के माध्यम से भेजा गया था।

—बरसात के बादल अंततः वैसे ही शिष्ट और संस्कारी मानसिक परिवेश से नीचे उतरेंगे, जो उन्हें धरती से मिला है। धरती से अधिक शिष्टता, सौष्ठव और संस्कार अंतरिक्ष के और किसी नक्षत्र में नहीं है।

—इसलिए बादल की गड़गड़ाहट और उसके साथ बंधी बिजली की चकाचौंध भी सुखदायी है। आइए, हम आंगन में चौक पूरकर उसका स्वागत करें, आखिर बरसात के बादल रोज तो नहीं आते!

भविष्य का साहित्य क्या होगा ?

भविष्य का साहित्य क्या होगा ? यह चिंता केवल पश्चिमी जगत के लिए नहीं है, शायद समूचे विश्व के उन चिंतकों और बुद्धिजीवियों के लिए है जो बीसवीं सदी के अंतिम चरण में पहुंचते हुए मनुष्य पर मशीनी सत्ता के आतंक से परेशान हैं। कुछ समय पहले हमें अमरीका के प्रसिद्ध आलोचक-लेखक लेसली ए. फीडलर से बातचीत करने और उनके विचार अनेक चर्चा-गोष्ठियों में सुनने का अवसर मिला है।

अमरीकी साहित्य को एक नयी दृष्टि से देखनेवालों में फीडलर का प्रमुख स्थान है। उनके सोचने और समझने का तरीका भी समकालीन आलोचना से भिन्न है। वैसे भी पश्चिमी जगत जिस तीव्र गति से मशीनी दुनिया के पास पहुंच रहा है, अपने चिंतकों के मन में उतने ही प्रश्न भी छोड़ता जा रहा है। आज से पचास वर्ष पहले टी. एस. इलियट ने कहा था कि उपन्यास नाम की विधा का अब अंत हो रहा है। संभवतः इलियट का विचार रहा है कि उपन्यास और कहानी जैसी वह वस्तु जो आदमी की भीतरी संवेदना के साथ जुड़ी है, वास्तविकता से बहुत दूर है। यही बात कविता के संबंध में सन १९३० के आसपास एडमंड विल्सन ने कही थी और काव्य को 'मृत्यु की ओर अग्रसर' घोषित किया था। एडमंड विल्सन की भविष्यवाणी बहुत गलत सिद्ध नहीं हुई और आज की पश्चिमी कविता इसका प्रमाण है। वहां के कवियों को अपने श्रोता जुटाने के लिए समंदर के किनारे खड़े होकर ढोल और डफली बजाना पड़ता है और समूची कविता धीरे-धीरे एक खासा योग-व्यायाम बनती जा रही है।

लेसली ए. फीडलर का कहना है कि मानवता के लिए भोजन और जीवन-यापन के प्रश्न साहित्य की दुनिया से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। यह बात उन देशों के संदर्भ में और अर्थ रखती है जो विकास की ओर क्रमशः बढ़ रहे हैं। इसी संदर्भ में फीडलर का कहना है कि मौलिक सर्जक के लिए समाज-जैसी वस्तु उतनी सार्थक नहीं है, जितने सार्थक उसके पाठक हैं। निस्संदेह

इससे यह प्रतिध्वनि निकलती है कि साक्षरता के बावजूद साहित्य के पाठक कम हैं और लेखक को 'भेड़ों के झुंड' की अपेक्षा सही और ठोस पाठकों की चिंता अधिक करनी चाहिए।

यह सत्य है कि लेखक की दुनिया व्यापक होते हुए भी सीमित है, क्योंकि वह जीवन और जीवन-संदर्भों को अपने घेरे और समझ के दायरों में ही देख सकता है। विकसित होते हुए महानगरों की भीड़ में क्रमशः नष्ट होती हुई मानव-सत्ता के सामने समन्वयवादी व्यापकता का नारा शायद अपने साथ एक छल है।

रेडियो, टेलीविजन और फिल्मों के अनंत प्रसार को देखते हुए साहित्य की स्थिति क्या होगी, यह चिंता का विषय है। जब साहित्य दृश्य और श्रव्य जगत में प्रवेश कर जाएगा तब पाठक कितने रह जाएंगे! विकास की गति में फंसकर कितना समय आदमी के पास होगा, जब वह बहुत आराम से मोटे-मोटे उपन्यासों को पढ़ सकेगा! उसके पास जितना कुछ समय बचेगा, उसकी दृष्टि उस साहित्य की ओर जाएगी जो थोड़े समय में उसे बहुत कुछ दे जाए। फीडलर का इस संदर्भ में कहना है कि पश्चिम की लोकप्रिय साहित्यिक पत्रिकाओं से इसीलिए धीरे-धीरे 'फिक्शन' कम होता जा रहा है। वे पत्रिकाएं अपने पाठकों की रुचि को देखते हुए विज्ञान और टेक्नालाजी की ओर अधिक बढ़ रही हैं।

डॉ. फीडलर

डॉ. फीडलर की एक बात से हमें संतोष मिला—उनका कहना है कि अमरीकी साहित्य में 'फॉक लिटरेचर' के महत्त्व को समझा जाने लगा है और उसी के कारण ही लेखक की सर्वमान्यता को बल मिल रहा है। स्टेनबेक और अर्नेस्ट हेमिंग्वे-जैसे महान उपन्यासकारों की सफलता का आधार उनके साहित्य में 'लोक-साहित्य' की प्रधानता है। लेखक भले ही लोकप्रिय समाज का प्रतिनिधित्व न करे, वह सर्वमान्यता से जितनी दूर जाएगा, उसका साहित्य उतना ही नकली और मशीनी होगा।

हमारा देश पश्चिम की इन समस्याओं से अभी दूर है। हमारी सांस्कृतिक विरासत इतनी संपन्न है और 'लोक-साहित्य' की दुनिया इतनी व्यापक है कि आम भारतीय लेखक उससे मुक्त होने के लिए छटपटा रहा है। अमरीका सांस्कृतिक

श्री बालकृष्ण राव का निधन

(जन्म : २७ दिसंबर, १९१३,
मृत्यु : १ जून, १९७५)

हिंदी के सुविख्यात कवि और पत्रकार बालकृष्ण राव का ६१ वर्ष की आयु में अचानक देहावसान हो गया। श्री बालकृष्ण राव सुप्रसिद्ध पत्रकार सर सी. वाई. चितामणि के पुत्र थे और स्वयं आई. सी. एस. आफीसर थे। बालकृष्ण राव ने सन १९३७ में आई. सी. एस. में प्रवेश किया था और सन १९५४ में उन्होंने पदत्याग भी कर दिया। उसके बाद संपादक, नगरनिगम के मेयर और कुलपति-जैसे महत्त्वपूर्ण पदों पर उन्होंने कार्य किया।

उल्लेखनीय है कि 'कादम्बिनी' के सबसे पहले संपादक वही थे।

उनके निधन से एक निर्भीक व्यक्तित्व और साहित्यकार का अभाव हमेशा खटकता रहेगा। 'कादम्बिनी' परिवार की संवेदनाएं। —संपादक

मूल्यों और लोक-संस्कृति की गहराई के अभाव में अब उसको खोज रहा है और वहां के लेखकों की रचनाओं में लोकतत्त्व की चिरंतनता को ढूंढ़ा जा रहा है। संभवतः मशीनीकरण की यांत्रिक छटपटाहट और वेदना का यह परिणाम है जो वहां दृष्टिगोचर हुआ है।

आज की व्यापक दुनिया में कोई भी देश और समाज कटकर अलग खड़ा नहीं हो सकता। बीसवीं सदी के अंत में जो भय और चिंता के विषय पश्चिमी साहित्य में उठ सकते हैं, इक्कीसवीं सदी में संभव है, वही प्रश्न भारतीय संदर्भ में व्यापक हो उठें। उस समय क्या हम लोक-साहित्य और लोक-संस्कृति की खोज फिर नये सिरे से आरंभ करेंगे?

आज का भारतीय साहित्य लोकसत्ता की अत्यधिक व्यापकता से मुक्ति के लिए प्रयत्नशील है, अगली सदी में यदि वह फिर वापस जाकर उन्हीं खोये हुए मूल्यों की तलाश का नया सिलसिला शुरू करे तो यह एक ऐंटीथीसिस का आरंभ होगा। हमें लगा कि फीडलर ने अपनी आलोचना में जिन नये तत्त्वों और प्रतीकों के प्रति अमरीका के लेखकों और पाठकों को जागरूक किया है, हमें उनसे शिक्षा लेना जरूरी है।

प्रगति और प्रसार की निरंतर विकासशीलता में संभावित खतरों के प्रति भारतीय लेखक को अभी से सावधान होने की आवश्यकता है।

—संपादक

अंत डाकुओं के गणतंत्र का

• नरोत्तम सिंहानुक

राजकुमार नरोत्तम सिंहानुक को जब १८ मार्च, १९७० को उनके प्रधानमंत्री लोन नोल ने उनकी रूस-यात्रा के समय कंबोडिया के राष्ट्राध्यक्ष पद से हटाया तब उनकी मां सम्राज्ञी शिशुवत्स कुसुमाक्ष तथा सिंहानुक के पांच बच्चे और दामाद नोम पेन्ह में ही थे। लोन नोल सरकार ने उन्हें कैसी यातनाएं दीं, प्रस्तुत है उनका विवरण, स्वयं राजकुमार नरोत्तम सिंहानुक की लेखनी से।

सत्ता के अपहरण के समय लोन नोल और उसके साथियों को गणतंत्र की स्थापना की कोई कल्पना भी न थी। राजकुमार शिरीष मातक तो यह सोच रहा था कि कंबोडिया की रीती गद्दी पर मेरे बाद वही बैठेगा, क्योंकि आखिर तो वह मेरी मां सम्राज्ञी शिशुवत्स कुसुमाक्ष की राजशाखा का राजकुमार है।

उन्होंने मेरी मां के नाम का शोषण करना चाहा तथा दुनिया के दूसरे देशों को तार भेजे कि सम्राज्ञी-मां ने सत्ता के अपहरण और मुझे अपदस्थ करने का अनुमोदन कर दिया है।

सच तो यह है कि सम्राज्ञी-मां ने बहुत साहस और गरिमा से काम लिया। जब शिरीष मातक और लोन नोल ने अपने कुकृत्य के लिए उनका समर्थन मांगा तो वे बोलीं, "नहीं, मेरा बेटा आखिर मेरा बेटा ही है। तुमने उसे अपदस्थ कर दिया, तुमने उसका अपमान किया। उसने ऐसा कोई भी काम नहीं किया जिसके कारण उसके प्रति तुम्हारा यह व्यवहार उचित माना जाए। मैं तुम्हारे साथ कोई वास्ता नहीं रखना चाहती।" उनके सामने अब गणतंत्र की घोषणा के सिवा अन्य कोई उपाय ही नहीं बचा।

मेरे और सम्राज्ञी-मां के चित्र सभी सार्वजनिक भवनों से हटा दिये गये (अब वे पुनः लगाये जा रहे हैं)। दीवारों पर नारा लिखा गया—"राजा सदा से देशद्रोही रहे हैं।" उन्होंने चीखना शुरू किया कि दो हजार वर्षों से राजकुल ने सदा जनता से विश्वासघात किया है। उन्होंने यह भी घोषणा की कि मेरे प्रपितामह सम्राट नरोत्तम ने १८६३ में राष्ट्र को फ्रांसीसियों के हाथों बेच डाला था।

मां का उत्पीड़न

मैं तो उनके हाथों से निकल गया था, अब वे मेरी मां के उत्पीड़न पर लगे थे।

मां का घर शाही महल के एक कोने में अलग था। लोन नोल ने मां से कहा कि आप हमारे कहने के अनुसार नहीं चलेंगी तो आपको महल खाली करना होगा, मगर मां डटी रहीं और उन्होंने महल छोड़ने से इनकार कर दिया। इस पर लोन नोल और शिरीष मातक तथा इम टाम ने सम्राज्ञी-मा के पास एक प्रतिनिधिमंडल भेजकर कहलाया कि आप राजप्रसाद नहीं छोड़ेंगी तो हम आपको यहां से बाहर फेंक देंगे। हम आपके घर के बाहर लाशों के ढेर लगा देंगे। आपकी खिड़की के नीचे गिद्ध और चीलें उनकी बोटियां नोचेंगे। उनकी दुर्गंध आपके नथुनों और फेफड़ों में भर जाएगी।

नरोत्तम सिंहानुक
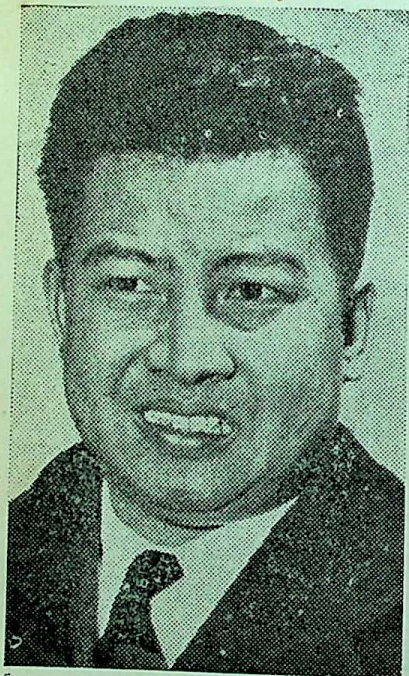
मां को तब वे दिन याद आये होंगे जब वे इन लोगों को राष्ट्रभक्त और राजभक्त कहा करती थीं और मेरे पास उनकी सिफारिश भेजती थीं। जब ये लोग मां के पास जाकर हमारे राजकुल की सराहना किया करते थे। यही इम टाम कहा करता था कि शांति का अर्थ है सिंहासन, स्वतंत्रता का प्रतीक है सिंहासन और स्थिरता का माध्यम है सिंहासन और राजकुल। मां उसे सिंहासन का पाया मानती थीं, किंतु उसने ही सिंहासन को उठाकर पटक दिया!

मां को इस आघात से बहुत व्यथा हुई। मां ने अपना अधिकांश समय राष्ट्रीय, परंपरागत और शास्त्रीय संगीत-नाटिकाओं और नृत्य-नाटिकाओं के विकास में लगाया था। उन्हें राजनीति में तनिक रुचि न थी। उन्हें बौद्ध मूल्यों पर आस्था है तथा कंबोडिया की मिश्रित (भारतीय तथा चीनी) नस्ल और संस्कृति पर उन्हें गर्व रहा है।

मां ने लोन नोल के प्रतिनिधियों से कहा कि अपने अपराधों का प्रमाण देने के लिए लाशें यहां लाने की आवश्यकता नहीं है। मैं राजप्रासाद छोड़ दूंगी। मुझे वह घर दे दो जिसमें मेरा बेटा जन्मा था और मुझे वहां रहने दो। मेरी मां और मेरे पिता मेरे सम्राट बनने से पहले उसी घर में रहते थे।

मैंने उस घर में एक राष्ट्रीय संग्रहालय बनाया था। लोन नोल और उसके

अमरीकी मित्रों ने उस संग्रहालय की संग्रहणीय वस्तुओं, मूर्तियों और कलाकृतियों आदि को तस्करी में बेच डाला था और वे सिंगापुर तथा बैंकाक से होकर न्यूयार्क और पेरिस चली जा चुकी थीं। घर खाली था ही, वह मां को सौंप दिया गया।

इस घर के चारों ओर लोन नोल की पुलिस तैनात रही। घर में आने-जाने-वाले प्रत्येक व्यक्ति की तलाशी ली जाती रही। महिलाओं के लिए तो वह बहुत ही लज्जापूर्ण नाटक होता था। शुरू के महीने में तो उनके पास जाने का किसी को साहस ही नहीं हुआ। बाद में जब लोगों ने देखा कि हमने कंबोडिया को मुक्त कराना शुरू कर दिया है तब कुछ लोग साहसवश और कुछ स्वार्थवश मां के पास आने-जाने लगे। फिर तो पेरिस होकर मां के संदेश भी मुझे मिलने लगे।

'मैं डटकर लोहा लेती हूं'

एक बार मां ने कहलाया, "मेरे लिए चिंता मत करना। मैं उनसे डटकर लोहा लेती हूं और अंत तक लेती रहूंगी। मुझे तुम पर गर्व है। मुझे एक ही भय है कि अपने अंतिम क्षणों में तुम्हें देखे बिना ही न मर जाऊं। इसके सिवा मुझे और कोई खेद नहीं है।"

मां बूढ़ी हैं, बीमार भी। वे अकेली हैं और उनके प्रति विश्वासघात हुआ है। उन्हें रोज-रोज अपमानजनक गालियां सुननी पड़तीं, फिर भी वे गरिमा बनाये रखतीं और साहस भी। उनके साहस और स्वाभिमान को ठेस लगाने के लिए क्या नहीं किया गया! ९ अक्तूबर, १९७० को लोन नोल के पिट्ठुओं ने गणतंत्र-दिवस मनाया और वे मेरी अर्थी लेकर मां के घर के सामने से निकले। वे मुझे गालियां दे रहे थे—बेहूदी गालियां, जो बेहद बेशर्मी से मां को ही दी जा रही थीं। उन्होंने मेरी अर्थी को नोम पहाड़ी पर जलाया, जहां पर पवित्र मंदिर है जिसके नाम पर राजधानी का नाम नोमपेन्ह पड़ा है। युवक मां के घर के सामने मेरे विरुद्ध नारे लगाने में एक-दूसरे से होड़ लगाते, मानो जो जितनी अधिक गालियां देगा उसे उतना ही बड़ा पुरस्कार मिलेगा। और यह सच था।

वह पुरस्कार होता पेरिस में पढ़ने के लिए मार्ग-व्यय और मोटी छात्रवृत्ति। फ्रांस भी अनेक छात्रवृत्तियां देता था। जब ये छात्र फ्रांस पहुंचते हैं तो नारे लगाते हैं–'लोन नोल मुर्दाबाद', 'सिंहानुक जिंदाबाद', और उनमें से अधिकांश मेरे पास पीकिंग चले आते हैं, सैनिक प्रशिक्षण लेते हैं और हमारी सेना में भरती होकर लोन नोल के विरुद्ध लड़ते हैं।

मां हमारे नोमपेन्ह पहुंचने तक जिंदा रहीं तो (ईश्वर करे ऐसा हो, अब तो वह घड़ी बहुत ही पास आ गयी है) वे यह सुनकर हंसेंगी कि वे हमारी सेना की भरती-एजेंट रही हैं। उनमें विनोद और हास-परिहास की अद्भुत शक्ति है, विलक्षण सामर्थ्य!

'डटे रहो'—मां का संदेश

सामान्यतया जब कोई देश गणतंत्रात्मक **व्यवस्था** लागू करता है तब वह राज-**परिवार** को स्वेच्छा से देश छोड़कर जाने **देता** है। मेरी मां ने सत्ता के अपहरण के **बाद** देश छोड़कर जाने का प्रस्ताव रखा **तो** उसे अस्वीकार कर दिया गया। बाद **में** लाओस के राजपरिवार ने मां को अपनी **शाही** राजधानी लवंग प्रबंग में आतिथ्य **देने का** प्रस्ताव रखा। मां से यह अपेक्षा **तो कोई** भी नहीं कर सकता कि वे राज-**नीतिक** चालें चलेंगी, मगर लोन नोल **और** शिरीष मातक ने उसकी अनुमति **नहीं** दी। उन्होंने शर्त रखी कि मैं उनके **विरुद्ध** संघर्ष बंद कर दूं, लेकिन मैं तो अपने **देश** को अमरीकी दासता से मुक्त कराने **के** लिए लड़ रहा हूं। मां से मुझे बेहद **प्यार** है, पर कंबोडिया की भूमि, उसकी **स्वतंत्रता** और तटस्थता मेरे लिए बहुत **पवित्र** हैं। मैंने मुक्ति-संघर्ष रोकने से इनकार **कर** दिया। वे मेरी मां और नोमपेन्ह में **घिरे** मेरे बच्चों को मार डालें तो भी मैं **अपना** मार्ग नहीं छोड़ सकता। मां ने **मेरे** पास संदेश भेजा, "डटे रहो, तुम **विचलित** हो गये तो मैं तुम्हारा मुंह भी नहीं देखूंगी।" सिंहशावक की मां का संदेश !

लोन नोल की सरकार ने मुझ पर मेरी अनुपस्थिति में मुकदमे का नाटक करके मेरे लिए मृत्युदंड की घोषणा की है (पर वे तो राज्य छोड़कर ही भाग गये)। मेरा बदला शायद वे मेरी मां और मेरे बच्चों से ले रहे हैं। मुझे तो पाश्चात्य राज-परिवारों की हृदयहीनता पर तरस आता है कि उन्होंने मेरी मां के पक्ष में एक भी शब्द नहीं कहा। इतना ही क्यों, मैंने यूरोप के दो राजघरानों को इस बारे में पत्र लिखे, जिनको लिफाफों पर यह लिखकर लौटा दिया गया——भेजनेवाले को वापस।

कुछ लोगों ने अमरीकी राष्ट्रपति निक्सन से शिकायत की कि सम्राज्ञी-मां के साथ अच्छा व्यवहार नहीं हो रहा है और उन्हें देश छोड़कर जाने की अनुमति नहीं दी जा रही है। इसका उत्तर मिला, "लोन नोल सरकार प्रभुतासंपन्न है। कंबोडिया स्वतंत्र राष्ट्र है। हम कुछ नहीं कर सकते।" अमरीकी प्रेस ने निक्सन के इस वक्तव्य की निंदा की और लिखा कि क्या यह भी कोई गोपनीय रहस्य रह गया है कि लोन नोल
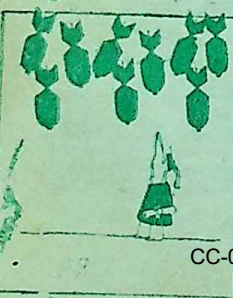
सरकार पूरी तरह अमरीकी डालरों, शस्त्रास्त्र और सैनिक सहायता पर जीवित है। पाखंड की भी कोई सीमा होती है!

अमरीका ही क्या ११ मई, १९७२ को आस्ट्रेलियाई संसद में विरोधी श्रम-दल के नेता श्री व्हिटलम ने जब अपने विदेश-मंत्री से पूछा, 'सरकार ने राजकुमार सिंहानुक की मां की मुक्ति के लिए क्या किया?' तो सरकार की ओर से बोवेन ने उत्तर दिया, 'राजकुमार सिंहानुक की मां सम्राज्ञी कुसुमाक्ष के बारे में स्थिति यह है कि आस्ट्रेलिया के लिए यह उचित नहीं है कि वह किसी दूसरे के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करे।'

मां ही नहीं बच्चे भी

मां की यातना तो असह्य है ही, मेरे बच्चों को भी कम यातनाएं नहीं दी जा रहीं। मेरी बेटी बोतुम बोफा और बेटों नरदीप और रणरिद्ध को भी पिता के अपराधों का फल भोगना पड़ा है। पहले तो उन्हें राजप्रासाद में ही बंदी बना दिया गया, बाद में उन्हें राजद्रोह का आरोप लगाकर जेल में डाल दिया गया और यह धमकी दी गयी कि उन्हें सड़कों पर ले जाया जाएगा जहां लोग उन्हें लातों और घूंसों से मार डालेंगे।

बोफा ने तो कभी राजनीति में भाग लिया ही नहीं। लेती भी क्या, गिरफ्तारी के समय वह कुल उन्नीस वर्ष की थी और तब तक तीन बच्चों की मां बन चुकी थी। उस पर भाइयों सहित यह आरोप लगाया गया कि उन्होंने १९७० में अमरीकी दूतावास पर बम फेंके थे। असली बात यह थी कि लोन नोल ने राज-परिवारों को समाप्त करने के अपने अभियान के सिल-सिले में मेरे रिश्ते के एक भाई को गोली से मरवा दिया था। वे बोफा के अत्यंत प्रिय चाचा थे। उनके दाह-संस्कार के समय बोफा पीड़ा से कराह उठी, 'यह कैसा गण-तंत्र है? जब अधिकारी ही ऐसी हत्याएं करें तब तो यह डाकुओं का गणतंत्र हुआ। कानून कहां है? इस गणतंत्र में न्याय कहां है?'

जिस राजकुमार की हत्या की गयी थी वह सेना में मेजर थे। शिरीष मातक उसका चचेरा भाई था। उसने बोफा को गिरफ्तार करके अपने पास बुलाया और उससे कहा, 'तुम मेरी भतीजी हो, दूर की भतीजी, फिर भी रिश्तेदार तो हो ही, अतः मैं तुम्हें बचाने की कोशिश
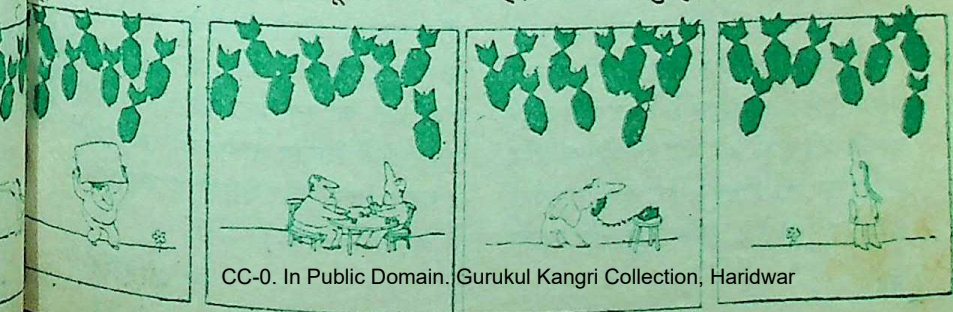
करूंगा। तुमने हमारे गणतंत्र का अपमान किया है। तुम क्षमा मांगो, अपने शब्द वापस लो।'

मेरी बेटी ने उत्तर दिया, 'नहीं मैं एक भी शब्द वापस नहीं लूंगी।' अतः उसके चाचा ने उसे सैनिक अदालत के सामने भेज दिया जो उसे मृत्यु-दंड देने वाला था, किंतु अमरीकी सलाह पर उसे छोड़ दिया गया। थोड़े दिनों बाद ही उसका पति (मेरा दामाद) वहां से भागकर स्वतंत्र क्षेत्र में चला गया।

मेरे बेटों ने १८ मार्च, १९७० को ही देश छोड़कर जाने की अनुमति मांगी थी, जिसके बदले में उन्हें जेल में ठूंस दिया गया। नरदीप पर आरोप था कि उसने शत्रु को राज्य के रहस्य बेचे हैं, उसे पांच वर्ष की सजा दी गयी। राजनीतिक दृष्टि से वह मेरे बच्चों में सबसे अधिक प्रखर और प्रबुद्ध है। वह कृषि-पंडित है। मैंने उसे अपना राजनीतिक उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था, और यही था वह प्रमुख कारण जिसने लोन नोल को उसे जेल में डालने को विवश किया।

रणरिद्ध की रिहाई की कहानी लोन नोल सरकार के चारित्रिक दिवालियेपन की जीवित मिसाल है। वह मेरी मां का लाड़ला पोता है। मेरी मां ने अपनी बहुत-सी संपत्ति रिश्वत में देकर उसे छुड़वाया। मेरे दूसरे दो बेटे राजवीवंश और क्षेमानुराग १७ सितंबर, १९७१को नोमपेन्ह से भाग निकले। राजवीवंश तो स्वतंत्र क्षेत्र में सकुशल पहुंच गया, लेकिन क्षेमानुराग के बारे में मुझे अभी तक कोई समाचार नहीं मिला है।

मेरे बेटों के मुकदमे के समय जो गवाह पेश किये गये थे, उन्होंने साहसपूर्वक कहा कि उन्हें झूठी गवाही देने के लिए सता-सताकर तैयार किया गया है।

अमरीका और उसके पिट्ठू लोन नोल तथा शिरीष मातक आदि ने मेरे और मेरे परिवार के विरुद्ध जो अपराध किये हैं वे उन अपराधों के सामने तुच्छ हैं जो उन्होंने राष्ट्र के प्रति किये हैं। इनके लिए हमारी जनता प्रतिशोध मांगेगी। मैं पाखंडी व्यक्ति नहीं हूं कि यह बात स्पष्ट करने से झिझकूं कि १८ मार्च, १९७० तथा उसके बाद की घटनाओं के लिए जिम्मेदार लोगों के साथ वही व्यवहार किया जाएगा जो देशद्रोहियों के साथ किया जाता रहा है।

(सिंहानुक की मां सम्राज्ञी कुसुमाक्ष असाध्य रूप से अस्वस्थ थीं। सिंहानुक-समर्थक सैनिकों ने नोमपेन्ह पर अधिकार करने के बाद उन्हें विमान द्वारा पीकिंग पहुंचाया, जहां उनकी चिकित्सा की गयी। उनकी एक ही साध थी कि बेटे को देखकर मरूं। अंततः वह साध पूरी हो गयी और उन्होंने अपने प्रिय बेटे की गोद में सिर रखकर तब दम तोड़ दिया जब कंबोडिया की स्वतंत्रता फिर मिल गयी। उधर द्रोही शिरीष मातक को राष्ट्रवादियों ने पकड़ लिया और उसकी गरदन तलवार से उड़ा दी।—सं.)

• दुर्गाप्रसाद श्रेष्ठ

सुब्बा बाजे को जाने कैसा-कैसा लग रहा था! भारतीय रेलवे-स्टेशन से उतरकर वे सीमा पार अपने गांव की ओर चले। छोटा इक्का 'टुंगटुंग' करता आगे बढ़ रहा था। कच्ची सड़क के गड़हे-गुड़हे में पड़कर इक्के का पहिया कभी-कभी एकाएक दचकता तो सुब्बा बाजे का अधेड़ थुलथुल शरीर इक्के के पटरे में हिचकोले खाने लगता। (सुब्बा राणा-कालीन एक अधिकृत पद का नाम, बाजे-ब्राह्मणों को किया जानेवाला संबोधन।)

"बहुत रोज बाद आये, मालिक!" मुसलमान इक्केवाला सुब्बा बाजे से बातें करता चला जा रहा था।

वह उन्हें अच्छी तरह पहचानता था। पहचाने भी क्यों न? अभी की बात है क्या! सुब्बा बाजे जब किशोर थे उसी समय से उन्हें इक्कावाला स्टेशन से गांव और गांव से स्टेशन पहुंचाया करता था। उस वक्त सुब्बा बाजे पढ़ने के लिए बनारस जाते थे। एक बार छुट्टी में लौटते वक्त उसके लिए उन्होंने एक कमीज ला दी थी। बहुत खुश हुआ था वह। "ईद के दिन पहनूंगा," उसने कहा था और उसने वह कमीज संभालकर रख दी थी।

"छुट्टी में आये हैं क्या मालिक?" इक्केवाले ने पूछा।

"हूं" . . . सुब्बा बाजे इससे अधिक नहीं बोले। वे कच्ची सड़क के दोनों ओर आंखें घुमा-घुमाकर देखने लगे।

ऊंहूं! कुछ भी नहीं बदला है। सड़क के दोनों ओर लगे पेड़ वैसे ही थे। उससे दूर फैले धान और ऊख के खेत भी वैसे ही थे।

"सलाम!" रास्ते चलते एक ग्रामीण ने सुब्बा बाजे को पहचान कर सलाम

किया।

"अबकी फसिल सब बरबाद होइ गया मालिक!" इक्केवाले ने रिपोर्ट दी, "ऐसन बाढ़ी आया कि खड़ी फसिल सब बहा लै गया!"

तब तो उनका धान का खेत भी बहा ले गया होगा! बड़ी मुश्किल से नहर के पास की जमीन हथियायी थी। नहर नजदीक होने से पानी न बरसने पर भी फसल को हानि का डर न होने के कारण उन्होंने सड़क के पासवाली जमीन को चकबंदी में दूसरों के नाम करवा

नहर के नजदीकवाली जमीन अपने नाम करवा ली थी। धान की खेती से उनकी बहुत अधिक कमाई होती थी।

रास्ते में मुखिया का घर पड़ता था। मुखिया अपने आंगन में खटिया बिछाकर लेटा हुआ था। सुब्बा बाजे को इक्के पर देखकर वह उठा और उसने वहीं से चिल्ला-

कर अभिवादन किया, "नमस्कार है, नमस्कार! कब पधारे?"

"अभी-अभी आ रहा हूं," उन्होंने कहा।

"मुखिया साहब, सलाम!" इक्के-वाले ने कहा।

इक्का आगे बढ़ा। जब तक वे अपने घर पहुंचे न पहुंचे सारे गांव में हल्ला फैल चुका था—सुब्बा बाजे आये हुए हैं!'

उस दिन, रात हो गयी थी, फिर भी दो-चार लोग मिलने आ ही गये। सबने पहले सुब्बा बाजे का कुशल-क्षेम पूछा, फिर काठमांडू की खबर, अलाने-फलाने का हाल-चाल, आदि।

दूसरे दिन सवेरे से ही मिलनेवालों का तांता लग गया। सबसे पहले मुखिया बाजे आये। मुखिया बाजे का सत्कार चाय से हुआ।

"हां तो सुब्बा बाजे, उधर का हाल सुनाइए! हुजूर का प्रमोशन होनेवाला है, सुना था। क्या हुआ?" मुखिया बाजे ने पूछा।

सुब्बा बाजे एकाएक कुछ नहीं बोले। कुछ देर बाद संयत होकर उन्होंने कहा, "किसने कहा आपसे ? हल्ला तो जाने किन-किन बातों का होता है। पर वे सब सच तो नहीं होतीं।"

"अरे मेरा मतलब यह थोड़े ही था ! मैं तो आपको अपना ही समझता हूं। इसीलिए पूछ रहा था," मुखिया बाजे ने चाय सुड़कते हुए कहा, "आपको तो शायद मालूम नहीं है, आपके पिताजी का मेरे ऊपर बहुत एहसान है। आपको तो मालूम ही है, अभी थापाजी मेरे अपने आदमी हैं। अगर उनसे कुछ काम निकालना हो तो मुझसे कहिएगा।"

"आपकी कृपा है मुखिया साव ! मुझे मालूम है, आप मुझे बचपन से ही गोद में खिलाते थे !" सुब्बा बाजे ने कहा।

"थापाजी मेरे अपने सगे मामा के सगे चचेरे भाई के लड़के हैं। मंत्री होने से पहले यहां आकर महीनों रहते थे। और तो और, जब वे लखनऊ में पढ़ते थे तब हमारे यहां से चावल जाता था। इसीलिए कह रहा था . . . मेरा कहना वे नहीं टाल सकते," मुखिया ने कहा।

हठात सुब्बा बाजे के चेहरे पर रोशनी फैल गयी। उन्हें यह बात तो मालूम ही नहीं थी ! मुखिया बाजे अगर कह दें तो शायद उन्हें कुछ मदद मिल जाए!

"अच्छा तो अभी चलूं," मुखिया ने उठते हुए कहा, "फिर आऊंगा . . . हां, आपसे एक बात कहनी थी . . . खैर, कल-परसों कर लूंगा !" जब उन्होंने देखा कि दरवाजे पर कोई दूसरा मिलनेवाला आ गया है तो चुपचाप चल दिये।

"सलाम मालिक !" आनेवाले ने कहा।

"अरे रामखेलावन ! क्या हाल है भई ?" उन्होंने पूछा।

रामखेलावन गांव का बनिया है। गांव भर के लिए आवश्यक चीजें उसके यहां मिलती हैं। हालांकि अब औरों ने भी दूकानें खोल ली हैं, लेकिन रामखेलावन को मात करने की क्षमता उनमें से किसी में नहीं है।

"का बतायें मालिक ! ए बार हमार लड़कवा मइट्रिक में पास हो गया। सोचत रहे, काठमांडू में भरती कराय दें। अब आपै कौनौ इंतजाम करायें सकला !" रामखेलावन की बात सुनकर सुब्बा बाजे एक बार फिर नहीं बोल सके।

"देखना पड़ेगा, अब तो यहां भी कठिन हो गया है। अच्छे नंबर में पास न होने पर वहां भी भर्ती करना कहां आसान है ! पढ़ाई तो यहां भी वही होती है, अपने से मेहनत करना चाहिए !" सुब्बा बाजे ने टालना चाहा।

"लेकिन ई तो सेकिन में पास भवा है।" रामखेलावन ने स्पष्टीकरण दिया। साथ में आया उसका लड़का यह सुनकर मुसकराया।

"अच्छा-अच्छा, देखूंगा !" सुब्बा बाजे

ने इतना ही कहा।

रामखेलावन सलाम करता हुआ गया। उसका लड़का भी 'नमस्कार सर' कहता हुआ बाहर निकला।

*

दस बजे पंडितजी 'रुद्री' पाठ समाप्त करके आये। सुब्बा बाजे की श्रीमती-जी ने 'रुद्री' पाठ लगवाया था। नजदीक का ही शिवमंदिर गांववालों का तीर्थ-स्थल था।

"ओम शांति, विष्णो शांति . . ." कहकर सुब्बा बाजे के सिर पर जल छिड़-कने के बाद उन्हें जल पीने को दिया और एक बेल-पत्र उनके हाथ में रखने के बाद चंदन का टीका लगा दिया।

"बैठिए न गुरु, चाय पीकर जाइ-एगा!" सुब्बा बाजे ने कहा।

"बहुत अच्छा, भगवन! वैसे तो सुब्विनी बज्यै ने भोजन ही करके जाने को कहा था . . . बस एक बार घर पहुंचकर आना चाहता था . . ." पंडितजी ने बैठते हुए कहा।

"सिगरेट पीजिए," सुब्बा बाजे ने सिगरेट का पैकेट बढ़ाते हुए कहा।

पंडितजी ने सिगरेट सुलगाकर लंबा सुट्टा मारा और कहा, "वाह! क्या बढ़िया स्वाद है इस सिगरेट का! हमारे ही यहां की बनी है?"

"हां गुरु, जनकपुर सिगरेट–फैक्ट्री की बनी है," सुब्बा बाजे ने उत्तर दिया।

"वाह! क्या बात है! राजा का

प्रताप! . . . पहले सूई भी नहीं बनती थी हमारे यहां, अब सिगरेट बनने लगी। वाह! क्या बात है!" पंडितजी मस्त होकर सिगरेट फूंकने लगे।

"जनकपुर में सिगरेट बनने लगी है, यह बात गुरु को नहीं मालूम थी क्या?" सुब्बा बाजे ने कहा।

"क्या मालूम होता, भगवन! सिग-रेट पीने की आदत हो तब तो! यह तो आप-जैसे लोग पिला देते हैं तो पी लेता हूं।" पंडितजी ने कहा। राख लंबी होकर गिरने ही वाली थी कि सुब्बा बाजे ने ऐशट्रे उनके सामने कर दी।

"हुजूर से एक बात की बिनती करनी थी . . . काठमांडू ही आनेवाला था . . . हुजूर की सवारी यहीं हो गयी

. . . गरीब का पैसा बच गया . . . मेरा लड़का उम्रदार हो गया। इस बार किसी तरह से प्रथमा भी पास हो गया। ... उधर ही हुजूर की तरफ कोई जागीर की व्यवस्था हो जाती . . . तो गरीब का उद्धार हो जाता . . . जय-जय-कार करूंगा !"

पंडितजी की बात सुनकर सुब्बा बाजे कुछ देर सकपके से रह गये।

"आजकल तो वहां भी मुश्किल हो गया है गुरु ! पहले की तरह नहीं है। . . . बिना इम्तहान दिये जागीर नहीं मिलती . . . और फिर संस्कृत पढ़े-लिखों को तो . . ." उन्होंने अपना वाक्य पूरा नहीं किया। सोचा, पंडितजी इतने में ही समझ जाएंगे।

"हमको यह सब क्या मालूम, भगवन ! ... लड़का आपके पैरों पर छोड़ दिया है . . . जो चाहे सो करें !" पंडितजी कम नहीं थे !

"चाय पियें, गुरु !" सुब्बिनी बज्यै चाय ले आयी थी। बातचीत में रह गयी।

स्टील के गिलास में से 'सुड़प-सुड़प' करके चाय पीकर वे उठ खड़े हुए और बोले, "अच्छा तो भगवन, मैं अभी बिदा होता हूं . . . . थोड़ी देर में हाजिर होऊंगा . . . मेरी बिनती पर विचार कीजिएगा . . ."

"अच्छा गुरु, देखूंगा . . ." सुब्बा बाजे ने कहा।

"क्या कह रहे थे ?" सुब्बिनी बज्यै ने पूछा।

"तुम्हें क्या मतलब ?" सुब्बा बाजे एकाएक खीझकर बोले। न बोलना ही उचित जानकर सुब्बिनी बज्यै चुपचाप रसोई की ओर चल दीं।

★

मिलनेवालों की भीड़ लगी ही रहती थी। कोई किसी काम से आता था, कोई किसी काम से ! सुब्बा बाजे गृह मंत्रालय में थे इसलिए खास करके सिफारिशी लोगों की संख्या ज्यादा होती थी।

सुब्बा बाजे किसी से भी स्पष्ट कुछ नहीं कहते थे। गोल-मोल बातें करके रह जाते थे।

दिन भर तो मजे में बीत जाता था, लेकिन रात को बिछौने पर लेटने के बाद उनकी आंखों से नींद भाग जाती थी। पत्नी पैर दबाने आती थी, लेकिन वे उसे वापस भेज देते थे। सुब्बिनी बज्यै को पति की वेदना मालूम थी इसलिए वे चुपचाप चली जाती थीं वरना मुंह भर का जवाब देना उन्हें भी आता था।

'अब चिंता करके क्या होगा ?.. जो होना था सो तो हो ही गया !' वे कहना चाहती थीं लेकिन नहीं कहती थीं।

वह सम्मान, वह मर्यादा, वह धाक !

विजयादशमी के दिन 'काली-सफेद' औपचारिक पोशाक में गले में 'गो. द. बा.' बक्सा लटकाये शान के साथ राज-दरबार की ओर जाते वक्त रास्ते में जान-पहचान के लोग नमस्कार करके जब

पूछते कि 'कहां महाराज से टीका लग-वाने?' तो सुब्बा बाजे गमककर सिर भर हिला देते थे।

सिंह दरबार के द्वार पर द्वारपाल उन्हें देखकर सलाम करता था। सचिव के विशेष कृपापात्र होने के कारण कार्यालय में भी उनकी खूब कदर थी। वे बराबर स्थानीय बाजार में घी आदि खरीदकर अफसरों को यह कहकर चढ़ाते कि 'अभी-अभी गांव से आ पहुंचा है'।

होने को तो उनके पिता भी राणा-काल में 'राइटर' थे। उसी समय उन्होंने गांव की जायदाद जोड़ी थी। उसे और बढ़ाने का कार्य सुब्बा बाजे ने किया था। 'गृह' में होने के कारण सभी विभाग-कार्यालयों से उनका संपर्क होता था।

दो-चार रोज तो उनके यहां आदमी खूब इकट्ठे हुए। फिर कम होते गये और कुछ दिनों बाद कोई भी नहीं आता था।

एक दिन मुखिया से भेंट हो गयी।

"अरे सुब्बा बाजे! क्या बात है भाई, इस बार तो खूब टिके यहां!" मुखिया ने कहा तो जैसे सुब्बा बाजे के मुंह पर किसी ने रोशनाई पोत दी हो।

"हां . . . छुट्टियां बहुत दिनों से संचित हो रही थीं...सोचा क्यों 'लैप्स'' कराऊं सो..." सुब्बा बाजे ने हकलाते हुए कहा।

"लेकिन आप तो धान बेंचने के 'टाइम' में भी नहीं आनेवाले जीव! अब..." मुखिया अपना वाक्य पूरा नहीं कर पाये।

"अभी चलूं...जरा जल्दी है, सी. डी. ओ. से कुछ काम है," सुब्बा बाजे ने कहा।

"सी. डी. ओ. साहब जिले में कहां हैं? वे तो सदर मुकाम गये हुए हैं... अंचलाधीश साहब ने बुलाया था!" मुखिया ने कहा तो सुब्बा बाजे जैसे आस-मान से गिरे।

"हां हां....सदर मुकाम ही जा रहा हूं ... " उन्होंने जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाते हुए कहा।

"मेरा कहा भूलिएगा नहीं...थापाजी से कुछ कहना हो तो!" मुखिया ने जोर से कहा।

थोड़ी दूर जाकर सुब्बा बाजे रुके। अब जाएं तो कहां? उन्हें चारों तरफ से शून्यता घेर रही थी। लगता था दिन में ही सियार बोल रहे हैं।

यदि वे सदर मुकाम नहीं जाते हैं तो मुखिया क्या कहेगा? ... लेकिन सदर मुकाम में भी तो 'सर्कुलर' आ गया होगा अब तक ... अब उन्हें पूछनेवाला कौन होगा? सिंदूर मिटी नारी की तरह हो गये थे वे।

आज सवेरे जब आईना देखा था तब उन्हें अपना चेहरा कितना कांतिहीन लगा था ... अचानक उन्हें चक्कर आ गया... वे वहीं एक पेड़ के नीचे निढाल-से बैठ गये।

—२५/९७ चौखंभा, वाराणसी-१

उस समय लंका निश्चित रूप से कहां बसी हुई थी और कैसी थी, इसका किसी को ध्यान न था। इस काल में ही रामायण में लौह शलाकाओं का प्रवेश हुआ लगता है। धनुष, बाण (उसकी नोक), तलवार लोहे के थे। इतना ही नहीं, आठ पहियोंवाली मंजूषा, जिसमें रुद्र का धनुष रखा गया था, वह भी लोहे की थी। मूल संस्कृत में अयस शब्द व्यवहृत है और अयस का अर्थ लोहा ही होता है। जब राम, सीता और लक्ष्मण अयोध्या छोड़कर वन में जाते हैं, तब प्रजाजनों में से कोई कहता है कि 'राम की मां (कैकेयी) का हृदय अयस का है'—

—**आययं हृदय नूनं राममातरम् संशयम्**
(अयोध्याकांड)।

अयस का अर्थ लोहा ही हो सकता है, न कि तांबा। आज भी हम कहते हैं इसका हृदय लोहे या पत्थर-जैसा है। तांबा तो मृदु (नरम) होता है। पहले क्रम के अंतर्गत हमने अयोध्या का अध्ययन किया था। अब दूसरे क्रम का समय संपूर्णतया निश्चित नहीं हो सकता। फिर भी इतना तो हम लगभग कह ही सकते हैं कि यह क्रम समस्त रामायण से संबद्ध है। इस क्रम के संतोषप्रद प्रमाण ये हैं—

१. सीता का पहना हुआ कौशेय या अधोवस्त्र (चीनी साड़ी)।

२. सीता ने कालिंदी को सुरा के १०० कुंभ चढ़ाने की मनौती मानी, उसका उल्लेख।

३. भारद्वाज आश्रम में भरत के सैनिकों द्वारा यथेच्छ मांस, मदिरा और मदिराक्षियों का उपयोग।

४. रावण के अंकपुर में ऐसे ही दृश्यों का वर्णन।

५. राम नामांकित अंगूठी।

रामायण
पुरातत्त्व की दृष्टि में

• **हंसमुख धी. सांकलिया**

ई. पू. १०० से ई. सन १०० तक रोम से एक विशिष्ट प्रकार के कुंभ (ऐंफोरा) में शराब और सुंदर स्त्रियों का आयात भारत में होता था। इनका उपयोग राजाओं के अंतःपुर में होता था। ऐसी जानकारी उस समय के ग्रीक-रोमन यात्रियों और लेखकों के वृतांतों से मिलती है। द्वारिका, सोमनाथ, देव की मोरी, नेवासा, कोल्हापुर, नागार्जुन कोंडा (आंध्र) और उत्तरी तक्षशिला की खुदाई में इस बात के प्रमाण

मिले हैं। समस्त भारत में रोम पश्चिमी यूरोप तथा भूमध्यसागर के किनारे स्थित देशों में बनी शराब का उपयोग होता था। इसी का प्रतिबिंब हमारे साहित्य और शिल्प-चित्रों में मिलता है।

विदेशी शराब की उपलब्धि सहज नहीं थी, इसीलिए सीता ने कालिंदी को सुरा के १०० कुंभ चढ़ाने की मनौती मानी थी।

कौशेय-वस्त्र-कोयों (रेशम के कीड़ों) से चीन में बनाया जाता था। इसे चीनांशुक भी कहा जाता था। यह रेशम भारत में उत्तर से स्थल-मार्ग से आता था और दक्षिण में समुद्री मार्ग से रोम जाता था। उत्तर का रेशम पथ या मार्ग की संज्ञा से साहित्य में प्रख्यात है।

हाथ में पहनने की नामांकित अंगूठियां भी इसी समय में ही भारत में यूनानी राजाओं ने प्रचलित कीं। सर्वप्रथम नामांकित अंगूठी तक्षशिला तथा भारत के उत्तरी-पश्चिमी सीमांत प्रदेशों में मिली है।

ई. सन ४००-५०० में वर्ष को महीनों, सप्ताहों और दिनों में बांटने की रीति सबसे पहली बार जानने को मिलती है। रामायण की कई प्रतियों में उल्लेख है कि राम का जन्म चैत्र शुक्ला नवमी के दिन हुआ था; परंतु इस आशय के श्लोक बड़ौदा से प्रकाशित आवृत्ति में से निकाल दिये गये हैं, क्योंकि इस तरह के विभाजन का रिवाज समस्त भारत में प्रचलित न था। वैदिक काल से वर्ष को ऋतुओं, ऋतुओं को दो पक्षों और पक्षों को तिथियों में विभाजित करने का रिवाज था। इसमें दिनों का समावेश रोमन जगत के साथ व्यापारिक और सांस्कृतिक संबंध बढ़ने पर भारत में होने लगा।

इसी समय में राम के विष्णु और पुरुषोत्तम रूप में तथा कृष्ण के साथ तुलना करने के श्लोक और लंका तथा किष्किंधा के अति काल्पनिक वर्णन किष्किंधा, सुंदर और युद्धकांड में जोड़े गये। ऐसी विकसित कल्पनाओं से भरी रामायण संपूर्ण भारत और भारत से बाहर जावा, सुमात्रा, कंबोडिया में फैली। यह सब किस तरह और किन परिस्थितियों तथा कालों में हुआ यह हम भारत और भारत से बाहर के मंदिरों के शिल्पों के गहन अध्ययन से निश्चित कर सकते हैं।

सुप्रसिद्ध पुरातत्त्वविद डॉ. सांकलिया ने रामायण में वर्णित स्थानों पात्रों, रीति-रिवाजों आदि का पुरातत्त्व की दृष्टि से विश्लेषण कर जो निष्कर्ष निकाले हैं वे अनेक प्रचलित मान्यताओं से भिन्न होते हुए भी शोध की काफी गुंजाइश छोड़ते हैं। इस अंतिम अंश में उन्होंने रामायण के आदर्शवाद एवं चिरस्मरणीयता को स्वीकार किया है।

इस तरह वाल्मीकि रामायण बहुत प्राचीन नहीं, फिर भी इतना तो स्वीकारना ही पड़ता है कि वाल्मीकि–रामायण का अधिकांश भाग चौथी-पांचवीं शताब्दी में उत्तर और मध्य भारत में जाना-पहचाना था। तभी तो मध्यप्रदेश में नानचा-कुठार–जैसे स्थानों पर सीता के समक्ष भिक्षार्थी रावण और राम-लक्ष्मण के समक्ष याचना करती शूर्पणखा-जैसे प्रसंग मंदिरों की दीवारों पर नक्काशे या चित्रित किये गये हैं। तो भी उस समय राम को एक देव के रूप में नहीं पूजा जाता था, क्योंकि राम की मूर्तिवाला तब का एक भी मंदिर प्राप्त नहीं है।

एक अन्य पुरातत्त्वीय अध्ययन इस कथन की पुष्टि करता है। ताम्र पत्रों और शिलालेखों में राम उपपदवाले स्थलों और व्यक्तियों के नाम बहुत कम मिलते हैं। ठेठ दक्षिण में रामेश्वरम्, रामनाथपुर आदि नाम दसवीं शताब्दी से पहले के नहीं हैं। इसी तरह राम की मूर्तिवाले मंदिर भी इस समय से पूर्व के प्राप्त नहीं होते। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं, क्योंकि रामायण की प्राचीनतम प्रति ई. सन १०२० की है और इस समय तक आद्य-रामायण में परिवर्धन होता गया। मेरी राय में सुंदर और युद्धकांड में ऊंचे गोपुरोंवाले प्रासादों या भवनों के जो वर्णन हैं, वे सातवीं शताब्दी के बाद के होने चाहिए। क्योंकि अभी तक हमारे समक्ष इससे अधिक प्राचीन गोपुरवाले मंदिर नहीं है।

नवीं-दसवीं शताब्दी के बाद ही ऐसी मान्यता स्थापित हुई कि राम ने लंका से लौटते समय रामेश्वरम् के निकट शिव की पूजा की और मंदिर बनवाया। संपादित आवृत्ति में इससे संबद्ध श्लोक निकाल दिये गये हैं, क्योंकि सभी प्रतियों में ये श्लोक नहीं हैं। गोपुरों से संबद्ध श्लोक निकाले नहीं गये हैं।

'रघुवंश' में राम के लंका से सीधे पुष्पक विमान में अयोध्या लौटने का वर्णन किया गया है।

संक्षेप में, पुरातत्त्व और इतर-शास्त्रों की सहायता से रामायण का समीक्षात्मक दृष्टि से अध्ययन करने पर निम्न-लिखित तथ्य सामने आते हैं—

१. रामायण में उल्लिखित अयोध्या, कौशांबी, मिथिला आदि नगर कम से कम ३,००० वर्ष प्राचीन हैं।

२. हमारे पास ऐसा कोई प्रमाण नहीं है कि उस समय ये नगर इसी नाम से जाने जाते थे या नहीं। संभव है कि इन नगरों के राजा उन राजवंशों के हों जो पुराणों में दिये गये है। इस प्रश्न पर निर्विवाद रूप से तभी कहा जा सकता है जब कि इन स्थलों पर बड़े पैमाने पर खुदाई हो।

३. रामकथा का मूल इसी समय का होना चाहिए।

४. रावण काले रंग का, दो हाथ और एक ही सिरवाला मानव था।

वह दो हाथों में उठाकर सीता का अपहरण कर ले गया था, न कि रथ में बैठाकर या आकाश में उड़कर।

५. रावण और उसके रिश्तेदार गोंड जाति के होने चाहिए।

६. लंका विंध्याचल में छोटा नागपुर, अमरकंटक या जबलपुर के पास थी और यह सारा प्रदेश अयोध्या के शासक इक्ष्वाकुओं के अधीन था।

७. राम, लक्ष्मण और रावण ने युद्ध में प्रमुखतया धनुष-बाण का उपयोग किया था, जबकि वानर पत्थर और शाल-वृक्षों से लड़े थे।

८. रामायण में जिस दंडकारण्य का वर्णन है वह विंध्याचल प्रदेश में है।

९. मूल रामायण के सभी प्रसंग अति प्राकृतिक रूप में, एक संगठित भौगोलिक वातावरण में घटित हुए दिखाये गये हैं। इनमें से कोई भी व्यक्ति, स्थल या प्रसंग अप्राकृतिक और काल्पनिक नहीं लगता।

मूल रामायण की कथा को वाल्मीकि ने, जो पहले एक शिकारी थे, काव्य का रूप दिया। संभव है कि यह सर्वप्रथम काव्य हो और इसी से रामायण आद्य-काव्य के रूप में विख्यात हुई हो। जो भी हो काव्य होने के फलस्वरूप यह भारत के भिन्न-भिन्न भागों में और विदेशों में गायी-पढ़ी जाने लगी। बाद के प्रसंग इसमें जुड़ते गये। सत्य का स्थान कल्पना लेने लगी। धीरे-धीरे रामायण एक ऐति-हासिक घटना के बजाय काल्पनिक होती
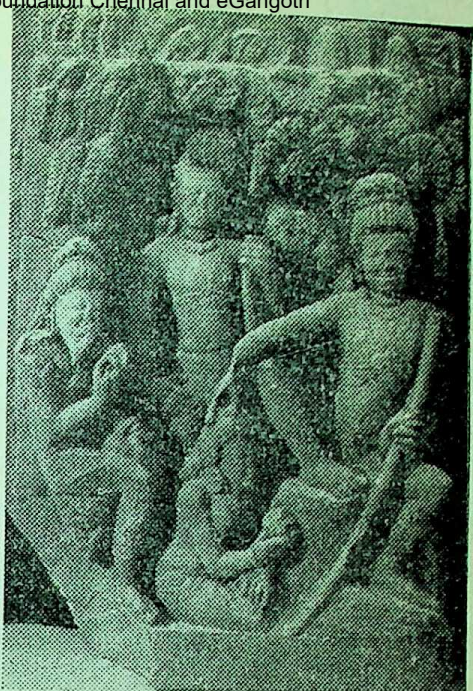
अहल्या-उद्धार

गयी। ऐसी कल्पनाओं से भरी रामायण ने भारत के और विदेशों के लोगों के सभी स्तरों के व्यक्तियों-कवियों, कथाकारों, साधु-संतों, लेखकों और कलाकारों के हृदय में स्थान प्राप्त किया। श्रीअरविंद के कथनानुसार रामायण भारत की आत्मा में गहरी पैठ गयी। वाल्मीकि ने जो पत्नीव्रत, पति-प्रेम, भ्रातृवत्सलता और सेवाभाव—हमारे समक्ष प्रस्तुत किये, वे आदर्श एकदीप-स्तंभ की भांति हमारा मार्गदर्शन करते रहे हैं, यद्यपि इन दिनों ये आदर्श व्यक्ति-स्वातंत्र्य के नाम पर लुप्त होने लगे हैं। (—अनु. : जेठमल)

प्रभु की लीला अपरंपार

अपने राम सहज-विश्वासी जीव हैं । लोग लाख कहें कि यह वैज्ञानिक युग है, इसमें चमत्कार नहीं होते, पर हम नहीं मानते । मन में श्रद्धा हो तो भगवान अब भी चमत्कार दिखाते हैं और भक्तों को दिखायी देते हैं ।

विश्वास न हो तो अप्रैल मास की 'कल्पना' उठाइए । उसमें 'विश्व हिंदी सम्मेलन' पर बहुत-सी सामग्री छपी है, जिसमें वरिष्ठ आलोचक, कथाकार, अध्यापक डॉ. विश्वंभरनाथ उपाध्याय की भी एक विस्तृत रिपोर्ट है। उसमें उन्होंने युवा - गोष्ठी की घटना का भी आंखोंदेखा वर्णन दिया है । खरा, सवा सोलह आने ! लिखते हैं—'उस समय मैंने देखा कि कमलेश्वर के 'कमाल' से अमृतराय भी मंच पर आ गये थे और पूंजी प्रतिष्ठान के पत्र 'दिनमान' के सर्वेश्वरदयाल सक्सेना भी मंच पर डटे हुए थे।' अब बताइए, है न चमत्कार ? सारी दिल्ली जानती है कि सर्वेश्वर नागपुर गये ही नहीं, वहां के हजारों डेलीगेटों में से किसी ने उन्हें नागपुर के ५०० मील इधर-उधर कहीं नहीं देखा, लेकिन हमारे डॉ. विश्वंभरजी को मंच पर वे सशरीर दिखायी दिये ।

अपने राम भी चकित थे कि 'विश्व हिंदी सम्मेलन' के संदर्भ में बार-बार श्री अनंतगोपाल शेवड़े 'प्रभु की कृपा', 'प्रभु की कृपा' क्यों रट रहे हैं ? हिंदी से इसका क्या ताल्लुक ? अब भेद खुल गया । वे भी सर्वेश्वर को आर्तभाव से पुकार रहे थे। पर उन्हें दर्शन नहीं हुए, क्योंकि वे सरकारी आदमी बन गये थे। विश्वंभरजी को हो गये, क्योंकि वे वाम-भाव से भक्ति में लीन थे ।

यह वाम-भाव क्या है ? वाम यानी उलटा भाव । वाल्मीकि इस वाम-भाव के सबसे प्रथम प्रवक्ता थे । 'राम' जपना था, 'मरा' मरा' जपते थे । विश्वंभरजी भी पूंजी प्रतिष्ठानवालों को 'राम-राम' न कहकर 'मरा-मरा' जपते हैं । प्रमाण

है 'पहल' का पांचवां अंक । पत्र-प्रतिक्रियाओं में विश्वंभरजी का जोरदार पत्र छपा है । लिखते हैं : "असलियत यह है कि क्रांतिकारी पत्रिकाओं में अब इन व्यवस्था के नौकर लेखकों की भूमिका पर प्रत्येक अंक में लिखा जाना चाहिए, बिना इसके भाववाचक संज्ञाओं पर चोट से कोई बात नहीं बनती । प्रत्येक अंक में कमलेश्वर, भारती, सर्वेश्वर, (रघुवीर) सहाय, श्याममनोहर जोशी वगैरा के कारनामों पर लिखना होगा तब इनकी आंखें खुलेंगी ।" देखिए कैसे प्रेम से पंचायतन का ध्यान करते हैं (वाम-भाव से) । 'राम' का नाम उलटकर 'मरा' और मनोहर श्याम का नाम उलटकर श्याम मनोहर । लेकिन 'श्याममनोहर' और 'सहाय रघुवीर' में इतना दम ही नहीं कि नागपुर में दर्शन दें । झूठे अवतार हैं । सर्वेश्वर को देखिए प्रकट हो गये । अश्रद्धावान कहेंगे कि वे वहां थे ही नहीं, यह केवल कल्पना है । हो तो हो, अपने राम विश्वासी जीव हैं, भगवान की लीला पर अविश्वास करने का पाप मोल नहीं लेते । सब सच है । सर्वेश्वर प्रकटें, विश्वंभर देखें, जो ध्यावे फल पावे ...

और सर्वेश्वर की लीला का कोई पार पा सका है ? इधर उन्होंने नया चमत्कार किया दिल्ली में । एक हैं अज्ञेय । सर्वेश्वर, साही, भारती, इन सब परिमलियों के आदि गुरु । लीला तो लीला ! कैशोर्य से अब तक भाई (अज्ञेय) का झोला उठाने से लेकर उनका झंडा उठाने तक की लीला सर्वेश्वर करते रहे । संसार मोह में पड़ा यह समझता रहा कि अज्ञेय बहुत बड़े हैं । लेकिन बड़ा कौन था—विश्वामित्र या राम-लछमन ? सो जब अज्ञेयजी सर श्रीराम की स्मृति में आयोजित कवि-सम्मेलन के अध्यक्ष बने तो सर्वेश्वरजी ने अपना विराट रूप दिखा दिया । स्तंभ फाड़कर प्रकट हो गये और नरसिंह की तरह 'दिनमान' के स्तंभ में गरज उठे । कसम से उनकी गर्जना सुनकर मुझ पापी जीव का सर्वांग अब तक थर-थर कांप रहा है । और अज्ञेयजी हैं कि अविचलित ! उनसे सुनते हैं रमानाथ अवस्थी ने कहा, "आपने पढ़ा, सर्वेश्वर ने लिखा है कि आपका पतन हो गया ।" अज्ञेय बोले, "अच्छा, कहां लिखा है, मैंने तो नहीं पढ़ा ।" (शोधकर्ता नोट करें । इससे सिद्ध होता है कि अज्ञेयजी भी 'दिनमान' नहीं पढ़ते !)

इससे एक बात और सिद्ध होती है । जीवन भर सरकारी नौकरी करने से पतन नहीं होता, एक पूंजी प्रतिष्ठान द्वारा निकाले गये पत्र में अपनी मौलिक और अनूदित कविताएं धारोधार छपवाने से पतन नहीं होता, अनेक छोटे-बड़े-मझोले कवि-सम्मेलनों में शरीक होने से पतन नहीं होता, लेकिन जहां रमानाथ अवस्थी, इन्दु जैन, कन्हैयालाल नन्दन आदि कविता पढ़ें वहां अज्ञेय के अध्यक्ष होने से अध्यक्ष का पतन हो जाता है।

अपने राम तो निश्चिंत हैं। कविताई-उविताई करते नहीं। पतन होगा तो किसी रुचिकर माध्यम से होगा। लेकिन यह जानने का बड़ा कुतूहल है कि इधर किसका-किसका पतन हुआ है? जैसे सरकारी गजट में सूचियां छपती हैं वैसे ही क्यों न 'दिनमान' में हर हफ्ते एक सूची छपा करे उत्थान और पतन की!

कुछ लोग कहते हैं कि अपने कुछ नये-नये भक्तों को सुख देने के लिए सर्वेश्वर वाम-लीला कर रहे हैं। उधर विश्वंभरजी उन्हें पूंजी प्रतिष्ठान का अंग बताते हैं, क्योंकि वे 'दिनमान' में काम करते हैं। तो भाई, हो सकता है एक उनकी काम-लीला हो और दूसरी उनकी वाम-लीला। किसने भेद तिहारा पाया, किसने जानी तेरी माया, तेरी लीला अपरंपार, पतन का पता बतानेवाले! **—अश्वमेध**

पुनश्च : अपने राम भी कम नहीं। कभी-कभी लीला दिखा देते हैं। पर अपनी लीला की 'ट्रिक' छिपाते नहीं। विश्वंभर डॉक्टर भइया से हम अकसर गाली भी खाते हैं, प्रेम भी पाते हैं, इसलिए आपको बता दें कि उन्होंने 'शायद' निराधार बात नहीं कही। मंच पर एक सज्जन विराजते थे, जिनके रूप-रंग, नैन-नक्श सर्वेश्वर से कुछ मिलते-जुलते थे। वे थे फिजी की संसद में विरोधी पक्ष के नेता, युवा-गोष्ठी के अध्यक्ष विवेकानंद शर्मा। कहीं ऐसा तो नहीं कि उन्हें वे 'दिनमान' के सर्वेश्वर समझ बैठे? ●

बड़ी पत्रिकाओं के व्यवसायीकरण के साथ साहित्यिक मूल्यों का पतन स्वाभाविक हो गया। इसी स्थिति में लघु पत्रिकाओं का प्रकाशन आरंभ हुआ। आज देश में हजारों लघु पत्रिकाएं निकल रही हैं। किसी के कुछ अंक निकलते हैं, फिर बंद हो जाती है। कुछ थोड़े दिन तक चलती हैं, लेकिन लड़खड़ाकर दम तोड़ देती हैं। इसका मुख्य कारण आर्थिक विपन्नता रही है। लघु पत्रिकाओं तथा बड़ी पत्रिकाओं से विरोध किसी छिछले स्तर पर किया जाना उचित नहीं है। विरोध केवल नीतियों व मूल्यों का हो सकता है। एक बड़ी पत्रिका पूंजीवादी प्रभाव से स्वयं को मुक्त रखने में असमर्थ हो, साहित्यिक स्तरहीनता की हद तक भी समझौता कर सकती है, लेकिन लघु पत्रिकाओं का, भले उनके कुछ अंक ही निकलें, अपने मूल्यों के बदले कोई समझौता संभव नहीं हो सकता। वास्तव में साहित्यिक क्षेत्र में आज जो लोग प्रथम या उच्च पंक्ति के साहित्यकार बने बैठे हैं, वे कभी लघु पत्रिकाओं से जुड़े थे।

नयी पीढ़ी के स्थापित होने में अनवरत संघर्ष आवश्यक है जबकि वह पुरानी चीजों को देखकर यह अनुभव करता है कि लिखना उतना आवश्यक नहीं है जितना कि पत्रिका निकालना और इसलिए हर शहर, हर गांव, हर कस्बे से अनेक अर्थहीन लघु पत्रिकाएं निकल रही हैं। उन्होंने सिर्फ इस बात को ध्यान में रखा कि स्थापित

होने के लिए पत्रिकाओं से संबद्ध रहना आवश्यक है और उसके साथ ही रचनाशीलता व साहित्यिक माप-दंडों को वह नकार गया, परिणामस्वरूप कुछ एक पत्रिकाओं को छोड़कर शेष ९५ प्रतिशत लघु पत्रिकाएं अपनी अर्थहीनता के साथ उजागर हुईं।

बावजूद इसके आज भी लघु पत्रिकाएं अपने अस्तित्व को कायम रखते हुए प्रकाशित हो रही हैं क्योंकि बड़ी पत्रिकाओं

पत्रिका, जो कोई संपादक स्वयं गुटबंदी और बड़ी पत्रिका के बड़े साधनों का उपयोग अपने को स्थापित करने तथा अपनी स्थिति का अनुचित लाभ लेकर साहित्य का नियंता बनने का ढोंग करता हो तो उसका विरोध अनिवार्य हो जाता है। लघु पत्रिकाओं ने प्रायः ऐसे ही लोगों के विरुद्ध मोर्चा लेकर साहित्यिक संस्कारों की रक्षा की है। अधिकांश लघु पत्रिकाओं के संबंध में यह कहा जा सकता है कि

छोटी पत्रिकाएं बड़ी पत्रिकाएं और साहित्यिक संस्कार

लघु पत्रिकाओं के संपादकों की प्रतिक्रियाएं

के बढ़ते हुए दबाव के साथ ही साहित्यिक मूल्यों की स्थापना आदि में उनका दायित्व बढ़ जाता है। —**गिरिजाशंकर अग्रवाल**
सम्पादक **'वर्तमान', ५२, विवेकानंद नगर, रायपुर, (म. प्र.)**

साहित्यिक संस्कारों की रक्षा

डॉ. भारती द्वारा उठाये गये तर्क तथा छोटी-बड़ी पत्रिकाओं के संदर्भ में व्यक्त उनके विचारों से मैं पूर्णतः सहमत हूं। जैसा उन्होंने कहा है—'छोटी बड़ी पत्रिकाओं में परस्पर विरोध अनिवार्य नहीं है। वस्तुतः विरोध उनके साहित्यिक संस्कार को लेकर है—होना भी चाहिए।'

यहां एक प्रश्न उठता है कि यदि बड़ी पत्रिका, भारती के शब्दों में विविधलक्षी

पिछले दो दशक का साहित्य का महत्त्वपूर्ण कार्य इन्हीं के द्वारा संपन्न हुआ है और साधनों की चपेट से साहित्यिक भटकन को प्रभावपूर्ण ढंग से रोकने का सार्थक प्रयत्न हुआ है। —**नरेशचंद्र चतुर्वेदी**
संपादक—'निरंतर', १११/७८, अशोक नगर, कानपुर (उ. प्र.)

आम आदमी की बात

लघु एवं बड़ी पत्रिकाओं के अस्तित्व का प्रश्न जब तब मेरी समझ में आया है, प्रश्नों की एक लंबी कतार सामने आ खड़ी होती है। सर्वप्रथम लघु या बड़ी कहलाने वाली पत्रिकाओं के साहित्यिक मूल्यांकन की आवश्यकता है। पत्रिका आकार-प्रकार में छोटी है इसलिए वह छोटी पत्रिका है

और आकार-प्रकार में बड़ी है इसलिए वह बड़ी पत्रिका है ऐसा कहना या मानना सरासर गलत है। मेरी दृष्टि में लघु और बड़ी पत्रिका की संज्ञा पत्रिका की साहित्यिक सार्थकता पर होनी चाहिए ।

हम या आप जिस आम-आदमी की बात कहना चाहते हैं उसके यथार्थ को कह सकने में कौन सक्षम है? केवल बौद्धिक मनोरंजन या मानसिक विलासिता का साहित्य प्रकाशित करने मात्र से उसे हम बड़ा नहीं कह सकते। हर साहित्यकार चाहता है कि मेरा लिखा हुआ साहित्य प्रकाशित हो और उसका समुचित प्रतिफल उसे एवं उसके समाज व देश को मिले, किंतु यह प्रतिफल अपने आपको बड़ी कहलाने वाली पत्रिकाओं के कारण नहीं मिल पा रहा है क्योंकि वे साहित्यिक कम व्यावसायिक ज्यादा हैं ।

दूसरी ओर लघु पत्रिकाएं महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। नये-नये सशक्त हस्ताक्षरों का अच्छा, ठोस साहित्य प्रकाशित कर जन-साधारण तक उस वास्तविकता को पहुंचाने का कार्य करती हैं। यह प्रश्न और है कि ये आर्थिक कठिनाइयों के कारण कम पृष्ठ व निश्चित प्रतियों में प्रकाशित हो रही हैं। इनका मुख्य उद्देश्य साहित्यिक मठाधीशी को दूर कर विशुद्ध, ठोस, सरल, गंभीर आम आदमी का साहित्य आम आदमी के पास तक पहुंचाकर उसे जागृत करना है एवं साहित्य-जगत के विदूषक जिन्हें व्यावसायिक पत्रिकाएं सुर्ख शीर्षकों में छापती हैं, उनकी वास्तविकता का पर्दाफाश करना है। कुछ माह पूर्व जिसकी 'कादम्बिनी' ने चर्चा चलायी थी किंतु वह मात्र चर्चा ही रही। अभी भी बड़ी पत्रिकाएं उसी अस्त्र-शस्त्र का प्रयोग कर रही हैं।

—हरिकृष्ण श्रीवास्तव
संपादक 'प्रतीति', बागबाहरा, रायपुर

छोटी पत्रिकाओं का विद्रोह

कुछ वर्षों से लघु एवं बड़ी पत्रिकाओं के मध्य एक संघर्ष चलता आ रहा है। बड़ी पत्रिकाओं के प्रति छोटी पत्रिकाओं ने खुलकर विद्रोह भी किया । कुछ लघु पत्रिकाएं मात्र इसलिए अस्तित्व में आयीं कि उनके संपादक अस्वीकृत लेखक थे और अस्वीकृति का कारण ढूंढ़ने की अपेक्षा उन्होंने अपनी पत्रिका को बड़ी पत्रिकाओं को गाली देने का एक माध्यम ही बना लिया। यह खतरनाक प्रवृति थी !

इसके साथ ही साहित्याकाश में कुछ पत्रिकाएं ऐसी भी उभरीं जिनका प्रकाशन भले ही कम था लेकिन उन्होंने अच्छे साहित्य को जनता तक पहुंचाया। लेकिन इन सब पत्रिकाओं की प्रकाशन-संख्या कितनी होगी ? कुछ सौ से लेकर कुछ हजार तक ! इनमें से कुछ पत्रिकाएं तो एक दशक पुरानी हैं । अगर ये पत्रिकाएं साहित्यलक्षी न होतीं तो क्या इनका हश्र भी अन्य लघु पत्रिकाओं जैसा होता ।

डॉ. भारती के इस कथन से मैं बिल-

कुल सहमत हूं कि 'साहित्यिक सुरुचि-संपन्न विविधलक्षी पत्रिकाएं तो एक दूसरे की विरोधी न होकर एक दूसरे की पूरक हैं—सहयोगिनी हैं'। डॉ. भारती के विचार लघु पत्रिकाओं के लिए प्रेरणादायक सिद्ध हो सकते हैं। यह भी सत्य है कि रचनात्मक लेखन के लिए नवलेखन की अव्यावसायिक छोटी-छोटी पत्रिकाओं का भी बहुत महत्त्व है। इनका सर्कुलेशन यद्यपि सीमित होता है पर हिंदी में विगत दशक में नवलेखन का जो वास्तविक विकास हुआ है वह इन्हीं पत्रिकाओं के माध्यम से हुआ है।

डॉ. भारती का लेख लघु एवं बड़ी पत्रिकाओं के बीच खुदी खाई को दूर करने में काफी हद तक सहायक सिद्ध होगा। लेकिन लघु पत्रिकाएं बड़ी पत्रिकाओं के 'गुट', 'खेमे' और प्रकाशन में भाई-भतीजावाद को कभी क्षमा नहीं करेंगी।

—डॉ. जवाहर आजाद
संपादक 'रचनाकार', फगवाड़ा (पंजाब)

घाटे का सौदा

छोटी पत्रिकाएं आर्थिक विपन्नता के कारण चाहे कुछ दिनों बाद लड़खड़ा जाएं पर उनकी नीयत पर शक नहीं किया जा सकता है। वे चाहे जिस आंदोलन की उपज हों, किंतु व्यावसायिक पत्रिकाओं के मुकाबले वे अपने लक्ष्य को सही ढंग से प्रस्तुत करने का अदम्य साहस दिखाती हैं, अच्छी और बिखरी हुई प्रतिभाओं को उचित पृष्ठभूमि प्रदान करती हैं, जन-साधारण की उच्च मानसिकता, स्वस्थ नीतिमत्ता, उपयुक्त वातावरण के साथ ही स्तरीय मनोरंजन तथा सामाजिक हितों के कल्याणकारी रूप को निहित करके आगे बढ़ती हैं—शायद इसीलिए तमाम अवरोध के बावजूद यह जैसे-तैसे जीवित बनी रहती हैं। किंतु यहां पर मेरा यह मंतव्य कतई नहीं है कि प्रतिभाओं के अंकुरण में छोटी पत्रिकाओं का ही योग है—बड़े प्रकाशन का महत्त्व नगण्य है।

भारती जी के 'कैसर की ट्रेनवाली' बात यहां अपाच्य-सी लगी क्योंकि सबके लिए इस प्रकार की आकस्मिक सुविधा उपलब्ध होना संभव नहीं है। फिर आज के परिप्रेक्ष्य में छोटी पत्रिकाओं के साथ कैसर की ट्रेन का मिलाप या तो उन्हें लक्ष्य से दूर जा पटकता है या फिर बंद हो जाने पर विवश कर देता है। दोनों ही स्थितियों में यह घाटे का सौदा है।

—विनोद के. किरी
संपादक 'शब्द', ५६०—राजेन्द्रनगर, लखनऊ—४

"यह क्या कर रहे हो बेटा? शाम के पांच बजे से ही बल्ब जला बैठे हो?"

"पापा, ऋषि-मुनियों ने भी कहा है—प्रकाश रखो!"

"जरूर कहा होगा बेटा! पर उन दिनों बिजली के मीटर का आविष्कार नहीं हुआ था।"

हड़तालों का अर्थशास्त्र

दीनानाथ दुबे

देश में हड़तालों की बाढ़-सी आ गयी है। हड़ताल के शाब्दिक माने होते हैं 'कर्म से विरति'। हड़तालें मूलत: असंतोष की निशानी हैं। हड़तालों का आह्वान करते हुए नारा लगाया जाता है—"हर जोर जुलुम की टक्कर में हड़ताल हमारा नारा है।" सन १८५३ से यह नारा शुरू होता है और करीब १२५ वर्ष बीत जाने के बाद हड़तालों का जो रूप उभरा है वह आज राष्ट्रीय प्रगति में अवरोधक तत्त्व बन गया है। लोग कहने लगे हैं, "हड़तालें आर्थिक प्रगति की दुश्मन हैं।" कुछ कहते हैं, "ये हड़तालें देश को ले डूबेंगी।" कुछ इन हड़तालों पर पाबंदी लगाने की बात कहते हैं।

हड़तालें औद्योगिक युग की देन हैं। उद्योग में लगे कामगरों के लिए अपने हकों की प्राप्ति के लिए यह अंतिम और उग्र हथियार है। गांधीजी ने भी कामगरों को उनके उचित अधिकारों को दिलाने के लिए हड़ताल का सहारा लिया था। किंतु आज हड़तालें करने के कामगरों के एकाधिकार पर हवाबाजों, डॉक्टरों, इंजीनियरों, अध्यापकों, छात्रों, जीवन बीमा निगम एवं बैंकों के सफेदपोश कर्मचारियों ने कब्जा कर लिया है। हड़ताल में अब वकील, मजिस्ट्रेट और अफसर भी शामिल होने लगे हैं। देश में होनेवाली हड़तालें कई प्रकार की हैं, जैसे राजनीतिक कारणों से हड़ताल, आवश्यक सेवाओं में हड़ताल, सहानुभूति में की जानेवाली हड़ताल, कारखाने में की जानेवाली हड़ताल, सरकारी हड़ताल, परीक्षा के समय अध्यापकों की हड़ताल, संकीर्णता के कारण हुई हड़ताल आदि।

आजादी के बाद भारत में हड़तालों का जो रूप विकसित हुआ है उसका प्रभाव यह है कि यहां किसी भी समय और जरा-सी बात के लिए हड़ताल की जा सकती है। पिछली फरवरी में रिजर्व बैंक के अफसरों ने इसलिए हड़ताल कर दी थी कि चपरासी ठीक से मेज नहीं साफ करते। बात जरा-सी थी, किंतु प्रधानमंत्री तक को कहना पड़ा, "जिस दिन मैं अपनी मेज साफ नहीं देखती हूं—खुद ही साफ कर लेती हूं।" मार्च के महीने में दिल्ली प्रशासन के ४० हजार अध्यापकों की हड़ताल के कारण न केवल स्कूल बंद करने पड़े, वरन

सरकार परीक्षाएं भी टालने को विवश हो गयी। शुद्ध राजनीति और संकीर्णता के कारण तमिलनाडु का अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त, वेलोर क्रिश्चियन मेडिकल कालेज अस्पताल हड़ताल के कारण ७० दिन तक बंद रहा। इस अस्पताल में जब १५ कर्मचारियों को मारपीट और अनुशासन-हीनता के कारण निकाला गया तब द्रविड़ मुनेत्र कषगम की यूनियन ने सारा मामला बड़े जोरदार ढंग से उठाया। तमिलनाडु सरकार ने स्वयं हड़ताल को प्रोत्साहन दिया। विश्व प्रसिद्ध न्यूरो सर्जन डॉ. के. वी. मथाई को गिरफ्तार कर लिया। इस गिरफ्तारी ने पूरे वेलोर नगर में हड़ताल करा दी। मुख्यमंत्री ने यहां तक कह दिया कि अगर यह अस्पताल तमिलनाडु से चला जाए तो उन्हें आपत्ति न होगी। बहरहाल, जनमत खिलाफ होने, अखिल भारतीय स्तर पर तमिलनाडु सरकार की गतिविधि उजागर होने पर सरकार को हड़ताल समाप्त करा देने विवश होना पड़ा। इसी तरह उत्तर प्रदेश के बिजली इंजीनियरों ने आई. ए. एस. अफसरों की समकक्षता और एसोसिएशन के अध्यक्ष की गिरफ्तारी या मुअत्तली के विरोध में प्रदेश के उजाले को अंधेरे में बदल दिया। हड़ताल से करोड़ों रुपये की क्षति हुई। नगरों में अंधेरा छा गया। कारखानों की मशीनें बंद हो गयीं। अस्पतालों में ऑपरेशन रुक गये। बिजली की लाइनों, टावरों में तोड़-फोड़ हुई। यह सब अपने आप में अत्यंत सनसनीखेज था।

प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी का यह कथन कुछ हद तक ठीक ही है, "हड़तालें वे लोग नहीं करते जो ज्यादा गरीब हैं, बल्कि वे लोग करते हैं जिन्हें ज्यादा मिलता है।"

देश में हड़तालों की जो उग्र महामारी फैल रही है उससे आर्थिक नुकसान तो है ही, इसके अलावा हमारी रचनात्मक

औद्योगिक-विवादों का राज्यवार विवरण

राज्य	१९७१	१९७२	१९७३	१९७४
केन्द्रीय क्षेत्र	--	--	--	४०९
आन्ध्र	१०९	१२५	१६१	१
असम	२०	३०	१६	३
बिहार	१६८	२५४	११२	१२३
गुजरात	१२९	१३९	१६२	१३४
हरियाणा	४८	४५	४४	२३
हिमाचल	३	८	-	-
जम्मू-कश्मीर	३	१०	६	४
कर्नाटक	१०२	१०३	१०४	५५
केरल	२७४	२९५	१८७	१२०
मध्यप्रदेश	१५०	१०७	९०	८७
महाराष्ट्र	७१७	८८१	७०४	४४५
मणिपुर	--	--	१	४
उड़ीसा	२१	४१	२९	४२
पंजाब	१६	३४	४०	१४
राजस्थान	६८	६२	४०	२५
तमिलनाडु	३२५	४११	२५०	२५३
त्रिपुरा	४	१३	२	५
उत्तरप्रदेश	१९६	२६७	२४८	१६३
पश्चिमी बंगाल	३१६	५५३	४१३	२७८
केंद्रशासित प्रदेश	८०	७७	९९	५५
योग :	२७५२	३२४३	२९२४	२२४३

शक्ति पर भी इसका व्यापक प्रभाव पड़ता है। इससे राष्ट्रीय कर्मठता की भावना धीरे-धीरे गायब हो रही है। यह स्थिति अत्यंत खतरनाक है। आज जो भी आर्थिक संकट है, उसका मुख्य कारण उत्पादन में कमी होना है। हड़तालें भी उत्पादन में कमी का एक मुख्य कारण हैं।

आज देश में हड़तालों का जो जोर है उसका मुख्य कारण बढ़ती महंगाई और राष्ट्रीय वेतन-प्रणाली के उचित ढांचे का अभाव भी है। ज्यादातर हड़तालें वेतन या भत्ते को बढ़ाने से संबंधित होती हैं। अतीत में जब भी ऐसी हड़तालें हुई हैं वेतन या भत्ता बढ़ा है, उसी अनुपात में महंगाई भी बढ़ गयी है। यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि हड़तालों और कीमतों में अटूट रिश्ता है। हड़तालों से उत्पादन रुकता है। उत्पादन न होने से कीमतें बढ़ती हैं और फिर गुजारे लायक वेतन बढ़ाने के लिए हड़तालें की जाती हैं। यह एक ऐसा विषम दुश्चक्र है जिसे राष्ट्रीय हित में तोड़ा जाना अत्यंत जरूरी है। कुछ क्षेत्र ऐसे हैं जहां काम रुकने से सारा राष्ट्रीय तंत्र झनझना जाता है जैसे रेल, डाकतार, कोयला-खान, इस्पात, कारखाना रिफायनरी आदि। आंकड़ों की भाषा में जाएं तो एक दिन रेलगाड़ी न चलने से २.५ करोड़ रुपये का नुकसान हो जाता है। एक दिन की डाकतार की हड़ताल से १५ करोड़ चिठ्ठियां, ११ लाख तार और ३ लाख ट्रंककाल नहीं हो पाते। देश के सबसे बड़े बोकारो इस्पात कारखाने में एक दिन की हड़ताल से १० लाख रुपये की हानि होती है। एक बार काम में रुकावट पड़ने से उत्पादन को फिर वापस लाने के लिए जो हानि होती है, वह अलग है।

१९७४ के वर्ष में हड़ताल और तालाबंदियों के कारण ३.१२ करोड़ श्रम-दिनों की हानि हुई है। १९७३ में २.५, १९७२ में २.४, १९७१ में १.६, १९७० में

२.५, १९६९ में १.[illegible], १९६८ में १.७२ और १९६७ में १.७१ करोड़ श्रम-दिनों की हानि हो चुकी है। आजादी के बाद १९७४ का साल हड़तालों का साल रहा है। इस वर्ष सबसे बड़ी और लंबी रेल हड़ताल हुई जिसमें १७ लाख कर्मचारियों ने भाग लिया। रेलवे को ६५ करोड़ रुपये की क्षति हुई। समग्र अर्थव्यवस्था को ५०० करोड़ रुपये की चोट पहुंची। हड़तालियों ने २५ करोड़ रुपया मजदूरी के रूप में खोया। हड़ताल में दमन के लिए राज्य सरकारों ने जो व्यय किया, उसका हिसाब अलग है। एयर इंडिया और इंडियन एयर लाइंस की हड़तालें १९७४ में हुई हड़तालों में से हैं।

इन हड़तालों में सरकार ने कठोर दृढ़ता का परिचय देकर हड़तालियों और हड़ताल की प्रवृत्तियों पर थोड़ा अंकुश लगाने में सफलता प्राप्त की। रेल हड़ताल अखिल भारतीय स्तर पर हुई प्रथम और विश्व की सबसे लंबी हड़ताल थी जिसने समस्त राष्ट्रीय जीवन को झकझोर कर रख दिया। हड़तालों से उत्पन्न औद्यौगिक शिथिलता के कारण उत्पादन में गिरावट, माल का जमाव, पूंजी-नियोजन की गिरती रफ्तार, बढ़ती बेकारी और बढ़ते औद्योगिक विवाद की प्रवृत्तियां सामने आयी हैं। हड़तालों और तालाबंदी के कारण सबसे पहले शिकार कामगर होता है।

पिछले पांच वर्षों में औद्योगिक विवादों से हुई उत्पादन-हानि का लेखा-जोखा जानने योग्य है। (नीचे की तालिका)

औद्योगिक विवादों का राज्यवार विवरण पृष्ठ ४८ पर है। सर्वाधिक विवाद में महाराष्ट्र राज्य अग्रणी है।

१९७४ के आंकड़े राज्य-क्षेत्र के हैं। इस वर्ष केंद्रीय क्षेत्र के कुल विवादों की संख्या ४०९ है। १९७१, १९७२ और १९७३ के केंद्रीय क्षेत्र के विवादों को राज्यवार जोड़ दिया गया है।

महत्त्वपूर्ण या आवश्यक सेवाओं में होनेवाली हड़ताल देश की प्रगति को एकदम रोक

औद्योगिक-विवाद और उत्पादन-हानि का लेखा-जोखा
(पिछले पांच वर्षों में)

वर्ष	हड़ताल व तालाबंदी	उत्पादन-हानि (करोड़ रुपयों में)	शामिल कामगारों की संख्या
१९७०	२८३९	५५.०८	१,५५१,५३०
१९७१	२७५७	९०.५४	१,४७६,२०३
१९७२	३२४३	६०.६५	१,४७४,६५६
१९७३	२९२४	८०.४०	१,९४४,२३३
१९७४	२२४३	--	२,१६१,९८५

औद्योगिक-विवादों के कारणों का प्रतिशत

कारण	१९६९	१९७०	१९७१	१९७२
वेतन व भत्ते	३०.४	३७.१	३४.३	३१.८
बोनस	६.९	१०.६	१४.१	८.४
छंटनी	२९.३	२५.६	२३.०	२४.२
छुट्टी और काम के घंटे	३.०	२.१	१.४	१.४
अनुशासन और हिंसा	--	३.८	३.६	५.१
अन्य	३०.४	२०.८	२३.६	२९.१
योग :	१३१४	२८४३	२७२३	३६५३

देती है। सामान्य जन-जीवन दूभर हो जाता है। हड़ताल के संदर्भ में यह विचारणीय है कि थोड़े से लोगों को अपने लाभ के लिए क्या सार्वजनिक जन-जीवन को ठप कर देने की छूट देनी चाहिए अथवा कुछ लोगों के लाभ के लिए आम जनता को क्यों सताया जाए? हड़ताल के कारण जो घाटा होता है उसकी पूर्ति जनता पर कर लगाकर की जाती है। इस प्रकार जनता पर दुहरी मार पड़ती है। स्थिति यह होती है कि सरकारी उद्योग या जरूरी सेवाओं में काम करनेवाला कर्मचारी-वर्ग सामूहिक सौदेबाजी के हथियार के कारण नितांत अल्पसंख्यक होता हुआ भी प्रबल बन जाता है और जनता एकदम निर्बल और निरीह। परिणामस्वरूप सेवा और उत्पादन में निरंतर ह्रास होता जाता है।

आज देश के सामने आयेदिन हड़तालों से निबटना अत्यंत जटिल समस्या है हड़तालों की पृष्ठभूमि में कामगरों का असंतोष और प्रबंधकों की अकुशलता तो सर्व-विदित है, पर हड़ताल की इस नकाब के पीछे सफेदपोशों ने खासकर डॉक्टरों, इंजीनियरों, अध्यापकों और बैंकों के लोगों ने जो रवैया अपना रखा है यदि उस पर अंकुश न लगाया गया तो स्थिति और भी खराब हो सकती है, इससे समस्त वेतन-भोगियों के बीच बहुत बड़ा गहरा असंतुलन पैदा हो जाएगा।

कुछ लोग हड़तालों पर प्रतिबंध की बात करते हैं। हमारे देश में लोकतंत्री ढांचा है और इस ढांचे में प्रतिबंध संभव नहीं और उचित भी नहीं है। जरूरत है लोगों में विवेक और नैतिक भावना का बोध कराने की, क्योंकि देश की प्रगति में ही देशवासियों की प्रगति है और यह प्रगति कर्मजन्य एकता की भावना से आयेगी न कि कर्म-विरति की भावना से। हड़तालों का सबसे खतरनाक पहलू यह है कि राष्ट्र में रचनात्मक शक्ति और कर्मठता की भावना लुप्त होती है, तनाव, हिंसा, तोड़-फोड़ और अनुशासन-हीनता की प्रवृत्ति फैलती है। यह स्थिति आर्थिक क्षति से भी अधिक हानिकारक है। इसलिए वर्तमान स्थिति में आवश्यक है कि एक अरसे तक देश में औद्योगिक शांति रहे, अर्थात हड़ताल और तालाबंदिया न हों, जिससे हम लोग आपसी सहयोग से उत्पादन बढ़ा सकें और विकास-योजनाओं को सही तरीके से लागू कर सके। इसमें कोई संदेह नहीं कि ऐसी स्थिति कायम हो सके तो देश के आर्थिक विकास को गति मिलेगी।

—डी. ६९, श्रीरामनगर, कोटा-३२४००४

टेनिस के दो खिलाड़ियों ने उस रोज ज्यादा पी ली थी। खेलते समय एक बोला, "यार, समझ में नहीं आता कि आज क्या गड़बड़ी है! गेंद तो दो-दो दिखायी दे रही हैं!"

"इसमें सोचने की क्या बात है, तुम्हारे हाथ में बल्ले भी तो दो-दो हैं" मित्र ने जवाब दिया।

● महेश्वर दयाल

दिल्ली के नाम में कैसा जादू है, कितना लोच है, कितनी मिठास है ! जब इसका नाम जबान पर आता है, लोग मोहित हो जाते हैं । इसकी दास्तान सुनकर झूम उठते हैं । एक नशा-सा हो जाता है । दिल्ली एक कारवां के समान है जो हजारों वर्षों से चलता आ रहा है । इस कारवां में सभी तरह के लोग हैं—देशी भी और विदेशी भी । इनमें ऐसे चेहरे भी हैं जो हंसते, मुसकराते और खिलखिलाते दिखायी देते हैं, और कुछ ऐसे भी हैं जिनकी आंखों में आंसू झलक रहे हैं । दिल्ली के भाग्य में उजड़ना और बसना लिखा है । यह कई बार बसी और अनेक बार उजड़ी, लेकिन इसका चमन यों ही हरा-भरा रहा । दिल्ली का सुहाग बार-बार लुटा । फिर भी सदा सुहागिन कहलायी । न जाने इस धरती में कौन-सी ऐसी आकर्षक, मनमोहक शक्ति है कि जो यहां आया, वह यहीं का हो रहा ! बहुत-से सम्राटों और बादशाहों ने दिल्ली को अपनी राजधानी बनाया । यहां अपने कोट और किले बनाये । अलग-अलग नामों से इसे पुकारा, लेकिन सबने उन नामों को भुला दिया । दिल्ली 'दिल्ली' कहलाती रही । इस नाम को कोई न मिटा सका, मगर यह कैसे अचंभे की बात है कि कि कोई भी ठीक तौर से नहीं जानता कि यह 'दिल्ली' क्यों कहलायी । इंद्रप्रस्थ के उजड़ने के बाद इसका नाम दिल्ली कब पड़ा ? इस बारे में कोई कुछ कहता है, कोई कुछ ।

जितने मुंह उतनी बातें

डॉक्टर डंकन फोर्बस ने कहा है कि दिल्ली शायद 'दिल' शब्द से बना है । दिल शब्द का अर्थ ऊंची जगह या उजड़ी हुई वस्ती है । 'दिलवाली' दिल्ली के रहनेवालों को कहा जाता था और 'दिलवाल' दिल्ली का एक पुराना सिक्का था । कुछ लोगों का यह भी कहना है कि दिल्ली एक ऐसी नरम या पिलपिली जगह को कहते हैं जहां की धरती में कील न गड़ सके । एक राय यह भी है कि दिल्ली भारत की दहलीज या चौखट है, लेकिन इस राय पर विश्वास यों नहीं किया जा सकता क्योंकि दहलीज शब्द फारसी का है और दिल्ली नाम मुसलमानों के भारत में आने से पहले भी सुनने में आता रहा है । हिंदू-

काल में कन्नौज का एक राजा दिल्ल था, उसके नाम पर दिल्ली बसायी गयी थी। यह भी कहानी सुनायी जाती है कि तोमर राजा ने लोहे की किल्ली गड़वायी थी। वह ढीली रह गयी और 'ढिल्ली' शब्द बिगड़ते-बिगड़ते दिल्ली हो गया। बस, तो जितने मुंह उतनी बातें!

श्रीमद्भागवत-पुराण के अनुसार पांडवों ने कई पीढ़ियों तक इंद्रप्रस्थ में राज्य किया था। इसके बाद कई राज-वंशों के दौर आते गये और अंत में इंद्रप्रस्थ उजड़ गया और दिल्ली के इतिहास पर अंधेरा छा गया।

भूली हुई दिल्ली की याद

प्राचीन भारत का इतिहास हस्तिनापुर, अहिच्छत्र, कौशांबी, कोशल; काशी, मगध, मथुरा, तक्षशिला, उज्जैन आदि अनेक नगरों के फलने-फूलने की कथाएं तो सुना रहा है, लेकिन दिल्ली का नाम कहीं सुनायी नहीं देता। दिल्ली के पुराने इति-हास के पन्ने कोरे हैं, लेकिन आज बीस वर्षों से दिल्ली के पुराने किले में खुदाई हो रही है। इस खुदाई में बहुत-सी वस्तुएं मिली हैं, जिनसे यह पता चलता है कि दिल्ली महाभारत, मौर्य, शुंग, शक, कुषाण, उत्तर-गुप्त, राजपूत और मुगल कालों में आबाद रही होगी। अभी कुछ दिन पहले कालका-जी के मंदिर के पास मौजा बहापुर (श्री-निवासपुरी) में एक पुरानी चट्टान पर अशोक का एक शिलालेख मिलने से आज से २,२०० वर्ष पहले की दिल्ली के महत्त्व का पता चलता है। यह शिलालेख मौर्य सम्राट अशोक का है और भूली हुई दिल्ली की याद दिलाता है।

इतिहासकारों का कहना है कि ईसा से तीन सौ वर्ष पहले दिल्ली व्यापारिक प्रमुख मार्ग पर स्थित महत्त्वपूर्ण पड़ाव रहा होगा। यमुना से किश्तियों से माल लाने-ले जाने और उसके घाटों का पूरा प्रबंध किया जाता होगा। इस बात का यों भी अनुमान लगाया जाता है कि जब व्यापारी देश में एक दिशा से दूसरी दिशा में जाते होंगे तो उन्हें दिल्ली में अवश्य ठहरना पड़ता होगा। जो सौदागर पश्चिमी या दक्षिणी इलाकों से मथुरा या विराट (राजस्थान) होते हुए पानीपत, कुरुक्षेत्र, लुधियाना, स्यालकोट, तक्षशिला के रास्ते पुरुषपुर (पेशावर) जाते थे, वे भी यहां इकट्ठे होते होंगे, और जब उन्हें पूर्व की ओर जाना होता, वे यमुना के किनारे-किनारे चले जाते होंगे। लेकिन सबको दिल्ली में आना ही पड़ता होगा। दिल्ली एक ऐसी जगह बसी है जहां अरावली की पहाड़ियां गंगा और सिंधु तक पहुंचनेवाली नदियों को एक-दूसरे से अलग कर देती हैं।

दिल्लू के नाम पर बसाया

मौर्यकाल में दिल्ली का अता-पता मिलने से अब एक बात, जो परंपरा से चली आ रही है, मानी जा सकती है कि मौर्य-राज्य में दिल्ली को कन्नौज के एक राजा दिल्लू या दिलीप के नाम पर उसके सेनापति और शासक स्वरूपदत्त ने बसाया
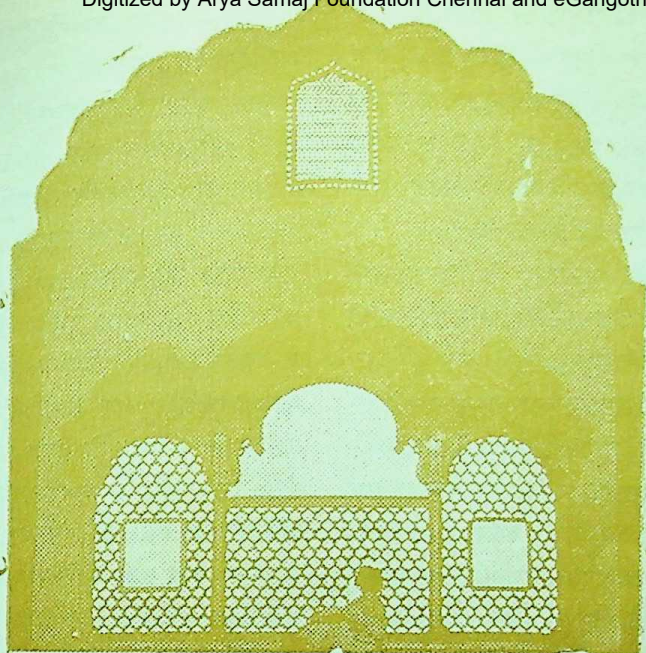
था। इतिहासकार फरिश्ता ने भी किसी से सुनकर यह बात लिखी है कि दिल्ली के राजा दिल्लू को राजा पोरस ने मार डाला था। यह वही राजा पोरस है जिसे यूनान के सम्राट सिकंदर ने पराजित किया था।

राजावली के अनुसार दिल्ली के राजपाल को कुमाऊं के राजा सकुंता (शुकदित) ने मार डाला और उसका राज्य छीन लिया। सकुंता को उज्जैन के सम्राट विक्रमादित्य ने पराजित किया और दिल्ली का राज्य छीन लिया, लेकिन विक्रमादित्य ने अपनी राजधानी उज्जैन ही में रखी और दिल्ली वीरान हो गयी। इस कहानी में यह कठिनाई आ पड़ी है कि सम्राट सिकंदर के बाद जब सेल्यूकस नेकेटोर का राजदूत मेगस्थनीज चंद्रगुप्त मौर्य के राज्य में पाटलिपुत्र आया था तब उसने मथुरा का हाल तो लिखा है, लेकिन दिल्ली के बारे में कुछ नहीं लिखा।

सम्राट अशोक के समय के शिलालेख के अलावा मौर्यकाल के बाद शुंग–काल की पत्थर की एक सुंदर मूर्ति दिल्ली में कुतुबमीनार के पास धरती के नीचे मिली है। इसे देखकर यह जान पड़ता है कि यह उन दिनों की कला का नमूना है जब ईसा से दो शताब्दी पूर्व शुंग राजा भरहुत (मध्यभारत) में स्तूप और तोरण बना रहे थे। शुंग-काल में और उसके बाद भी मथुरा कला का एक बड़ा केंद्र रहा है और यक्ष की यह मूर्ति उन दिनों की दिल्ली

को कारीगरी पर रोशनी डालती है। शुंग और कुशाण-काल की कुछ मूर्तियां पुराने किले की खुदाई में भी निकली हैं। शुंग और कुशाण-काल के बाद गुप्त-काल की बनी हुई लोहे की लाट है।

विक्रमादित्य का स्वर्णकाल

यह लाट कुतुबमीनार के पास मसजिद कुव्वतुल-इसलाम के आंगन में खड़ी चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के स्वर्ण-काल की याद दिलाती है। शाहजहां के राज्य में ग्वालियर का खड़गराय भाट कहता है कि उज्जैन का राजा विक्रमादित्य शंखध्वज को मारकर 'दिल्ली-पत' कहलाया। चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के राज्य में बनी आज से सोलह सौ वर्ष पुरानी लोहे की लाट या कीली पर संस्कृत में छह श्लोक खुदे हैं। इन श्लोकों के अनुसार चंद्र नामक एक राजा हुआ, जिसने दक्षिण और बंग (बंगाल) पर विजय पायी और सिंधु नदी की सप्त सहायक नदियों को पार करके वहालिक (बलख) को जीता था। इसी विजय की स्मृति में यह लोहे की कीली या स्तंभ बना है। अभिलेख से जान पड़ता है कि स्तंभ भगवान विष्णु के मंदिर के सामने विष्णुपद नामक पहाड़ी पर स्थापित किया गया था। उसे भगवान के ध्वज-रूप में लगाया गया था। स्तंभ के ऊपर गरुड़ की मूर्ति भी थी। राजा चंद्र या चंद्रगुप्त विक्रमादित्य बड़ा बलवान और शक्तिशाली राजा था। उसकी राजधानी पाटलिपुत्र थी। उसने बहुत-सी लड़ाइयां जीतीं और शकों का नाश किया।
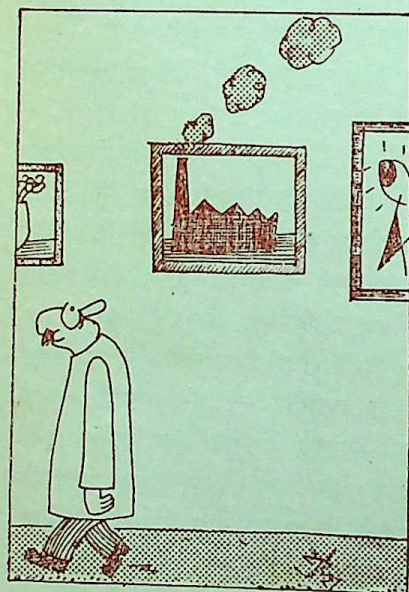
चंद्रगुप्त विक्रमादित्य विष्णु का बड़ा भक्त था। इतिहासकारों का कहना है कि उन दिनों महरौली मंदिरों से भरी पड़ी थी। यहां विष्णु की पूजा होती थी। कुतुब के रेस्तरां के पास हाल में विष्णु की एक चार भुजावाली मूर्ति भी धरती के नीचे से निकली है। दिल्ली-करनाल सड़क पर हैदरपुर नामक बस्ती में विष्णु-मंदिर के एक द्वार के दिले भी मिले हैं, जिन पर रामायण के दृश्य खुदे हैं। इनके मिलने से यह भी कहा जा सकता है कि शायद यह कीली अरावली की पहाड़ी पर दिल्ली में भगवान विष्णु के मंदिर में गड़ी होगी, लेकिन लोगों का कहना है कि लोहे के

चित्र-प्रदर्शनी

स्तंभ को मथुरा या बिहार या किसी और जगह से लाकर यहां खड़ा किया गया था।

कहानी फिर भी अधूरी

लेकिन दिल्ली की कहानी फिर भी अधूरी ही रह जाती है। चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के राज्य में फाहियान नामक एक चीनी यात्री भारत आया था। उसने मथुरा, कन्नौज, कौशांबी, काशी, पाटलिपुत्र, नालंदा आदि का दौरा किया, लेकिन वह अपने लेखों में दिल्ली का कुछ हाल नहीं सुनाता है। फाहियान के आने के दो सौ वर्ष बाद ह्वेनसांग नामक एक और चीनी भी भारत आया था। उसने भी दिल्ली के बारे में कुछ नहीं लिखा है। गुप्त-वंश के बाद उत्तर भारत में हर्षवर्धन का राज्य हुआ। फिर तोमरवंशी राजपूत गद्दी पर विराजमान हुए। उनके राज्य में दिल्ली को ढिली या ढिलीका कहा जाता था और यह हरियाणा प्रदेश की एक नगरी थी।

दिल्ली में पालम की बावली में मिले शिलालेख से यह भी पता चलता है कि दिल्ली हरियाणा का एक हिस्सा थी।

कहा जाता है कि तोमर परिवार के राजा अनंगपाल को, जो बिलनदेव भी कहलाता है, व्यास नामक एक ब्राह्मण ने वचन दिया था कि इस स्तंभ को यदि ठीक तरह शेषनाग के सिर पर मजबूती से गाड़ दिया जाएगा तो जिस तरह यह स्तंभ अटल रहेगा, उसका राज्य भी अटल रहेगा। राजा ने स्तंभ को गड़वा दिया, मगर उसे विश्वास नहीं हुआ कि वह शेष-नाग के सिर पर पहुंच गया है। उसने कीली को उखड़वा कर देखा, मगर उसे बहुत आश्चर्य हुआ कि कीली का निचला सिरा खून से भरा है। वह घबरा गया। राजा ने कीली को फिर से गड़वाना चाहा, मगर वह ढीली रह गयी। इसका यह दोहा विख्यात है—

कीली तो ढीली भई, तोमर भया मतहीन

और ढिल्ली से बिगड़ते-बिगड़ते इस नगरी का नाम दिल्ली पड़ गया।

कहा जाता है कि राजा ने व्यास की बात पर विश्वास नहीं किया तब उसने यह दोहा कहा—

व्यास जग जोती (ज्योतिषी) यों बोला ये
बातें होने वाली हैं
तोमर तब चौहान और थोड़े दिनों में
तुरक पठान

शहाबुद्दीन गोरी के आक्रमणों और पृथ्वीराज के बाद दिल्ली का नाम साफ सुनायी देने लगता है। अमीर खुसरो का एक फारसी शेर है, जिसका भावार्थ है—

या तो मुझे घोड़ा दे या अस्तबल के दारोगा से कह, वह मुझे सामान उठानेवाला दे या हुकम दे कि कोई सवारी मिले, जिस पर बैठकर मैं देलो (दिल्ली) जा सकूं।

बारहवीं शताब्दी में खोयी हुई दिल्ली मिल जाती है। हर एक इस नगरी को दिल्ली कहकर पुकारता है और यहां का रहनेवाला दिल्लीवाला या देहलवी कहलाने में अपनी शान समझता है और मग्न होता है।

—९६, बाबर रोड, नयी दिल्ली

● अनीता औलक

अक्स

उसने टेलीफोन पर नंबर घुमाया तो दूसरी तरफ से शील बोला, "हां, मैं बोल रहा हूं—कहो!"

"आ रहे हो न?"

"हां, कोई आध घंटे में।"

"ठीक है।" उसने रिसीवर रख दिया।

शील आयेगा। फिर वह उसके साथ बाहर जाएगी—गेलार्ड, फिर शायद गेटवे ऑव इंडिया....फिर ....फिर लौट आयेगी। लेकिन अगर शील न आया और वह गेलार्ड या गेटवे ऑव इंडिया न जा पायी तो क्या बिगड़ जाएगा। भला यह भी कोई सवाल है—उसने अपनी मूर्खता पर मुंह बनाया... लेकिन अगर शील न आया तो गेलार्ड और गेटवे नहीं जा पायेगी... लेकिन क्या ये दोनों जगह उसके लिए इतनी महत्त्वपूर्ण हैं कि वह इतना सोचे जा रही है। नहीं...तो फिर क्या... शायद शील महत्त्वपूर्ण है, लेकिन अगर शील भी न आया तो क्या बिगड़ जाएगा? भला यह भी कोई सवाल हुआ! उसने अपने सोचने को दोबारा लानत दी।

लेकिन शील उसके लिए इतना महत्त्वपूर्ण कैसे और कब से हो गया? वह पीछे गैलरी में चली गयी थी। नीचे नीली ऐंबेसेडर गाड़ी को चश्मेवाला ड्राइवर हमेशा

की तरह साफ कर रहा था। यह ड्राइवर हर वक्त इस गाड़ी को साफ करता नजर आता है लेकिन आज तक इस गाड़ी की सवारी उसने कभी नहीं देखी थी। तो क्या यह गाड़ी रोज साफ ही होती है और फिर भी इसमें कोई नहीं बैठता ?

आजकल उसे इतनी अनर्गल बातें क्यों सूझती रहती हैं ? शायद उसे सही बोलने और सही सोचने की फिर से आदत डालनी पड़ेगी। लेकिन उससे पहले उसे अपने दिमाग को साफ करना होगा। वह शील से पूछेगी। ...लेकिन क्या ? नहीं शायद कुछ कहेगी। ...लेकिन क्या ? शायद कुछ नहीं। तो फिर उसने शील को क्यों बुलाया...गेलार्ड और गेटवे जाने के लिए ...

गेलार्ड काफी ठंडा था। उसे लगा शायद उसे एक ठंडे कमरे की ही जरूरत थी ...लेकिन थोड़ी ही देर में उसे लगा कि वह अतिरिक्त ठंडा है। फिर उसका ध्यान गया उस खामोशी पर जो गेलार्ड पर छायी हुई थी। उसे लगा शायद उसे इसी खामोशी की जरूरत थी। लेकिन बहुत जल्दी ही उसे वह खामोशी एक सन्नाटा-सा लगने लगी। शायद यहां पर वह शील से कुछ नहीं कह सकेगी। वह बहुत धीमे से शील से कुछ कहना चाहती थी, लेकिन इतने सन्नाटे में शायद आवाज गूंजेगी।

शील को अपना एक परिचित मिल गया। उनकी टेबल के बिलकुल पीछे, थोड़ा हटकर। शील उठकर चला गया। उसे लगा शायद वह यही चाहती थी कि वह शील से कुछ देर के लिए बच जाए। शील लौट आया था। उसे यह भी अच्छा लगा।

शील ने कहा, "चलो थोड़ी देर गेटवे घूम आयें।" वह तैयार थी। उसे लगा शायद वह इस वक्त कहीं जाना चाहती थी। गेटवे पर उस दिन बहुत भीड़ थी। वह शील के पीछे-पीछे जल्दी-जल्दी चलने लगी। "आज रविवार है," उसने कहा तो शील ने "हां" कर दी। बहुत ढूंढ़ा, लेकिन बैठने की जगह नहीं मिली। वह शील के साथ आकर समुद्र के किनारे ऊंचे उठे चबूतरे पर खड़ी हो गयी। नीचे एक जबरदस्त खलकत दूर गयी मोटर बोट के लौटने का बेसब्री से इंतजार कर रही थी। उसे लगा वह भी खड़ी इंतजार कर रही है... लेकिन किस चीज का?

बहरहाल उसे इंतजार करना अच्छा ... रहा था। उसके आगे-पीछे कि... किस्म के लोग खड़े हुए थे। उसमें अग... उसका कोई परिचित था तो सिर्फ शील। फिर भी वह शील से इतना बेगाना क्यों महसूस कर रही थी? पीछेवाले आदमी ने उससे टाइम पूछा तो उसने बड़े इतमी-नान से उसे बता दिया, लेकिन क्यों वह शील द्वारा पूछे गये किसी भी प्रश्न का ठीक से जवाब देने में अपने को असमर्थ पा रही थी? पीछे से आती भीड़ से टक-राने में उसे बिलकुल भी बुरा नहीं लग रहा था, लेकिन शील के कंधे से छू जाने से वह हर वक्त घबरा रही थी हालांकि शील के जिस्म का सेक उसे बराबर महसूस हो रहा था। वह देख रही थी

समुद्र की लहरों को चट्टानों से मिलते और भीगते... नीचे खड़े मलंग उसका मजाक उड़ा रहे थे, शायद वे बार-बार समुद्र में कूदते और वापस आ जाते।

उसने सुना शील उससे कह रहा था कि चाहे तो वह और आगे आ सकती है। उसे लगा शायद वह यही चाह रही थी। लेकिन शील का कंधा...तो क्या उसे उस कंधे से टकराने का डर था—डर था या मोह था ...

उसने वहीं से देखने का प्रयत्न किया। मोटर-बोट आ गयी थी। सवार उतरना चाहते थे और सवारी चढ़ना चाहती थीं। कैसी कशमकश थी, देखते ही बनता था। शील जोर-जोर से हंस रहा था। उसने भी हंस ने की कोशिश की। शील उसे दिखाये जा रहा था...वह देखे जा रही थी...लेकिन अगर शील ने दिखाना बंद कर दिया तो? उसने शील की तरफ देखा, लेकिन वह आगे देख रहा था। शील खो चुका था। वह भी खोना चाह रही थी। वह शील से पूछेगी...क्या... नहीं, कुछ कहेगी ...क्या। ...उसे लगा कि गेटवे पर बहुत किस्म का शोर है... इसमें शील से कुछ कहने के लिए उसे बहुत शोर मचाना पड़ेगा।

पास में खड़ा लड़का हंसने में बाजी ले रहा था। वह उसी को देखती रही... शील ने इस बीच और क्या-क्या देखा, वह नहीं देख पायी, लेकिन क्या शील देख पाया जो वह देख पायी? उसने शील की तरफ मुंह फेरा।

शील बोला, "क्यों ?" तो उसने पूछा, "तुम्हें देर तो नहीं हो रही ?"

"नहीं, थोड़ा समय है।"

लेखिका

सवारियां अब सवार बन चुकी थीं—'कितनी जल्दी परिस्थितियां बदल जाती हैं,' वह बुदबुदायी तो शील आश्वस्त हो बोला, "तुमने कशमकश नहीं देखी ?" उसने सिर हिला दिया। हां, शायद वह परिस्थिति ही बदलना चाह रही थी...

मोटरबोट दोबारा चल पड़ी थी। बैठनेवाले बैठ चुके थे.... मलंग वैसे ही कूदें मार रहे थे....पानी वैसे ही छपाकें मार रहा था। जो तृप्त हो चुके थे वे मोटर-बोट की छत पर निढाल फैल गये थे और जो छूट गये थे वे मोटरबोट के पीछे-पीछे गोते खाते जा रहे थे।

मोटरबोट दूर, बहुत दूर चली गयी थी...शायद क्षितिज के उस पार... पीछे छोड़ गयी थी एक खालीपन...

शील मुड़ा, "वक्त खत्म हो गया है।"

वह गैलरी में खड़ी नीचे देखने लगी ....चश्मेवाला ड्राइवर अभी भी गाड़ी साफ कर रहा था।

—सी ७/५७ ईस्ट ऑव कैलाश
डी. डी. ए. फ्लैट्स, नयी दिल्ली

फिल्मों में नया यथार्थ

• माल ऑटिंगर
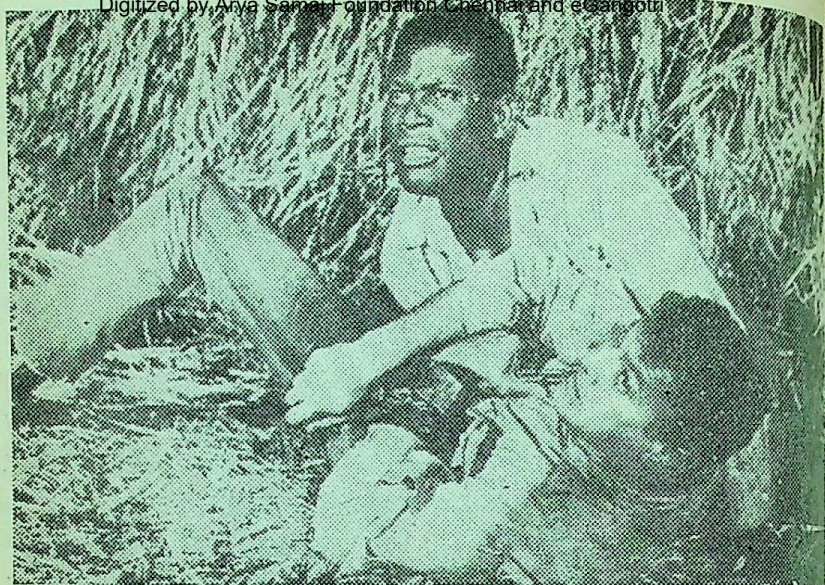
बचपन में मुझे मक्की का लावा चबाना बहुत अच्छा लगता था। मनोरंजन के लिए मैं पार्कों में निकल जाता और वहां वक्र-दर्पणों के सामने खड़ा हो खुद को देखता रहता था। उन जादुई शीशों में कभी मैं गोल चेहरे, पतले चेहरे या आड़े-तिरछे चेहरेवाला हो जाता और कभी लहराती, पतली लकीर की तरह दिखायी देता। सबसे ज्यादा शौक मुझे फिल्मों का था। करीब-करीब हर शनिवार की दोपहर दो कथा-चित्र (फीचर फिल्म), तीन कार्टून फिल्में और एक धारावाहिक-फिल्म देखता था। कुछ पैसों में ही थैला भर मक्की का लावा मिल जाता था तब।

तब मुझे यह अनुमान नहीं था कि सिनेमा के परदे पर व्यक्तियों तथा स्थानों की जो तसवीरें आती थीं, वे उनकी असली तसवीरों से प्रायः उतनी ही भिन्न होती थीं, जितना जादुई शीशों में मेरा चेहरा।

उन दिनों हर आयु के लोगों के लिए एक जैसी फिल्में बनायी जाती थीं। वयस्कों और बच्चों के लिए अलग-अलग फिल्में बनाना तो कहीं जाकर छठे दशक में तब शुरू हुआ जब टेलीविजन के प्रभाव से अमरीकी चलचित्र-दर्शकों की संख्या प्रति सप्ताह आठ करोड़ से दो करोड़ रह गयी।

ये दर्शक धीरे-धीरे मानसिक तौर पर इस बात के लिए तैयार कर लिये गये थे कि निश्चित नाटकीय परंपराओं के संबंध में शंका न व्यक्त करें—उसी तरह जैसे शेक्सपियर के नाटकों के दर्शकों ने कभी यह नहीं पूछा कि स्वगत कथन करनेवाला अभिनेता क्या पागल है जो अपने से ही बात कर रहा है! स्टीरियोटाइप या रूढ़चरित्र को स्वीकार कर लेना एक विशेष परंपरा थी।

सिनेमा की यह 'आशुलिपि' हमेशा बुरी नहीं होती थी। कुछ अभिनेता अपने सुदर्शन तथा जाने हुए व्यक्तित्वों से बहुत-से दर्शकों द्वारा पहचान लिये जाते थे। कैरी ग्रांट नागर व्यक्तित्व का, विनोदी और व्यवहारकुशल था; क्लार्क गेबल मर्दानगी का प्रतीक और निडर था। एक निर्माता ने उन दिनों की याद करते हुए हाल ही में बताया, "जब मैं क्लार्क गेबल को कोई भूमिका देता था तब मुझे उसका चरित्र उभारने के लिए ढेर-से संवाद नहीं लिखने पड़ते थे।"

हालांकि कुछ स्टीरियोटाइप झूठे और अपमानास्पद होते थे। आयरलैंड के लोग प्रायः बहुत शराब पीते थे (इसीलिए वे मजाक का विषय समझे जाते थे)। चीनी लोग हमेशा कपड़े ही धोया करते [illegible] फ्रांसीसी औरतें चरित्रहीन दिखायी जातीं। द्वितीय महायुद्ध के पहले जरमन शेखी बघारनेवाले और पतित दिखाये जाते और महायुद्ध के दौरान वे बहुत क्रूर दिखाये जाते थे। जापानी दूसरों से अलग-थलग रहस्यमय और भावुकता से रहित दिखाये जाते थे। मैक्सिको के लोग लुटेरे दर्शाये जाते थे (अलावा उन प्रहसनों के जब वे दीवार के सहारे गहरी नींद लेते थे)। अरबी लोग रोमानी स्वभाववाले, सफेद घोड़ों पर सवार, लंबे, लहराते हुए लबादे पहने दिखाये जाते थे।

फिल्मों में अमरीकी नीग्रो का चरित्रांकन दिखाने का तरीका बहुत शर्मनाक था, अधिकतर उसे एक बुद्धू नौकर के

विद्रोह : सिडनी पॉटियर और टोनी कर्टिस 'द डिफाएंट वन्स' में (बायें) स्पेंसर ट्रेसी 'ओल्ड मैन' के भावप्रवण रोल में (दायें)
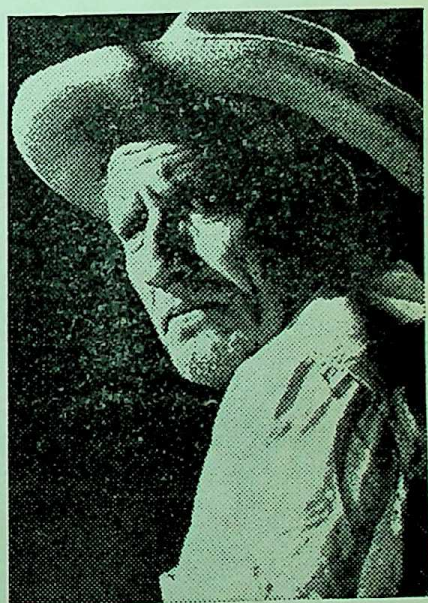
रूप में प्रस्तुत किया जाता था।

छठे दशक तक निर्माताओं को इस सामाजिक अन्याय का अनुभव हो गया था कि इस तरह की ऊटपटांग नकलों से वे अनजाने ही एक नया 'नीग्रो स्टीरियोटाइप' बना रहे हैं। धीरे-धीरे नीग्रो पात्र सारी अच्छाइयों से पूर्ण खूब शानदार कपड़े पहने, भद्र, जल्दी क्रोध न करनेवाले त्यागी और उच्च लोक-बुद्धि से परिपूर्ण या बहुत अधिक शिक्षित दिखाये जाने लगे। सिडनी पॉटियर ने इस तरह की अनेक भूमिकाएं कीं। उनकी अभिनय-शैली क्लार्क गेबल या कैरी ग्रांट की तरह ही जानी पहचानी जाने लगी। सन १९६० से अनेक चलचित्र ऐसे बने हैं जिनमें नीग्रो लोगों को प्राइवेट जासूस, 'दादा' आदि के रूप में दिखाया गया है। इसके बाद डरावनी फिल्में बनना शुरू हुईं जिनमें नीग्रो लोगों को दैत्यों और सनकी वैज्ञानिकों के रूप में दिखाया गया। ये फिल्में अधिकतर बहुत साधारण फार्मूले पर बनती हैं जिससे दर्शकों की उन इच्छाओं की पूर्ति होती है जो सामाजिक उत्पीड़न के फलस्वरूप उत्पन्न होती हैं और सामाजिक नियम-बंधनों के कारण जिन इच्छाओं को पूरा करना उनके साहस से परे है।

'गॉन विद द विंड' की रोमांटिक जोड़ी : क्लार्क गेबल और विवियन ली

हालांकि, उससे फिल्म की कला के रूप में विकसित होने में कोई सहायता नहीं मिलती। हाल ही में, चौथे दशक के दक्षिणी अमरीका में नीग्रो-जीवन का वास्तविक और सहानुभूतिपूर्ण चित्रण करनेवाली फिल्म 'साउंडर' की तरह के चलचित्रों और 'फाइव ऑन द ब्लैक हैंड साइड' (नीग्रो-व्यंग्य पर आधारित एक प्रहसन) से आभास मिलता है कि फिल्म बनानेवाले अब नीग्रो को भी सामान्य मनुष्य की तरह बुराइयों, भलाइयों से पूर्ण, और सबसे बढ़कर निजी खूबियोंवाले मानव की तरह दिखा सकते हैं।

फिल्म-निर्माताओं ने रेड इंडियन का चरित्र-चित्रण भी बदल दिया है। आधुनिक 'वेस्टर्न' फिल्मों में यह दिखाया जाता है कि रेड इंडियनों को किस तरह अपने घर, जमीन और रोटी बचाने के लिए मजबूरी में लड़ना पड़ा।

जब हॉलीवुड ने 'काउब्वाय' के संबंध में फिल्में बनानी शुरू कीं; तब फिल्म-निर्माताओं ने उसे इतना अधिक ऊंचा उठा दिया कि उन्नीसवीं शताब्दी के अंत का कोई भी ऐसा वास्तविक चरित्र स्वयं को नहीं पहचान पाएगा। फिल्मों के काउब्वाय फैंसी कमीजें पहने और साफ-सुथरी टोपियां लगाये अपने इलाके में गिटार बजाते हुए घूमते दिखाये जाते थे और फिल्म के अंत में बजाय दंडाधिकारी (शेरिफ) की सुंदर लड़की का चुंबन लेने के अपने वफादार घोड़े को चूमते दिखाये

वेस्टर्न फिल्मों का बेजोड़ नायक : जॉन वेयने

जाते थे। कुछ काउब्वाय इतने अधिक समय तक बदमाशों को मारते या भयंकर घूंसेबाजी करते दिखाये जाते थे कि दर्शकों को इस बात पर आश्चर्य होता होगा कि आखिर वे अपनी रोजी कब कमाते हैं। अधिकतर वास्तविक काउब्वाय बहुत कम वेतन पर दिन ढल जाने के काफी बाद तक पशुओं के विशाल झुंडों की खिदमत में लगे रहते थे, पर यह दिखाना सिनेमा के लिए भव्य और रोचक नहीं था।

अभी हाल तक, 'वेस्ट' के डाकुओं को महान दिखाया जाता रहा है। उदाहरणार्थ, 'बिली द किड' वास्तव में एक बाल-अपराधी था और संभवतः एक मनोविकारी-हत्यारा था, पर फिल्म में उसे अच्छे गुणों-

वाले, खूबसूरत और सर्वप्रिय अभिनेताओं, जैसे रॉबर्ट टेलर, पॉल न्यूमैन और ऑडी मर्फी की तरह दिखाया गया है। फिल्मों में नयी यथार्थवादी प्रवृत्ति और इतिहास के थोड़े से अध्ययन का परिणाम यह निकला कि भैंगे और कील-मुहांसों से भरे गालोंवाले माइकेल पोलर्ड को एक बिलकुल उपयुक्त नाम की फिल्म 'डर्टी लिटिल बिली' में भूमिका दी गयी।
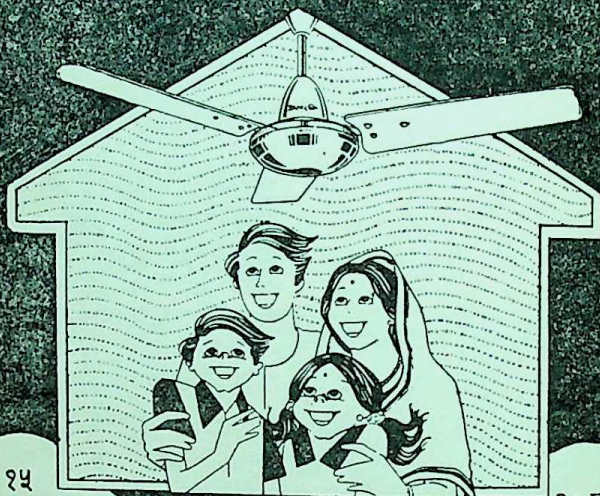
फिल्मों ने तीसरे और चौथे दशक के बदमाशों और ठगों को मोहक दिखाने की कोशिश की। इन हत्यारों, बैंक-लुटेरों और अपहरण करनेवालों की भूमिकाएं निभानेवाले जेम्स कैगनी, हेनरी फॉण्डा, जार्ज रैफ्ट और स्पेंसर ट्रेसी-जैसे अभिनेता थे। फिल्मों के अंत में उन्होंने अपने अपराधों का परिणाम प्राण देकर भुगता (जैसा कि हॉलीवुड का नियम था)। किंतु अंतिम सजा पाने से पूर्व अपने मुकाबले के दुबले-पतले बदमाशों को मारने और सुंदरियों की प्रगाढ़ मैत्री का आनंद वे उठा चुके होते थे। पटकथा में इन बुरे आदमियों के दुर्व्यवहार का दोष प्रायः समाज पर डाला जाता था क्योंकि समाज ने ही उन्हें भले बनने का अवसर नहीं दिया। ये पटकथा-लेखक इन 'बुरे आदमियों' की आचार-संहिता की तुलना रॉबिन हुड से करते थे जो धनिकों को लूटकर निर्धनों को देता था।

पुलिसवाले फिल्मों में बराबर रूढ़चरित्र के रूप में ही दिखाये गये हैं। सातवें दशक में, अपराध की बुरी स्थिति पर नागरिकों की चिंता का प्रभाव फिल्मों पर पड़ा। हाल की कुछ पुलिस-संबंधी लोकप्रिय फिल्मों में कानून का पालन कराने वाले अधिकारियों को कुछ ऐसी निपुण विधियों का प्रयोग करते दिखाया गया है, जैसा फिल्मी बदमाश चालीस साल पहले किया करते थे। इससे यह पता लगता है कि रूढ़-चरित्र फैशन में आते-जाते रहते हैं।

शायद 'रूढ़चरित्र' फिल्मों ने जिस सबसे बड़े वर्ग को हानि पहुंचायी वह महिलाओं का वर्ग है। उपन्यासकार वर्जीनिया वूल्फ ने एक बार कहा था, "सदियों से महिलाओं को ऐसा दर्पण समझा गया है जिसके जादू और आनंददायक शक्ति के कारण पुरुषों को अपनी प्रतिच्छवि दोगुनी दिखायी देती है।" फिल्मी दुनिया के विकृत करनेवाले शीशों ने नारी को और घटा दिया। प्रणय में नारी केवल पुरुष को जीतने की अभिलाषा इसीलिए रखती है, ताकि पत्नी और मा बन सके। यह कभी सोचा ही नहीं गया कि वह किसी कैरियर या कलात्मक प्रतिभा की आकांक्षा रखती हो। फिल्मों में पारंपरिक तौर से पुरुष ही स्त्री को स्वीकार करता या ठुकराता है। एक स्त्री यदि पुरुष को आकर्षित करने का बहुत अधिक प्रयास करती तो वह कुलटा या आवारा समझी जाती। फिल्म समाप्त होने तक वह नायक को खो देगी और आखिर में या तो वह खल-

नायिका या हास्यास्पद दिखायी जाएगी। दूसरी तरफ, जो पुरुष स्त्रियों के पीछे बुरी तरह पड़ा रहता था और फिर अन्य ऊंची चीजों की तलाश में बिना किसी अफसोस के उन्हें छोड़ देता था, रोमानी नायक माना जाता था।

प्रहसनों में विवाहित पुरुषों को अनिवार्य रूप से दब्बू पति के रूप में दिखाया जाता था। उद्देश्य यह दर्शाना था कि एक स्त्री के चक्कर में पड़कर विवाह-जैसी संस्था में फंसने वाले मूर्ख थे।

फिल्म बनानेवाले बड़े स्टूडियो तब तक फलते-फूलते रहे जब तक टेलीविजन ने उनके धंधे में घुसपैठ नहीं की। बड़े स्टूडियो आज के छोटे स्टूडियो की अपेक्षा दस गुनी फिल्में बनाते थे। उनमें से अधिकतर जल्दबाजी में बनी फिल्में होती थीं। पटकथा लिखनेवालों के लिए यह अधिक आसान पड़ता था कि वे एक बनी-बनायी रूढ़िबद्ध पटकथा के आधार पर कोई फिल्म बनायें। आम जीवन से कोई नया चरित्र उठाकर उस पर कहानी रचना उनके लिए अर्थहीन था। स्टूडियो चलानेवालों का तो यह विश्वास था कि दर्शकों की रुचियों के बारे में उन्हें दिव्य दृष्टि प्राप्त है।

चौथे दशक की भयंकर आर्थिक मंदी के दौरान अमरीकी फिल्म-प्रहसनों को देखकर कोई विदेशी यही समझता कि संभवतः हर अमरीकी परिवार संगमरमर से बने ऐसे भव्य भवन में रहता है जिसमें स्विमिंग-पूल एवं नौकर-चाकर होते हैं। वास्तविकता यह है कि उस समय बहुत कम अमरीकी जीवन की आवश्यक वस्तुएं प्राप्त कर पाते थे, किंतु फिल्म-निर्माताओं ने बड़ी दूरदेशी के साथ यह समझ लिया कि दर्शक फिल्मों में अपनी तकलीफों की याद ताजा करने नहीं आते हैं, वे तो उन्हें भूलकर कल्पना-लोक में खो जाना चाहते हैं। कई दशक बाद, जब देश अपेक्षाकृत समृद्ध हो चला था, फिल्मों द्वारा सामाजिक बुराइयों के प्रस्तुतिकरण को दर्शकों ने स्वीकार कर लिया।

अब, जबकि मनोरंजन का प्रमुख साधन फिल्मों के स्थान पर टेलीविजन हो गया है, फिल्में छोटी और समझदार दर्शकों के लिए बनायी जा रही हैं। चूंकि अब फिल्म-उद्योग इस संबंध में निश्चिंत नहीं है कि जनता फिल्म देखने आएगी ही, अतः निर्माताओं को कुछ ऐसा प्रस्तुत करना होगा जो टेलीविजन-फिल्मों से इतर और अच्छा हो।

एक से अधिक विवाह करना न तो अब मनोरंजन का विषय रह गया है और न ही विनोद का, यह तो अब केवल गुजरी बातों की याद ही रह गया है। खोखले पात्र अब पटकथा सुनाकर दर्शकों को आकर्षित नहीं कर सकते। जब मैं शनिवार की दोपहरों में खेलते-कूदते मक्की का लावा खाया करता था तब की अपेक्षा आज के फिल्म-निर्माता कमउम्र, पर अधिक समझदार हैं।

आज फिल्म अधिक सम्यक भावुकता और विश्वसनीय कथानक की मांग करती है। नवयुवकों ने बचपन से ही टेलीविजन पर फिल्में देखी हैं, यदि वे फिल्में देखने बाहर जाते हैं तो कुछ विशेष गहराई, पूर्ण विश्वसनीयता और प्रतिबद्धता पाना चाहते हैं। इसलिए आज फिल्मी लेखक, निर्देशक और अभिनेता उपन्यासकार एफ. स्कॉट फिट्जजेराल्ड की इस सलाह को मानने लगे हैं कि 'किसी व्यक्तीय चरित्र से शुरू करने पर एक 'किस्म' बन जाती है। एक 'किस्म' से शुरू करने पर कुछ नहीं बन पाता है।'

जनता...जनयुग

● भगवत झा आजाद

ठहरो
सुनो
रहो चुपचाप
यह घोषणा हमारे राजा की है

राजा की ?
हो गयी भूल
आप तो सेवक हैं जनता के
वोटों की सरकार
कि जिसके लीडर हैं सम्राट
(मन में गुदगुदी हुई)
सम्राट नेपोलियन बोनापार्ट,
जॉर्ज, चार्ल्स, लुइस, एलिजाबेथ
यादकर आनंद-मग्न हो जाता हूं

किंतु, सेंट हेलेना
कब्र से उखाड़कर फांसी
रूस की लाल क्रांति
फ्रांस की राज्य क्रांति
लुइस प्रेयसी, जिसके सुंदर काले बाल
केवल एक रात में
सन से हुए सफेद
याद कर सिहर-सिहर जाता हूं
प्रजातंत्र की अजब कहानी है

हर पांच वर्ष में होते आता
अगला चुनाव
(अब तो मध्यावधि भी है)
और उस चुनाव में
गर जनता सुन पायेगी
कि तुम कहते हो मुझको सम्राट
तो फौरन बागी हो जाएगी
(हो भी रही है)
और यह रास-रंग
यह आलीशान भवन
ये गद्दीदार कुरसियां
ये इश्क और आराम
सभी मिट जाएगा
रह जाएगा शून्य
शून्य केवल

और आप वोटर हैं
किंतु बंधु
जो तुम्हें मिला अधिकार
बहुत दिनों का
सपना आज हुआ साकार
कहो, क्या कीमत आंकी
तुमने उसकी
दो सेर चना या धान
गरम चाय की प्याली
या गरम पूरियां-पान
या जातिवाद का
भीषण-नग्न स्वरूप
बोलो, अधिकार कहां पर
कितने में बेचा है
मिला तुम्हें अधिकार

सड़कों पर खोदो नालियां
जिसको चाहो, जैसे चाहो
दे दो कड़वी-तीती गालियां
और कहीं केले के छिलके
(जो खुद ही खाकर फेका था)
पर जो फिसले पांव
तो गला फाड़कर
जरा जोर से कहना प्यारे
तेरी सरकार निकम्मी है
(जैसे इनकी नहीं हो)

और इन्हें पहचानो
सूट-बूट में
नयी ड्रेस में
नये वेश में
आई. ए. एस. हैं
आई. पी. एस. हैं
कहते अपने को
'वाच-डाग' हैं प्रजातंत्र के
महादेश के
कोटि-कोटि जनता के
भाग्य-विधायक हैं ये

पूछो इनसे
(घेरो इनको)
तेरी किस्मत
कहां, किधर, किन फाइलों में
लाल-लाल फीतों में
कैद किया है
रख छोड़ा है

और मुझे
सहयोग नहीं
बाधाएं दो
मैं संसार बना लूंगा
मैं नहीं चाहता दीक्षा
मैं नहीं मांगता भीख
मैं 'गुरुडम' का विद्रोही
क्यों चाहूं तुझसे सीख
मैं पराक्रम पौरुष का हामी
मुझको स्वयं बढ़ने दो
सहयोग नहीं, बाधाएं दो
मैं संसार बना लूंगा

यह पीटी लकीर
फिर भी तुम चाहो चुंगी
मेहनत मेरी तकदीर
तुम मौज उड़ाओ 'जोगी' (भोगी)
यह नहीं चलेगा 'जोग'
यह नहीं चलेगा भोग
मैं, जनता जनयुग की हूं हुंकार
मुझको स्वयं बढ़ने दो
सहयोग नहीं, बाधाएं दो
मैं संसार बना लूंगा

(७, अशोक रोड, नयी दिल्ली)

एक मेज के साझीदार

• नीलम प्रभा

हम इनसान हैं
कोई अकेला टापू, कोई अपरिचित बंदरगाह नहीं
कोई सुनसान तट, कोई निर्जन समुद्री राह नहीं
आपस में कट के चलेंगे, तो भला जिएंगे कैसे
एक मेज के साझीदार होकर
चुप्पी के साथ कोई पसंदीदा पेय पिएंगे कैसे
भीड़ के अंदर से, कतरा के नहीं निकले
सच के ताप में लावारिस ओलों की तरह नहीं पिघले
ऐसे सारे रिश्ते हमसे खत्म
हम रिश्तों से खत्म हो जाएंगे
फिर शेष क्या बचेगा
काल की अंधेरी कंदराओं में
अभागे चमगादड़ों की तरह खो जाएंगे
उस गहरे चिर एकांत में कोई रोशनी नहीं मिलेगी
जिंदगी, वक्त, किस्मत और दुनिया
किस-किस को 'फ्लर्ट' की संज्ञा से विभूषित करेंगे
अपनी ही इच्छाएं हमें धूर्त पुरुष-स्त्रियों की भांति
छलेंगी

चलो
किसी निःशब्द सड़क पर थोड़ी देर घूमकर करीब
हो जाएं
एक-दूसरे को समझें
अपने बन लें
नहीं तो निस्संदेह यह बात तय है
कि कल इनसान के भीतर से इनसान नहीं
कोई अकेलापन जन्म ले

(द्वारा प्राचार्य, नदी घाटी योजना विद्यालय, तेनुघाट,
हजारीबाग)

जयशंकर प्रसाद : एक अंतरंग रेखाचित्र-१

छायावाद मन्वंतर के मनु

● श्रीरामनाथ 'सुमन'

प्रथम यूरोपीय महायुद्ध (१९१४-१९१८ ई.) के दिनों में मैं बालक ही था, किंतु उस छोटी अवस्था में भी आंग्ल-साम्राज्यवाद का विरोधी होने के कारण धौरहरा (तहसील चंदौली, जिला वाराणसी) के आस-पास के गांवों में, जहां मैं पिता के साथ जाया करता था, मुझे 'जरमनी' के नाम से पुकारा जाने लगा था। जब वह भयानक युद्ध धन-जन की अपार क्षति के बाद समाप्त हो गया तब अपने पीछे एक कराह छोड़ गया। समाज में चतुर्दिक एक जिज्ञासा थी, यद्यपि इस जिज्ञासा की जिह्वा मानो किसी मंत्र द्वारा कीलित कर दी गयी हो—'लब बंद, जुबां बंद, कलम बंद, नजर बंद।' आलोड़न तो था, परंतु अभिव्यक्ति नहीं थी; दर्द था, आह नहीं थी; रस था, किंतु आलंबन नहीं था; दिल था, हौंस नहीं थी। एक घुटन थी, एक मूर्च्छना। परंतु इस मूर्च्छना के आंचल तले सोया जागरण कुनमुनाने लगा था।

वे मेरे पनपने के दिन थे, और मेरे चारों ओर धुआं था। खीझ थी, पर असमर्थता भी थी। इसीलिए खीझ और असह्य हो रही थी। भावुकता के पंख उग आये थे। आकाश में उड़ने लगा था, परंतु अंदर से खोखला-सा, अपने ही भार से दबा हुआ—उस पंछी के समान जो कफस की तीलियों से निकलकर उड़ चला हो, परंतु जिसके न आगे, न पीछे, कहीं आशियां के चिह्न शेष रह गये हों; कहां जाए, किधर उड़े? मेरा मन और मेरा जीवन अपने में ही डूब रहा था। कुछ संस्कार, कुछ राजनीति, कुछ काव्य और कुछ आध्यात्मिकता की खिचड़ी मेरे अंदर पक

रही थी। आध्यात्मिकता शब्द लिखते हुए मैं अपने दुस्साहस का अनुभव कर रहा हूं, क्योंकि उसके संबंध में स्पष्ट विचार कर सकने की क्षमता मझमें न थी, परंतु अंदर जो आलोड़न था—एक जिज्ञासा, जिसके ओंठ सी दिये गये-से लगते थे—उसके लिए मुझे इससे उपयुक्त दूसरा शब्द नहीं मिल रहा है।

ऐसे थे वे १९१८ के दिन। चंद दिनों पहले ही मैंने लिखना शुरू किया था। साहित्य में मेरा जन्म गांधीजी (गद्य), तब 'कर्मवीर गांधी'—कभी काठियावाड़ी पगड़ी, कभी नंगे सिरवाले—और ईश-स्तवन (पद्य) को लेकर हुआ। ये दोनों धाराएं आज तक मेरे जीवन में हैं। वे फैलती गयी हैं, गहरी होती गयी हैं; उन्होंने मुझे परिष्कृत और परिप्लावित किया है। वटवृक्ष की अगणित बांहों की भांति मुझसे ही निकलती हैं, दूर तक फैल जाती हैं, परंतु कभी मुझे छोड़ती नहीं। वे ही मेरे प्रेम की आश्वासनमयी भुजाएं हैं, मेरे यौवन की हरीतिमा हैं; मेरे वार्द्धक्य की लाठी हैं; मेरे स्वप्नों के इंद्रजाल हैं; मेरी भक्ति एवं आत्मार्पण के स्रोत हैं और जिस पथिक के जीवन में चलना ही चलना है, उसकी कल्पना के नीड़ हैं, उसकी संध्या की मंजिलें हैं।

प्रथम दर्शन

अपनी किशोरावस्था के ऐसे ही हड़कंपी दिनों में मैंने छायावाद मन्वंतर के मनु जयशंकर प्रसाद के प्रथम दर्शन किये थे। बात यों हुई कि अपने बचपन के मित्र श्री विश्वनाथ शर्मा (जो बाद में काशी विद्यापीठ के सहायक मंत्री हो गये और शायद अभी तक हैं) के साथ मैंने युवकों में स्वस्थ साहित्य के पठन-पाठन की रुचि पैदा करने के उद्देश्य से 'साहित्य-सुमन पुस्तकालय' नाम से एक पुस्तकालय-वाचनालय की स्थापना की थी। इसी पुस्तकालय के लिए पुस्तकें एकत्र करने के सिलसिले में साहित्यकारों के पास जाना पड़ता था। इसी माध्यम से अनेक गुरुजनों तथा साहित्यकारों से मेरा परिचय हुआ था। इसी उपक्रम में एक दिन तीसरे पहर मेरी प्रथम भेंट प्रसादजी से हो गयी।

वह दृश्य प्रायः पचपन वर्षों के बाद, आज भी मेरी आंखों के सामने बिलकुल स्पष्ट और ताजा है। काशी का सराय गोवर्द्धन महल्ला, शिवालय के बाग के खपरैलवाले बाहरी बरामदे में बिछा तख्त, कुछ लोगों की मंडली, जिनमें प्रसिद्ध कवि-चक्रवर्त्ती पं. देवीप्रसाद भी थे। इन सबके बीच एक प्रौढ़ युवक— गोरा-चिट्टा, मझोला कद, गठी हुई देहयष्टि, भव्य ललाट, राजकुमारों-सा चेहरा-मोहरा। आंखों में एक विनोद, एक जादू, एक रहस्य। सामने देखती हुई भी मानो दूर का कोई दृश्य देखती-सी आंखें। यही थे प्रसादजी।

बातें हुईं। पर बातें भी क्या हुईं! बस, इधर-उधर की बातें। मैं उन्हें देखता रहा और पीता रहा। उनकी आंखें,

सारी बातों के बीच, रह-रहकर मेरे आगे उभरकर आ जाती थीं। आज भी उसी तरह, आंखें मूंदते ही आ जाती हैं। उनमें संसार के प्रति विनोद का भाव था। उनमें दुनिया का दर्शन था, परंतु उसके प्रति एक सूक्ष्म एवं रहस्यमय विनोद-दृष्टि भी थी। सबमें रस लेते हुए भी उनमें एक विचित्र निस्संगता थी।

बाद में तो उनसे बड़ी घनिष्ठता हुई। उन्हीं के मकान में, उनके पड़ोसी, एक प्रकार से परिवार के बनकर हम वर्षों रहे। मैंने उन्हें खूब देखा-परखा, हर पहलू से देखा। उनका शरीर बदला, परिस्थिति बदली, उनके चतुर्दिक का संसार कुछ से कुछ होता गया, परंतु वे आंखें अंधकार और प्रकाश में, विपदा और संपदा में, दुःख और सुख में ज्यों की त्यों रहीं। वे, उनमें जो कुछ चिरंतन था, उसका प्रतीक थीं। शैव दर्शन का समस्त प्रत्यभिज्ञातत्त्व जैसे उनमें आकर समा गया हो।

जीवन की पृष्ठभूमि

प्रसादजी के विषय में कुछ लिखने के पूर्व जीवन की उस पृष्ठभूमि की जानकारी आवश्यक है, जिसमें उनका उदय और विकास हुआ। कुछ लोगों ने उन्हें सामंती युग के वैभव-विलास का प्रतिनिधि बताया है, जो गलत है या जिसमें केवल आंशिक सत्य है। यह सच है कि प्रसादजी के जन्म के समय और उसके पूर्व उनका घराना वैभव और प्रतिष्ठा के शीर्ष पर था। प्रसादजी के पितामह शिवरत्न साहु के समय से ही कवियों, गायकों और कलाविदों का जमघट इनके यहां लगा रहता था। वे प्रतिदिन कितने ही दीन-दुखियों और विद्वानों की सहायता करते रहते थे। शौचादि के लिए जाते समय लोग वस्त्र तथा लोटा तक मांग लेते थे। भरा-पूरा कुटुंब था; आय अच्छी थी, परंतु खर्च भी बहुत था। ये लोग जौनपुर से आकर काशी में बस गये थे और सुरती-जर्दे-तंबाकू के व्यवसाय में अग्रणी थे। शिवरत्न साहु ने दो विवाह किये थे। पहली से शीतलप्रसाद एकमात्र पुत्र हुए। वे आजीवन अविवाहित रहकर अध्यापन-कार्य करते रहे और घर-गृहस्थी के झगड़ों में कभी नहीं फंसे। दूसरी स्त्री से पांच पुत्र हुए—देवीप्रसाद, बैजनाथ, गिरिजाशंकर, जित्तू साव और गौरीशंकर। सबसे बड़े थे देवीप्रसाद। यही देवीप्रसाद प्रसादजी के पिता थे। देवीप्रसाद के भी पांच संतानें हुईं। इनमें सबसे बड़ी थीं पुत्री देवकी। जीवित पुत्रों में बड़े थे शंभुरत्न और सबसे छोटे थे जयशंकर।

पितामह शिवरत्न साहु की भांति ही पिता देवीप्रसाद भी बड़े उदार और धर्मात्मा थे। विद्वानों और साधु-पुरुषों की सेवा-सहायता उनका जीवन-व्रत था। प्रसादजी के सहपाठी पं. श्रीकृष्ण शुक्ल ने उनकी उदारता एवं क्षमा के विषय में एक घटना का उल्लेख किया है। संस्कृत कॉलेज के एक छात्र ने एक दिन उनसे कहा—"साहुजी! मेरी परीक्षा निकट है
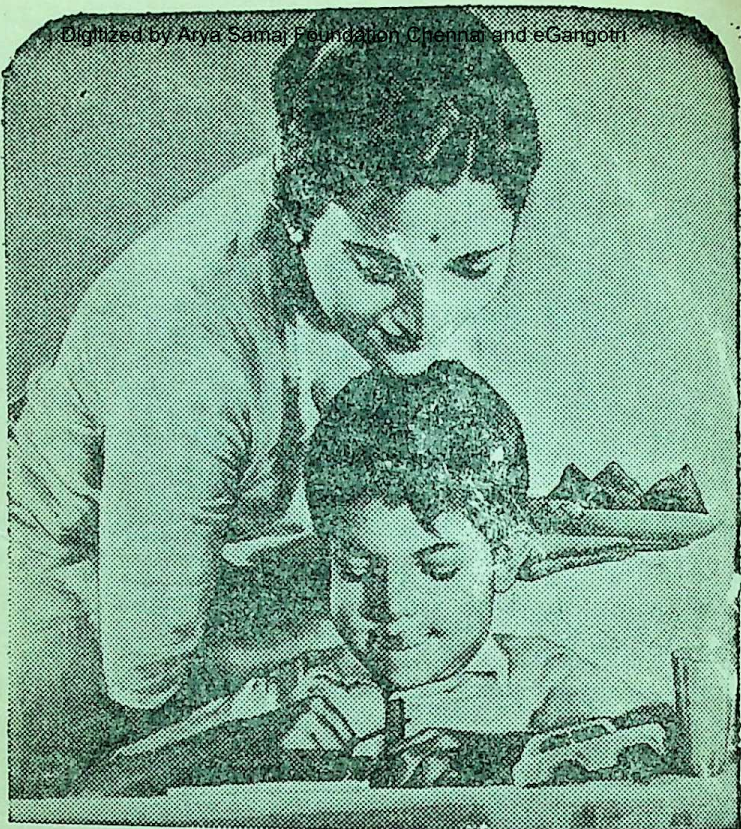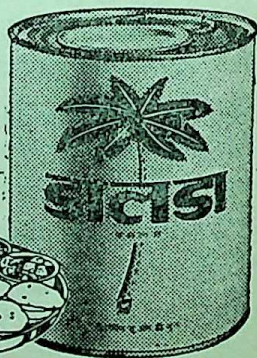
और मुझे एक पुस्तक की बड़ी आवश्यकता है। कृपया आप मुझे वह पुस्तक दिलवा दें।" साहुजी ने कहा—"अभी मुनीमजी नहीं आये हैं। शाम को आना तो दिलवा देंगे।" छात्र दो-तीन बार आया, परंतु मुनीम से भेंट नहीं हुई। एक दिन वह तड़के ही आ पहुंचा। उस समय साहुजी चांदी का पूजा-पात्र लेकर घर से बगीचे के शिव-मंदिर में पूजा करने जा रहे थे। छात्र के याद दिलाने पर उन्होंने कहा—"इतने तड़के मुनीमजी कहां मिलेंगे ? दस बजे तक आओ तो पोथी का मूल्य दिला दें।" छात्र कई बार निराश लौटने से खीझा हुआ था। दो दिन बाद उसकी परीक्षा होनेवाली थी। बस, उत्तेजना में आकर उसने साहुजी के गाल पर एक तमाचा जड़ दिया। झट साहुजी के नौकर दौड़े किंतु साहुजी ने सबको रोक कर छात्र के चरण पकड़ लिये और बोले—"मैं इनका अपराधी हूं। इन्हें दो दिन मेरे द्वार से विमुख लौटना पड़ा है। अभी चांदी का यह पूजा-पात्र ले जाओ और बेचकर सब दाम पंडितजी को दे दो।" ऐसा ही किया गया। ऐसे साधु प्रकृति के थे देवीप्रसादजी।

पिता देवीप्रसाद के बाद जयशंकर प्रसाद के बड़े भाई शंभुरत्न प्रसाद घर के कर्ता और व्यवसाय के प्रधान अधिकारी हुए। ये भी बड़े उदार और खर्चीले स्वभाव के थे। चाचा गिरिजाशंकर तथा अन्य चचेरे भाइयों को यह बात न भाती थी। इसलिए झगड़े खड़े हुए; संपत्ति को लेकर मुकदमा चला। कई साल यह चलता रहा। मजा यह कि सब एक ही घर में रहते थे और दुकान में भी बैठते थे, पर दिन में मुकदमा लड़ते थे। शंभुरत्न को मारने के लिए गुंडे भी लगाये गये, परंतु उनका शरीर इतना बलिष्ठ और व्यक्तित्व इतना रोबीला था कि उनके सामने किसी का साहस हाथ उठाने को न होता था। सहस्राधिक डंड-बैठक उनका नित्य का नियम था। शान-शौकत का यह हाल था कि अपने प्रिय घोड़े को स्नान कराने के बाद एक बड़ी परात भरकर नित्य दूध-जलेबी खिलाते थे।

मुकदमे में लाखों खर्च हो गये। अंत में दुकान तो शंभुरत्न को मिल गयी; शेष चल-अचल संपत्ति के चार बराबर हिस्से हुए, जो अन्य भाइयों के हिस्से में आये। सारा कर्ज भी शंभुरत्नजी के हिस्से में आया। इस मुकदमे में घर के वैभव का सत्यानाश हो गया। फिर भी जब तक बड़े भैया शंभुरत्नजी जीवित रहे, जयशंकर प्रसाद को बच्चे की भांति मानते रहे और उनकी सुख-सुविधा की व्यवस्था खुद ही करते रहे। १२ से १७ साल की उम्र तक प्रसाद बड़े सुख से रहे। व्यायाम, खान-पान का पूरा प्रबंध था। दो पहलवान प्रसाद को कुश्ती लड़ाने के लिए रखे गये थे। वह १००० डंड-बैठक करते। उस समय १८ गायें घर में थीं। प्रसाद व्यायाम के बाद डेढ़ पाव बादाम की गुद्दी

या गिरी छानते थे। टमटम के लिए तीन बढ़िया घोड़े थे।

परंतु सुख के दिन जल्द समाप्त हो गये। मुकदमे के फैसले के दो ही वर्ष बाद शंभुरत्नजी का देहांत हो गया। अब नाटक का दूसरा अंक शुरू हुआ। घोर कठिनाइयों का युग आया।

प्रसाद १२ वर्ष के थे तब पिता गये। १५ वर्ष के थे तब मां चली गयीं। १७ वर्ष के थे तब पिता-तुल्य बड़े भाई भी छोड़ गये।

भाई की मृत्यु के बाद कठिनाइयां

बड़े भाई की मृत्यु की चोट सबसे गहरी लगी। जब पिता-माता का देहावसान हुआ, तब भाई संभालने वाले थे। भाई के बाद अब सहायता करनेवाला कोई न था; नोचने-खसोटनेवाले बहुत थे। व्यवसाय का, घर-गृहस्थी का पूरा भार इन पर आ पड़ा। सबसे बड़ी कठिनाई तो यह थी कि वैभव के दिनों की कुल-परंपरा को तिलांजलि भी नहीं दी जा सकती थी; भैया भारी कर्ज का भार अलग छोड़ गये थे। जयशंकर प्रसाद की पूरी परीक्षा थी।

ये ऐसे दिन थे जब सामान्य मानव टूटकर बिखर सकता था, किंतु प्रसाद के जीवन की नींव में दादा और पिता की उदारता के साथ, गहरा संयम, आत्म-नियंत्रण, गंभीर शास्त्र-ज्ञान, मौन त्याग और कष्ट-सहन की वृत्ति भी थी। दीनबंधु ब्रह्मचारी के ज्ञान-दान से उनका चरित्र बहुत पुष्ट और उन्नत हो चुका था। इसलिए विपदा उन्हें तोड़ न सकी, अपितु उनमें एक अपूर्व शक्ति का विकास करने में सहायक हुई। विपत्ति की छेनियों से परम पुरुष एक उच्चस्तरीय मानव को गढ़ने लगा। प्रसादजी पैदा जरूर एक वैभव-संपन्न सामंती गृह में हुए थे, किंतु उनका निर्माण दुःख-कष्ट, आवश्यकताओं और अनेक प्रकार के अभावों के बीच हुआ। बचपन के सुनहले दिन बड़े भाई के साथ सदा के लिए लुप्त हो गये। इसके बाद तो जीवन भर वे संघर्ष ही करते रहे।

डूबते-डूबते बचे

यों बचपन भी बेलाग तो नहीं बीता। संवत १९५८ में, जब १२ वर्ष के थे, मां और तीन बहनों के साथ नर्मदा तट स्थित झारखंड स्थान को गये थे। वहीं इनका मुंडन हुआ था। वहीं नाव पर घूमने गये थे। वहां के प्राकृतिक दृश्यों का इनके मन पर स्थायी प्रभाव पड़ा था। उनकी एक कविता में इसका प्रत्यक्ष संकेत है। वहीं स्नान करते समय फिसलकर गहरे जल में चले गये और डूबने लगे। मुश्किल से लोगों ने निकाला। झारखंड में मुंडन होने के कारण घर के लोग इन्हें झारखंडी कहते थे। इसी साल पिता के देहांत से पहला कठोर आघात लगा था। तीन वर्ष बाद मां इन्हें छोड़ गयीं और तब से भाई और भाभी ही इस मातृपितृविहीन बालक के स्नेहाधार रह गये। **(क्रमशः)**

—साधना सदन, लूकरगंज इलाहाबाद-१

१. रमेश अपनी पत्नी से ५ वर्ष बड़ा है और उसकी पत्नी की उम्र अपनी बच्ची की उम्र से चार गुना अधिक है। यदि ३ साल पहले बच्ची की उम्र ३ साल थी, तो अब रमेश की उम्र कितनी है—क. ३५, ख. ३२, ग. २९, घ. ३० साल?

२. एक घड़ी आईने के सामने रखी है। आईने में वह पौने ९ बजा रही प्रतीत होती है। बताइए असली समय क्या है—क. ३-४५, ख. ३-१५, ग. ९-१५ बजे?

३. भारत के ऐसे कौन दो महापुरुष हैं, जो ६ मई, १८६१ को पैदा हुए, लेकिन जिनके कार्यों और गुणों में दूर से भी साम्य नहीं था—क. महात्मा गांधी, ख. विनोबा भावे, ग. मोतीलाल नेहरू, घ. रवीन्द्रनाथ टैगोर?

अपनी बुद्धि पर जोर डालिए और यहां दिये प्रश्नों के उत्तर खोजिए। उत्तर इसी अंक में कहीं मिल जाएंगे। यदि आप सारे प्रश्नों के उत्तर दे सकें तो अपने सामान्य ज्ञान को श्रेष्ठ समझिए, आधे से अधिक में साधारण और आधे से कम में अल्प।

—संपादक

४. निम्नलिखित स्थान भारत के किन राज्यों में हैं?

क. छोटा नागपुर, ख. कूच-विहार, ग. कोचीन, घ. चौबीस परगना, च. संथाल परगना।

५. ऐसे कोई चार शब्द बताइए जिनके पहले अक्षर पर अनुस्वार लगा देने से उनके अर्थ बदल जाते हैं?

६. वह कौन-सी संख्या है जिसको उसी से गुणा करने पर उतना ही आता है जितना कि उसमें उसी संख्या का जोड़ करने पर?

७. पिता अपने पुत्र से सदैव—क. बुद्धिमान, ख. लंबा, ग. बड़ा, घ. स्वस्थ होता है। इनमें कौन-सा ठीक है?

८. क. **रमेश** फुटबाल जानता है, क्रिकेट नहीं। ख. विनोद हाकी जानता है, फुटबाल नहीं। ग. गोपाल क्रिकेट जानता है, हाकी नहीं। घ. अनीस हाकी जानता है और क्रिकेट भी। यदि हरेक व्यक्ति दो खेल जानता हो तो अनीस की तरह कौन है?

९. एवरेस्ट पर अब तक कितने व्यक्ति चढ़ चुके हैं? एवरेस्ट पर चढ़नेवाली महिला का क्या नाम है और वह किस

देश की है?

१०. भारत में निम्नलिखित कहां हैं? क. बेतार इलेक्ट्रानिक टेलीफोन कारखाना, ख. गंदे पानी को शुद्ध करने का देश का सबसे बड़ा संयंत्र, ग. मोती डूंगरी, घ. भारतीय भू-उपग्रह परियोजना-केंद्र।

११. संसार के कितने विश्वविद्यालयों में हिंदी की पढ़ाई की व्यवस्था है? इनमें सबसे अधिक किस देश में हैं?

१२. फिलीपीन के भूतपूर्व राष्ट्रपति के नाम से दिये जानेवाले अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कार का क्या नाम है? १९७४ का यह पुरस्कार किस भारतीय को मिला है?

१३. क. अमरीका ने ऐसा कौन-सा संचार-उपग्रह छोड़ा है जिसका भारत अपने गांवों में टेलीविजन-कार्यक्रम प्रसारित करने में प्रयोग करेगा?

ख. कनाडा तथा फ्रांस द्वारा छोड़े गये संचार-उपग्रहों के क्या नाम हैं?

१४. भारत के ३७वें संविधान-संशोधन में किस बात की व्यवस्था है?

१५. ये शब्द किसके हैं—"यह मत पूछिए कि आपका देश आपके लिए क्या कर सकता है, बल्कि यह बताइए कि आप अपने देश के लिए क्या कर सकते हैं।"

१६. सूर्य के चारों ओर घूमने में पृथ्वी एक वर्ष में कितना फासला तय करती है? कितनी गति से?

१७. १ से ९ तक के अंकों से ९ खानों का एक ऐसा वर्ग बनाइए जिसमें अंकों को किसी भी ओर से सीधे या आड़े जोड़ने पर १५ आता हो। एक अंक का प्रयोग एक बार ही होना चाहिए।

१८. गोविंद अपने एक रिश्तेदार से मिलने के लिए ट्रेन से बाहर जानेवाला था। मिलने का समय था प्रातः साढ़े आठ बजे। वहां पहुंचने के लिए केवल एक ही ट्रेन जाती थी। गोविंद ऐसे समय पर घर से रवाना हुआ कि यदि ट्रेन लेट हो जाए तो वह निर्धारित समय पर वहां नहीं पहुंच सकता था और यदि गोविंद ट्रेन न पकड़ सके तो भी समय पर उसका पहुंचना असंभव था। यह हमें ज्ञात नहीं है कि ट्रेन लेट थी या नहीं। क्या आप बता सकते हैं कि गोविंद अपने रिश्तेदार से मिलने के लिए उक्त समय पर पहुंच सका था या नहीं?

१९. नीचे दिये गये चित्र को ध्यान से देखिए और बताइए कि यह क्या है।

मनोविकार-चिकित्सा के प्रणेता

● डॉ. जान्हवी संत यादव
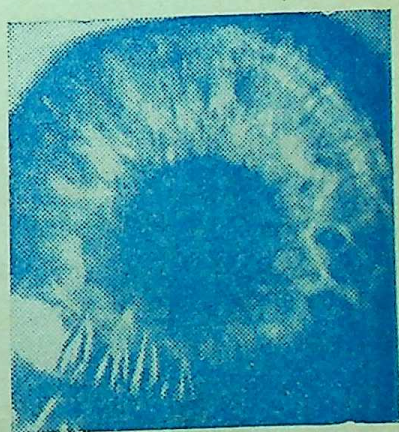
लगभग १८ वीं शताब्दी तक विभिन्न मानसरोग ऐसे माने जाते थे कि साधारण चिकित्सा से उनका उपचार संभव नहीं था। जटिल मनोविकार या पागलपन की अवस्था में रोगी को मानसिक चिकित्सालय में रख दिया जाता था, ताकि वह समाज के अन्य लोगों का कोई भी अहित न कर सके। इन चिकित्सालयों में भी उसका कोई विशेष उपचार नहीं होता था। उन्हें खतरनाक इनसान समझकर जंजीर से बांध दिया जाता था। कभी उन्हें भूखा-प्यासा तड़पाया जाता था। डंडों से मारकर बेहोश किया जाता था। उन्हें शारीरिक पीड़ा पहुंचाने के उद्देश्य से ही मानो मानसिक चिकित्सालय खोले गये थे।

पागलपन मानसरोग है, यह कल्पना सर्वप्रथम ग्रीस के कुछ चिकित्सकों ने की। ईसा-पूर्व पहली शताब्दी में ग्रीस चिकित्सक ॲसलपियाडीज ने ये विचार प्रस्तुत किये। उसका कहना था कि पागलपन एक मानसरोग है तथा अन्य रोगों की भांति ही पागल मनुष्य की भी चिकित्सा की जानी चाहिए। पागल मनुष्य के दिमाग को शांति मिलनी चाहिए। यह शांति मधुर संगीत अथवा नींद द्वारा प्राप्त हो सकती है। ॲसलपियाडीज की इस विचारधारा की ओर बाद के चिकित्सकों ने विशेष ध्यान नहीं दिया।

१८ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में फ्रांस के डॉ. फिलिप्स पिनैल का ध्यान सर्वप्रथम पागल मनुष्यों की ओर आकृष्ट हुआ। उन्होंने कठिन परिश्रम तथा प्रयास से पागलों के मस्तिष्क का अध्ययन करके यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया कि ये लोग रोगी हैं, और कुछ नहीं। उन्होंने तंत्रिका-विज्ञान (न्यूरॉलॉजी) और रोग-विज्ञान (पैथॉलॉजी) के क्षेत्र में खोज करके पागल रोगियों के संबंध में उस समय फैली हुई अनेक भ्रांत धारणाओं का निवारण किया और इस तरह मानसिक रोगियों के वैज्ञानिक अध्ययन का मार्ग प्रशस्त कर दिया। आधुनिक मनोविकार विज्ञान उनके अन्वेषण का ही फल है। आज भी कई मानसिक चिकित्सालयों में डॉ. पिनैल प्रणीत मानसरोग चिकित्सा-प्रणाली का प्रयोग किया जाता है।

डॉ. फिलिप्स पिनैल का जन्म दक्षिण फ्रांस के एक पहाड़ी इलाके में सेंट ॲण्ड्रे

तरान नामक गांव में २० अप्रैल, १७४५ ई. में हुआ। उनके माता-पिता उन्हें धर्मगुरु बनाना चाहते थे। लेकिन फिलिप्स का झुकाव चिकित्सा-विज्ञान की ओर था। अतः पिता ने उन्हें चिकित्सा-विज्ञान के अध्ययन के लिए टोलोसे नामक शहर में भेजा। १७७३ ई. में उन्होंने चिकित्सा-विज्ञान का अध्ययन पूरा किया। पांच वर्ष तक मांटपोलीयर शहर में अपना व्यवसाय करने के बाद डॉ. पिनैल १७७८ ई. में पेरिस से आये। अपने संकोची और संवेदनशील स्वभाव के कारण डॉ. पिनैल अपना व्यवसाय सुचारु ढंग से चलाने में असफल रहे। आजीविका के लिए उन्होंने गणित-विषय का अध्यापन एवं अनुवादक का कार्य शुरू किया। 'फिलॉसॉफिकल ट्रांजैक्शन ऑव द रॉयल सोसायटी' नामक ग्रंथ के तीन खंडों की उन्होंने संक्षिप्त आवृत्ति प्रकाशित की तथा विलियम कूलर के 'इंस्ट्रक्शन ऑव मेडिसिन' नामक ग्रंथ का अनुवाद किया।

डॉ. पिनैल आजीविका के लिए तो ये व्यवसाय कर रहे थे, परंतु उनका सारा ध्यान चिकित्सा-विज्ञान में लगा था। सन १७८० में डॉ. पिनैल के जीवन में एक ऐसी घटना घटी जिसने उनके जीवन की धारा मोड़कर उनके लिए चिकित्सक बनने का मार्ग खोल दिया। उनके एक मित्र पागल हो गये थे। उन्हें मानसिक चिकित्सालय में रखा गया। अस्पताल के अमानवीय अत्याचारों से घबराकर वे वहां से भाग निकले और पुनः इन लोगों के हाथ पड़ने के भय से जंगल में चले गये। वहां जंगली भेड़ियों ने उन्हें मार डाला।
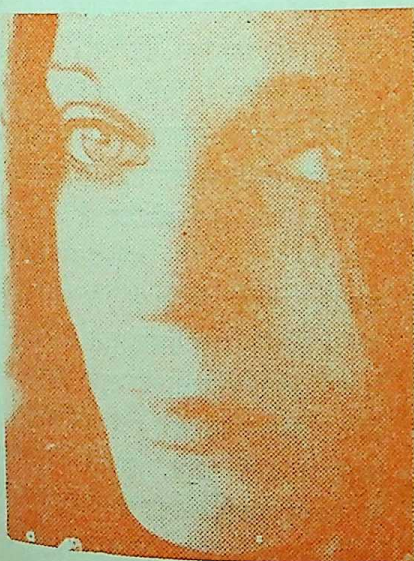
डॉ. पिनैल के मन पर इस घटना का गहरा आघात लगा। उन्हें चिकित्सक का कर्तव्य और चिकित्सा-विज्ञान का ज्ञान ललकारने लगा। पागलों की पशुतुल्य स्थिति देखकर वे सिहर उठे। मनुष्य पागल क्यों होता है? पागलपन क्या है? इस प्रकार की अवस्था से क्या वह पूर्व-अवस्था में नहीं लाया जा सकता है?

शास्त्रीय उपचार की खोज

इस प्रकार के कई प्रश्न उनके मन में उठने लगे। वे घंटों पागलों के विकृत मस्तिष्क के बारे में सोचते रहते। इस संबंध में उन्होंने कई ग्रंथ पढ़े। डॉ. पिनैल ने मानसिक रोगियों के उपचार की विधियां खोजने का निश्चय किया। वे आत्मविश्वास, दृढ़ निश्चय और लगन से अन्वेषण करते रहे। आधि (न्यूरॉसिस), मनोविक्षिप्ति (सायकॉसिस), मिर्गी (हिस्टीरिया), चिंता, उन्माद की आधि (न्यूरॉसिस ऑव इंसेन), उन्माद, संविषाद (डिप्रेशन), संविश्रम विक्षिप्ति—जैसे विभिन्न मानस-रोगों के कारणों तथा लक्षणों का सूक्ष्म अध्ययन करके डॉ. पिनैल ने निष्कर्ष निकाला कि पागलपन मानसरोग या मनोविकार है जो किसी भी मनुष्य को किसी भी समय हो सकता है। पागलपन किसी पाप की सजा या भूतबाधा नहीं है, वरन मानसरोगों का कारण प्रबल इच्छाओं पर कठोरतापूर्वक दमन करने की चेष्टा है। अतः इस रोग के निवारण-हेतु मनो-विकार के शास्त्रीय उपचार करने चाहिए।

१७८७ ई. में डॉ. पिनैल ने उन्माद-रोग पर अपनी पहली लेखमाला प्रकाशित की। इस लेखमाला ने फ्रांस के चिकित्सा-जगत में हलचल मचा दी। १७९८ ई. में उन्होंने 'नोसोग्राफिक् फिलॉसॉफिक्' नामक दूसरी लेखमाला प्रकाशित की। इस लेखमाला ने मानसरोग चिकित्सा की ओर समूचे पाश्चात्य देशों के चिकित्सकों का ध्यान आकृष्ट किया। चिकित्सा-विज्ञान में उपेक्षित इस रोग में महत्त्वपूर्ण खोज करके डॉ. पिनैल ने सदियों से उपेक्षित पागलों के जीवन में नयी बहार लाने की दिशा दिखाकर समस्त विश्व के मानवों पर परम उपकार किया।

डॉ. पिनैल के कार्य को सम्मानित करने के लिए फ्रांस सरकार ने १७९३ ई. में पेरिस के बिसैर्ते मानसिक चिकित्सालय के प्रमुख डॉक्टर तथा सुप्रिंटेंडेंट के पद पर उनकी नियुक्ति की थी।

डॉ. पिनैल ने बिसैर्ते चिकित्सालय में जंजीरों से जकड़े पागलों को देखा तो उन्हें लगा यह चिकित्सालय नहीं है, पागलों का कारागृह या कालकोठरी है।

सदभावना की जीत

उन्होंने अपने ही हाथों से पागलों की जंजीर खोली। उस समय पागलों की आंखों में हर्ष और कृतज्ञता के भाव देखकर डॉ. पिनैल गद्गद हो गये। वे हर पागल से प्यार से बातें करते, उनकी विक्षिप्तता का कारण पूछते, उनकी समस्याएं जानकर उन्हें सुलझाने का विश्वास दिलाते।

पागल अपने दिल तक पहुंचनेवाले, मर्म को छूनेवाले इस डॉक्टर को अपना परम मित्र समझने लगे।

डॉ. पिनैल अकेले ही सब कार्य कर रहे थे। अपनी मदद के लिए उन्होंने अस्पताल के ही कर्मचारियों को आवश्यक प्रशिक्षण देकर अपने कार्य में सम्मिलित किया। जो कर्मचारी अभी तक पागलों के साथ क्रूर व्यवहार कर रहे थे वे ही डॉ. पिनैल के उपदेशानुसार उनसे ममत्वपूर्ण व्यवहार करने लगे। डॉ. पिनैल ने पागलों को दुःख से मुक्ति दिलाते हुए मानवतावाद का उदार दृष्टिकोण दिया।

उद्योगों का उपयोग

प्राथमिक अवस्था के विक्षिप्त रोगियों को डॉ पिनैल ने किसी न किसी उद्योग में जुटा दिया। वे जानते थे कि खाली दिमाग शैतान का घर होता है। इसलिए उन्होंने उन्हें उद्योग में लगा दिया। इसी प्रणाली को आगे विकसित करके 'ऑकुपेशनल थेरैपी' नाम से संबोधित किया जाने लगा।

जीवन से निराश, कटु अनुभवों से हतोत्साहित लोगों को कार्यरत रहने का संदेश देते हुए डॉ. पिनैल ने उनके मन में आशा, उत्साह, उमंग और आत्मविश्वास पैदा किया। उनके सौजन्यपूर्ण और ममत्वपूर्ण व्यवहार से ये पागल उनके भक्त बन गये। डॉक्टर की आज्ञा का पालन करने में उन्हें आनंद आने लगा।

डॉ. पिनैल ने अपने लेखों द्वारा जिन सिद्धांतों का प्रतिपादन किया था, मानसरोगी के साथ वे उन्हीं सिद्धांतों का प्रयोग करते थे। अपने सौहार्दपूर्ण और ममत्वपूर्ण व्यवहार से उन्होंने अन्य चिकित्सकों को दिखा दिया कि मानसिक रोगियों को अन्य उपचारों से पहले प्रेम तथा सहानुभूति की आवश्यकता होती है। इस व्यवहार से रोगी के मन का डर दूर हो जाता और वह निश्चिंतता से डॉक्टर को अपना विश्वासपात्र समझकर अपनी समस्या बताता है। पागलों के साथ दयापूर्ण व्यवहार करना, उनकी उचित सुश्रूषा करके उनका ध्यान रखना, मानसरोग-चिकित्सक के लिए आवश्यक है। उनके रोगों का लक्षण समझकर उनकी मनोविकृति के कारण ढूंढ़ने चाहिए।

नयी चिकित्सा-प्रणाली

एक कुशल और दक्ष चिकित्सक की हैसियत से डॉ. पिनैल अपना कार्य सुचारु-ढंग और क्रमबद्धता से कर रहे थे। प्रत्येक रोगी की मनोविकृति का कारण जानकर, समझकर उन्होंने उसका पूर्व-इतिहास (केस हिस्ट्री) तैयार किया और उसके मस्तिष्क और विचारों में होनेवाले हर फेरबदल पर टिप्पणियां लिखीं। इस प्रकार डॉ. पिनैल ने मानसरोग अथवा उन्माद रोग का सच्चे अर्थ में वैज्ञानिक पद्धति से अध्ययन और विश्लेषण किया और इस रोग की चिकित्सा-पद्धति को अन्य चिकित्सा प्रणालियों की पंक्ति में लाकर खड़ा कर दिया। धीरे-धीरे उन्होंने इस चिकित्सा-प्रणाली का विकास किया। मन और

सर्दी-ज़ुकाम और फ़्लू का हमला और उसका मुकाबला

आपके लिए कुछ ज़रूरी बातें

"मैंने एनासिन को बहुत गुणकारी पाया है," नर्स एंजेला फ़र्नान्डेस का बयान है।

इन्होंने यही देखा है कि एनासिन सर्दी-ज़ुकाम और फ़्लू की पीड़ा से जल्द आराम दिलाने के लिए काफ़ी तेज़ असर है।

सर्दी-ज़ुकाम और फ़्लू कैसे होते हैं?
ये छूत से फैलने वाले उस विष से होते हैं, जो इन रोगों में ग्रस्त लोगों से हवा में फैलता है। आम तौर से शरीर में उसके मुकाबले की शक्ति होती है। परन्तु ज़्यादा मेहनत या कम ख़ूराक के कारण शरीर में कमज़ोरी आ जाती है और रोग के मुकाबले की शक्ति कम हो जाती है।

रोग लक्षण क्या हैं?
बदन का दर्द, सर का भारीपन, छींकें आना और नाक बहना, जिसके साथ अक्सर कँपकँपी छूटती है, बेचैनी महसूस होती है और पसीना आता है। उसके बाद खाँसी, गले की ख़राबी, भूख की कमी और थकावट की शिकायत हो सकती है।

क्या इस से और तकलीफ़ें भी हो सकती हैं?
यदि लापरवाही बरती जाय तो निमोनिया और साँस की ऊपरी नाली में छूत का असर हो सकता है।

एनासिन कैसे सहायक होती है?
एनासिन सर्दी-ज़ुकाम और फ़्लू की पीड़ा से आराम दिलाती है। एनासिन तेज असर है— क्योंकि इस में वह दर्द-निवारक दवा ज्यादा है जिसकी दुनिया-भर के डॉक्टर सब से ज्यादा सिफ़ारिश करते हैं। एनासिन पर लाखों लोगों को विश्वास है— क्योंकि यह आपके डॉक्टर की दवा की तरह दवाओं का नपा-तुला सम्मिश्रण है। सर्दी-ज़ुकाम या फ़्लू के पहले लक्षण देखते ही दिन में चार बार एनासिन लीजिए।

आपको और क्या करना चाहिए?
- उबाला हुआ पानी, सन्तरे या मौसंबी का रस और पीने के दूसरे पदार्थ काफ़ी पीजिए।
- पौष्टिक आहार खाइए।
- पूरा आराम कीजिए।
- पानी में ऐंटिसेप्टिक दवा या नमक डालकर ग़रारे कीजिए।
- कमरों को हवादार रखिए।

तेज़ असर और विश्वसनीय

भारत की सब से लोकप्रिय दर्द-निवारक दवा

Regd. User of TM: Geoffrey Manners & Co., Ltd.

मस्तिष्क के संबंध अब उन्हें स्पष्ट हो गये थे। उन्होंने जहां तक संभव हो सका, मस्तिष्क-विकास का मानसिक रोग के साथ सह-संबंध स्थापित करने का प्रयास किया। उन्हें विश्वास हो गया था कि मस्तिष्क के विकृत होने से व्यक्तित्व का ह्रास होने लगता है। मानसिक विकृति के कारण मानसरोग होता है, यह बात उन्होंने अपने लेखों द्वारा स्पष्ट की। पागलों के संबंध में सोचने का दूषित दृष्टिकोण ही उन्होंने बदल दिया। अब लोग उनको सहानुभूति और मानवतावादी दृष्टि से देखने लगे। डॉ. पिनैल ने अपनी कार्य-क्षमता और निष्ठा से बिसैर्ते पागल कारागृह को मानसिक चिकित्सालय में बदल दिया।

विषैले प्रचार के शिकार

समूचे फ्रांस में उनकी ख्याति फैल गयी, लेकिन उनकी कीर्ति से व्यथित कुछ लोगों ने विषैला प्रचार शुरू कर दिया कि डॉ. पिनैल ने पागलों के नाम पर देशद्रोहियों को आश्रय दिया है। इन लोगों ने उनके विरुद्ध जनता को भड़काया। क्रुद्ध भीड़ उन्हें मारने बिसैर्ते अस्पताल के अहाते में घुस गयी। डॉ. पिनैल को घिरा हुआ देखकर पागल अपने मित्र को बचाने भीड़ पर टूट पड़े। यह देखकर डॉ. पिनैल सहित सब चकित रह गये। अपने उपकार-कर्ता का प्रेम और उसके संरक्षण की भावना जिन पागलों के मन में जागृत हो उन्हें पागल कैसे समझें, सबके सम्मुख यह प्रश्न खड़ा हो गया।

डॉ. पिनैल ने दो वर्ष तक बिसैर्ते चिकित्सालय का कार्यभार संभाला। उनकी कार्यकुशलता, डॉक्टरी व्यवसाय के लिए आवश्यक उदार, मानवतावादी दृष्टिकोण, रोगी के लिए प्रेम, सहानुभूति और दयाभाव, प्रशासनिक क्षमता और ध्येयनिष्ठा से प्रभावित होकर १७९४ ई. में डॉ. पिनैल को सेलमैट्रायर के बड़े मानसिक चिकित्सालय के प्रमुख पद पर नियुक्त किया गया। इस चिकित्सालय में उन्होंने अन्य डॉक्टरों के सम्मुख अपनी कर्तव्यनिष्ठा और प्रशासनिक क्षमता का बेमिसाल उदाहरण रखा। इसी के फल-स्वरूप मानसिक चिकित्सालयों के सुधार की ओर सारे विश्व का ध्यान आकृष्ट हुआ। उन्होंने इस चिकित्सालय को क्लीनिक का रूप दिया।

डॉ. फिलिप्स पिनैल का देहांत ८१ वर्ष की आयु में २५ अक्तूबर, १८२६ को हुआ था। उनका प्रबंध 'ट्रेटमेडिको' मनोविकार-विज्ञान एवं मानसरोग-चिकित्सा विज्ञान के लिए अमूल्य निधि एवं प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है। आधुनिक मनोविकार-विज्ञान का श्रेय फ्रायड को और उनकी मानसोपचार-पद्धति को दिया जाता है, परंतु वास्तव में मनोविकृति से पीड़ित मानसरोगियों की मनोवैज्ञानिक पद्धति से चिकित्सा करने का श्रेय डॉ. पिनैल को है। उन्होंने ही आधुनिक मनोविकार-विज्ञान की नींव डाली है।

—रामकुंज, कोठी रोड, उज्जैन (म.प्र.)

संस्मरण

बिना तराशा हीरा

● जी. एस. पथिक

एक समय वह भी था कि बंबई के कालबादेवी रोड अंचल में मारवाड़ी बाजार सुई, चांदी और तीसी के व्यापार में अपना जोड़ नहीं रखता था। उसके कारबार का प्रभाव इंगलैंड के बाजारों पर भी पड़ता था। देश के कुछेक ऐसे व्यापारी थे, जिनके क्रय-विक्रय से विदेशी बाजार प्रभावित होते थे। मारवाड़ी बाजार में मेरे मित्र की कोठी थी, जहां मैं यदाकदा जाया करता था। मार्ग में प्रायः व्यापारियों की यह आवाज सुनायी देती कि मूंगालाल खरीद रहा है या बेच रहा है। मैंने एक दिन सहसा अपने मित्र से पूछा कि मूंगा-लाल कौन है? मेरे मित्र ने बताया, "वे मारवाड़ी अग्रवाल हैं। बड़ी सात्विक प्रकृति के हैं। उनका रहन-सहन बड़ा सीधा-सादा है और वे जितना धन कमाते हैं उसका क्या करते हैं, किसी को पता नहीं।"

एक दिन मैंने मारवाड़ी बाजार में देखा कि दो अंगरेज खड़े हुए हैं। उनमें से एक ने पूछा, "हू इज मूंगालाल ?" उनकी बात सुनकर मूंगालाल ने कहा, "सर, आई एम मूंगालाल !" उस दिन मैंने मूंगालाल को देखा। वे बहुत छोटे कद के थे। रंग सांवला था। वे धोती-कुर्ता पहने थे और माथे पर पगड़ी थी। बाद में बातचीत से पता लगा कि वे दोनों साहब मूंगालाल से मिलने इंगलैंड से आये थे।

बंबई में ही रहते हुए मेरा परिचय दो प्रसिद्ध एडवोकेटों से हुआ था। उनमें से एक श्री नारीमन थे, और दूसरे श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी। राजनै-तिक आंदोलन में कारावास की सजा काटकर जब मुंशीजी बाहर आये, तब एक दिन मैं उनसे भेंट करने गया। बातचीत के दौरान मुंशीजी ने बताया कि कल सवेरे एक मारवाड़ी व्यापारी महोदय आये थे। वे मेरे पुराने मुवक्किल हैं, उन्होंने कहा, "आप एक अरसे से मेरे वकील हैं। मुझे विश्वास है कि आप जो सलाह देंगे वह ठीक होगी। मैंने लाख-पचास हजार रुपये किसी उपयोगी काम के लिए अलग रख दिये हैं। आप बताएं कि वे जनहित के किस कार्य में लगाये जाएं।" मुंशीजी ने मुझसे कहा कि मैंने सोचा था कि मूंगालाल से साहित्य की चर्चा करना व्यर्थ है, यह बात उनकी समझ में नहीं आयेगी।

मुंशीजी ने बताया कि कुछ देर के लिए मैं रुक गया, फिर सुझाव देते

पूछा, "कहो, संस्कृत और गोपालन में रुपया लगाना कैसा होगा ?" मूंगालाल बोले, "वकील साहब, संस्कृत और गोपालन दोनों धर्म के कार्य हैं। आपने बड़ी अच्छी राय दी। इन दोनों कार्यों में रुपया लगेगा।" इतना कहकर मूंगालाल चल दिये। मुंशीजी आश्चर्य में पड़ गये।

कुछ दिनों बाद मूंगालाल फिर मुंशीजी के निवास-स्थान पर पहुंचे और बोले, "वकील साहब, उस दिन आपने संस्कृत और गायों के लिए रुपया लगाने की बात कही थी। उस राशि में पच्चीस हजार रुपये और बढ़ गये हैं। ये रुपये आप इन दोनों कार्यों के लिए ले लें।" इतना कहकर वे चल दिये। मुंशीजी को कुछ कहने का अवसर ही नहीं मिला।

लगभग दो मास बीतने पर मूंगालाल फिर मुंशीजी के पास आये। उन्होंने कहा, "वकील साहब, जैसा आपने कहा है कि यह धन संस्कृत और गायों के काम में लगेगा, आप उन दोनों कामों में जरूर लगायें।" इतना कहकर वे पुनः चले गये। इस बीच जब मैं मुंशीजी से मिला तो वे कहने लगे कि यह बनिया मेरे-जैसे वकील को चकमा देता है। देखना यह है कि वह कब तक ऐसा करता रहेगा ! फिर मुझसे पूछा कि मूंगालाल कैसा आदमी है। मैंने कहा कि वे आपके पुराने मुवक्किल हैं, आप उन्हें जितना जानते हैं, दूसरा कोई क्या जानेगा !

पर मैंने मूंगालाल को जैसा देखा-परखा था, उनमें विनम्रता बहुत अधिक थी। वे बड़े मितभाषी थे। उन्हें जो बात कहनी होती, उसे दो-टूक कह देते थे। अपने कार्यों का बखान करना उनकी प्रकृति में नहीं था। मुझे लगा कि वे व्यापार में इसलिए लगे हुए हैं कि अपने धनोपार्जन से जनसेवा में बढ़े रहें और जरूरतमंदों की आवश्यकताएं पूरी करते रहें।

मुंशीजी तब आश्चर्य में पड़ गये जब एक दिन मूंगालाल सवेरे लगभग पांच-छह बजे उनके घर पहुंचे। आते ही बोले, "वकील साहब, आज सोमवती अमावस्या है। पंडितों का कहना है कि बारह बजे के पहले तक जो दान दिया जाएगा, उसका सौ गुना फल होगा। इसलिए उसके पहले, आप मुझसे पांच लाख रुपये ले लीजिए, विलंब न करें।"

मुंशीजी झल्लाये बैठे थे कि यह बनिया बार-बार रुपये देने की बात करता है, पर देता नहीं। इसलिए मुंशीजी ने आवेश में कहा, "मूंगालाल, तुम तो खाली हाथ आये हो, रुपये कहां हैं ?" मूंगालाल ने नरमी से कहा, "रुपये हाजिर हैं। पांच लाख रुपये के शेयर हैं, मुझे फोन दीजिए। मैं अपने दलाल से कहूंगा कि वह उन्हें बेचकर दस बजे के पहले आपको रुपये दे दे।"

इतना कहकर मूंगालाल ने फोन उठाया और अपने दलाल से बातचीत की कि वह तुरंत शेयर बेचकर मुंशीजी को रुपये दे दे, मुंशीजी को दस बजे तक रुपया

बुद्धि-विलास के उत्तर

१. ग.; २. ख.; ३. ग., घ.; ४. क. बिहार, ख. बंगाल, ग. केरल, घ. बंगाल, च. बिहार; ५. तात, पात, पाव, सास; ६. २; ७. ग; ८. ख; ९. ३५, श्रीमती जुनको ताबेई (जापानी); १०. क. नैनी (इलाहाबाद), ख. अहमदाबाद ग. जयपुर, घ. श्रीहरिकोटा; ११. ९४ देशों में—अमरीका में; १२. मैगसेसे पुरस्कार, सुब्बालक्ष्मी; १३. क. ए. टी. एस.-६, ख. अनिक–३, सिफोनी; १४. संघ-शासित अरुणाचल प्रदेश के लिए विधान-सभा का गठन; १५ जॉन एफ. कैनेडी; १६. ९६ करोड़ ६० लाख कि. मी., १६०० कि. मी. प्रति-मिनट; १७. नीचे का चित्र देखिए—

८	१	६
३	५	७
४	९	२

१८. नहीं; १९. आंख की पुतली का क्लोज-अप ।

मिल जाए। मुंशीजी का कहना था कि उन्होंने मूंगालाल से फोन लेकर दलाल को आदेश दिया कि दो संस्थाओं के लिए अमुक-अमुक नामों पर शेयर ट्रांसफर कर दिये जाएं, उनमें से एक नाम सरदार पटेल का भी था। उसके बाद मूंगालाल वहां ठहरे नहीं। मुंशीजी मूंगालाल के व्यवहार से चकित रह गये।

मुंशीजी के पास कहां धन था कि वे 'विद्या मंदिर' की स्थापना करते। मूंगालाल के धन से 'विद्या मंदिर' की स्थापना हुई। मूंगालाल का कैसा सात्विक दान था कि उन्होंने ऐसा कोई प्रस्ताव नहीं किया कि जिस संस्था की स्थापना की जाए वह उनके नाम से हो।

आज मूंगालाल यह देखने के लिए जीवित नहीं है कि उनके दान से 'विद्या मंदिर' के रूप में वह वृक्ष खड़ा हो गया। उस दान का सहस्र-गुना फल हुआ। मूंगालाल का पार्थिव शरीर भले न हो पर उनका यशःशरीर सदा रहेगा।

—६४।१, गिरीश पार्क नार्थ, कलकत्ता-

कालेज के कम्पाउंड से...

'कालेज के कम्पाउंड से' स्तंभ के लिए प्राप्त सामग्री में इधर काफी एकरसता आ गयी है, अतः अगस्त अंक से हम इस स्तंभ का प्रकाशन बंद कर रहे हैं। इसके स्थान पर युवा वर्ग के लिए हम एक नया स्तंभ शुरू करेंगे, जिसकी विस्तृत घोषणा अगले अंक में पढ़िए।

नहले पर दहला

नौकरी के लिए एक उम्मीदवार फार्म भर रहा था। एक प्रश्न था—'क्या तुम कभी गिरफ्तार हुए हो?' उसने लिखा—नहीं।

अगला प्रश्न था—क्यों?

"क्योंकि पकड़ा नहीं जा सका?" उसने लिखा।

*

"एक बात बताओ यार! मेरे साथ जुआ खेलने में तुम हमेशा जीत जाते हो, मगर रेस में हारते रहते हो, यह क्या मामला है?"

"मैं घोड़ों को बेवकूफ नहीं बना पाता," जवाब मिला।

शंका और समाधान

अंधेरी रात में एक व्यक्ति को रेल का फाटक पार करते समय ट्रेन से धक्का लगते-लगते बचा। उसने रेलवे पर मुकदमा कर दिया। सिगनलमैन को गवाही के लिए बुलाया गया, तो उसने बचाव में कहा, "मैंने तो बत्ती खूब हिलायी थी हुजूर।"

सवाल-जवाबों की झड़ी के बाद जब मुकदमा जीतकर सिगनलमैन कचहरी के बाहर निकला तब उसके अधिकारी ने प्रशंसा करते हुए कहा, "मैंने तो समझा था कि तुम वकील की जिरह से घबरा जाओगे।"

"मैं बिलकुल नहीं घबराया साहब। हां, अगर वकील ने यह पूछा होता कि बत्ती जल रही थी या नहीं, तब मेरे लिए जवाब देना मुश्किल हो जाता।"

★

"ईश्वर ने मनुष्य को दो कान क्यों दिये?"

"एक रेडियो सीलोन के लिए और दूसरा 'विविध भारती' के लिए।"

★

"मेरी दवा से फायदा हुआ?" डॉक्टर ने पूछा।

"क्यों नहीं साहब! बड़ी अच्छी दवा थी। आधी दवा से रोग भाग गया और बाकी से मैंने फर्नीचर चमका लिया," रोगी बोला।

★

एक लड़की ने सैनिक से शादी की, तो सहेली ने पूछा, "तुमने सैनिक से शादी क्यों की?"

"सैनिक को जो हुक्म दिया जाता है

हंसिकाएं : काव्य में

ज्ञान

पति के बारे में
बोली—
'वे तपस्या में
बुद्धदेव से कहीं आगे हैं
बिस्तर छोड़कर, रात को गायब हुए
किंतु सखि वे
किसके साथ भागे हैं ?'

महान

बोधिवृक्ष के बारे में
बोले वे बालक से
'भगवान बुद्ध को
छाया देने को
जो वृक्ष खड़ा था
बुद्धदेव से कहीं बड़ा था !'

वक्रोक्ति

अपने पूर्व-जीवन का
ब्योरा देते हुए
उसने कहा—
'मेरा जीवन भी
व्याकरण की तरह
यों तो शुद्ध रहा
किंतु खेद है
मेरे भी वर्तमान काल से अधिक
भूतकाल के भेद हैं'

—डॉ. सरोजनी प्रीतम

वह उसे फौरन बजा लाता है," ।

★

चौबेजी को भोजन कराने के बाद सेठजी ने कहा, "अगर आप सौ गुलाब-जामुन खा लें तो हम आपको फी गुलाब-जामुन पांच रुपये के हिसाब से देंगे।"

चौबेजी ने एक घंटे का समय मांगा तो सेठजी सहमत हो गये। घंटे भर बाद चौबेजी ने आकर कहा कि गुलाब-जामुन मंगवा लीजिए।

चौबेजी ने सौ गुलावजामुन खाकर सेठजी से पांच सौ रुपये ले लिये। सेठजी ने चौबेजी से पूछा, "लेकिन आपने एक घंटे का समय क्यों मांगा !"

"मैं ट्रायल लेने गया था कि सौ गुलाब-जामुन खा भी सकूंगा या नहीं।"

★

एक व्यापारी कुछ ऊंचा सुनता था। कुछ चंदा लेनेवाले उसके पास आये। उनमें से एक ने उसके कान के पास जाकर जोर से कहा, "सेठजी, अकाल-पीड़ितों के लिए पांच हजार रुपया चाहिए।"

सेठजी ने अपने दूसरे कान की ओर इशारा करते हुए कहा कि इधर आकर कहो। "अकाल-पीड़ितों के लिए दस हजार रुपये चाहिए"— इस बार कहा गया।

"पहलेवाला कान ही ठीक है, इसमें तो कुछ भी सुनायी नहीं दे रहा है।" —व्यापारी ने कहा।

—नन्दकिशोर झाझरिया

एक और हिंदुस्तान!

● राजेन्द्र अवस्थी

"रुडोल्फ, कार रोको,' यह लिन की आवाज थी। लंबी यात्रा के बाद मस्ती और थकान दोनों में ग्रस्त रुडोल्फ तेजी से कार बढ़ाये जा रहा था। धूप धीरे-धीरे ऊपर उठ रही थी और घने जंगलों के नीचे परछाईं की तरह अंधेरा उतरने लगा था। शाम होने के पहले यह जरूरी है कि हम किसी गांव में पहुंच जाएं।

थोड़ी देर पहले ही जो बीत चुका था, फिर वही दोहराया जाए, हममें से कोई नहीं चाहता था। रुडोल्फ दर्द से पीड़ित भी था और शायद इसलिए बिना कुछ सोचे कार बढ़ाये जा रहा था। हमारे आवाज देते ही उसने अचानक ब्रेक लगा दिया और एक जोर के धक्के के साथ कार रुक गयी, लेकिन रुकते-रुकते उसके सामने का पहिया नीचे धंस ही गया।

हम नीचे उतरे तो दोनों ओर हलका पानी भरा था। पहले तो नीचे उतरने में ही भय लग रहा था, दोपहर को नीचे उतरते समय ऐसा कुछ ही तो हुआ था। एक घने जंगल के बीच अपनी कार रोक-कर हम नीचे उतरे थे। न जाने ऊपर से कैसी एक तेज आवाज आयी और इसके

सब धर्मों का संगम—मोमबासा से नैरोबी जाते हुए मार्ग में पीर की दरगाह
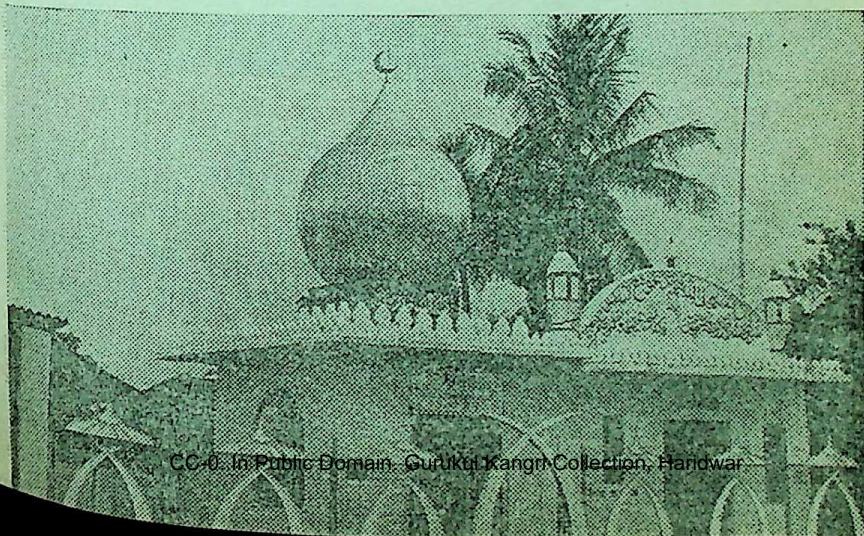
पहले कि उस आवाज के बारे में हम सोच सकते, सफेद चींटियों का एक पूरा झुंड नीचे कूद पड़ा था। किसी बड़े वृक्ष से यह सब हुआ था। यात्रा शुरू करने के पहले हम पढ़ चुके थे कि यहां कुछ स्थान ऐसे हैं जो खतरनाक हैं। वहां ऐसी चींटियां होती हैं, जो आदमी को खा जाती हैं। चींटियां आदमी को खा सकें, कुछ अजीब लगता है, लेकिन सत्य है। वे शरीर पर

बच पाता। उसने तुरंत कार के ऊपर लगी हुई पेट्रोल टंकी खोल दी थी और उसी से उसने स्नान किया था। पेट्रोल से चींटियां मर गयी थीं और रुडोल्फ तेजी से कार के भीतर आ गया था।

हम ही जानते हैं, हमने किस तरह तेज गति से अपनी कार बढ़ायी थी, लेकिन पंद्रह मिनट के बाद ही वह गति टूट गयी। रुडोल्फ दर्द से कराह रहा था।
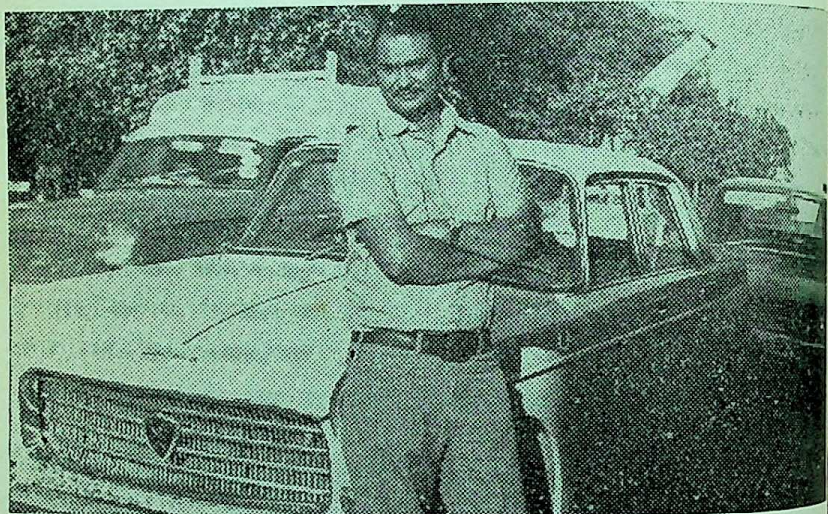
कीनिया (मोमबासा) में बसे भारतीयों के अपने ठाठ हैं। सुरेश भाई ठाकर राजकोट के हैं, अब कीनियाई नागरिक हैं

गिरकर अपने तेज जबड़ों से सीधे भीतर घुस जाती हैं और फिर भीतर ही भीतर खून पीने लगती हैं। एक समय ऐसा आता है कि ऊपर से स्वस्थ और सही दिखनेवाला आदमी दम तोड़ देता है। यदि यात्रा आरंभ करने के पूर्व यह सब न जान लिया होता तो उस दिन रुडोल्फ हमारे बीच न

सामने कच्ची सड़क और कच्ची हो गयी थी और किसी तरह हम कार चला पा रहे थे।

अचानक नीचे उतरे तो सड़क पर पानी था। वहां दलदल भी हो सकता है। तब ?

सूखे, भूखे और नंगे

कुछ लोग आते हुए दिखायी दिये—

भूखे और नंगे। पेट बढ़ा हुआ और हड्डियां बाहर को निकली हुईं।

—जंबो!

—जंबो, जंबो!

—नजूरी!

—नजूरी! नजूरी!

'जंबो' का अर्थ है 'हलो' और 'नजूरी' का अर्थ है 'वेलकम'। लेकिन इसके आगे? आगे क्या बोला जाए! एक दूसरे को की अपनी कार के आसपास पड़ा हुआ पानी दिखाया।

वे चुपचाप देखते रहे। एकाएक हमें ध्यान आया, हमने कुछ बीड़ियां, कुछ डबल रोटियां और अंडे उन्हें दिये तो वे सब जैसे उन पर टूट पड़े। उनकी मुख-मुद्रा से हमें यह एहसास हो गया कि ये हमारे दोस्त बन गये हैं। उनमें से दो-तीन पुरुष झाड़ियों के भीतर चले गये और वहां

सावधान! कब कौन आपसे क्या छीन ले, पता नहीं!

समझना मुश्किल है। किसी तरह हमने स्वाहिली भाषा के कुछ काम-चलाऊ शब्द सीख लिये थे। ये लोग हाथ में तीर-कमान लिये थे, इसलिए कुछ भी पूछने के पहले भय भी लग रहा था, लेकिन उस समय किसी तरह जाइरे से बाहर निकलना हमारा संकल्प था। उन टूटे-फूटे शब्दों और इशारों से हमने उन लोगों से लकड़ी के तख्ते उठा लाये। उन्हें सामने बिछाकर उनके ऊपर से हमने अपनी कार निकाली। कार जैसे ही बाहर आयी, हम सबने चैन की सांस ली। कुछ शिलिंग उन लोगों को हमने दिये, एक बार फिर 'जंबो' और 'नजूरी' दोहराया और वहां से चल पड़े।

जाइरे का बहुत बड़ा इलाका घने

जंगलों और कच्चे रास्तों से भरा है। कई स्थान ऐसे हैं, जहां से कार निकालना भी कठिन है। कई जगह दिन में भी अंधेरा रहता है। आदिवासी कबीलों की छोटी-छोटी झोपड़ियां कहीं-कहीं रास्ते में मिलती हैं। लेकिन एक सफारी के लिए ये सुरक्षित स्थान नहीं हैं। भाषा की कठिनाई और उन जंगली जातियों के स्वभाव की कम समझ, कभी भी परेशानी पैदा कर सकती है।

जाइरे पुराना कांगो है। कांगो अफ्रीका का सबसे पिछड़ा हुआ हिस्सा रहा है। रबर के घने जंगलों से इसका अधिकांश भाग घिरा है। यहां-वहां दलदल भी हैं और बड़े-बड़े मच्छर, जिनके काटने से 'यलो फीवर' हो जाता है। इसीलिए अफ्रीका जाने के पहले 'यलो फीवर' का इंजेक्शन अपनी ही सुरक्षा के लिए अत्यंत आवश्यक है।

विभाजित महाद्वीप

आगे रास्ता भी बहुत आसान नहीं था। कच्ची सड़क पर झाड़ियां और कई जगह सीधे गिरे हुए वृक्ष। सुना जरूर है कि धीरे-धीरे जाइरे की नयी सरकार पक्की सड़कें बना रही है। अंगरेजों, डचों और पुर्तगालियों की 'कृपा' से समूचा अफ्रीका महाद्वीप विभाजित है। छोटे-छोटे देश और बहुत छोटे कबीले। आपस में वे लड़ते रहते हैं। अधिकांश कबीले-के-कबीले ईसाई धर्म स्वीकार कर चुके हैं। जहां कुछ भी शिक्षा है, वहां अंगरेजी का साम्राज्य है। स्वाहिली मात्र एक बोली है। उसका कोई लिखित साहित्य नहीं है। कीनिया पहुंचकर हमें पता लगा कि वहां की सरकार अब स्वाहिली को रोमन लिपि का रूप देकर एक भाषा की तरह तैयार कर रही है।

पूर्वी अफ्रीका में कीनिया ही सबसे उन्नत और आगे बढ़ा है। दस वर्ष पहले इस देश को अंगरेजों से मुक्ति मिली थी और वहां के राष्ट्रपति जोमो केन्याटा ने अपने देश का विकास करने का संकल्प ले लिया था। अनेक कठिनाइयों और कमियों के बावजूद कीनिया आगे बढ़ रहा है। भारत की तरह वहां भी रिश्वतखोरी का जोर है और इसलिए गति धीमी है, लेकिन आश्चर्य यह है कि वहां चीजों में मिलावट नहीं है।

समूचे कीनिया की आर्थिकता आज भी अंगरेजों की मुट्ठी में है, क्योंकि वहां सूई से लेकर टूथपेस्ट तक इंगलैंड से इंपोर्ट होता है। उद्योगों का अभाव है। एक सीमेंट कंपनी है और एक कागज बनाने का कारखाना। कुछ कारखाने हैं, जहां 'चीज़' बनती है। कीनिया चीज़ और बीयर के लिए प्रसिद्ध है। वहां दर्जनों किस्म की चीजें बनती हैं और 'तस्कर' बीयर को विश्व की सबसे श्रेष्ठ बीयर होने का प्रमाण-पत्र मिल चुका है।

सबसे सुंदर शहर

नैरोबी कीनिया की राजधानी है और समूचे अफ्रीका का सबसे सुंदर और साफ

सुथरा शहर है। ऊंची इमारतें और तारकोल की खूबसूरत सड़क। पक्के और मजबूत बने हुए चौराहे। हिल्टन तथा स्टेनले-जैसे आलीशान होटल। विदेशी कारों का काफिला; इतना लंबा कि कार-पार्किंग के लिए स्थान मिलना मुश्किल है। संभवतः आदमियों से ज्यादा वहां कारें हैं। अधिकांश फोर्ड और वॉक्स वैगन। पान की दूकान-वाला भी आलीशान कार रखता है। यह हुआ है कि नैरोबी का बाजार खासा महंगा है।

भारतीयों से वहां के निवासी घृणा करते हैं—यह वहां रहनेवाले भारतीयों को अच्छी तरह ज्ञात है, इसलिए उनमें से अधिकांश ब्रिटेन अथवा कनाडा का पासपोर्ट लिये हुए हैं। वे भारत पैसे भेजते हैं और कभी भी यदि निकाले जाएं तो इंगलैंड या कनाडा भाग सकते हैं। भारत
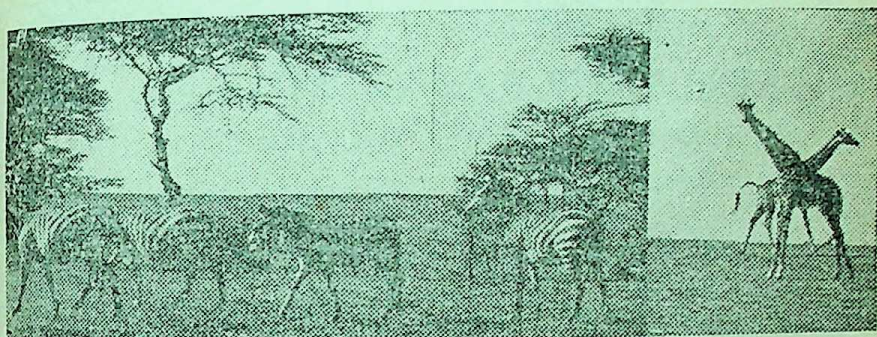
यहां आप बुद्धिजीवियों को ढूंढ़ रहे हैं! जनाब, जानवरों को देखिए, यही यहां की संपदा हैं

नैरोबी का समूचा व्यापार भारतीयों के हाथ है। वहां रहते हुए कई बार ऐसा आभास हुआ जैसे हम भारत में ही रह रहे हैं। राजकोट और अहमदाबाद के गुजराती भाई, कुछ सिंध - बंबई के कच्छी और पारसी और थोड़े सरदार। किसी भी दुकान में जाकर हिंदी बोली जा सकती है और सामान खरीदा जा सकता है। भारतीयों के पास मनमाने पैसे हैं और उसी तरह वे रहते भी हैं। इसका परिणाम बहुत कम लोग आना चाहते हैं, क्योंकि उन सबका यह कहना था, "जो कुछ हम यहां से ले जाएंगे, सब कुछ पहले तो लायसेंस आदि लेने के लिए रिश्वत में खर्च हो जाएगा। कारखाना चलाने के लिए हमारे पास बचेगा क्या?"

एक अलग हिंदुस्तान

यह सचाई सुनकर हमें दुःख हुआ था। भारत ने ही अफ्रीका को आजादी दिलाने में मदद की है। आज भी नैरोबी में 'नेहरू

राष्ट्रीय बचतों में धन लगाने वालों के लिए खुशखबरी

★ नये १०-वर्षीय वार्षिकी पत्र

इसमें पैसा जमा करके जमाकर्ता बच्चों की उच्च शिक्षा जैसे खर्चों के लिए ८४ महीने तक नियमित रूप से व्याज प्राप्त कर सकते हैं।

परिपक्व होने पर आकर्षक व्याज के साथ पूंजी की वापसी (जमा राशि पर १०.२५% चक्रवृद्धि व्याज मिलता है)।

★ करमुक्त राष्ट्रीय बचत पत्र खरीदने की सीमा में वृद्धि

	पुरानी सीमा	बढ़ी हुई सीमा
एक वयस्क के लिए	५०,००० रु.	७५,००० रु.
संयुक्त रूप से दो वयस्कों के लिए	१,००,००० रु.	१,५०,००० रु.

(इन बचत पत्रों पर ६% प्रति वर्ष की दर से कर-मुक्त व्याज मिलता है)

★ ५-वर्षीय आवर्ती जमा खाता - नये आकर्षण

अब आप ५ वर्ष बाद भी खाते में धन लगाना जारी रख सकते हैं अथवा परिपक्व राशि सरकार के पास रहने दे सकते हैं (ऐसे मामलों में प्रत्येक पूरे किए गए वर्ष के लिए ९.२५% की दर से चक्रवृद्धि व्याज दिया जाएगा)।

अब २० रु. के खाते में भी संरक्षित बचत योजना का लाभ मिलता है। विस्तृत ब्योरे के लिए लिखिए :

राष्ट्रीय बचत आयुक्त

पो० बा० नम्बर ९६, नागपुर

डीएवीपी ७५/८२

स्ट्रीट' और मोमबासा में 'गांधी रोड' है। स्वयं जोमो केन्याटा महात्मा गांधी से प्रभावित हैं। आजादी के २७ वर्षों में भारत ने जितनी प्रगति की है और उद्योगों का जो विकास हुआ है, पूरे अफ्रीका में उसकी शुरूआत भी नहीं हुई। भारत के इंजीनियरों ने ही अफ्रीका के कई देशों को आधुनिक बनाया है। स्वयं कीनिया ने भारतीय इंजीनियरों की मदद ली है, लेकिन वहां रहनेवाले भारतवासियों ने गड़बड़ी भी कम नहीं की। वे अब भी 'भारतीय-अंगरेज' के नाम से जाने जाते हैं। मनमाना पैसा कमाकर भी अफ्रीका के दलित, भूखे और नंगे लोगों के लिए उन्होंने कुछ नहीं किया। वे चाहते तो स्कूल, अस्पताल और धर्मशालाएं बनवाकर वहां के निवासियों का मन जीत लेते। वहां रहकर भी वे अपने घेरों और दायरों में बंटे हैं और लगता है 'एक अलग हिंदुस्तान' बनाकर वे वहां भी रहते हैं। इसलिए चाहे नैरोबी हो या मोमबासा, शाम ढलते ही भारतीयों के लिए बाहर निकलना मुश्किल है—सड़क पर चलते हुए दो लोग आपके आगे-पीछे होकर कहीं भी कुछ भी छीनकर भाग सकते हैं। शाम होते ही सड़कें सूनी हो जाती हैं या फिर शीशा चढ़ाकर अपनी बंद कारों में ही घूमते हुए लोग नजर आते हैं।

जानवरों का देश

अफ्रीका जानवरों का देश है, यदि यह कहा जाए तो किसी तरह वहां के निवासियों का अपमान नहीं होगा। सिंह से लेकर हाथी, जेबरा, जिराफ, हिप्पो और सुअर सभी खुले जंगलों में घूमते नजर आते हैं। जंगली जानवरों को सुरक्षित रखा जाता है और यही कीनिया की संपदा भी है। धर्मों का संगम देखने को मिलता है—आर्यसमाज-मंदिर, शिव-मंदिर, जैन-मंदिर और मुसलमानों की मसजिदें। नैरोबी से मोमबासा जाते हुए हमने सन १९०२ में मृत एक पीर की खूबसूरत दरगाह देखी है।

कसीनो से कृष्ण-कन्याएं तक

कीनिया में पर्यटकों के आकर्षण के लिए अंतर्राष्ट्रीय कसीनो से लेकर समुद्र-स्नान और कृष्ण-कन्याएं तक सब कुछ उपलब्ध है। शाम जैसे ही नैरोबी या मोमवासा की सडकों पर उतरती है आवारा लड़कियों का हुजूम शिकार की तलाश में निकल पड़ता है। एक शाम मोमबासा के लाइटहाउस के समुद्री किनारे पर हमने रुडोल्फ से मजाक करते हुए कहा था, "रुडोल्फ, पेट्रोल की टंकी खोलो. . . . चींटियां!"

रुडोल्फ चौंक पड़ा था। उसे याद है, नैरोबी पहुंचकर दो दिन अस्पताल में उसे रहना पड़ा था। उसने चौंककर देखा था तो समुद्र से लगे होटलों के लान पर ही काली लड़कियां गोरे आदमियों से सर्प की तरह लिपटी थीं और सिगरेट पीती हुई एक लड़की रुडोल्फ के बहुत पास आकर खड़ी हो गयी थी। ●

आशा की किरन : न्यूट्रान-किरन

'कैंसर' ! यह एक शब्द ही स्वस्थ-से-स्वस्थ व्यक्ति का दिल दहला देने के लिए काफी है । प्राय: लंबे समय तक चलनेवाली या समझ में न आ पानेवाली किसी बीमारी को भी कैंसर ही समझ लिया जाता है । कैंसर आसानी से तो अब भी काबू में नहीं आता लेकिन कई चिकित्सा-संस्थानों और प्रयोगशालाओं में कैंसर

के मुकाबले के लिए कई कारगर तरकीबें काम में लायी जा चुकी हैं ।

लंदन के हैमरस्मिथ अस्पताल में कैंसर की कुछ किस्मों की चिकित्सा के लिए तीव्रगामी न्यूट्रॉनों की किरनें प्रयोग में लायी जा रही हैं। न्यूट्रॉन वे पारमाण्विक कण होते हैं जिनमें कोई विद्युत-आवेश नहीं होता। वैसे, इस समय उपचार की तीन विधियां काम में आ रही हैं—शल्य-चिकित्सा, रेडियो-थेरापी और केमो-थेरापी । केमोथेरापी और रेडियोथेरापी का प्राय: साथ-साथ उपयोग किया जा[ता] है । रेडियोथेरापी में एक्स-रे, गाम[ा] या इलेक्ट्रानों की ट्यूमर पर वृष्टि [की] जाती है । दुर्भाग्यवश, इनमें से कोई [भी] तरीका हर तरह के कैंसर के उपचार [के] लिए पूरी तरह कारगर सिद्ध नहीं हु[आ] है । प्रयोग चलते रहे ।

उपलब्धि आसान न[हीं]

तीव्रगामी न्यूट्रॉन-किरनों का अब त[क] अधिक उपयोग नहीं हो पाया है । इस[का] प्रमुख कारण यह रहा है कि साइक्लोट्[रॉन] की प्राप्ति आसान नहीं थी । साइक्लोट्[रॉन] एक उच्च ऊर्जा-मशीन है जिसमें सर्पि[ल] मार्ग में कण गति करते हैं । बिना इ[स] मशीन के न्यूट्रॉन-किरनों की गति तीव्र न[हीं] हो सकती थी ।

द्वितीय विश्वयुद्ध के अंत में ब्रि[टेन] की चिकित्सा-शोध-परिषद ने हैमरस्मि[थ] अस्पताल में एक साइक्लोट्रॉन स्थापि[त] करने का निर्णय लिया । इरादा यह [था] कि कैंसर की अन्य उपचार-विधियों [के] साथ-साथ इसको भी आजमाया जाए [।] साइक्लोट्रॉन का पूरा निर्माण परि[षद] के कर्मचारियों द्वारा ही किया गया । [यह] प्रथम विशुद्ध चिकित्सा-साइक्लोट्रॉन था [।] इसने चिकित्सा की असीमित संभावन[ाएं] उजागर कर दी हैं ।

आरंभिक [...]

बर्कले (कैलिफोर्निया) में भी, १९[...] से १९४३ तक २४८ कैंसर-रोगियों [का] साइक्लोट्रॉन-न्यूट्रॉनों द्वारा उपचार कि[या]

गया था । परिणाम अधिकतर ठीक नहीं रहा । कुछ रोगियों के स्वस्थ तंतुओं को गंभीर हानि पहुंची । फलस्वरूप, कई वर्ष तक तीव्रगामी न्यूट्रॉनों से चिकित्सा नहीं की गयी । बाद में पता चला कि इन आरंभिक प्रयोगों में बड़ी गलती यह हुई थी कि मात्रा बहुत अधिक दे दी गयी थी । तीव्रगामी न्यूट्रॉनों के जैविक प्रतिक्रिया पर प्रभाव के संबंध में समुचित जानकारी न होने से तथा साइक्लोट्रॉनों की गलत कार्यप्रणाली के कारण यह गलती हुई । १९६९ में हैमरस्मिथ अस्पताल में शोध कार्य शुरू हुआ । पहले छह माह में न्यूट्रॉनों का वह समुचित परिमाण पता किया गया जिसके फलस्वरूप, त्वचा का ट्यूमर समाप्त हो जाए और सामान्य त्वचा को कोई घातक हानि न पहुंचे ।

नाकाबिल सिर्फ बीस प्रतिशत

नवंबर, १९६९ से इस अस्पताल में ३६० रोगियों का तीव्रगामी न्यूट्रॉन-विधि से उपचार हो चुका है । इन केसों में या तो शल्यचिकित्सा के बाद फिर ट्यूमर विकसित हो गये थे, या एक्स-रे अथवा गामा-रे का ट्यूमरों पर कोई अनुकूल प्रभाव नहीं पड़ा था । बीस प्रतिशत रोगियों को उपचार के योग्य नहीं समझा गया क्योंकि उनके ट्यूमर या तो उपचार के लिए तकनीकी रूप से उपयुक्त नहीं थे या फिर वे बहुत ज्यादा अस्वस्थ थे ।

ट्यूमर समाप्त !

१४१ रोगियों में से जिन १३५ रोगियों की उपचार के वर्ष भर में मृत्यु हो गयी उनमें विशेषता देखी गयी । मृत्यु के समय या तो उनके ट्यूमर सिकुड़ रहे थे या बिलकुल समाप्त हो गये थे । प्रत्येक केस में दर्द तथा अलसर बनने की प्रक्रिया रुक गयी थी । ५८ रोगियों के ऐसे ट्यूमर जो एक्स-रे तथा गामा-रे का प्रतिरोध करते थे, एक वर्ष से अधिक समय तक के लिए लोप हो गये ।

तीव्रगामी न्यूट्रॉन चिकित्सा-पद्धति का भविष्य सुधरे हुए और, संभव हो तो, सस्ते संयंत्रों पर निर्भर है । विज्ञान की आश्चर्यजनक प्रगति को देखते हुए यह संभावना कोई अधिक मुश्किल तो नहीं मालूम पड़ती ।
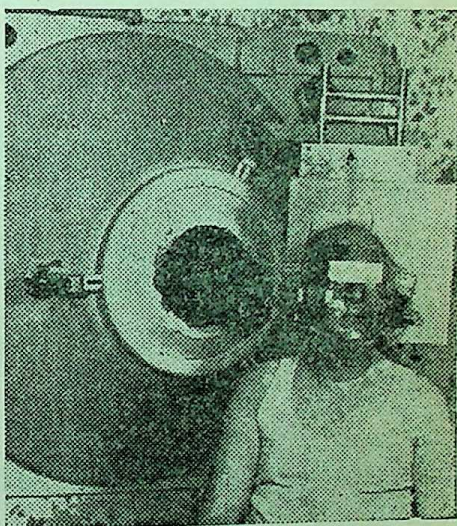
उपचार । प्लास्टिक के बने आवरण में रोगी का सिर स्थिर रखा जाता है। आवरण पर सीसे की बखिया होती है ताकि त्वचा पर प्रतिक्रिया कम हो सके

टूट रहा हूं

टूट रहा हूं, टूट रहा हूं

टूटी लहरें, टूटा दर्पण
टूट रहा संपूर्ण समर्पण
बिखर-बिखर कर किस घाटी में
एकाकी बन छूट रहा हूं
टूट रहा हूं

जीवन का हर एक उजाला
बनता जाता काला-काला
गलियारे में स्वर्ण-किरण को
निर्मम बनकर कूट रहा हूं
टूट रहा हूं

यह कोई विष या मजबूरी
सांस-सांस में इतनी दूरी
अपनेपन के लिए भला क्यों
अपनापन ही लूट रहा हूं
टूट रहा हूं

—रामसकल विद्यार्थी शास्त्री
तामापुर, समस्तीपुर (बिहार)

दर्द भरा हाशिया

टूटन का
दर्द भरा हाशिया
खोज रहा कोई उपनाम

और मुखर हो गयीं
समस्याएं
परिधि खींच बैठा संत्रास
कैसे हम जी लें
अपनापन
उभर उभर आता संन्यास
उन्मन-सा
बोझिल-सा मन
समाधान जैसे गुमनाम

संधि के लिए नियति
खड़ी है
होने दो, हो रहीं समीक्षाएं
क्वांरी क्यों रह जाए
आस्था
लब्ध हुई जा रहीं प्रतीक्षाएं
कालजयी
संबोधन मिल गया
प्रश्न-चिह्न कर गये प्रणाम

—र. प्र. श्रीवास्तव
६४/१९९, सदर बाजार, का

कहानी

मुर्दा मैदान

• रामदरश मिश्र

भों...भों...भों...घुर-घर...घर-घर...कांव...कांव...कांव...फड़ड़...फड़ड़...फड़ड़...टेंअ...

रिंग रोड है यह। वजीरपुर से मील भर आगे बढ़ने पर नाक में एक तेज दुर्गंध फट पड़ती है—एक सड़ी हुई दुर्गंध और आदमी तिलमिला उठता है, नाक पर रूमाल रख लेता है और चाहता है कि उसकी बस या स्कूटर या टैक्सी जल्दी से यह जंगल पार कर जाए और पार करने के बाद भी वह इसी प्रभाव से तिलमिलाता रहता है।

हां, यह शहर ही दुर्गंधशाला है। दूर-दूर तक एक खाली मैदान में (जो

पहले नीची जमीन थी और अब काफी ऊंचा-नीचा और ऊबड़-खाबड़ हो गया है) सैकड़ों जानवरों के नये, पुराने मुर्दे पड़े हैं, उनके कंकाल, उनकी टूटी-फूटी हड्डियां बिखरी हुई हैं। ट्रकों पर लद-लदकर शहर का कूड़ा आता है और हवा के ऊपर अपनी सीलनभरी दुर्गंध लादकर मीलों बिखेर देता है। जगह-जगह गंदे गढ़ों में काई-भरा पानी जमा है, जिसके किनारे-किनारे अनेक लोग नंगे बैठे हैं।

फड़ड़ ... फड़ड़ ... फड़ ... फड़ ...

बड़े-बड़े गिद्ध पंख फड़काते हैं, मुर्दे को खींचते हैं, नोचते हैं और पंख फैला-फैलाकर लड़ते हैं, फिर चुप होकर बैठ जाते हैं, किसी नये मुर्दे की तलाश में।

इस गंदे मैदान में अनेक पेड़ हैं जो ठूंठ हो चुके हैं, कुछ सरकारी मकान हैं। गिद्ध इन्हीं पेड़ों और मकानों की छतों पर सैकड़ों-हजारों की संख्या में बैठे हुए नये मुर्दे का इंतजार करते हैं।

अगस्त की दोपहर है। काफी दिनों से पानी नहीं बरसा है। तेज धूप और पसीने की चिपचिपाहट के कारण आदमी अपनी ही दुर्गंध नहीं संभाल पाता, इस मुर्दा-मैदान को कहां तक संभालेगा?

कूड़ा लिये कई ट्रक एकसाथ आये और इस मैदान में उसे उड़ेलने लगे। पीठ पर छोटी-बड़ी बोरियां लटकाये कुछ छोटे-बड़े लड़के-लड़कियां, कुछ मर्द, कुछ औरतें दौड़कर आये और इस कूड़े के ढेर में कुछ खोजने लगे—

कुछ शीशे के टुकड़े, कुछ लोहे और प्लास्टिक के टुकड़े, कुछ कागज के टुकड़े, सिगरेट की खाली डब्बियां, कुछ कपड़े के टुकड़े।

दो लड़कों में लोहे के एक टुकड़े के लिए तकरार हो गयी। एक लड़का बारह साल के आसपास था, उसका नाम था भोला। दूसरा सोलह साल का होगा, उसका नाम हट्टी था। दरअसल यह लोहे का टुकड़ा (जो काफी अच्छा था) छोटे को ही मिला था, किंतु पास खड़े बड़े लड़के ने झपटकर वह लोहा पकड़ लिया और अपना अधिकार जताने लगा। भोला यह टुकड़ा पकड़े-पकड़े रोने लगा। हट्टी ने लात से अलंगी मारकर भोला को गिरा दिया और जोर से लोहा उसके हाथ से खींच लिया, जिससे भोला के हाथ में खरोंच आ गयी और खून छलछला आया। वह रोने लगा। आसपास के लोगों ने दोनों को गालियां दीं—"अरे नरक के कीड़ो, नरक में भी आकर लड़ते हो! जिसे लोहा मिला हो वह ले ले।"

"देखो न ताऊ, यह न जाने आज कहां से आ टपका और मेरे हाथ से लोहा छीनने लगा," हट्टी ने पास खड़े अधेड़ से कहा।

"क्यों रे तू कौन है? कहां से आ गया रे? देख न, मीलों कूड़ा फैला हुआ है, कूड़े के लिए लड़ाई क्यों करता है?"

भोला ने रुआंसा होकर कहा, "नहीं ताऊ, मैं नहीं लड़ाई कर रहा हूं। लोहा मैंने ही पाया है।"

"जा-जा, भाग जा, घूम-घामकर कूड़ा बीन।"

भोला खून से चिपचिपाती अंगुली का खून पोंछता हुआ अलग हट गया और कूड़े के ढेर पर रेंगने लगा।

चलती - फिरती, काली-काली, कटी - फटी छायाओं-से अनेक लोग। गंदे फटे पायजामे या मात्र लंगोटे, गंदी फटी किसी की उतारी हुई बेडौल बुशशर्ट या कुरते या नंगे शरीर। सिर से पांव तक बहती हुई मैल की लकीरें। पीठ पर झूलते हुए पुराने बोरे। आंखों में जमी हुई सीलन।

एक फटा कच्छा और किसी का उतारा हुआ झोलदार कुरता पहने भोला मार खाये कुत्ते-सा सबसे अलग टुकड़े बटोरने लगा।

टें अं अं . . .।

चीलें जूझती हुई झपाटे मार रही थीं।

कांव . . . कांव . . . कांव।

कौए मांस के लिए शोर करते हुए आपस में लड़ रहे हैं। भोला यह सब देख रहा है। आदमी भी तो लड़ता है आदमी से, इन टुकड़ों के लिए। बड़ा छोटे को दबोच लेता है। उसने देखा दूर, फिर दो लड़कों में लड़ाई हो रही है।

साले . . . बुदबुदाकर वह चीजों की खोज करने लगा। कैसी अजीब लग रही है मुर्दों और कूड़ों की यह दुनिया! वह आज पहली बार आया है यहां। उसे महसूस होता है कि पसीने की काली-काली लकीरें

चेहरे से फूटकर छाती पर होती हुई चली जा रही हैं। वह अपना झल्लड़ कुरता उठाकर मुंह पोंछ लेता है और कुरते को छाती पर रगड़कर छाती की लकीरें साफ कर

लेता है। [illegible] चिलाती धूप में दूर तक देखता है, फिर डगमगाता हुआ सरकने लगता है।

हां, वह पहली बार आया है यहां। कई दिन का बासी पावरोटी का एक टुकड़ा सामने पड़ा हुआ है—गंदा काला-सा। भोला उसे देखता है...उसके खाली पेट में ऐंठन तेज हो जाती है, जबान में पानी है, पिछले कई खाली दिन हहराते हुए उसके भीतर से गुजरने लगते हैं। कुछ देर तक उस टुकड़े को घूरते रहने के बाद अपने को धिक्कारता है—छिः जिसे चील, कौए, कुत्ते, और सूअर भी नहीं छू सके, उसे वह उठाकर पेट में झोंके। उसने आगे बढ़कर टुकड़े को पांव से रौंद-रौंदकर और भी गंदा कर दिया, कूड़े में गाड़ दिया।

हां, आज वह पहली बार आया है। उसकी पढ़ाई छूट गयी—हां, छूट ही गयी समझो! वह नगर-निगम के स्कूल में पढ़ता था। बाबू कहते थे—"देख भोला, खूब मन लगाकर पढ़, मैं तुझे बड़ा आदमी बनाऊंगा। देखता है न, तेरी मां दवाई के बिना मर गयी। 'जिनगी' भर बनते हुए मकानों का ईंट-गारा ढोती रही। और जब एक दिन ईंट-गारा ढोकर जाड़े की शाम को घर लौट रही थी तो पानी बरसने लगा। रास्ते में किसी ने अपने बरामदे में बैठने तक न दिया। वह एक पेड़ के नीचे भीगती रही। उसे निमोनिया हो गया। दवाई के पैसे नहीं थे, तड़प-तड़पकर मर गयी। इतने दिनों से हम दोनों [illegible] मजूरी करते रहे, लेकिन दवाई के लिए चार पैसे भी नहीं बचा सके। इस महंगाई के जमाने में आधापेट भोजन मिल जाए, यही बहुत है। बेटे, जो नरक हमने भोगा है उसे तू भी भोगे, यह नहीं होने दूंगा। मन लगाकर पढ़ और बहुत बड़ा आदमी बन।"

भोला की आंखें गीली हो आयीं—बाबू कितने अच्छे हैं! मां के न रहने पर भी उन्होंने उसको और उसकी बड़ी बहन लछमी को कितने प्यार और दुलार से पाला-पोसा। दिन भर यहां-वहां मजूरी करते, थककर आते तो उससे पढ़ने-लिखने के बारे में पूछते। लछमी अब बड़ी हो गयी थी, धीरे-धीरे काम पर जाने लगी थी। बाबू का बोझ थोड़ा हलका हो रहा था। बाबू कहते थे कि एकाध साल में इसकी शादी कर दूंगा। शादी का नाम लेते ही उनकी आंखें खुशी से चमक उठतीं, फिर धीरे-धीरे आंसू से भीग जातीं।

एक दिन लछमी काम से नहीं लौटी, वह घबरा गया। बाबू देर से आते थे। उनके आते ही उसने बताया तो वे भी बहुत घबरा गये। जहां वह काम पर जाती थी वहां दौड़े-दौड़े गये, लेकिन वहां मालूम हुआ कि सारे मजदूर तो कब के जा चुके हैं। बाबू ने दो-चार पड़ोसियों को लिया। इधर-उधर खोजने के बाद थाने में रपट लिखाने गये। बाद में उसने सुना कि दीवान ने गाली देकर भगा दिया—"अबे जा, तेरी बेटी हूर नहीं है कि कोई उड़ा

ले जाएगा। चले आते हैं जान खाने।"

कई दिन तक कोई खबर नहीं मिली। एक दिन एक पड़ोसी ने आकर बताया—"मैंने लछमी की लाश सड़क पर पड़ी देखी है। भीड़ जमा थी, पुलिस वहां खड़ी-खड़ी पूछताछ कर रही थी। मैंने पहचान तो लिया, लेकिन बताया नहीं। पुलिस-वालों का चक्कर बड़ा पेचीदा होता है। भागा-भागा आया हूं, तुम्हें जो करना हो करो।"

बाबू चिग्घाड़ मारकर गिर पड़े। होश आया तो दो-तीन पड़ोसियों को लेकर लछमी की लाश की ओर जोर से भागे। वहां से लाश थाने जा चुकी थी। पहुंचने पर थानेदार और दीवान ने कहा कि तुम्हारी लड़की ने आत्महत्या की है, तुम्हारे जुल्मों से तंग आकर। हम तुम्हें फंसाएंगे। बाबू बहुत गिड़गिड़ाये—"नहीं हजूर, मैं तो अपनी बिटिया को अपनी आंख की पुतली समझता था। मैं भला क्यों जुल्म ढाऊंगा? मैं तो जिस दिन यह गायब हुई उसी दिन रपट लिखाने आया था,आप लोगों ने रपट नहीं लिखी।"

"किसने रपट नहीं लिखी? झूठे इल्जाम लगाता है!" दारोगा तड़पा। बाबू ने दीवान की ओर इशारा करना चाहा, लेकिन दीवान की आंखें देखकर वे डर गये। पड़ोसी चाचा ने बाबू के कान में कहा--"चुप रहो, बहस मत करो, कुछ दे-लेकर छुट्टी करो। पुलिस का जाल है।"

बाबू तड़प उठे थे—"मेरी लड़की की जान लेनेवाले भेड़ियों को पुलिस नहीं पकड़ती उलटे मुझी को फांसी की धमकी दे रही है। कलंक लगाया जा रहा है कि मेरे जुल्म से तंग आकर बेटी ने अपनी जान दी है। वाह रे गरीबों की साथी सरकार और वाह रे उसकी पुलिस!" बाबू रोने लगे थे लेकिन उन्हें क्या मालूम कि वे भेड़ियों के सामने रो रहे हैं। पुलिसवालों ने उन्हें कमरे में बंद कर दिया और पीटने लगे। और जब बाबू ने कहीं कुछ न कहने का वचन दिया तब उन्हें छोड़ा गया।

वे देर से घर लौटे। उन्हें देखकर डर लगा। उनकी देह पर बेंत के निशान थे, उनकी आंखों में खून की लाली जम गयी थी, जिसमें से एक डर झांक रहा था। कुछ देर तक खड़े-खड़े वे उसकी ओर देखते रहे, जैसे पहचानते ही नहीं, फिर एकाएक झपटकर उसे गोद में भर लिया और दहाड़ मारकर रो पड़े। वह भी फूट-फूटकर रोने लगा।

पड़ोस का नौजवान मलखा कमरे में बंद शेर की तरह एक ही जगह चहल-कदमी करने लगा। उसकी आंखों से आग बरस रही थी। गुर्राकर बोला—"यह किसी का काम नहीं है, पुलिसवाले ही लड़की को उड़ाकर ले गये थे, उनके कुकर्म से जब वह मर गयी तब उसके अंग काट-काटकर सड़क पर फेंक दिया ताकि मालूम हो कि वह बस से कुचलकर मर गयी है।"

"अरे देख रे मलखा, कोई जाकर कह देगा या पुलिस अपने आप सुन लेगी तो तेरी खैर नहीं ! पुलिस तुझे किसी जुलुम में फांस कर बरबाद कर देगी।"

लोग डर के मारे धीरे-धीरे वहां से सरक गये। मलखा बहुत देर तक वहां खूनी आंखों से गुर्राता रहा। फिर बोला—"अच्छा चाचा, मैं देखता हूं इस पुलिस को। मैं अपने यूनियन के दफ्तर में जा रहा हूं, पुलिस की ऐसी-तैसी करके नहीं रख दी तो मेरा नाम मलखा नहीं।"

मलखा चला गया। बच गये बाबू, सो धीरे-धीरे वे बीमार पड़ गये। पहले तो बीमारी की हालत में ही काम पर गये, लेकिन जब खाट पकड़ ली तब काम पर जाना बंद हो गया। उससे कहते—"तू स्कूल जा बेटा, पढ़ाई मत छोड़।" वह मरे मन से स्कूल जाता रहा। कुछ दिन तक यों ही चला। घर में बिक सकनेवाला जो सामान था वह काम देता रहा। फिर-फिर क्या हो ? फाकामस्ती होने लगी।

"बाबू, मैं पढ़ने नहीं जाऊंगा, मैं मिहनत-मजूरी करूंगा," उसने एक दिन बाबू से कहा।

बाबू ने उस दिन कुछ नहीं कहा। वह समझ गया कि अब उसे पढ़ाने की जिद बाबू में बाकी नहीं है। फिर भी बड़ी तकलीफ से बोले—"अच्छा, तू यह क्यों नहीं करता कि दोपहर तक उस कूड़ाखाने में लोहे, प्लास्टिक, कागज आदि के टुकड़े बटोर, फिर उसके बाद स्कूल चला जाया कर। इन टुकड़ों को बेचने से कुछ पैसे बन जाएंगे, काम चल जाएगा, फिर मैं अच्छा हो जाऊंगा तो चिंता नहीं रहेगी।"

'काम क्या चल जाएगा ? लेकिन हां, कुछ चल ही जाएगा।' सोचकर वह तैयार हो गया। वह जानता था कि अब पढ़ाई नहीं हो पाएगी। इन टुकड़ों से मिलेगा क्या ? नहीं, पढ़ाई छोड़कर पूरे दिन की कोई मजदूरी करनी ही होगी।

भों-भों-भों . . . किउ-किउ-किउ . . . घुर-घुर घुर. . .चोंय-चोंय-चोंय. . .

उसने आंख उठाकर देखा—चारों ओर लड़ाई जारी है, छोटे-बड़े की। उसे सिर पर धूप महसूस हुई। उसने देखा कि ठूंठ डाल की छाया उसके ऊपर से सरक गयी है. . . ओफ कुछ और बटोरना चाहिए ....

वह फिर यहां-वहां टुकड़ों की तलाश में सरकने लगा। सरकता-सरकता सड़क की ओर आ गया। अरे इतने पुलिसवाले ! पुलिस को देखते ही उसके अंतर्मन में जमा हुआ डर ऊपर आ गया।

"हां बेटे, इतने पुलिसवाले।"

उसने मुड़कर देखा—वही लड़का जिसने उससे लोहे के टुकड़े के लिए लड़ाई की थी।

वह भय से झनझना गया !

"अरे बेटे, देखते नहीं कितनी चहल-

पहल है आज इस मुर्दाखाने के पासवाली सड़क पर भी ? अरे तू जानता नहीं है कि आज वजीरपुर में कोई जलसा है, उसमें परधान मंत्री आ रही हैं। सुना है वे रोहतक गयी हैं, वहीं से यहां आएंगी। जानता नहीं, चुनाव पास आ रहा है।"

"तेरा नाम क्या है रे ?" उसने पूछा।

भोला ने एक बार उसे घृणा और क्रोध-मिश्रित दृष्टि से देखा, फिर धीरे से बोला —"भोला !"

"भोला ? हा-हा-हा-हा, तू सचमुच भोला है। मेरा नाम हट्टी है। तू मुझसे नाराज हो गया है रे ? मैंने तेरा टुकड़ा छीन लिया था न !"

भोला ने नहीं में सिर हिला दिया। हट्टी ने उसे हलका-सा धौल जमाते हुए कहा—"क्यों बे, तू नाराज क्यों नहीं है ? मैंने तेरा लोहा छीन लिया और तू नाराज भी नहीं है। तुझे नाराज होना चाहिए। यही तो ऐब है अपने लोगों में कि हम लोग अपना हक छीनने-वालों से नाराज नहीं होते। बोल, तू नाराज है न, नहीं तो मैं फिर मारूंगा। बोल, बोल..."

भोला ने 'ना' में सिर हिला दिया और कहा—"तो ले, मुझे मार।" वह भीतर से इस आदमी के प्रति खिलता आ रहा था।

हट्टी खिलखिलाकर हंस पड़ा—"तू मेरा दोस्त बनेगा ?"

"हां," भोला ने कहा।

"तो ले अपना लोहा, भूख लगी है न?"

भोला ने संकोच से 'ना' में सिर हिला दिया।

"अबे, तुझे भूख क्यों नहीं लगी है, तेरा बाप तुझे रोटी खिला गया है क्या ? तीन-चार बज रहे हैं, तू कोई देवता है कि

हवा पीकर भूख मिटा लेगा ? ले खा।" कहकर उसने अपने फटे लंबे कुरते की जेब में से एक कागज में लिपटी कुछ मोटी-मोटी रोटियां निकालीं। भोला की ओर बढ़ाते हुए कहा—"ले, खा।"

भोला पहले तो सकुचाया, लेकिन रोटियां देखते ही उसके भीतर का ज्वालामुखी उबल पड़ा और फिर रोटियां तोड़-तोड़कर खाने लगा। भोला ने खाकर कागज का वह टुकड़ा उठा लिया जिसमें रोटियां लिपटी थीं। उसे पढ़ने लगा—'पांच लाख लोगों की सभा को संबोधित करते हुए प्रधानमंत्री ने घोषणा की है कि हमारी सरकार अमीर-गरीब के भेद को मिटाकर रहेगी। अब अमीरों का जोर-ज़ुल्म नहीं चलने पाएगा।

'गरीबों को अच्छा खाने-पीने, पहनने, अच्छे मकान में रहने का अधिकार होगा। उनके बच्चों को पढ़ने की सभी सुविधाएं दी जाएंगी। हमारी सरकार ने इस दिशा में काफी सफलता हासिल कर ली है, लेकिन विरोधी दल के लोग अपने राजनीतिक स्वार्थ के लिए सरकार की सफलताओं को नजरअंदाज करते रहे हैं।'

हट्टी भोला का पढ़ना मुग्ध भाव से देखता रहा, फिर प्रसन्न होकर बोला—"अरे, तुझे पढ़ना भी आता है भोला! तू तो बड़ा ही किस्मतवाला है रे! फिर क्या करने आया इस मुर्दाखाने में? यह तो हम-जैसे जानवरों की जगह है रे!"

"नहीं यार हट्टी, मैं बड़ा अभागा हूं। मैं स्कूल में छठी क्लास में पढ़ता हूं, मगर अब नहीं पढ़ पाऊंगा।"

"यार भोले, तू पढ़ाई मत छोड़। मेरी कितनी इच्छा थी कि मैं पढ़ पाता, लेकिन पैदा होते ही अपने को गरीबी के नरक में पाया। मां-बाप के होते हुए भी अपने को लावारिस समझता रहा। मां-बाप भी तो जिंदा रहते मुर्दा थे। किसी को पढ़ते देखता तो दिल में हूक उठती कि हाय मैं भी पढ़ पाता! मां-बाप कहते—"हट्टी, यह पढ़ाई-लिखाई हम लोगों के लिए नहीं है। हम लोग तो पैदा होते ही अपने पेट के हौज को भरने के लिए घूरे पर डाल दिये जाते हैं।"

एक हवाईजहाज आकाश में बहुत नीचे आकर शोर करता उड़ता चला गया। इन्होंने देखा कि कागज के बहुत से पन्ने हवा में लहरा उठे हैं, जो धीरे-धीरे जमीन पर आ रहे हैं। एक पन्ना भोला के पास भी आकर गिरा। वह उठाकर पढ़ने लगा।

"क्या लिखा है रे?"

"वही यार, जो उस अखबार के टुकड़े में लिखा था।"

"यानी कि हम गरीब लोग अमीर हो गये हैं, हमारे पास अच्छे मकान हो गये हैं, हमारे पास खाने-पीने के लिए ढेर सारा सामान आ गया है और हम लोग पढ़-लिखकर अफसर बन गये हैं, यही न रे? धत् तेरे की।"

"हां हट्टी, यही लिखा है।"

"तब चल प्यारे, हम लोग इस मुर्दा-

खाने में क्यों खड़े हैं ? हम लोग तो रईस हो गये हैं !"

सड़क पर चहल-पहल बढ़ गयी थी। मोटरों का तांता और भी सघन हो गया था।

"अच्छा भाई हट्टी, मैं चला।"

"अरे चले जाना यार, परधान मंत्री यहां से जाएंगी, उनके दरसन तो कर ले।"

"नहीं यार..."

"अच्छा चल, कल आएगा न ?"

"हां-हां, आऊंगा।"

"तो जा, मैं कल राह देखूंगा।"

दोनों की दिशाएं अलग-अलग थीं। हट्टी को मर्दा मैदान पार करते हुए उधर जाना था और भोला को सड़क पार कर दूसरी ओर जाना था। वह सड़क पर पहुंचा तो पुलिस के सिपाहियों ने उसे देखा। एक सिपाही तड़पा—"क्यों रे नरक के कीड़े, तू क्यों आया है ? भाग यहां से !"

भोला भयभीत-सा वहां से सरक गया। डर के मारे यह भी नहीं पूछ पाया कि प्रधान-मंत्रीजी कब जाएंगी। वह दो पुलिसवालों के बीच सड़क से कुछ फासले पर खड़ा हो गया और सोचता रहा कि मोटरों का तांता कुछ कम हो तो झटके से सड़क पार कर जाए। पता नहीं बाबू का क्या हाल है ! कुछ देर बाद उसने देखा कि सड़क थोड़ी खाली है। वह झपटकर सड़क पर आया, उस पार को भागा। एक पुलिसवाला गाली देता हुआ दौड़ा, तब तक तेजी से आती हुई एक कार कें-कें करती हुई भोला से आ टकरायी। भोला एक गंदे चूहे की तरह उछलकर किनारे जा गिरा। उसके थैले में भरे हुए सारे टुकड़े छितरा गये।

पुलिसवाले ने कार की ओर देखा। कार में से एक चिकना चेहरा झांकने लगा। पुलिसवाले ने सैल्यूट मारी।

"इस लड़के को कैसे आने दिया तुमने ?"

"हुजूर, मैंने बहुत रोका..."

"जिंदा है कि मर गया ?"

"हम देखते हैं इसका क्या हाल है ?"

मिनिस्टर ने ड्राइवर से कार स्टार्ट करने को कहा। कार उड़ चली और कार के पीछे रुका हुआ संभ्रांत प्रवाह वह चला। पुलिसवाला गाली देता हुआ भोला के पास आया। देखा कि उसके सिर से खून बह रहा है और वह बेहोश हो गया है। कुछ लोग भोला के पास घिर आये थे और तरह-तरह की बातें कर रहे थे। कुछ लोग कह रहे थे कि यह अभी जिंदा है, इसे जल्दी से अस्पताल पहुंचाया जाए तो जी सकता है। इसके मां-बाप को खबर भी की जा सकती है। किंतु कौन करे ? अभी तो इसकी पुलिस-जांच की खानापूरी होगी। यह जांच भी प्रधानमंत्री की गाड़ी निकल जाने के बाद ही होगी। तब तक गरीब बचेगा भी ?

पुलिस का सिपाही सड़क के किनारे अपनी राष्ट्रीय ड्यूटी पर मुस्तैद हो गया है और एक हवाईजहाज फिर कागज के पन्ने बिखेरता ऊपर से शोर करता गुजर गया है। पन्ने धीरे-धीरे कटे पंखों की तरह इस विराट मुर्दाखाने में यहां-वहां गिर रहे हैं...

—ई. ४/११, माडल टाउन, दिल्ली-९

जलालुद्दीन रूमी रात बीत गयी...

● राजेश्वरप्रसाद नारायण सिंह

जलालुद्दीन रूमी का नाम पश्चिम-एशिया के मुल्कों में उसी प्रकार लिया जाता है जैसे गोस्वामी तुलसीदास का भारत में। वे ईरान के एक महान सूफी थे। रहस्यवाद से परिपूर्ण उनके कुल २६,००० शेर, जो उनकी आध्यात्मिक अनुभूतियों पर आधारित हैं, उपलब्ध हैं। सूफी शायरों में उनका स्थान बहुत ऊंचा है। रूमी के संबंध में कुछ बताने से पहले सूफी संप्रदाय या सूफीवाद के बारे में कुछ जानकारी देना अनुपयुक्त नहीं होगा।

इसलाम का रहस्यवाद ही सूफीवाद है। यह एक ऐसा मत है जो एकाएक, आप-से-आप, उत्पन्न हुआ। मुहम्मद साहब की मृत्यु के प्रायः सौ साल बाद, अरब क्षेत्रों में तथा दक्षिण-एशिया के तमाम मुसलिम देशों में जंगल की आग की तरह फैल गया। यह एक प्रकार से इसलाम के कर्मकांड तथा रूढ़िवाद के खिलाफ विद्रोह था—उन लोगों का जो भगवद-प्रेम पर ज्यादा जोर देते थे तथा जो स्वयं शरावे-इश्क के नशे में दिन-रात चूर रहते थे। उनका विरोध कर्मकांड के उस जंगल से था जिसने खुदा को अपनी चादर में छिपा लिया था। दरअसल मुहम्मद साहब से पहले ही अरब में बहुतेरे ऐसे फकीर विद्यमान थे जो एकांत में रहकर कड़ी तपस्या में निरत रहते थे। उन्होंने इसलाम को स्वीकार किया, पर मुल्लाओं

जलालुद्दीन रूमी

के शासन का नहीं। उनका परिधान ऊन (सूफ) का बना होता था और इसीलिए लोग उन्हें सूफी कहने लगे थे।

गरज यह कि अरब के उन फकीरों में ही वह बीज मौजूद था जो आगे चलकर सूफीवाद-रूपी वृक्ष के रूप में प्रस्फुटित हुआ, अर्थात कठोर जीवन, कच्चे ऊन की पोशाक, सूफी संज्ञा आदि सभी बातें दिव्य प्रेम की सुरा में अहोरात्र मस्त रहनेवालों ने उनसे ही प्राप्त कीं। सूफी मत का न तो कोई आरंभकर्ता था, न कोई विधि-विधान। कट्टरपंथियों, धर्मांधों के खिलाफ यह एक स्वयंभू विद्रोह था। विद्रोह करनेवाले वे लोग थे जिनके हृदय में परमात्मा से मिलने की एक ऐसी व्याकुलता थी जो उन्हें चैन नहीं लेने देती थी, वैसे ही जैसे ब्रज की गोपियों का हृदय कृष्ण-मिलन के लिए सतत तड़पता रहता था। संसार की सारी वस्तुएं उनके लिए तृण-वत थीं। उन्हें एक ही चाह थी—परमात्मा प्राप्ति की। यहां तक कि मसजिद में वे शायद ही कभी नमाज पढ़ने जाते हों—

न जा मसजिद, न रख रोजा
न मर भूखा, न कर सिजदा
वजू का तोड़ दे कूजा
शराबे-शौक पीता जा

(शौक = भगवद-मिलन की उत्कंठा)

कुछ लोगों का मत है कि वे ज्ञानी होने के कारण सूफी कहलाये। अर्थात 'सूफी' शब्द की व्युत्पत्ति यूनानी भाषा के शब्द सोफिया (ज्ञान) से है।

वैसे तो इराक और मिस्र में भी काफी बड़े सूफी पैदा हुए, पर सूफीवाद का सुसंगठित रूप तब पैदा हुआ जब वह ईरान पहुंचा। तभी उसने एक 'वाद' का रूप भी धारण किया।

ईरान ने बांहें फैलाकर सूफी मत का स्वागत किया। वहां पहले से अनेक धर्मों का समन्वय, महायान (बौद्ध दर्शन) वेदांत, प्लेटो, अरस्तू तथा प्लोटिनस के दर्शनशास्त्रों का प्रसार था, जिसके कारण ईरानियों को सूफी मत के बारीक तत्त्व को हृदयंगम करने में कठिनाई नहीं हुई।

इस सबका परिणाम यह हुआ कि ईरान ने उपर्युक्त उच्च दर्शनों से प्रभावित बड़े ऊंचे दर्जे के अनेक ऐसे सूफी पैदा किये जिन्होंने आत्मा-परमात्मा के रहस्यपूर्ण संबंध की सुंदर व्याख्या ही नहीं की बल्कि निजी साधना द्वारा उसकी अनुभूति भी प्राप्त की। उस स्थिति तक पहुंचने के लिए जिसमें आत्मा आशिक बनकर अपने माशूक — परमात्मा — से जा मिलती है, दूसरों के लिए मार्गदर्शन का कार्य भी किया। अल-गजाली, सनाई, आबिल खैर, अत्तार आदि सब ऐसे ही थे और इन्हीं जगमगाते हुए सितारों में थे जलालुद्दीन रूमी जिनके अब ७०० वर्ष पूरे हुए हैं। ईरान का प्राचीन पद्य साहित्य बड़े ऊंचे दर्जे का है और उसका मुख्य कारण यह है कि वह सूफी भावनाओं से, उसके रहस्यवाद से परिपूर्ण है। यही नहीं, इनमें उन सारे पड़ावों का विशुद्ध उल्लेख

है जिन्हें पार कर आत्मा अपने प्रतीक पर पहुंचती है, अर्थात परमात्मा का साक्षात्कार करने में समर्थ होती है। आत्मा तब पर-मात्म-स्वरूप का दर्शन बन जाती है और प्रसिद्ध सूफी संत मंसूर की तरह 'अनलहक' (ब्रह्मास्मि) का गीत गाने लगती है।

अत्तार ने बड़े ही सुंदर ढंग से जिक्र किया है—'जब कोई मछली पानी से बाहर कर दी जाती है तो वह बेचैन होकर इधर-उधर कूदने लगती है, इस चाह में कि वह पुनः पानी के भीतर घुस जाए। इसी तरह खुदा से अलग हुई आत्मा निरंतर अधीर होकर इस बात के लिए व्यग्र रहती है कि वह पुनः अपने प्रियतम से जा मिले।'

और जब वह प्रियतम से पुनः जा मिलती है तब वह शाश्वत आनंद एवं 'हाल' (भावावेश) की अवस्था ग्रहण कर लेती है। उसके हृदय में फिर किसी और वस्तु की चाहना नहीं रह जाती — स्वर्ग तक उसे तुच्छ लगने लगता है। इसलामी जगत की मीरा राबिया से जब स्वप्न में मुहम्मद साहब ने पूछा—'राबिया! तू मुझसे प्रेम करती है?' तब उसने कहा था—'रसूल! मेरा हृदय प्रिय-तम (परमात्मा) के प्रेम से इतना भरा हुआ है कि उसमें आपके लिए स्थान नहीं रह गया है। मैं क्या करूं?'

जैसा कि पूर्व-कथित है, मसजिद में जाकर नमाज पढ़ना, रोजा रखना, वजू करना आदि कर्मकांड की सारी चीजें सूफी संतों ने त्याग दीं। कट्टर धर्मांध मुल्लाओं को यह बात कब गवारा होती? उन्होंने उनके खिलाफ आवाज उठायी, मंसूर-जैसे महात्मा तक को सूली पर चढ़-वाकर ही दम लिया। औरंगजेब ने सरमद

ईश्वर के गुणगान में
भावविभोर सूफी मजलिस
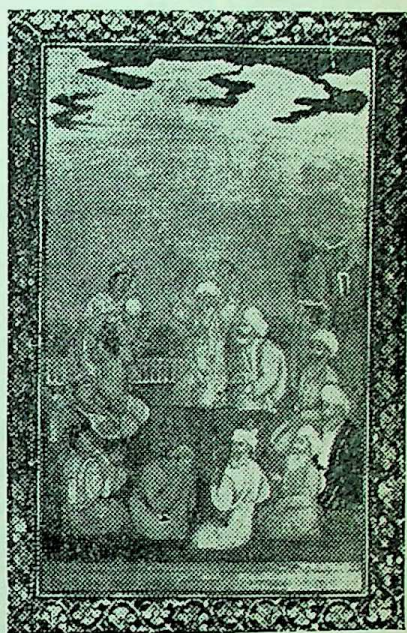
का सर उतरवा डाला, इसलिए कि वे जामा मसजिद के पास बैठे रहते पर भीतर जाकर कभी नमाज नहीं पढ़ते थे।

सूफियों के द्वारा चलायी हुई दो चीजें उनके लिए खासतौर पर बर्दाश्त नहीं हुईं—भगवद-प्रेम के लिए 'इश्क' शब्द का व्यवहार तथा खुदा की इबादत में संगीत का प्रवेश। खुदा के लिए अब तक

'मोहब्बत' शब्द का इस्तेमाल होता आया था, 'इश्क' का नहीं, चूंकि उनकी दृष्टि में इश्क उस प्रेम को कहते हैं जिसमें 'सेक्स' की प्रधानता होती है। अतएव खुदा के लिए इसका प्रयोग, उनकी दृष्टि में, अवांछनीय था, पर सूफी संतों की दृष्टि उनसे भिन्न थी। उनके हृदय में खुदा के लिए वही प्रेम था जो किसी नायिका का उस पुरुष के लिए होता है जिसे वह जी-जान से चाहती है, जिससे मिलने के लिए वह दिन-रात तड़पती रहती है। स्वाभाविक था कि वे ऐसे शब्द का व्यवहार करते जो उनकी मिलन-व्याकुलता को, प्रेम की गहराई को उचित रूप से व्यक्त करता। मुल्लाओं के लिए यह एक कड़वा घूंट था, जिसे वे गले के नीचे न उतार सके।

ईरानी स्वभाव से संगीत-प्रिय होते हैं। अतः ईरानी सूफी संत आध्यात्मिक संगीत की स्वर-लहरी में डूबे हुए दिव्य-प्रेम की अनुभूति प्राप्त करते, साथ ही खुदा के इश्क में डूब जाते, 'हाल' की अवस्था को प्राप्त होते, शरीर तक की उन्हें सुध नहीं रहती थी। स्वभावतः संगीत उनकी साधना का एक आवश्यक अंग बन गया। कट्टरपंथी मुसलमान, मुल्ला आदि इसके खिलाफ चिल्लाते रहे, पर इसके प्रसार को

वे रोक न सके। कव्वाली और नात इस-लामी साधना के अंग बन गये। इसलाम को ईरानी सूफियों की यह एक देन है।

ईरान सूफी संप्रदाय का एक जबरदस्त अड्डा बन गया। उसने बड़े-बड़े सूफियों को जन्म दिया, जो साधक तो थे ही, अच्छे लेखक और शायर भी थे। हिंदू संतों नानक, कबीर आदि की भांति उन्होंने अध्यात्म की बातें ज्यादातर पद्य में ही कहीं। अल-गजाली, अत्तार, मगरीबी, हाफिज, सनाई, खैर—दर्जनों ऐसे नाम हैं जो सूफी-व्योम-मंडल के चमकते हुए सितारे कहे जा सकते हैं। गद्य-लेखकों में अल-सर्राज, नजीमुद्दीन, राजी आदि सूफी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

ईरान में सूफीवाद के वास्तविक संस्थापक अल-गजाली थे, जो धर्मशास्त्र, यूनानी दर्शन, कानून आदि विद्याओं के पारंगत विद्वान, बगदाद के निजामिया विश्वविद्यालय के आचार्य थे, पर आगे चलकर सूफी दरवेश बन गये और ईरान में सूफीवाद की उन्होंने नींव डाली। फिर तो ईरान सूफी मत का बगदाद और बसरा से भी बड़ा केंद्र बन गया।

इन्हीं सूफियों में थे जलालुद्दीन रूमी, जिनके संबंध में कहा जाता है कि ईरान के सूफी संत-साहित्य-संसार में उनके-जैसा कुशल शायर दूसरा पैदा न हुआ। छह भागों में विभक्त उनका मसनवी सूफी-विचारों, इसलामी रहस्यवाद की एक ऐसी खान है जिसमें एक-से-एक हीरे भरे हुए हैं। इसे पहलवी भाषा में लिखा हुआ कुरान तक कहा गया है।

वे केवल संत नहीं, तुलसी और सूर की तरह ऊंचे दर्जे के शायर भी थे। सदियों तक लोगों की यह धारणा बनी रही कि उन्होंने जो कुछ लिखा, पद्य में ही लिखा, पर उनकी मृत्यु के प्रायः छह सौ बरस बाद उनकी एक गद्य-कृति, ३,००० पंक्तियों में लिखित, 'फिहा मा फिहा' की एक प्रति टर्की में पायी गयी, दूसरी उत्तर प्रदेश (भारत) के आजमगढ़ जिले में, जिससे यह जाहिर हुआ कि वे गद्य-लेखक भी थे तथा उनकी गद्य-कृति किसी समय काफी लोकप्रिय थी। प्रस्तुत पुस्तक उनकी उस आध्यात्मिक विषय-संबंधी बातचीत का संग्रह है जो वे मुईनुद्दीन परवाना के साथ समय-समय पर किया करते थे। उनकी स्वयं लिखी हुई यह पुस्तक उस कथोपकथन का एक महत्त्वपूर्ण लेखा है।

जलालुद्दीन रूमी ने बहुत लिखा, जीवन भर वे लिखते रहे, फिर भी भगवद्-चर्चा से उनका जी न भरा और जीवन के अंतिम दिनों में उन्होंने लिखा—

शब रफ़्त ब हदिश मां पचां न रसीद
शब ढ़ाचेह गुनाह हदीश मां बुद् दराज़

अर्थात, रात बीत गयी, लेकिन हमारी कहानी पूरी न हुई, पर इसमें रात का क्या दोष—हमारा किस्सा ही बड़ा लंबा था!

—२-बी, महारानी बाग,
नयी दिल्ली-१४

जंगली हवाओं के आसपास

डॉ. विनयमोहन शर्मा

बस्तर के सघन वनों में आदिम जीवन की धारा पहले की तरह ही अब भी बहती जा रही है। अबुझमाड़ पर्वत की उच्च शिखा, इंद्रावती नदी का चित्रकूट-जलप्रपात, अरनपुर की घाटी, इंद्रावती और कोयरा नदियों का संगम प्रकृति के अत्यंत आकर्षक स्थल हैं, जहां वनवासी अपने आंसुओं और मुसकानों का घुलामिला जीवन न जाने कब से बिताते आ रहे हैं।

मध्यप्रदेश के ये वनवासी गोंड कहलाते हैं, पर यह नाम उनमें प्रचलित नहीं है। यह नाम तो उन्हें सभ्य जनता ने प्रदान किया है। वे तो वास्तव में 'कोइतर' हैं। जो 'कोइतर' सभ्यों की सेवा करते थे उन्हें उन सभ्य लोगों ने 'परजा' कहना प्रारंभ कर दिया। बाद में यही 'परजा गोंड' कहलाने लगे। सन १९३१ की जन-गणना में बस्तर के आदिवासियों में मटरा, गोंड, माड़िया, मुड़िया, कोया और परजा की सूची मिलती है। इसके पूर्व ये सब एक ही नाम 'गोंड' से वर्णित किये गये थे। इधर 'परजा' अपने को 'धुरवा' कहलाना अधिक पसंद करते हैं। क्योंकि ये जान गये हैं कि 'परजा' का अर्थ अपमानजनक है।

बस्तर की संस्कृति को सुरक्षित रखा है वहां की नारियों ने

गोदना भरा शरीर

'माड़िया' गोंड का वर्ण काला होता है। उनकी मूंछ और दाढ़ी नहीं होती या होती भी है तो बाल बहुत कम होते हैं। मुंह नीचे की ओर झुका हुआ, ओंठ मोटे, कद कुछ ठिगना, शरीर भरा हुआ होता है। पहाड़ों पर रहनेवाले माड़िया पुरुष स्वयं बोझ नहीं ढोते। यह कार्य उनकी स्त्रियां करती हैं। बाजार में अनाज बेचने के लिए जवान लड़कियां सिर पर टोकरी रखकर तीस-चालीस मील तक चली जाती हैं और 'धनुषवाण' लिये पुरुष साथ में रहते हैं। पहाड़ों और पेड़ों पर स्त्री-पुरुष दोनों बड़े मजे से चढ़ जाते हैं। ये बहुत कम वस्त्र पहनते हैं, पत्ते और लंगोटी ही इनका सब कुछ है। न तो शीत से ये ठिठुरते हैं, न ग्रीष्म से झुलसते हैं। ग्रिगसन ने इनकी दो जातियों का उल्लेख किया है। एक को '[illegible] हार्न' (सिर-पर सींग लगाकर नाचने वाले) माड़िया और दूसरी को पहाड़ी माड़िया कहते हैं। पहाड़ी माड़िया से 'सिगहा' माड़िया अधिक स्वच्छ रहता है। क्योंकि वह 'सभ्य' बस्ती के संपर्क में अधिक आता है। वह सूर्यास्त के समय नदी-तालाव में डुवकी भी लगाता है। माड़िया-स्त्रियों का शरीर 'गोदना' से भरा दिखलायी देता है। वे अपने स्तनों को भी 'गोदवा' लेती हैं। मुर्गे की बांग सुनते ही दो-तीन बजे रात ही माड़िया स्त्री उठ जाती हैं, बालों को संवारकर चक्की पर बैठ जाती हैं। माड़िया पुरुष पांच बजे के लगभग उठते हैं और पशुओं को चराने या खेत में हल जोतने के लिए चल देते हैं। चक्की से छुट्टी पाकर गृहिणी घर साफ करती है और नदी से पानी लेने चली जाती है। लौटकर

बस्तर से विधान सभा के लिए निर्वाचित एक सदस्य
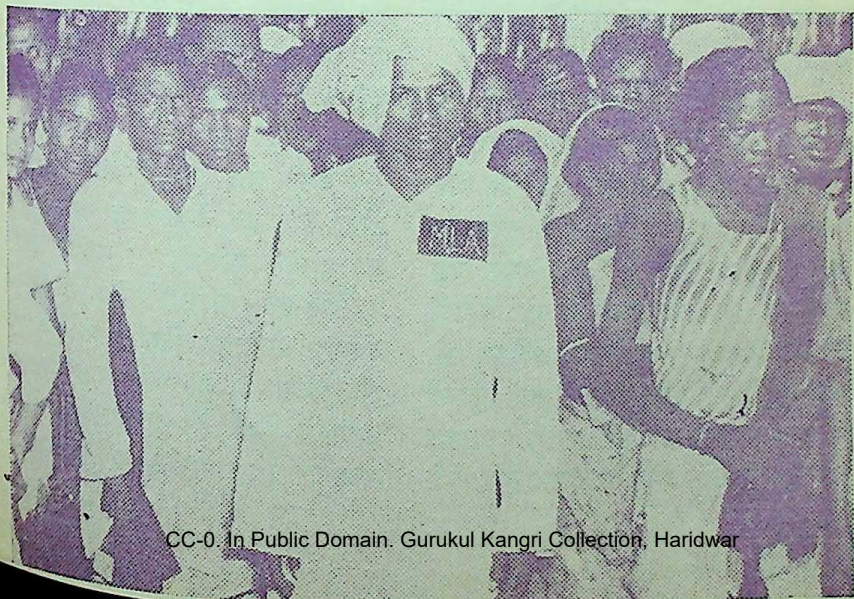
ओंठ मोटे, कद कुछ ठिगना, शरीर भरा हुआ——यह है माड़िया गोंड

भोजन तैयार करती है। खेतों में पति को भोजन कराने के बाद शाम को लौटते समय नदी में खूब स्नान करती है। माड़िया ग्राम-देवी की पूजा करता है, 'वनदेवी' और 'जल-कामिनी' में विश्वास करता है।

माड़िया लोग शिकार में कुत्ते का उपयोग करते हैं, तोते और बुलबुल से भी वे अपना दिल बहलाते हैं। वे लोग मछली पकड़ने का भी काम करते हैं। खजूर, महुआ आदि पेड़ों से तैयार किये गये 'रस' का नशा करते हैं और पहाड़ों पर मिलनेवाली किसी लता के रस का भी पान करते हैं। पीने के पूर्व अपने पुरखों के नाम पर दो-चार बूंदें धरती पर डाल देते हैं। ये पेय बच्चों से लेकर बूढ़े, स्त्री और पुरुष सभी पीते हैं।

महुआ के नीचे मोती

माड़िया गोंडों के उत्सव कृषक-जीवन से संबंध रखते हैं। ये उत्सव 'पेंडम' कहलाते हैं। 'थीमुल पेंडम' से वर्षोत्सवों का श्रीगणेश हो जाता है। जब महुआ जंगलों में महमहा उठता है, माड़िया स्त्री-पुरुषों का मन मतवाला हो उठता है। इसे 'हरपू-महोत्सव' भी कहते हैं। उत्सव की पहली रात को ब्रह्मचर्य-व्रत धारण कर स्त्री-पुरुष 'महुआ' के नीचे एकत्रित होते हैं, मुखिया के खेत में यह उत्सव मनाया जाता है। मुखिया पेड़ के नीचे चौकोर जगह को साफ कर उसके बीच में एक अंडा रखता है और उसके सामने चावल छिड़क देता है। वहीं पर एक मुर्गा छोड़ दिया जाता है। मुर्गा ज्यों ही एक दो दाने चुगता है, माड़िया ग्राम-माता के नाम पर उसका गला काट डालता है, और माता की प्रार्थना करता है, फिर पेड़ की जड़ पर दूध डाल देता है, महुए के कुछ फूल भी चढ़ाता है। इस उत्सव के पूर्व कोई माड़िया महुआ का स्वाद नहीं लेता।

इसके बाद 'आम्र-मंजरी' का उत्सव होता है। जब नन्ही-नन्ही अमियां वृक्षों पर झूलने लगती हैं, तब माड़िया उत्सव के लिए बौरा उठते हैं। चैत की पूनो को 'बिज्जा' महोत्सव होता है जो कुछ दिनों तक चलता है, नृत्य और गीत की इसमें प्रधानता होती है। अगहन में जब नये अन्न का प्रथम बार स्वाद लिया जाता है

तब कुरुमोत्सव मनाया जाता है। एक उत्सव में अच्छी वर्षा होने की प्रार्थना की जाती है। आम के पत्तों से झोपड़ी सजायी जाती है, और स्त्रियां सिर पर घट लेकर रात भर नाचती रहती हैं।

इंद्रधनुष : आकाश में उड़ता सांप

जादू-टोने में गोंडों का बहुत अधिक विश्वास है। शत्रु को नष्ट करने के लिए ये शत्रु के पहनने के वस्त्र का कुछ हिस्सा या उसके बालों का कुछ अंश लेकर देवता को चढ़ाते हैं और कुछ शब्दों का उच्चारण करते हैं या घास के दो टुकड़ों को बांधकर एक स्थान पर रखकर उस पर बाण से निशाना लगाते हैं। यदि बाण लग जाता है तो माना जाता है कि शत्रु की निश्चित रूप से मृत्यु होगी। पर शत्रु भी जादू-टोने का जवाब किसी गुनिया से दिला सकता है। यह 'हुद्दा' मारना कहलाता है।

मृतात्मा किस लोक में जाती है, इसकी कोई कल्पना पहाड़ी माड़िया गोंड लोगों में नहीं है। तारों का टूटना, मृत्यु-सूचक समझा जाता है। ये फसलों की बोनी और कटनी पर भी प्रभाव डालते हैं। पानी मेघ से बरसता है, यह तो माड़िया जानते हैं, पर मेघ में पानी कहां से आता है, इसे वे नहीं जानते। वे इंद्रधनुष को पृथ्वी का सांप समझते हैं जो बांवी से निकलकर आकाश में पहुंच गया है और पानी न बरसने की सूचना दे रहा है।

आओं अंग भिगो दे गंगा

गीत और नृत्यों में जाति की संस्कृति सुरक्षित रहती है। वह उनमें गाती और नाचती रहती है पर नयी सभ्यता उस पर बराबर अपना रंग चढ़ाती जा रही है। करमा नृत्य गोंडों में बहुत व्यापक है। इसमें वे अपने को पूर्ण रूप से अभिव्यक्त करते हैं।

जगदलपुर, बस्तर का राजमहल
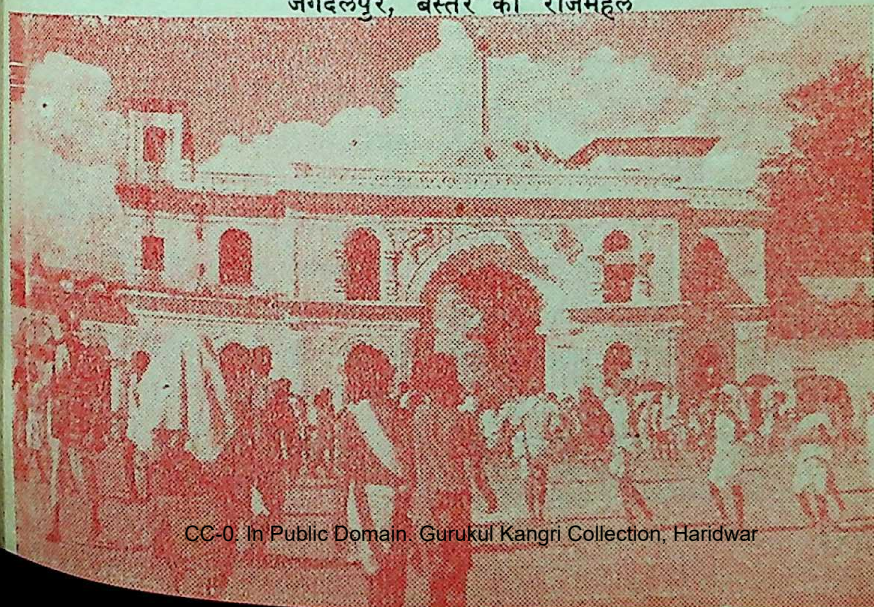
न मिटने वाले दाग

पुत्र किसी के घर में डाका डालकर आता तो मां कमरे में एक कील गाड़ देती, किसी का खून करता तो एक और कील गाड़ देती। यह सिलसिला न जाने कब तक चलता रहा। एक दिन पुत्र ने मां से पूछा, "मां, तुमने यह सारा कमरा कीलों से भर दिया है। यह सब क्या है?"

"पुत्र, यह तुम्हारे बुरे काम हैं। तू कोई बुरा काम करता था तो मैं एक कील गाड़ देती थी। अब तो पूरा कमरा कीलों से भर गया है, पर . . ."

पुत्र का पाषाण-हृदय पानी-पानी हो गया। उस दिन से वह अच्छे काम करने लगा। हर रोज जब वह घर आता तब मां को अपने अच्छे काम बताता, मां एक कील उखाड़ देती। कई वर्षों तक इसी प्रकार चलता रहा। एक दिन जब सभी कीलें उखड़ गयीं तब पुत्र ने बड़ी शांति से पूछा, "मां, अब तो कोई पाप नहीं रहा?"

"पुत्र, देख कीलें तो सभी निकल गयी हैं, पर कीलों के न मिटनेवाले दाग दीवार पर रह गये हैं। मुझे ये निशान तुम्हारे बुरे कामों की हमेशा याद दिलाते रहेंगे।"

—आनंद किरण 'अनसाथी'

'करम देवता' को बलि देने के बाद ग्राम-वासी रात भर नृत्य-समारोह मनाते हैं। गीत गूंजता रहता है—

ओ हो हो रे हे—
झे बोलो झे बोले संजा-सबेरे मोर होवा
सूर्ता आथह चिरैया चिरैया जोरि के लाने
दुवार ओ संजा-सबेरा धीरे-धीरे-धीरे
दुआर औ संजा-सबेरा ओ करे ला मोर

करमा के अतिरिक्त 'सुआ' गीत का भी काफी प्रचलन है। सूर्यास्त की बेला में स्त्रियां अनाज भरे टोकरे पर मिट्टी के दो तोते रखकर झूम-झूमकर नाचने-गाने लगती हैं।

रक्षा-बंधन के एक सप्ताह पूर्व बालिकाएं और महिलाएं अन्न के दानों को टोकनी में खाद डालकर बो देती हैं। उगने पर उसी को भोजली कहा जाता है। भोजली के पौधों को देवी मानकर स्त्रियां पूजन आदि करते समय जो गीत गाती हैं उसकी कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं—

देवी गंगा देवी गंगा लहरा तुरंगा
हमरो भोजलि देवि के भीजें आठों अंग
माडी भर जोंधरी पारिस कुसियारे
जल्दी-जल्दी बाढ़ो भोजलि होवो हुसियारे

हे गंगा देवी, अपनी लहरों से हमारी भोजली देवी के आठों अंग भिगो दो। हे भोजली देवी, जल्दी-जल्दी बढ़कर बड़ी हो जाओ।

—ई-६, एम. आई. जी. ७, अरेरा कॉलोनी, भोपाल-१६

भूकंप अर्थात महाविनाश

● निरंकार सिंह

भूकंप उन प्राकृतिक विपदाओं में से एक है जिसका अभी तक कोई समाधान नहीं खोजा जा सका है। गत वर्ष दिसंबर में पाटन (पाकिस्तान) में तथा इस वर्ष जनवरी में हिमाचलप्रदेश के किन्नौर और लाहौल-स्पीति क्षेत्रों में तथा भारत-तिब्बत सीमाक्षेत्र में भयंकर भूकंप आये। पाटन में भूकंप से मरनेवालों की संख्या ५,५०० तथा भारतीय क्षेत्र में मरनेवालों की संख्या ५६ से ऊपर बतायी गयी है। पाकिस्तान-चीन मार्ग बुरी तरह से क्षतिग्रस्त हो गया। हिमाचलप्रदेश का लगभग १५० वर्ग-किलोमीटर क्षेत्र बुरी तरह प्रभावित हुआ। भूकंप के झटके हिमाचलप्रदेश के अतिरिक्त पंजाब, दिल्ली, बिहार, उत्तरप्रदेश और जम्मू-कश्मीर के भी कई क्षेत्रों में महसूस किये गये। पाटन में भूकंप के १,२०० झटके लगे थे। आज दुनिया भर के वैज्ञानिकों के सामने भूकंप की पूर्व-सूचना तथा उससे रक्षा के उपायों की समस्या विकट रूप में मौजूद है।

भूकंप पृथ्वी की ऊपरी परतों के वे कंपन होते हैं जो धरती की सतह को कंपा देते हैं। इन कंपनों की तुलना किसी शांत तालाब में फेंके गये पत्थर से उत्पन्न तरंगों से की जा सकती है। भूकंप के साथ-साथ पृथ्वी की सतह में ऐंठन भी होने लगती है। १८९० ई. में असम में जो भूकंप आया था, उसकी लहरें धान के खेतों में साफ-साफ दिखायी पड़ी थीं। ऐसी लहरों के चढ़ाव-उतार प्रायः एक फुट तक होते हैं। इस चढ़ाव-उतार के कारण धरती फट जाती है और दरारों से मिट्टी, बालू, पानी तथा कभी-कभी गैसें भी निक-

१९३४: भूकंप ने सीतामढ़ी (बिहार) में रेल की पटरियां ध्वस्त कर दीं
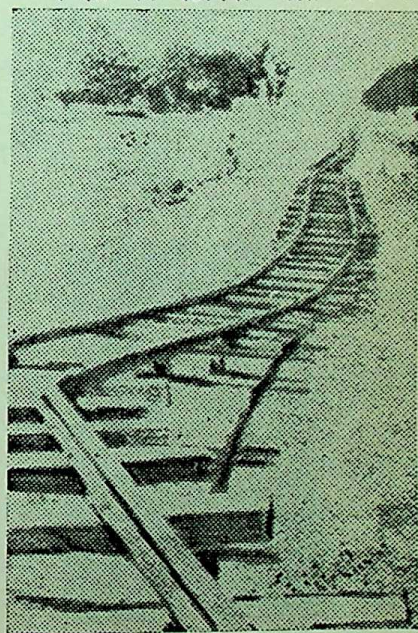
लने लगती हैं। कभी-कभी भूकंपों के पहले या साथ-साथ गड़गड़ाहट की आवाज भी होती है। यह गड़गड़ाहट पथरीली जगहों पर ज्यादा होती है।

इस धरती पर आये सभी भूकंपों का विवरण यदि उपलब्ध होता तो शायद ही कोई स्थान ऐसा बचता जहां कभी-न-कभी भूकंप न आया हो। वैज्ञानिक मानते हैं कि प्रति तीन मिनट में एक भूकंप होता है। आधुनिक खोजों के अनुसार भूकंप-क्षेत्र को दो वृत्ताकार कटिबंधों में बांटा गया है। इनमें से एक भूकंप-क्षेत्र न्यूजीलैंड के निकट दक्षिणी प्रशांत महासागर से प्रारंभ होकर उत्तर-पश्चिम की ओर होता हुआ चीन के पूर्व भाग में आता है। यहां से यह उत्तर-पूर्व की ओर मुड़कर जापान होता हुआ, बेरिंग मुहाने को पार करता है और फिर दक्षिणी अमरीका के दक्षिण-पश्चिम की ओर होता हुआ अमरीका की पश्चिमी पर्वतश्रेणी तक पहुंचता है। दूसरा क्षेत्र जो पहले की शाखा है पूर्वी द्वीपसमूह से प्रारंभ होकर बंगाल की खाड़ी से होते हुए, बर्मा, हिमालय, तिब्बत तथा आल्प्स को पार करता और दक्षिण-पश्चिम घूमकर अतलांतक महासागर को पार करता हुआ तथा वेस्टइंडीज होता हुआ मेक्सिको में पहले भूकंप-क्षेत्र से मिल जाता है। पहला भूकंप-क्षेत्र प्रशांत-परिधि पेटी और दूसरा रूमसागरीय पेटी कहलाता है। पहले क्षेत्र के अंतर्गत ६८ प्रतिशत और दूसरे के अंतर्गत २१ प्रतिशत भूकंप आते हैं। इन दो क्षेत्रों के अलावा चीन, मंचूरिया और मध्य अफ्रीका के साथ-साथ हिंद, अतलांतक और आर्कटिक महासागरों में भी भूकंप के केंद्र हैं।
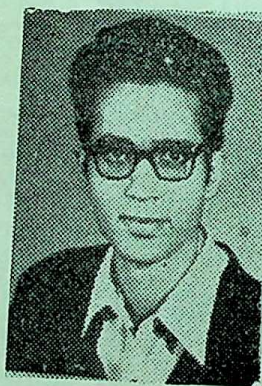
लेखक

प्राचीन काल में भूकंप को एक दैवी प्रकोप समझा जाता था। आज के वैज्ञानिक युग में इतना तो मालूम हो गया है कि यह दैवी प्रकोप नहीं है, लेकिन अरस्तू के समय से लेकर अब तक इसके संबंध में बीसों सिद्धांत दिये जा चुके हैं। अभी तक भूकंप के संबंध में वैज्ञानिक कोई सर्वमान्य सिद्धांत नहीं खोज सके हैं। भूवैज्ञानिकों के मतानुसार भूकंप उन्हीं पर्वत-प्रदेशों में आते हैं जो भूविज्ञान की दृष्टि से नये हैं। ऐसे नवनिर्मित पर्वत जहां स्थित हैं वहां की सतह कुछ ढलवां है जिसके कारण पृथ्वी की परतें कभी-कभी अकस्मात बैठ जाती हैं। परतों का इस प्रकार बैठना, पृथ्वी के खोखले स्थान में चट्टानों के गिरने से, अधिक दबाव के

विश्व मानचित्र में भूकंप क्षेत्र

कारण ठोस स्तरों के फटने अथवा चट्टानों के परस्पर फिसलने से होता है। भूकंप के संबंध में प्रचलित सात सिद्धांतों में से 'समस्थिति के सिद्धांत' के अनुसार भूतल के पर्वत और समुद्र के धरातल एक दूसरे को तराजू की तरह संतुलित रखते हैं, लेकिन जब क्षरण आदि क्रियाओं के द्वारा ऊंचे स्थान की मिट्टी नीचे स्थान पर जमा हो जाती है तब संतुलन विगड़ जाता है। इसे बनाने के लिए जमाववाला भाग नीचे धंसता है, जो भूकंप का कारण है।
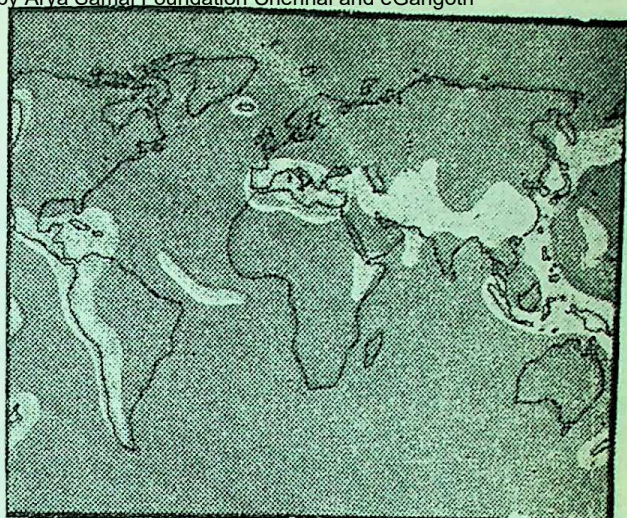
'संवहन-धारा का सिद्धांत' प्रमुख माना जाता है। इसके अनुसार पृथ्वी पर चलनेवाली संवहन-धाराओं के फलस्वरूप सतही चट्टानों पर कर्षण होता है। ये धाराएं रेडियो-सक्रिय ऊष्मा द्वारा संचालित होती हैं। कर्षण के कारण चट्टानों की विकृति बढ़ने पर भूकंप प्रारंभ हो जाता है।

रूस की ताजिक विज्ञान अकादमी के भूकंप-विज्ञान तथा भूकंप प्रतिरोधी संस्थान के प्रयोगों के परिणामस्वरूप हाल में निष्कर्ष निकाला गया है कि किसी क्षेत्र में पिछले दो-तीन भूकंपों का समय ज्ञात हो तो दोबारा आये हुए भूकंप को अभिलेखित कर लेने पर भविष्य के उस क्षेत्र के अधिक शक्तिशाली भूकंपों का वर्ष निश्चित किया जा सकता है।

कोलंबिया विश्वविद्यालय के एक भारतीय वैज्ञानिक यश अग्रवाल ने भूकंपों की भविष्यवाणी करने के लिए रूसी तकनीक में संशोधन किया है। कुछ वर्ष पूर्व उन्होंने न्यूयार्क के एक नगर में दो दिन पूर्व भूकंप की भविष्यवाणी की थी। लेकिन ऐसे एक-दो मामूली झटकों की भविष्यवाणी से मुख्य भूकंप का अनुमान नहीं लगाया जा सकता है, क्योंकि ये मामूली झटके मुख्य भूकंप से पहले महीनों तक आ सकते हैं।

भूकंपों के आगमन के बारे में वैज्ञानिक अभी निश्चित रूप से भविष्यवाणी नहीं कर सकते।

—के. ४६/१६०४ हरतीरथ, वाराणसी-१

प्रेरक प्रसंग

स्वामी रामकृष्ण परमहंस के शिष्यों में दुर्गाचरण नाग नामक एक सज्जन थे। इनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। पिता मामूली नौकरी करते थे और वे स्वयं होमियोपैथिक प्रैक्टिस, लेकिन इनके अधिकतर रोगी गरीब होते थे। नाग महाशय उन्हें औषध के अतिरिक्त प्रायः पथ्य के लिए पैसे भी अपने पास से दे देते थे। एक बार इन्होंने काफी संपन्न कुटुंब की एक महिला को किसी कष्ट-साध्य रोग से मुक्त किया। नाग महाशय को उन्होंने पर्याप्त धन देना चाहा, पर इन्होंने केवल बीस रुपये लिये। पिता को पता लगा तो वे असंतुष्ट हुए। इस पर नाग महाशय ने कहा, "पिताजी! चौदह रुपये हुए मेरी सात दिन की फीस के और छह रुपये औषध का मूल्य। इस प्रकार बीस रुपये ही मेरे हक के हैं। हक से अधिक लेना पाप है। मैं अधिक कैसे ले सकता था!"

बंगाल के प्रसिद्ध विद्वान एवं समाज-सुधारक ईश्वरचंद्र विद्यासागर के यहां एक बार खुदीराम बोस पधारे। विद्यासागर ने उन्हें नारंगियां दीं। खुदीराम नारंगी की फांकें चूस-चूस कर फेंकने लगे। यह देखकर विद्यासागर बोले, "देखो भाई, इन्हें फेंको मत, ये भी किसी के काम आ जाएंगी।" खुदीराम बोले, "इन्हें आप किसे देनेवाले हैं?"

विद्यासागर ने हंसकर कहा, "आप इन्हें खिड़की के बाहर रख दें और वहां से हट जाएं तो अभी पता लग जाएगा।"

चूसी हुई फांकों को खिड़की के बाहर रखने पर कुछ कौए उन्हें लेने आ गये। अब विद्यासागर बोले, "देखो! जब तक कोई चीज किसी भी प्राणी के काम में आने योग्य हो, तब तक उसे फेंकना नहीं चाहिए। उसे इस प्रकार रखना चाहिए कि धूल-मिट्टी लगकर वह खराब न हो जाए और दूसरे प्राणी उसका उपयोग कर सकें।"

—इन्दु अरोड़ा

महात्मा सुकरात यूनान के बहुत बड़े विद्वान और दार्शनिक हुए हैं। कहते हैं, वे जितने शांत, नरम और सरल स्वभाव के थे, उनकी पत्नी उतनी ही तेज, गरम और क्रोध की साक्षात मूर्ति थी!

अपने पति को सताने में उसे बहुत सुख मिलता था। मीठा बोलना तो वह मानो जानती ही नहीं थी। लेकिन सुकरात थे कि सब कुछ चुपचाप सुनते रहते और प्रत्युत्तर में कभी एक भी शब्द न बोलते।

सुकरात जब भी कोई पुस्तक पढ़ते तब वह चिल्ला उठती, "आग लगे इन मरी पुस्तकों को ! इन्हीं के साथ ब्याह कर लेना था, मेरे साथ क्यों किया ?"

एक दिन जब सुकरात अपने कुछ शिष्यों के साथ घर आये तो उनकी पत्नी उन पर बरस पड़ी और उन्हें जली-कटी सुनाने लगी। सुकरात शांत बैठे रहे। अब तो पत्नी क्रोध में इतनी पागल हो उठी कि घर के बाहर पड़ा हुआ गंदा कीचड़ एक बरतन में भरकर सुकरात के सिर पर डाल दिया।

सुकरात के शिष्यों ने सोचा कि अब सुकरात अवश्य क्रोधित हो उठेंगे, किंतु वे हंसकर बोले, "देवी, आज तो पुरानी कहावत झूठी हो गयी। कहावत है कि गरजनेवाले बरसते नहीं। आज देखा कि जो गरजते हैं, वे बरसते भी हैं !"

किंतु उनके एक शिष्य को अपने गुरु का यह अपमान सहन न हुआ। वह क्रोध में चिल्लाकर बोला, "यह स्त्री तो दुष्ट है, आपके योग्य नहीं।"

सुकरात बोले, "नहीं, यह मेरे ही योग्य है। यह ठोकर लगा-लगाकर देखती रहती है कि सुकरात कच्चा है या पक्का। इसके बार-बार ठोकर लगाने से मुझे भी पता लगता रहता है कि मुझमें सहनशक्ति है या नहीं।"

बादशाह शाहजहां कई दिनों से कुछ परेशान-से थे। उनकी चिंता का कारण था उनके चारों पुत्र—दारा, शुजा, मुराद और औरंगजेब। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि इनमें से किसको वे राज्य का उत्तराधिकारी बनाएं।

अंत में जब वे स्वयं किसी भी निर्णय पर नहीं पहुंच पाये तो उन्होंने अपने चतुर वजीर को अपनी समस्या बतायी और उसकी राय पूछी। वजीर ने कहा कि वह चारों शहजादों की योग्यता की परीक्षा करके अपना उत्तर देगा।

बादशाह के पास से उठकर वजीर सबसे पहले शहजादा दारा से मिला और उससे तीन प्रश्न पूछे, "आजकल चने का क्या भाव है ? हिंदुस्तान के कौन-कौन से शहर अच्छी जूतियां बनाने के लिए
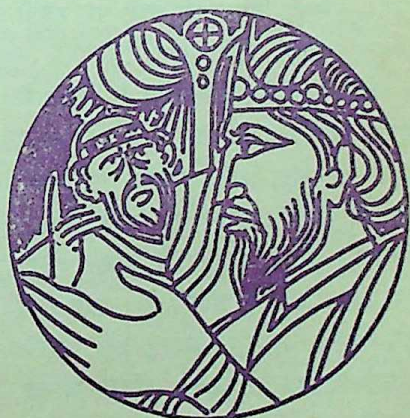
मशहूर हैं ? आदमी खुशी-खुशी किससे हार मानना चाहता है ?"

दारा ने हंसकर उत्तर दिया, "राजनीति, धर्मशास्त्र, युद्धविद्या, शिष्टाचार आदि की बातें पूछिए तो मैं अभी आपसे अपनी योग्यता का लोहा मनवा सकता हूं, लेकिन ऐसी मामूली बातों की फिक्र करना तो शहजादों का काम नहीं ।"

इसके बाद वजीर शुजा के पास गया और उससे भी उसने वही तीन प्रश्न किये । शुजा ने कहा, "वजीर साहब, आप भी कमाल करते हैं ! जौहरी हीरे-जवाहरातों का भाव बता सकता है, कौड़ियों का नहीं । मैं ठहरा शहजादा ! मैं तो अब तक सूबेदारी करता रहा, इसलिए शासन-प्रबंध की बातें ही जानता हूं ।"

तीसरे शहजादे मुराद से भी वजीर ने यही प्रश्न किये । मुराद बोला, "आपकी इन बातों का जवाब तो कोई बाजारू आदमी ही दे सकता है । हम शहजादों को तो सपने में भी ऐसी बातों का ध्यान नहीं आता । हमारी निगाह तो ताज पर रहती है, हम जूतियां नहीं देखते !"

अंत में वजीर औरंगजेब के महल में गया । औरंगजेब ने गौर से उसके तीनों प्रश्नों को सुना और उनका सही-सही उत्तर दे दिया , "चने का भाव आगरा में ग्यारह पसेरी, दिल्ली में बारह पसेरी और पंजाब में तेरह पसेरी है । पंद्रह दिन पहले क्रमशः ग्यारह, ग्यारह और बारह का भाव था । सबसे अच्छी जूतियां दिल्ली, कानपुर और बरेली में बनती हैं । कलकत्ता, कश्मीर और लुधियाना भी अच्छी जूतियों के लिए मशहूर हैं । आदमी अपने गुणी और चरित्रवान पुत्र के आगे खुशी-खुशी हार मान लेता है ।"

दूसरे दिन बादशाह ने वजीर की राय जाननी चाही तो उसने कहा, "जहांपनाह, जो जागते हुए भी सोता रहता है वह हकूमत कैसे चलाएगा ? चारों शहजादों में हिंदुस्तान की गद्दी के योग्य तो केवल एक औरंगजेब ही है । वह छोटी-से-छोटी बात पर ध्यान देता, देखता, सुनता और समझता है, जो कि किसी भी शासक के लिए सबसे बड़ा गुण और योग्यता है ।"

—कमला

सरदार वल्लभभाई पटेल अपना वकालत का धंधा भी धर्म समझकर करते थे । धंधे के प्रति उनकी अनन्य निष्ठा थी । एक बार वे बोरसद की अदालत में एक महत्त्वपूर्ण मुकदमा लड़ रहे थे । अदालत में मुकदमा चल रहा था, तभी उन्हें अपनी पत्नी के निधन का तार मिला । उन्होंने तार पढ़ा, इस वज्राघात को चुपचाप सह लिया । मानो कुछ हुआ ही नहीं, इस तरह वल्लभभाई अपने मुवक्किल के काम में लगे रहे । मुकदमा पूरा हो जाने पर उन्होंने अपने मित्रों को पत्नी की मृत्यु का समाचार बताया, आंखों में आंसू उमड़ आये । ऐसी कर्त्तव्यनिष्ठा और संयम-शक्ति वल्लभभाई में थी । —अशोक गर्ग

मेरी यूरोप-यात्रा

• अनीता पांडे

विदेश-यात्रा का मेरा सपना पहली बार तब साकार हुआ, जब मेरे पति ने ग्रीस से इस यात्रा के लिए मुझे पत्र लिखा। वे एक वर्ष के लिए ग्रीस गये हुए थे। यह देश प्राचीन संस्कृति एवं सभ्यता के लिए विख्यात है। यहां मैंने कई प्राचीन और ऐतिहासिक स्थान देखे। एथेंस ग्रीस की राजधानी है। यह बड़ा और सुंदर शहर है। यहां की 'गॉडेस एथेना' (जो सौंदर्य की देवी मानी जाती है) के नाम पर एथेंस शहर का नामकरण हुआ है। इसी शहर में इस देवी का दो हजार वर्ष प्राचीन महल है, जिसे 'एक्रेपोलिस' कहते हैं। इस विशाल महल के अवशेषों को देखकर आश्चर्य होता है कि दो हजार वर्ष पूर्व भी इतने सुंदर महल बन सकते थे।

खुले आकाश के नीचे ट्रेजेडी

एथेंस से लगभग डेढ़ सौ किलोमीटर दूर खुला प्राचीन रंगमंच (ओपेन ऐंशियेंट थियेटर) है जिसे 'स्पीडाविस' कहते हैं। यह भी दो हजार वर्ष प्राचीन थियेटर है, जिसमें चौदह हजार लोगों के बैठने की व्यवस्था है। यूनानी लोग त्रासदी-प्रिय हैं। हो सकता है कि इस रंगमंच पर ईसा-पूर्व आविर्भूत नाटककार एस्किलस सोफोक्लीज और यूरोपिडीज की ट्रेजेडी खेली गयी हों। यूनानी नाटकों में संबंधियों की हत्या और परिवार के संबंधियों से अवैध प्रेम-संबंधी समस्याएं प्रमुख पायी जाती हैं। आज भी यहां गरमियों में दो बार

खुले मैदान में एक 'सेल्फ सर्विस' रेस्त्रां

डेन्यूब पर नौका-विहार
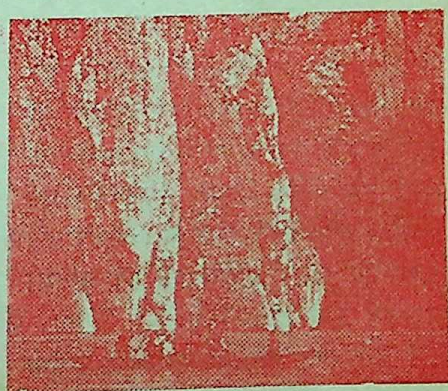
त्रासदी खेली जाती है। सौभाग्य से उस समय मैं यहीं थी, इसलिए मुझे भी इस प्राचीन थियेटर में नाटक देखने का सुअवसर मिला।

इस थियेटर की विशेषता यह है कि इसमें जब नाटक खेला जाता है तब किसी प्रकार के लाउडस्पीकर का प्रयोग नहीं होता है और दूर, सबसे ऊपर की सीट पर बैठा हुआ व्यक्ति भी कलाकारों के संवाद आराम से सुन सकता है। यही नहीं, उनके पैरों की आहट तक साफ सुनायी देती है। सचमुच, इस विशाल थियेटर को देखकर दो हजार वर्ष पूर्व की सभ्यता का सहज ही ज्ञान हो जाता है कि उस समय भी लोग ऐसे तरीके जानते थे जिससे आवाज बाहर न जाकर वहीं तक सीमित रहे। इस थियेटर में किसी भी प्रकार का नवीनीकरण नहीं किया गया है, आज भी यह अपनी उसी स्थिति में है जैसा दो हजार वर्ष पूर्व था।

ओलंपिक की मशाल

एथेंस से लगभग अस्सी किलोमीटर दूर दो हजार वर्ष पूर्व बनायी गयी खाई है जो दो समुद्रों को जोड़ती है। इससे व्यापारिक जहाजों को आने-जाने में सुविधा हो गयी है। वे कम समय में एक स्थान से दूसरे स्थान तक आ-जा सकते हैं। इस विशाल और गहरी खाई को देखकर उस समय के कुशल इंजीनियरों की प्रतिभा पर गर्व होता है।

इसी तरह ग्रीस का एक अन्य प्राचीन और ऐतिहासिक शहर है 'ओलंपिया'। संसार में ओलंपिक खेलों का आरंभ इसी शहर में हुआ था। यहीं के मैदान में सर्व-प्रथम ओलंपिक खेल खेले गये थे, इसीलिए इस स्थान का नाम ओलंपिया रख दिया गया। अब यह अच्छा-खासा विकसित शहर बन गया है। आज भी जहां कहीं ओलंपिक खेल शुरू होते हैं, उसकी मशाल यहीं से जलाकर ले जायी जाती है।

जरमनी में किसी कानफ्रेंस में भाग लेने के लिए मेरे पति को वहां जाना था, अतः जरमनी के साथ-साथ उसके आस-पास के देश देखने का भी कार्यक्रम बन गया। हमारे साथ पत्रास विश्वविद्यालय के वाइस-प्रेसिडेंट (वाइस-चांसलर को वहां वाइस-प्रेसिडेंट कहते हैं) का परिवार और उसी विश्वविद्यालय के स्कालर का परिवार भी था। ग्रीस के पत्रास शहर से हम लोग सुबह सात बजे कार द्वारा निकले। रात को आठ बजे ग्रीस के बड़े शहर थसोलिनीकी पहुंचे। वहां से यूगोस्लाविया की सीमा पचास किलोमीटर दूर ही रह जाती है।

यूगोस्लाविया रवाना

थसोलिनीकी में एक दिन रुककर हमने अन्य देशों के लिए वीसा बनवाया। दूसरे दिन सुबह यूगोस्लाविया के लिए चल पड़े। यूरोप के राष्ट्रीय राजमार्ग (नेशनल हाईवे) पर हमारी कार १२०-१४० किलोमीटर की रफ्तार से भागने लगी। यहां सड़कों पर 'दायें चलो' का नियम है।

विश्व-प्रसिद्ध एफिल टावर का एक दृश्य

थोड़ी-थोड़ी दूर पर टेलीफोन लगे होते हैं जिससे गाड़ी खराब होने या कोई दुर्घटना होने पर पुलिस और अस्पताल को तुरंत फोन किया जा सके। सड़कों की प्रमुख विशेषता यह है कि इन सड़कों को दूसरी सड़क काटती नहीं है। इसीलिए लोग कार इस तरह चलाते हैं जैसे हवा में तैर रहे हों। इस प्रकार अपनी यात्रा काफी रफ्तार के साथ तय करते हुए हम यूगोस्लाविया के स्कोपिया शहर में पहुंचे। स्कोपिया यद्यपि यूगोस्लाविया के बड़े शहरों में से एक है, फिर भी यह यूरोप के अन्य शहरों की अपेक्षा काफी गंदा लगा। इसके विपरीत बेलग्रेड, जो यूगोस्लाविया की राजधानी है, काफी साफ-सुथरा और सुंदर नगर है।

प्रायः यूरोप के हर शहर में बहुमंजिले फ्लैट के सामने घर में रहनेवालों के नाम लिखे होते हैं। नाम के आगे ही बटन होता है और वहां पर स्पीकर लगा होता है। अंदर जाने का प्रमुख दरवाजा हर समय बंद रहता है। जिस घर में जाना होता है उसके नाम के आगे का बटन दबाने से उस घर में घंटी बजती है, अतः वह व्यक्ति अपने घर से ही एक बटन दबाता है। उसके घर में भी स्पीकर लगा होता है। वह बटन दबाकर उस स्पीकर से नीचे आये व्यक्ति से बात कर सकता है। यदि वह उसे अपने घर बुलाना चाहता है तो वहीं से एक और बटन दबाता है, जिससे नीचे का प्रमुख दरवाजा अपने आप खुल जाता है। तब आगंतुक अंदर आ सकता है और जिस मंजिल में उसे जाना हो वहां तक लिफ्ट द्वारा पहुंच सकता है।

फूलों का देश

बेलग्रेड में दो दिन रुककर जागरिब होते हुए हम लोग आस्ट्रिया आये। आस्ट्रिया आल्प्स पर्वतों से घिरा छोटा-सा खूबसूरत देश है। यहां लोगों को फूलों का विशेष शौक है। प्रायः सभी घर फूलों से सुसज्जित थे। ऊंची-ऊंची इमारतों में सभी ने अपनी-अपनी बालकनियों में फूल लगा रखे थे। आस्ट्रिया की राजधानी वियना भी यूरोप के अन्य बड़े शहरों की तरह साफ-सुथरा और सुंदर नगर है।

वहां से हम प. जरमनी के म्यूनिख

शहर में गये। यह वही स्थान है जहां पर ओलंपिक खेल हुए थे। विदेशों से आये खिलाड़ियों को ठहराने के लिए इतने आवास-गृहों की व्यवस्था की गयी थी कि अलग से एक पूरा शहर ही बस गया। वहां का वातानुकूलित स्वीमिंग-पूल बहुत आकर्षक है। म्यूनिख से हमलोग गोटिंगन शहर गये।

प. जरमनी अन्य देशों की अपेक्षा अधिक प्रगतिशील दिखा। वहां प्रायः सभी काम मशीनों से होते हैं। जगह-जगह मशीनों के ऊपर 'सेल्फ सर्विस' लिखा रहता है। उसमें पैसा डालने के बाद जो चीज चाहिए मिल सकती है। कोक, कॉफी, चाय (दूध-वाली, चीनीवाली), फल का रस आदि के नाम ऊपर लिखे होते हैं। उनके सामने का बटन दबाते ही वह चीज नीचे गिलास में आ जाती है। रुपये की चिल्लर चाहिए तो उसकी भी मशीनें जगह-जगह रखी होती हैं। उसमें वहां की 'करेंसी' का एक रुपया डालते ही सौ सिक्के बाहर आ जाएंगे। जगह-जगह समाचार-पत्र रखे होते हैं। उन्हें घर-घर बांटने का वहां कोई रिवाज नहीं है। लोग अखबार उठाते हैं और उसका मूल्य डब्बे में डालकर चले जाते हैं।

जरमनी से लगा बेलजियम है। यहां भी हर काम मशीनों से ही होता है। कार साफ करने की भी मशीनें लगी हुई हैं। जगह-जगह 'गैरेज' बने होते हैं। बोर्ड में लिखे पारिश्रमिक के अनुसार निय... पैसे मशीन में डालकर कार सा... बने प्लेटफार्म पर खड़ी कर दीजि... कार के सारे कांच बंद कर अंदर ही ... रहिए। मशीन अपने आप काम शुरू ... देगी। पहले पूरी गाड़ी साबुन के पानी ... धुलती है, फिर साफ पानी से, और अंत ... इतनी गरम हवा आती है कि दो मिनट ... गाड़ी सूख जाती है।

ब्रुसेल्स से लगभग साठ किलोमीटर दूर 'वाटरलू' शहर है। यह वही ऐतिहासि... शहर है जहां नेपोलियन ने अपनी प्रमु... लड़ाई लड़ी थी। आज भी वहां नेपोलियन बोनापार्ट की विशालकाय मूर्ति बनी हु... है और सामने ही उसके सिपाही उस... युद्ध-योजनाओं पर विचार करते हु... दिखाये गये हैं।

बेलजियम के बाद हम लोग फ्रां... पहुंचे। फ्रांस की राजधानी पेरिस में आ... दिन रहे। यह बहुत विशाल नगरी है। यहां का सौंदर्य-प्रसाधन संसार में प्रसि... है। इसी कारण यहां का वातावरण ... मादकतापूर्ण है। इत्रादि की बड़ी-बड़ी दुका... हैं, जिनकी खुशबू दूर से ही लोगों को अप... ओर आकर्षित करती है। 'डिपार्टमेंटल स्टो... इतने बड़े-बड़े होते हैं कि उन्हें एक दिन ... देख पाना भी असंभव-सा होता है।

हम लोगों ने संसार में प्रसिद्ध 'एफि... टॉवर' भी देखी। अपनी ऊंचाई के कार... ही यह टॉवर संसार में प्रसिद्ध है। ऊप... तक जाने के लिए ट्रॉली की व्यवस्था है। ऊपर जाकर पेरिस का दृश्य बड़ा ही सुह...

बना लगता है। यहीं पर सबसे प्राचीन नॉत्रेदम चर्च है। भू-गर्भ रेल, जिन्हें वहां पर 'मेट्रो' कहते हैं, काफी प्रचलित हैं। ये सभी बिजली से चलती हैं। उनके डब्बों के दरवाजे 'ऑटोमेटिक' होते हैं। जैसे ही ट्रेन चलने को होती है, धीमी-सी सीटी बजती है और दरवाजे अपने-आप बंद हो जाते हैं। जैसे ही वह रुकती है, धीमी-सी सीटी के साथ अपने-आप दरवाजे खुल जाते हैं।

पेरिस में संध्या से ही रौनक छाने लगती है। रात के आठ बजे तक सारा शहर सड़कों पर होता है। वहां पर हर कोने पर रेस्त्रां होते हैं। रात के २-३ बजे तक बाजार भरे होते हैं और पेरिस बिजली की रोशनी में दमकता रहता है। पेरिस की रातें भी काफी प्रसिद्ध हैं। यहां की सरकार सेक्स से संबंधित किसी प्रकार के साहित्य पर रोक-टोक नहीं लगाती है, अतः रात के दस बजे के बाद से पेरिस का दूसरा ही दृश्य दिखायी देता है। बड़ी-बड़ी दूकानों पर बिजली की रोशनी के जगमगाते अक्षरों में लिखा होता है 'सेक्स शॉप'। जगह-जगह लड़कियां अर्धनग्नावस्था में लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने में लगी होती हैं और सौदेबाजी करती रहती हैं। रात के बारह बजे भी वहां पर बहुत चहल-पहल रहती है। ऐसा लगता है मानो पेरिस की सुबह अब हुई है। पेरिस की प्रसिद्धि विलासी क्लबों तक ही सीमित नहीं हैं वरन वह

रोटियां

किसी टूटी-फूटी झोपड़ी से प्रतिदिन एक फकीर बड़े सवेरे निकलता और दिन भर इधर-उधर घूमने के बाद संध्या समय अपनी झोपड़ी में पहुंच जाता था। दरवाजे पर बैठकर अपनी फटी झोली से कुछ सामान निकालकर गिनना शुरू कर देता। इस गिनती के बीच ही एक विद्वान उधर से निकलते और उसे ऐसा करते देख पूछ बैठते, "यह कौन-सी चीज है, माई?" फकीर आत्म-संतोष से कह उठता, "रोटियां गिन रहा हूं!"

विद्वान मुसकरा देते और दूसरा प्रश्न पूछ बैठते, "रोटियां हराम की हैं या हलाल की?" फकीर हंसते हुए कहता, "दोनों प्रकार की!" विद्वान को उसकी बात सुनकर बड़ा आश्चर्य होता, लेकिन वे केवल मुसकराते और चुपचाप चल देते।

विद्वान से रोज-रोज वही प्रश्न सुनकर फकीर ने एक दिन पूछा, "हजरत, रोटियां हराम या हलाल की कैसे हो जाती हैं?" विद्वान ने प्रश्न को स्पष्ट करते हुए कहा, "ईश्वर की प्रार्थना में जो रोटियां प्राप्त हो जाती हैं वे हलाल की रोटियां होती हैं, किंतु रोटियों के लिए जब ईश्वर की प्रार्थना की जाती है, तब वही रोटियां हराम की हो जाती हैं।" फकीर प्रतिदिन रोटियां प्राप्त करते समय यह ध्यान में रखने लगा कि रोटियां हराम की हैं या हलाल की।

—आलोक

चित्रकारों के चातुर्य के कारण भी है। आप उनसे एक मिनट में अपना 'स्केच' पा सकते हैं। आधे घंटे के भीतर आप अपना 'पोर्ट्रेट' देख सकते हैं। इतनी जल्दी वे आपका स्वाभाविक चित्र बनाते हैं कि उनके इस कौशल को देखकर आश्चर्य होता है।
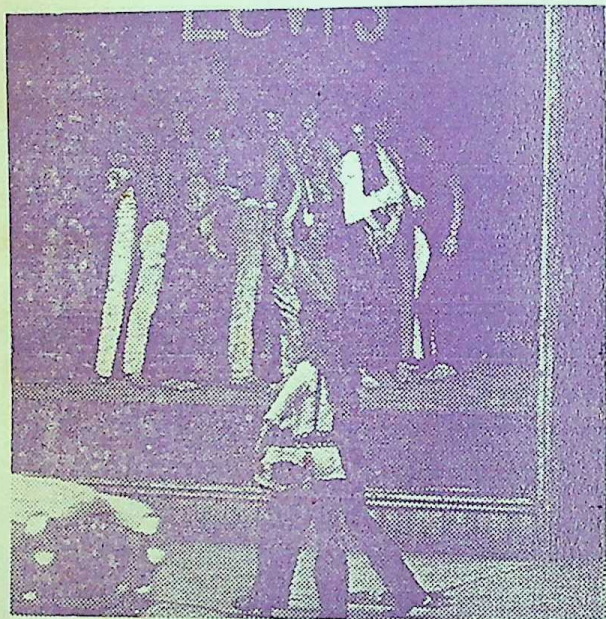
पेरिस की रातें प्रसिद्ध हैं

फ्रांस के साथ ही स्विट्जरलैंड लगा हुआ है। यह पहाड़ों पर बसा छोटा-सा सुंदर देश है। यहां के सुंदर मनोहारी दृश्यों को देखते-देखते आंखें नहीं थकतीं। ऊंची-ऊंची पहाड़ियां, झीलें तथा नकीले पत्तोंवाले जंगलों से घिरा हुआ यह देश विदेशियों का तीर्थस्थान है। जिनेवा, जहां पर संसार की शांति की वार्ता होती हैं, इस देश का प्रमुख सुंदर शहर है। यहां पर घड़ियों की बड़ी-बड़ी दुकानें हैं। यहां भी लोगों को फूलों का बहुत शौक है। इसके बाद हम लोग फ्रांस होते हुए इटली गये। फ्रांस से इटली जाने के लिए बारह किलोमीटर लंबी सुरंग पार करनी होती है। यह सुरंग माउंट ब्लेंक पर्वत पर बनी है। माउंट ब्लेंक पर्वत आल्प्स की सबसे ऊंची चोटी है। यहां पर बारहों महीने बर्फ जमी होती है। फ्रांस से इस सुरंग में घुस-कर बारह किलोमीटर लंबी दूरी पार करने के पश्चात इटली का कस्टम विभाग आपका स्वागत करता है। इस लंबी सुरंग में जगह-जगह फोन लगे हुए हैं। कार-पार्किंग के भी स्थान बने हुए हैं।

इटली के लोग काफी चंट तथा चालाक हैं। यात्रियों को ठगने की प्रवृत्ति भी इन में पायी जाती है। यहां की गुड़ियां व छाते संसार में प्रसिद्ध हैं। अन्य देशों की अपेक्षा यह देश सस्ता है।

—ई-६, एम. आई. जी. ...
अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म. प्र.)

२

३

४

१. ग्रीस की दो हजार वर्ष पुरानी रंगशाला, जिसे 'एपीडॉरस' कहते हैं

२. पेरिस का प्रसिद्ध एफिल टावर, जो अपनी ऊंचाई के कारण विश्व-विख्यात है

३. म्यूनिख ओलंपिक के मुख्य स्टेडियम के सामने खड़ी लेखिका

४. एक्रोपोलिस : एथेंस (ग्रीस) का दो हजार वर्ष प्राचीन प्रासाद

छाया : प्रेम कपूर
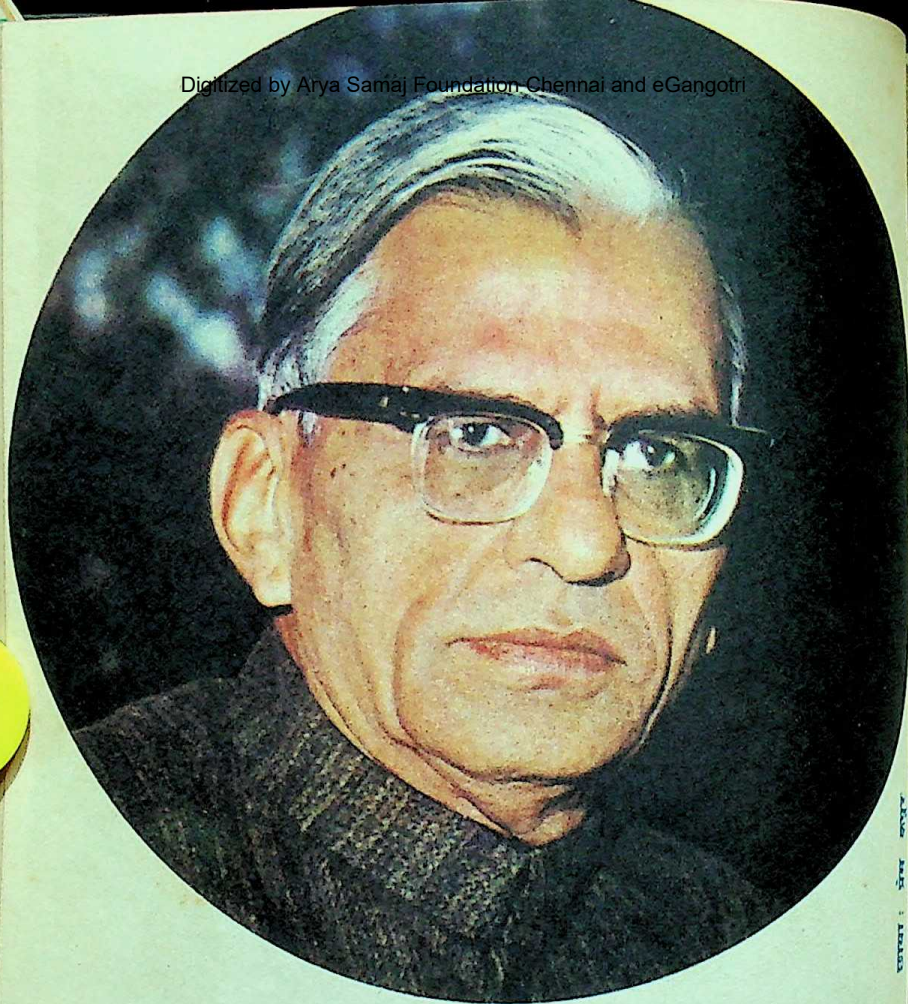
नवंबर में मुझे विश्वविद्यालय की चयन-समिति में भाग लेने के लिए गोरखपुर जाना पड़ा। इस समिति में मेरे सहयोगी बंधु डॉ. शर्मा भी थे। औपचारिक कार्य पूरा हो जाने के बाद डॉ. शर्मा ने कुछ स्थानीय मित्रों के साथ बाबा के दर्शन करने की योजना बनायी और मुझसे भी चलने के लिए अनुरोध किया। चमत्कारों में विश्वास न होने पर भी साधु-संतों के प्रति बाल्यकाल से ही मेरे मन में श्रद्धा का भाव रहा है, अतः मैंने उनका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और दूसरे दिन प्रातःकाल हम लोग कार से बाबा के दर्शन करने के लिए चल दिये। बाबा का आश्रम गोरखपुर से कोई ६० मील दूर था। लगभग ५७ मील का रास्ता कार से तय करने के बाद ३ मील कच्चे रास्ते पैदल चलना था। अतः कार को ड्राइवर के साथ सड़क के किनारे छोड़, हम लोग आगे बढ़ गये।

आत्म-साक्षात्कार

मैंने जीवन को मात्र भोगा नहीं है!

● डॉ. नगेन्द्र

पैदल चलने का अभ्यास मुझे है और मौसम भी अच्छा था, इसलिए पौन घंटे में आराम से हम एक नदी के किनारे पहुंच गये। बाबा का आश्रम अब सिर्फ आधा मील रह गया था, पर वहां जाने के लिए नदी पार करनी थी। मित्र लोग तो इसके अभ्यस्त थे, उन्होंने फौरन ही कपड़े उतार कर कंधे पर डाल लिये और बनियान-कच्छा पहने वे नदी की ओर बढ़ने लगे। मैं इसके लिए तैयार नहीं था और न मेरी श्रद्धा ही इतनी प्रचंड थी कि अर्धनग्न होकर ठंड में नदी पार करता। कुछ देर तक तो मित्रों ने मुझसे आग्रह किया, पर अंत में यह निर्णय हुआ कि मैं वहीं प्रतीक्षा करूंगा और वे लोग एक घंटे के भीतर बाबा के दर्शन कर लौट आयेंगे।

कुछ देर तक मैं नदी के किनारे घूमता रहा, लेकिन जब धूप चढ़ने लगी तब बैठने के लिए इधर-उधर किसी उपयुक्त स्थान की खोज करने लगा। मैंने देखा कि एक फर्लांग दूर किसी साधु की मढ़ी है। मैं कुछ ही देर में वहां पहुंच गया। मढ़ी के सामने धूनी लगाये एक साधु बैठा हुआ था। उसकी आकृति देखकर यह स्पष्ट हो गया कि वह नाथपंथी साधु है। शरीर कुछ स्थूल और वर्ण उसका काला था। बटी हुई भूरी जटाएं वक्ष तक बिखरी हुई थीं; आंखें लाल थीं। मुझे देखते ही उसने आंखें खोल दीं और बोला : 'तेरा नाम नगेन्द्र है ?'

मैंने आश्चर्य-चकित होकर उत्तर दिया : 'हां।'

'दिल्ली विश्वविद्यालय में अध्यापक है, काव्यशास्त्र का पंडित है—आलोचना लिखता है ?'

मेरा आश्चर्य और भी बढ़ गया। उत्तर दिया : 'हां, महाराज ! पंडित तो
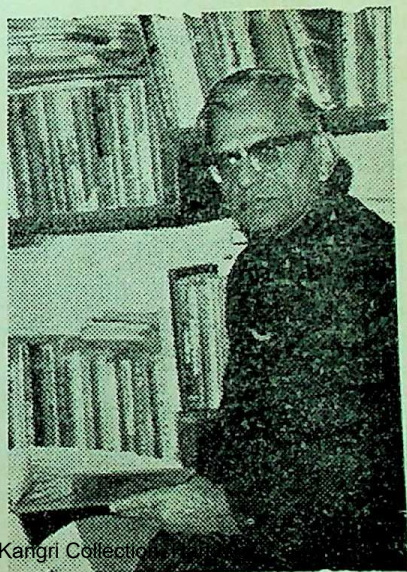
क्या हूं, पर थोड़ी बहुत आलोचना अवश्य लिखता हूं ।'

'आर्यसमाजी है : शायद इसीलिए बाबा के दर्शन करने नहीं गया ।'

'नहीं, ऐसा नहीं है : पैदल नदी पार करने का अभ्यास नहीं है ।'

'तूने भूल की । बाबा सिद्ध योगी हैं । उनके पास जाकर तुझे आत्म-साक्षात्कार का अपूर्व अवसर-लाभ होता ।'

'मेरा दुर्भाग्य !'

'तेरा शायद योग की शक्ति में विश्वास नहीं है ।'

'विश्वास नहीं है, यह तो मैं क्यों कहूं ? किंतु मैंने कभी उसका व्यक्तिगत अनुभव नहीं किया ।'

'अच्छा देख, तुझे अनुभव कराता हूं । अभी तू अपने अंतःस्वरूप का प्रत्यक्ष दर्शन कर अनेक अंतरंग रहस्यों का उद्-घाटन कर सकेगा ।'

साधु के ऐसा कहते ही मेरे शरीर में कंपन होने लगा और मुझे लगा जैसे एक ज्योति-रेखा मेरी आंखों से निकल रही है । कुछ देर बाद वह मूर्त-सघन होकर क्रमशः मानव-आकृति धारण करने लगी और मैंने देखा कि सामने मेरी प्रतिमूर्ति खड़ी है । एकदम मेरी प्रतिमूर्ति—वही काली शेरवानी और सफेद चूड़ीदार पाजामा, वैसा ही सुनहरी फ्रेम का चश्मा—मानो किसी ने आदमकद शीशे में मेरा अक्स लेकर शीशा हटा लिया हो और शीशे के हट जाने के बाद भी अक्स खड़ा रह गया हो । मैं अर्ध-सम्मोहित अवस्था में यह सब देख रहा था—स्वप्न और यथार्थ के बीच खोया हुआ । विश्वास करना कठिन था, लेकिन जो इतना प्रत्यक्ष था उस पर अविश्वास भी कैसे करता ?

प्रतिमूर्ति कुटिया की तरफ बढ़ी और वहां एक आसन पर बैठ गयी । साधु के संकेत पर मैं भी वहां जाकर दूसरे आसन पर बैठ गया ।

'मैं तुम्हारी अंतश्चेतना हूं—तुम्हें भय न लगे, इसलिए तुम्हारी आकृति और वेशभूषा भी मैंने धारण कर ली है । प्रकृतिस्थ होकर मेरे प्रश्न सुनो और निश्छल भाव से उनका उत्तर दो । इससे तुम्हारे मन की अनेक द्विविधाएं मिट जाएंगी । आत्म-प्रवंचना का प्रयत्न न करना,—बोलो तैयार हो ।'

मैंने उत्तर दिया—'ठीक है । आत्म-प्रवंचना का अभ्यस्त नहीं हूं । अनजाने गलती कर जाता हूं, जानबूझकर ऐसा सामान्यतः नहीं करता । और फिर तुम्हारे साथ आत्मवंचना कैसी ? तुम तो मेरी अंतश्चेतना हो !'

'पहले मैं कुछ अत्यंत व्यक्तिगत प्रश्न करना चाहती हूं । तुम अधीर, उद्विग्न व्यक्ति हो । इसका कारण जानते हो ?'

'कुछ तो जानता ही हूं, पर तुम शायद अधिक सटीक विश्लेषण कर सको । इस लिए तुमसे ही सुनना चाहूंगा ।'

'तो सुनो । तुम्हारी चेतना में दो प्रवृत्तियां समान रूप से सक्रिय रहती हैं—

एक अहंकार और दूसरी है राग-वृत्ति । ये दोनों ही प्रबल हैं, और परस्पर-विरोधी भी । अहंकारी व्यक्ति का राग आत्म-केंद्रित होकर अंततः अहंकार का ही अंग बन जाता है, और रागी व्यक्ति का अहंकार द्रवित होकर तरल बन जाता है । तुम दोनों को समान रूप से भोगना चाहते हो। तुम्हारे मन की यही विडंबना है ।'

'विश्लेषण तुम्हारा काफी हद तक सही है, पर निष्कर्ष उतना सही नहीं है । मैं नहीं मानता कि अधीरता या उद्विग्नता मेरी प्रकृति है । फिर जिसे तुम विडंबना कहती हो, उसे मैं विडंबना नहीं मानता । अहंकार और राग दोनों का समान रूप से भोग करने की स्पृहा विडंबना क्यों है ? अहंकार का गुण है घनत्व और राग का गुण है तरलता । घनत्व का निर्बंध विकास जड़ता की ओर ले जाता है, वह मनुष्य को पत्थर बना सकता है । तरलता का आधिक्य जीवन के रस को फीका कर देता है । राग की अतिशय तरलता भी स्वादहीन बन जाती है ? विगलित अहंकार के मिश्रण के बिना उसमें लज्जत नहीं आती ।'

प्रतिमूर्ति ने मुसकराकर व्यंग्य किया—**'तब तो मुबारक हो आपको यह लज्जत । इस मनःस्थिति का ठीक-ठीक विश्लेषण करने के लिए क्या कुछ और गहरे सवाल उठाये जाएं ?'**

'नहीं, अंतरंग प्रश्नों पर—ऐसे प्रश्नों पर, जिनका संबंध मेरे एकांत निजी अनुभवों से है, बात करना मैं नहीं चाहता ।'
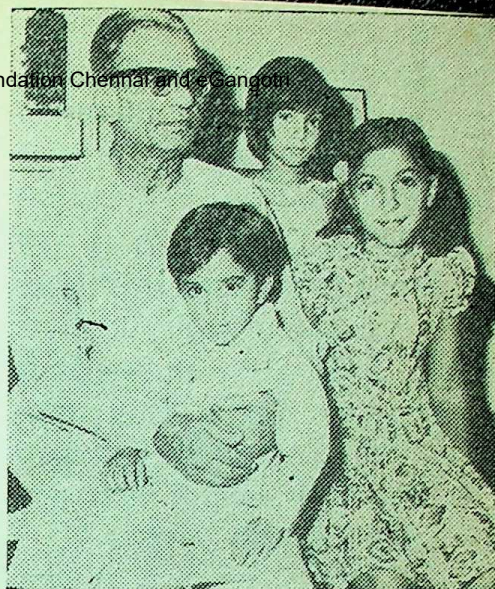
डॉ. नगेन्द्र: परिवार के बच्चों के साथ

'इसलिए कि तुममें साहस का अभाव है ?'

'नहीं; मैं इसे साहस का अभाव नहीं मानता । जीवन के एकांत राग-द्वेष व्यक्ति के अपने अंतरंग अनुभव हैं : उनका सही-सही ज्ञान प्राप्त कर लेना काफी है, और मन के स्वास्थ्य के लिए आवश्यक भी । परंतु उनका प्रकाशन या विज्ञापन करना साहस नहीं, दुस्साहस है, जिसका संवरण करना कायरता नहीं संस्कारिता और सामाजिक विवेक का लक्षण है ।'

'अच्छा छोड़िए—आप अपने को धोखा दे रहे हैं। असलियत वही है जो मुझे मालूम है ।'

'यह तर्क नहीं तर्काभास है । अंतर-

चेतना में जो है वह सत्य नहीं है, अर्थात सत्य है। अंतश्चेतना तो प्रकृत संस्कारों का पुंजमात्र है। चेतन मन के संकल्प के बिना ये अरूप संस्कार यथार्थ रूप धारण नहीं करते। इसलिए तुम्हारा यह दावा गलत है कि तुम मेरे चेतन मन की अपेक्षा सत्य के अधिक निकट हो।'

प्रतिमूर्ति ने फिर एक विद्रूप हंसी के साथ उत्तर दिया : 'चलिए, अंतरंग अनुभवों की बात नहीं करते। क्या मैं एक ऐसा प्रश्न कर सकती हूं जिसका संबंध आपके निजी जीवन से नहीं है ?'

'उसमें मुझे क्या एतराज हो सकता है ?'

'तुम्हारे विरोधियों का ही नहीं, बहुत-से मित्रों का भी मत है कि तुम्हारे राजनीतिक-सामाजिक विचार प्रतिक्रियावादी हैं—तुम आधुनिक बोध से वंचित हो : आगे देखने के बजाय पीछे देखने के आदी हो।'

'मैं इसका पूरी ईमानदारी के साथ प्रतिवाद करता हूं। जो यह कहते हैं, वे प्रायः ऐसे व्यक्ति हैं जो या तो द्वेष के कारण इस प्रकार का प्रचार करते हैं या जिनकी अपनी बुद्धि अपरिपक्व है, जो समय की हर हवा के साथ उड़ना ही प्रगतिशीलता का लक्षण मानते हैं। मैंने जीवन को मात्र भोगा नहीं है, विचारपूर्वक जिया है और अपने अध्ययन तथा अनुभव के आधार पर ही दृष्टिकोण का निर्माण किया है—नारों के चक्कर में आकर या हवा का रुख देखकर नहीं।'

'आखिर आप कहना क्या चाहते हैं ? देश में इस समय जो राजनीतिक विचार-धाराएं व्याप्त हैं, उनमें से आप किसको स्वीकार करते हैं ?'

'क्या किसी को स्वीकार करना या किसी एक से प्रतिबद्ध होना जरूरी है ? एक तो ये राजनीतिक दर्शन न होकर दलगत नीतियां हैं, दूसरे यदि दर्शन भी हों तो किसी एक से प्रतिबद्धता क्यों जरूरी है ? इस प्रकार की प्रतिबद्धता को मैं राजनीतिक सांप्रदायिकता मानता हूं, और सांप्रदायिकता केवल धर्म के स्तर पर नहीं राजनीति, साहित्य, संस्कृति—सभी के स्तर पर काम्य नहीं है।'

'इसका अर्थ यह हुआ कि आपके कोई निश्चित राजनीतिक विचार नहीं हैं। यह बात थोड़ी अजीब-सी है, क्योंकि साहित्य के क्षेत्र में तो आप अपने कट्टर विचारों के लिए बदनाम हैं।'

'ये दोनों ही आरोप गलत हैं। यह सत्य है कि राजनीति मेरा स्वधर्म नहीं है, फिर भी उसके विषय में मेरे विचार तो हैं ही। मेरी राजनीतिक चेतना का निर्माण गांधी-नेहरू युग में हुआ है और आज भी मैं मानता हूं कि गांधी से बड़ा राजनीतिक विचारक और नेहरू से बड़ा राजनीतिक नेता इस युग में नहीं हुआ। मेरी चेतना में इन्हीं दोनों के राजनीति-दर्शन के संस्कार रमे हुए हैं—आप कहें तो इनके साथ तिलक का नाम और जोड़ लें। तिलक का

नाम इसलिए कि उनका गांधी और नेहरू की अपेक्षा भारत की समृद्ध शास्त्र - परंपरा के साथ अधिक घनिष्ठ परिचय था। मेरी असांप्रदायिक लोकतंत्र में पूर्ण निष्ठा है—'सेक्यूलर' का सही अर्थ 'धर्म-निरपेक्ष' न होकर 'असांप्रदायिक' ही है। जातिवाद को मैं बर्बरता का लक्षण मानता हूं। आज उसका उपयोग बहुत ही घटिया ढंग से स्वार्थ-साधन के लिए किया जा रहा है। जातिवाद का समर्थक न होने के कारण मुझसे काफी मित्र नाराज रहे हैं।

'अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मैं विवेकपूर्ण तटस्थ नीति का समर्थक हूं। विवेकपूर्ण से अभिप्राय यह है कि भारत को अपने हिताहित का ध्यान अवश्य रखना चाहिए—कोरी सिद्धांतवादिता के नाम पर राष्ट्र का अहित कर बैठना विवेक-सम्मत नहीं है। राष्ट्रीय सम्मान और आत्मरक्षा की भावना के आधार पर परराष्ट्र-नीति का निर्धारण होना चाहिए। उदाहरण के लिए, मैं यह मानता हूं कि पिछले भारत-पाक युद्ध में रूस ने हमें जो नैतिक और भौतिक बल प्रदान किया, उसके लिए रूस के साथ सम्मानपूर्ण समझौता करना भारतीय कूटनीति की सफलता का प्रमाण था।'

'आप अपने परिचित क्षेत्र से काफी दूर चले गये', प्रतिमूर्ति ने टोककर कहा, 'आइए, आपके साहित्य-कर्म के विषय में कुछ स्पष्ट चर्चा की जाए—मेरी पहली जिज्ञासा यह है कि आप अब भी जो प्रायः उसी रफ्तार से बराबर लिखते जा रहे हैं, उसके मूल में क्या कोई वास्तविक प्रेरणा काम कर रही है या केवल अभ्यासवश ऐसा हो रहा है?'

'मैंने प्रेरणा के अभाव में कभी नहीं लिखा, यह तुम मुझसे अधिक जानती हो। मेरे जीवन का मुख्य कर्म साहित्य ही रहा है। जीवन-निर्वाह के लिए और भी काम किये, पूरी निष्ठा, उत्साह और शक्ति से किये। लेकिन साहित्य का आंचल कभी नहीं छोड़ा। बीच में ५ वर्ष सरकारी नौकरी में फंस गया, जहां स्वधर्म से भटक गया था। लेकिन फिर सहज भूमि पर आ गया। कुछ समय से बेकार के कामों से छुट्टी मिल गयी है, सामान्य सुख-संतोष के साथ जीवन बिताने के साधन सुलभ हैं, अध्यापन का व्यवसाय भी अनुकूल है, इसलिए साहित्य-चर्या एक प्रकार से निर्विघ्न हो गयी है। तुम्हें शंका है कि मैं केवल अभ्यासवश तो नहीं लिखता जा रहा। अभ्यासवश जो कार्य किया जाता है, उसमें तो ऊब पैदा हो जाती है। और ऊब को कोई कब तक झेलेगा? अगर तुम कहतीं कि लिखना मेरा व्यसन हो गया है, तो मैं शायद कुछ देर आत्म-निरीक्षण करता, हालांकि लिखने-पढ़ने का व्यसन भी क्या बुरा है: संस्कृत के कुछ प्राचीन आचार्यों ने व्यसन को भी एक पृथक रस माना है। लेकिन लेखन मेरा व्यसन भी नहीं है। मैं आत्माभिव्यक्ति के लिए ही लिखता हूं और जब तक मेरा आत्म-चैतन्य

—मेरा अंतर्ब्रह्म प्रबुद्ध है, तब तक तो लिखने का अधिकार मुझे है ही। अपने पक्ष में मैं एक तर्क दे सकता हूं और वह यह कि मैं पुनरावृत्ति नहीं कर रहा। मैं स्थिर मूल्यों में विश्वास करता हूं—मेरे जीवन-मूल्य और साहित्य-मूल्य समय की हवा या आंदोलनों के साथ नहीं बदले, फिर भी मैंने यथासंभव पिष्ट-पेषण से बचने का प्रयत्न किया है: जिस विषय पर मुझे कुछ और नहीं कहना होता, उस पर नहीं लिखता। स्थिरवृत्ति या विचार-संगति दोष नहीं है, वह साहित्यिक चारित्र्य का लक्षण है।'

'अच्छा, एक अंतिम प्रश्न और करती हूं—इसके बाद प्रसंग को समाप्त कर दिया जाएगा।—स्थायी और सार्वभौम मूल्यों को आज का विचारक कल्पना मात्र मानता है और इसी तर्क के आधार पर वह यह आक्षेप करता है कि आपकी समीक्षा साहित्य के सामाजिक परिवेश को प्रायः नकार कर चलती है, इसलिए वह अधूरी रह जाती है।'

'इसका उत्तर मैं कई बार विविध संदर्भों में दे चुका हूं। मैं सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों को नहीं नकारता। अपनी व्यावहारिक आलोचना में मैंने हमेशा कवि या कृति के सामाजिक परिवेश की चर्चा की है। उदाहरण के लिए, 'कामायनी' के मूल प्रतिपाद्य का मैंने दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक स्तर पर विचार किया है और वर्तमान युग की सबसे बड़ी विडंबना के रूप में भी उसे देखा है। महान कलाकार का लक्षण ही यह है कि वह सामयिक समस्याओं के प्रति जागरुक रहता हुआ भी उन्हें देशकाल की सीमाओं से मुक्त कर, मूल मानव-वृत्तियों के धरातल पर प्रतिष्ठित कर देता है। तभी तो वे युग-युग की संवेदना के साथ जुड़ पाती हैं। यदि कामायनी की मूल-चेतना बीसवीं शती के द्वितीय चरण की परिस्थितियों में बंधकर रह जाती है, तो उसकी मूल्यवत्ता एक काल-खंड तक सीमित हो जाएगी। कालजयी कृति को काल के संदर्भ में देख भले ही लें, पर उसे कालबद्ध तो नहीं किया जा सकता।'

'छोड़िए, काफी हो लिया। मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आपकी जीवनी-शक्ति आज भी उतनी ही प्रबुद्ध है जितनी कि १०–१५ वर्ष पूर्व थी। आपकी साधना सफल हो, यही मेरी कामना है।'

मैंने देखा कि सामने साक्षात खड़ी हुई प्रतिमूर्ति धुंधली पड़ने लगी और कुछ ही क्षणों में वहां प्रकाश की एक लंब-रेखा शेष रह गयी। यह प्रकाश-रेखा मेरी ओर बढ़ी और पलक मारते ही मेरे शरीर में अंतर्लीन हो गयी। मैं विस्मय-विमूढ़ होकर इधर-उधर देखने लगा। लेकिन वहां कुछ नहीं था—न साधु, न उसकी मढ़ी। तीनों मित्र, जो बाबा का प्रसाद लेकर लौट आये थे, मेरे सामने खड़े थे।

—१६ कैवेलरी लाइन्स, दिल्ली–७

● अलका उपाध्याय

आग लगी है...

दोपहर का समय और सर्दी का मौसम। बिना किसी काम के (अपनी दिनचर्या के मुताबिक) दिन बीत ही रहा था कि एक धमाका हुआ। सुना कोई बड़े आराम से गा रहा है—'आग लगी हमरी झुपड़िया में हम गावैं मल्हार।' ऐसे साहसी पुरुष के प्रति मस्तक श्रद्धा से नत हुआ। भलामानस गा तो रहा है! इसमें गाने की इच्छा तो बची है! अच्छा है, गाकर अपनी जिजीविषा को बल दे रहा है।

जब से आसपास देखने का वक्त अपने पास होने लगा है, मैंने तो किसी को गाते नहीं देखा। सबके स्वरों में रोना ही है। गाना भी कहीं है, यह तो भूल ही गयी हूं। सारी भीड़ रो रही है—भूख को, बेकारी को, निर्धनता से शापित जीवन को। रोना है द्रुपदसुता के-से बढ़ते अभावों के चीर का। इसमें गाने की गुंजाइश कहां है? और वह भी मल्हार गाने की, जबकि सावन बारहों महीने पलकों के नीचे से बरसता हो।

रोनेवालों की भीड़ से ऊपर, भीड़ से अलग एक तबका है, जो उसी में होने का दावा फेर बदलकर करता रहता है। यही एक जगह है जहां से गाने की आवाज आग लगने के बावजूद आती रहती है। सारी झुपड़ियों की उठती आग से बेखबर होकर भी बहनजी गा रही हैं—जोरशोर से गाने में लगी हुई हैं, जमी हुई हैं।

सिर्फ गाती ही नहीं, बजाती भी हैं। उनके पास चुने हुए, 'छंटे हुए,' बेहतरीन साज हैं। साजों का अपना अलग स्वर शायद नहीं होता। यह तो बजानेवालों की मरजी पर निर्भर करता है कि वह उनसे कैसी आवाज निकलवाये। यह तो पड़ती हुई थाप का कमाल, अंगुलियों का जौहर है।

लपटों के बीच गाने में महारत तो उनको ही हासिल है। पर कुछ-एक लोग हैं जो यदा-कदा गाकर अपने अस्तित्व का अहसास दिला देते हैं। उन्हें न आग में रुचि है, न मल्हार गाने का शौक। उनका मतलब सिर्फ अपनी अहमियत जताने से है। अगर गाने के लिए आग लगानी भी पड़े तो भी तैयार हैं। इस तरह की हस्तियों में शायद कंपटीशन भी होता हो कि आग लगने पर कौन पहले गा पाता है

या उनके गाने से कितनी आग लगना मुमकिन है। यों आग लगाकर मल्हार गाने का काम सत्ताईस सालों से करते आ रहे हैं। वही करेंगे भी। इसके सिवा किसी और क्षेत्र में उनकी गति है भी तो नहीं—बेचारे!

वह गानेवाला भी एक ही है! अभी तक गाये ही जा रहा है—'गावैं मल्हार'। आग लगने की चिंता नहीं है। लगती रहे आग पेट में, सूख जाए बंगाल और बिहार, कच्छ और राजस्थान। मल्हार गाना है—विधानसभा भंग कराना है या प्रजातंत्र की रक्षा करना है। जिनके घर पूरे हैं उन्हें झोपड़ियों के दर्द का पता कैसे हो? जो तकदीरों का फैसला करने बैठे हैं उन्हें क्यों कर पता हो कि बेकारी क्या है, जबकि उनके घर में उसकी छाया तक नहीं है। झोपड़ी की आवाज सड़कों की राह पर आ...

लगता है, आग यहां भी लगी। रोको। मल्हार गाकर बुझानी ही होगी। यहां तो इतनी-सी बात बर्दाश्त नहीं ... पता नहीं आग लगने पर झोपड़ी के असली मालिक को कैसा लगता होगा, जब हम-जैसे तमाशाइयों की यह हालत हो जाती है।

रह-रहकर वह स्वर उठता है—'हम गावैं मल्हार'। अब तक तो मुझे पता ही नहीं था कि मामला इतना गंभीर है। आग लगाकर मल्हार गाना बात किस दर्जे की है, इसके तीन पहलू हैं। पहली बात यह कि आग खुद लगी थी या किसी से लगवायी थी। अगर खुद लगी थी तब

तो आपको गाने का अधिकार नहीं। यह तो प्रकृति का कोप है। इसमें तो बेचारे मनुष्य कर ही क्या सकते हैं! सब जानते हैं कि आग खुद-ब-खुद लगी थी। अगर आग अपने आप बुझ जाती तो गाया जा सकता है। आपकी मल्हार है जिसके कारण आग बुझी। ऐसे में आग को बुझाने का पूरा-पूरा श्रेय आपको जाता है। जैसे सूखा पड़ने की जिम्मेदारी प्रकृति की और फसल अच्छी होने का श्रेय भारत सरकार का है।

अपनी झुपड़िया में आग खुद अगर लगायी है तब तो वाकई गाने की बात है। पर बंधु, जो-जो आग लगा चुके हैं उन्होंने खुद कभी गाया नहीं। बाद में उनका नाम कई दशाब्दियों तक गाया गया है। अपनी झोपड़ी में अपने हाथों आग लगा देने का माद्दा जिनमें होता है वे गाने के मोह की मुहताजी नहीं करते। यह बात दूसरी है कि ऐसे वीरों को सिर्फ आग की तपन ही मिलती है—मल्हार तो उनके नाम पर और लोग ही गाया करते हैं। आग लगाने के कारखाने तो कभी बनते ही नहीं, मल्हार गाने के लिए जरूर वातावरण तैयार करना पड़ता है।

अपनी झोपड़ी में दूसरों से आग लगवाकर गाने का काम वाकई बड़ा है। दूसरे-तीसरे सब लोग चक्कर में आ जाते हैं। समझते हैं अब तो यही हाथ है जो सारे दुःखों की झोपड़ी में आग लगायेंगे। मल्हार गाने के सपने भी आने लगते हैं, पर वे सब बड़े भोले हैं। जानते नहीं, यह भी एक चक्कर है। झोपड़ी में आग लगाने के काम पहले से तय होते हैं। बहुत-से महलों के मालिक अगर जान-बूझकर अपनी एक झोपड़ी में आग लगवा भी लें तो क्या हुआ! एक झोपड़ी के बदले किसी बड़े की मेहमानी हाथ लगे तो क्या कम है!

बौरे गांव की भीड़ है कि जयजयकार कर रही है, मल्हार गा रही है। झोपड़ी की आग से बेखबर होकर मुझसे तो गाया नहीं जाता। ऐसे में कैसे खुद को बचाया जाए इसी की चिंता है। पूरी झुपड़ियों में आग लगी है, बाहर भी, भीतर भी। इसी में निर्मला भी है। "पटने से आये थे, वहां फसल नहीं थी; दिल्ली से जा रहे हैं, यहां काम नहीं है। देर सिर्फ इस बात की है कि इतने पैसे तो हो जाएं कि बच्चों के कपड़े बन जाएं—पटने से जो पहनकर आये थे वे तो फट गये," बड़ी मायूसी से बताती है। क्या है इस झोपड़ी में जीने लायक जिसे जलने से बचायें?

आग लगी हमरी झुपड़िया में हम गावैं मल्हार—सब ही गा रहे हैं, निर्मला भी और मैं भी। उनका गाना सच्चा है। फायरप्रूफ में मल्हार गाना है। मैं और निर्मला तो गा रहे हैं या नहीं, इतना जानने का दम भी आग की लपटों में गुम हो गया है। पर वह गा रहा है, शायद गा ही रहा है। आग लगी . . .

—४०६, कल्पनानगर, पटेलमार्ग, गाजियाबाद

• रामलखन सिंह

मछली-मछली कितना पानी?

कभी खेल-खेल में किसी बच्चे ने वर्षा के पानी में छप-छप करती बाल-सखी से पूछा था, "मछली-मछली, कितना पानी?" और आज विश्व में चोटी के जल-विशेषज्ञ एक-दूसरे से पूछ रहे हैं, "कितना पानी?" अत्यंत सहज-सा लगनेवाला यह प्रश्न मूल में कितना जटिल है, इसका अनुमान आप इसी से लगा सकते हैं कि इसका उत्तर ढूंढ़ने के लिए 'राष्ट्रसंघ' (यूनेस्को) के तत्त्वावधान में सन १९६५ से १९७४ तक के काल को 'अंतर्राष्ट्रीय जल दशक' के रूप में मान्यता दी गयी। इस काल में किये गये प्रयास एवं सामूहिक शोध ने मानव के आदि-परिचित तत्त्व 'जल' के स्वरूप को स्पष्ट करने के साथ ही भयावह भी बना दिया है।

जल के रूप अनेक

मानव-शरीर का सत्तर प्रतिशत भाग जल तत्त्व से निर्मित है। यह जल हमारे शरीर के तापक्रम को संनियंत्रित करने के साथ ही विषैले एवं अवांछित पदार्थों को शरीर से बाहर निकालने का कार्य भी करता है। ठीक इसके समानांतर पृथ्वी का सत्तर प्रतिशत भाग महासागरों से ढका है। यह महासागरीय खारा जल सूर्य के ताप से वाष्पीकृत होकर संपूर्ण पृथ्वी को एक कवच की भांति घेरे हुए है। प्रयोगों से पता चला है कि वायुमंडल में हर समय स्थायी रूप से इतना वाष्प उपस्थित रहता है कि उसके द्रवीकरण से संपूर्ण पृथ्वी को ढाई सेंटीमीटर मोटी पर्त से ढका जा सकता है। यह जलवाष्प पृथ्वी को सूर्य-किरणों के तीव्र आघात से बचाकर हमारे वातावरण को प्राकृतिक रूप से वातानुकूलित भी करता है।

पृथ्वी के सत्तर प्रतिशत भू-भाग एवं संपूर्ण वायुमंडल को घेरकर ही जल की व्यापकता समाप्त नहीं होती। पृथ्वी के शेष क्षेत्रफल का लगभग डेढ़ करोड़ वर्ग किलोमीटर स्थायी रूप से हिमाच्छादित रहता है। ध्रुव-केंद्रों पर वर्फ से ढके हुए क्षेत्र के अतिरिक्त लगभग दो करोड़ वर्ग-किलोमीटर अन्य भू-भाग स्थायी रूप से जमा हुआ (पर्मा-फ्रॉस्ट) है। इस प्रकार स्पष्ट है कि जल ने ठोस, द्रव एवं गैस तीनों ही रूपों में पृथ्वी के अधिकांश भू-भाग पर स्थायी आधिपत्य जमा रखा है। इसी कारण मानव-अस्तित्व के लिए अनिवार्य होते हुए भी 'जल' मानव-जाति का सबसे बड़ा प्रतिद्वंद्वी भी है। आज जब निरंतर बढ़ती जा रही जनसंख्या ने कृषि, आवास, उद्योग, वनी-

करण आदि उपयोगों के लिए भूमि की मांग बढ़ा दी है तब दूसरी ओर यह संकेत भी मिल रहे हैं कि महासागर अपनी सीमाएं बढ़ाकर मानव-जाति के हिस्से में आये सीमित भू-भाग को और भी सीमित करते जा रहे हैं। वैसे इस संबंध में विशेषज्ञों में मतभेद है, किंतु इतना निश्चित है कि पृथ्वी पर उपस्थित संपूर्ण जल की मात्रा (अनुमानतः बत्तीस करोड़ साठ लाख घनमील) यदि द्रव रूप में ही सिमट आये तो महासागरों का स्तर ऊपर उठकर अधिकांश भूभाग को जलमग्न कर देगा। वास्तव में जल एकमात्र ऐसा तत्त्व है जो एकसाथ तीनों अवस्थाओं (ठोस, द्रव एवं गैस) में विद्यमान रह सकता है। जल के इस विशेष गुण के कारण ही पृथ्वी पर मानव-अस्तित्व संभव है।

जल बिच मीन पियासी

चतुर्दिक फैली हुई इस अथाह जलराशि के होते हुए भी पृथ्वी पर जलाभाव की समस्या का होना स्वयं में एक अनूठी बात है। मूल रूप में यह समस्या 'मात्रा' की समस्या न होकर स्थान एवं समयानुसार शुद्ध जल की उपलब्धि की समस्या है, क्योंकि जहां एक ओर पृथ्वी का अधिकांश भाग समुद्री जल एवं हिम से घिरा है, वहीं दूसरी ओर लगभग चार करोड़ वर्ग-किलोमीटर भूभाग पर रेगिस्तान फैला है। कहीं अतिवृष्टि के कारण आयी बाढ़ में सभी कुछ बहा जा रहा है तो ठीक उसी क्षण दूसरे स्थान पर जल की एक-एक बूंद का अभाव लोगों को तड़पा रहा है। यही नहीं, जिस स्थान पर बाढ़ आती है वहीं वर्ष के दूसरे मौसम में सूखा पड़ता है।

जल के अभाव की समस्या स्पष्ट रूप से इसके सामयिक संग्रह एवं योजनाबद्ध वितरण की समस्या है। इस समस्या से निबटने के प्रयास में सर्वप्रथम मनुष्य का ध्यान भूगर्भ में स्थित जल की ओर गया था। अनुमानतः पृथ्वी के भीतर उपलब्ध जल की मात्रा बीस लाख घनमील आंकी गयी है। वांछित स्थान पर कुएं
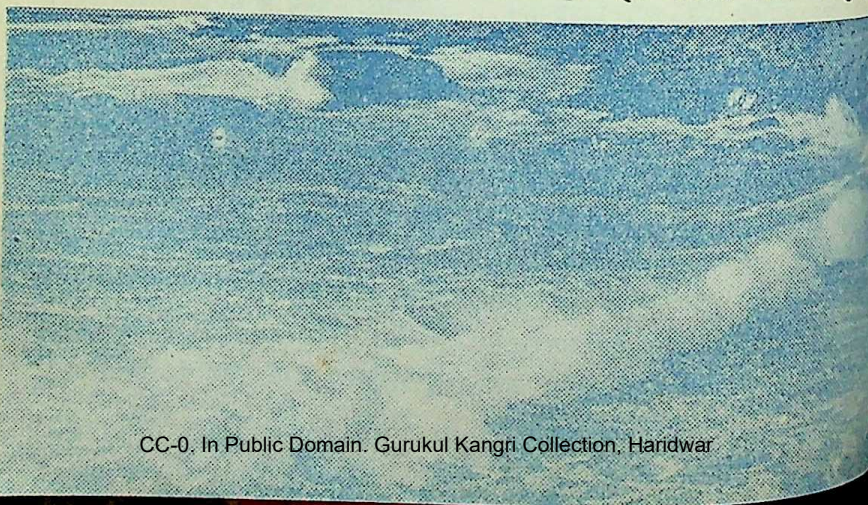
खोदकर जल सुलभ करने की दृष्टि से इस अक्षय स्रोत का विशेष महत्त्व है। तकनीकी विकास के साथ रस्सी-बाल्टी का स्थान 'रहट' और अंततः रहट का स्थान ट्यूबवेल ने ले लिया है। जल की बढ़ती जा रही मांग ने इसे भूगर्भ-स्थित अन्य खनिज तत्त्वों की श्रेणी में ला विठाया है। आज विश्व का प्रत्येक राष्ट्र स्वीकारने लगा है कि कोयला, पेट्रोलियम, प्राकृतिक गैस आदि कच्चे मालों की भांति जल भी कच्चा माल है। इसके समुचित प्रयोगों का संबंध राष्ट्रों की प्रगति से जोड़ा जाने लगा है। उदाहरणार्थ, विश्व के कुछ राष्ट्रों में जल की प्रति-व्यक्ति दैनिक खपत मात्र एक सौ लीटर है तो अन्य अति-विकसित राष्ट्रों में यही खपत ६ हजार लीटर से भी अधिक है। यह अंतर इन राष्ट्रों के जीवन-स्तर के अंतर का समानुपाती ही है, क्योंकि जीवन-स्तर उठाने की अनिवार्य दिशाएं हैं—कृषि, उद्योग, स्वास्थ्य-सेवाएं आदि। कृषि के लिए पानी की अनिवार्यता तो सर्वविदित है, किंतु उद्योगों के लिए भी जल की भारी मात्रा में आवश्यकता पड़ती है। एक टन स्टील ढालने में औसतन चालीस हजार गैलन पानी का उपयोग किया जाता है, जबकि एक टन कागज निर्मित करने में एक लाख गैलन पानी की आवश्यकता पड़ती है।

कहीं बाढ़, कहीं सूखा

जल एवं अन्य कच्चे मालों में एक मूल अंतर है। जल एक ऐसा कच्चा माल है जो कभी समाप्त नहीं होगा, साथ ही यह धरती पर आवश्यकता से कहीं अधिक मात्रा में विद्यमान है। भूखंडों पर प्रतिवर्ष बरसनेवाला जल मनुष्य की संपूर्ण आवश्यकता से कहीं अधिक होता है। प्रयोगों से स्पष्ट हुआ है कि सूर्य की भट्ठी में तपकर प्रतिवर्ष चार लाख बीस हजार घन-किलोमीटर जल वाष्प रूप में परिवर्तित होकर पुनः शुद्ध जल के रूप में पृथ्वी पर बरसता है। इसका जो अंश भूखंडों पर बरसता है उसकी मात्रा एक लाख घन-किलोमीटर

आंकी गयी है।

प्रतिवर्ष प्राकृतिक रूप से प्राप्त होनेवाले शुद्ध जल की यह मात्रा इतनी अधिक होती है कि सभ्यता के किसी भी चरण में वार्षिक खपत इससे अधिक नहीं हो सकेगी, किंतु प्रकृति-प्रदत्त इस जल के सामयिक संग्रह एवं उपयोग के अभाव में इसका अधिकांश बाढ़ के रूप में पुनः महासागरों में समा जाता है। अनुमानतः प्रतिवर्ष बरसनेवाले जल की लगभग चालीस प्रतिशत मात्रा विश्व की विशालकाय नदियों द्वारा महासागरों में पहुंचा दी जाती है। ये नदियां बाढ़ के साथ मात्र शुद्ध जल ही नहीं, करोड़ों टन मिट्टी और जन-संपत्ति भी बहाकर ले जाती हैं। अकेले भारतवर्ष में प्रतिवर्ष बाढ़ के कारण अरबों रुपयों की क्षति होती है और पुनः उसी वर्ष कुछ महीनों बाद जलाभाव की स्थिति उत्पन्न होती है, जिसमें फसल तो क्या पशुओं तथा मनुष्यों के लिए पीने का पानी तक दुर्लभ हो जाता है।

प्रभु मेरी कचौड़ियों का राष्ट्रीयकरण हो तो मैं भी दो-चार बिल्डिंग बनवा दूं
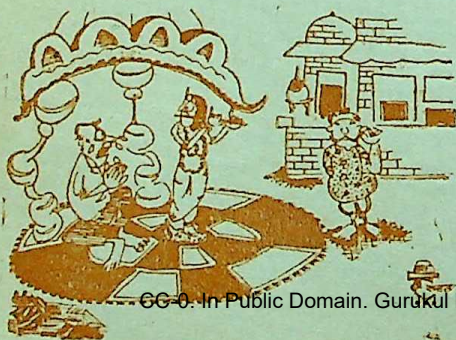
इस समस्या से निबटने का प्रयास मनुष्य आदिकाल से ही करता आ रहा है। उदाहरण के लिए, ईसा से दो हजार वर्ष पूर्व ही सिंधु नदी की घाटी में विकसित हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ो नगरों का नाम लिया जा सकता है। इन नगरों में पनपी सभ्यता का मूल आधार जल के संग्रह एवं वितरण का तकनीकी प्रयोग ही था, किंतु इतिहास साक्षी है कि उनके विनाश का कारण भी यही था कि वे लोग जल, भूमि एवं वनस्पति के पारस्परिक संबंधों की गुत्थी नहीं सुलझा सके थे। सिंधु की बाढ़ से बचने के लिए मोहनजोदड़ो नगर के किनारे बनायी गयी पत्थर की दीवारें नगर को बचा नहीं सकीं। परिणामस्वरूप कृषि और आबादी के क्षेत्र समान रूप से रेत एवं कंकड़ों से भर गये थे।

सभ्यता के विकास के साथ-साथ भूमि एवं वनस्पति के मध्य की गुत्थी सुलझाने का प्रयास चलता रहा है। अंततः यह स्पष्ट हो सका है कि मैदानों में स्थित कृषि-भूमि एवं आबादी के चारों ओर पत्थर की दीवार खड़ी करके बाढ़ के प्रकोपों को नहीं रोका जा सकता, इसके लिए तो दूर पर्वतीय घाटियों में ही वर्षा के अतिरिक्त जल को बांधकर रखना होगा। इस तथ्य को व्यावहारिक रूप देने के प्रयास में ही 'बांध-युग' का प्रारंभ हुआ। विश्व की विशालकाय नदियों के जल को संग्रहीत करके उससे जल-विद्युत उत्पन्न

करने तथा नहरों का जाल बिछाकर दूर-दूर तक समयानुसार शुद्ध जल का वितरण करने की महत्त्वाकांक्षी योजनाएं प्रारंभ की गयीं।

भारतवर्ष ने इस युग में विलंब से प्रवेश किया, परिणामस्वरूप विश्व की विशालतम नदियों एवं पर्वत-मालाओं का देश होते हुए भी प्रतिवर्ष बाढ़ और सूखे की दोहरी क्षति झेल रहा है।

बांध की भूमिका

बाढ़ के प्रकोप को रोककर, शुद्ध जल की सामयिक उपलब्धि की दृष्टि से बांधों की भूमिका महत्त्वपूर्ण होते हुए भी आसान नहीं है। बांध अधिक वृष्टिवाले पर्वतीय क्षेत्रों में ही बांधे जा सकते हैं, जिससे कम से कम भूमि जल-प्लावित हो और अधिक से अधिक पानी संग्रहीत हो। किंतु ऐसे पर्वतीय क्षेत्र अधिकांशतः वनों से आच्छादित होते हैं, जो अनेक अनिवार्य उद्योगों हेतु कच्चा माल सुलभ करने के साथ ही पर्वतवासियों की जीविका एवं उनके पशुओं के चारे के स्रोत होते हैं, इसलिए बांध के लिए चुने जाने पर ऐसे क्षेत्रों में भूमि के कटाव को रोकने की दृष्टि से विशेष तकनीक अपनाने की आवश्यकता पड़ती है।

बांध-युग के अनेक अग्रणी देशों ने प्रारंभ में भूमि एवं वनस्पति के मध्य सामंजस्य बनाये रखने की आवश्यकता को अनदेखा करके इन क्षेत्रों की वनस्पति को संरक्षित रखने की ओर ध्यान नहीं दिया था। परिणामस्वरूप वनस्पतिहीन पर्वतीय भूमि के तीव्र कटाव से विशालकाय बांध रेत और कंकड़ों से भरने लगे। तत्काल ही इस दिशा में शोध प्रारंभ हुई। आज नदी-घाटी योजनाओं के दोहन-क्षेत्र (कैचमेंट-एरिया) में स्थित भूमि एवं वनस्पति के समीकरण को आंकने की विशेष तकनीक खोजी जा चुकी है।

कृत्रिम वर्षा

वांछित स्थान पर शुद्ध जल की उपलब्धि की दिशा में जो अन्य प्रयोग किये गये हैं उनमें खारे जल का शुद्धीकरण तथा कृत्रिम वर्षा विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ये दोनों प्रयास महासागरीय तथा वायुमंडलीय जल की व्यापकता को देखते हुए किये गये हैं। उस दिन की कल्पना कीजिए जब वायुमंडल में व्याप्त जलवाष्प को वांछित स्थान पर मनचाहे समय पर द्रवित करना संभव हो सकेगा, किंतु तब भी मनुष्य को बाढ़ से बचने और जल-विद्युत से उद्योग चलाने की आवश्यकता बनी रहेगी। सौभाग्यवश इस दृष्टि से गंगा, सिंधु, सतलज, ब्रह्मपुत्र, कृष्णा, कावेरी-जैसी नदियों के देश में कच्चे माल की तो कोई कमी ही नहीं है, लेकिन जल, भूमि और वनस्पति के मध्य समीकरण को समझने तथा उसे क्रियात्मक रूप देने की परम आवश्यकता है।

—डिपार्टमेंट ऑव फारेस्टरी,
आस्ट्रेलियन नेशनल यूनीवर्सिटी,
कैनबरा (आस्ट्रेलिया)

चौदह वर्ष पूर्व मैं एक प्रखंड में सहकारिता-निरीक्षक था। मार्च का महीना था। प्रखंड में 'मार्च-लूट' मची थी। मेरे सहकर्मियों में टी. ए. की मद में काफी रकम निकालने की होड़-सी मची थी। वैध एवं अवैध यात्रा दिखाकर अधिक से अधिक रुपये प्राप्त करने के लिए वे सक्रिय थे। उस समय मेरी आर्थिक दशा चिंताजनक थी। अतः मैं भी उस होड़ में सम्मिलित हो गया। यात्रा-विपत्र करीब पांच सौ रुपये का बनाया। क्लर्क को इसे चेक करने के लिए कुछ प्रतिशत भी निश्चित किया।

प्रातःकाल प्रतिदिन की भांति संध्या हवन के पश्चात अपना आत्म-निरीक्षण किया। सहसा हृदय में यह द्वंद्व उठा कि जो यात्रा-विपत्र मैंने दिया है, वह सही नहीं है। मैं पूरे एक घंटे तक द्वंद्व में झूलता रहा। अंत में यह निर्णय किया कि चाहे जो कुछ भी हो मैं इस प्रकार का टी. ए. नहीं लूंगा। मैंने शीघ्र ही चेकिंग-क्लर्क से अपना विपत्र मांगकर उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। इसके बाद मुझे बहुत ही शांति मिली।

—जगदीश प्रसाद सिन्हा, सहकारिता निरीक्षक, जमुई (मुंगेर)

हमारे दफ्तर में एक चपरासी बहुत मुंहफट है इसलिए कोई भी व्यक्ति उससे अधिक बातचीत नहीं करता, लेकिन उसके साथ मेरी अच्छी बनती है। एक बार मैंने उससे कहा, "यदि तुम थोड़ी सी पढ़ाई कर लो, तो हमारी तरह बाबू बन सकते हो।" वह थोड़ी देर मेरी तरफ देखता रहा, फिर बोला, "साहब, मैं बाबू नहीं बनना चाहता क्योंकि हमारे बाप-दादाओं ने अंगरेजों से इसलिए लड़ाई लड़ी थी कि हमें बोलने की स्वतंत्रता मिले। मैं बाबू बनकर यह स्वतंत्रता खोना नहीं चाहता। आज मैं खुलेदिल से बोलता हूं, परंतु आप दबाव की वजह से चाहकर भी इस तरह नहीं बोल सकते, होंठ सी लेते हैं।" उसके चले जाने के बाद मैं बहुत देर तक सोचता रहा कि उसकी बात में काफी दम है, कुछ सचाई अवश्य है। दफ्तर में सबसे बड़े अधिकारी अभी नये-नये आये थे। वे चपरासी के इस स्वभाव से परिचित नहीं थे। एक दिन वह ठीक ग्यारह बजे दफ्तर आया। अधिकारी महोदय ने पूछा, "क्यों, तुम ठीक ग्यारह बजे दफ्तर आते हो ?" उसने छूटते ही जवाब दिया, "जी साहब, क्योंकि देर से आना मेरी आदत नहीं, और मुझे पसंद भी नहीं।"

जबकि साहब का तात्पर्य यह था कि दस मिनट जल्द आया करो।

—दीपककुमार चैतन्य, १९ कुमार वैडा, खंडवा (म. प्र.)

मैं खलीलाबाद के एक बैंक की यूनियन का सेक्रेटरी था। बैंक में खिड़कियों पर सलाखें तो लगी हुई थीं, पर उन पर पतली जाली नहीं लगी थी, जिससे मच्छर कर्मचारियों को बहुत परेशान करते थे। मैं कई बार बड़े बाबू द्वारा साहब को कहलवा चुका था कि खिड़कियों पर जाली लगवा दीजिए, इसलिए एक दिन मैं स्वयं समझाने के लिए साहब के केबिन में जा पहुंचा और बोला, "साहब आपके लिए 'प्रसाद' लाया हूं।" प्रसाद का नाम सुनकर वे बहुत खुश हुए और कहने लगे, "ठहरो, हाथ धोकर आता हूं।" यह कहकर वह दफ्तर के पीछे ही स्थित अपने घर गया और वहां से हाथ धोकर, हाथों पर नया रूमाल रखकर आया। मैंने कुछ मरे हुए मच्छरों से भरी पुड़िया खोलकर उसके हाथों पर रख दी और नम्रता से कहा, "साहब, यही प्रसाद है जिसे हम रोज खाते हैं, पर एक दिन आप भी . . . !"

उसके बाद तो शीघ्र ही खिड़कियों पर जाली लगवा दी गयी।

—विपिन विहारी 'सुमन', ३/१४/७ प्रेमनगर, देहरादून

तीन वर्ष से रेलवे में समय-पाल हूं। कभी-कभी बेहतर पद के लिए आवेदन-पत्र विभाग के माध्यम से भेजता रहा हूं। लेकिन माध्यम इतना जटिल है कि आवेदन-पत्र निकल ही नहीं पाते। नवंबर में सहायकों की भर्ती के लिए मैंने अपना आवेदन-पत्र संघ-लोक-सेवा आयोग को भेजना चाहा और विभाग को ३५ दिन पहले पहुंचा दिया। बीच-बीच में जब भी पूछा, बताया गया कि अनुमति के लिए भेजा गया है। करीब ढाई महीने बाद एक दिन मुख्य-लिपिक से पूछताछ की तो वे बोले कि हमें अभी यह समझ में नहीं आया कि आवेदन-पत्र किसी परीक्षा के लिए है अथवा पद के लिए। मुझे आश्चर्य भी हुआ कि मुख्य-लिपिक को अभी यह भी मालूम नहीं कि संघ-लोक-सेवा-आयोग एक सेवा-आयोग है, न कि शैक्षणिक परीक्षा केंद्र। बाद में समझाने पर बोले, "अभी जल्दी भेज देंगे।" मैंने भी व्यंग्य से कहा, "जरा जल्दी भेजना, शायद तीन महीने बाद भी संघ-लोक-सेवा-आयोग आपकी रजिस्ट्री की प्रतीक्षा में होगा।" विभाग की ऐसी लापरवाही से मेरे-जैसे न जाने कितनों को परेशानी होती होगी।

—राम गोपाल, कार्यनिरीक्षक कार्यालय, प. रेलवे, भालिया मियाणा (गुजरात)

इस स्तंभ के अंतर्गत चपरासी से लेकर मंत्री तक के संस्मरणों का स्वागत है। संस्मरण व्यक्तिगत हों, पर १५० शब्दों से अधिक नहीं होने चाहिए —संपादक

● प्रो. रामनाथ सिंह

नैट की भूल-भुलैया में

पाकिस्तानी वायुसेना के सेवरजेट एवं स्टारफाइटर में तापखोजी (हीट सीकिंग) प्रक्षेपास्त्र (साइड-वाइंडर, ए. आई. एम.–९) से सुसज्जित थे। ये हवा से हवा में मार करनेवाले प्रक्षेपास्त्र के रूप में जाने जाते हैं। इन्हीं प्रक्षेपास्त्रों की प्राप्ति के बाद पाकिस्तान अहंकार से फूल उठा था।

अब सवाल उठता है कि यह तापखोजी प्रक्षेपास्त्र कार्य किस प्रकार करता है? आजकल किसी भी देश की वायुसेना में जेट-युद्धक विमान ही कार्य करते हैं, दूसरे विश्वयुद्धवाले पिस्टन इंजन-युक्त विमान नहीं। जेट विमान उड़ानें भरते समय अपनी पूंछ से गर्म-गर्म गैस की धार छोड़ता है। डॉगफाइट के दौरान ज्योंही दुश्मन का जेट विमान सामने आता है, तापखोजी प्रक्षेपास्त्र दाग दिया जाता है। प्रक्षेपास्त्र ताप की तलाश में दुश्मन के जेट विमान से निकलती हुई गर्म गैस का पीछा करता है। दायें-बायें ऊपर-नीचे जिधर-जिधर दुश्मन का विमान जाता है, प्रक्षेपास्त्र भी ताप को सूंघता हुआ, पीछे-पीछे चलता जाता है और अंत में टकराकर दुश्मन के विमान को ध्वस्त कर डालता है। केवल नैट जैसे [illegible] विमान ही अपने दांवपेंच एवं उड़ान [illegible] कलाबाजियों के गुण के कारण [illegible] बचकर निकल भागने की क्षमता रखते हैं।

पाकिस्तान को अमरीका से प्राप्त तापखोजी साइडवाइंडर प्रक्षेपास्त्र की लंबाई ९ फीट ३.५ इंच तथा बेलनाकार [illegible] का व्यास ५ इंच होता है। इसे अमरीका का फिलको-फोर्ड कारपोरेशन तथा [illegible] क्ट्रिक कंपनी साथ मिलकर बनाते हैं। जर्मनी की वोन्डेसीवर्क-परकिन-[illegible] कंपनी भी इसका उत्पादन करती है। अमरीकी साइडवाइंडर में २५ पौंड उच्च कोटि का विस्फोटक भरा रहता है जो फटने पर धमाके के साथ दुश्मन के [illegible] विमान के टुकड़े-टुकड़े कर डालता है। इसके पिछले भाग में व्यवस्थित [illegible] ईंधन जलकर इसके रॉकेट-मीटर को प्रणोदन की शक्ति प्रदान करता है। इसके पिछले भाग पर चार टेलफिन्स [illegible] होते हैं। देखने में यह बेलन के आकार का होता है तथा इसके मुंह पर ग्लास का गोलाकार ढक्कन लगा होता है, जिसके अंदर इन्फ्रारेड-निर्देशन-प्रणाली से युक्त यंत्र लगा होता है जो ताप का सुग्राही होता है और हमेशा ताप आने की दिशा की ओर प्रक्षेपास्त्र को निर्देशित करता है।

इसका वजन १५९ पौंड होता है। इसके मार करने की सीमा दो मील तक होती है और विमान से छूटने के बाद इसकी गति १६०० मील प्रति घंटा होती है। दो मील के दायरे में यदि इसे सही ढंग से दुश्मन के जेट विमान पर दाग दिया जाए तो फिर जेट विमान का इसके जानलेवा चक्कर से बच निकलना नामुमकिन-सा लगने लगता है। हवा से हवा में मार करने-वाले प्रक्षेपास्त्र से बचने का प्रचलित आसान तरीका यह है कि ज्योंही दुश्मन अपना प्रक्षेपास्त्र दागना चाहे, अपने जेट विमान से बहुत अधिक गैस की धूम्रयुक्त धार छोड़ दी जाए, जिससे कि दुश्मन के सामने अंधेरा छा जाए और जब तक वह नया निशाना बनाये, जेट भाग निकले।

अमरीका की वायुसेना, नौसेना तथा स्थल सेना के लिए ५०,००० से अधिक ए. आई. एम.–९ बी. किस्म के साइड-वाइंडर प्रक्षेपास्त्रों का उत्पादन हो चुका है, तथा पाकिस्तान के अतिरिक्त अन्य १५ देशों में इस प्रक्षेपास्त्र का इस्तेमाल हो रहा है। यूरोप के कई देशों में लाइसेंस के अधीन इसका उत्पादन भी हो रहा है। इससे अधिक उन्नत किस्म के तापखोजी प्रक्षेपास्त्र जिनकी मार करने की सीमा ज्यादा है तथा गति भी कुछ अधिक है, अमरीका में ए. आई. एम.-९ डी. तथा ए. आई. एम.-९ सी. के नाम से बनाये जा रहे हैं। ये प्रक्षेपास्त्र अमरीका के नये युद्धक एफ.-८ क्रूसेडर में सुसज्जित किये जाने के लिए तैयार किये गये हैं। इन नये प्रक्षेपास्त्रों का उपयोग जमीन से हवा में मार करनेवाले प्रक्षेपास्त्र के रूप में भी किया जा रहा है। हवा से हवा में मार करनेवाले दो प्रक्षेपास्त्र साधारणतया किसी जेट विमान में फिट किये जाते हैं, जिनका उपयोग आत्मरक्षा के लिए किया जाता है। उपर्युक्त दो उच्चकोटि के प्रक्षेपास्त्र जिनका उपयोग अमरीकी एफ.-८ क्रूसेडर को सुसज्जित करने के लिए किया जाता है, पाकिस्तान को नहीं दिये गये हैं।
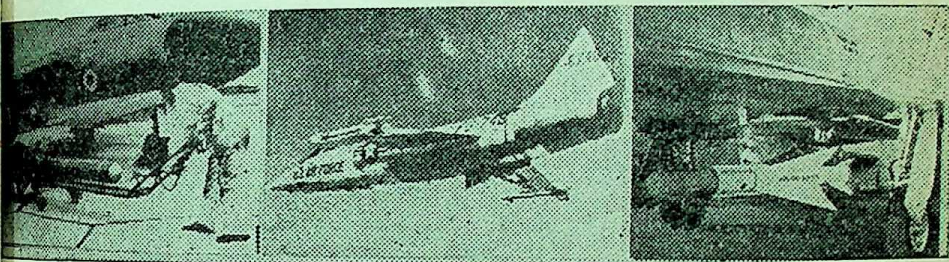
बायें से: ब्रिटेन द्वारा बना तापखोजी प्रक्षेपास्त्र रेड-टॉप, अमरीका का तापखोजी साइड वाइंडर एवं फ्रांस का प्रक्षेपास्त्र आर. ५३०

अन्य देशों के प्रक्षेपास्त्र

इसी प्रकार के तापखोजी प्रक्षेपास्त्र

ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस, सोवियत रूस, स्वीडेन, आस्ट्रेलिया इत्यादि देशों द्वारा बनाये जा रहे हैं। उन सबकी बनावट में थोड़ा-बहुत अंतर हो सकता है, परंतु कार्य करने के सिद्धांत में अंतर नहीं होता। ग्रेट ब्रिटेन द्वारा बनाया हुआ हवा से हवा में मार करनेवाला तापखोजी प्रक्षेपास्त्र रेड-टॉप के नाम से जाना जाता है। इसके मार करने की सीमा ७ मील तथा गति २००० मील प्रति घंटा है। इस तरह यह प्रक्षेपास्त्र अमरीकी साइडवाइंडर से अधिक शक्तिशाली है। इसकी इन्फ्रारेड निर्देशन प्रणाली इतनी अधिक सुग्राहिता रखती है कि इसे किसी भी उचित दिशा से छोड़ा जा सकता है। छूटते ही यह अपने आप को ताप आने की दिशा में समंजित कर लेता है, यह इसकी सबसे बड़ी विशेषता है। इसकी लंबाई ११ फीट पौने ६ इंच, विंग स्पैन २ फीट सवा ग्यारह इंच तथा व्यास पौने नौ इंच का होता है। ब्रिटेन की शाही वायु-सेना के लाइटेनिंग सुपर सोनिक युद्धक विमान तथा शाही नौसेना के 'सी विक्सेन एफ-एम के-२' में ये सुसज्जित रहते हैं।

सोवियत रूस द्वारा निर्मित सोयूज बमवर्षक विमान जैसे एस.यू.-७, एस.यू.-९, एस. यू.-११ इत्यादि में 'ऐनाब' नामक तापखोजी प्रक्षेपास्त्र, जो हवा से हवा में मार करनेवाले होते हैं, लगे रहते हैं। भारतीय वायुसेना के एस. यू.-७ बमवर्षक विमान १९७१ की भारत-पाक लड़ाई में जौहर दिखा चुके हैं, ११०० मील प्रति-घंटा की गति से उड़नेवाले सुपरसोनिक एस. यू.-७ से छोड़ा गया प्रक्षेपास्त्र 'एनाब' अपनी करारी मार के लिए प्रसिद्ध है। इन्फ्रारेड निर्देशन और राडार होमिंग युक्ति से संपन्न यह प्रक्षेपास्त्र विश्व के किसी भी तापखोजी प्रक्षेपास्त्र से कम नहीं है। सोवियत रूस द्वारा ही विकसित 'एटॉल' नामक तापखोजी प्रक्षेपास्त्र, जिससे मिग-२१ युद्धक विमान सुसज्जित रहता है, अमरीकी साइडवाइंडर से पूरी तरह मिलता-जुलता है। मिग-२१ की उन्नत किस्म मिग-२१-एम, जिसकी मार करने की क्षमता फ्रांस के मिराज, अमरीकी स्टारफाइटर के समान है, ऐसा अनुमान लगाया गया है कि 'एटॉल' का ही इस्तेमाल करता है। कारण प्रत्यक्ष है कि सभी प्रकार के प्रक्षेपास्त्रों में, हवा से हवा में मार करनेवाला तापखोजी प्रक्षेपास्त्र अत्यधिक सफल पाया गया है।

विश्व के महत्त्वपूर्ण तापखोजी प्रक्षेपास्त्रों में फ्रांस का बना आर-५३० हवा से हवा में मार करनेवाला प्रक्षेपास्त्र काफी सक्षम माना जाता है। इस प्रक्षेपास्त्र के दोनों रूप, सेमी-ऐक्टिव राडार गाइडेंस तथा इन्फ्रारेड होमिंग, काफी प्रचलित हैं। इसरायल, दक्षिणी अफ्रीका, आस्ट्रेलिया की वायु-सेनाओं के मिराज विमानों में ये प्रक्षेपास्त्र सुसज्जित हैं। दूसरे अन्य युद्धक विमान जैसे वाउटर्स एफ-८ ई (एफ.एन.) क्रुसेडर तथा पाकिस्तान एवं अन्य देशों के मिराज युद्धक विमानों में

भी ये ही प्रक्षेपास्त्र लगे होते हैं। इसके मार करने की सीमा ११ मील तथा गति १८०० मील प्रति घंटा है। इसकी लंबाई १० फीट, १.२५ इंच तथा व्यास १०.२५ इंच है। इसमें ६० पौंड वजन का उच्च-कोटि का विस्फोटक भरा होता है। इंगलैंड के बने प्रक्षेपास्त्र रेडटॉप की तरह ही इसे भी किसी उचित दिशा में छोड़ा जा सकता है, छूटते ही यह ताप आने की दिशा में अपने आपको समंजित कर लेता है। पाकिस्तानी वायुसेना के मिराज में भी यही प्रक्षेपास्त्र लगा होता है।

नैट की भूल-भुलैया में

जिस विमान का वजन जितना ही ज्यादा होगा, उस पर मोड़ लेते समय उतना ही अधिक 'धक्का' लगेगा। एक ही वृत्त पर दो विमान, यदि एक ही समान गति से मोड़ लें तो जिस विमान का वजन दूना होगा उस पर दूना 'धक्का' लगेगा। मिग-२१, स्टारफाइटर, मिराज एवं सैबरजेट-जैसे भारी विमान शार्प टर्निंग पर उच्च गति नहीं बनाये रख सकते, क्योंकि ऐसा करने पर संतुलन बिगड़ जाएगा। दूसरी ओर नैट विमान का वजन इन विमानों की तुलना में आधा होता है, अतः यह तेज गति से शार्प टर्निंग ले सकता है। इस प्रकार तापखोजी प्रक्षेपास्त्र द्वारा नैट का पीछा करना और नैट विमान का दांव पेंच भरा गोता लगाकर बच निकलना अत्यंत रोचक और रोमांचक होता है। ज्यों ही नैट विमान का हवाबाज यह देखता
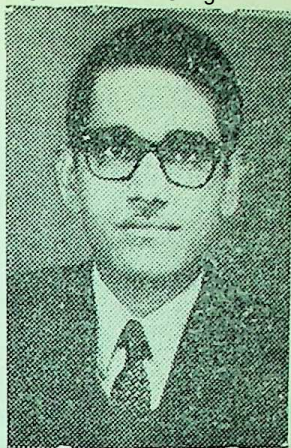
लेखक

है कि दुश्मन का प्रक्षेपास्त्र पीछा कर रहा है, वह ऊपर या नीचे, दायें या बायें शार्प टर्निंग पर बहुत तेजी से मोड़ ले लेता है, जबकि तापखोजी प्रक्षेपास्त्र एक खास कोण से ज्यादा नहीं मुड़ सकता और अति तीव्र गति के कारण थोड़ा आगे बढ़ जाता है। चूंकि तब तक नैट विमान ने अपनी दिशा बदल दी है और प्रक्षेपास्त्र दूसरी दिशा में आगे बढ़ चुका है, ताप न मिलने के कारण, तापखोजी प्रक्षेपास्त्र लक्ष्यविहीन हो जाता है तथा अंत में कहीं जा गिरता है। पाकिस्तानी हवाबाज जब अपने अमोघ अस्त्र का वार खाली जाते देखते थे तो स्वभावतः घबरा उठते थे, तक तब हमारा नैट पीछे से आकर हमला बोल देता था। ऐसा है अपना नैट और ऐसे हैं हमारे हवाबाज !

—सहायक प्रोफेसर भौतिकी,
एम. आई. टी., मुजफ्फरपुर

● रघुनाथ सिंह

श्मशान में एक नये राजा का जन्म

श्रीनगर की श्मशान भूमि में संधिमति शूली पर लटका था, मर चुका था। संधिमति का गुरु ईशान था, जो जानता था कि संधिमति को निरपराध शूली दी गयी थी। वह श्मशान पहुंचा।

ईशान ने शव को शूली से उतारा और शिष्य की दाह-क्रिया करना चाहा। उसने शव के ललाट पर स्नेह से हाथ फेरा। अचानक उसकी दृष्टि ललाटरेखा पर पड़ी, वह झुक गया। रेखा पढ़ी, लिखा था—'जन्म भर दरिद्र, दस वर्षों तक बंदी, शूली पर मरण और फिर राज्य-प्राप्ति।'

तीन बातें सत्य घटी थीं। चौथी भी सत्य होनी चाहिए। इसलिए ईशान ने शवदाह नहीं किया। वह देखना चाहता था कि ललाटरेखा सत्य उतरती है या नहीं? उसने शव सुरक्षित रख दिया और श्मशान में ही ठहर गया। रात के समय उसने कोलाहल सुना। धूप की गंध आने लगी, घंटा और डमरू बजने लगे। वह श्मशान के मंदिर में छिप गया। श्मशान प्रकाशमय हो गया। किंतु प्रकाश तेज नहीं, वरन भोर की तरह था। योगिनियों का दल आया। वे संधिमति के शव को घेरकर खड़ी हो गयीं। ईशान को भय हुआ कि योगिनियां कहीं शव को उठा न ले जाएं? उसने कृपाण खींच लिया, वृक्ष की आड़ में खड़ा हो गया। वह जानना चाहता था कि योगिनियां क्या करती हैं?

योगिनियों ने शव में प्राण फूंका, संधिमति जी गया।

लोगों ने संधिमति के जी उठने का समाचार सुना तो श्मशान जन-समूह से भर गया। पुरवासी बोले, "क्यों न हम लोग इसे कश्मीर का राजा चुन लें?"

लेकिन संधिमति चुप रहा। उसे राज्य स्वीकार न करता देख, धर्म-गुरु ने ईशान से निवेदन किया, "संधिमति आपका शिष्य है। बिना आप की अनुमति के कैसे राज्य स्वीकार करेगा?"

"गुरुवर! संधिमति को राज्य लेने के लिए कहिए," मंत्रि-परिषद ने ईशान से निवेदन किया।

"मैं राज-पाट के झंझट में फंसकर क्या करूंगा? अपना शेष जीवन शिव-

अर्चना में बिताना चाहता हूं।"

"शिवभक्ति राजपाट में बाधक नहीं होगी। तुम कश्मीर के मंत्री रह चुके हो। तुम्हें राज्यतंत्र का ज्ञान है। जब इच्छा हो, राज्य त्याग देना।" ईशान ने स्नेह से कहा।

जय-जयकार की गगनभेदी ध्वनि से श्मशान गूंज उठा। कश्मीरियों ने संधिमति को राजा घोषित किया। श्मशान भूमि में ही उसका राज्याभिषेक हो गया।

श्मशान-भूमि में जहां संधिमति को शूली लगी थी, वहां उसने संधीश्वर शिव की स्थापना की। राजा होने पर भी उसके पूजा-पाठ और विराग में कमी नहीं हुई। कुटिल राजपुरुषों, जनता के पैसों पर सुख लूटनेवालों, मंत्रियों को इस प्रकार के राजा अच्छे नहीं लगते। जनता प्रसन्न थी, मंत्री नाराज थे। उनका घर नहीं भर पाता था। इसलिए राज्य में षड्यंत्र होने लगे।

कश्मीर के राजा युधिष्ठिर के वंश में एक पुत्र था। गांधार-राज ने युधिष्ठिर के पुत्र गोपादित्य को कश्मीर-विजय की कामना से राज्याश्रय दिया था। गोपादित्य को गांधार राज्य में ही मेघवाहन नामक पुत्र हुआ।

प्राग ज्योतिषपुर में स्वयंवर था। मेघवाहन गांधार से असम, पहुंचा। राजकुमारी अमृतप्रभा ने मेघवाहन को स्वयंवर में पति चुन लिया। महाराज नरक से प्राप्त वरुण छत्र और धर्मपत्नी अमृतप्रभा के साथ मेघवाहन गांधार लौट आया। कश्मीर की मंत्रि-परिषद गांधार पहुंची। उसने मेघवाहन को कश्मीर के सिंहासन पर बैठने के लिए निमंत्रित किया।

यह बात संधिमति को मालूम हुई। वह प्रसन्न हुआ। कश्मीर को राजा मिल गया। संधिमति ने सिंहासन पर रखे

अर्चालिंग को प्रणाम किया। उसने राज्य-त्याग को अपने जीवन का सबसे उत्तम काल समझा। राजप्रसाद से अर्चालिंग लिये हुए वह अकेला ही निकला। उसने अपने मन की बात किसी से नहीं कही।

—औरंगाबाद, वाराणसी–१

हमारी आर्थिक विवशताओं का इजहार

● बी. एल. जोशी

वर्ष १९७४-७५ के पहले पांच महीनों में ही गत वर्ष की इसी अवधि की तुलना में हमारा निर्यात ४८.५ प्रतिशत बढ़कर ८५२ करोड़ रुपयों से १,२६५ करोड़ रुपयों का हो गया। पांचवीं योजना के पहले वर्ष में ही हमारा निर्यात योजना के लक्ष्य २,८९० करोड़ से भी अधिक हो जाएगा। सरकार द्वारा प्रस्तुत अस्थायी आंकड़ों के अनुसार १९७४-७५ में निर्यात से ३,२०० करोड़ रुपयों की आय हुई।

दूसरी योजना के अंतिम वर्ष १९६०-६१ में हम ६४२.३९ करोड़ रुपयों का माल विदेशों को भेजते थे। तीसरी योजना के अंतिम वर्ष १९६५-६६ तक ८०५.६४ करोड़ रुपयों का माल निर्यात होने लगा। उसके बाद भी निर्यात के मोर्चे पर अभूतपूर्व सफलताएं हासिल कर योजना के निर्धारित लक्ष्यों को लांघने लगे। १९७०-७१ में १५३५.२ करोड़ रुपयों का, १९७२-७३ में १९६०.९ करोड़ रुपयों का निर्यात कर 'निर्यात की वृद्धि' को चौथी पंचवर्षीय योजना की एकमात्र उपलब्धि घोषित कर दिया। यही नहीं, अप्रैल १९७२ से फरवरी १९७३ की अवधि में १७०३.२९ करोड़ रुपयों का माल विदेशों को निर्यात कर वर्षों से प्रतिकूल व्यापार-संतुलन को १२० करोड़ रुपयों से अपने अनुकूल कर लिया।

निर्यात में वृद्धि के ये आंकड़े काफी चौंकानेवाले हैं, विशेष रूप से ऐसी स्थिति में जबकि—

(१) देश में आर्थिक विकास की दर विगत वर्षों से निरंतर गिरती रही है।

(२) कृषि-क्षेत्र के उत्पादन में निर्धारित लक्ष्य ५.७ प्रतिशत की वृद्धि की तुलना में मात्र ३.७ प्रतिशत की वृद्धि हो पायी है।

(३) निजी उद्योगों में कार्यरत लोगों की संख्या, जो मार्च १९६६ में ६८.१ लाख थी, मार्च १९६७ में ६६.३ लाख तथा मार्च १९६८ में मात्र ६२.२ लाख ही रह गयी। स्वाभाविक है कि औद्योगिक उत्पादन भी निर्धारित लक्ष्यों की तुलना में काफी कम रहा।

(४) देश में मूल्य-वृद्धि तथा मुद्रा-स्फीति के दबाव से मुद्रा का मूल्य निरंतर गिर रहा है तथा आज रुपये का मूल्य मात्र २५.३ पैसे ही रह गया है।

(५) देश में उपभोक्ता-वस्तुओं का व्यापक अभाव है। चोरबाजारी, तस्करी, काला-बाजारी और मुनाफाखोरी का

आतंक अर्थव्यवस्था में निरंतर असंग-
तियां पैदा कर रहा है।

निर्यात में वृद्धि की उत्तरोत्तर बढ़ती रेखाएं निश्चित ही सरकार की सक्रियता तथा सजगता का स्वाभाविक परिणाम हैं। किंतु प्रश्न यह है कि आखिर निर्यात-वृद्धि के प्रति युद्धस्तरीय प्रयत्नों की आवश्यकता क्यों है? क्यों हमें आंतरिक बाजारों में उपभोक्ता वस्तुओं का अभाव सहन करके भी ६०० करोड़ रुपयों की अतिरिक्त सामग्री विदेशों को प्रतिवर्ष भेजते रहने की क्षमता पैदा करना अनिवार्य है? क्यों हमें तिलहन, तेलबीज, चीनी, सीमेंट, कपड़ा, चाय, काफी तथा सामुद्रिक खाद्य-जैसे अनिवार्य उपभोक्ता पदार्थों के निर्यात को और अधिक बढ़ाना पड़ रहा है। क्यों अंतर्राष्ट्रीय बाजार में हमारी मुद्रा सस्ती हो रही है?

ये कुछ बिंदु हैं जिन पर विचार करने के लिए हमें वर्तमान परिस्थितियों में उत्पन्न निम्नांकित समस्याओं का विश्लेषण करना होगा।

विदेशी ऋणों की अदायगी

विगत २७ वर्षों में हमने देश के आर्थिक विकास के नाम पर विदेशों से अंधाधुंध ऋण लिये हैं। विदेशी ऋणों की किस्त व ब्याज के भुगतान के लिए आज हमें भारी मात्रा में विदेशी मुद्रा की आवश्यकता है। एक अनुमान के अनुसार आज हमारी कुल निर्यात-प्राप्तियों का लगभग २५ प्रतिशत ऋणों की अदायगी के नाम पर
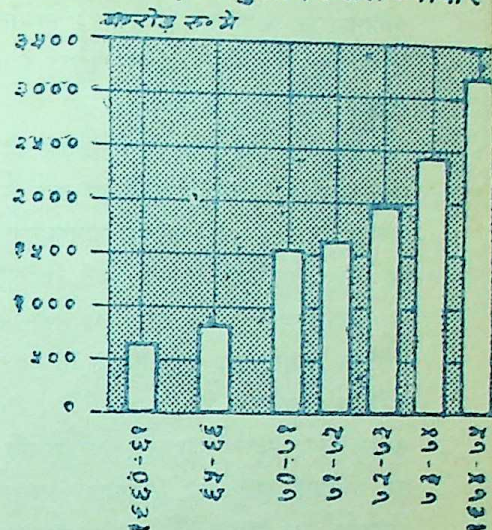
खर्च करना पड़ रहा है।

विदेशी कर्ज तथा आंतरिक कर्ज के रूप में हमारा ऋण-भार बढ़ता ही रहा है। देश में प्रति-व्यक्ति सार्वजनिक ऋण-भार ४५५ रुपया हो गया है। हमारा सार्वजनिक ऋण आज २५,००० करोड़ रुपया है। इसमें ७,००० करोड़ रुपया विदेशी ऋण है, शेष आंतरिक ऋण। पहली योजना के अंतिम वर्ष में जहां ऋण-सेवा के लिए मात्र २३.८ करोड़ रुपया, दूसरी योजना के अंतिम वर्ष में ११९.४ करोड़ रुपया तथा तीसरी योजना के अंतिम वर्ष में ५२४.६ करोड़ रुपया खर्च हो रहा था, वहां १९७३-७४ में ८९७ करोड़ रुपया

तथा १९७४-७५ में ९७५ करोड़ रुपया व्यय करना पड़ रहा है तथा इसका अधिकांश भाग हमें विदेशी मुद्रा के रूप में चुकाना पड़ रहा है, जो हमारी निर्यात उपलब्धियों का २५.६ प्र. श. होता है।

खनिज तेल के ऊंचे दाम

खनिज तेल के मूल्य संसार में विगत दो-तीन वर्षों में अत्यधिक ऊंचे हो गये हैं, जबकि आज भी हमें अपनी आवश्यकता का ६५.४ प्रतिशत खनिज तेल विदेशों से आयात करना पड़ रहा है। खनिज तेल पर आयात-व्यय १९६९-७० के ११८ करोड़ की तुलना में १९७४-७५ में १,१२५ करोड़ तक पहुंच रहा है। परिणामत: हमें विदेशी मुद्रा का अत्यधिक अभाव भुगतना पड़ रहा है। हमारी निर्यात-उपलब्धियों का ४१.६ प्र. श. से भी अधिक आज हमें मात्र खनिज तेल के आयात पर ही व्यय करना पड़ रहा है।

आयातित वस्तुओं के भावों में वृद्धि

अंतर्राष्ट्रीय बाजार में आयातित वस्तुओं के मूल्यों में अत्यधिक बढ़ोतरी हो जाने से आज हमें खाद, तेल और खाद्यान्न-जैसी मात्र तीन अनिवार्यताओं के आयात के लिए अपनी निर्यात-आय की ८० प्रतिशत विदेशी मुद्रा खर्च करनी पड़ रही है।

आयात के मूल्यों में विस्फोटक वृद्धि से निर्यात की लगातार बढ़ोतरी करने पर भी हमारा व्यापारघाटे का व्यापार बन गया है।

व्यापार में निरंतर घाटा

विदेशी व्यापार में घाटा विकासशील देशों में विकास हेतु अनिवार्य आयात की अधिकता का स्वाभाविक परिणाम होता है, किंतु २७ वर्षों के बाद भी निर्यात की तुलना में आयात की अधिकता एवं व्यापार में निरंतर घाटे की स्थितियां निश्चित ही चिंता का विषय हैं। १९५०-५१ में हमारा व्यापार-घाटा मात्र ४९.५७ करोड़ रुपयों का था, जो १९६०-६१ में एकदम ४७९-४७ करोड़ रुपयों तक तथा १९६५-६६ में ६२०.८९ करोड़ रुपयों तक पहुंच गया। भुगतान-संतुलन निरंतर प्रतिकूल होने से हमें ६ जून, १९६६ को रुपये का अवमूल्यन करना पड़ा, किंतु अवमूल्यन के स्वाभाविक लाभ के रूप में निर्यात की वृद्धि के बाद भी व्यापार में घाटे की स्थितियों से हम अपनी अर्थ-व्यवस्था को आज तक नहीं उबार पाये। अवमूल्यन के बाद १९६६-६७ में व्यापार में ९२१.८० करोड़ रुपये का, १९६७-६८ में ८०८.९२ करोड़ रुपये का, १९६८-६९ में ५५०.७३ करोड़ रुपये का तथा १९६९-७० में १६८.८२ करोड़ रुपयों का घाटा हुआ।

चौथी पंचवर्षीय योजना में आयात और निर्यात के बीच की खाई निरंतर चौड़ी होती रही है। चौथी योजना में १९७०-७१ में हमारे आयात-निर्यात के मध्य ९९.०४ करोड़ रु. का और १९७१-७२ में २०५.४१ करोड़ रु. का अंतर था। यह अंतर हमारे निर्यात-वृद्धि के अगणित, अथक प्रयत्नों के बावजूद भी निरंतर बढ़ता रहा है।

१९७३-७४ में जहां निर्यातों को २५ प्रतिशत बढ़ाने के प्रयत्न किये गये वहां आयातों का मूल्य ४४ प्रतिशत बढ़ गया। १९७४-७५ में फिर निर्यात-वृद्धि का युद्धस्तरीय अभियान चलाया गया, निर्यात में ४० प्रतिशत वृद्धि का नया कीर्तिमान स्थापित हुआ, किंतु आयातित वस्तुओं के मूल्यों की वृद्धि से आयात-व्यय विगत वर्ष की तुलना में ५३ प्रतिशत अधिक हो गया।

हमारी अर्थ-व्यवस्था के लिए पेट काट कर भी निर्यात-व्यापार में उत्तरोत्तर वृद्धि से सांप-छछूंदर-सी गति पैदा हो गयी है। इस मजबूरी की स्थिति में घाटा उठा करके भी निर्यात बढ़ाते रहने के सिवा हमारे लिए कोई चारा भी नहीं रह गया है। हम अब निर्यातों में उत्तरोत्तर वृद्धि करके ही अपना अस्तित्व संसार में टिकाये रख सकते हैं तथा रुपये की गिरती साख को संबल प्रदान कर सकते हैं।

निर्यात-वृद्धि के प्रयत्न

आवश्यक उपभोक्ता पदार्थों, कच्चे माल तथा मशीनों के आयात के लिए हमें आज बड़े पैमाने पर विदेशी मुद्रा जुटाने की आवश्यकता है। विदेशी मुद्रा का भारी मात्रा में उपार्जन करने के लिए हम विदेशी व्यापार की परंपरागत प्रक्रिया से परे हटकर निर्यात-सामग्री के प्रकार और मात्रा में भारी परिवर्तन करने को विवश हैं। निर्यात की वृद्धि को प्रोत्साहित करने के लिए कच्चे माल के आयात तथा परिवहन की सुविधाओं को बढ़ा रहे हैं। नये बाजारों की खोज और बाजार-विस्तार के लिए प्रयत्नशील हैं। निर्यात-जोखिम के बीमे तथा निर्यात-व्यापार हेतु ऋण-सुविधाओं का बड़े पैमाने पर विस्तार किया जा रहा है। परिणामतः हमारे निर्यात में उत्तरोत्तर वृद्धि नजर आने लगी है।
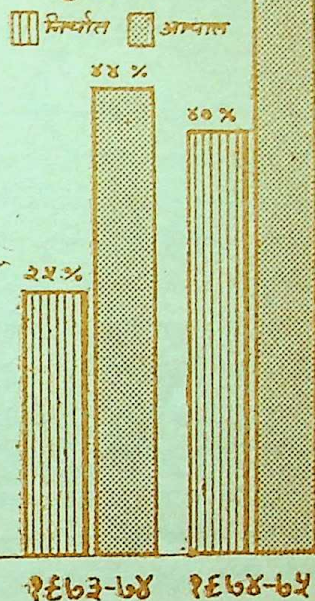
आंसुओं से भी महंगा निर्यात

निर्यात की यह वृद्धि देश की कार्य-शील जनसंख्या के अत्यधिक त्याग का

परिणाम है। आज हम वास्तव में पेट काट-कर भी रोटी का निर्यात कर देने की विवशता भुगत रहे हैं। निर्यात बढ़ाने के चक्कर में उचित-अनुचित का भान भूलकर आंसुओं का निर्यात करने को मजबूर हो रहे हैं।

आर्थिक विकास के प्रभाव से उत्पन्न असंगतियों से व्यापार-संतुलन को बचाये रखने तथा अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्द्धा में माल को टिकाये रखने के प्रयत्नों की बहक में हमारी निर्यात संबंधी नीतियां बुरी तरह भटक गयी हैं। हम निर्यात के आंकड़े बढ़ाने के लिए विचित्र भूलें कर रहे हैं।

सामान्यतया आज हमें २,८०० करोड़ रुपयों की विदेशी मुद्रा की प्राप्ति के लिए १,५०० करोड़ रुपयों की नकद आर्थिक सहायता देनी पड़ रही है। इस प्रकार हमें एक रुपये की विदेशी मुद्रा-प्राप्ति के लिए १.५३ पैसा व्यय करना पड़ रहा है—इस प्रकार निर्यात की यह वृद्धि हमारे आंसुओं के मोल पर तथा खून पसीने के तौल पर की जा रही है, जिसे किसी भी कीमत पर युक्तिसंगत नहीं कहा जा सकता।

युद्धस्तरीय प्रयत्न आवश्यक

इतना होने पर भी इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि निर्यात बढ़ाकर ही आत्मनिर्भरता एवं आर्थिक विकास के मार्ग पर बढ़ा जा सकता है। निर्यात बढ़ाकर ही हम आज विश्व में अपना सम्मानजनक स्थान बनाये रख सकेंगे, अपने अस्तित्व को टिकाये रख सकेंगे।

निर्यात-व्यापार में वृद्धि सूती कपड़े, तंबाकू, कच्चा लोहा, सामुद्रिक खाद्य, इंजीनियरिंग सामान, तिलहन आदि के निर्यात में अधिक हुई है। पांचवीं योजना में चौथी योजना के कुल निर्यात की राशि को ८,५१७ करोड़ रुपये से बढ़ाकर १९७५ से १९७९ तक की अवधि में १२,५८० करोड़ रुपया करने का प्रावधान है। किंतु अपरंपरागत वस्तुओं के निर्यात में तमाम वृद्धि करने के बाद भी हम ६०० करोड़ रुपयों का निर्यात और अधिक बढ़ाने में असमर्थ रहेंगे।

अस्तु, अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए तथा रुपये के मूल्य में होनेवाली गिरावट को रोकने के लिए निर्यात-वृद्धि के निम्नांकित उपायों पर त्वरित ध्यान दिया जाना चाहिए—

(१) अपरंपरागत वस्तुओं के निर्यात में वृद्धि के अधिक प्रयास किये जाने चाहिए। निर्धारित लक्ष्यों में कम-से-कम प्रत्येक वस्तु के निर्यात में १० प्रतिशत वृद्धि के और अधिक प्रयास अपेक्षित हैं।

(२) परंपरागत वस्तुओं के निर्यात में योजनाकाल में ५ प्रतिशत से भी कम वृद्धि की आशा की गयी है जो लक्ष्य-सिद्धि के मार्ग में रोड़ा है। हमें परंपरागत वस्तुओं के निर्यात में और अधिक बढ़ोतरी करनी चाहिए।

(३) हस्तकला उद्योगों को महत्त्व देकर ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार की दृष्टि से विस्तार किया जाना चाहिए तथा इन वस्तुओं के निर्यात को और अधिक बढ़ाया जाना चाहिए।

(४) खाद्यान्न तथा पेट्रोल के आयात को कम करने के लिए अधिक प्रयत्न किया जाना चाहिए, जिससे विदेशी मुद्रा की बचत हो तथा व्यापार-घाटा कम हो सके।

(५) निर्यात के लिए अधिकाधिक देशों से समझौते किये जाएं, अधिक बाजार खोजे जाएं तथा बाजार-विस्तार के लिए युक्तिसंगत उपाय काम में लिये जाएं, जिससे निर्यात में वृद्धि हो सके।

(६) देश में औद्योगिक व कृषि-उत्पादन की वृद्धि के लिए युद्धस्तरीय प्रयास किये जाने चाहिए, जिससे निर्यात का प्रभाव आंतरिक बाजार में मूल्य-स्तर पर नगण्य हो सके।

(७) निर्यात संबंधी छूट युक्तिसंगत होनी चाहिए, साख संबंधी पर्याप्त सुविधा एवं जोखिम के बीमे की पर्याप्त व्यवस्था अपेक्षित है।

(८) निर्मित माल का निर्यात अधिक बढ़ाया जाए तथा कच्चे माल का निर्यात हतोत्साहित किया जाए। देश में निर्यात-सामग्री का निर्माण करनेवाले कारखानों को अधिक सुविधाएं प्रदान की जाएं, जिससे उत्पादन में वृद्धि हो सके तथा हम अधिक मात्रा में निर्यात कर सकें।

निर्यात की वृद्धि की वहक में हमें राष्ट्रीय हितों की रक्षा करते हुए अधिकाधिक निर्यात बढ़ाने के लिए एशियाई साझा मंडी के निर्माण की दिशा में ठोस प्रयत्न करना चाहिए। जिन वस्तुओं पर हमारा आंशिक या पूर्ण एकाधिकार है उनके मूल्यों का राष्ट्रीय हितों में पुन-र्निर्धारण होना चाहिए, तभी हम विश्व में एक सशक्त, संपन्न तथा समर्थ राष्ट्र की तरह सम्मानित बने रह सकते हैं।

—उच्चतर माध्यमिक विद्यालय,
वल्लभनगर, जिला उदयपुर (राजस्थान)

जिंदगी

मैंने जब खाने की इच्छा प्रकट की
मुझे खाना नहीं मिल सका
और
मैं पीने लगा
जब मैंने पीना शुरू किया
खाना स्वयं ही मेरे सामने आ गया
तब उसकी आवश्यकता नहीं थी
क्योंकि
पीते-पीते जिंदगी मुझे पी गयी थी।

—निशा सिंह
१४/१०, प्रोबीन रोड, दिल्ली—७

गोष्ठी

मनमोहन ठाकुर, सीतामढ़ी : विविध भारती स्टेशन से बजाये जानेवाले गाने उसी समय अन्य स्टशनों से भी कैसे सुनायी दे जाते हैं?

'विविध भारती' आकाशवाणी का एक कार्यक्रम है, किसी रेडियो स्टेशन का नाम नहीं। यदि आपका आशय यह है कि एक ही कार्यक्रम अनेक केंद्रों से एकसाथ कैसे सुनायी देता है, तो इसके दो तरीके हैं—एक तो यह कि बंबई में (क्योंकि 'विविध भारती' के कार्यक्रम प्रायः वहीं तैयार होते हैं) तैयार किये गये कार्यक्रम की कई टेप-प्रतिलिपियां विभिन्न केंद्रों को भेज दी जाएं, जहां से उन्हें एक ही समय प्रसारित किया जाए, और दूसरा यह कि किसी प्रमुख केंद्र से प्रसारित किये जा रहे कार्यक्रम को अन्य केंद्रों से 'रिले' करें।

शकुन अलीगढ़ : 'हेरेसी' (heresy) और 'हेरेटिक' (heretic) शब्दों के अर्थ बतायें।

'हेरेसी' का मूल अर्थ था वह मत या संप्रदाय, जिसके विचार दूसरों से भिन्न हों। कालांतर में इसका अर्थ परंपरागत धर्म के विरुद्ध बातों में विश्वास करना हो गया। इस प्रकार 'हेरेसी' का अर्थ 'विधर्म' और 'हेरेटिक' का 'विधर्मी' हो गया।

प्रवीण कुमार 'मासूम', बरेली : ज्ञानार्जन की सर्वोचित प्रक्रिया क्या है?

चीजों के बारे में सही समझ हासिल करना ही ज्ञानार्जन है, लेकिन समझ तभी सही मानी जाएगी जब उसे यथार्थ की कसौटी पर परखा और प्रमाणित किया जा सके। मनुष्य की सामाजिक गतिविधि के दौरान और उसी से उत्पन्न अनुभव, संवेदन, बोधशक्ति, कल्पना, विचार आदि उसकी ज्ञानार्जन-प्रक्रिया के अनिवार्य अंग हैं, किंतु इनसे प्राप्त ज्ञान की परीक्षा के लिए अध्ययन, चिंतन, मनन, विचार-विनिमय और बहस के द्वारा उसकी निरंतर आलोचना की जानी चाहिए। ज्ञान कभी भी पूर्ण और अंतिम नहीं हो सकता, लेकिन उसकी वृद्धि और उसका विस्तार अवश्य हो सकता है। इसी प्रकार कोई व्यक्ति पूर्ण ज्ञानी नहीं हो सकता, किंतु वह अब तक के समस्त उपलब्ध ज्ञान का उपयोग अवश्य कर सकता है। उदाहरण के लिए टेलीफोन डायरेक्टरी में छपे हजारों नंबर कोई याद नहीं कर सकता, लेकिन जिसे डायरेक्टरी देखना और टेलीफोन करना आता हो, वह उसमें दिये गये किसी भी नंबर का उपयोग कर सकता है। ज्ञान-

र्जन के लिए पहली शर्त है कि हममें जिज्ञासा हो, अपनी जिज्ञासा को हम ठीक-ठीक जानें, और उसे एक सही सवाल के रूप में लेकर जीवन की वास्तविकता और ग्रंथों एवं ज्ञाताओं के पास जाएं।

शिवकृष्ण शर्मा, अजमेर : 'याख्त' और 'याख्तिग' क्या है ? इस बारे में बतायें।

'याख्त' पानी का एक हलका जहाज होता है, जो प्रायः आमोद-प्रमोद और सागर-दौड़ के काम आता है। 'याख्तिग' (याख्त द्वारा सागर-दौड़ प्रतियोगिता) का प्रचलन १८वीं शताब्दी में हुआ। पहला 'याख्तिग क्लब' १७२० के आसपास इंगलैंड में कार्क हार्बर क्लब के नाम से स्थापित किया गया था। सबसे प्रसिद्ध अंतर्राष्ट्रीय याख्त-ट्राफी अमरीकी कप है।

कु. ज्योति लूथरा, चंडीगढ़ : किसी चीज की अंतर्वस्तु और उसके रूप में क्या कोई अंतर्विरोध संभव है ? यदि हां, तो उसे कैसे दूर किया जा सकता है ?

अंतर्वस्तु किसी चीज को संघटित करने वाली समस्त प्रक्रियाओं का कुल योग है और रूप उसकी बाह्‌य अभिव्यक्ति। उदाहरण के लिए मानव-शरीर में सभी शारीरिक प्रक्रियाएं अंतर्निहित हैं, जैसे पाचन-प्रक्रिया, श्वास-प्रश्वास, रक्त-संचार, मस्तिष्क का विकास और उसके द्वारा सारे शरीर का संचालन आदि, जबकि बाह्य रूप शरीर के बाहरी अंगों, ऊतकों, हड्डियों, मांस, त्वचा आदि से मिलकर बनता है। समाज का उदाहरण लें तो समाज में मौजूद उत्पादन की प्रक्रियाओं और मनुष्यों के पारस्परिक संबंधों को अंतर्वस्तु कहा जा सकता है और शासन-व्यवस्था को समाज का रूप। अंतर्वस्तु और रूप दोनों का अस्तित्व एक-दूसरे पर निर्भर है, अर्थात एक के बिना दूसरा हो ही नहीं सकता। फिर भी इन दोनों में अंतर्विरोध संभव है और वह इसलिए होता है कि अंतर्वस्तु प्रायः तेजी से बदलती रहती है, जबकि रूप अपेक्षाकृत काफी देर से बदलता है। इस अंतर्विरोध को तभी दूर किया जा सकता है जब अंतर्वस्तु के अनुसार रूप भी बदलता चले या पुराने रूप को बदलकर उसे नया रूप दे दिया जाए।

"पुराने जमाने में इसे किसी आसन्न संकट का लक्षण समझा जाता था।"

(पंच से साभार)
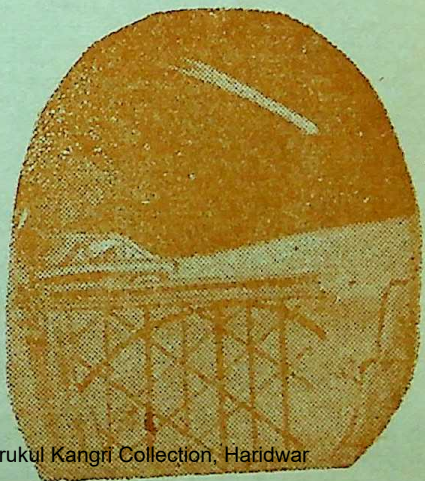
वचन-वीथी

दिन कभी उतने बुरे नहीं होते जैसा हम अनुभव करते हैं।

—जे. फ्रैंकलिन

शराब न केवल आदमी के भीतर शैतान के लिए रास्ता बनाती है, बल्कि आदमी को शैतान की ओर ले जाती है।

—आदम क्लार्क

आपका व्यवसाय ही आनंद का सबसे अच्छा साधन है। जो व्यक्ति अपने व्यवसाय में अच्छी तरह लगा है, वह कभी दुखी नहीं रहता।

—एल. ई. लैंडन

निडर व्यक्ति ही शीघ्रतापूर्वक सत्ता पर अधिकार जमाते हैं।

—शेक्सपियर

सुंदर चेहरा स्वयं ही मौन सिफारिश है।

—बेकन

मित्रता का उजाला फॉस्फोरस के उजाले की तरह होता है, जो दुखों के अंधेरे में साफ-साफ चमकता है।

—कॉवेल

कल्पना ही समस्त विश्व का संचालन करती है।

—नेपोलियन

इस प्रकार इस अंतर्विरोध में अंत[र्वस्तु] निर्णायक भूमिका अदा करती है। [मगर] किसी परिस्थिति में यह भी हो सक[ता] है कि रूप को बदले बिना अंतर्वस्तु [का] विकास संभव न हो। ऐसी स्थिति में [रूप] परिवर्तन निर्णायक भूमिका अदा कर[ता] है।

दिनेश दुबे, जबलपुर : शून्य क्या है? इसकी खोज कैसे हुई?

गणित में शून्य (०) या सिफर [का] अर्थ अपने आप में कुछ नहीं होता, कि[ंतु] अन्य संख्याओं के साथ होने पर यह कु[छ] सार्थक होता है। शून्य की खोज कैसे हु[ई] यह कहना कठिन है, लेकिन यह मा[ना] जाता है कि सर्वप्रथम भारतीय गणित[ज्ञों] ने इसका प्रयोग किया और अरब के ग[णि]तज्ञों ने इसे भारत से लेकर यूरोपीय दे[शों] में पहुंचाया। बेबीलोन-सभ्यता में भी शू[न्य] का प्रयोग होता था, किंतु यूनानियों के पा[स] ऐसा कोई अंक नहीं था, इसीलिए [वे] अपने गणित का विकास नहीं कर पा[ए] थे। शून्य के प्रयोग से दशमलव प्रणाली [का] आविष्कार हुआ, जिससे कालांतर में खगो[ल] विज्ञान, भौतिकी, रसायनशास्त्र आ[दि] का काफी विकास हुआ।

चलते-चलते एक प्रश्न और

सत्यप्रकाश जोशी, इलाहाबाद : क्या कुत्ते भी अमर हो सकते हैं?

अवश्य, लेकिन मरने के बाद, क्यों[कि] वे पुनः नहीं मर सकते।

—बिंदु भाल[...]

क्षणिकाएं

नेता-चुनाव

चेयरमैनी के चुनाव में
दो पार्टियां खड़ी हुई थीं
एक थी 'धनुषबाण'
दूसरी थी 'कृपाण'
एक नेता धनुष-बाण चढ़ाये
दूसरे नेता के सम्मुख गुनगुनाये
मार दिया जाए
कि छोड़ दिया जाए

—राजेशकुमार गोयल 'राजेश'

संतान

वह महाप्राण
जिसे बेध नहीं सका
परिवार-नियोजन का
कोई भी बाण

प्रेयसी

पति और पत्नी के बीच का
वह खाली स्थान
जिसे भरने के लिए
परेशान हैं
हिंदी के बड़े-बड़े विद्वान

—चन्द्रभान भारद्वाज

संयोग

कभी-कभी बैठता है
संयोग गहरा
एक कवि एक बहरा

—के. जी. ओझा

प्रिय विषय

दिल्ली और बिहार के दो छात्र
आपस में करने लगे विचार
बिहारवाले ने कहा
तुम्हारा प्रिय विषय क्या है ?
दिल्ली का छात्र बोला—'दर्शन'
और तुम्हारा ?
वह बोला—'प्रदर्शन'

—बृजकिशोर सिंह 'किशोर'

आप और हम

नींद से जगकर रोज सवेरे हम
राशन, कोयला, तेल के पीछे भागते हैं
आप ही मजे में हैं
पांच साल पर जागते हैं

—नीलकमल

अन्याय

मजदूर संघ ने दी आवाज
हमारे साथ हुआ अन्याय
जब क्रिकेट टीम में
स्थान दिया गया कॉन्ट्रेक्टर को
और शामिल किया इंजीनियर को
तो फिर
क्यों नहीं लिया गया लेबर को ?

—राजेन्द्र मेहता
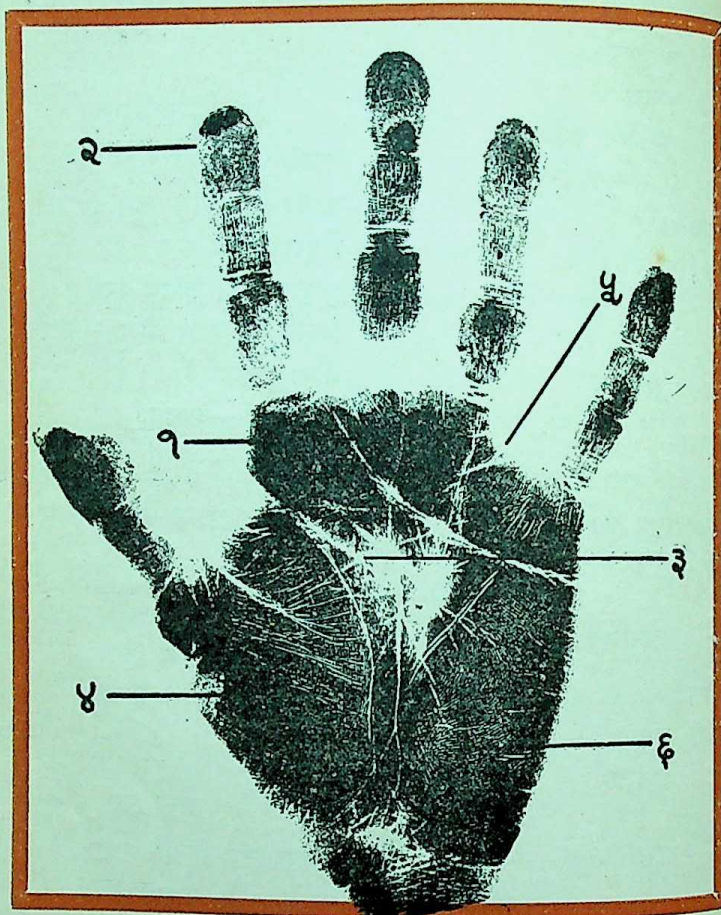
● पी. टी. सुंदरम

पिछले अंक में प्रोफेसर पी. टी. सुंदरम ने बुध - प्रबल हाथ की रेखाओं के बारे में जानकारी दी थी। इस क्रम में अब प्रस्तुत है, एक अन्य विशिष्ट हाथ जिसमें गुरु प्रबल है। इस स्तंभ में जिन व्यक्तियों के हाथ की रेखाओं का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है, उनके नाम हम प्रकाशित नहीं कर रहे हैं। इस क्रम में हम बिना किसी परिचय के बताये व्यक्ति विशेष के हाथ का प्रिंट प्रो. सुंदरम के पास भेज देते हैं। यह सुखद आश्चर्य है कि प्रो. सुंदरम का अध्ययन यहां भी सही साबित हुआ है। यह हाथ एक प्रसिद्ध लेखक-संपादक का है।

—संपादक

गुरु एवं सूर्य प्रबल हाथ

इस बार एक मिश्रित गुणोंवाले हाथ का अध्ययन है। जैसा कि ऊपर प्रकाशित छापे से स्पष्ट है, यह गुरु एवं सूर्य-प्रबल हाथ है। यों हाथ के अन्य पर्वत यथा शुक्र, चंद्र एवं बुध भी पुष्ट एवं सुविकसित हैं और रेखाएं भी स्पष्ट एवं सुंदर हैं। इस हाथ में कुछ अन्य चिह्न भी अच्छे हैं—जैसे सूर्य रेखा के अंत में स्थित मत्स्य का चिह्न और चंद्र पर्वत पर वृत्त। इन सबसे पता चलता है कि यह व्यक्ति काफी भाग्यशाली है और इन दिनों किसी ऊंचे पद पर प्रतिष्ठित है। संभवतः इसे पत्रकारिता अथवा लेखन के क्षेत्र में होना चाहिए।

गुरु एवं सूर्य पर्वतों का प्रभाव

पहले गुरु पर्वत को लें। अच्छे गुरु पर्वत के कारण यह व्यक्ति उदार, विनम्र, परिश्रमी एवं स्वतंत्र व्यक्तित्ववाला है। अपनी व्यवहार-कुशलता के कारण वह उच्च वर्ग में प्रभाव रखता होगा। सूर्य पर्वत ने उसे वाणी और लेखनी का भी धनी बना दिया है। इसी पर्वत के कारण उसमें प्रशासनिक क्षमता भी आयी है। यदि ध्यान से देखें तो आपको पता चलेगा कि इस हाथ के गुरु, शनि, सूर्य एवं बुध पर्वत किसी न किसी रूप में परस्पर जुड़े हैं। यह बात छापे पर आतशी शीशा रखकर ही जानी जा सकती है। जिन व्यक्तियों के हाथों में ये चारों पर्वत इस तरह परस्पर जुड़े होते हैं वे हमेशा बड़े लोगों के बीच रहते हैं। वे लोकप्रिय भी होते हैं और बहुत अच्छी पुस्तकें भी लिखते हैं। इन्हीं सब गुणों के कारण वे हमेशा स्मरण भी किये जाते हैं।

यात्राएं और सम्मान

इन पर्वतों के अतिरिक्त शुक्र एवं चंद्र पर्वत भी अच्छे हैं। शुक्र पर्वत दर्शाता है कि इस व्यक्ति को परिवार से काफी सुख है। **(चित्र में ४)** चंद्र पर्वत से पता चलता है कि इस व्यक्ति ने अनेक यात्राएं की हैं। वह विदेश भी गया है एवं अपनी इस यात्रा के दौरान उसे ऊंचे पदों पर नियुक्त लोगों से भी मिलने का अवसर मिला है।

अब रेखाओं को लें। पहले हृदय रेखा। गुरु और शनि पर्वतों के मध्य समाप्त होनेवाली यह रेखा पतली और सुंदर है। **(चित्र में १)** इससे पता चलता है कि प्रायः सभी विषयों पर इस व्यक्ति का अच्छा अधिकार है और उसकी वाणी तथा लेखनी में असर है। इस संदर्भ में गुरु की अंगुली यानी तर्जनी की प्रथम पोर पर बने चक्र को देखें। इससे पता चलता है कि अपनी लेखनी के कारण इस व्यक्ति को शासन और समाज से सम्मान मिला होगा। यही नहीं, इस वर्ष या आगामी वर्ष भी उसे इस तरह का पुनः सम्मान मिल सकता

है। (चित्र में २)

इतनी सुंदर एवं स्पष्ट रेखा में भी एक दोष है और वह है द्वीप की स्थिति। किसी भी रेखा पर द्वीप का होना अच्छा नहीं माना जाता। हृदय रेखा पर द्वीप की स्थिति से पता चलता है कि इस व्यक्ति का स्वास्थ्य खराब रहेगा, पर चूंकि जीवन रेखा अच्छी है और स्वयं हृदय रेखा गुरु और शनि पर्वतों के मध्य की ओर जा रही है, यह व्यक्ति दीर्घायु होगा।

दोहरी मस्तिष्क रेखा

हृदय रेखा की भांति मस्तिष्क रेखा भी अच्छी है। इस हाथ में मस्तिष्क रेखा दोहरी है। (चित्र में ३)। सामुद्रिक शास्त्र में ऐसी दोहरी रेखा काफी महत्त्वपूर्ण मानी गयी है। दोहरी मस्तिष्क रेखावाले व्यक्ति काफी सक्रिय, यहां तक कि जल्दवाज भी होते हैं। चलने में भी वे काफी जल्दबाजी करते हैं। इसी कारण वे किसी भी समस्या को चुटकी बजाते हल कर लेते हैं।

दोहरी मस्तिष्क रेखा से यह भी पता चलता है कि दिमागी काम के कारण इस व्यक्ति को मानसिक चिंताएं भी घेरे रहती हैं। यह बात दूसरी है कि वे अधिक देर तक परेशान नहीं कर पातीं।

मत्स्य चिह्नवाली जीवन रेखा

अब जीवन रेखा को देखें। गुरु पर्वत के नीचे से शुरू होनेवाली जीवन रेखा पूरे शुक्र पर्वत को घेरते हुए एक मत्स्य चिह्न के साथ समाप्त होती है। जीवन रेखा से पता चलता है कि शुरू-शुरू में जीवन विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं रहा। २७ वर्ष की अवस्था के बाद इस व्यक्ति के जीवन में विकास का अध्याय शुरू हुआ। ४७ वर्ष की अवस्था से अधिकार आदि मिलने शुरू हुए। ५१ वर्ष की अवस्था में उसे उत्तरदायित्वपूर्ण पद मिला और ५४ वर्ष की अवस्था में उसे कोई बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य करना पड़ा।

दोहरी मस्तिष्क रेखा के साथ शनि पर्वत पर केवल एक रेखा का होना बहुत ही अच्छा माना गया है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि ५९-६० वर्ष की अवस्था में इस व्यक्ति को अपने जीवन की सबसे महान उपलब्धि प्राप्त होगी। इस अवधि में उसे कोई बहुत ही महत्त्वपूर्ण पद मिलना चाहिए। हो सकता है, वह कहीं राजदूत नियुक्त कर दिया जाए।

भाग्य रेखा का प्रभाव

अब भाग्य रेखा को लें। मणिबंध से शुरू होनेवाली रेखा इस बात की द्योतक है कि इस व्यक्ति ने अपना कैरियर काफी पहले शुरू किया और उत्तरोत्तर धीमी किंतु निश्चित प्रगति करता चला गया। इस बीच उसने कमाई भी की, किंतु उसे खर्च भी कर दिया। बैलेंस-शीट में दोनों मदें बराबर रहीं। भविष्य में भी यही होगा।

पर एक बात है, इस व्यक्ति को कभी कोई कमी नहीं होगी।

हथेली के मध्य से एक और भाग्य रेखा की शुरूआत से ज्ञात होता है कि इस व्यक्ति को जीवन भर कार्य करना पड़ेगा, पर यह कार्य वह सम्मान एवं प्रतिष्ठा से करेगा। एक बात और, यदि यह व्यक्ति स्वतंत्र रूप से कार्य करता तो यह करोड़पति होता, किंतु हाथ के अन्य चिह्नों से पता चलता है कि यह व्यक्ति स्वतंत्र रूप से कार्य नहीं कर रहा है। अतः इसे मान-सम्मान की ही प्राप्ति होगी।

सूर्य रेखा पर मत्स्य चिह्न

यह बात सूर्य रेखा के अंत में स्थित मत्स्य-चिह्न से भी स्पष्ट है। चूंकि यह चिह्न रेखा के अंत में है, अतः जीवन के उत्तरार्ध में ही इस व्यक्ति को बहुत अधिक मान-सम्मान मिलेगा। मैं कह सकता हूं कि ५९-६० वर्ष की आयु के बाद इस व्यक्ति के जीवन का स्वर्णयुग शुरू होगा। (**चित्र में ५**) यों इसी वर्ष जुलाई से सितंबर के बीच उसे कोई नया महत्त्वपूर्ण कार्यभार, संभवतः शासकीय भी, संभालना पड़ेगा। चंद्र पर्वत पर स्थित वृत्त से पता चलता है कि इस व्यक्ति को अपने कार्यक्षेत्र में अपूर्व यश मिलेगा। (**चित्र में ६**)

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि यह एक बहुत ही सौभाग्यशाली व्यक्ति का हाथ है, जिसने अपने गुणों एवं निरंतर परिश्रम के द्वारा समाज में सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। ●

ज्ञान-गंगा

देशं बलं कार्यमुपायमायुः
संचित्य यः प्रारभते स्वकृत्यम्।
महोदधिं नद्य इवातिपूर्णं
समृद्धयस्तं पुरुषं भजंते।।

अशांति-रहित देश, अपनी सामर्थ्य, काम करने के औचित्य और अपनी आयु का विचार कर जो उद्योग-धंधा प्रारंभ करता है, ऐसे ही योग्य व्यक्ति के पास समृद्धियां दौड़ी आती हैं, जैसे नदियां अगाध जलराशि से पूर्ण समुद्र का आश्रय लेती हैं।

सर्वेषां यः सुहृन्नित्यं, सर्वेषां च हिते रतः।
मनसा, वाचा, कर्मणा, सःधर्मं वेद जाजले।।

हे जाजलि मुनि! धर्म के रहस्य को वही जानता है जो मन से, वाणी से तथा कर्मों से सदा सबका घनिष्ठ मित्र है और सभी की भलाई करने में तत्पर रहता है।

निवेशनं च कुप्यं च क्षेत्रं भार्या सुहृज्जनः।
एतान्युपहितान्याहुः सवत्र लभते पुमान्।।

आवास, सोने-चांदी के गहने, भूमि, स्त्री और इष्ट-मित्र—ये पांच मध्यम श्रेणी के मित्र हैं। मनुष्य के लिए ये सुलभ हैं।

यद्दासि विशिष्टेभ्यो यच्चाश्नासि दिने-दिने।
तत्ते वित्तमहं मन्ये शेषं कस्यापि रक्षसि।।

तुम सुपात्रों को जो देते हो और नित्य जो कुछ खाते हो उसी को तुम्हारा धन माना जा सकता है, शेष तो दूसरे का है, तुम नाहक उसकी रखवाली करते हो।

—प्रस्तोता : ब्रह्मदत्त शर्मा
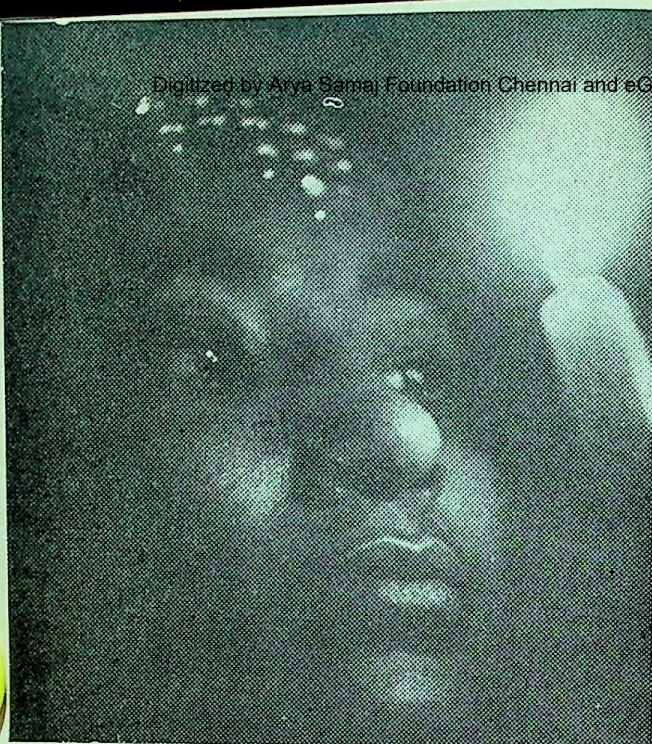
द्वारा परीक्षा करने पर छायापट की परिधि पर तीर की नोक के समान अनेक छोटे-छोटे चिह्न और ओपटिक डिस्क का रंग सफेदी लिए दिखायी देता है। छायापट पर रक्त की नाड़ियां पतली और परिधि की तरफ धागे-सी दिखायी देती हैं। मुख्य रूप से यह रोग दोनों नेत्रों में एक साथ होता है।

वैज्ञानिकों के अनुसार यह रोग एक वंश या कुछ वंशों के बाद भी हो जाता है, लेकिन वंशज रोग होने

रात को जिन्हें नहीं दीखता

रतौंधी के रोगी को संध्या होते ही कम दिखायी देने लगता है और रात होने पर तो वह अंधा ही हो जाता है। आस-पास और सामने की दृष्टि इतनी कम हो जाती है कि टटोलकर चलना ही एकमात्र साधन रह जाता है। ऐसा व्यक्ति प्रकाश में तो अच्छी तरह चल-फिर लेता है, लेकिन संध्या की छाया आते ही या कम प्रकाशमय स्थल में जाते ही वह अंधा हो जाता है। नेत्र-यंत्र आपथलमोसकोप

• डॉ. एम. एस. अग्रवाल

के बावजूद कभी-कभी परिवार के एक बच्चे को तो हो जाता है, पर दूसरे को नहीं होता। कुछ रोगियों में इस रोग के साथ मोतियाबिंद का रोग भी देखने में आया है। रतौंधी के रोगी को अपने जीवन में निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिए। ऐसा करने से रोगी को लाभ हो सकता है।

रोगी की दिनचर्या

रोगी को संध्या होते ही अपने घर आ जाना चाहिए। रात्रि के समय कम ही निकलना चाहिए। साइकिल, स्कूटर एवं मोटर आदि वाहन कम चलाना चाहिए। सुबह उठने के बाद रोगी को चाहिए, वह अपनी आंखें त्रिफला के जल से धोये। ओस से भीगी घास में घूमने से नेत्रों को ठंडक प्राप्त होती है। दूर या समीप की वस्तुओं को देखने में किसी प्रकार का प्रयत्न नहीं होना चाहिए। अधिक देर तक पढ़ने, तेज रोशनी में पढ़ने से नेत्रों में थकावट अनुभव होने लगती है, पानी आना एवं अन्य तकलीफें हो सकती हैं। चित्रपट एवं टेलीविजन इस रोग के लिए हानिकारक हैं। शरीर पर कसे कपड़े नहीं पहनना चाहिए। कपड़ों के रंग हलके होने चाहिए। तेज लाल या नीले रंग के कपड़े पहनने से नेत्रों में तनाव उत्पन्न हो जाता है।

छायापथ में एक नेत्र-रोग
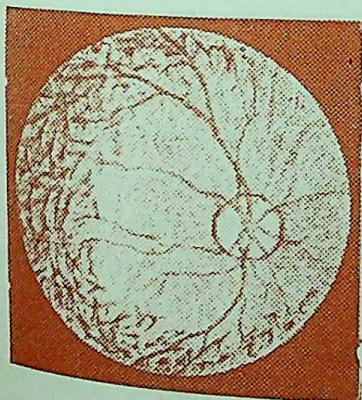
ऊपर : पढ़ने का गलत ढंग, नीचे : ठंडे या गुनगुने पानी से आंखों पर छींटे दें

मानसिक शांति

रतौंधी के रोगी में अन्य लोगों से अधिक क्रोध होता है। इसलिए रोगी को ऐसे कार्य से अलग रखना चाहिए जिससे उसमें रोष की भावना उत्पन्न हो। शोर वाले स्थान में रहना और गंदी जलवायु रोगी के मन पर बुरा प्रभाव डालती है। ऐसे रोगी के लिए आध्यात्मिक स्थल अच्छे रहते हैं। उसे अधिक से अधिक मानसिक शांति मिलनी चाहिए।

रतौंधी के रोगी को भोजन पर विशेष ध्यान देना चाहिए। उसे सुबह के नाश्ते में रात भर भीगे चार बादाम खूब चबाने के बाद एक गिलास दूध पीना चाहिए।

पपीता बहुत ही लाभदायक फल है। कम सिके टोस्ट मक्खन या पनीर के साथ लिए जा सकते हैं। करीब दस बजे एक गिलास गाजर का रस या पालक का सूप पीना चाहिए। दोपहर के भोजन में एक प्लेट सलाद, जिसमें कच्ची गाजर, टमाटर, खीरा आदि हो, मसूर या कभी-कभी मूंग की दाल, हरी तरकारियां (घिया, तोरई, पालक, टिंडा, बंदगोभी या अन्य पत्तेवाले साग), दही और फुलके होने चाहिए। मांसाहारी लोग भोजन में बकरे की कलेजी ले सकते हैं, लेकिन तले रूप में नहीं, केवल उबले रूप में और हरी तरकारियों के मिलाप के साथ। अपरान्ह चार बजे के आस-पास दूध अथवा टमाटर मिलाकर पालक का सूप या संतरे का रस लिया जा सकता है। रात्रि का भोजन हलका होना चाहिए। उस समय हरी तरकारियां और दो या तीन फुलके ही खाना चाहिए। रोगी को तेज मिर्च-मसाले, तले पदार्थ और मिठाइयां नहीं लेना चाहिए। उसे कभी-कभी प्रातः उठने के बाद चार चम्मच करेले का रस लेना चाहिए। ऐसे रोगी के लिए गाजर का रस रामबाण है।

भोजन में विटामिन - युक्त पदार्थ :

नाम	विटामिन ए	बी	सी	फासफोरस	लोहा
पालक	७३८	२०	१४	३	१.४
पपीता	५७३	—	१३	३	०.१
गाजर	५६८	१७	१	८	०.४
बंदगोभी	५६८	१७	१	१४	०.२
मसूर की दाल	१२८	४३	—	७०	०.६
संतरा	९९	११	१९	६	०.१
टमाटर	९१	११	७	६	०.१
बाजरा	६३	३१	—	१४	०.१
लाल चना	६२	४३	—	७०	२.५

रोग की चिकित्सा

रतौंधी के रोगी को दिन में पांच या छह बार शीतल जल से नेत्रों को धोना चाहिए। बिलकुल सवेरे बंद नेत्रों पर सूर्य-किरणों का सेवन करना चाहिए। नेत्रों को धोने के बाद 'पामिंग' की चिकित्सा करनी चाहिए। इस चिकित्सा में नेत्र हथेलियों द्वारा ढक लिये जाते हैं। बाद में अंधेरे कमरे में जाकर मोमबत्ती पर त्राटक की चिकित्सा करानी

चाहिए। इस चिकित्सा में मोमबत्ती जलाकर रोगी को लौ के ऊपरी भाग या मध्य भाग पर दृष्टि केंद्रित करने को कहा जाता है। इस दौरान हलके-हलके पलक झपकाते रहना चाहिए। कुछ पल लौ को देखने के बाद रोगी नेत्र बंद कर ले और मन में लौ की स्मृति लाने की कोशिश करे। अगर लौ ध्यान में ठीक प्रकार न आये तो से खड़े होकर शरीर को घड़ी के पेंडुलम की तरह दायें-बायें हिलाये। दृष्टि किसी एक वस्तु पर नहीं जमनी चाहिए। चिकित्सा करते समय जंगला या पेड़ विपरीत दिशा में चलता दिखायी देगा। इस विधि द्वारा हिलने की चिकित्सा करने से नेत्रों को आराम मिलता है।

औषधियों में, त्रिफला-घृत एवं च्यवन-

एक औंस भोजन में शक्ति

नाम	विटामिन ए	बी	सी	फासफोरस	लोहा
करेला	६०	७	२५	२०	०.६
मूंगफली	१८	८५	—	११०	०.५
बादाम	कम	२३	—	१४०	१.०
सेब	कम	११	१	६	०.५
केला	कम	१४	—	१४	०.१
नारियल	कम	४	१	६८	०.५
दही	कम	कम	—	२५	०.१
अमरूद	कम	—	८५	११	३.३

दो या तीन बार लौ को देखना चाहिए, लेकिन इस क्रिया में किसी प्रकार का प्रयत्न नहीं, वरन सहजता होनी चाहिए। ध्यान में लौ के आने से नेत्रों की ज्योति बढ़ने में सुगमता रहती है और छायापट को शक्ति प्राप्त होती है।

दालान या बाहर के कमरे में खिड़की या पेड़ के सामने खड़े होकर हिलने की चिकित्सा करनी चाहिए। रोगी आराम प्राश प्रातःकाल दूध के साथ लिया जा सकता है। विटामिन ए की गोली और आंवले का मुरब्बा सुबह के समय लाभप्रद रहता है। गोली दूध या फल के रस के साथ ही लेना चाहिए। प्लेसेंटा, एक्स्ट्रैकट एवं रूस में निर्मित एलो एक्स्ट्रैकट इंजेक्शन भी इस रोग में लाभप्रद रहे हैं।

—१५, दरियागंज, दिल्ली-६

कालेज के कम्पाउंड से

विश्वविद्यालय में २६ वर्ष पूर्व ऐसा वातावरण था कि उपकुलपति आचार्य नरेंद्र देव की इच्छा के अनुकूल सभी छात्रों ने छात्रसंघ के अध्यक्ष पद पर श्री माखनलाल मिश्रा का निर्विरोध चयन किया था। लेकिन आज इसके विपरीत वातावरण है। इस संदर्भ में गत वर्ष की एक घटना उल्लेखनीय है। छात्रसंघ के नवनिर्वाचित अध्यक्ष उपकुलपति श्री मुस्तफी के यहां गये और उनके पैर छूने के लिए झुके ही थे कि तभी नवनिर्वाचित मंत्री ने ऐसा करने से रोका। मंत्री ने उपकुलपति के चरित्र की ओर इंगित करते हुए उन्हें अपना पूज्य मानने से इनकार कर दिया। इसके साथ ही, अब तक जो पांच-छह सौ छात्र अध्यक्ष का जयकार कर रहे थे, वे सब अध्यक्ष और उपकुलपति को गाली देकर मंत्री की जयकार करने लगे। मैं एक कोने में खड़ा सोचता रहा कि २६ वर्षों में कितना परिवर्तन आ गया है!

—अनिलकुमार सिंह, २३, बलरामपुर छात्रावास, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

तब मैं साइंस कालेज (पटना) में पढ़ रहा था। आई. एस-सी. के दूसरे वर्ष में हाल में ही कक्षाएं शुरू हुई थीं। रसायन शास्त्र में आंकिक प्रश्नों को भी हल करना पड़ता था। एक प्रोफेसर की, जो अकार्बनिक रसायन पढ़ाते थे, यह आदत थी कि कुछेक लड़कों के हल से मिले उत्तर पर 'सही' का ठप्पा लगाकर सभी छात्रों के माथे पर थोप देते थे। एक दिन भिन्न-भिन्न लड़कों ने एक सवाल का अलग-अलग उत्तर निकाला, पर उन 'कुछेक' लड़कों का एक ही उत्तर आया। प्रोफेसर साहब ने कहा, "मेजॉरिटी मस्ट बी ग्रांटेड।" परंतु परदे के पीछे से विभागाध्यक्ष उनकी बातों को सुन रहे थे। वे भीतर आये और एक असंतुष्ट लड़के से बोले, "तुम इस हिसाब को ब्लैक-बोर्ड पर लगाओ और तुम्हारे प्राध्यापक बताएंगे कि सही है या गलत।" तब तो प्रोफेसर साहब पानी-पानी हो गये क्योंकि असंतुष्ट लड़के का हल एकदम सही था। इसके बाद प्रोफेसर साहब की आदत बदल गयी और वे स्वयं हिसाब लगाने के बाद ही हम लोगों को समझाने लगे।

—राधाकृष्ण चौधरी, अभियंता छात्रावास-१, कमरा-जी, बी. सी. ई., पटना-५

सन १९७२ की बात है। उस समय मैं इंटर के द्वितीय वर्ष का छात्र था।

सभी छात्र कक्षा में बैठे हुए थे। आगे की तीन बेंचें सिर्फ छात्राओं के लिए थीं। वे तीनों बेंचें भरी हुई थीं। सिर्फ एक छात्रा के बैठने का स्थान रिक्त था। प्राध्यापक उपस्थिति ले रहे थे। इसी बीच एक छात्र उनसे अनुमति लेकर अंदर आया और कक्षा की सभी बेंचों को भरा देख छात्रा के बगलवाले रिक्त स्थान पर सटकर बैठ गया। प्राध्यापक ने इस अशिष्टता को देखकर आदेश दिया, "तुम किसी अन्य रिक्त स्थान पर बैठ जाओ।" "क्यों?" छात्र के ऐसा पूछने पर उन्होंने कहा, "तुम लोग अच्छी तरह जानते हो कि ये आगे की तीन बेंचें छात्राओं के लिए हैं और छात्राओं के साथ छात्र नहीं बैठ सकते।" "महाशय! छुआछूत की यह भावना बहुत पुरानी हो चुकी है। राष्ट्रपिता गांधीजी भी इसके विरोध में थे।" छात्र ने निर्भय होकर कहा। फिर तो छात्र और प्राध्यापक के बीच लंबी बहस चल पड़ी। प्राध्यापक ने कहा, "हमारी संस्कृति नारी को विशिष्ट स्थान देती है।" छात्र ने कहा, "छात्राओं को पीछे वाली तीन बेंचें बैठने के लिए दे दी जाएं, हम छात्र आगे ही बैठेंगे।" प्राध्यापक इस बहस से ऊब चुके थे। उन्होंने अंत में कहा, "मान लो आपके परिवार में आपके पिता, मां, और आप हैं। समय का चक्र आपके परिवार को ऐसी स्थिति में ला खड़ा करता है, जहां आप सबके कपड़े चिथड़े-चिथड़े हो जाते हैं, यानी कोई भी अंग परदे में नहीं रह जाता। ऐसी नाजुक स्थिति में आपको एक छोटा-सा वस्त्र मिल जाता है, जिससे किसी एक ही व्यक्ति का अंग किसी तरह से ढका जा सकता है। बताइए, आप उस वस्त्र से किसे परदे में लाएंगे? स्वयं को या अपने पिता को या मां को?" ऐसी कठोर बात सुनकर छात्र चुप रह गया और शर्म से गरदन झुकाये कक्षा से बाहर चला गया।

—रामकुमार केशरी 'रामू' फारबिसगंज कालेज, फारबिसगंज (बिहार)

अनिल कुमार सिंह, रामकुमार केशरी, राधाकृष्ण चौधरी—
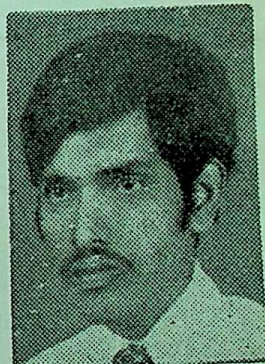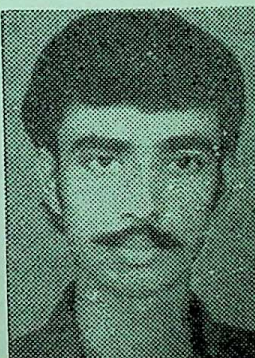
"१८ सितंबर, १९५१ को जन्म। पंजाब यूनीवर्सिटी से 'जीव भौतिक शास्त्र' में एम.एस-सी. । जनवरी, १९७४ से शोध-कार्य में रत । पिछले कुछ वर्षों से लिख रहा हूं । वातावरण, मेरा बनाया हुआ नहीं है, फिर भी मुझे उसी में जीना पड़ता है । परिभाषाहीन मृत्यु का साया मुझसे अलग नहीं हो पाता, लेकिन मैं जिंदगी की सीढ़ियों पर कभी नीचे लुढ़कता हूं और कभी ऊपर चढ़ता हूं । अंतराल में जो तनाव होते हैं, उन्हें पन्नों पर लिख डालता हूं, भूल जाने के लिए ।"

विश्लेषण

अपार जनरव
भयंकर कोलाहल सगों का
अंतरंग साथियों के बीच
एकाएक मैं
निर्विवाद, अकेला खो गया
आम बोये, बबूल उग आये
जिस कंधे पर हाथ रखा
कांटे उभर आये

चलते-चलते सड़क
रसातल में जा छिपी
कुरूप बौने
खाली बची हवा में
मंडराने लगे

मेरे हाथ
टांगों से जुड़ गये
पांव कंधों पर
कीलों से ठुक गये
परिस्थितियों के
खोये हुए अहसास में
हंगामों का विश्लेषण करने के लि
मेरा मस्तिष्क
शून्य में अटक-सा गया

—राजेशकुमार मेहर
(बायो-फिजिक्स विभाग, प
यूनीवर्सिटी, चंडीगढ़—१६००१

देश और काल की सीमा से मुक्त काव्य का महत्त्व शाश्वत होता है, किंतु जब काव्य-शास्त्री इस शाश्वत और सनातन महत्त्व के मूल में स्थित किन्हीं सार्वभौम सिद्धांतों की खोज में निकलते हैं तब उन्हें निराशा हाथ लगती है। अपनी **'पाश्चात्य काव्य-शास्त्र का इतिहास'** पुस्तक में डॉ. तारकनाथ बाली ने इस समस्या के संदर्भ में पश्चिम के प्रमुख काव्य-शास्त्रियों एवं काव्य-समीक्षा सिद्धांतों का सम्यक विवेचन प्रस्तुत किया है। स्थान-स्थान पर उन्होंने आवश्यकतानुसार भारतीय काव्य-सिद्धांतों के साथ इन पाश्चात्य काव्य-सिद्धांतों की तुलनात्मक समीक्षा भी की है और तत्संबंधी

कि उसने पश्चिम के प्रमुख काव्य-शास्त्रियों के न केवल सिद्धांतों एवं उनकी सीमाओं वरन इन सीमाओं के कारणों को भी समझाया है। यह न केवल छात्रों

काव्यशास्त्र : प्लेटो से अब तक

कुछ प्रचलित धारणाओं का खंडन भी किया है। अकसर क्रोचे के अभिव्यंजनावाद एवं कुंतक के वक्रोक्ति-सिद्धांत की तुलना की जाती है। डॉ. बाली के अनुसार इन दोनों की तुलना असंगत एवं भ्रामक है। क्रोचे का अभिव्यंजनावाद सभी कलाओं से संबंधित है, जब कि कुंतक का सिद्धांत केवल काव्य पर आधारित है। क्रोचे की दृष्टि आत्मकेंद्रित है, जब कि कुंतक की काव्य-केंद्रित।

पुस्तक में प्लेटो से लेकर आधुनिक नयी समीक्षा के सिद्धांतों तक का विवेचन किया गया है। लेखक की खूबी यह है के लिए वरन साहित्य में रुचि रखनेवाले सामान्य पाठक के लिए भी उपयोगी है।

'छायावादी कवियों का सौंदर्य-विधान' डी. लिट. के लिए स्वीकृत एक शोध-प्रबंध है, जिसमें लेखक ने छायावादी सौंदर्य-बोध के नये आयामों के उद्घाटन की चेष्टा की है। छायावृत्ति और सौंदर्य-वृत्ति की विस्तृत चर्चा के बाद लेखक ने छायावादी कवियों के रूप-सौंदर्य से लेकर शिल्प-सौंदर्य तक की विशेषताओं पर प्रकाश डाला है। छायावादी कवियों पर पाश्चात्य एवं संस्कृत साहित्य के प्रभाव को स्पष्ट करते हुए अंत में लेखक ने पंत,

प्रसाद, निराला एवं महादेवी का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है।

लेखक के अनुसार 'रूप के अविकल चित्रण में सर्वाधिक सफलता प्रसाद और पंत को मिली है जब कि अपनी स्वच्छदवादी मनोवृत्ति एवं विराटता-बोध के कारण निराला, सौंदर्य-बोध के कई क्षेत्रों में अग्रणी रहे हैं। यों छायामूलक कवित्व के क्षेत्र में प्रसाद अतुलनीय हैं, फिर भी भावों की गहनता, रहस्यात्मकता और बिंब-विधायनी या चित्रधर्मी कल्पनाओं में महादेवी को भी असाधारण सफलता प्राप्त हुई है।'

पाश्चात्य काव्य-शास्त्र का इतिहास
लेखक : डॉ. तारकनाथ बाली, प्रकाशक : द मेकमिलन कंपनी ऑव इंडिया लि., दिल्ली, पृष्ठ २८३, मूल्य : ३८ रुपये

छायावादी कवियों का सौंदर्य विधान
लेखक : डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित, प्रकाशक- उपर्युक्त, पृष्ठ-३२३, मूल्य : ४० रुपये

मलिक मुहम्मद जायसी के अमर प्रेमाख्यान काव्य 'पद्मावत' पर अनेक छात्रोपयोगी पुस्तकें प्रकाश में आ चुकी हैं। 'पद्मावत का काव्य वैभव' ऐसी पुस्तकों की शृंखला में एक नयी कड़ी है। ऐसी पुस्तकों का अपना एक निश्चित ढांचा होता है, जिसके कारण छात्रों को न केवल उस पुस्तक के पढ़ने में वरन आलोच्य कृति को भी समझने में सहायता मिलती है। प्रस्तुत पुस्तक भी इसका अपवाद नहीं है। अंत में लेखक ने हिंदी के अन्य संत कवियों, जैसे तुलसी, कबीर एवं जायसी के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। लेखक का कहना है कि जहां जायसी कवि-कर्म, सिद्धांत-निरूपण एवं रहस्यवाद की संपन्न काव्य-प्रणाली आदि की दृष्टियों से कबीर की अपेक्षा श्रेष्ठ उतरते हैं, वहां तुलसी की तुलना में यह बात नहीं है। छात्रों के लिए यह एक उपयोगी पुस्तक सिद्ध होगी।

—राजशेखर

पद्मावत का काव्य वैभव
लेखक : डॉ. मनमोहन गौतम, प्रकाशक: उपर्युक्त, पृष्ठ-१५१, मूल्य : १० रुपये

एक उपन्यास

'मैं हत्यारा' उपन्यास में रोमांचक होते हुए भी बड़ी बारीकी से महानगरीय निम्न-मध्यम वर्ग के एक आम आदमी की रोज-मर्रा की विवशता और परेशानियों से ऐंठती जिंदगी को मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। आज की नपुंसक व्यवस्था में एक साधारण पढ़ा-लिखा आदमी कितना लाचार और असहाय है! जिसकी लाठी उसी की भैंस वाली व्यवस्था में पुलिस भी उसी का साथ देती है जिसके पास पैसे और शरीर की शक्ति दोनों हैं। समाज में छिपकर हो रहे अपराध और हिंसा का रहस्योद्घाटन और आत्मरक्षा के प्रयत्न में लगे निरपराध आदमी को साजिश में फंसाकर अपराधों को द्विगुणित करते चलने की रोमांचक कथा पाठक

को अवाक किये जिज्ञासा से बांधे रखती है। साधारण हत्या की असाधारण कहानी का अंत पाठकों के लिए थ्रिलिंग साबित होता है।

मैं हत्यारा
लेखक : रमाकांत, प्रकाशक : उपर्युक्त; पृष्ठ : ११६; मूल्य : ३.०० रु०

काव्य-संग्रह

किरण के कशीदे : जिन आधारों पर नयी कविता ने गीत ने बंटवारा किया था, नवगीतों ने उनको समेटकर व्यापकता पा ली है। यही कारण है कि प्रस्तुत संग्रह के गीतों में नयी कविता की गहराई, पकड़, समसामयिकता, जटिलता आदि के स्पष्ट संकेत दिखायी देते हैं। 'देहों के क्षितिजों पर', 'सर्मपिता संध्या ने', 'चक्रव्यूह टूटे' आदि गीत इसके उदाहरण हैं। गजल के विषय में कहा जा सकता है कि यह उर्दू भाषा का छंद है, अतः उसी में रहना चाहिए। हिंदी में इसकी स्थिति कुछ-कुछ चौड़े फ्रेम में गोल तसवीर-सी हो जाती है।

किरण के कशीदे : लेखक—चन्द्रसेन 'विराट', प्रकाशक — सरला प्रकाशन, दिल्ली - ३२, पृष्ठ — ११४, मूल्य— १२.०० रु.

सूरज दीप धरे : गीतों से अधिक संग्रह के प्रारंभ में कही 'अपनी बात' जोरदार है। ऋतु, प्रेम, महंगाई आदि विविध विषयों पर लिखे गीत अच्छे हैं। अधिकतर गीतों में दर्द चीखा अधिक है, कसका कम है। गीतविधा में विशेष योगदान न देते हुए भी 'शर्म का काजल नहीं है', 'सब दीपक थे मैं बाती था', 'टूट गया रे तारा' आदि गीत ठीक हैं।

सूरज दीप धरे : लेखक—मयंक श्रीवास्तव, प्रकाशक — उमंग प्रकाशन, भोपाल, पृष्ठ—८४, मूल्य— ६.०० रु.

समुद्रगा : गीत और गजलों के इस संग्रह में कवि विशेष सफल नहीं हो पाया है। 'मैं से मनुष्य कि मछलियां', 'विधवा की मांग' 'झरबेरी के झांखर', 'तुम और ये' आदि व्यंग्यात्मक कविताएं अपेक्षाकृत अधिक सफल हैं। गजलों में लगता है हिंदी-उर्दू की खिचड़ी-सी पक गयी है। कुछ राष्ट्रीय गीत भी संकलित हैं। कुल

पुस्तकें और संपादक का चुनाव

संपादक ने यह उत्तरदायित्व स्वीकार किया है कि समीक्षा के लिए प्राप्त होनेवाली पुस्तकों में से किसी भी एक अच्छी पुस्तक की समीक्षा वे स्वयं करेंगे। यह समीक्षा संपादक का चुनाव शीर्षक से इसी स्तंभ में प्रकाशित होगी।

मिलाकर कवि का यह पहला प्रयास है अतः आगे आशा की जा सकती है।

समुद्रगा : लेखक — बलभद्र सिंह 'सुलभ', प्रकाशक—डाक पत्थर, देहरादून, पृष्ठ—१४०, मूल्य—६.०० रु.

कथा-संग्रह

एक और नीलांजना : यह एक कथा-संग्रह है, जिसमें जैन धर्म के प्रख्यात अवतारों के जीवन पर आधारित पुराकथाएं संग्रहीत हैं। इन कथाओं को लेखक ने आधुनिक कहानी का रूप देने का काफी सफल प्रयत्न किया है। कहीं-कहीं आध्यात्मिक भूमि पर विचारों की बोझिलता को कम करने के लिए छोटे-छोटे संवादों की योजना सुंदर कही जा सकती है। इन कहानियों में त्याग, तपस्या के मूल में काम-भाव को माना है, जिसे कलात्मक रूप में व्यक्त किया गया है। आधुनिक संदर्भों में यह पुस्तक आध्यात्मिक संदेश देती है।

एक और नीलांजना : लेखक—वीरेन्द्रकुमार जैन, प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, पृष्ठ—१२७, मूल्य—८.०० रु०

एक नाटक

तपस्वी और तरंगिणी : यह मध्ययुग की कथा पर आधारित एक नाटक है। अंगदेश के राजा द्वारा एक ब्राह्मण का तिरस्कार करने के फलस्वरूप देश में अकाल पड़ जाता है। इसके निवारण हेतु देववाणी होती है कि यदि राजा युवा तपस्वी ऋष्यशृंग को अपना दामाद बना ले तो यह कष्ट टल सकता है। इसके लिए एक सुंदर वेश्या तरंगिणी को माध्यम बनाया जाता है। वह अपने रूपपाश में उसे बांधकर नगर में ले आती है, जहां उसका विवाह राजकुमारी के साथ होता है। किंतु तरंगिणी और ऋष्यशृंग एक-दूसरे को भूल नहीं पाते। अतः अपने पिता के आह्वान पर वह तरंगिणी को साथ ले मोक्ष हेतु प्रस्थान कर जाता है। इस कथा के साथ दो प्रासंगिक प्रेम-कथाएं भी चलती हैं। बीच-बीच में गीत-योजना भी है। काम-आकर्षण को आधुनिक संदर्भों में प्रस्तुत किया गया है। चार अंकों का यह नाटक नाटकीय कौशल की दृष्टि से सफल नाटक है।

तपस्वी और तरंगिणी : लेखक—बुद्धदेव बसु, अनु. — डॉ. माहेश्वर, प्रकाशक—मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लि०, पृष्ठ —९७, मूल्य—१२.०० रु.

—डॉ. शशि शर्मा

बड़ी बहन : बबली! आओ, मैं तुम्हें गणित पढ़ा दूं। देखो, यदि मेरे पास दस आम हों, उनमें से दो आम मैं तुम्हें दे दूं, तो मेरे पास कितने आम रह जाएंगे?

बबली : जाइए दीदी, हम नहीं पढ़ते! आप सदा ज्यादा हिस्सा लेती हैं।

राष्ट्रपति की विधवा

जैकलीन सूसन

विश्व-प्रसिद्ध उपन्यास 'वैली ऑव डॉल्स' की लेखिका जैकलीन सूसन अमरीका की सर्वाधिक चर्चित लेखिका रही हैं। प्रायः उनके प्रत्येक उपन्यास ने बिक्री के क्षेत्र में नये कीर्तिमान स्थापित किये। 'वैली ऑव डॉल्स' जेकलीन सूसन का दूसरा उपन्यास था, जिसमें उन्होंने एक प्रकार से अपनी ही कहानी कही। उनकी अन्य चर्चित कृतियां हैं--'लव मैशीन', 'एवरी नाइट जोस्फाइन', 'वंस इज नॉट इनफ्' एवं 'डोलोरेस'। कुछ समय पूर्व जैकलीन सूसन का कैंसर से निधन हो गया। यहां प्रस्तुत है, उनके लोकप्रिय उपन्यास डोलोरेस का सार-संक्षेप। प्रस्तोता हैं--सुरजीत।

राष्ट्रपति का विशेष विमान 'सुपर-सोनिक वन' तेजी से वाशिंगटन की ओर बढ़ा जा रहा था। बाहर घना अंधकार था और यह घना अंधकार ही जैसे गहरी चुप्पी बनकर विमान के भीतर समा गया था। डोलोरेस ने विमान की खिड़की से बाहर देखने की कोशिश की, किंतु उसकी आंखें अंधकार की काली दीवार से टकराकर रह गयीं। 'जिंदगी एकाएक कितनी सूनी और अकेली हो गयी है!' उसने सोचा। फिर उसकी दृष्टि बगल की खाली सीट पर चली गयी। वेदना से हृदय भर उठा और आंखों के सामने जिम्मी का मुसकराता चेहरा घूम गया!

जिम्मी यानी जेम्स टी. रियान। अमरीका का युवा राष्ट्रपति और डोलोरेस का पति! कुछ घंटे पूर्व ही जिम्मी का हृदयगति रुकने से निधन हो गया था। और इस समय उसका शव एक ताबूत में, विमान में रखा हुआ था। डोलोरेस पर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा था।

वह जानती थी कि वाशिंगटन हवाई अड्डे पर पत्रकार, फोटोग्राफर उसकी प्रतीक्षा कर रहे होंगे।

बच्चों का खयाल आते ही उसका गला रुंध गया। उसने सोचा, 'मैं उन्हें समाचार किस प्रकार सुनाऊंगी? मेरी अवस्था छह वर्ष, माइक और जिम्मी की उमर केवल तीन वर्ष है। ओह!...'

तभी डोलोरेस ने किसी के हाथ का कोमल स्पर्श अनुभव किया। वह चौंक उठी—'मुझे छूने का साहस किसने किया? मैं डोलोरेस रियान—संयुक्त राज्य अमरीका की प्रथम महिला'। पर अगले पल उसे वास्तविकता का बोध हुआ। डोलोरेस ने पीछे मुड़कर देखा। नये राष्ट्रपति एलोवर्ड जैक्सन लाइंस की आंखों में सहानुभूति थी और ओठों पर मुसकराहट। डोलोरेस ने सोचा, 'अब इनकी पत्नी व्हाइट हाउस में रहेगी।'

व्हाइट हाउस के विचार-मात्र ने उसकी अनेक मुरझायी स्मृतियां फिर से ताजा कर दीं। व्हाइट हाउस में ही जिम्मी ने उससे कहा था, 'डोलो, रियान परिवार का कोई भी सदस्य लोगों के सामने कभी अश्रुपूरित नेत्रों से नहीं गया है। तुम इस बात का सदा ध्यान रखना।'

यों उस क्षण जिम्मी स्वयं पराजय की पीड़ा से व्यथित था। दक्षिण अमरीका में उसके ही एक निर्णय के कारण लड़ाई छेड़ी गयी थी और उसमें बहुत से लोग मारे गये थे। जिस उद्देश्य से उसने लड़ाई छेड़ने का आदेश दिया था, वह भी पूरा नहीं हुआ था। उस रात जब जिम्मी ने उसके शयन-कक्ष में प्रवेश किया तब उसकी आंखों में आंसू थे। डोलोरेस ने जिम्मी को कभी इस दशा में नहीं देखा था। उसने जिम्मी को धीरज बंधाने की कोशिश की थी। उस रात जिम्मी ने कहा था, 'डोलो, मैंने सदा अनुभव किया है कि जैसे ईश्वर ने मुझे कोई बड़ा काम सौंपा है। कहते हैं कि प्रतिष्ठा का महल दुखद अंत पर आधारित होता है।'

इस कथन की याद ने डोलोरेस को जैसे हिम्मत बंधायी। उसने अपने आपसे कहा, 'मैं भी रियान परिवार की सदस्या हूं। मैं भी आंसू नहीं बहाऊंगी।' फिर वह बुदबुदा उठी, 'ओह जिम्मी, मैं वचन देती हूं कि मैं तुम्हें कभी न भूलूंगी। ऐसा जीवन जिऊंगी कि तुम मुझ पर गर्व करोगे।'

डोलेरेस को अपने बचपन की, घर की, माता-पिता की स्मृतियों ने झकझोर दिया। उसे नीटा की भी याद आयी। नीटा—उसकी बहन। यों, संसार की सभी पत्रिकाओं के लिए डोलोरेस विश्व की सुंदरतम महिलाओं में से एक थी, पर उसने स्वयं नीटा को अपने से सुंदर, अपने से सौभाग्यशाली माना था। अगर ऐसा न होता तो लार्ड नेलसन ने उसके प्रेम को ठुकराकर नीटा से शादी न की होती।

डोलोरेस की आंखों के आगे वे दिन भी तैर गये, जब वह संयुक्त राष्ट्र संघ में अनुवादिका के रूप में कार्य कर रही थी। और यहीं तो एक दिन उसकी जिम्मी से भेंट हुई थी।
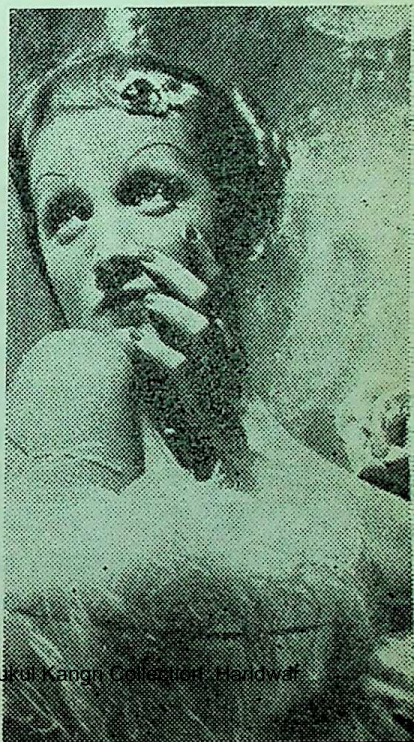
जिम्मी में एक अनोखा आकर्षण था। औरों की भांति तब उसके लिए भी वह जेम्स टी. रियान था ! जेम्स टी. रियान— अमरीका का युवा, लोकप्रिय सीनेटर। वह हालीवुड के अभिनेताओं की तरह सुंदर, हंसमुख और आकर्षक था। उसकी किशोरों-जैसी मुसकान हर परिचित-अपरिचित को बांध लेती थी।

इसी बीच नीटा लंदन से न्यूयार्क आयी। उसकी शान-शौकत देखकर डोलोरेस की आंखें फट गयी थीं। ओफ् ! इतनी कीमती वेशभूषा ! उसकी सारी देह मूल्यवान हीरों से जैसे जड़ी हुई थी। जब दोनों बहनें एकांत में मिलीं तो नीटा ने डोलोरेस को बताया था—'आजकल लार्ड का एक इतालवी अभिनेत्री से प्रेम संबंध है। वह उसके पीछे दीवाने-से हैं, पर मुझे इन सब बातों की रत्ती भर भी परवाह नहीं है। मेरे पास लंदन में तीस कमरों का एक शानदार फ्लैट है। नौकरों की पूरी फौज है। मेरी हर इच्छा [illegible] मारते पूरी हो जाती है। डोलो, यही [illegible] वास्तविक जीवन है—सुख-संपत्ति [illegible] बिना जीवन में रखा क्या है ?'

नीटा की इन बातों से डोलोरेस [illegible] आश्चर्य हुआ था—विचित्र दृष्टिकोण है [illegible]

एक दिन जिम्मी और डोलोरेस विवाह सूत्र में भी आबद्ध हो गये थे।

जिम्मी ने राजनीति को अपना [illegible] क्षेत्र चुना था। वह अपने राष्ट्र के सर्वो[illegible] पद पर पहुंचकर अमरीकी जीवन में [illegible] क्रांति लाना चाहता था। इसीलिए [illegible] जिम्मी ने राष्ट्रपति का चुनाव लड़ा [illegible] तब अमरीकी युवकों ने, कोयला [illegible] मजदूरों ने उसकी विजय के लिए [illegible] जान लड़ा दी थी। डोलोरेस ने भी जि[illegible] के चुनाव में दिन-रात काम किया था [illegible] एक दिन वह भी आया, जब जिम्मी [illegible]

प्रस्तुत सार-संक्षेप का सीधा संबंध जैकलीन केनेडी से न होते हुए भी, परोक्ष-रूप से जैकलीन के जीवन पर निश्चित रूप से आधारित है। केनेडी की गिनती अमरीका के लोकप्रिय और महान राष्ट्रपतियों में की जाती है। उनकी हत्या के बाद उनकी पत्नी सुंदरी जैकलीन के लिए ऐसी कोई आर्थिक स्थितियां नहीं थीं जो जिंदगी में कभी भी उन्हें परेशान करतीं। इसके बावजूद अपने स्वर्गीय पति के मान-सम्मान की रक्षा का ध्यान किये [illegible] आयु में लगभग दुगुने अधिक ओनासिस [illegible] जैकलीन ने विवाह किया। विवाह होते [illegible] अमरीका में खासा विवाद खड़ा हो [illegible]

यह जैकलीन का दुर्भाग्य है कि ओना[illegible] सिस की मृत्यु हो गयी। पता लगा है [illegible] वे अब फिर एक ऐसे बड़े उद्योगपति [illegible] विवाह कर रही हैं जिसकी आयु ६२ [illegible] है।

आखिर यह सब क्यों ? जैक[illegible]

राष्ट्रपति पद की शपथ ली। अब डोलोरेस 'प्रथम महिला' थी। अखबार उसे 'संसार की सुंदरतम स्त्रियों में से एक' कहते थे। यह सम्मान डोलोरेस को बेहद पसंद था।

जब जिम्मी और डोलोरेस की शादी हुई थी तब उसने सोचा था कि वह जिस वस्तु की इच्छा करेगी, वह उसे तत्काल मिल जाएगी पर जब उसने जूतों के दस जोड़े खरीदे तो जिम्मी पहली बार उसके साथ उलझ पड़ा था; 'तुम एक ही समय में भला जूतों के दस जोड़े कैसे पहन सकती हो ? हम अधिक धनी नहीं हैं। जरा सोचो तो यह फिजूलखर्ची . . .।' राष्ट्रपति बनने के बाद भी जिम्मी ने फिजूलखर्ची पर इसी तरह का अंकुश रखना चाहा। इसीलिए जब इस घटना के कुछ सप्ताहों के बाद नीटा ने न्यूयार्क आकर जूतों के दो दर्जन जोड़े और फर के तीन मूल्यवान कोट खरीदे तो डोलेरेस केवल मुसकराकर रह गयी। पर एक बात का अब भी उसे गर्व था—वह संयुक्त राज्य अमरीका की प्रथम महिला थी।

विमान वाशिंगटन पहुंच चुका था। वह विमान से बाहर निकली। प्रेस-फोटोग्राफरों के कैमरे गति में आ गये। वह शुष्क आंखों के साथ वहां खड़ी रही। उसका देवर, जिम्मी का छोटा भाई, माइकल उसकी प्रतीक्षा में था। वह उसे अपने साथ लिये मनुष्यों के समुद्र में से निकाल ले गया। वह इस समय अपने आपको बेहद अकेला और उदास महसूस कर रही थी।

जिम्मी की अंत्येष्टि-क्रिया के कुछ दिनों बाद वह अपने बच्चों के साथ नीटा के पास लंदन चली गयी। नीटा अब बैरन एरक पर आसक्त थी। वह उससे शादी करने के लिए पागल थी।

की शारीरिक आवश्यकताएं इसका कारण नहीं हो सकतीं, शायद धन-संपत्ति भी नहीं। संभवतः महान राष्ट्रपति केनेडी की सत्ता को देखते हुए सत्ता-स्वामिनी बनने का कोई फोबिया जैकलीन के निर्णयों के पीछे है। उसे ओनासिस के हजारों कर्मचारियों पर शासन करने का अवसर मिला। यही अवसर वह नये विवाहसूत्र में ढूंढ़ रही है। प्रश्न है कि क्या हर नारी ऐसे ही अधिकार की भूखी है ?

लंदन में कुछ समय बिताकर वह पुनः न्यूयार्क लौट आयी। यहां उसने ढाई लाख डालर में एक अपार्टमेंट खरीदा। छह महीने उसकी सजावट में लग गये। जब घर पूरी तरह सज गया तब उसका एकाकीपन जैसे और अधिक गहरा हो गया। वह कहीं बाहर भी नहीं जा सकती थी। अमरीकी राष्ट्रपति की दुखी विधवा का रूप उसे हमेशा बनाये रखना होता था।

जिम्मी की बरसी पर एक बार फिर सारा राष्ट्र उदास हो गया। अपने पति की पुण्यतिथि के समारोहों से वापस आकर डोलोरेस ने अपने वस्त्रों का निरीक्षण किया। उसके सभी कपड़े पुराने हो चुके थे। उसके दिल में टीस-सी उठी।

जिम्मी के कारण समूचा अमरीका डोलोरेस से स्नेह करने लगा था। उसकी मृत्यु के बाद इस स्नेह में सहानुभूति भी आ मिली थी। पर सारा राष्ट्र उससे त्यागमयी विधवा के व्यवहार की अपेक्षा करता था। इसलिए वह काफी सतर्क, काफी संयत रहती थी।

एक दिन डोलोरेस की मुलाकात एडी से हुई। एडी एक युवा फिल्म-निर्माता था। शुरू में डोलोरेस खिंची-खिंची रही, पर फिर एडी को खाने पर बुलाने लगी।

इसी बीच एक समारोह में उसकी नजर बैरी हनीज पर पड़ी। बैरी हनीज अमरीका के एक दिवंगत उपराष्ट्रपति का बेटा था। उसका विवाह एक काफी अधेड़ पर अरबपति महिला से हुआ था।

हनीज के सामने एडी का व्यक्तित्व उसे फीका लगने लगा। उसने हनीज के सम्मान में एक पार्टी भी दी, पर उस पार्टी में स्वयं हनीज ही नहीं आ पाया। निराश-उदास डोलोरेस ने उसके नाम कई पत्र लिखे और फाड़ दिये।

इसी समय उसे नीटा का तार प्राप्त हुआ। उसने लिखा था, 'मेरे लिए न्यूयार्क में दस-बारह कमरों का एक अपार्टमेंट तलाश कर लो। चित्रकार होरेश्यो होर्नर अगर तुम्हें फोन करे तो उसे बता दो कि मैं रविवार को आ रही हूं। वह मुझे एयर-

पोर्ट पर मिले।'

नियत समय पर नीटा न्यूयार्क पहुंची। उसकी शान-शौकत में जरा भी अंतर न आया था। उसने डोलोरेस को बताया कि 'मैं अभी भी वैरन से प्रेम करती हूं।'

पर शीघ्र ही डोलोरेस को मालूम हो गया कि नीटा वैरन एरक से नहीं, वरन उसकी संपत्ति से प्रेम करती है।

इधर वह स्वयं हनीज के प्रेमपाश में आवद्ध हो गयी थी। हनीज का विचार था कि डोलोरेस लखपति है, पर जब उसे वास्तविकता का पता चला तब उसे निराशा हुई। पर डोलोरेस ने उसकी वांहों को थामते हुए कहा, "मैं शादी न करूंगी। यूं ही सारी उमर तुम्हारे साथ रहूंगी।"

हनीज और डोलेरेस के प्रेम-संवंधों का किसी को पता न था, फिर भी एक दिन अखबारों में उनके नामों की चर्चा हो ही गयी। डोलोरेस को लगा, चित्रकार होरेश्यो होरेस को ही नीटा से इसकी भनक लगी होगी और उसी ने अखबारोंवालों को यह खबर दी होगी। उसका मन घृणा से भर उठा।

इसी तरह एक वर्ष बीत गया। इस बीच नीटा इस वर्ष में दो बार लंदन गयी। एक बार अपने पति से मिलने और कुछ मामले तय करने और दूसरी बार बैरन एरक की तलाश में। पर डोलोरेस को अपनी बहन की इस दीवानगी से अधिक दिल-चस्पी न थी। वह स्वयं हनीज के साथ विवाह का विचार कर रही थी। कुछ दिनों के लिए हनीज अपनी बीवी के साथ बाहर चला गया तो डोलोरेस को उसके विना समय विताना कठिन हो गया था।

नीटा लंदन जा रही थी। डोलोरेस के बच्चों को छुट्टियां थीं। डोलोरेस ने नीटा के साथ लंदन चलने की इच्छा प्रकट की, पर नीटा ने उसे अपने साथ ले जाने से इनकार कर दिया। बोली, 'डोलो, तुम्हारी अब भी ख्याति है। अमरीकी राष्ट्रपति की विधवा के रूप में तुम पर अखवारों की निगाह रहती है। यदि तुम मेरे साथ लंदन गयीं तो तुम्हारी ख्याति से मेरी योजना को नुकसान पहुंचेगा।' डोलोरेस को एक झटका-सा लगा। क्या वह इतनी बदनाम हो चुकी है! अपने बच्चों को लेकर वह अपनी सास श्रीमती बर्जट के घर चली गयी। एक दिन वहीं उसे नीटा का तार मिला—'तत्काल लंदन चली आओ।'

सास से परामर्श कर एक दिन डोलो-रेस अकेले ही लंदन रवाना हो गयी।

लंदन हवाई-अड्डे पर लार्ड नेलसन और नीटा उसके स्वागत के लिए खड़े थे। वे उसे अपने फ्लैट में ले गये। वार्ता-लाप के दौरान डोलोरेस को पता चला कि नीटा एक बहुत बड़ी दावत दे रही है जिसमें बैरन एरक भी आयेगा। लार्ड नेलसन ने कहा, "मेरी पत्नी को बैरन एरक पसंद है, हालांकि वह और उसकी प्रेमिका ल्यू-मेला दोनों बड़े बोर हैं, पर कुछ स्त्रियों के लिए धनी लोग सचमुच बड़ा आकर्षण रखते हैं।"
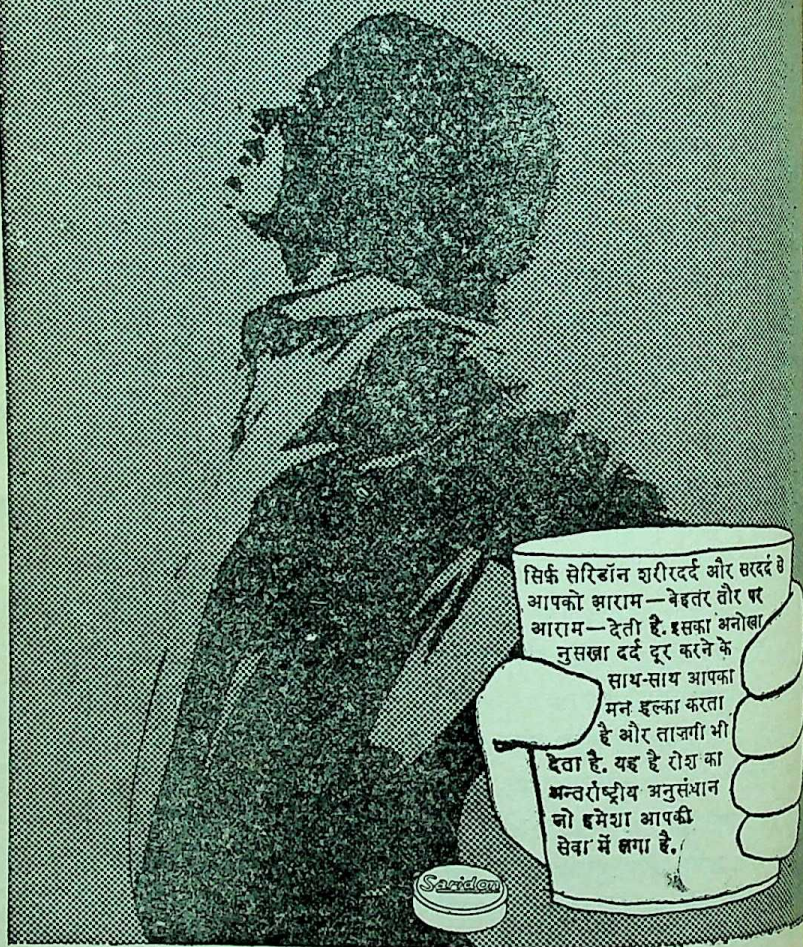
जब दोनों बहनें अकेली बैठीं तो नीटा ने एरक की चर्चा छेड़ दी। डोलोरेस ने चिढ़कर कहा, "तुम बार-बार उस बैरन एरक की बात क्यों करती हो?"

"क्योंकि वह तुमसे शादी करना चाहता है।"

डोलोरेस चौंक उठी।

नीटा ने कहा—"चौंको मत, उसने स्वयं मुझसे कहा है। मैं भी यही चाहती हूं कि तुम उससे शादी कर लो आगे नीटा ने कहा, पिछले दिनों मैंने उसके साथ एक शाम बितायी थी। मैंने उसे प्लेटीनम का एक सिगरेट-केस उपहार में दिया और कहा कि मैं उससे प्रेम करती हूं। उसने मेरे सिर को हिलाते हुए कहा, अच्छी लड़की, तुम मुझसे प्रेम नहीं करती हो। तुम मेरी संपत्ति से, मेरे अधिकार से प्रेम करती हो, पर मैं तुम्हारी बहन से शादी करना चाहता हूं, यह सुनकर मैं रोने लगी तो उसने मुझे सांत्वना बंधायी और कहा, तुम स्वयं धनिक हो। तुम्हें रुपये की इतनी अधिक जरूरत नहीं है। तुम्हारा पति भी धनी है, तुम्हें निर्वाह करना चाहिए। तुम्हें एक करोड़ डालर की रकम के करमुक्त बांड दूंगा, पर एक शर्त है, तुम्हारी बहन मुझसे शादी करने पर सहमत हो जाए।"

"पर क्यों? वह मेरे साथ शादी क्यों करना चाहता है?" डोलोरेस ने विस्मय से पूछा।

"मैं कुछ नहीं जानती," नीटा ने कहा, "मेरे लिए तो एक करोड़ डालर का महत्त्व है। डोलोरेस, तुम यह प्रस्ताव स्वीकार कर लो। उसके साथ शादी करने से तुम्हें दुनिया की हर चीज उपलब्ध होगी। सुख-सुविधा, दौलत, समुद्री-जहाज, हवाई-जहाज...। और फिर शादी के समझौते के अधीन वह तुम्हें एक करोड़ डालर की रकम नकद देगा। यदि तुम बाद में उसे तलाक देना चाहो तो...वह तुमसे यह राशि भी वापस न लेगा। यदि किसी कारण वह तुम्हें तलाक देना चाहे तो वह तुम्हें पांच करोड़ डालर देगा। उपहार भी वापस न लेगा।"

"सिवा प्रेम के..." डोलोरेस ने कहा, "सुनो नीटा, मेरा उत्तर 'नहीं' में है।"

उसी शाम नीटा द्वारा आयोजित भोज-समारोह में डोलोरेस ने बैरन एरक को देखा। वह बासठ वर्ष का हृष्ट-पुष्ट, स्वस्थ पुरुष था। जब उसने डोलोरेस को नृत्य करने का निमंत्रण दिया तो वह उठकर उसके साथ नृत्य करने लगी।

"तुमने मेरा प्रस्ताव क्यों ठुकरा दिया," बैरन एरक ने पूछा।

"मुझे तुमसे प्रेम नहीं।"

बैरन एरक ने उसे गौर से देखते हुए कहा, "शादी और प्रेम का भला क्या संबंध! तीन बच्चों की मां, एक सुंदर स्त्री, तीस हजार डालर वार्षिक में किस प्रकार अपना गुजर कर सकती है?"

डोलोरेस ने पूछा, "तुम्हें मुझसे कब प्रेम हुआ?"

कुछ चीज़ें
ऐसी हैं जिन्हें
बिन्नी भी
कभी नहीं
बदलना चाहेंगे!

शुक्र है,
कुछ चीज़ें कभी नहीं बदलतीं!

यह देख कर बहुत ही ज़्यादा खुशी होती है कि आज भी
लोगों में खुशियों की एक सहज, ऐच्छिक उमंग है या यों कहिये कि
आज भी बिन्नी की उत्कृष्टता का वही अटल स्तर है, वही आश्वासन।
देखा आपने? बिन्नी ने अपने कपड़ों में टिकाऊपन
और फ़ैशन का कितना सुन्दर संगम किया है। रंगों का अम्बार
है और डिज़ाइनों की भरमार। रंग और डिज़ाइन
इतने बेशुमार कि बिन्नी टेरीन मिश्रित कपड़ों
से अपने वस्त्रों की योजना बनाना
बड़ा दिलचस्प रहेगा और
दुविधाजनक भी!

फ़ैशनेबल फिर भी टिकाऊ —
केवल बिन्नी ही की बुनावट का कमाल!

Interpub/BB/55/75 H

बैरन एरक मुसकराया, "प्रेम... मैंने तो प्रेम का दावा नहीं किया। मैं तो तुमसे शादी करना चाहता हूं।"

डोलोरेस ने पूछा, "आखिर तुम मुझसे ही शादी क्यों करना चाहते हो?"

बैरन एरक मुसकराया, "मैंने एक बार शादी की। फिर तलाक दिया। दूसरी बार शादी की। मेरी पत्नी मर गयी। वर्षों से अंतर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त एक नर्तकी मेरी रखैल है। सारी दुनिया उसके बारे में जानती है। तुम्हारे साथ शादी करने से मेरी प्रतिष्ठा बढ़ेगी। अमरीका के सर्वप्रिय युवा राष्ट्रपति की विधवा बैरन एरक से शादी कर रही है, इस समाचार से सारी दुनिया चौंक उठेगी। तुम्हारी-जैसी एक महत्त्वपूर्ण स्त्री से शादी... वाह!"

"पर तुम एक बात तो भूल गये..." उसने कहना चाहा, लेकिन बैरन एरक ने उसका वाक्य पूरा न होने दिया और बोला, "प्रेम की बात न करना। तुम अब स्कूल की लड़की तो हो नहीं!"

डोलोरेस ने जल्दी से कहा, "मुझे खेद है। मैं तुम्हारे साथ शादी नहीं कर सकती।"

नीटा के भोज-समारोह में भाग लेने के बाद डोलोरेस पुनः न्यूयार्क लौट आयी। जीवन का पहिया फिर पुरानी राह पर चलने लगा। हनीज से वह प्रायः रोज मिलती।

एकाएक हनीज की पत्नी बीमार हो गयी और उसे लेकर हनीज को समुद्री-यात्रा पर जाना पड़ा। यात्रा में उनके साथ डैवी मोरो नामक एक करोड़पति अधेड़ महिला भी थी। विदा के समय हनीज ने डोलोरेस को अपने सीने से लगाते हुए उदास स्वर में पूछा, "डोलो, हम-जैसे प्रेम करनेवाले गरीब क्यों होते हैं?"

छह सप्ताहों बाद हनीज वापस आया तो पहले से ज्यादा स्वस्थ और सुंदर था। अब उनका जीवन फिर से आनंदमय हो उठा। वे किशोर प्रेमियों की तरह मिलते, बात करते, घूमते।

एक दिन हनीज की पत्नी पक्षाघात का शिकार हो गयी। अब वह डोलोरेस से पहले की भांति नहीं मिलता। एक रात की बात है, डोलोरेस सोने जा रही थी कि हनीज का फोन आया, "वह मर गयी है।"

"कब...कैसे? ओह मेरे भगवान!"

"दस मिनट हुए। वह मर गयी। उसका भाई इस समय यहां मौजूद है। समय मिलते ही मैं फिर फोन करूंगा।"

दो दिन के बाद हनीज बिना सूचना दिये उसके घर पहुंच गया। वह बड़ा उदास नजर आ रहा था। उसने डोलोरेस को बताया, "मैं अभी वकील के पास से आ रहा हूं। मेरे साथ धोखा हुआ। मेरी पत्नी को सदा यह खतरा लगा रहता था कि यदि वह मुझसे पहले मर गयी तो मैं किसी तरुणी से शादी कर लूंगा। और तो और, उसने अपने सारे गहने और हीरे-जवाहरात एक रिश्तेदार

के नाम लिख दिये हैं। मेरे लिए उसने कुछ भी तो नहीं छोड़ा। बस, मुझे हर वर्ष पचीस हजार डालर मिलेंगे। पर टैक्स भी मुझे ही चुकाना पड़ेगा, मुझे! मैं उसके मकानों और बंगलों में मुफ्त रह सकता हूं। पर शर्त यह है कि पैंसठ वर्ष की आयु तक शादी न करूं। पैंसठ वर्ष की आयु में शादी न करने की अवस्था में पचास लाख डालर दिये जाएंगे और यदि मैं शादी कर लूं तो एक पैसा न मिलेगा, जरा सोचो . . . ! "

"पर यह वसीयत कानून के अनुसार तो नहीं हो सकती ?" डोलोरेस ने कहा।

"मेरी अपनी गलती है। जब मैंने उसके साथ शादी की थी तब उसने एक दस्तावेज पर मेरे हस्ताक्षर कराये थे।"

डोलोरेस को हनीज पर बड़ी दया आ रही थी। उसका मन हुआ, वह उस पर अपना सब कुछ न्योछावर कर दे। वह बोली, "सुनो! मुझे इस अपार्टमेंट की ऐसी जरूरत नहीं है। हम क्यों न इसे बेच दें। यदि मैं अपनी सास को बता दूं कि मैं तुमसे प्रेम करती हूं तो वे भी हमारी सहायता को तैयार हो जाएंगी। हम दोनों के नाम एक हो जाएंगे तो तुम्हें भी ख्याति प्राप्त होगी। तुम फिर से वकालत शुरू कर सकते हो।"

हनीज उसकी बातें ध्यान से सुनता रहा, पर उसके चेहरे की उदासी दूर न हुई। उसने निराश स्वरों में कहा, "हम लोग शादी के बाद भी सुखी-संपन्न न हो सकेंगे। पर अभी से इसकी चिंता भी क्यों की जाए। यों भी मैं एक वर्ष तक विवाह नहीं कर सकता।"

डोलोरेस ने कहा, "ठीक है, एक वर्ष तक मैं प्रतीक्षा करूंगी।"

क्रिसमस के दिन सुख से बीते। हनीज के प्रेम ने डोलोरेस को जीवन की सारी खुशियां प्रदान कर दी थीं। वह हनीज को अपनी सास से भी मिलवाने ले गयी। बुद्धिमान वृद्धा क्षण भर में भांप गयी कि उसकी भूतपूर्व बहू और हनीज एक-दूसरे से प्रेम करते हैं। उसे भी यह जोड़ा दिल से पसंद आया था। समय बीतता गया।

कुछ समय बाद जब डोलोरेस वापस न्यूयार्क पहुंची तो उसने सबसे पहले हनीज को फोन किया। उसे पता चला कि वह बरमूडा गया हुआ है। वह निराश हो गयी।

एक दिन शाम वह खासी बेचैन थी। उसने दरवाजे की घंटी की आवाज सुनी। वह उठकर दरवाजे तक गयी। वहां 'न्यूज' अखबार पड़ा था। वह उसे उठाकर शयनकक्ष में चली आयी और उसके पृष्ठ उलटने लगी। एकाएक वह चौंक पड़ी। एक पृष्ठ पर हनीज और डैबी मोरो का चित्र छपा था, और उसी के साथ यह समाचार भी कि उसने कुछ दिन पूर्व बरमूडा में डैबी मोरो से शादी कर ली है। हनीज के व्यवहार ने उसे पागल-सा बना दिया था।

"पैसा. . .पैसा. . .दौलत !" सहसा वह बिस्तर से उठी और उसने लंदन अपनी बहन नीटा को फोन किया।

"डोलो! कुशल तो है? इस समय फोन क्यों किया?" नीटा ने पूछा।

डोलोरेस एक क्षण चुप रही। फिर उसने कहा, "पहले ही बहुत देर हो चुकी है। अब मैं अधिक प्रतीक्षा नहीं कर सकती। मुझे इतना बता दो कि क्या बैरन एरक अब भी मेरे साथ शादी करने को इच्छुक है?" नीटा चौंक उठीं, "क्या सच-मुच तुम उससे शादी करना चाहती हो?"

डोलोरेस ने उत्तर दिया, "हां! मैंने फैसला कर लिया है।"

दूसरी ओर से नीटा ने कहा, "अच्छा तो मैं पता कर फोन करूंगी।"

एक घंटे के बाद नीटा ने उसे फोन पर बताया, "बैरन एरक अब भी तुम्हारे साथ शादी करना चाहता है। हां, अपना वजन बीस पौंड कम कर दो। उसे पेंसिल की तरह दुबली-पतली स्त्रियां पसंद हैं, और सुनो, जब तुम अपना वजन बीस पौंड कम कर लो तब उसे फोन कर देना। वह हर मामला तय कर देगा।"

दूसरे दिन डोलोरेस एक डॉक्टर के पास परामर्श के लिए गयी और उसकी सलाह के अनुसार उसने आहार और व्यायाम से अपना वजन कम करना शुरू कर दिया। पांच सप्ताहों में वह बाइस पौंड वजन कम कर चुकी थी। उसने उसी दिन नीटा को सूचना दे दी और उसी दिन दोपहर बाद उसे गुलाब के दर्जन भर फूलों का शान-दार उपहार मिला। उससे अगले दिन दोपहर के समय बैरन एरक उसके घर आया। उस समय डोलोरेस ने स्याह स्वेटर और स्याह स्लैक्स पहन रखे थे। वह काफी दुबली-पतली दिखायी दे रही थी। बैरन एरक उसे गौर से देखते हुए बोला, "तुमने खूब वजन घटाया है। हां, अब शादी की बात! मैं चाहता हूं कि शादी मेरे ग्रामीण निवासस्थान पर हो। यह पेरिस से अठारह मील की दूरी पर स्थित है। तुम्हारी बहन उन अतिथियों की सूची तैयार कर रही है। क्या हम यह समाचार प्रेस में दे दें?"

"अखबारों में यह समाचार छपने से पहले एक महत्त्वपूर्ण काम करना आव-श्यक है," डोलोरेस ने कहा, "मेरे साथ वर्जी-

वो दो जो मेरी साँसों में बसा करते हैं—
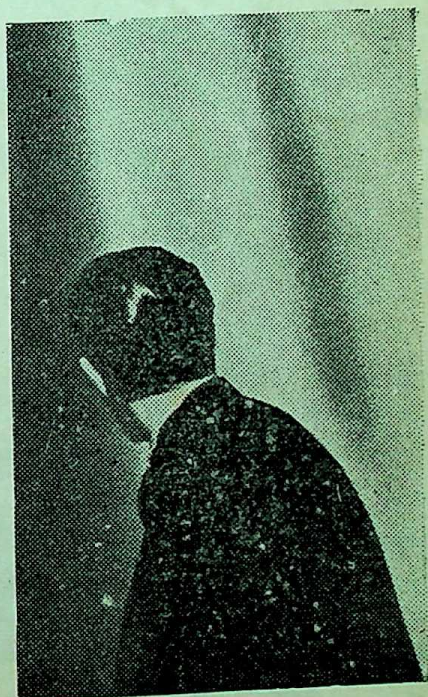
एक तुम...

सच, बिनाका ग्रीन की निर्मल ताज़गी में बसीं मेरी साँसें... और मेरी हर साँस में समाए तुम! मुझे तुमसे प्यार है... मुझे बिनाका ग्रीन से प्यार है क्योंकि क्लोरोफ़िलयुक्त बिनाका ग्रीन में पाये जाने वाले प्राकृतिक गंधनाशक से मेरी साँसों में फूल खिल जाते हैं... आह! वह बहार... तुम्हारे साथ गुज़रे वह सुनहरे क्षण... वह महका महका सा मेरी साँसों का मधुबन!

एक बिनाका ग्रीन...

CIBA-GEIGY

महकी साँसों का मधुबन

बिनाका टूथब्रश की गोल बनायी गयी नोकें [illegible] छिलने से बचाती हैं।

Rediffusin CG/194/0 H

निया चलकर मेरी सास से मिलें।"

कुछ समय बाद वह बैरन एरक के हवाई जहाज में थी। हवाई जहाज में बैरन ने उसे सेमल का एक मूल्यवान कोट देते हुए कहा, "यह कोट पहन लो। कल तुम्हें जरूरत की हर चीज मिल जाएगी।" कोट पहनते हुए डोलोरेस ने आंखें बंद कर लीं।

डोलोरेस जब बैरन एरक को लेकर अपनी सास के पास पहुंची तब वह कुछ हिचकिचा रही थी, पर श्रीमती वर्जट उसे बैरन एरक के साथ देखकर बिलकुल विस्मित न हुईं। उन्होंने बड़ी उदारता से बैरन एरक का स्वागत किया। बैरन एरक ने बड़े आदर से कहा, "मैं आपकी बहू से शादी करना चाहता हूं और आपसे अनुमति लेने आया हूं।"

श्रीमती वर्जट एक क्षण तक उसे गौर से देखती रहीं। फिर बोलीं, "क्या मैं डोलोरेस से कुछ क्षणों के लिए एकांत में बातचीत कर सकती हूं!"

बैरन एरक ने मुसकरा कर सिर झुका लिया और दूसरे कमरे की ओर चल दिया। डोलोरेस अपनी सास के पीछे-पीछे एक छोटे-से कमरे में आ गयी।

"यह कोटउतार दो। अप्रैल में 'सेमल' पहनने की क्या तुक है भला! तुम उसे कब से जानती हो?"

"उसने एक वर्ष पहले मुझसे शादी करने की बात की थी। तब मैंने उसे साफ इनकार कर दिया था।"

"तो अब तुमने अपना फैसला क्यों बदल लिया?"

"अब मैं युवा नहीं हूं। मेरी उमर बढ़ती ही जा रही है। मैं तीस हजार डालर वार्षिक से अपना खर्च कैसे पूरा कर सकती हूं। मैं मुद्दत से नीटा से ऋण लेकर काम चला रही हूं।"

"यदि तुम मुझे बतातीं तो मैं तुम्हारे लिए पैसों का प्रबंध कर देती।"

"यह अस्थायी स्थिति तो है नहीं। मेरे व्यय बढ़ते ही चले जाएंगे। दोनों बेटे कालेज में प्रवेश करेंगे। मेरी भी कालेज जाएगी। बच्चों को वैसे भी पिता की जरूरत होती है।"

"पर वह तो उमर में उनका दादा लगता है।"

डोलोरेस ने झुककर अपना सिर सास की गोद में रख दिया, "मैं अकेली हूं। अकेलेपन ने मेरा जीना दूभर कर दिया है। आपके सिवा मेरा कोई हमदर्द भी नहीं। मेरा कोई दोस्त भी नहीं। मैं थक चुकी हूं। मैं स्त्री की बजाय एक प्रतीक बन चुकी हूं—एक राष्ट्रपति की दुखी विधवा की प्रतीक।"

"पर यह आदमी... ! तुम किसी अन्य आदमी से शादी क्यों नहीं कर लेतीं? हनीज, मुझे बहुत पसंद है। तुम्हारी जोड़ी खूब रहती।"

"अब आपसे क्या कहूं।" डोलोरेस ने कहा। उसके स्वर में बेहद उदासी और नरमी थी, "मैं उसे हृदय की गहराइयों से प्रेम करती हूं, पर उसने दौलत के लिए

कहीं और शादी कर ली है। इस आघात ने तो मुझे बिलकुल हिला दिया है।"

श्रीमती बर्जंट की आंखें सजल हो गयीं; "ओह! हनीज ऐसा करेगा, यह तो मैं सोच भी नहीं सकती थी। तुमने जो फैसला किया है वह ठीक है।" यह कहकर वे उस कमरे की ओर चल दीं, जहां बैरन एरक उनकी प्रतीक्षा में था। श्रीमती बर्जंट ने अपना हाथ बैरन एरक की ओर बढ़ाते हुए कहा, "बधाई! आशा है कि आप मेरी बहू को सदा खुश रखेंगे।"

इसके बाद डोलोरेस के जीवन में अनायास ही तेज गति आ गयी। उन दिनों में ही उसका वजन दो पौंड और कम हो गया। उसकी अप्रत्याशित शादी का समाचार सारे संसार के अखबारों ने मोटी-मोटी सुर्खियों में पहले पृष्ठ पर प्रकाशित किया। शादी की संधि के दस्तावेज के लिए दोनों पक्षों के वकीलों की कई दिनों तक मुलाकातें होती रहीं। जब उस दस्तावेज पर हस्ताक्षर हो गये तब बैरन एरक डोलोरेस और उसके बच्चों को लेकर पेरिस रवाना हो गया। डोलोरेस के विवाह के निर्णय ने, विशेषकर बैरन एरक से विवाह के निर्णय ने अमरीकी जनता को स्तब्ध-सा कर दिया। समाचारपत्रों में उसके विवाह की घोषणा की तीखी प्रतिक्रियाएं हुईं। हजारों लोगों ने उसके नाम पत्र लिखकर उसे कोसा। ऐसे कुछ पत्र पढ़ने के बाद डोलोरेस फूट-फूटकर रोने लगी। बैरन एरक के कीमती उपहार भी उसकी वेदना कम नहीं कर पाये।

शादी के पूरे समारोह के दौरान डोलोरेस की निगाहें झुकी रहीं। क्यों उसमें अपने बच्चों तक से निगाहें मिलाने का साहस नहीं था। वह स्वयं को अपराधिनी-सी अनुभव कर रही थी।

मेहमान विदा हो चुके थे। घर खाली हो चुका था। डोलोरेस सुहाग-कक्ष में थी। उस समय वह साटन का नाइट-गाउन पहने थी। वह अपने सूने बिस्तर की ओर देख रही थी। सहसा द्वार खुला और बैरन एरक ने कमरे में प्रवेश किया। वेशभूषा से लगता था कि वह कहीं बाहर जाने की तैयारी में है।

"कहां जा रहे हो तुम?" डोलोरेस ने कुछ विस्मय से पूछा!

"अपनी ल्यूडमेला के पास। वह मेरी प्रतीक्षा कर रही होगी।" बैरन ने बड़ी शांति से उत्तर दिया। उसने डोलोरेस के साथ झूठ बोलने और धोखा देने का प्रयत्न नहीं किया था।

वह उसे बिना स्पर्श किये अकेली छोड़कर चला गया। वह अकेली ही ... वह शादी की अंगूठी को घूरने लगी। अर्द्ध-अंधकार में हीरा उसे अंगारे की तरह चमकता लग रहा था। डोलोरेस ने ... अपने साटन के नाइट-गाउन के साथ रख... फिर वह उसे एकटक देखती रही। ... खिड़की के बाहर फैले अंधकार पर नज़र डाली और अचानक फूट-फूटकर बच्चों जैसी बिलख उठी।

दी हिन्दुस्तान टाइम्स लिमिटेड की ओर से रामनन्दन सिन्हा द्वारा हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नयी दिल्ली में मुद्रित तथा प्रकाशित

चलते चलते

सुशील कालरा

अब फिक्र न करो मैंने राशन, घी, तेल इत्यादि लाने के लिए छुट्टियाँ ले ली हैं पहले बाल्टी दे दो, पानी से प्रारंभ करूं
आज तुम्हें पता चलेगा कि इतने दिनों में लाइनों में कैसे पिसती रही
१

भाई साहब, आप ने क्यों तकलीफ की, हम तो आपके घर की ओर ही आ रहे थे।
कहीं मैं सपना तो नहीं देख रहा
जल विभाग
२

इतना बढ़िया गेहूं और वह भी बिना लाइन, भगवान ने हमारी सुन ली
अरे भगवान ने नहीं, कहो सरकार ने सुन ली
राशन
३

अजी लद गये वह दिन, चाहो तो ड्रम उठा लो
मिट्टी का तेल
यह रातों-रात परिवर्तन कैसा, मुझे चलकर पता लगाना चाहिए
४

यह अचानक चहुंमुखी प्रगति कैसी
अजी देश में कमी है किस चीज़ की, यह तो विरोधियों की फैलायी हुई बात है।
बस इस बार हमारे हाथ मजबूत...
घी
चुनाव शीघ्र
५

करते रहो सदा कल्यान।
नित-नित आओ चुनाव-भगवान॥
६

मासिक
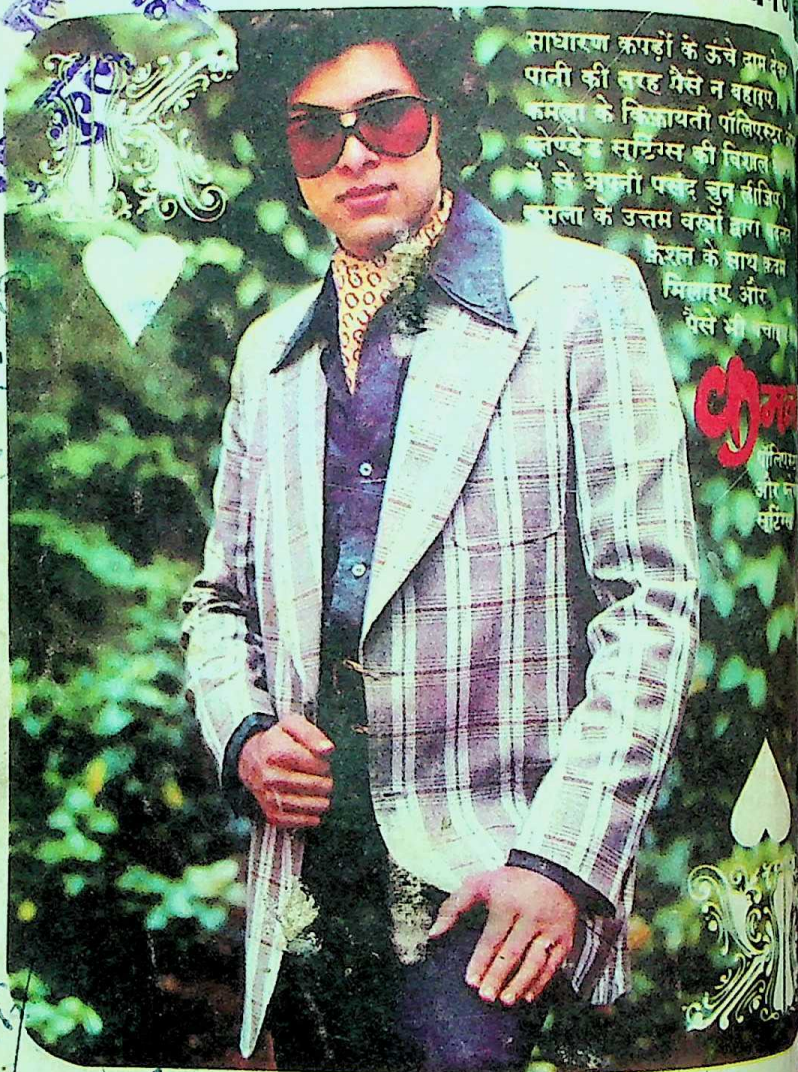
कादम्बिनी

भारतीय भाषाओं की विशिष्ट पत्रिका
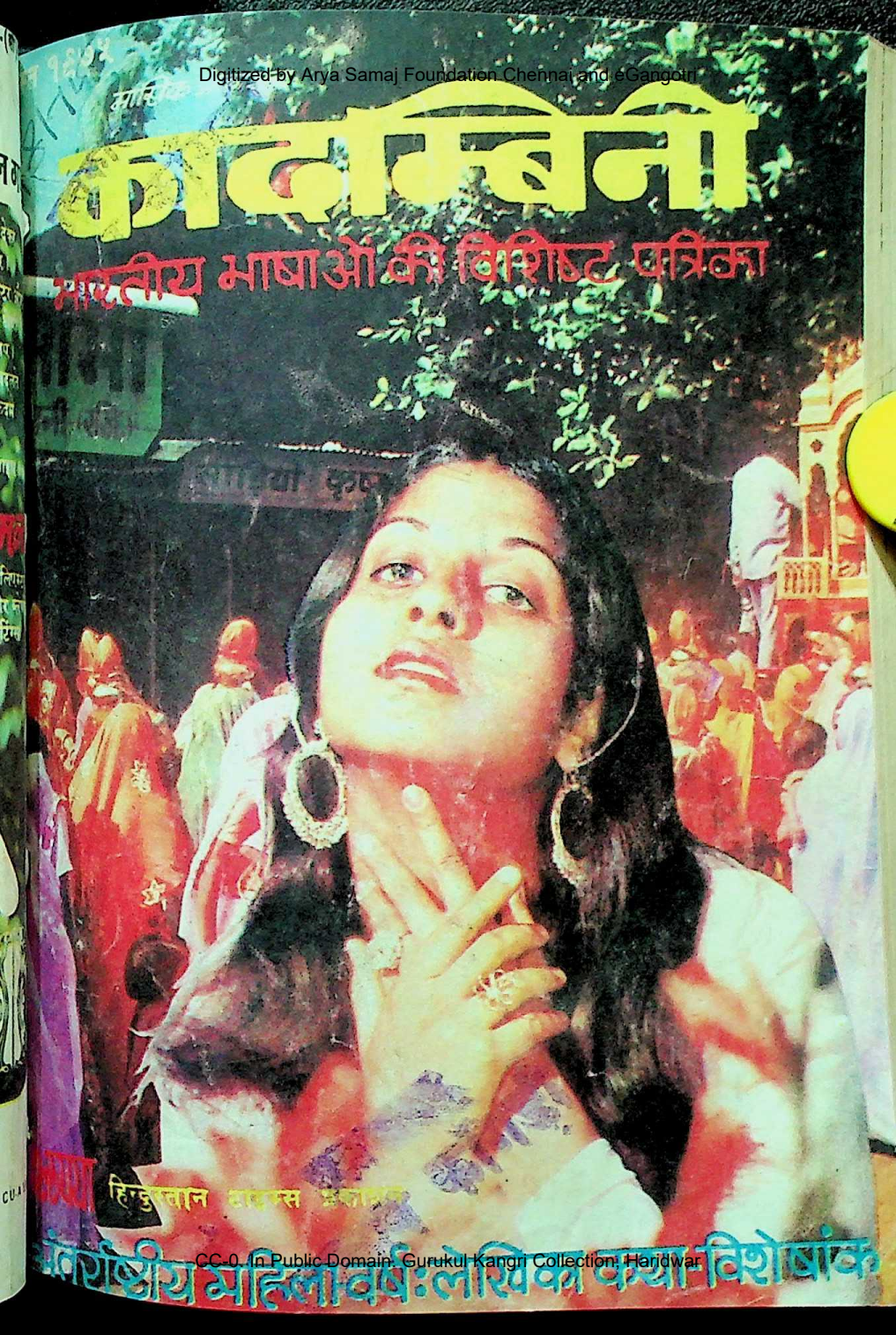
हिन्दुस्तान टाइम्स प्रकाशन

अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष : लेखिका कथा-विशेषांक

T.M. pdg.
Pat. pdg.

भारत में पहली बार

* ताज़ा और अच्छा दही
* अधिक पौष्टिक
* आरोग्य
* कम खर्चीला
* सुदृढ़ और हल्का
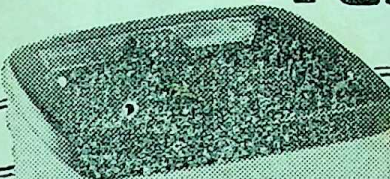
१० दिन की मुफ्त आज़माइश

खास रियायती मूल्य

© Mail Order Sales Pvt. Ltd., 15 Mathew Road, Bombay 400 004

अब दही बनाने के लिए आपको अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ेगी कर्ड-ओ-मैटिक दही बनाने की प्राकृतिक क्रिया में तेजी लाता है।

सामान्यत: दही बनाने के लिए ८ से ९ घंटे लग जाते हैं। अब आप इस काम को चौथाई समय में ही कर सकते हैं। आपको सिर्फ इतना ही करना पड़ेगा कि अन्दर के डिब्बे में गुनगुना दूध डालिए, उसमें थोड़ा सा दही मिलाइये और अन्दर के डिब्बे को कर्ड-ओ-मैटिक में रख दीजिए। पास के किसी भी ए. सी. बिजली से मशीन का प्लग लगा दीजिए और स्विच चालू कर दीजिए। आप निर्देश बल्ब में देखेंगे कि दही बनाने की प्रक्रिया उसी क्षण आरम्भ हो जाती है और दो घंटे के बाद आइये, एकदम गाढ़ा, ताज़ा और स्वादिष्ट दही तैयार मिलेगा। यह तरीका इतना सरल है कि एक बच्चा भी इससे दही बना सकता है।

कार्य-क्षम, स्वास्थ्यवर्धक और कम खर्च: कर्ड-ओ-मैटिक पहले से निश्चित किये गये तापमान को बड़ी सख्ती के साथ नियंत्रित करता है। इसलिए यह आपको साल में किसी भी समय, कहीं भी प्रतिकूल वातावरण के असर का सामना करके, दूषित किये बिना शुद्ध और बहुत ही पौष्टिक दही तैयार करके देता है।

कर्ड-ओ-मैटिक बहुत ही कम खर्चीला है यह १५ वाट के बल्ब से भी कम बिजली खर्च करता है

बिना जोखिम १० दिन की मुफ्त आज़माइश के लिए कर्ड-ओ-मैटिक मशीन को घर ले जाइये:

खास रियायती प्रारम्भिक मूल्य पर कर्ड-ओ-मैटिक प्राप्त कीजिए और अपने घर में परीक्षा कीजिए। पूरे १० दिन तक ताज़ा स्वादिष्ट दही बनाइये और यदि अंत में आप पूर्ण रूप से सन्तुष्ट नहीं हों तो शीघ्र पूरी रकम प्राप्त करने के लिए इसे लौटा दीजिए। आपकी आज़माइश हमारी कीमत पर होगी जो कि हमारे द्वारा मूल्य वापिस करने की गारंटी के अंतर्गत है। अन्यथा आप मशीन को अपने घर में वर्षों तक लाभदायक सेवा देने हेतु रख सकते है और ध्यान रखिये कि हम अपने विश्वास के प्रमाण में आपको तत्काल दही बनाने की मशीन के चलने की एक साल की गारन्टी देते हैं। आज ही कूपन भर कर भेजिए।

यह कूपन आज ही भेजिए

CM2-H

बैटर लिविंग प्रोडक्टस,
१५, मथ्यू रोड, बम्बई-४०० ००४

मैं कर्ड-ओ-मैटिक की आज़माइश करना चाहता हूँ मुझे १० दिन की अभ्यास योजना के अंतर्गत दही बनाने की मशीन भेजिए।

यदि मैं पूर्णत: सन्तुष्ट न हुआ तो इसे शीघ्र ही अपनी रकम प्राप्त करने के लिए लौटा दूंगा।

कृपया अपनी पसंद के खाने में ☑ निशान लगाइये। KD-2

☐ मैं रु. ८७ चैक/बैंक ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर सलग्न कर रहा हूँ।
☐ रु. ८७ का मनी आर्डर भेजा है। (मनी आर्डर रसीद नं...तारीख....
☐ वी.पी.पी. प्राप्त होने पर मैं डाकिये को रु. ८७ दूंगा

नाम..............
....
पता..............
....

बार बार पुरस्कृत राजेश खन्ना की नयी अदा पर फैशन की दुनिया एक बार फिर फिदा हो गयी है। बॉम्बे डाइंग की शर्टिंग और सूटिंग में। एक खूबसूरत वस्त्र-माला। हर रोज एक नया-ताजा डिजाइन। सिन्थेटिक शर्टिंग ५०/५०, ६७/३३, ८०/२० और १००% पॉलियस्टर प्रिन्ट्स, पॉलियस्टर डेनिम्स और टेक्स्चराइज्ड सूटिंग्स।

वस्त्रों की अनन्त बहार—हर रोज नया डिजाइन नया निखार।

कॅपितान पॉलियस्टर शर्टिंग
वाड्डीन पॉलियस्टर सूटिंग
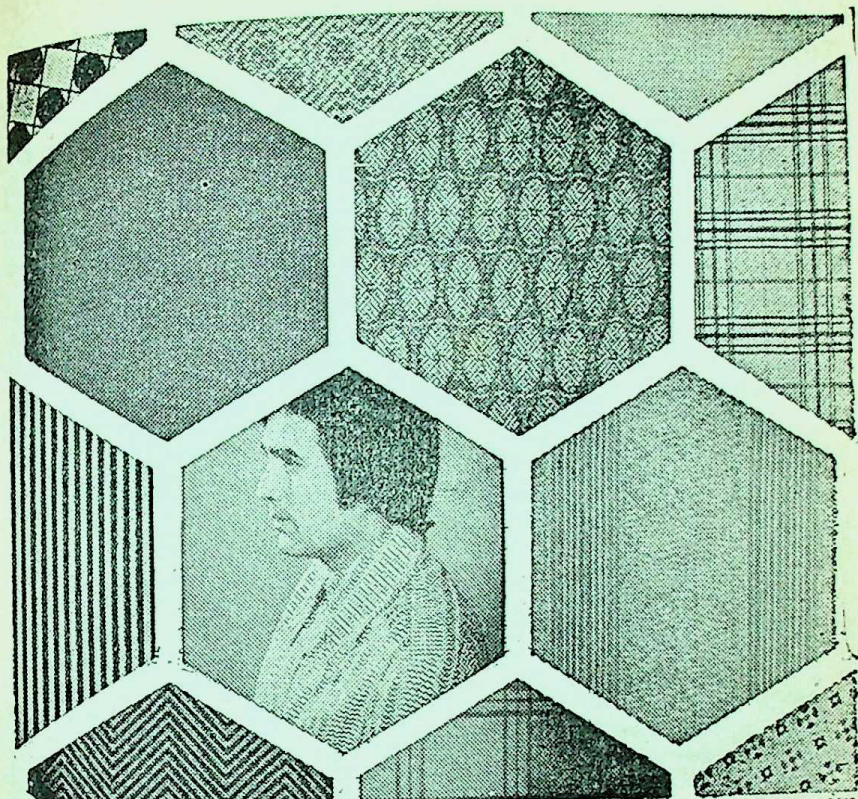
U-BDM-26 HIN
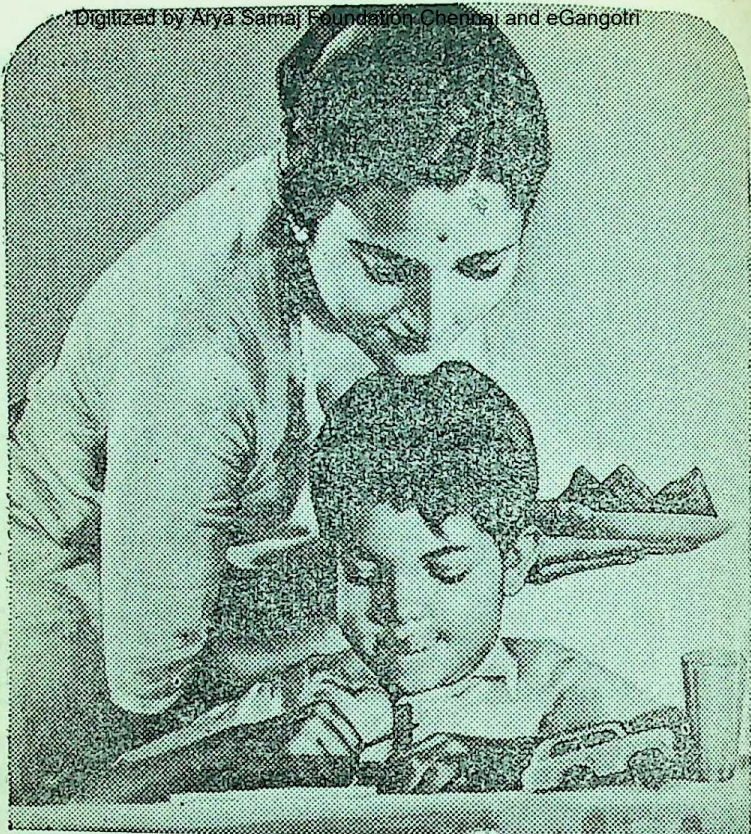
ममता की कसौटी पर खरा डालडा

शुद्ध स्वादिष्ट भोजन के लिए

क्योंकि डालडा में शुद्धता सीलबंद है. डालडा इस्तेमाल में आसान है — तेलों की तरह बहने, छलकने का नुकसान नहीं.

डालडा वनस्पति में पके खाने सचमुच बहुत स्वादिष्ट होते हैं. शुद्ध डालडा विटामिनों से युक्त है और पौष्टिक भी. इसीलिए तो आपकी ममता को इस पर पूरा विश्वास है.

डालडा — ३० वर्षों से भी अधिक समय से विश्वसनीय

लिंटास-DAL. 2-77 HI   हिंदुस्तान लीवर का एक उत्कृष्ट उत्पादन

एयर-इंडिया प्रस्तुत करती हैं सप्ताह में एकसठ उड़ानें—५ महाद्वीपों के लिए.

यूरोप

यूरोप के लिए सप्ताह में १२ उड़ानें

लंदन? आठ ७४७ विमानों को आपका इंतज़ार है. इनमें से दो केवल बेरूत हो कर जाते है, मंगलवार और शनिवार को. दूसरे छह में आपको रोम, पेरिस या फ्रैंकफ़र्ट हो कर जाने की सुविधा मिलती है. इसके अलावा दो ७०७ विमान जिनेवा होकर जाते हैं. मॉस्को? दो ७०७ विमान.
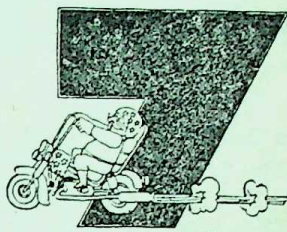
न्यू यॉर्क

न्यू यॉर्क के लिए सप्ताह में ७ उड़ानें

हर दिन ७४७ विमान की एक उड़ान. मध्य पूर्व और यूरोप होते हुए. हमारे विशेष एक्सकर्शन फ़ेयर के अन्तर्गत न्यू यॉर्क जा कर वापस लौटने का किराया आम तौर पर लगनेवाले एकतरफ़ा किराये से भी कम पड़ता है.
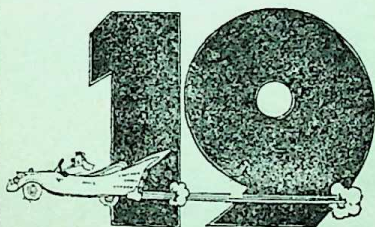
मध्य पूर्व

मध्य पूर्व के लिए सप्ताह में १९ उड़ानें

बेरूत? पाँच ७४७ विमान उड़ान भरने को तैयार. कुवैत? तीन ७४७ विमान और दो ७०७ विमानों में से आप मनपसंद चुनाव कर सकते हैं. दुबई के लिए चार ७०७ विमानों में से कोईसा भी चुनिए. बहरैन के लिए तीन उड़ानें; और आबू धाबी, मस्कत, कैरो और तेहरान में से प्रत्येक के लिए दो उड़ानें इसके अलावा अदन, दौहा या दहरान में से प्रत्येक के लिए एक ७०७ विमान.

साथ ही हर सप्ताह:
६ उड़ानें
जापान के लिए हाँग काँग हो कर—
४ **टोकियो** के लिए
२ **ओसाका** के लिए. १० उड़ानें
दक्षिण पूर्व एशिया के लिए—
६ **बैंकॉक** के लिए और
४ **सिंगापुर** के लिए.
२ उड़ानें
ऑस्ट्रेलिया के लिए
३ उड़ानें
पूर्व अफ्रीका के लिए
२ उड़ानें
मॉरिशस के लिए.

एयर-इंडिया
आपकी मनपसंद एयरलाईन

HT. AI. 8720

Incremin
syrup
VITAMINS B1, B6, B12
LYSINE
WITH IRON
TONIC APPETITE
STIMULANT
Incremin
syrup
डॉप्स्—२ महीने से २ साल के बच्चों के लिये
सिरप—१४ साल तक के बच्चों के लिए
Sista's INC-363 G/75 Hin

भारत की संसार को सबसे उपयोगी देन

बहुत पहले मनुष्य पत्थरों को आधार बना कर अपनी चीजें गिना करता था. धीरे-धीरे उसने हाथ की अंगुलियों का सहारा लेकर गिनना शुरू किया, लेकिन इस तरह वह दस से आगे नहीं गिन सकता था.

भारत ने ही सबसे पहले दस चिह्नों द्वारा मनुष्य को गिनना सिखाया और इस प्रकार उसे अंगुलियों द्वारा गिनने के बन्धन से मुक्त कर दिया. मानवता को भारत द्वारा दिये गए उपहारों में सबसे सूक्ष्म लेकिन बहुत ही अनमोल उपहार है—शून्य का चिह्न. शून्य के प्रयोग ने गिनती के क्षेत्र में एक क्रान्ति पैदा कर दी.

1 2 3 4 5

6 7 8 9 0

ये दस अंकों के चिह्न पूजा के काम में लाए जाने वाले यज्ञ-कुण्ड के चौकोर आकार से लिए गए हैं. हर चिह्न का मूल्य अंक में उसके स्थान पर निर्भर करता है. इन चिह्नों द्वारा सब कुछ गिना जा सकता था.

ये अंक सम्राट अशोक के युग (२७३-२३२ ई० पू०) में खूब प्रचलित थे. इसके एक हज़ार साल बाद मोहम्मद इब्न-ए-मूसा अलख्वारज़मी ने बग़दाद में इनका प्रचार किया. अरबों के यहां प्रयोग में रहने के बाद ये अंक योरोप पहुंचे. गिनती को सादा और आसान बनाकर इन चिह्नों ने अनगिनत को भी गिन डाला.

इसके साथ ही मनुष्य अपनी विभिन्न जरूरतों के अनुसार अंकों और गणित की दूसरी समस्याएं सुलझाने के लिए नए नए साधनों की खोज भी करता रहा.

आधुनिक युग के प्रगतिशील साधनों में कम्प्यूटर ने हमको इस योग्य बना दिया है कि हम गिनती और आंकड़ों के कठिन से कठिन प्रश्नों को क्षण भर में हल कर सकते हैं. इस तरह जीवन की उन समस्याओं को हल करना संभव हो गया जिनका पहले कोई हल नहीं था.

भारत में बने आई बी एम कंप्यूटर देश की विकास-शक्ति को लाखों करोड़ों गुना बढ़ाने में सहायक हो रहे हैं.

मानव-शक्ति को और अधिक बढ़ाने के लिए आज जीवन के हर क्षेत्र में—उद्योग के हर काम में मनुष्य कंप्यूटर का उपयोग कर रहा है.
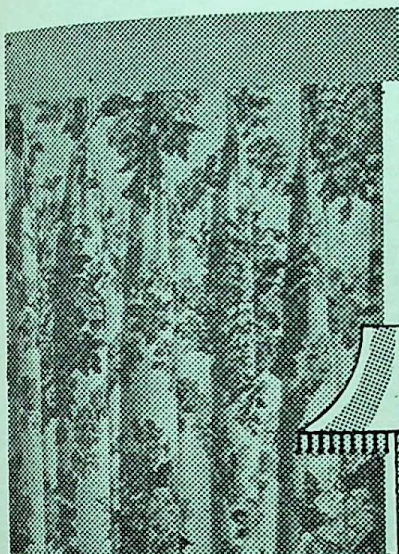
Dress up your
home in the
most fashionable
way...

• विशालाक्ष

निम्नलिखित शब्दों के जो सही अर्थ हों उन पर चिह्न लगाइए और इसी तथा अगले पृष्ठ पर दिये उत्तरों से मिलाइए।

१. **विविधलक्षी**--क. जिसके नाना लक्ष्य हों, ख. अनेक दिशाओं में देखनेवाला, ग. चित्र-विचित्र, घ. भ्रांत।

२. **परवर्ती**--क. निकटस्थ, ख. सुदूर, ग. पूर्व का, घ. बाद का।

३. **उपजीव्य**--क. रोजी, ख. रोजगार, ग. अवलंबभूत, घ. अर्थ-व्यवस्था।

४. **प्रत्यागमन**--क. विरुद्ध जाना, ख. वापस आना, ग. दौड़ना, घ. पलायन।

५. **वलय**--क. वृक्ष की छाल, ख. आवरण, ग. विलोप, घ. घेरा।

६. **पृच्छा**--क. पूछताछ, ख. छिपाना, ग. इच्छा, घ. पुष्ट।

७. **परिसर**--क. परिवार, ख. परिवेश, ग. तालाब, घ. द्वीप।

८. **रंध्रप्रहारी**--क. आघातकारी, ख. दुर्बलतानाशक, ग. दुर्बल स्थल देखकर प्रहार करनेवाला, घ. आघात से छिद्र कर देनेवाला।

९. **रस-मैत्री**--क. प्रणय, ख. घनिष्ठ मित्रता, ग. विनोद, घ. रसों का उपयुक्त मेल।

१०. **लास्य**--क. ललित नृत्य, ख. हाव-भाव, ग. सौंदर्य, घ. तांडव।

११. **लोकायतिक**--क. जनाभिमुख, ख. लोकसेवक, ग. इहलोकवादी, घ. धार्मिक।

१२. **अस्मिता**-- क. आत्मगौरव, ख. स्वार्थ, ग. अपनी प्रशंसा, घ. अहंता।

१३. **लंघन**--क. देखना, ख. उपवास, ग. प्रहार, घ. स्मरण।

१४. **निबद्ध**--क. स्वच्छंद, ख. बंधा हुआ, ग. ग्रथित, घ. बंधन।

१५. **तमकना**--क. उछलना, ख. तलब महसूस करना, ग. रोना, घ. रोष में आना।

१६. **स्वायत्त**--क. स्व-अधीन, ख. स्वच्छंद, ग. निर्बाध, घ. सुखी।

१७. **गुड़मुड़ाना**--क. तोड़-फोड़ डालना, ख. मसलकर झुर्रीदार बना देना, ग. गोल कर देना, घ. बिगाड़ना।

उत्तर

१. क. जिसके नाना लक्ष्य हों। यह **विविधलक्षी** नहीं, साहित्यलक्षी पत्रिका है। तत्., वि., उ. लिं.। तरह-तरह के, अनेक विषयों का।

२. घ. बाद का। उनके **परवर्ती** लेखकों ने हिंदी भाषा का परिष्कार किया। तत्. (परवर्तिन्), वि., पुं.। **पश्चाद् वर्ती**

—व्यक्ति, समय, स्थिति आदि।

३. ग. अवलंबभूत। महाभारत आदि **उपजीव्य** काव्यों ने परवर्ती साहित्य को प्रभावित किया। तत्., वि., पुं.। **आधार-भूत**। सहारा या जीविका देनेवाला।

४. ख. वापस आना। राम के अयोध्या **प्रत्यागमन** से प्रजा में हर्ष की लहर दौड़ गयी। तत्. (प्रति+आगमन), सं., पुं.। **लौटना, वापसी, पुनरागमन**।

५. घ. घेरा। जो **वलय** उनके आस-पास दमक रहा था वह मलिन पड़ गया। तत्., सं., पुं.। **परिमंडल, प्रभामंडल,** आसपास की स्थिति।

६. क. पूछताछ। **मैंने पृच्छा** की तो उसने कहा कि गाड़ी जा ही रही है। तत्., सं., स्त्री.। पूछना, जिज्ञासा करना, जानने के लिए प्रश्न करना।

७. ख. परिवेश। घर, नदी, मंदिर का **परिसर**; उसका **परिसर** स्वच्छ और शांत है। तत्., सं., पुं.। **पास-पड़ोस, सन्निधि,** आसपास की भूमि या स्थिति।

८. ग. दुर्बल स्थल देखकर प्रहार करनेवाला। **रंध्रप्रहारी** शत्रु के भी छक्के छूट गये। तत्. (रंध्र—छिद्र, दरार, दुर्बल स्थान+प्रहारी), वि., पुं.।

९. घ. रसों का उपयुक्त मेल। खट्टे में मीठा, इस **रस-मैत्री** ने स्वाद बढ़ा दिया, खट्टे में कड़वा होता तो रस-विरोध हो जाता। तत्., सं., स्त्री.।

१०. क. ललित नृत्य। नर्तकी का **लास्य** देखकर वह मुग्ध हो गया। तत्., सं., पुं.। हाव-भावयुक्त नृत्य।

११. ग. इहलोकवादी। **लोकायतिक** ईश्वर, धर्म, परलोक को नहीं मानता। तत्. (**लोकायत**=जिसकी भावनाएं इस लोक तक ही सीमित हों), सं. वि., पुं.। **भौतिकतावादी, नास्तिक,** चार्वाक मतावलंबी। 'सेक्युलर'।

१२. घ. अहंता। **अस्मिता** खो देने पर मनुष्य का उत्कर्ष नहीं हो पाता। तत्. (अस्मि=मैं हूं+ता), सं., स्त्री.। यह भाव कि मैं कुछ हूं, व्यक्तित्व का भान।

१३. ख. उपवास। रोगी को **लंघन** कराया गया। तत्., सं., पुं.। भोजन में एक या अधिक दिनों का उल्लंघन अथवा नागा कर जाना; **फाका, अनाहार**।

१४. ग. ग्रथित। सुंदरकांड में हनुमान के पराक्रम की कथा **निबद्ध** की गयी है। तत्., वि., उ. लिं.। **जड़ित, निवेशित, लिखित**।

१५. घ. रोष में आना। बात सुनते ही **तमकने** लगा। लो. भा., क्रि. अ.। रोष से चेहरा तमतमा जाना, आवेश में आना।

१६. क. स्व-अधीन। **स्वायत्त** शासन, संस्था, जीवन-पद्धति। तत्. (स्व=अपने+आयत्त=अधीन), वि., उ. लिं.। **स्ववश,** जो किसी के मातहत न हो।

१७. ख. मसलकर झुर्रीदार बना देना। कपड़े **गुड़मुड़ा** डाले। लो. भा., क्रि. स.। कपड़े, कागज आदि को मोड़-माड़ डालना।

जुलाई अंक में 'समय के हस्ताक्षर' के अंतर्गत 'भविष्य का साहित्य क्या होगा' में आपने जिस संदेह को रेखांकित किया है, वास्तव में वह सही है। भारतीय लेखकों को इस संभावित खतरे के प्रति जागरूक हो जाना चाहिए।

'एक और हिंदुस्तान' विशेष रहा। कहानी 'मुर्दा मैदान' अच्छी रही।

—सुभाष 'नीरव', मुरादनगर

जुलाई अंक में 'मैंने जीवन को मात्र भोगा नहीं है' (डॉ. नगेन्द्र) आत्म-साक्षात्कार कम, आत्म-प्रशस्ति अधिक है। यदि वे खुद पर अकसर लगाये गये आरोप—सैद्धांतिकता व पुरातनता के प्रति दुराग्रह—के संदर्भ में गहराई से विश्लेषण करते तो यह 'आत्मकथ्य' अधिक प्रभावी बन पड़ता।

—चन्द्रप्रकाश रुद्र, शिकोहाबाद

जुलाई अंक में 'हड़तालों का अर्थ-शास्त्र' लेख में लेखक ने तथ्यों द्वारा प्रमाणित कर दिया है कि देश की प्रगति के पथ में हड़तालें किस प्रकार से अवरोध सिद्ध हो रही हैं। किंतु उसने उ. प्र. राज्य विद्युत परिषद के अभियंताओं के विषय में कुछ भ्रामक तथ्य प्रस्तुत किये हैं।

—शैलेंद्र दुबे, पनकी

जुलाई अंक में दुर्गाप्रसाद श्रेष्ठ की नेपाली कहानी 'संदर्भ' का अनुवाद छापकर आपने सिद्ध किया है कि 'कादम्बिनी' वाकई 'भारतीय भाषाओं की विशिष्ट पत्रिका' है। नेपाली भाषा-साहित्य समृद्ध होते हुए भी भारत में अब तक उपेक्षित किया जाता रहा है। हाल में ही साहित्य अकादमी ने तो इसे (नेपाली को) मान्यता दी है। अब देखना यह है कि सरकारी तौर पर इसे कब अनुसूची (८) में शामिल किया जाता है।

—शरत त्रिवेदी, वाराणसी

आपके पत्र

स्थानाभाव के कारण कभी-कभी 'कादम्बिनी' में प्रकाशित सार-संक्षेपों में मूल पुस्तक के साथ पूरा न्याय नहीं हो पाता, यथा—'भविष्य का आघात'। कृपया इस दिशा में कुछ कीजिए।

—जे. सिंह, भोपाल

जुलाई अंक में जैकलीन सूसन के उपन्यास का सार-संक्षेप—'राष्ट्रपति की विधवा'—बेहद पसंद आया। जिस क्लाइमेक्स के साथ उपन्यास का अंत होता है, उससे दिमाग झनझना उठता है।

—कुसुम वर्मा, बेरो (रांची)

जुलाई अंक में 'क्षणिकाएं' स्तंभ के अंतर्गत प्रकाशित चंद्रभान भारद्वाज की क्षणिका 'प्रेयसी' 'वीणा' के मार्च अंक में छप चुकी है। अपनी ही एक रचना को बार-बार प्रकाशित करने-वाले लोगों की प्रतारणा करनी चाहिए।

--चंद्रकांत श्रीवास्तव,
कोषालय अधिकारी, रायसेन (म. प्र.)

जुलाई अंक में प्रकाशित निरंकार सिंह का लेख 'भूकंप अर्थात महाविनाश' हिंदी विश्वकोश (काशी नागरी प्रचारिणी सभा) में भूकंप शब्द पर दिये गये लेख की नकल मात्र है। यही लेख 'प्रजानीति' के २६ जनवरी '७५ के अंक में 'भूकंप एक अबूझ पहेली' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। 'कंचन-प्रभा' के जून अंक में भी यही लेख 'भूकंप या महाविनाश' शीर्षक से छपा है।

--डॉ. रामबिलास शर्मा,
भभुआ बाजार

शुल्क-विवरण

अर्द्ध-वार्षिक शुल्क : १२ रुपये
वार्षिक शुल्क : २३ रुपये
दो वर्ष के लिए : ४५ रुपये
तीन वर्ष के लिए : ६६ रुपये

शुल्क भेजने का पता :
सर्क्युलेशन मैनेजर हिन्दुस्तान टाइम्स लि.,
नयी दिल्ली-१

२३ जून को 'तार-सप्तक' के प्रसिद्ध कवि और हिंदी में 'तुक्तक' नाम से शिष्ट हास्य-व्यंग्य के रचनाकार श्री भारतभूषण अग्रवाल का अचानक निधन हो गया। भारतजी साहित्य अकादमी में सहायक सचिव थे और हाल ही शिमला के उच्च अध्ययन संस्थान से फेलोशिप प्राप्त कर उन्होंने 'भारतीय साहित्य में देश-विभाजन' विषय पर शोध कार्य शुरू किया था। वे निरंतर अपने भीतर के कवि को परिमार्जित और परिपक्व करते रहे। हिंदी की आधुनिक कविता में भारतजी का अपना अलग स्थान है।

डॉ. भारतभूषण अग्रवाल एक सहृदय व्यक्ति और एक विश्वस्त मित्र तथा साथी रहे। 'कादम्बिनी' परिवार उनके निधन से अपने को दुःखी महसूस करता है। **--संपादक**

वर्ष १५; अंक १,
अगस्त, १९...

आकल्पं कविनूतनाम्बुदमयी कादम्बिनी वर्षतु

निबंध एवं लेख

कविताएं

संपादक

राजेन्द्र अवस्थी

कथा-साहित्य

सार-संक्षेप

मुखपृष्ठ : छायाकार : सूरज एन. शर्मा (गणगौर)
प्रेम कपूर (माडल : अनीता करीन)

स्थायी स्तंभ

सह-संपादक : शीला झुनझुनवाला, उप-संपादक : कृष्णचन्द्र शर्मा, दुर्गाप्रसाद शुक्ल, विजयसुन्दर पाठक । चित्रकार : सुकुमार चटर्जी

काल-चिंतन

— पूछा गया है, 'मनुष्य की सबसे बड़ी आकांक्षा और इच्छा क्या है?'

● ●

— मनुष्य की इच्छाएं असीम हैं, वह एक को पाने के बाद दूसरे की ओर बढ़ता है और फिर क्रमशः काल और दिशाओं को भी अपनी मुट्ठी में बंद कर लेना चाहता है।

— लेकिन इनके बीच खोज का सिलसिला जारी रहे तो निष्कर्ष आसान भी है और उनसे 'सबसे बड़ी इच्छा' को खोजा जा सकता है।

— महामना राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसाद की एक बात स्मरण आती है। महाराष्ट्र के एक प्रसिद्ध संत ने ऐसी स्थितियां बनायीं कि राष्ट्रपति उन्हें हार अर्पित करें। राजेन्द्र बाबू को वह करना पड़ा। उसके बाद उन्होंने अपने भाषण में कहा, 'मनुष्य परिवार, संपत्ति, संसार का मोह, सुख की चाह सब-कुछ छोड़ सकता है, लेकिन यश का मोह तो बड़े-बड़े संतों से भी नहीं छूट सकता।'

— उसी दिन हमें प्रश्न का उत्तर मिल गया था; मनुष्य की सबसे

— बड़ी इच्छा है यश : यश के लिए वह क्या नहीं कर सकता!

— विजेता हिटलर ने मुट्ठी में सूर्य को कैद करने और हथेलियों में गेहूं उगाने का उपक्रम भीतर छिपे यश की चाह के लिए ही किया था।

— एक महाकवि ने चाहा था, मृत्यु के बाद उसकी कब्र पर लिखा जाए:

'अनदेखा, अनचीन्हा रहने दो मुझे,
एक पत्थर भी न बता सके कहां सोया हूं मैं!'

इन स्वरों के बीच स्पष्ट आकांक्षा पत्थर लगवाने और अपने को विशिष्ट बनाकर यश के नये मान-बिंदुओं को छूना नहीं है?

— वास्तव में यश धन और धर्म से भी बहुत बड़ा है।

— बुद्ध, रसूल, जरथुस्त्र, अरहंत, ईसा सभी की दृष्टि का लक्ष्य यश का 'यरुशलम' रहा है! उसी के लिए उन्होंने महान कष्ट सहे और खोज का यात्रा-पथ स्वीकारा।

— पतंग को काटने के लिए जिस तरह धागे को कांच के चूर्ण में डुबोया जाता है, यश पाने के लिए आदमी को उससे भी दर्दनाक सीढ़ियों से गुजरना पड़ता है।

— आकाश अनंत है, उस अनंतता में नौका में सवार जब आदमी चलता

[illegible] इत्यादि सारी व्यक्तिगत सीमाओं से उठकर सार्वजनीय सीमाओं में डूब जाता है। वहीं से उसके भीतर सामूहिकता का उदय होता है।

— अकेले कर्म करते हुए भी सामूहिकता का बोध एक लक्ष्य है और वह लक्ष्य मात्र यश पाना है। यश समूह से कटकर नहीं मिलता।

— अनंत किरणों के स्वामी सूर्य को केवल पूर्व-दिशा ही जन्म देती है, यश का सौरभकण वैसे ही आदमियों के जंगल में से उभरता है।

— इसलिए यश एक कर्म है और कमाया हुआ धन है।

— यश एक लक्ष्य-दृष्टि है और वही अर्जुन के पुरुषार्थ का बल था।

— हम अभागे युग में पैदा हुए हैं। हमें टूटा हुआ झूठा इतिहास मिला है।

— भविष्य के आतंक ने हमारे स्नायु-तंतुओं को जकड़ रखा है।

— हमारा मस्तिष्क बूढ़े सर्प के सिर से छूटी मणि की तरह खोखला है।

— विज्ञान, उद्योग और औषधि ने हमें निकम्मा बना दिया है।

— जीर्ण-शीर्ण खंडहरों पर नये महल खड़ा करना कठिन हो रहा है।

— अलग से नये महल बनाते समय परंपराओं का बोझ आड़े आता है।

— ऐसे युग में विडंबनाओं को झेला जा सकता है, लेकिन दूध को फाड़कर आसानी से दही नहीं बनाया जा सकता ।

— जब तक तरल से ठोस नहीं बनेगा, हाथ कुछ नहीं आएगा।

— तरल चंदन जब धूपकाड़ी का रूप लेता है तभी उसकी खुशबू फैलती है। जंगल में जब बांस घिसते हैं, तभी भयानक दवांर या जंगल की आग लगती है।

— लेकिन एक बार फैली हुई खुशबू या जंगल में लगी हुई आग अंततः कुछ तो छोड़ ही जाती है।

— वही कुछ यश है, इसलिए कहा है यश की धार खतरनाक है, लेकिन एक बार वह बन गयी तो आसानी से नागफनियों को काटती चलती है ।

●●

— मनुष्य का जन्म एक दर्द से हुआ है, इसलिए दर्द एक नियति है ।

— सारा भोग और ऐश्वर्य भी अंततः आदमी की अदम्य लालसा में सिमट जाता है और यश पाने के लिए वह अपने शरीर को भी अपने ही हाथों काट सकता है।

महिला वर्ष : मुक्ति किससे ?

महिला-वर्ष !

सदियों के बाद बीसवीं सदी के उतरते चरण में इस तरह का आयोजन अचानक एक साथ कई प्रश्न छोड़ जाता है। नैसर्गिक और सैद्धांतिक आधारों पर 'महिला मात्र' अथवा 'पुरुष मात्र' का कोई अस्तित्व नहीं ठहरता।--दोनों के समवेत स्वर ही गति दे सकते हैं। दोनों की समानता, एकता और संपन्नता ही विकास का आधार है।

हमें लगता है किसी ने अचानक एक नारा दिया और दुनिया भर में 'महिला-वर्ष' मनाया जाने लगा ! विश्लेषण करने पर सत्य यह सामने आता है कि भारत में 'महिला' को हमेशा प्राथमिकता दी गयी है। राधा का अस्तित्व स्वीकारना और सीता की सामान्यता को राम के साथ जोड़कर विशिष्टता देना इसके प्रमाण हैं। वेदों में नारी को पूज्य माना है। उसे पूरी स्वच्छंदता दी गयी है। उसके बाद इतिहास की यात्रा भारत में जब शक, हूण, कुशाण, मुगल इत्यादि आक्रमणों से शुरू होती है, तभी से, 'नारी-रक्षा' का प्रश्न उठा है। उसके पीछे नारी की निंदनीय स्थिति अथवा उपेक्षा नहीं रही, भावना मात्र सुरक्षा की थी।

विदेशों में नारी के अधिकारों और कार्यों की अब भी सीमा नहीं है। वे पुरुष की बराबरी से सारे काम करती हैं।

सच पूछा जाए तो नैसर्गिक रूप से ही प्रकृति ने पुरुष और नारी-सत्ता को अपनी-अपनी विशिष्ट स्थिति दे दी है।

इन सारे तथ्यों के बावजूद कुछ सचाई भी हैं--अविकसित और गरीब राष्ट्रों में अशिक्षा तथा बेकारी के कारण महिलाओं को दर्द सहने पड़ते हैं, लेकिन किसी दूसरे रूप में वही दर्द पुरुष भी वहां सहते हैं। विकसित राष्ट्र टूटते हुए सामाजिक मूल्यों के पुनर्जीवन के लिए संघर्षरत हैं।

वास्तव में पुरुष और महिला, दोनों मानव-जगत की एक विशिष्ट पहेली हैं और इनका निदान पूरी तरह न कभी हुआ और न हो सकता है। इनके बीच

दीवार 'मस्तिष्क' खड़ी करता है और मस्तिष्क के बिना जीवन निरर्थक है, यह मानविकी ही नहीं, वैज्ञानिक तथ्य भी है।

तब 'महिला-वर्ष' की मांग क्यों? और यदि की ही गयी है तो उसके लिए एक वर्ष क्या काफी है? हमारा दृढ़ मत है कि यह मांग किसी महिला की नहीं किसी पुरुष-मस्तिष्क की उपज है। यह इससे भी स्पष्ट होता है कि 'विश्व महिला-सम्मेलन' का सारा आयोजन पुरुषों ने किया है और उसके अध्यक्ष तथा संयोजक—दोनों ही पुरुष हैं।

'महिला-वर्ष' के अवसर पर अचानक कुछ प्रश्न हमारे सामने उठे हैं। उनका संबंध भारत मात्र से नहीं, दुनिया भर के देशों से है। महिलाएं जब एक विशिष्ट वर्ष की मांग करती हैं तब क्या अनायास कुछ सुविधाओं और साधनों की खोज में व्यस्त नहीं हो जातीं? यह 'वर्ग-निर्धारण' है और हरिजनों की तरह अपने को भी एक वर्ग में रखने की मांग है।

महिलाएं स्वयं पुरुषों द्वारा दी गयी स्वतंत्रता का उपयोग करने में असमर्थ सिद्ध हुई हैं। अब भी प्रत्येक स्त्री विवाह करना चाहती है, पुरुष पर शासन करने की उसकी प्रबल इच्छा है, पुरुष की सामाजिक विशिष्टता को पाने और छीनने की लालसा से वह मुक्त नहीं है और पुरुष के ऊपर अपनी उच्च स्थिति को स्थापित करने में पीछे हटती है। वह स्वयं पुरुष की अनुगामिनी बनी रहना चाहती है। संतान-कामना और जननी बनने की चाह, प्रेयसी बनने का स्वप्न और पुरुष के हाथों खेलते रहने का आयाम वह नहीं छोड़ना चाहती।

एक विचित्र बात है—विवाह के बाद महिला ही अपना घर बदलती है। वही अपना नाम बदल लेती है और पुरुष के कुल-नाम (सरनेम) को अपने ऊपर ओढ़ लेती है। इसीलिए कहा गया है कि 'स्त्री का न कोई कुल होता, न कोई धर्म, न देश या नागरिकता'। ये सब पुरुष के साथ बदलते रहते हैं। इसलिए महिलाओं की यदि वास्तव में कोई 'मुक्ति' की कामना है तो उन्हें पहले इनसे मुक्ति पानी चाहिए।

महिला-वर्ष के संदर्भ में हमने अपने प्रतिनिधियों को भेजकर कई महिलाओं से बातचीत की है और उसके विवरण अगले पृष्ठों में प्रस्तुत हैं। अनेक महिलाओं ने स्वयं इस नारे को निरर्थक माना है और 'हीनता-बोध' का परिचायक कहा है। जहां पुरुष और स्त्री के संबंधों को लेकर प्रश्न उठाये गये हैं, वहां भी एक खोखला-पन सामने आया है। संबंधों का अर्थ 'मैत्री' से होता है और मैत्री का आधार ही समानता और एकता है। इसलिए संबंधों की चर्चा करके कहीं-न-कहीं इस आधार को ही तोड़ा जाता है। हमारे प्रतिनिधियों ने कई वर्गों की महिलाओं से बात-चीत की है। वे निष्कर्ष प्रस्तुत हैं। हम उन पर अपनी ओर से कोई टीका-टिप्पणी

नहीं कर रहे। हां, यदि भारत के संदर्भ में पुरुष और स्त्री के अधिकारों का प्रश्न उठाया जाता है तो अनेक दृष्टियों से हमें लगता है कि इस समूची मांग को उलटा होना चाहिए। सामाजिकता ने हमें अपने शिकंजे में इस तरह जकड़ रखा है कि न्याय और कानून की सुविधाओं और समानताओं के बावजूद बेचारा पुरुष ही बार-बार पराजित होता है और यह नारा कि 'मुक्त करो नारी को मानव' बेकार लगता है। सही संदर्भों में नारा ही

देना है तो वह होना चाहिए 'मुक्त करो पुरुष को नारी की कारा से मानव'। वैसे नारों से काम नहीं चलता, इसलिए हम उसके विरोधी हैं और इस बात में विश्वास रखते हैं कि दोनों एक-दूसरे से मुक्ति की कामना ऊपर से भले करते हों, मक्त दोनों नहीं होना चाहते। दोनों अपने दो हाथों को चार बनाने के लिए इच्छुक हैं, हिंदू धर्म में देवी के चतुर्भुज रूप की कल्पना इसीलिए की गयी है। —संपादक

स्त्रियों की दशा का वर्णन करने के लिए अकसर एक सधा-सधाया वाक्य इस्तेमाल किया जाता है कि नारी युग-युग से गुलाम रही है, और यह कहते हुए उसे एकाएक दया की पात्री बना दिया जाता है। आजकल 'नारी-मुक्ति' की बात काफी जोरशोर से की जा रही है, पर कुछ इस तरह कि नारी कोई अलग-थलग-सी 'वस्तु' हो और समाज की शेष आर्थिक और राजनीतिक सच्चाइयों से उसे कुछ लेना, देना न हो।

नारी-संबंधी यह धारणा या तो उसे भयानक हीनता से भर देती है या

० अमला शंकर ० तारकेश्वरी सिन्हा ० सई परांजपे ० किटी मेनन ० कुमारी राका

फिर एक अदम्य उत्साह से। पर ये दोनों प्रतिक्रियाएं अंतिम स्थिति में उसके लिए घातक सिद्ध होती हैं—अर्थात या तो वह 'नारी' होने को विडंबना के रूप में स्वीकार कर कुछ नहीं करेगी और यदि करने बैठेगी तो समाज की सारी अंतर्ग्रथित और परस्पर-संबद्ध इकाइयों को छिन्न-भिन्न कर अराजक हो जाएगी।

स्वतंत्रता से परतंत्रता तक

नारी क्या सदा से गुलाम रही है? सभ्यता के विकास के प्रारंभिक चरणों में तो वह सर्वप्रमुख थी, सर्वोपरि थी, कारण 'मानव-विस्तार' की क्षमता केवल उसके

आयोजिका : कविता नागपाल

एक और औपचारिक संदर्भ: महिला-वर्ष

पास थी; पर क्रमशः वह परतंत्रता की जंजीरों में जकड़ती गयी और एक वट-वृक्ष की आश्रित लता बनकर रह गयी। पर इस स्थिति के लिए वह समाज जिम्मेदार था, जिसने अपने विकास की प्रक्रिया में अपने अन्य उपादानों की भांति नारी की स्थिति को भी बदल दिया।

मध्ययुग में जब विलास चरमसीमा पर पहुंचा तब नारी केवल उपभोग की वस्तु बनकर रह गयी। पुरुष के अंतःपुर के गुलदस्तों के सैकड़ों फूलों में से एक फूल। इस काल में नारी की परतंत्रता की शुरूआत दोहरे रूप में हुई।

पूंजीवादी युग में नारी की स्थिति बदली, पर क्या पारिवारिक इकाई के भीतर नारी का स्थान बदला? पुरुष के रवैये में कोई परिवर्तन हुआ? क्या समाज की नजरें बदलीं? यदि बदलीं, तो फिर चर्चा की शुरूआत इसी वाक्य से क्यों की जाती है कि नारी तो सदा से गुलाम रही है?

अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष के सिलसिले में मेक्सिको में आयोजित सम्मेलन काफी धूमधाम और लड़ाई-झगड़े के बाद समाप्त हो गया है, पर क्या इससे स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन आ सकेगा?

भू. पू. उप-वित्तमंत्री तथा कांग्रेस की नेता श्रीमती तारकेश्वरी सिन्हा के अनुसार, 'संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा १९७५ को 'अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष' के रूप में मनाने की घोषणा से मुझे आशा हुई कि स्त्रियों की सामाजिक स्थिति के सुधार के लिए कुछ ठोस फैसले किये जाएंगे, पर लगता है कि मेक्सिको-सम्मेलन, कुल मिलाकर रस्मी ही रहा। लगता है, जैसे महिला-वर्ष कभी-न-कभी मनाना था, तो मना दिया। इस सम्मेलन के जो भी समाचार अखबारों में छपे, उनसे प्रतीत होता है कि पूरा आयोजन अंतर्राष्ट्रीय राजनीति की शतरंज का खेल बन गया।

'मेरे विचार से अन्न की कमी ही एक औरत के लिए बुनियादी मसला है। अन्न ही परिवार की आधारशिला है। औरत जीवन की रचना-शक्ति का केंद्र है और यदि वह स्वयं-रचित प्राणियों का पालन-पोषण न कर सके तो वह अपने जीवन को असफल मानती है। मेक्सिको-सम्मेलन में इस शोचनीय स्थिति पर विचार नहीं किया गया। अविकसित देशों की इस गंभीर समस्या से

विकसित राष्ट्र मुंह चुराते से लगे।'

मातृत्व—एक प्रमुख कर्तव्य

सुप्रसिद्ध नृत्य-विशारदा एवं प्रख्यात नृत्यकार उदयशंकर की सहधर्मिणी श्रीमती अमलाशंकर की राय में भी सामान्य नारी के लिए इस अंतर्राष्ट्रीय महिला-वर्ष का कोई विशेष महत्त्व नहीं है। उनके अनुसार मातृत्व नारी का एक प्रमुख कर्तव्य है। जिन संस्कारों में बच्चा पलेगा, वे ही उसके भविष्य का आधार बनेंगे। एक आम औरत के लिए, जिसे चूल्हा-चक्की से ही फुरसत नहीं, इस अंतर्राष्ट्रीय महिला-वर्ष का क्या कोई महत्त्व हो सकता है? पिछले दशक में औरतों ने सरकारी, गैर-सरकारी क्षेत्रों में काम करना शुरू किया है। उनमें आत्मविश्वास की भावना भी पनपी है, पर ये सब बहुत छोटे पैमाने पर हुआ है।

'मात्र पब्लिसिटी स्टंट'

सई परांजपे रंगमंच की जानी-मानी कलाकार हैं। टेलीविजन पर वर्षों प्रोड्यूसर के रूप में कार्य करने के बाद अब बच्चों के लिए फिल्म बना रही हैं। अपनी मातृभाषा मराठी में उन्होंने बच्चों के लिए काफी लिखा है। सई का कहना है कि औरतों की स्थिति में परिवर्तन लाने के लिए सरकार कोई ठोस काम नहीं कर रही है। औरतों द्वारा संचालित डाकघर या बैंक खोल देना, निरा 'पब्लिसिटी-स्टंट' लगता है। इससे न तो औरत का सामाजिक शोषण कम होगा, न स्त्री के प्रति मर्द का क्रूर रवैया ही बदलेगा।

औरत का पहला शोषक मर्द

श्रीमती किटी मेनन स्त्री-पुरुष के भेद-भाव को एक ऐतिहासिक प्रश्न मानती हैं, जिसकी शुरूआत निजी संपत्ति, यानी 'प्राइवेट प्रापर्टी' के बनने से हुई। श्रीमती मेनन दिल्ली-विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र की रीडर और एकेडेमिक काउंसिल की सदस्या हैं। उनका कहना है कि औरत का पहला शोषक मर्द है। उसने उसे अपनी संपत्ति का हिस्सा बना लिया है। आज भी औरत इस स्थिति को स्वाभाविक मानकर चलती है। अंतर्राष्ट्रीय महिला-वर्ष की सार्थकता तभी है, जब औरत की सामाजिक स्थिति में मूल परिवर्तन हो, जब हीन भावना से ग्रस्त औरत को अपनी संपूर्ण क्षमता का उपयोग करने का अवसर मिले। संवैधानिक या कानूनी आदेश यह परिवर्तन नहीं ला सकते।

घर की रानी

'यह दुःख की बात है कि नारी को जीवन-निर्वाह के लिए घर से बाहर काम करना पड़ता है। औरत घर की रानी है। घर ही उसका सही स्थान है,' अमलाशंकर कहती हैं, 'कुछ पढ़ी-लिखी औरतें जीवन-यापन में पति की सहायता के लिए नौकरी करती हैं तो कुछ स्त्रियां व्यक्तिगत इच्छाओं की पूर्ति के लिए, किंतु इन औरतों का गृहस्थ जीवन अन्य, काम न करने-वाली औरतों से अधिक भिन्न नहीं होता। पुरुषों का भी दृष्टिकोण प्रायः एक-जैसा

ही होता है। शारीरिक दृष्टि से स्त्री, पुरुष की अपेक्षा कमजोर है। फिर हमारा समाज भी अकेली औरत को कहां जीने देता है!'

'हां, कुछ स्त्रियां मेरी तरह भी हैं जो घर और काम, दोनों से संतुष्ट हैं, पर ऐसी स्त्रियों की संख्या बहुत कम है। यों भी हम–जैसी नारियों को यह सब बैठे-बिठाये नहीं मिला। इसके लिए काफी परिश्रम करना पड़ा। मैंने घर की किंचित उपेक्षा किये बिना अपना काम किया। मेरी राय में स्त्रियों को अपनी मुक्ति के लिए संघर्ष करना चाहिए।'

मातृत्व ही अंतिम और संपूर्ण सत्य

सई परांजपे स्वीकार करती हैं कि नारी के लिए मातृत्व ही अंतिम और संपूर्ण सत्य है। इसीलिए वे मातृप्रधान-व्यवस्था में भी विश्वास रखती हैं: 'बच्चे के अस्तित्व का सबूत मां है, पिता नहीं। विवाह के बाद नारी की सामाजिक स्थिति जरूर बदलती है, पर उसका व्यक्तित्व वही रहता है। कम-से-कम मैं अपने व्यक्तित्व को किसी भी कीमत पर त्यागने के लिए तैयार नहीं हूं।'

सई के अनुसार, 'अब सार्वजनिक क्षेत्रों में काम करनेवाली महिलाओं के साथ इतना भेदभाव नहीं होता। हां, यदि पुरुषों को स्त्री अफसर मिल जाए तो थोड़ा बहुत द्वेष होता है, पर वह भी मन में; खुले तौर पर नहीं। मैं श्रम की प्रतिष्ठा में विश्वास रखती हूं, चाहे वह घर में हो, चाहे बाहर। और यहां पुरुष को नारी के बारे में विचार बदलने पड़ेंगे। मध्यम वर्ग में तलाक, असफल विवाहों के कारणों की जड़ हमें यहीं मिलती है। पुरुष, यदि नारी के अपने काम के प्रति लगाव, उसकी उत्तरदायित्व की भावना को समझ सके, या समझने का प्रयत्न करे तो स्त्रियों की लड़ाई आधी जीती मानी जानी चाहिए।'

बायें से : अमला शंकर, तारकेश्वरी सिन्हा, सई परांजपे व राका

परिवार से ही मूल सुखों की प्राप्ति

'नारी को अपने मूल सुख परिवार से ही प्राप्त होते हैं। बच्चे को दूध पिलाना, बेटी के बाल संवारना, पति के लिए पकवान बनाना आदि बहुत ही मामूली बातें हैं। पर इनसे ही वे संवेदनाएं जन्म लेती हैं, जो परिवार को बनाती हैं, बांधती हैं। इन बंधनों को तोड़कर बाहर काम करना कोई महान कार्य नहीं। जहां आर्थिक आवश्यकता की बात आती है, वहां दूसरे नियम लागू होते हैं। फिर भी पैसा अपने-आपमें सब कुछ नहीं है।' ये श्रीमती तारकेश्वरी सिन्हा के विचार हैं। वे कहती हैं 'जिन देशों में—विशेषकर समाजवादी तथा साम्यवादी देशों में—पति-पत्नी दोनों काम करते हैं, वहां बच्चों की देखभाल तो अच्छी होती है, पर पारिवारिक इकाई के नाम पर शून्य ही होता है। प्यार की ठोस इमारत, जो मां बनाती है, उठ नहीं पाती। स्नेह, ममत्व-जैसी बुनियादी प्रवृत्तियां पारिवारिक जीवन से प्राप्त होती हैं। वह समाज नहीं दे सकता।'

पुरुष नारी के काम में हाथ बटाये

'लेकिन चाहे घर हो चाहे आफिस, नारी को पुरुष से कम काम नहीं करना चाहिए,' श्रीमती तारकेश्वरी सिन्हा की बेटी राका का कहना है, 'स्वयं नारी को हीनभावना का शिकार नहीं होना चाहिए। एक सुशिक्षित लड़की को अपनी शिक्षा का पूरा लाभ उठाना चाहिए। उसे समाज की उन्नति में भी हाथ बंटाना चाहिए। जैसे-जैसे नारी अपने व्यक्तित्व को दृढ़ बनाएगी, पुरुष को रूढ़िगत विचारों को त्यागने के लिए विवश होना पड़ जाएगा। आज नारियों के लिए जरूरत है संयुक्त और संगठित आह्वान की।'

संतुलन बिगड़ने का भय!

'जी हां, यह सबसे जरूरी बात है कि नारी अपने व्यक्तित्व को मजबूत बनाये,' श्रीमती किटी मेनन भी राका की बात का समर्थन करती हैं, 'सदियों से उसे शिक्षा से वंचित रखा गया है। उसकी मानसिक शक्तियों को पनपने का मौका कहां मिला? उसे हमेशा यही सिखाया गया कि तुम्हारा स्थान घर में है, तुम घर की लक्ष्मी हो; केवल बच्चों को जन्म देना ही तुम्हारा एकमात्र सामाजिक दायित्व है।

'पूंजीवाद की स्थापना के बाद संयुक्त परिवार टूटे, क्योंकि पूंजीवादी वर्ग को मुक्त श्रम की जरूरत थी। समाज ने सबको काम करने का, शिक्षा का बराबर हक दिया, लेकिन औरत उद्योग के श्रमिक वर्ग की संख्या बढ़ाने का जरिया बनकर रह गयी।

'व्यवस्थित उद्योग में औरतों को शारीरिक श्रम ही दिया जाता है। 'कुशल श्रम' मर्दों के हिस्से आता है—जबकि नारी भी उतनी ही निपुणता से वही कार्य कर सकती है। इस स्थिति की तुलना यदि समाजवादी देशों से की जाए तो

हमें पता चलता है कि रूस में ६८ प्रतिशत इंजीनीयर महिलाएं हैं—जबकि केवल ४० प्रतिशत महिलाएं इंजन-ड्राइवर। वियतनाम में भी मर्दों ने 'युद्ध' में भाग लिया और औरतों ने उद्योग का संचालन किया। यहां तक कि उत्तरी वियतनाम की एक सेनाधिकारी एक नारी रही है!

'क्या आज नारी को घर से बाहर निकल काम करने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है ? मुझे शक है। हाल में मुझे १०+२ सिलेबस पढ़ने का अवसर मिला। उसमें एक निर्देश पढ़कर ताज्जुब हुआ। साफ-साफ लिखा है कि लड़कों को देश के अन्य क्षेत्रों में काम करने के लिए तैयार करना चाहिए, और लड़की को घर-बार के कार्यों के लिए। क्या इस बात का डर है कि औरतों में मर्दों के बराबर काम करने की क्षमता आ जाएगी तो 'स्टेटस-को' बिगड़ जाएगा ? बेकारों की भीड़ बढ़ेगी ? एक खास वर्ग का सधा-सधाया खेल गड़बड़ा जाएगा ?'

'औरत औरत है—मर्द मर्द !'

'औरत को काम करने से किसने रोका है ?' अमलाशंकर तमतमाकर कहती हैं, 'उसके कोई हाथ-पैर तो बांधे नहीं गये हैं, पर औरत औरत है, मर्द मर्द ! वे एक-दूसरे की जगह नहीं ले सकते। यदि वह घर के वातावरण से अप्रसन्न है तो निकल जाए, खड़ी हो जाए पैरों पर।

'मैं वूमेन-लिब में विश्वास नहीं करती। जोर-जबर्दस्ती से औरत कुछ नहीं हासिल कर सकती। यों मैं यह भी कहूंगी कि उसे अपनी अन्य बहनों के साथ एकजुट होकर सामाजिक अन्याय के खिलाफ लड़ना चाहिए।'
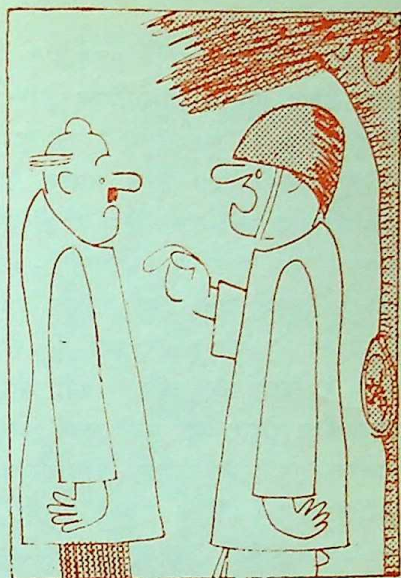
अगर कुशल चाहते हो तो महिला-वर्ष भर 'क्रैश-हेलमेट' तुम भी लगा लो

बच्चे समाज संभाले

सई परांजपे के अनुसार 'निम्नवर्ग की औरत अधिक आजाद है। आर्थिक संकटों ने ही उसे काम करने के लिए मजबूर किया। जहां तक मध्यवर्गीय नारी का प्रश्न है, उसके संस्कार सामाजिक रूढ़ियां तोड़ने नहीं देते। फिर भी इस विषय में किसीके द्वारा कोई आम धारणा नहीं बनायी

जा सकती।

नारी का शोषण अलग-अलग प्रांत में अलग-अलग वर्ग में भिन्न-भिन्न तरीकों से होता रहा है। इस शोषण से उसे तभी मुक्ति मिलेगी, जब बच्चे समाज का उत्तरदायित्व बनें। इसके लिए बच्चों की देखरेख के लिए शिशु-कल्याण-केंद्र खोलने चाहिए, जहां उनकी उचित देख-भाल की जा सके। पर क्या ये केंद्र ठीक से कार्य कर सकेंगे? क्या माएं निस्संकोच होकर वहां अपने बच्चे छोड़ सकेंगी? यहां मैं संयुक्त परिवार-प्रथा की आभारी हूं क्योंकि संयुक्त परिवारों में काम करनेवाली स्त्रियों के बच्चों की देखभाल हो जाती है।

लड़ने-भिड़ने की तैयारी

श्रीमती तारकेश्वरी सिन्हा की राय में औरत की आजादी उसकी शिक्षा और राजनीतिक चेतना पर निर्भर करती है, न कि काम करने, न करने पर। यदि नारी बेहतर जीवन जीना चाहती है तो उसे हमेशा लड़ने-भिड़ने के लिए तैयार रहना चाहिए।

इधर देश में राजनीतिक चेतना का काफी विकास हुआ है। जब मैं पुरानी कांग्रेस में थी तब चुनाव के दौरान वोट मांगने बिहार के गांवों में गयी। मैंने देखा कि ग्रामीण औरतों की राजनीतिक चेतना काफी बढ़ी है, विशेषकर हरिजन वर्ग की स्त्रियों में। उनमें से एक मुझसे बोली, 'इंदिरा गांधी की तरफ से आयी हो तो बोलो। वही गरीबों की सुनती है।' गांधीजी, नेहरूजी आदि सभी का कहना था कि औरतों के सहयोग के बिना देश उन्नति नहीं कर सकता।'

आजादी का अर्थ अराजकता नहीं

"लेकिन क्या आजादी का मतलब अराजकता है?" राका कहती है, 'मैं हिप्पियों की तकलीफ समझती हूं फिर भी उनसे सहमत नहीं। सब तोड़फोड़ कर कुछ नया बनाये बगैर समाज नहीं बदला जा सकता।

'विवाह-परंपरा 'आउट मोडेड' नहीं है। हां, लड़की के साथ लड़कों का रवैया घृणास्पद है। घूमता-फिरता है वह लड़की के साथ पर जब विवाह की बात चलती है तो सती सावित्री चाहिए। मैं विवाह-पूर्व संबंधों को गलत नहीं मानती पर गलती होने पर नारी ही क्यों भुगते। अवैध बच्चे निर्दोष होते हैं। उन्हें और उनकी मां को समाज क्यों दुतकारे। फिर भी विवाह के बंधन बगैर आज के चंचल युग में साथ रहना कठिन है।'

'कानूनी तौर पर औरत-मर्द को हिंदुस्तान में बराबर हक मिले हैं,' किटी मेनन का कहना है, 'लेकिन व्यावहारिक तौर पर कहानी दूसरी है। क्या औरत को बराबर श्रम के बराबर दाम मिलते हैं? नहीं। क्या उसे उद्योग में बराबर अवसर मिलता है? नहीं। क्या तकनीकी क्षेत्र में औरत को 'स्किल्ड' काम सीखने का मौका मिलता है?

वह केवल बोझ उठाने लायक समझी जाती है। यदि लड़की तकनीकी शिक्षा ग्रहण करना चाहे तो 'शादी करके तालीम बरबाद करेगी' कहकर उसे हताश किया जाता है। यदि वह 'कंपटीटिव' क्षेत्र में काम करना चाहे तो कहा जाता है वह बेरोजगार मर्द का हक छीनती है। एक तरफ वह आर्थिक जरूरतों के लिए आदमी पर निर्भर, दूसरी तरफ समाज की निगाहों में हीन और ऊपर से अंध-विश्वास की काल कोठरी में कैद—कहां है उसकी आजादी? जब तक समाज नहीं बदलता, अर्थ-व्यवस्था नहीं बदलती, औरत गुलाम रहेगी। फिर भी इस ढांचे के भीतर भी कुछ-न-कुछ किया जा सकता है। बराबर वेतन के लिए नारी आंदोलन कर सकती है। हर क्षेत्र में काम करने के अवसर के लिए लड़ सकती है। विवाहित नारियां सामाजिक सुधार में भाग ले सकती हैं ताकि अवकाश का सही प्रयोग हो पाये। उन्हें प्रसूतिका संबंधी सुविधाएं और छुट्टी की मांग करनी चाहिए। ●

परिचर्चा की अगली किस्त सितंबर अंक में

अंदाज अपने-अपने

चार छोटी कविताएं

फिर

बरसात के साथ जाने किस की
याद सताने लगी
बेचारी बिरहनें
पोखर से निकले मेढक की तरह
फिर टर्राने लगीं

कौरव

प्रेम को यदि
धृतराष्ट्र की तरह
अंधा पायें
तो वहां भी जन्म लेंगी
सौ विडंबनाएं

समझौता

तुम
यमराज की नाईं
मेरा पीछा करते
कहां तक चली आयीं
सुनकर उनकी बातें
वह बोली 'अहो'
मैं तुम्हारा पीछा
करूंगी सावित्री-सा
प्रिय तुम ही यमराज रहो

प्रश्रय

पुरुष—लौह-स्तंभ
औरतें
उन पर टिकी हुई
छतें

—डॉ. सरोजनी प्रीतम

महिला वर्ष आखिर किसलिए? किसके लिए?

● कैलाश भारद्वाज

सारे संसार में बड़ी धूमधाम से मनाये जा रहे 'अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष' को हम किसलिए मना रहे हैं?' इस समारोह की बुनियाद में ही मानो यह बात छिपी हुई है कि पुरुष अभी स्त्री को अपने से हीन मानता है।

भला ऐसे समारोहों से हमारा क्या सरोकार हो सकता है? हम उन लोगों में से नहीं हैं जो स्त्री को पुरुष के समकक्ष मानने से इनकार कर दें। हमने तो हजारों साल पहले ही ऋग्वेद में कहा था—**'वृषभश्च धेनुः।'**

यह उक्ति परमात्मा के विषय में है। इसका अर्थ है—वह नर और नारी दोनों है।

संभव है, दोषदर्शी लोग इस वेद-वाक्य में भी दोष देख लें और कह दें कि परमात्मा नर और नारी—दोनों [illegible] अवश्य है, किंतु हो सकता है परमात्मा [illegible] बड़ा भाग पुरुष हो और छोटा भाग स्त्री।

कविकुलगुरु कालिदास ने भी [illegible] 'रघुवंश' के मंगलाचरण में वाक और [illegible] के रूपक द्वारा नर-नारी की समानता [illegible] उद्घोष कर दिया—जिसका भावार्थ है—(वाक और अर्थ की प्राप्ति [illegible] लिए) वाक और अर्थ के समान सटे [illegible] विश्व के माता-पिता पार्वती और परमेश्वर (शिव) की वंदना करता हूं।

हो सकता है, काव्य में सभी की [illegible] न हो, इसलिए नर-नारी की समान[illegible] के प्रत्यक्ष दर्शन की भी हमने व्यव[illegible]

की—चित्रकला, मूर्तिकला आदि का सहारा लिया। एलोरा की गुफा में अर्ध-नारीश्वर की मूर्ति बना दी—दो समान भागों में विभक्त मूर्ति—दक्षिण-भाग शिव का और वाम-भाग पार्वती का।

और तो और, तैत्तिरीय-ब्राह्मण में हमने यह नियम तक लिख दिया कि पत्नी-विहीन पुरुष यज्ञ का अधिकारी नहीं है।

कहना न होगा कि यज्ञ से हमारा अभिप्राय दांपत्य जीवन-रूपी यज्ञ से ही था। पति-पत्नी (नर-नारी) की जोड़ी को व्यक्त करनेवाले 'मिथुन' और 'दंपति' शब्द हमने ही रचे थे। बल्कि नर-नारी में तो हमने जन्म से ही कोई भेद नहीं किया। पुत्र और पुत्री—दोनों के लिए एक ही शब्द 'अपत्य' का प्रयोग किया। यदि हमने पुत्र-प्राप्ति के लिए स्तुति की तो पुत्री-प्राप्ति के लिए भी की।

अपनी पुत्रियों के लिए शिक्षा-दीक्षा की हमने अद्भुत व्यवस्था की थी। यम-स्मृति इस बात का प्रमाण है कि पुराने समय में कन्याओं का उपनयन (संस्कार) होता था। वे वेद तथा गायत्री भी पढ़ती थीं। हमारी शिक्षा-दीक्षा का ही यह फल था कि भारतीय नारियां पौरोहित्य करती थीं और बड़े-बड़े विद्वानों को शास्त्रार्थ में परास्त कर देती थीं। इला पुरोहिताई किया करती थीं। ब्रह्म-वादिनी गार्गी ने तो उस युग के महान तत्त्व-ज्ञानी याज्ञवल्क्य ऋषि को शास्त्रार्थ में हरा दिया था।

हमने अपनी कन्या को विवाह के संबंध में जो स्वतंत्रता दी थी, वह आज बीसवीं सदी में भी अनेक जातियों के लिए ईर्ष्या का विषय हो सकती है। कन्या जब तक चाहे अविवाहित रूप में पिता के यहां रह सकती थी। पिता के घर में वृद्धावस्था तक रहनेवाली ब्रह्म-वादिनी घोषा का आख्यान ऋग्वेद में है। वर के चुनाव में भी लड़की को पूरे अधिकार दिये गये थे। इसीलिए वह 'पतिंवरा' कहलाती थी। उसमें कहा गया है—जो स्त्री भद्र व सभ्य है, जिसका शरीर सुगठित है, वह अनेक पुरुषों में से अपने मन के अनुकूल प्रिय पात्र को पति स्वीकार करती है (ऋग्वेद, १०, १२, ७२)। सूर्य की पुत्री सूर्या को सोम प्राप्त करना चाहता था, किंतु उसने वर के रूप में आश्विन का चुनाव किया और पिता ने सूर्या को उसी को दिया।

नारी के अनैतिक आचरण के लिए भी हमने पुरुष को ही जिम्मेदार ठहराया।

पुत्र-पुत्री के अभेद को इस तथ्य में देखा जा सकता है कि हमने पुत्र के पुत्र तथा पुत्री के पुत्र में कोई भेद नहीं माना। पौत्र और दौहितृ हमारे लिए सदा समान रहे।

जहां तक भारतीय नारी की आर्थिक स्वतंत्रता का प्रश्न है, उसकी मिसाल सारे संसार में नहीं मिल सकती। भ्रातृ-विहीन पुत्री विवाह के बाद भी पिता की संपत्ति में से अंश प्राप्त कर सकती थी। अपना दाय-भाग प्राप्त करने के लिए उषा

"मेरा वजन नहीं बढ़ा है, लगता है मशीन ही कुछ खराब हो गयी है।"

द्वारा अपने पिता के घर जाने से संबद्ध कथन में यह बात स्पष्ट है। रही अविवाहित कन्या की बात, तो उसे तो हम पिता की संपत्ति में से हिस्सा देते ही थे।

हमारे यहां तो पति भी पत्नी की आर्थिक स्वतंत्रता का हामी रहा है। महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा अपनी पत्नी मैत्रेयी को संपत्ति-भाग देने का प्रस्ताव इस बात की पुष्टि करता है।

पत्नी की प्रतिष्ठा के विषय में नवीं शताब्दी के 'मनुस्मृति' के भाष्यकार मेधातिथि का मत हमारी उदारता का प्रबल प्रमाण है। उनके अनुसार 'पत्नी परमात्मा से प्राप्त होती है—पशु अथवा स्वर्ण के समान बाजार में नहीं मिलती, इसलिए पत्नी पर पति का कोई स्वामित्व नहीं हो सकता।'

मेधातिथि ने तो मनु की मान्यता को भी उखाड़कर रख दिया है। मनु ने (किन्हीं दुर्बल क्षणों में) यह कह दिया था कि पति पत्नी के मूल्य पर अपना बचाव कर सकता है। (राम द्वारा सीता का निष्कासन शायद इसका एक उदाहरण हो सके)। मेधातिथि ने इसका खंडन करते हुए कहा कि 'पत्नी को त्यागने का अधिकार राजाओं को भी नहीं है।'

फिर अब तो शास्त्रीय मान्यताओं को कानूनी समर्थन भी मिल गया है। कम उम्र में लड़की का विवाह कानूनी अपराध है। वयस्क लड़की अपनी पसंद के वर का चुनाव कर सकती है। अंतर्जातीय, अंतर्सांप्रदायिक तथा अंतप्रांतीय विवाहों पर कोई रोक नहीं है। लड़की को पैतृक संपत्ति में भी अधिकार मिला है। पति से समानता का व्यवहार न पाने पर तलाक का विधान है तथा संतान की संख्या सीमित रखने के लिए गर्भपात तक की कानूनी सुरक्षा है।

आज भारतीय नारी किसी भी पद पर काम कर सकती है, उसे मतदान का समान अधिकार प्राप्त है। किसी भी आधार पर नारी को समान अधिकारों से वंचित नहीं किया जा सकता। फिर हमें महिला वर्ष के पचड़े में पड़ने की क्या आवश्यकता है ? महिला-वर्ष मनायें वे देश जहां नारी पुरुष के समकक्ष नहीं है!

—भारद्वाज आश्रम, रानीताल बाग, नाहन (हि. प्र.)

हिमशिखर पर खड़ी ताबेइ

• योगराज थानी

अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष में, सरगमाथा (एवरेस्ट) अभियान के इतिहास में, जापान की ३६ वर्षीया महिला जुन्को ताबेइ ने नया अध्याय जोड़ दिया है। यों तो किसी भी क्षेत्र में सर्वप्रथम रहने या नया कीर्तिमान स्थापित करने का अपना महत्त्व होता है, लेकिन किसी दुर्गम और दुर्लभ कार्य को, जिसे संकट से भरा होने के कारण लोग असंभव मानते चले आये हों, अपनी शारीरिक क्षमता और आत्मबल से संभव कर दिखानेवाले की विशिष्ट और विलक्षण उपलब्धि होती है। इसलिए कहा जा सकता है कि पुरुषों के पर्वतारोहण के इतिहास में जो स्थान तेनसिंह नोर्के और एडमंड हिलैरी का है या इंगलिश चैनल के इतिहास में जो स्थान मैथ्यू बेव का है, ठीक वही स्थान अब महिला पर्वतारोहण के इतिहास में जुन्को ताबेइ ने प्राप्त कर लिया है।

महिला-समाज में आत्मविश्वास

आज से २२ साल पहले तक संसार के जिस सर्वोच्च शिखर सरगमाथा (जिसकी ऊंचाई ८,८४८ मीटर यानी २९,०२८ फुट है) पर किसी पुरुष का पहुंच पाना असंभव माना जाता था (एक शेरपा कहावत है कि 'वहां तो कोई चिड़िया भी नहीं फटक

यहां चिड़िया भी नहीं फटक सकती
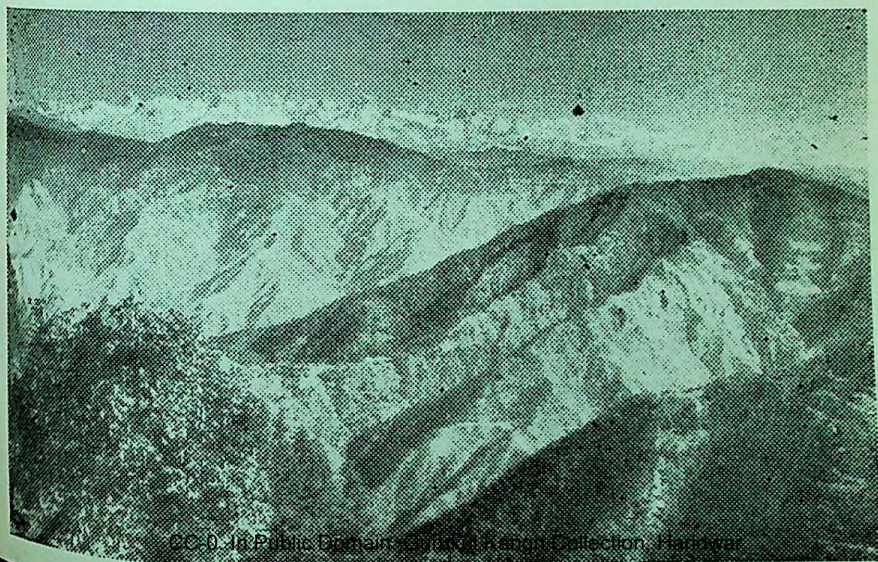
विजय की पताका

सकती') वहां पर अब एक महिला को सरगमाथा को तिलक करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष में जापान की श्रीमती जुन्को ताबेइ ने, जो तीन साल की बच्ची की मां भी हैं, इस ऐतिहासिक सफलता को पार कर यह सिद्ध कर दिया है कि अब महिलाएं भी किसी भी क्षेत्र में (यहां तक कि संकट भरे कार्यों में भी) पुरुषों की तुलना में उन्नीस नहीं हैं। उनकी इस अभूतपूर्व सफलता से विश्व के पूरे महिला-समाज में आत्मविश्वास का भाव आ गया है।

जुन्को ने १६ मई, १९७५ को अपराह्न १२ बजकर ३० मिनट पर अपने शेरपा आंग त्सेरिंग के साथ सरगमाथा पर अपने कदम रखे और वहां पर जापानी और नेपाली झंडे फहराये। दोनों पर्वतारोही २८ मिनट तक वहां रहे।

संकल्प की धनी

पर्वतारोहण के अभियान में मनुष्य की सारी कुशलता और योग्यता के साथ-साथ प्रकृति की कृपा-दृष्टि भी होना बहुत जरूरी होता है। एक दिन पहले ही यह समाचार सुनने में आया था कि खराब मौसम होने के कारण शायद यह अभियान स्थगित करना पड़ जाए, लेकिन संकल्प और धुन की धनी ताबेइ हिम्मत नहीं हारी और उसने छठे और अंतिम शिविर से अपना अभियान शुरू कर दिया।

इस बार १५-सदस्यीय जापानी महिला अभियान का नेतृत्व ४२ वर्षीया श्रीमती एइको हिसानो ने किया और ताबेइ इस दल की उपनेता थी। इस दल ने वही परंपरागत दक्षिण-पूर्वी मार्ग अपनाया जिस मार्ग से १९५३ में पहली बार तेनसिंह नोर्के और एडमंड हिलैरी ने इस शिखर पर विजय प्राप्त की थी। ३ मई को दूसरे आधार-शिविर पर जुन्को सहित ६ पर्वतारोही सदस्य और ७ शेरपा बर्फीले तूफान में बुरी तरह घायल हो गये थे।

संसार के सर्वोच्च शिखर पर

३६ वर्षीया गृहिणी ताबेइ तोक्यो के पास साइतामा की रहनेवाली है और उसका

पर्वतारोहण का शौक बहुत पुराना है। इससे पहले उसने १९७० में अन्नपूर्णा शिखर (७,५५० मीटर ऊंचाई) पर विजय प्राप्त की थी। तावेइ से पहले एक जापानी महिला कुमारी सेत्सुको वातानावे १९७० में साउथ कोल तक पहुंची थी।

श्रीमती तावेइ (वजन ४३ किलोग्राम और कद १५२ सेंटीमीटर) ने बहुत पहले ही यह संकल्प कर लिया था कि वह एक-न-एक दिन संसार के सर्वोच्च शिखर पर पहुंचने में जरूर सफल होगी। वह काफी समय तक एक मिडिल स्कूल में अध्यापन कार्य करती रही। बच्चों को पढ़ाने के बाद जो थोड़ा बहुत समय मिल जाता, वह पर्वतारोहण का प्रशिक्षण और अभ्यास शुरू कर देती।

इस क्षेत्र में सफलता दिलाने में जुन्को के पति मसानाबू का भी काफी योगदान रहा है। ४१ वर्षीय मसानाबू एक जमाने में

(जुन्को तावेइ)

स्वयं भी पर्वतारोहण के बड़े शौकीन थे और वे अकसर ७,५०० मीटर तक की ऊंचाई तक पहुंच जाते, लेकिन धीरे-धीरे उन्हें यह शौक काफी महंगा लगने लगा। इसका उनके व्यापार पर भी प्रतिकूल असर पड़ा। इसलिए उन्होंने १९६८ में

एकाकी शिखर का मौन निमंत्रण

स्वयं तो पर्वतारोहण से संन्यास ले लिया, लेकिन अपनी पत्नी जुन्को को हमेशा उत्साहित और प्रेरित करते रहे। उन्हें इस बात का पूरा यकीन था कि जुन्को ने मन में जो ठान लिया है उसे वह एक न एक दिन पूरा करके ही रहेगी।

पर्वतारोहण के लिए त्याग

उधर जुन्को ने भी सोच लिया कि अध्यापन-कार्य के साथ-साथ पर्वतारोहण का शौक पूरा नहीं किया जा सकता, इसके लिए कुछ न कुछ तो त्याग करना ही पड़ेगा। यह सोचकर दो साल पहले अपनी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया और वहां से जो भी थोड़ी-बहुत जमा-पूंजी मिली उसे पर्वतारोहण-प्रशिक्षण पर खर्च करना शुरू कर दिया। पर्वतारोहण-अभियान की एक परंपरा यह भी है कि उसमें जितनी भी धनराशि खर्च होती है उसका आधा भाग सदस्य को देना पड़ता है। इसलिए जुन्को को भी इस शौक को पूरा करने के लिए काफी धनराशि खर्च करनी पड़ी, लेकिन आज उन्हें जो गौरव प्राप्त हुआ है उसकी तुलना में वह धनराशि कुछ भी नहीं है।

सरगमाथा पर पहली बार एक महिला के पहुंचने पर तेनसिंह नोर्के ने कहा, "यह विश्व की पूरी महिला-जाति की विजय है।" आज से २२ साल पहले तेनसिंह नोर्के और एडमंड हिलैरी ने पहली बार सरगमाथा को तिलक लगाया था। एडमंड हिलैरी ने कहा कि मुझे यह समाचार सुनकर कोई विशेष आश्चर्य नहीं हुआ कि एक महिला संसार के सर्वोच्च शिखर पर पहुंच गयी है, क्योंकि पिछले २० वर्षों में पर्वतारोहण के क्षेत्र में महिलाओं का स्तर काफी ऊंचा उठा है। उन्होंने यह भी कहा कि मेरा तात्पर्य उनके महत्त्व को कम करने का नहीं है।

सरगमाथा को तिलक करनेवाले

२९ मई, १९५३ को पहली बार सरगमाथा पर तेनसिंह नोर्के और एडमंड हिलैरी पहुंचे थे। उसके बाद २३ और २४ मई १९५६ को स्विट्जरलैंड-दल को वहां पहुंचने में सफलता मिली। उसमें अभियान के सदस्यों के नाम थे—अन्सर्ट श्माइट, जर्म मार्मेट, अडोल्फ राइस्ट और हान्सुडोल्फ वान गंटेन। १९६३ में एक अमरीकी अभियान को इसमें सफलता मिली जिसके सदस्यों के नाम थे—जेम्स डब्ल्यू व्हिटेकर, नवांग गोंबू, लूथर जी. जर्स्टेड, बैरी बिशप, विलियम ए. अन्सोल्ड और टामस एफ. हार्नबाइन। १९६५ में लेफ्टिनेंट कमांडर एम. एस. कोहली के नेतृत्व में एक साथ ९ पर्वतारोही सरगमाथा तक पहुंचने में सफल हुए थे। नवांग गोंबू दो बार सरगमाथा पर पहुंचने में सफल हुए हैं।

यह समाचार भी सुनने में आया कि चीन का एक ९ सदस्यीय दल सरगमाथा पर पहुंचने में सफल हो गया। चीन का दावा है कि इससे पहले २५ मई, १९६० को भी दो चीनी पर्वतारोही (वांग चो... और चाऊ यिन मुआ) वहां पहुंचे थे। इस कथन को पूर्ण मान्यता नहीं मिली है। ●

कहानी

• अमृता प्रीतम

पत्थर और चूना बहुत था, लेकिन अगर थोड़ी-सी जगह पर दीवार की तरह उभरकर खड़ा हो जाता, तो घर की दीवारें बन सकता था। पर बना नहीं। वह धरती पर फैल गया, सड़कों की तरह, और वह दोनों तमाम उम्र उन सड़कों पर चलते रहे . . .

सड़कें, एक-दूसरे के पहलू से भी फटती हैं, एक-दूसरे के शरीर को चीरकर भी गुजरती हैं, एक-दूसरे से हाथ छुड़ाकर गुम भी हो जाती हैं, और एक-दूसरे के गले से लगकर एक-दूसरे में लीन भी हो जाती थीं। वे एक-दूसरे से मिलते रहे, पर सिर्फ तब जब कभी-कभार उनके पैरों के नीचे बिछी हुई सड़कें एक-दूसरे से आकर मिल जाती थीं।

घड़ी-पल के लिए शायद सड़कें भी चौंककर रुक जाती थीं, और उनके पैर भी . . .

और तब शायद दोनों को उस घर का ध्यान आ जाता था जो बना नहीं था . . .

बन सकता था, फिर क्यों नहीं बना ? वे दोनों हैरान-से होकर पांवों के नीचे की जमीन को ऐसे देखते थे जैसे यह बात उस जमीन से पूछ रहे हों . . .

और फिर वे कितनी ही देर जमीन की ओर ऐसे देखने लगते मानो वे अपनी नजर से जमीन में उस घर की नींव खोद लेंगे . . .

और कई बार सचमुच वहां जादू का एक घर उभरकर खड़ा हो जाता और वे दोनों ऐसे सहज मन हो जाते मानो बरसों से उस घर में रह रहे हों. . .

यह उनकी भरपूर जवानी के दिनों की बात नहीं, अब की बात है, ठंडी उम्र

लेखिका

की बात, कि 'अ' एक सरकारी मीटिंग के लिए 'स' के शहर गयी। अ को भी वक्त ने स जितना सरकारी ओहदा दिया है, और बराबर की हैसियत के लोग जब मीटिंग से उठे, सरकारी दफ्तर ने बाहर के शहरों से आनेवालों के लिए वापसी टिकट तैयार रखे हुए थे, स ने आगे बढ़कर अ का टिकट ले लिया, और बाहर आकर अ से अपनी गाड़ी में बैठने के लिए कहा।

पूछा, "सामान कहां है?"

"होटल में!"

स ने ड्राइवर से पहले होटल और फिर वापस घर चलने के लिए कहा।

अ ने आपत्ति नहीं की, पर तर्क के तौर पर कहा, "प्लेन में सिर्फ दो घंटे बाकी हैं, होटल होकर मुश्किल से एयरपोर्ट पहुंचूंगी।"

"प्लेन कल भी जाएगा, परसों भी, रोज जाएगा।" स ने सिर्फ इतना कहा, फिर रास्ते में कुछ नहीं कहा।

होटल से सूटकेस लेकर गाड़ी में रख लिया, तो एक बार अ ने फिर कहा, "वक्त थोड़ा है, प्लेन मिस हो जाएगा।"

स ने जवाब में कहा, "घर पर मां इंतजार कर रही होंगी।"

अ सोचती रही कि शायद स ने मां को इस मीटिंग का दिन बताया था, पर वह समझ नहीं सकी—क्यों बताया था?

अ कभी-कभी मन से यह 'क्यों' पूछ लेती थी, पर जवाब का इंतजार नहीं करती थी। वह जानती थी—मन के पास कोई जवाब नहीं था। वह चुप बैठी शीशे में से बाहर शहर की इमारतों को देखती रही . . .

कुछ देर बाद इमारतों का सिलसिला टूट गया। शहर से दूर बाहर की आबादी आ गयी, और पॉम के बड़े-बड़े पेड़ों की कतारें शुरू हो गयीं . . .

समुद्र शायद पास ही था, अ की सांस नमकीन-सी हो गयी। उसे लगा—पॉम के पत्तों की तरह उसके हाथों में कंपन आ गया था—शायद स का घर भी अब पास था. . . .

पेड़ों-पत्तों में लिपटी हुई-सी एक कॉटेज के पास पहुंचकर गाड़ी खड़ी हो गयी। अ भी उतरी, पर कॉटेज के भीतर जाते हुए एक पल के लिए बाहर केले के पेड़ के पास खड़ी हो गयी। जी किया—अपने कांपते हुए हाथों को यहां बाहर केले के कांपते हुए पत्तों के बीच में रख दे। वह स के साथ भीतर कॉटेज में जा

सकती थी, पर हाथों की वहां जरूरत नहीं थी—इन हाथों से न वह अब स को कुछ दे सकती थी, न स से कुछ ले सकती थी . . .

मां ने शायद गाड़ी की आवाज सुन ली थी, बाहर आ गयी। उन्होंने हमेशा की तरह अ का माथा चूमा और

स भी अब तक भीतर आ गया था, मां से कहने लगा, "पहले चाय बनवाओ, फिर खाना।"

अ ने देखा—ड्राइवर गाड़ी से उसका सूटकेस अंदर ला रहा था। उसने स की ओर देखा, कहा, "बहुत थोड़ा वक्त है, मुश्किल से एयरपोर्ट पहुंचूंगी . . ."

कहा, "आओ, बेटी !"

इस बार अ बहुत दिनों बाद मां से मिली थी, पर मां ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए—जैसे सिर पर से बरसों का बोझ उतार दिया हो—और उसे भीतर ले जाकर बिठाते हुए उससे पूछा, "क्या पियोगी, बेटी ?"

स ने उससे नहीं, ड्राइवर से कहा, "कल सवेरे जाकर परसों का टिकट ले आना।" और मां ने कहा, "तुम कहती थीं कि मेरे कुछ दोस्तों को खाने पर बुलाना है, कल बुला लो।"

अ ने स की जेब की ओर देखा, जिसमें उसका वापसी का टिकट पड़ा हुआ था,

कहा, "पर यह टिकट बरबाद जाएगा. . "

मां रसोई की तरफ जाते हुए खड़ी हो गयी, और अ के कंधे पर अपना हाथ रखकर कहने लगी, "टिकट का क्या है, बेटी ! इतना कह रहा है, रुक जाओ।"

पर क्यों ?—अ के मन में आया, पर कहा कुछ नहीं। कुरसी से उठकर कमरे के आगे बरामदे में जाकर खड़ी हो गयी। सामने दूर तक पॉम के ऊंचे-ऊंचे पेड़ थे। समुद्र परे था। उसकी आवाज सुनायी दे रही थी, पर पेड़ दिखायी दे रहे थे। अ को लगा—सिर्फ आज का 'क्यों' नहीं, उसकी जिंदगी के कितने ही 'क्यों' उसके मन के समुद्र के तट पर इन पॉम के पेड़ों की तरह उगे हुए हैं, और उनके पत्ते अनेक वर्षों से हवा में कांप रहे हैं।

अ ने घर के मेहमान की तरह चाय पी, रात को खाना खाया, और घर का गुसलखाना पूछकर रात को सोने के समय पहननेवाले कपड़े बदले। घर में एक लंबी बैठक थी, ड्राइंग-डाइनिंग, और दो और कमरे थे—एक स का, एक मां का। मां ने जिद करके अपना कमरा अ को दे दिया, और स्वयं बैठक में सो गयी।

अ सोनेवाले कमरे में चली गयी, पर कितनी ही देर झिझकी हुई-सी खड़ी रही। सोचती रही, 'मैं बैठक में एक-दो रात मुसाफिरों की तरह ही रह लेती, ठीक था, यह कमरा मां का है, मां का ही रहना चाहिए था . . . '

सोनेवाले कमरे के पलंग में, पर्दों में, और अलमारी में एक घरेलू-सी बू-वास होती है, अ ने इसका एक घूंट-सा भरा। पर फिर अपनी सांस रोक ली, मानो अपनी ही सांसों से डर रही हो. . .

बराबर का कमरा स का था। कोई आवाज नहीं थी। घड़ी पहले स ने सिरदर्द की शिकायत की थी, नींद की गोली खायी थी, अब तक शायद सो गया था। पर बराबरवाले कमरों की भी अपनी एक बू-बास होती है, अ ने एक बार उसका भी एक घूंट पीना चाहा, पर सांस रुकी

रही।

फिर अ का ध्यान अलमारी के पास नीचे फर्श पर पड़े हुए अपने सूटकेस की ओर गया, और उसे हंसी-सी आ गयी—"यह देखो मेरा सूटकेस, मुझे सारी रात मेरी मुसाफिरी की याद दिलाता ही रहेगा . . ."

और वह सूटकेस की ओर देखते हुए, थकी हुई-सी, तकिये पर सिर रखकर लेट गयी . . .

न जाने कब नींद आ गयी। सोकर जागी तो खासा दिन चढ़ा हुआ था। बैठक में रात को होनेवाली दावत की हलचल थी।

एक बार तो अ आंखें झपककर रह गयी—बैठक में सामने स खड़ा था—चारखाने का नीले रंग का तहमद पहने हुए। अ ने उसे कभी रात के सोने के कपड़ों में नहीं देखा था। हमेशा दिन में ही देखा था—किसी सड़क पर, सड़क के किनारे किसी कैफे में, होटल में, या किसी सरकारी मीटिंग में—उसकी यह पहचान नयी-सी लगी, आंखों में अटक-सी गयी . .

अ भी इस समय नाइट-सूट पहने हुई थी, पर अ ने बैठक में आने से पहले उस पर ध्यान नहीं दिया था, अब ध्यान आया तो अपना-आप ही अजीब लगने लगा—साधारण से असाधारण-सा होता हुआ . . .

बैठक में खड़ा हुआ स, अ को आते हुए देखकर कहने लगा, "ये दो सोफे हैं, इन्हें लंबाई के रुख रख लें, बीच में जगह खुली हो जाएगी।"

अ ने सोफों को पकड़वाया, छोटी मेजों को उठाकर कुरसियों के बीच में रखा। फिर मां ने चौके से आवाज दी तो अ ने चाय लाकर मेज पर रख दी।

चाय पीकर स ने उससे कहा, "चलो, जिन लोगों को बुलाना है, उनके घर जाकर कह आयें, और लौटते हुए कुछ फल लेते आयें।"

दोनों ने पुराने परिचित दोस्तों के घर जाकर दस्तक दी, संदेशे दिये, रास्ते से चीजें खरीदीं, फिर वापस आकर दोपहर का खाना खाया, और फिर बैठक को फूलों से सजाने में लग गये।

दोनों ने रास्ते में साधारण-सी बातें की थीं . . . फल कौन-कौन से लेने हैं? पान लेने हैं या नहीं? ड्रिंक्स के साथ के लिए कबाब कितने ले लें? फलां का घर रास्ते में पड़ता है, उसे भी बुला लें?—और ये सब बातें वे नहीं थीं जो सात बरस बाद मिलनेवाले करते हैं।

अ को सवेरे दोस्तों के घर पर पहली दूसरी दस्तक देते समय ही सिर्फ थोड़ी-सी परेशानी महसूस हुई थी। वे भले ही स के दोस्त थे, पर एक लंबे समय से अ को जानते थे, दरवाजा खोलने पर बाहर उसे स के साथ देखते तो हैरान से ही कह उठते, "आप!"

पर वे जब अकेले गाड़ी में बैठते,

तो स हंस देता, "देखा, कितना हैरान हो गया, उससे बोला भी नहीं जा रहा था !"

और फिर एक-दो बार के बाद दोस्तों की हैरानी भी उनकी साधारण बातों में शामिल हो गयी। स की तरह अ भी सहज मन से हंसने लगी।

शाम के समय स ने छाती में दर्द की शिकायत की। मां ने कटोरी में ब्रांडी डाल दी, और अ से कहा," लो बेटी, यह ब्रांडी इसकी छाती पर मल दो।"

इस समय तक शायद इतना कुछ सहज हो चुका था, अ ने स की कमीज के ऊपरवाले बटन खोले, और हाथ से उसकी छाती पर ब्रांडी मलने लगी।

बाहर पॉम के पेड़ों के पत्ते और केलों के पत्ते शायद अभी भी कांप रहे थे, पर अ के हाथ में कंपन नहीं था। एक दोस्त समय से पहले आ गया था, अ ने ब्रांडी में भीगे हुए हाथों से उसका स्वागत करते हुए उसे नमस्कार भी किया, और फिर कटोरी में हाथ डुबाकर शेष ब्रांडी को स की गरदन पर मल दिया—कंधों तक।

धीरे-धीरे कमरा मेहमानों से भर गया। अ फ्रिज से बरफ निकालती रही और सादा पानी भर-भरकर फ्रिज में रखती रही। बीच-बीच में रसोई की तरफ जाती, ठंडे कबाब फिर से गरम करके ले आती। सिर्फ एक बार जब स ने अ के कान के पास होकर कहा, "तीन-चार तो वे लोग भी आ गये हैं, जिन्हें बुलाया नहीं था। जरूर किसी दोस्त ने उनसे भी कहा होगा, तुम्हें देखने के लिए आ गये हैं . ." तो पल भर के लिए अ की स्वाभाविकता टूटी, पर फिर जब स ने उससे कुछ गिलास धोने के लिए कहा, तब वह उसी तरह सहज मन हो गयी।

महफिल गरम हुई, रात ठंडी हुई, और जब लगभग आधी रात के समय सब चले गये, अ को सोनेवाले कमरे में जाकर अपने सूटकेस में से रात के कपड़े निकालकर पहनते हुए लगा कि सड़कों पर बना हुआ जादू का घर अब कहीं भी नहीं था . . .

यह जादू का घर उसने कई बार देखा था—बनते हुए भी, मिटते हुए भी, इसलिए वह हैरान नहीं थी। सिर्फ थकी-थकी-सी तकिये पर सिर रखकर सोचने लगी—कब की बात है. . . शायद पचीस बरस हो गये, नहीं तीस बरस . . . जब पहली बार वे जिंदगी की सड़कों पर मिले थे . . . अ किस सड़क से आयी थी, स कौन-सी सड़क से आया था, दोनों पूछना भी भूल गये थे, और बताना भी। वे निगाह नीची किये, जमीन में नींवें खोदते रहे, और फिर वहां जादू का एक घर बनकर खड़ा हो गया, और वे सहज मन से सारे दिन उस घर में रहते रहे।

फिर जब दोनों की सड़कों ने उन्हें

आवाजें दीं, वे अपनी-अपनी सड़क की ओर जाते हुए चौंककर खड़े हो गये। देखा—दोनों सड़कों के बीच एक गहरी खाई थी। स कितनी ही देर उस खाई की ओर देखता रहा, जैसे अ से पूछ रहा हो कि इस खाई को तुम किस तरह पार करोगी ? अ ने कहा कुछ नहीं था, पर स के हाथ की ओर देखा था, जैसे कह रही हो, 'तुम हाथ पकड़कर पार करा लो, मैं मजहब की इस खाई को पार कर जाऊंगी।'

फिर स का ध्यान ऊपर की ओर गया था, अ के हाथ की ओर। अ की अंगुली में हीरे की एक अंगूठी चमक रही थी। स कितनी देर तक देखता रहा, जैसे पूछ रहा हो, 'तुम्हारी अंगली पर यह जो कानून का धागा लिपटा हुआ है, मैं इसका क्या करूंगा ?' अ ने अपनी अंगुली की ओर देखा था, और धीरे से ंस पड़ी थी, जैसे कह रही हो, 'तुम एक बार कहो, मैं कानून का यह धागा नाखूनों से खोल दूंगी। नाखूनों से नहीं खुलेगा तो दांतों से खोल दूंगी।'

पर स चुप रहा था, और अ भी चुप खड़ी रह गयी थी। पर जैसे सड़कें एक ही जगह पर खड़ी हुई भी चलती रहती हैं, वे भी एक जगह पर खड़े हुए चलते रहे . . .

फिर एक दिन स के शहर से आनेवाली सड़क अ के शहर आ गयी थी, और अ ने स की आवाज सुनकर अपने एक बरस के बच्चे को उठाया था, और बाहर सड़क पर उसके पास आकर खड़ी हो गयी थी। स ने धीरे से हाथ आगे करके सोये हुए बच्चे को अ से ले लिया था, और अपने कंधे से लगा लिया था । और फिर वे सारे दिन उस शहर की सड़कों पर चलते रहे . . .

वे उनकी भरपूर जवानी के दिन थे—उनके लिए न धूप थी, न ठंड। और फिर जब चाय पीने के लिए वे एक कैफे में गये तो बैरे ने एक मर्द, एक औरत और एक बच्चे को देखकर एक अलग कोने की कुरसियां पोंछ दी थीं और कैफे के उस अलग कोने में एक जादू का घर बन-कर खड़ा हो गया था . . . .

और एक बार—अचानक चलती हुई रेलगाड़ी में मिलाप हो गया था। स भी था, मां भी और स का एक दोस्त भी। अ की सीट बहुत दूर थी, पर स के दोस्त ने उससे अपनी सीट बदल ली थी, और उसका सूटकेस उठाकर स के सूट-केस के पास रख दिया था। गाड़ी में दिन के समय ठंड नहीं थी, पर रात ठंडी थी, मां ने दोनों को एक कंबल दे दिया था, आधा स के लिए, आधा अ के लिए। और चलती हुई गाड़ी में उस साझे के कंबल के किनारे जादू के घर की दीवारें बन गये थे . . .

जादू की दीवारें बनतीं थीं, मिटती थीं, और आखिर उनके बीच खंडहरों की-सी खामोशी का एक ढेर लग जाता

था . . .

स को कोई बंधन नहीं था। अ को था। पर वह तोड़ सकती थी। फिर यह क्या था कि वे तमाम उम्र सड़कों पर चलते रहे . . .

'अब तो उम्र बीत गयी'—अ ने उम्र के तपते दिनों के बारे में भी सोचा और अब के ठंडे दिनों के बारे में भी। लगा—सब दिन, सब बरस, पॉम के पत्तों की तरह हवा में खड़े कांप रहे थे।

बहुत दिन हुए, एक बार अ ने बरसों की खामोशी को तोड़कर पूछा था, "तुम बोलते क्यों नहीं? कुछ भी नहीं कहते! कुछ तो कहो!"

पर स हंस दिया था, कहने लगा, "यहां रोशनी बहुत है, हर जगह रोशनी होती है, मुझसे बोला नहीं जाता।"

और अ का जी किया था—वह एक बार सूरज को पकड़कर बुझा दे . . .

सड़कों पर सिर्फ दिन चढ़ते हैं। रातें तो घरों में होती हैं . . . पर घर कोई था नहीं, इसलिए रात भी कहीं नहीं थी . . . उनके पास सिर्फ सड़कें थीं, और सूरज था, और स सूरज की रोशनी में बोलता नहीं था—

एक बार बोला था—

वह चुप-सा बैठा हुआ था जब अ ने पूछा था, "क्या सोच रहे हो?" तब वह बोला था, "सोच रहा हूं, लड़कियों से फ्लर्ट करूं और तुम्हें दुखी करूं..."

पर इस तरह अ दुखी नहीं, सुखी हो जाती। इसलिए अ भी हंसने लगी थी, स भी।

और फिर एक लंबी खामोशी . . .

कई बार अ के जी में आता था—हाथ आगे बढ़ाकर स को उसकी खामोशी में से बाहर ले आये, वहां तक जहां तक दिल का दर्द है। पर वह अपने हाथों को सिर्फ देखती रहती थी, उसने हाथों से कभी कुछ कहा नहीं था।

एक बार स ने कहा था, "चलो, चीन चलें?"

"चीन?"

"जाएंगे, पर आएंगे नहीं?"

"पर चीन क्यों?"

यह 'क्यों' भी शायद पॉम के पेड़ के समान था जिसके पत्ते फिर हवा में कांपने लगे . . . .

इस समय अ ने तकिये पर सिर रखा हुआ था, पर नींद नहीं आ रही थी। स बराबर के कमरे में सोया हुआ था, शायद नींद की गोली खाकर।

अ को न अपने जागने पर गुस्सा आया, न स की नींद पर। वह सिर्फ यह सोच रही थी कि वे सड़कों पर चलते हुए जब कभी मिल जाते हैं तब वहां घड़ी-पहर के लिए एक जादू का घर क्यों बन-कर खड़ा हो जाता है?

अ को हंसी-सी आ गयी—तपती हुई जवानी के समय तो ऐसा होता था, ठीक है, लेकिन अब क्यों होता है? आज क्यों हुआ?

यह न जाने क्या था, जो उम्र की पकड़ में नहीं आ रहा था . . .

बाकी रात न जाने कब बीत गयी—अब दरवाजे पर धीरे-से खटका करता हुआ ड्राइवर कह रहा था कि एयरपोर्ट जाने का समय हो गया है . . .

अ ने साड़ी पहनी, सूटकेस उठाया, स भी जागकर अपने कमरे से आ गया, और वे दोनों उस दरवाजे की ओर बढ़े जो बाहर सड़क की ओर खुलता था . . .

ड्राइवर ने अ के हाथ से सूटकेस ले लिया था, अ को अपने हाथ और खाली-खाली से लगे। वह दहलीज के पास अटक-सी गयी, फिर जल्दी से अंदर गयी और बैठक में सोयी हुई मां को खाली हाथों से प्रणाम करके बाहर आ गयी. . .

फिर एयरपोर्ट वाली सड़क शुरू हो गयी, खत्म होने को भी आ गयी, पर स भी चुप था, अ भी . . .

अचानक स ने कहा, "तुम कुछ कहने जा रही थीं?"

"नहीं।"

और वे फिर चुप हो गये।

फिर अ को लगा—शायद स को भी—कि बहुत कुछ कहने को था, बहुत कुछ सुनने को, पर बहुत देर हो गयी थी, और अब सब शब्द जमीन में गड़ गये थे—पॉम के पेड़ बन गये थे और मन के समुद्र के पास लगे हुए उन पेड़ों के पत्ते शायद तब तक कांपते रहेंगे जब

तक हवा चलती रहेगी. . .

एयरपोर्ट आ गया और पांवों के नीचे स के शहर की सड़क टूट गयी . . .

अब सामने एक नयी सड़क थी—जो हवा में से गुजरकर अ के शहर की एक सड़क से जा मिलने को थी . . .

और वहां जहां दो सड़कें एक-दूसरे के पहलू से निकलती हैं, स ने धीरे से अ को अपने कंधे से लगा लिया। और फिर वे दोनों कांपते हुए, पांवों के नीचे की जमीन को इस तरह देखने लगे, जैसे उन्हें उस घर का ध्यान आ गया हो जो नहीं बना था . . .

—के–३५, हौजखास, नयी दिल्ली, १६

● पर्ल. एस. बक

"पिताजी तो आज देर से आयेंगे!' बेटे!' एंजेला बोली।

'आज क्रिसमस के पहले की शाम है तो भी!' जॉन ने कहा।

मां-बेटा मिलकर क्रिसमस-वृक्ष सजा रहे थे। दोनों एक-जैसे दीखते थे। वही काली और सुंदर आंखें, चिकनी और भूरी त्वचा, छोटे घुंघराले बाल। एंजेला ने कभी अपने बाल सीधे नहीं करवाये, उन्हें वह सदा छोटा कटवाती थी, जो उसके तराशे हुए-से सुडौल सिर से सटे रहते थे। उसी से जॉन ने ऐसा सुंदर सिर पाया था। मगर उसका नाक-नक्श गया था अपने पिता पर। बड़ा रूपवान लड़का था वह, सिर्फ दस बरस का। दस बरस पहले वह जनमा था, जब एंजेला निरी सोलह साल की थी और डैन था केवल सत्रह का!...और किस कदर डर गयी थी वह! डैन को यह बताते हुए कि 'मुझे पेट रह गया है' उसकी जबान लड़खड़ा गयी थी। अंत में उसने सहमते हुए पूछा था, 'हमारी शादी कब होगी डैन?' डैन ने भौंहें तरेरकर देखा था और सड़क पर पड़े पत्तों को जोर से लतियाया था।

हमेशा की तरह उस रविवार को वे दोपहर के समय पार्क में टहल रहे थे और डैन ने एक बड़ी चट्टान की ओट में उसका चुंबन लेना चाहा था। यह सब शुरू हुआ था स्कूल के भीड़-भरे हॉल में डैन के इन शब्दों से कि 'मुझे तुमसे कुछ कहना है' और फिर बातचीत से बढ़ते-बढ़ते प्रणय पर आ पहुंचे थे वे दोनों। ...परंतु आज वह चट्टान की ओट में रुकना नहीं चाहती थी, कम से कम यह बता देने तक तो नहीं ही कि अस्पताल में डॉक्टर ने क्या कहा था।

'तो कब होने वाला है—मेरा मतलब है कि बच्चा?' डैन ने सवाल किया।

'क्रिसमस के दिनों ...' वह बोली।

'यानी अभी छह महीने हैं, क्या तुम रफा-दफा नहीं करवा सकतीं?'

वह समझ नहीं सकी थी, 'रफा-दफा करवाना यानी क्या डैन ?'

'छुटकारा पा लो उससे,' डैन रुखाई से बोला था।

एकदम सहम गयी थी वह, 'ना-ना, मैं यह नहीं कर सकती डैन ! यह हम दोनों का बच्चा होगा, इसके साथ नहीं।'

'मैंने कब मांगा था तुमसे बच्चा ?'

'मैं जानती हूं।'

'तो फिर ? क्या तुम्हारी मां ने तुम्हें यह भी नहीं सिखाया कि ...?'

'मां को तुम्हारे बारे में कुछ भी पता नहीं है। वह तो हमेशा व्यस्त रहती है—स्कूल में पढ़ाना, और भी तमाम काम ! लेकिन अगर मैं उसे बता सकूं कि तुम मुझसे कब शादी कर रहे हो, तो ...'

यादों में खोयी वह सात का घंटा सुनकर चौंक पड़ी। बहुत देर कर दी थी डैन ने आज। मगर वह जानती थी कि डैन आज एक कानूनी फर्म में मुलाकात के लिए गया है, इस उम्मीद से कि शायद अगले जून में लॉ-स्कूल की पढ़ाई पूरी करते ही फर्म में उसे नौकरी मिल जाए, तब शायद उन्हें इस तरह पाई-पाई का हिसाब न करना पड़े।

वह उन पुरानी स्मृतियों पर मुसकराती जा रही थी और क्रिसमस-वृक्ष पर सजावटी चीजें टांकती जा रही थी—खुद अपने हाथों बनायी हुई चीजें, डैन की खरीदकर लायी हुई चीजें, मां के क्रिसमस-वृक्ष की चीजें, जिन्हें वह मरने से एक साल पहले अपनी बेटी को दे गयीं थी। एंजेला ने

एक नजर जॉन पर डाली, जो क्रिसमस-वृक्ष के नीचे घुटनों के बल वैठा हुआ था। उसके नजदीक बाल यीशु का पलना अभी डब्बे में रखा हुआ था, वैसे का वैसा बंद। तभी दरवाजा खुला और दिखायी पड़ा डैन—जॉन का पिता, एंजेला का पति, ऊंचा-पूरा सुंदर युवक, जिसके जीर्ण-शीर्ण कोट के कंधों पर हलकी बर्फ बिखरी हुई थी।
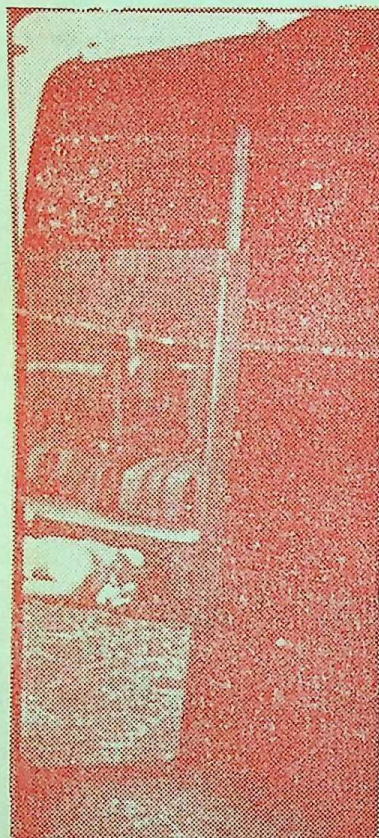
'ओह, पिताजी ! क्या सचमुच बर्फ गिरने लगी है ?' जॉन चिल्ला उठा विशुद्ध आनंद से।

'हां, बेटे ! बर्फ गिर रही है,' पिता ने जवाब दिया, 'बर्फ तुम्हारे ही लिए गिर रही है।'

उसने झटके से कोट उतारकर कुरसी पर डाला और एंजेला को बांहों में भर लिया। बोला, 'लगता है, उस फर्म में मुझे नौकरी मिल जाएगी।'

'ओह, डैन ! सचमुच ?' एंजेला खुशी से चीख उठी।

"सचमुच !' और वह अपने बेटे को चूमने के लिए झुका।

'अब हम यीशु का शिशुघर जमायेंगे न पिताजी ?' जॉन बोल पड़ा, 'मां तो मुझे हाथ भी नहीं लगाने दे रही थी।'

डैन फर्श पर बैठ गया और छोटी-छोटी मूर्तियों को खोलने लगा। सस्ता-सा, छोटा-सा शिशुगृह था। मूर्तियां अनगढ़ थीं। मगर दस साल पहले डैन इन्हें जॉन के—और एक तरह से अपने भी—प्रथम क्रिसमस पर, बचे हुए तमाम पैसों से खरीद लाया था। उसके अपने माता-पिता तो इतने गरीब थे कि साल्वेशन आर्मी से मिले मिष्टान्न के सिवा कुछ भी नहीं ला पाते थे क्रिसमस पर। दस बरस पहले का वह क्रिसमस ठीक इस घटना के बाद पड़ा था जब उसने स्कूल बंद किया था और उसने स्कूल जाना तब बंद किया था जब उसका पिता परिवार को असहाय छोड़कर चला गया था।

'लो भाई, लगभग हो गया पूरा.'

डैन कह उठा। उसने क्रिसमस-वृक्ष के नीचे छोटी-सी नांद रख दी थी और उसमें सूखी घास भर दी थी। यह घास वह कुछ हफ्ते पहले पार्क से तोड़कर लाया था।

'पिताजी, आप घास क्यों तोड़ रहे हैं?' जॉन ने तब प्रश्न किया था।

'क्रिसमस-वृक्ष के नीचे नन्ही नांद में बिछाने के लिए इसकी पुआल बनायेंगे बेटे! याद है न तुम्हें क्रिसमस?'

'हां पिताजी, याद है। मैं क्रिसमस को कभी नहीं भूलता। मैं क्रिसमस पर ही पैदा हुआ था न?'

'हां बेटे . . . और एक तरह से मैं भी।'

एक तरह से? हां, उसका भी तो पुनर्जन्म हुआ था। जिस क्षण उसने बच्चे को जन्म लेते देखा, वह चिल्ला उठा था, 'वह रहा, वह है मेरा बच्चा, मेरा बेटा!'

डॉक्टर हंस दिया था। चीख मार-मारकर रोते हुए नवजात बच्चे को उसने ऊपर उठाया —'यह तुम्हारा ही है डैन! .जरा इसे कंबल में लपेट दूं। उसके बाद बच्चा बस तुम्हारा ही तुम्हारा।

डैन आंखें फाड़कर देखता खड़ा रह गया था, सर्वथा अवाक! उसका दिल जोरों से धड़क रहा था और वह बच्चे को अपलक देखे जा रहा था। फिर शब्द अपने आप फूट पड़े थे।

'मुझे स्कूल लौटना होगा, लौटना ही होगा। फिर कालेज भी जाना होगा। मैं इसका पिता हूं। मुझे इसके लायक बनना होगा।'

डॉक्टर ने कंबल में लिपटा हुआ नवजात बच्चा लाकर उसके हाथों में थमा दिया था।

'मुझे अब असली मर्द बनना होगा,' डैन कह रहा था।
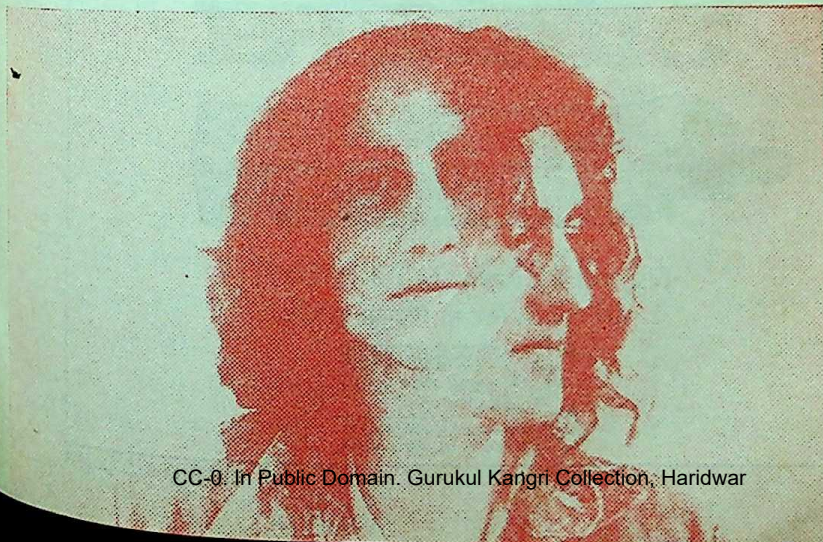
'हां, बनना ही होगा।' डॉक्टर ने भी कहा था। मर्द को बच्चे के जन्म में हिस्सा बंटाना ही चाहिए। उसे यह बात पहचाननी चाहिए कि बच्चे के जन्म के रूप में उसका भी पुनर्जन्म होता है। आखिर, औरत अकेली ही तो नहीं सिरजती बच्चे को!

उस दिन ये सारी बातें बहुत स्पष्ट रूप से उसकी समझ में आयी थीं . . और दस साल बाद आज क्रिसमस के पहले की शाम को डैन वही सब बातें सोच रहा था। उसने बालयीशु की नन्ही मूर्ति नांद में रखी, जैसा कि वह हर साल किया करता था।

'उसे ठंड लग जाएगी पिताजी!' जॉन बोल उठा, 'कुछ तो ओढ़ाना चाहिए उसे, है न मां?'

'हां बेटे!' एंजेला बोली।

वह चुपचाप क्रिसमस-वृक्ष को संवार रही थी। जॉन का जन्म उसे खूब अच्छी तरह याद था। वह लंबू, पैर घसीटकर चलनेवाला अनिच्छुक पिता, जिसे प्रसव के समय हाजिर रहने के लिए डॉक्टर ने जैसे-तैसे राजी किया था। प्रसव-कक्ष में मानो उसकी आंखों के सामने ही नया आदमी बन गया था। वह हंसे जा रहा था, कंबल में लिपटे बच्चे को अपनी छाती से चिपकाये कहे जा रहा था, 'यह मेरा है, यह तो मेरा है।'

'यह हमारा है,' एंजेला कहने को हुई थी, मगर रुक गयी थी। इस क्षण डैन का ही सही।

. . . और नये डैन ने सहसा कह दिया था कि अब चटपट विवाह हो जाना चाहिए। विवाह-संस्कार के बाद वह नन्हे जॉन को लेकर अपनी सास के यहां चली आयी थी, डैन और उसके भाई-बहनों के संग रहने। कैसे हो पाया था उन सबका गुजारा? डैन की प्रेरणा-शक्ति, निष्ठा, जैसे भी हो जरूरी सहायता जुटाने की उसकी साध—ये सब इन बरसों में फलीभूत हुई थीं। बेशक सभी ने एक-दूसरे की मदद की थी। डैन की मां उसके लिए नौकरियां ढूंढ़ती; एंजेला बच्चों को संभालती और डैन दिन-रात काम करता।

'लो जॉन, सैटिन के इस रिबन से कंबल बन जाएगा,' एंजेला बोली, 'लाओ तो जरा कैंची। रिबन सुंदर है और चौड़ा है।'

उसने उस रिबन से एक नन्हा-सा कंबल तैयार कर दिया और डैन ने उसे नांद में ठीक से बिछा दिया।

अपने काम पर तृप्ति-भरी दृष्टि डालता हुआ, अपने हाथों की धूल झाड़ता वह उठ खड़ा हुआ—'लो भाई, सब पूरा हो गया। रोशनी ठीक नांद में गिर रही है। और एंजेला, इस बरस क्रिसमस-वृक्ष सबसे बढ़िया सजा है।'

जॉन चारों ओर नाचता फिर रहा था, 'अभी पूरा कहां हुआ! ... अभी पूरा कहां हुआ!'

पति-पत्नी अपने हृदय का समस्त

प्यार आंखों में उड़ेलकर अपने सुंदर बेटे को निहार रहे थे।

'क्या सचमुच हमने ही इसे जन्म दिया है?' डैन कह उठा।

'सितारा!...सितारा!' जॉन खुशी से चिल्ला रहा था।

'भई हां, सितारा!' एंजेला ने दोहराया, 'हम सितारा लगाना तो भूल ही गये।'

उसने रंगीन वर्क और बल्बों के डब्बे में क्रिसमस का सितारा ढूंढ़ निकाला।

'इसे मैं लगाऊंगा—वृक्ष में एकदम चोटी पर,' जॉन उत्साह से चिल्लाया, 'यह मेरा सितारा है! मैं क्रिसमस के तारे से पैदा हुआ था!'

'मैं भी तो!' उसका पिता बोला, 'जिस क्षण मैंने तुम्हें दुनिया में आते देखा, उस क्षण मेरा भी पुनर्जन्म हुआ। उस क्षण मैंने जाना कि मुझे ऐसा पिता बनना है, जिस पर तुम अभिमान कर सको। इसलिए यह मेरा भी सितारा है।'

डैन ने जॉन को हाथों में लेकर ऊपर उठाया और जॉन सितारों को टांकने लगा। एंजेला उन दोनों को प्रशंसा-भरी नजरों से देखती रही। वह पत्नी थी और मां थी। कितनी सौभाग्यशाली थी!

डॉक्टर के शब्द उसकी यादों में अब भी गूंज रहे थे: 'उसे अपने बच्चों को जन्म लेते देखना ही होगा। यह चीज उसे मर्द बना देगी।'

यह चीज उसे मर्द बना देगी... ये बरसों तक गूंजनेवाले शब्द थे—बरस जिन्हें वे जी चुके थे, बरस जिन्हें वे जीने वाले थे। जॉन ही तो पिता के रूप में डैन था! पिता-पुत्र ने एक-दूसरे को जन्म दिया था।

और स्वयं एंजेला? उसका इन दोनों से वास्ता ही क्या था—अब जबकि पिता-पुत्र एक-दूसरे को जन्म दे चुके थे? उसका तो काम इतना ही था कि जॉन की काया को सिरज दे, ताकि जॉन जो भी हो, जैसा भी हो, उसमें जिये।

एंजेला को इस वक्त अपनी मां की याद हो आयी। मां के साथ अकेलेपन में बीता था उसका बचपन। मां गुमसुम किस्म की महिला थी, सुबह काम पर चली जाती तो रात को घर लौटती थी।

'जब घर लौटो तो अंदर से सांकल चढ़ा लेना,' रोज सुबह मां उसे याद दिलाती थी, 'हमेशा की तरह मैं तीन बार दस्तक दूंगी।'

एंजेला ने डैन के विरुद्ध सांकल नहीं चढ़ायी थी। जब डैन उसे रोज स्कूल से घर पहुंचाने आने लगा था, तब वह पंद्रह बरस की थी। दरवाजे पर तीन दस्तकें हों, इसके कुछ ही क्षण तक वह डैन को घर में लिये भीतर से सांकल चढ़ाये रखती। कभी-कभी तो डैन को रवाना करके सांकल चढ़ाते ही मां के लिए फिर से दरवाजा खोलना पड़ता था।

मां हमेशा थकी-थकी रहती, बोलने-बतियाने को अनिच्छुक। मगर एक बार

एंजेला ने पिता के बारे में पूछा था तो मां ने उत्तर दिया था, 'अब मैं अनुभव करती हूं, मैं कभी यह जान ही नहीं पायी कि भगवान मुझसे क्या कराना चाहता था--मुझसे यानी सैम कैल्हून की ब्याहता पत्नी से।'

'सैम कैल्हून .... मेरे पिताजी!' एंजेला बोल उठी थी।

'हां बेटी, वही! एक बार वे हमें छोड़कर चले गये थे। तुम तब नन्ही बच्ची थीं। लेकिन वे लौट आये, उन्हें हमारी जरूरत थी—भले ही उन्हें अंदाज न हो कि यह जरूरत किस रूप में थी। हमारे बिना वे सुखी नहीं रह सके। न हमारे साथ ही सुखी रह सके। अब तो वे ही न रहे!'

'उनकी मृत्यु कैसे हुई मां? यह तो तुमने कभी बताया ही नहीं।'

'हुआ तो शायद कुछ भी नहीं था। अक्सर मैं उनके संबंध में सोचा करती हूं और अब मुझे यह लगता है कि अपने आपको ढूंढ़ने-पहचानने में मुझे उनकी मदद करना चाहिए थी, जो मैंने की नहीं। मैं तो हरदम यही सोचती रही कि वे मेरे लिए यह करें, वह करें।'

मां ने कई बार सिर हिलाया—"बस, यही बात थी। वे कभी जान ही नहीं पाये कि वे क्या थे—और पता लगाने में मैंने कभी उनकी मदद नहीं की। मैं तो हरदम यही चाहती रही कि वे मेरे लिए यह करें, वह करें।'

क्षणों में गुजरती स्मृतियां, मिनटों में सिमट आये साल! फिर भी यह निहायत चमकीला और सुंदर क्षण उनकी

पर्ल एस. बक

बदौलत जगमगा उठा। पिता के चौड़े-चकले कंधे पर चढ़ा हुआ जॉन दोनों हाथों से सितारा थामे क्रिसमस-वृक्ष की चोटी की ओर उचक रहा था।

'यह लीजिए!' जॉन चिल्ला उठा, 'मैंने टांक दिया!' और बांहों में से फिसलता हुआ वह फर्श पर उतर आया।

'और अब हमारा सितारा हमारे क्रिसमस-वृक्ष की चोटी पर जगमगा रहा है,' एंजेला मृदुता से बोली।

वह डैन की दायीं भुजा की बगल में खड़ी थी। जॉन माता-पिता के बीचो-बीच खड़ा धीमे-धीमे कुछ बुदबुदा रहा था।

'हम हैं तीन! खुशी में लीन!'

फिर वह उत्साह से मां की ओर मुड़ा! बोला, 'यह कविता मैंने बनायी है। यह सचमुच की कविता है न?'

'हां बेटे, मुझे भी लगता है, यह कविता है—सचमुच की कविता!' उसने गंभीरता से उत्तर दिया। —अनु. नंदिता सिन्हा

कहानी

● मृदुला गर्ग

उसका विद्रोह

वह आज बहुत तैश में था। चाहता था, कोई ऐसा काम करे जिससे सब जान जाएं कि उसे बेबात इधर-उधर नहीं खदेड़ा जा सकता। वह नाटे कद का मुनहना-सा था। अकसर दरवाजे में लगी सिटकनियां खोलने में तकलीफ होती थी। पंजों पर खड़े होकर भी सिटकनी तक पहुंचने के लिए उसे उछलना पड़ता था। 'हो सकता है, जमीन पर सपाट पड़ते पांवों पर खड़े होकर उछलते समय छोटे, झुके हुए शरीर के ऊपर रखे गोलीनुमा सिर के झटकने और मिचमिची आंखों के झपकने से बंदर-जैसा लगता हूं'—भीतर-भीतर ही वह यह महसूसता रहता होगा। पहले वह अपने सिर और चेहरे के बाल खूब बढ़ाकर रखता था, पर जब से इस घर में आया है, इधर के साहब ने जबरदस्ती उसे रोज-रोज खत बनवाने और बाल छोटे-छोटे कटवा देने पर विवश कर दिया है। अब वह अपने को और मुनहना महसूस करने लगा है। अपने तमाम बेडौलपन के साथ, उसका चेहरा उनके सामने बेपर्दा लटका रहता है और चाहकर भी वह उसे किसी तरह छिपा नहीं पाता।

नाई के सामने बैठने पर करीब-करीब रोज ही उसका मन होता है कि अपने चेहरे पर उगते उन बेतरतीब बालों का इस बेदर्दी से सफाया न कराये। वह उसकी अपनी चीज है, जो वक्त-बेवक्त उसके काम आ सकती है; और कुछ नहीं तो उसे यह एहसास कराते रह सकती है कि वह अपनी मर्जी से अपने बाल को बनाये रह सकता है। ये सब बातें खुलकर उसके दिमाग में शायद कभी न आयी हों, मगर बाल कटाते समय वह अपने को शोषित जरूर महसूस करता था, पर इस हद तक नहीं कि विद्रोह कर दे। हां, यह उसके मन में जरूर आता था कि नाई के हाथ से लेकर उस्तरा दूर फेंक दे और खुद वहां से उठकर भाग जाए, पर वह जानता था कि वह ऐसा नहीं कर सकता। उसके यह साहब ऐसी गुस्ताखी कभी बर्दाश्त नहीं करेंगे। वे किसी बहुत ऊंचे ओहदे पर थे और कई बार उसे जतला चुके थे कि एकाएक तबादला हो जाने की वजह से ही उन्हें उस-जैसे वहशी को रखकर काम

चलाना पड़ रहा है, वरना अब तक जितने नौकर वे रख चुके हैं उनमें से किसी को इतनी मामूली बातें नहीं सिखानी पड़ी हैं। वे यह भी कह चुके थे कि जो कुछ वे चाहते-कहते हैं उस पर पूरा-पूरा अमल करने पर ही वे उसे काम पर रखे रह सकते हैं। साहब से नहीं, पर इस काम से उसे जरूर मोह हो गया था; काम से क्या, मोटी तनख्वाह से—पूरे पचहत्तर रुपये माहवार; बढ़िया मुफ्त खाने से—एक तरीदार, एक सूखी सब्जी और जितनी चाहे उतनी रोटियां, एक बात थी कि यह वाली मेमसाहब रोटियां गिनकर खाने के लिए कभी नहीं देती थीं; और उम्दा पक्का घर—एक पूरा आठ फुट चौड़ा कमरा और एक अलग गुसलखाना! इन सबकी खातिर वह मन मारकर उनकी बेढंगी से बेढंगी ताकीद भी मान लिया करता था। पर आज वह तैश में था कि कोई ऐसा काम करे जिससे सब जान जाएं कि बेबात उसे इधर से उधर नहीं खदेड़ा जा सकता।

रोज की तरह वह आज भी सुबह साढ़े छह बजे उठा था, और उठते ही उसे चाय की तलब महसूस हुई थी। यह तलब भी उसके लिए एक नयी चीज है। यहां आने से पहले जब वह दूकान में काम किया करता था तब उसे ऐसा कभी नहीं महसूस हुआ था। उठते ही वह पहले बाहर भागता था और फिर लौटकर जल्दी-जल्दी चार रोटियां पका, उनमें प्याज-

मिर्च लपेटकर थैले में घुसेड़ लेता था और दूकान के लिए चल पड़ता था। दस पैसे की चाय का प्याला रास्ते में पीता जाता था—वह भी टाइम रहता था तो, वरना उसके बगैर ही काम चला लेता था। दूकान पर ठीक आठ बजे पहुंचना होता था। अगर कभी उसका मालिक उसके आने से पहले आकर दूकान खोल देता था और कोई ग्राहक भी आ पहुंचता था तो उसकी खैर नहीं होती थी। इसलिए वह पूरी कोशिश करता था कि दूकान पर ठीक आठ बजे पहुंच जाए और इस कोशिश में बिना चाय पिये दूकान

पर पहुंचना बहुत ही मामूली बात थी।

घर जब से वह इस घर में काम करने आया है, उसे उठते ही चाय की तलब होने लगी है। उसका रोज का काम भी यही है—उठते ही चाय बनाना और फिर जाकर साहब-मेमसाहब के कमरे का दरवाजा खटखटाना। वहां जल्दी से चाय रखकर वह रसोईघर भागता है और तब तक उबासियां लेता रहता है जब तक एक गिलास चाय बनाकर सुड़क न ले। कभी-कभी तो चाय की ट्रे बिस्तर के पास मेज पर रखते-रखते ही उसके मुंह से उबासी निकल जाती है, और तब साहब इतनी हिकारत की नजर से उसे देखते हैं कि शुरू-शुरू में वह अचकचा कर फौरन मुंह कस लेता था और घंटों मन-ही-मन सकुचाया रहता था। अब ऐसी नजरों का उस पर कोई असर नहीं होता। ऐसी नजरों का सामना उसे दिन में सैकड़ों बार करना पड़ता है—छोटी-छोटी बातों पर। इन नजरों से अछूता रहने का उसके पास एक बढ़िया तरीका यह है कि वह उनकी तरफ देखता ही नहीं। कमरे में बैठे साहब-मेमसाहब या उनके मेहमान उसके लिए उतने ही जानदार हैं जितने रामलीला में सजे रावण और मेघनाद। वह जानता है कि वे हैं बस! पर उन सजी-सजायी मूर्तियों से अधिक वे क्या हैं, यह जानने की जरूरत नहीं समझता। वे लोग क्या सोचते, समझते और महसूस करते हैं, उसके लिए ये सब कोई मायने नहीं रखता। हां, जब कभी ये सजी-सजायी मूर्तियां धमाके के साथ विस्फोट कर उठती हैं, तब उसे वह धमाके सुनने ही पड़ते हैं, सहने भी पड़ते हैं और सहलाने भी।

"बेवकूफ आदमी! यह क्या कर डाला! जानता भी है यह कितना कीमती है? कितनी बार कहा है कि काम संभाल-कर किया कर!" वे चीखते हैं तो वह अपनी उदासी से एकदम जाग उठता है। वह बेवकूफ आदमी है, इसमें उसे न तो कोई खास शक और शुबह है और न ही कोई खास एतराज है, पर क्या चीज कीमती है और क्या नहीं, यह वह अब तक नहीं समझ पाया। इतना भर ही जान पाया है कि इस घर में जो भी है वह कीमती है। बगल के घर में रहनेवाला बूढ़ा खानसामा कहता है कि वह अच्छा नौकर कभी नहीं बन सकता, वह इस लायक है ही नहीं, अगर होता तो छह महीने के भीतर न केवल वह बखूबी समझ जाता कि उसके मालिक को वास्तव में क्या चीज सबसे अधिक कीमती लगती है, बल्कि खुद भी उन्हें कीमती समझने लगता और उनकी शान भी बघारने लगता। सभी बड़े घरानों के नौकर मालिक से भी ज्यादा घमंडी और शान बघारनेवाले होते हैं, पर वह ऐसा नहीं बन पाया है। उस दिन कूड़े के डब्बे से उठाकर शिव-पार्वती की मूर्ति उसने ड्राइंग-रूम में सजा दी थी तो मेम-

साहब किस कदर बिगड़ी थी !

"जाहिल ! तुझे किसने कहा सजा-वट करने के लिए ? अक्ल धेले भर की भी नहीं है और टांग हर चीज में अड़ा-येगा।" और उन्होंने मूर्ति को उठाकर इस तरह घुमाकर बाहर फेंका था कि आंगन में गिरकर उसके टुकड़े-टुकड़े हो गये थे। पता नहीं क्यों, इस तरह उसके टुकड़े होते देख उसकी ऊपर की सांस ऊपर ही गले में अटक गयी थी और उसका मन हो आया था कि एक बार धाड़ मारकर रो दे। पर फिर चुपचाप जाकर टुकड़ों को बटोरने लगा था और बटोरकर, जैसा उन्होंने कहा था, उन्हें कूड़े के डब्बे में फेंक आया था।... पर वह आज तैश में था और कुछ ऐसा कर देना चाहता था कि सब समझ जाएं कि उसे इधर-उधर बेबात नहीं खदेड़ा जा सकता।

आज के दिन की शुरुआत खूब अच्छी हुई थी। सुबह-सुबह, उसके मामा की चिट्ठी आयी थी कि उन्होंने गांव में उसके लिए लड़की ठीक कर ली है और अगले महीने आकर वह ब्याह कर सकता है। इस चिट्ठी का उसे बहुत दिनों से इंतजार था। मिलते ही पास के खानसामा के पास पढ़वाने दौड़ा चला गया था। खबर भी एकदम मन-माफिक निकली थी। बहुत दिनों से वह शादी की कोशिश कर रहा था, पर उस-जैसे मुनहने आदमी को लड़की देने के लिए न तो कोई आदमी तैयार हुआ था और न उससे शादी करने के लिए कोई लड़की ही तैयार हुई थी। इस बार वह कुल जमापूंजी लगाकर तकदीर पर खेल गया था। पिछले छह महीनों की अपनी पूरी कमाई के चार सौ रुपये लड़की का बंदोवस्त करने के लिए अपने मामा के हवाले कर आया था।

मृदुला गर्ग : 'कादम्बिनी' की सुपरिचित लेखिका। जन्म २५ अक्तूबर, १९३८—कलकत्ता में। अर्थशास्त्र में एम. ए.। पहली कहानी 'रुकावट' १९७१ में 'सारिका' में प्रकाशित। कथा-लेखिका मृदुला गर्ग के अनुसार—"जीवन के वे अनुभव जो निजी होते हुए भी औरों के लिए सार्थक हों, व्यंग्यमय दृष्टि से अतिरंजित हो कहानी का रूप ले लेते हैं।"
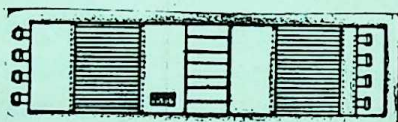
फिर यह भी लिख भेजा था कि वह इतने बड़े साहब के यहां नौकरी कर रहा है कि उसे महज खाना-कपड़ा ही नहीं एक पूरा घर—जिसमें न केवल एक कोठरी है बल्कि गुसलखाना भी है—मुफ्त मिला हुआ है। तुरुप चाल यही पड़ी और लड़की का बंदोबस्त हो गया। लड़की के बाप की मंजूरी के साथ-साथ लड़की भी उसका हाथ थामने को तैयार हो गयी। खबर पाकर वह खिल उठा। उसके मन में कल्पना उभरी कि उसकी होनेवाली पत्नी इठलाती-बलखाती लहरों पर तैरती नाव पर बैठी नदी का आनंद ले रही है। उसका मन हुआ कि दोनों बांहें फैलाकर किसी फिल्मी हीरो की तरह गा उठे—'आ जा, आ जा सनम, मेरी बांहों में', पर उसने गाया नहीं, एक बार जोर से हंसकर ही संतोष कर लिया था। उसके साहब की सख्त ताकीद थी कि घर के भीतर वह किसी हालत में न गाये, गाये क्या गुनगुनाये भी नहीं।

...और पास के बूढ़े खानसामा के घर में गाने की हिमाकत करना तो और भी नामुमकिन है। पर वह फिल्मी धुन उसके गले में बजती जरूर रही थी, रह-रहकर उसके ओठ फड़क उठते थे। उसकी चाल में भी मस्ती आ गयी थी। जमीन पर सपाट पड़नेवाले उसके पांव जैसे एकाएक गोलाई पा गये थे, उठ-उठकर पड़ने में अब वह घिसट नहीं रहे थे, लचक के साथ ऊपर नीचे तैर रहे थे।
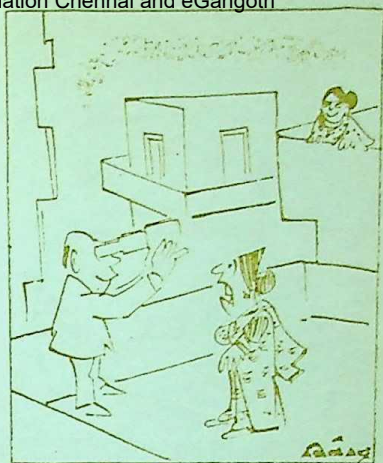
"अब यहां क्या कर रहे हो, मैं कहती हूं आर्यभट तो कभी का जा चुका होगा।"

मन ही मन गुनगुनाते हुए वह घर लौटा और सब काम उछल-उछल और उचक-उचक कर निबटाने में लग गया। उसका इरादा था जल्दी-जल्दी काम निबटाकर दोपहर की छुट्टी ली जाए और कोई फड़कती हुई फिल्म देखी जाए, पर करीब ग्यारह बजे जैसे ही वह गैस-चूल्हे पर दाल चढ़ाने को हुआ मेमसाहब की कुछ सहेलियां आ गयीं। हारकर चढ़े-चढ़ाये पानी में उसे दाल के बजाय कॉफी डाल देनी पड़ी। कुछ वक्त तो इस तरह बर्बाद हो ही गया, फिर भी उसने कोशिश और उम्मीद नहीं छोड़ी। जल्दी-जल्दी हाथ चलाने से अभी भी काम निबटाया जा सकता था। कॉफी के प्याले को ट्रे में सजा, वह लपककर बैठक में पहुंचा और उछल-उछलकर वहां बैठी औरतों को
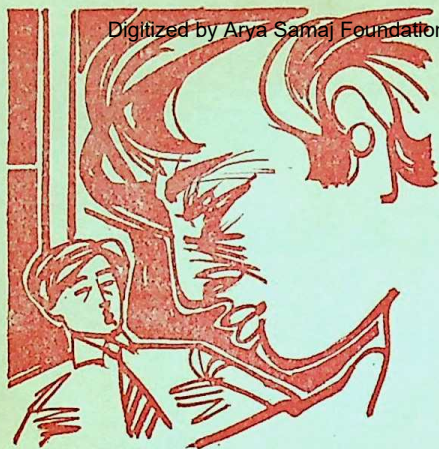
प्याले पकड़ाने लगा। दो प्याले ठीक-ठिकाने लगाकर वह वैसी ही चुस्ती के साथ तीसरी औरत के सामने पहुंचा। जल्दी में उसने बीच में पड़ी गोलमेज का खयाल नहीं किया, उसका पैर उससे टकराया, ट्रे डगमगायी, प्याले छलके और संभालते-संभालते एक प्याला लुढ़ककर सामने हाथ फैलाये बैठी औरत की गोद में जा गिरा। फिर क्या था, कोहराम मच गया। वह औरत पूरा दम लगाकर चीखी। इतने जोर का शोर वह स्वयं इस घर में करने का साहस कभी नहीं कर सकता था। ...और फिर उस औरत को घेरकर बाकी औरतें ऐसे दुःख जताने लगीं जैसे अचानक उसका कोई नजदीकी रिश्तेदार मर गया हो। इस मातमपुरसी की फुसफुसाहट से वह समझा कि विस्फोट रद्द हो गया है। वह चुपचाप रसोईघर में जाकर दाल पकाने में लग गया। पर विस्फोट रद्द नहीं हुआ था, महज टल गया था। कुछ ही देर में वे तीनों-चारों सहेलियां वहां से चली गयीं और वह विस्फोट ठीक उसके सिर पर आ टूटा—उसकी अपनी मेमसाहब की चीखों में। और आज, शायद, क्योंकि उसका मन खिला हुआ था, उसने सिर्फ चीखें नहीं सुनीं, उनके साफ सख्त अल्फाज भी सुने और समझे।

"गधे के बच्चे!" चीखों ने कहा, "ध्यान कहां रहता है तेरा? छह महीने हो गये तुझे काम करते, पर अभी तक वैसा ही बंदर बना हुआ है और छछूंदर की तरह इधर-उधर उछलता रहता है! हाथ पर क्या फालिज पड़ा है जो ट्रे तक नहीं संभाल सकता!" उन्होंने कहा और चीख-चीखकर कहा। हर चीख के साथ उसके मन में बजती फिल्मी धुन तड़ाक-तड़ाक टूटती रही, चीखों के इस विस्फोट में। उसे लगा कि उसकी कल्पना में तैरती हुई नाव डूब गयी है और बांहों में आती हुई भावी पत्नी लहरों में ही कहीं खो गयी है।... और उसका यह विश्वास गहराता गया कि लाख लड़की का बाप तैयार हो, पर कोई लड़की उस-जैसे गधे, बंदर या छछूंदर का हाथ थामने से रही!

उस विश्वास के पूरी तरह जमने की आशंका से वह इस कदर घबरा गया कि बेकाबू हो उठा। एक अनजाने डर के तेज थप्पड़ खाकर वह उस हद पर जा पहुंचा जहां पहुंचकर लोग विद्रोह करने पर आमादा हो जाते हैं। उसका मन हुआ कि वह पूरा दम लगाकर चीखे और

कहे— 'गधे, बंदर, छछूंदर तुम हो! यह लो अपनी नौकरी, मैं जा रहा हूं।' पर उसके गृहदेवता ने शायद उसे ऐसा करने से रोक दिया। उसने पूरी तरह अपना आपा नहीं खोया था और इस आपे ने उसे थमने पर मजबूर कर दिया। वह जानता था कि जितनी जोर-जबरदस्ती उसका मामा कर सका है या अगले महीने गांव जाकर वह स्वयं कर सकता है, वह सब इस नौकरी के बने रहने पर ही मुमकिन है। इसीलिए वह चुप रह गया, वरना उनकी चाय और तरीदार सब्जी-रोटी का लालच वह उसी पल वहीं छोड़ने को तैयार हो जाता। उसने मुंह से कुछ नहीं कहा, पर इसका यह मतलब नहीं है कि उसका विद्रोह शांत हो गया था। उसके पूरे बदन में आग सुलग उठी थी। मेमसाहब तो चीख-चिल्लाकर अपने कमरे में जा लेटीं, पर उसकी धधक कम न हुई। सोच-सोचकर और [illegible] अपने नाटे मुनहने शरीर और गोलीनुमा सिर के हर कोने में उसकी झुलस महसूसता हुआ वह पूरे तैश में आ गया और ऐसा कुछ करने के लिए तैयार हो गया जिससे सब जान जाएं कि उसे बेबात इधर-से-उधर नहीं खदेड़ा जा सकता।

उसने गैस पर चढ़ी दाल की पतीली उतारकर धम से नीचे पटकी, इधर-उधर पड़े बरतनों को खनखनाकर एक तरफ धकेला और फिर रसोईघर के दरवाजे को धड़ाक से मारकर आंगन में जा पहुंचा। कपड़े उतारकर वह आंगन के नल की चोटदार धार के नीचे बैठ गया और अपनी मोटी भोंडी आवाज में जोर-जोर से गाने लगा—इतनी जोर से कि बेडरूम में पड़ी मेमसाहब के कानों तक उस की आवाज साफ-साफ जा पहुंचे। यही नहीं, पड़ोसियों के कानों तक भी पहुंच जाए और वे कह उठें कि पड़ोस का नौकर किस कदर उद्दंड और गुस्ताख है!

—[illegible] १७, ग्रीन पार्क,
नयी दिल्ली–११००१६

पूर्ण पुरुष कृष्ण

• दुर्गा भागवत
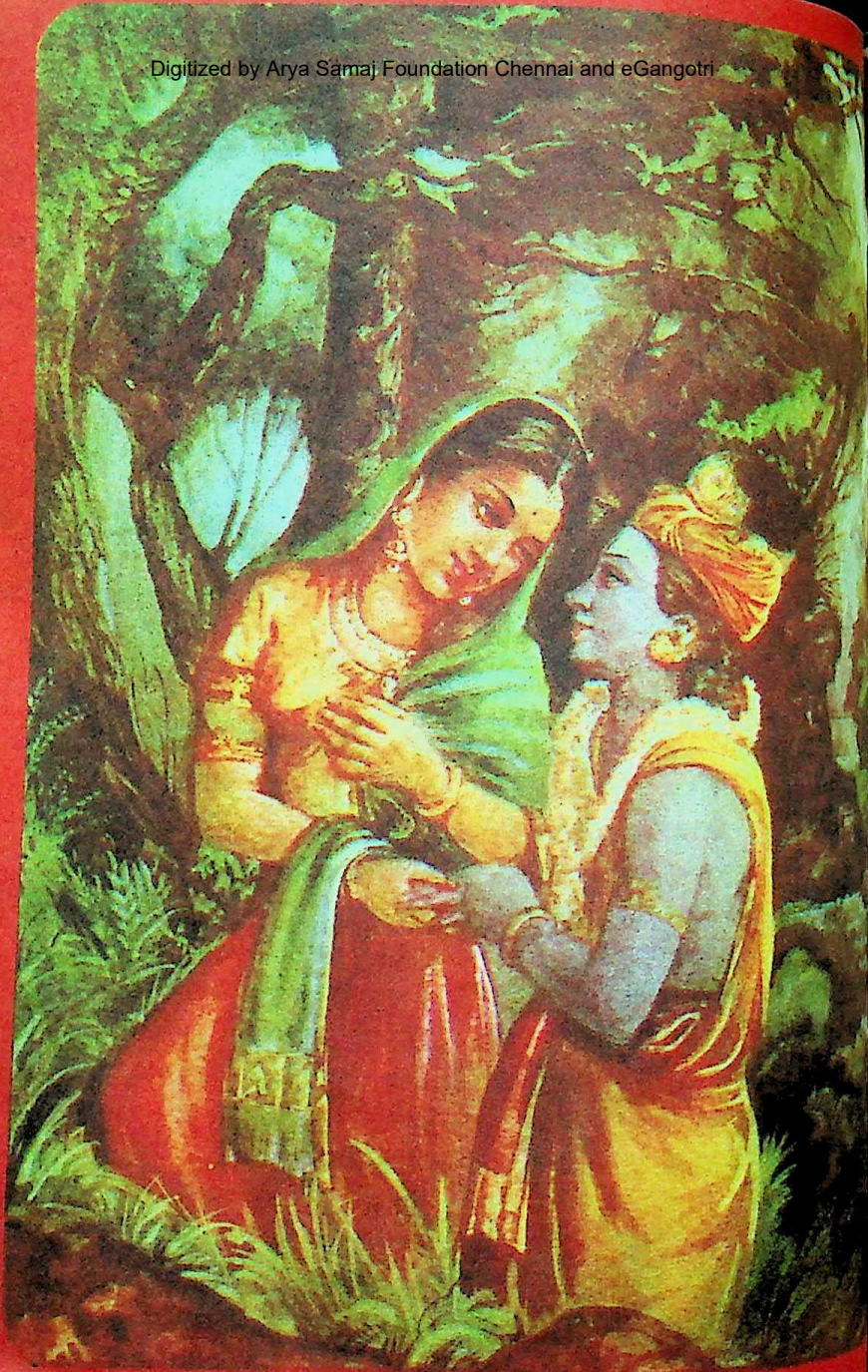
श्रीकृष्ण का जीवन मुझे सबसे अधिक मोह लेता है। व्यास की प्रतिभा ने महाभारत, हरिवंश (और बाद में भागवत) ग्रंथों में जिन भव्य एवं जीवंत व्यक्ति-रेखाओं को भारत के जन-मानस में उकेरा है, उनमें श्रीकृष्ण सबसे अधिक केंद्रवर्ती आकृति हैं। अन्य सब आकृतियां उसको घेरकर उसी के सहारे स्थित हैं, और फिर भी स्थिति यह है कि यदि आप महाभारत के श्रीकृष्ण को ध्यान से देखना चाहें तो आपकी दृष्टि में उस आकृति का अवयवबद्ध स्वरूप ठीक से समा नहीं पाता। उसे रेखारूप में साकार नहीं करते बनता। विराट रूप के मात्र एक उल्लेख ने रेखामय शरीर की सारी आकृति को पोंछ डाला है, ढक दिया है। ऐसे, जैसे मेघ सूर्य को ढक देता है। एक श्यामल-धूमिल वातावरण ही कृष्ण के नाम में भरा है। पर जहां-जहां कृष्ण की आकृति की रेखा क्षण भर के लिए दृष्टिगोचर हो जाती है, केवल कोरों में दिख जाती है, वहां-वहां मुझे रंगों का एक बड़ा पुंज दिखायी पड़ता है। दीखती हैं उन रंगों की छटाएं एक-दूसरे में घुलती हुई और फिर छिटककर अलग होती हुई। ये रंग, ये छटाएं, सांध्य मेघों की भांति अलौकिक नर्चया हैं, दौड़नेवाले रंग! कृष्ण के व्यक्तित्व के आभास का यह रूप मुझे शब्दशः सांध्य-रंगों की भांति प्रतीत होता है। मुझे कई बार ऐसा लगा है जैसे ये रंग हृदय के प्रत्येक कण में से उफनकर छलक रहे हों।

जब इतिहास, साहित्य की अनेक व्यक्ति-रेखाएं मेरे हृदय से जीवंत होकर निःसृत होती हैं तब मैं नाना आभासों से घिर जाती हूं। तब वे व्यक्ति-रेखाएं उन ग्रंथों अथवा इतिहास का अंश नहीं रह जातीं। कृष्ण की रंगाकृति गंध की लपटें उठाती है। उस गंध के समान कोई ज्ञात गंध नहीं है, परंतु वह अत्यंत उत्तेजक है। वह तीव्र है, और बहुत-बहुत देर तक घेरे रहती है। कुछ ऐसी है वह गंध कि जैसे सृष्टि के समस्त नरों की प्राणशक्ति की गंध को एकत्र कर उसे समस्त पुष्पों की गंध में घोल दिया गया हो, और मुझे दिखायी पड़ता है उस गंध के गर्भगृह में स्वरों का एक लहलहा अंकुर फूट पड़ा हो—जैसे पर्वत पर ऊंचे कोमल

निषाद का किंचित आरोहित स्वर।

...और विराट रूप का आभासमय आवरण कभी-कभी परदे की भांति बीच में फटकर अलग हो जाता है। अनेक पुराण-कथाओं में, अंधश्रद्धा में और नारी की नस-नस में जो एक अनाम अनुभव स्फुरण पाता है, वह एकाकार हो जाता है और उसमें से अवतीर्ण होता है एक ऊंचा-पूरा पुरुष। वह आदम से नाता जोड़ता है—शरीर से और वासनाओं से; पर वह आदम की अपेक्षा अनेक दैवी उपहारों का अधिकारी है। आदम की कोई संस्कृति नहीं थी; इसमें संस्कृति साकार होती है। इसके इर्द-गिर्द सुख की क्यारियां खिल रही हैं। बेचारा आदम बगीचे के बाहर निकला—यह जानने से पहले कि यह बगीचा है—और खाक छानता रहा। इंद्रियों के फन के चाबुक खाता हुआ घूमा किया। परंतु यह जिया पौरुष की, मनुष्य मात्र की सारी मस्ती को पीकर, पचाकर; और मरण की, विरह की एक-एक व्यथा को हौले-हौले छूकर जिया। उसमें भरा था स्पर्श का संपूर्ण लालित्य, सारा नखरा। व्यास द्वारा निर्मित रंगों की झलकियों में यह दूसरे धरातलवाला पुरुष-रूप अधिक मनमोहक और अधिक रेखावद्ध होकर उभरता है। वह साक्षात्कार के चमत्कार से विमुक्त हो जाता है; पार्थिव जीवन के सहारे हिलने-डोलने लगता है।

कृष्ण-चरित किसी एक ग्रंथ में निबद्ध नहीं है। नाना ग्रंथों ने, काव्यों ने, नर एवं नारियों के जीवन ने उसे तिल-तिल देकर रचा है। कृष्ण जी रहा है आज तक, जीवन को चहुं ओर से स्पर्श करनेवाले, व्यक्ति-व्यक्ति के सुख-दुःखों के स्पंदन को स्वयं भोगकर और उन्हें सजीव एवं कृतार्थ कर, क्योंकि कृष्ण मानव है; मात्र मानव ही नहीं, पुरुष है। वह पूर्ण पुरुष है।

जन्म एवं शैशव

कृष्ण का जन्म मृत्यु की छाया में, भय के भंवर में, आशा के अमर आश्वासन में हुआ था। उसका शैशव घर-घर में खेलता है। अनेक माताओं के अनुभव में स्थिर हो चुका है वह शिशु जो जन्म पाते ही अपनी माता की गोद से दूर चला जाता है और विरह की आंच में झुलसता है। यह शिशु अन्य शिशुओं की भांति विराम नहीं पाता। वह यशोदा के दग्ध हृदय पर हरीतिमा बनकर छा जाता है। वह घुटनों के बल चलता है, पालने में पड़ा रोता है जैसे उसमें कांटे हों, उसका बालहठ विख्यात है। वह पिटता है, बंद कर दिया जाता है, शैतानी करके मौत को पास बुलाता है। वह बड़ा होता है माता को प्रतिपल स्मरण कराता हुआ कि मेरा लाल एकदम मक्कार है, इसी कारण उससे अपार प्यार है।

उसके पश्चात दूसरा पर्व! ग्वाल-बालों की मैत्री, खेल, चोरी, व्रज-वनिताओं से छेड़-छाड़, कच्ची उम्र में राधा के साथ प्रेम-क्रीड़ाएं। पहलवानी में प्रवीणता। क्या

नहीं था यौवनोन्मुख कृष्ण में ? एक ओर कंस था, शिशुपाल था, ज्वलंत वैर पल रहा था; दूसरी ओर भोले-भाले बालक और गोपियां थीं, जो उसके लिए प्राण हथेली पर लेकर घूमती थीं। बड़ा भाई उसका दास था। गौएं उसका वत्सल-स्पर्श पाकर हरख उठती थीं, पुष्टता पाती थीं। उनकी प्रसूति बढ़ रही थी, दूध की नदियां बह रही थीं।

स्वैराचार में परिणत न हुआ। समुद्र की लहरों की भांति था वह आकर्षण, जो ज्वार आने पर घेर लेती हैं और फिर निजी प्रेरणा से हट जाती हैं। आकर्षण जो कृष्ण से हटकर कृष्ण में समा जाता था। यह वह नाता था जो नितांत मृदुल था। इस नाते का सर्वोत्कृष्ट प्रतीक है राधा। द्रौपदी को कृष्ण से बहन के रूप में बांधकर परंपरा ने व्यावहारिक नीति
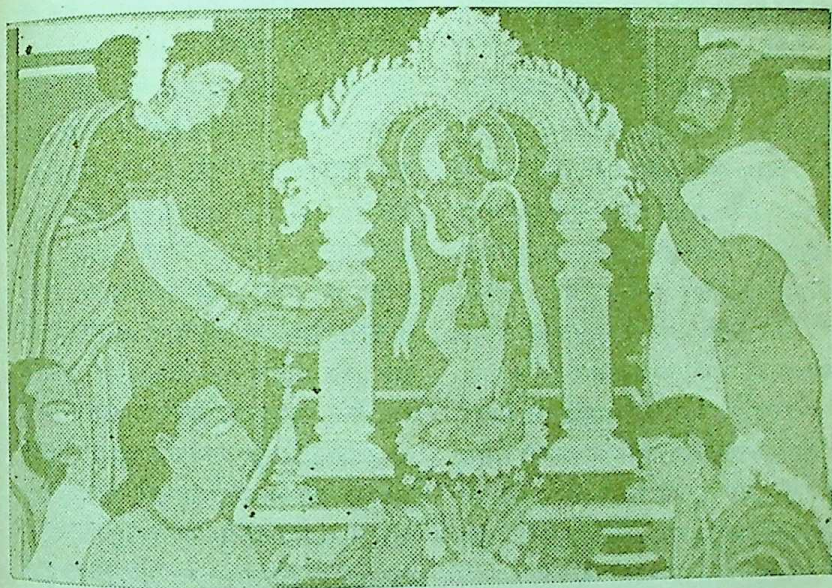
कृष्ण : अनासक्त योगेश्वर

उसकी मुरली यौवन के उद्रेकों का आह्वान कर रही थी, और वह जादू था उसके संगीत में कि गोपियां लट्टू थीं वाद्य-वादक पर! उनका यौवन केवल उसके लिए खिलता था, पर जो कभी सार्वजनिक

को प्रतिष्ठा देने का सफल और असफल प्रयास किया है। आगे चलकर राधा जब पुराणों में अवतीर्ण हुई, तब उसने इन संबंधों को तोड़ दिया। नहीं रोक सका उस प्रीति को विवाह का बंधन, आयु। अनिर्बंध

और नाजुक रेशमी शृंगार की वह ऐसी अनुभूति है जो कभी पुरानी नहीं पड़ी।

भारतीय संस्कृति प्रायः लालित्य में नहीं खिलती। वह एक बार भरपूर खिली। राधा और कृष्ण की प्रीति का वसंत एक बार ही आया और चला गया। चला तो गया, पर कुछ ऐसा रखकर जो सदा खिलता है, सतत महकता है। भारतीय पातिव्रत्य की कठोरता को निःशेष चुनौती देकर राधा ने एकनिष्ठ प्रीति का चांदनी से रंगा पूर्ण सौंदर्य उद्घाटित किया है। राधा ही थी जिसने प्रेमानुराग के दमकते लाल वर्ण को सौम्य नीला रुपहला बना दिया। इसी नीली प्रीति को अपने में समाहित करते-करते कृष्ण का व्यक्तित्व आकाश-सा विस्तृत होता चला गया, ऊंचाइयों को छू सका। वह अतीत मृदुल और निगूढ़ बन गया, रात की तरह।

प्रेमकथा में नयी कोमलता

राधा-कृष्ण की प्रीति से भारतीय प्रेमकथा ने नयी कोमलता पायी है। वह भाव पाया है जो गृहस्थी के भार से भी कभी बासी नहीं होता। प्रीति की परिपूर्ति चिरयौवन की मुखाकांक्षी रही है। उसी को सिद्ध करने के लिए इस आदर्श प्रेमी ने जैसे अपने को राधा के विरह से बांध रखा है।

क्या वह दिखाना चाहता है कि मृत्यु में समायी अमरता की भांति प्रेम भी तभी सार्थकता पाता है, जब वह प्रिय के सहवास से सदा के लिए वंचित हो जाता है? क्या स्वानुभव के आधार पर बताना चाहता है कि ऐसा चिरविरह ही प्रेम की सफलता के अशरीरी रूप की उत्कटता प्रतीति में कराता है? राधा और कृष्ण कब एक-दूसरे के साथ-साथ रहे हैं? उनका सहवास क्षणिक है और वे क्षण अत्यंत मुखर हैं। उनके समस्त मुखर भावों को पुराणों और कथाकाव्यों ने सहेज कर रखा है।

मुरली : प्रीति का प्रतीक

उनकी संजीवनी प्रीति का प्रतीक है मुरली। और बाद में आया अनंत विरह! वह मौन है, निगूढ़ है। वह नहीं ग्रहण करेगा कभी नाद-रंग-रूप के आभरण। वह विरह कलह, उपेक्षा, मृत्यु का संकेत भी तो नहीं देता। फिर भी वह अपनी अनामता के कारण नितांत सजीव होकर आया है। ऐसा नहीं दिखता कि कृष्ण ने कभी राधा की स्मृति से आकुल होकर राम की भांति खुलेआम शोक मनाया हो। क्या उसने इस सुकोमल प्रेमाविष्कार को अंतर के निभृत एकांत में इस तरह छिपा-कर रखा था कि कोई पहचान तक न सके?

राम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं, और कृष्ण व्यापार में सीमाओं का अतिक्रमण करने में पारंगत। उसने हर बात को निपुणता दी। उसमें अमर्याद सौंदर्य और चैतन्य भर दिया। उसने हवा के तेज झोंके की तरह सनसनाहट का जीवन जिया। शैशव में वह खेलने में पटु था, प्राणपण से खेलता था। चोरी को उसने रमणीकता दी। हास्य-विनोद को जतन से पाला।

भारतीय दार्शनिक और हास्य-विनोद —दोनों में इतना फासला है जितना दो ध्रुवों में—संसार के सभी दार्शनिकों के विषय में यह सत्य है। अपवाद है सिर्फ एक—कनफ्यूशियस! उसने प्रतिपादित किया है कि जो हंस नहीं सकता, वह संत नहीं बन सकता। कृष्ण की गीता में हास्य-विनोद नहीं है। वह एक गंभीर कृति है। परंतु कृष्ण के प्रारंभिक जीवन में कौतुकी विनोद भरा हुआ है; वह न होता तो गीता की गंभीरता ओछी पड़ जाती।

कृष्ण मूलत: कलासक्त व्यक्ति है। वह संगीत का उपासक है। उसकी कलासक्ति, प्रीति की भांति, धरती पर पांव जमाकर खड़ी है। उसने वीणा धारण नहीं की, बांसुरी उठायी। प्राणपण से बांस के टुकड़े में बौर उगाये। कृष्ण की लहरी, मुरली की माधुरी अमर है। अहीरों का मामूली सा वाद्य! परंतु श्रीकृष्ण ने उसे सप्राण कर दिखाया। अत्यंत प्राकृत, टिड़बिड़ंगी दीखनेवाली वस्तुओं को चिरंतन कलात्मक मूल्यों से युक्त करना केवल कृष्ण ही जानता है। कलाकार का उफनकर बहनेवाला, स्वयं को होम देनेवाला व्यक्ति कृष्ण के जीवन का प्रमुख अंग है।

यह उफनकर बहना, यह विसर्जन का गुण कुछ ऐसा दुर्निवार है कि कृष्ण देखते-देखते एक भूमिका से दूसरी भूमिका बेरोक-टोक प्रवेश कर जाता है, नयी भूमिका में तन्मय हो जाता है; यही नहीं, नयी भूमिका निबाहते हुए वह पूर्वभूमिका से संबंधित व्यक्तियों को होम देकर अलग हो जाता है। देवकी को मातृपद से विभूषित कर वह उसे छोड़कर आगे बढ़ जाता है। यशोदा और नंद का दैव कुछ भिन्न नहीं है। वही गोप-गोपियों के बांटे पड़ा। यह तो सब ठीक, पर क्या वह मथुरावासी प्रजा के साथ, कंसवध के पश्चात् चिपका रहा? बिलकुल नहीं। मथुरा त्यागकर वह द्वारिका पहुंचा। भारतीय युद्ध के अवसर पर शस्त्र न छूने की प्रतिज्ञा कर उसने योद्धा के रूप में अर्जित ख्याति को विसर्जित कर दिया और एक दार्शनिक की भूमिका का निर्वाह किया। इसे स्वीकार करते समय उसने यादवों को त्यागने की तैयारी दिखायी; उनकी उन्मत्तावस्था देख वह उनके विनाश का कारण भी बना।

परंपरा का त्याग

कृष्ण जैसे अनासक्त योगेश्वर के लिए समाधि का मरण उचित होता। उसने इस परंपरागत भूमिका को भी त्याग दिया। उसने मरण का साक्षात्कार किया विजन में; व्याध के शर से। पुत्र, मित्र-साथी, बंधु, वादक, प्रेमी, योद्धा, पति, राजा, राजनीति-धुरंधर, वक्ता, दार्शनिक आदि सभी भूमिकाओं में अपरंपार रस घोलकर कृष्ण ने अंत में एक सामान्य मानव की भांति मरण को स्वीकार कर जैसे सभी भूमिकाओं को स्वयं हरा दिया है!

कृष्ण ने जिस जीवन को अंगीकृत किया, उसे सामान्य जन की तरह ही स्वीकृत किया, फिर भी यह नहीं भुलाया

जा सकता कि कृष्ण में ऐसी भी कुशलता थी कि वह सामान्य मानव की नियति में नमक के कण की तरह घुल जाता था और उस पर अपनी छाप छोड़ जाता था! अबोध शिशु, पशु-पक्षी, अशिक्षित, छोटी-बड़ी सुरूप-कुरूप नारियां—उसने सबको समान भाव से ग्रहण किया। उनका अपना बनकर ग्रहण किया और ऐसा अवश्य दिखायी पड़ता है कि कुछ काल तक वह उनमें पूरी तरह उलझा रहा; पर जब उनसे दूर जाने का अनिवार्य क्षण उपस्थित हुआ तब उसने दोबारा मुड़कर नहीं देखा! किशोरावस्था पार करते न करते जिसने राधा से मुंह मोड़ लिया हो, वह भला गोपियों की ओर देखता?

गृहस्थाश्रमी : वंश-विस्तार नहीं

कालांतर में वह गृहस्थाश्रमी भी बना, और अंत तक वह कुटुंबवात्सल्य का कर्म भी ईमानदारी से करता रहा, किंतु उसने अपने वंश का विस्तार नहीं होने दिया। उसने अपत्य-मरण की वेदना एकाकी रहकर झली, मौन भाव से; अष्ट-नायिकाओं से घिरकर भी वह एकाकी ही रहा!

आसक्ति और विरक्ति की पराकाष्ठा उसने कुशलता से प्राप्त की। वह मेघ की तरह बरस कर, रीता होकर चल दिया। द्वारिका जलकर भस्म हो गयी। पांडवों ने भी कहां राम की तरह राज्यसुख पाया? भारतीय युद्ध का दुख उन्हें आजीवन जलाता रहा। कृष्ण का ही क्या शेष रहा? कुछ भी तो नहीं! रही सिर्फ जलते कपूर की गंध। अपने ही व्यक्तित्व को अपने ही हाथों पोंछ देने का अपूर्व कौशल श्रीकृष्ण में ही था।

कृषि-प्रधान संस्कृति का प्रतीक

... और फिर भी मुझे यह लगता है कि कृष्ण आज के विश्व की विशाल अनुभूति में नहीं समा सकता। लगता नहीं कि कृष्ण को आज के विश्व में जीवित रूप में विचरण करते हुए देखूं कि वह जीवित होकर तो संसार में सुख बांटेगा। बल्कि, यही ठीक है कि वह पुरातन साहित्य के अवगुंठन में छिपा है; क्योंकि इसी से उसकी चिरंतनता, शाश्वतता बनी रहेगी। कृष्ण का प्रेम सुंदर था, उसके युग में; उसकी राजनीति-पटुता आज के गणराज्य के लिए पर्याप्त सिद्ध नहीं होगी। उस महामानव का जो भी निजी सत्त्व था, वह आज की संस्कृति की प्रगल्भता के लिए पर्याप्त नहीं है। कृष्ण पूर्ण पुरुष था, अतएव प्राकृत था। वह निःसंदेह कृषि-प्रधान संस्कृति का प्रतीक था। यदि वह वर्तमानकालिक यांत्रिक, नागर संस्कृति में रहेगा तो सिर्फ मखमल से मढ़ी मंजूषा का अलंकार बनकर; पौरुष, प्रीति, संगीत और दर्शन का प्रतीक बनकर। बुद्धिमान समय ने शताब्दियों तक कोटि-कोटि मुखों से कृष्ण-कथा का गान कराकर कृष्ण के प्रतीक स्वरूप को जीवित रखा है। अच्छे-अच्छे लोग महामानव के सपने देखते हैं; किंतु यंत्रयुग में महामानव विसर्जित हो जाता है, उज्जीवित नहीं होता। •

रूसी महिलाओं का हिंदी-प्रेम

• डॉ. पी. ए. बारान्निकोव

सोवियत संघ में वैसे तो भारत-प्राच्य विषयक कार्य विगत कई शताब्दियों से चल रहा है, पर महान अक्तूबर समाजवादी क्रांति से पूर्व इस क्षेत्र में एकमात्र पुरुष-वर्ग का कार्य दिखायी देता है। रूस में जब समाजवादी क्रांति संपन्न हुई तब देश की सभी महिलाओं को अधिकार प्राप्त हो गया कि वे उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए विश्वविद्यालयों में प्रवेश पा सकती हैं। इसके साथ ही महिला-समाज को अपनी उन्नति के लिए अन्य अनेक प्रकार की विशेष सुविधाएं भी प्राप्त हुईं।

इसके परिणामस्वरूप, प्राच्यविद्या के क्षेत्र में पहले जो केवल पुरुषों का कार्य दिखायी देता था, उस कार्य-क्षेत्र में महिलाओं ने भी पदार्पण किया।

सोवियत संघ में ललित साहित्य पढ़ने का इतना चाव है कि वहां का साधारण टैक्सी-ड्राइवर भी अपने विराम के क्षणों में कुछ-न-कुछ पढ़ता अवश्य है। हो सकता है उसके हाथ में १६ वीं शताब्दी के भारत-पर्यटक अफानासी निकीतिन

ऊपर : येवा लुस्तेनिर्क
नीचे : नताल्या गुसेवा

(तीन समुद्रों की यात्रा) पर लिखी किता- शेस्काया की पुस्तक हो। यह भी संभव है कि १८ वीं शताब्दी के एक अन्य यात्रिक गेरासीम लेबेदेव (जिन्होंने सर्वप्रथम हिंदी का व्याकरण लिखा था और कलकत्ता में एक थियेटर कंपनी भी खोली थी, जिसमें हिंदुस्तानी नाटक खेले जाते थे) पर श्रीमती स्मीरनोवारकीतीना का उप-न्यास हो।

आइए, अब मैं आपको अपने नगर लेनिनग्राद की कुछ बातें बताता हूं। यहां लगभग ५०० माध्यमिक विद्यालय हैं जिनमें मैं समय-समय पर भारत के अपने संस्मरण सुनाने या भाषण देने जाया करता हूं। यहां पर आपको भारत विष-

तात्याना ग्रेक: हिंदी में विशेष शोध कर रही हैं

[illegible] कोई पुस्तक सरलता से हाथ लग सकती है। हमारे यहां एक ऐसा भी स्कूल है जिसमें हिंदी की पुस्तकें बड़ी संख्या में आपको मिलेंगी क्योंकि इस स्कूल में हिंदी की शिक्षा दी जाती है। इस विद्यालय में महिलाएं ही हिंदी पढ़ाती हैं। इन अध्यापिकाओं में मेरी एक शिष्या लीदा गोलोवानोवा भी है।

उपर्युक्त विद्यालय की एक छात्रा की स्मृति मेरे मन में उमड़ रही है। इसका नाम है नेल्ली साविना। दस साल पहले जब वह हिंदी विद्यालय में पढ़ती थी, उसकी रुचि गीत-संगीत के प्रति बहुत गहरी थी। मैं जब-जब उस विद्यालय में किसी भारतीय प्रतिनिधिमंडल के साथ पहुंचता था तब हर समारोह में वह हिंदी में गीत गाया करती थी। जब वह विश्व-विद्यालय में पहुंची तब उसकी रुचि भारत के प्रति बलवती हो उठी। पढ़ाई समाप्त करके वह हरिद्वार आ पहुंची। वहां हिंदी दुभाषिये के रूप में कार्य करती रही और आजकल वह लेनिनग्राद विश्वविद्यालय में छात्र-छात्राओं को हिंदी पढ़ा रही है।

लेनिनग्राद विश्वविद्यालय में अनेक अध्यापिकाएं हैं। हिंदी की शिक्षिका तत्याना ओरांस्काया है। बंगला भाषा पढ़ाती है येलेना ब्रोसालिना। इसी विद्या-लय में एक अन्य अध्यापिका भी है, जो क्या खूब है! वह न केवल हिंदी अपितु उर्दू, संस्कृत और मराठी भी पढ़ाती है। इसका नाम है तत्याना कतेनिना। इसकी

ख्याति तो अब महाराष्ट्र तक में फैल चली है—यह बात मैंने भारत की अपनी द्वितीय यात्रा (१९७५) के दौरान पायी। आजकल सोवियत नारियां न केवल भारतीय भाषाओं का प्रशिक्षण-कार्य कर रही हैं, वरन विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्य का उच्चस्तरीय अध्ययन, संधान और विश्लेषणात्मक लेखन-कार्य भी संपन्न करने जा रही हैं। इधर हिंदी साहित्य पर जो महिलाएं विशिष्ट कार्य कर रही हैं उनमें नताल्या विश्नेवस्काया ने हिंदी एकांकी पर अपना ग्रंथ प्रकाशित करवाया है। एक अन्य विदुषी नेल्ली गफूरोवा ने (जो अकादेमिक बाबाजान गफूरोव की सुपुत्री हैं) कबीर पर महत्त्वपूर्ण कार्य किया और आजकल कबीर-पंथी साहित्य पर कार्य कर रही हैं। बंगला साहित्य पर वेरा नोविकोवा का कार्य प्रशंसनीय है, जिसने बंकिम बाबू पर लिखा है। तमिल साहित्य में इरीना स्मिरनोवा ने सुब्रह्मण्यम भारती पर कार्य किया है।

सोवियत महिलाओं का कार्य-क्षेत्र काफी व्यापक है। अनेक महिलाएं अनुवाद-कार्य भी करती हैं। संस्कृत से स्वेतलाना नेवेलेवा श्री कल्यानोव के संपादन में वेदव्यास के महाभारत के एक पर्व का अनुवाद समाप्त करने जा रही हैं। दीना गोल्दमन ने अकबर-बीरबल के मनोविनोद तथा हाजिरजवाबी और वृंदावनलाल वर्मा के उपन्यासों का रूपांतर किया है।

लेखक पी. बारान्निकोव रूस के प्रसिद्ध हिंदी विद्वान हैं। संप्रति 'राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी की समस्याएं' पर कार्य कर रहे हैं

श्रीमती रीम्मा के बच्चन की कविताओं, यशपाल के उपन्यास 'दिव्या', उपेन्द्रनाथ अश्क के 'गिरती दीवारें' और विष्णु प्रभाकर की कृति 'हिमालय की बेटी' के रूसी में अनुवाद प्रकाशित और चर्चित हुए हैं। पंजाब के साहित्य-समाज में नताल्या तलस्ताया बखूबी परिचित हैं। उन्होंने पंजाबी के अनेक लेखकों की कृतियों के रूसी में दिलचस्प और प्रभावकारी अनुवाद किये हैं।

हमारे देश में भारतीय इतिहास के विशेषज्ञ के रूप में येवा लुस्तेरनिक प्रसिद्ध हैं। लंबे अरसे से वे लेनिनग्राद विश्वविद्यालय में भारत का इतिहास पढ़ाती आ रही हैं। इस लेखिका की महान कृति का शीर्षक है '१९ वीं शताब्दी में भारत-रूस के सांस्कृतिक एवं आर्थिक

संबंध'। भारतीय मूर्ति एवं चित्रकला के क्षेत्र में तत्याना ग्रेक का नाम अग्रगण्य हैं। येवा लुस्तेरनिक अनेक वर्ष से लेनिनग्राद स्थित विश्व-प्रसिद्ध 'हर्मिताज' संग्रहालय के भारतीय कलाविभाग की अध्यक्षा हैं।

भारतीय मानव जाति-शास्त्र (एथ-नोग्राफी) के क्षेत्र में नताल्या गुसेवा का कार्य उच्चस्तरीय है। भारत के रीति-रिवाज, सभ्यता, चाल-चलन, समाज की अन्य प्रचलित बड़ी छोटी-छोटी बातों पर इन्होंने बहुत गहरा अध्ययन किया है। भारत के संबंध में इनकी बहुत-सी पुस्तकें छप चुकी हैं, जिनमें 'बहुमुखी भारत' तो रूस में अत्यंत लोकप्रिय है। उनकी रामायण-नृत्य-नाटिका का तो भारत में भी मंचन हो चुका है।

सोवियत संघ में भारत के प्रति अटूट प्रीति है। दोनों राष्ट्रों की सर्व-साधारण जनता के पारस्परिक स्नेह-सूत्र को दृढ़ करने की दृष्टि से मेरे देश में सोवियत-भारत सांस्कृतिक परिषद कार्य करती है, जिसमें अनेक महिलाएं रुचि लेती हैं। इस देशव्यापी संस्था का कार्य भी एक यशस्वी महिला के कर-कमलों द्वारा संचालित हो रहा है जिसका नाम है इरीना येरशोवा। वे अनेक वर्षों से इस संस्था की मुख्य-सचिव हैं।

—१८८६४३, कोमारोवो, लेनिनग्राद,
सोवियत संघ

किसी ने फूल रौंदे हैं

प्यार की गहराइयों की बात
छोड़ दो, कुछ और सोचो अब

विवशताएं रोग-सी चिपटीं
और कड़वी दवा-सा जीवन
बिस्तरे पर लेट दुविधा के
हम रहे हैं छटपटा, हर क्षण

रात हो कैसे भला अनुकूल
प्रात तक बदला हुआ है जब

नींद की कमजोर आंखों में
तैरतीं सड़कें, बसें हरदम
हर समय आभास यह होता
भीड़ में कुचले गये हैं हम

भागकर भी वाहनों के साथ
हैं वहीं ठहरे हुए पर सब

पटकतीं हमको परिस्थितियां
और हम निरुपाय ढह जाते
काश घुटने टेकने से पूर्व
हम उन्हें असहाय कर पाते

जिस किसी ने फूल रौंदे हैं
रौंद पायेंगे उसे हम कब?

—पुष्पा राही

—एफ ८/७, माडल टाउन दिल्ली-९

प्रेमी का प्रेमिका के नाम एक पत्र : "दुनिया में ऐसा कुछ भी नहीं जो मैं तुम्हारे पास पहुंचने के लिए नहीं कर सकता। तुम्हारे लिए मैं ऊंचे-से-ऊंचे पर्वतों को लांघ सकता हूं, रेगिस्तान को पार कर सकता हूं। प्रिये, तुम्हारे पास आने के लिए मैं समुद्र भी तैरकर पार कर लूंगा।"

पुनश्च : "यदि वर्षा न हुई तो शनिवार को तुमसे मिलूंगा।"

*

"प्रिये,क्या तुम मुझसे विवाह करोगी?"

"ठहरिए, यह तो संभव नहीं। बहर-हाल, मैं आपकी पसंद की दाद देती हूं।"

*

एक नवयुवती अपनी सगाई की अंगूठी पहने थी और वह अपनी सखियों का ध्यान उस ओर आकर्षित करना चाहती थी। पर जब किसी ने उस ओर ध्यान नहीं दिया, तब वह अचानक खड़ी होकर बोली, "यहां गरमी बहुत है, मेरा खयाल है कि मुझे अपनी अंगूठी उतार लेनी चाहिए।"

*

एक महिला ने दूसरी से कहा, "ठीक है कि उनकी उम्र इतनी ज्यादा है कि वे मेरे पिता लगते हैं, पर साथ ही उनके पास इतनी संपत्ति भी तो है कि वे मेरे पति भी लगें।"

*

घबरायी हुई एक आदिवासी महिला अपने पति के पास पहुंची, "भयंकर दांतों-वाला एक सिंह उस गुफा में घुस गया है जिसमें मेरी मां बैठी है।"

"इसमें डरने की क्या बात है, आखिर गुफा में तुम्हारी मां ही तो है!" पति ने कहा।

*

वकील ने महिला को सुझाव दिया कि वह अपने पति को तलाक दे दे। इस पर वह चिल्लायी, "क्या! मैं इसके साथ बीस बरस से लड़ते हुए रह रही हूं, अब आप चाहते हैं कि मैं इसे सुख-चैन से रहने दूं!

*

एक व्यक्ति ने अपने पुराने मित्र से पूछा, "अरे, तुम अकेले कैसे लौट आये? तुमने शादी नहीं की?"

"क्या बताऊं दोस्त! बड़ा विचित्र रहा हम लोगों का यह प्रेम-प्रसंग।

एक गुलाबो शाम को न जाने कितनी देर तक मैं उसके साथ घूमता रहा और सच पूछो, तो पहली ही मुलाकात में मेरे मन में उसके लिए प्यार उमड़ आया था।"

"तब भी तुमने उससे शादी नहीं की!"

"नहीं, दूसरी बार पता लगा--उसके लिए ये सब आम बातें थीं।"

★

किसी ने एक युवती से पूछा, "कभी तुमने अपने पति को किसी के साथ 'फ्लर्ट' करते पकड़ा है।"

"हां। आखिर मैंने भी तो उन्हें इसी तरह 'पकड़ा' है!"

★

दो लड़कियां लंच के समय आपस में बातें कर रही थीं। एक ने पूछा, "क्या तुम्हारा प्रेमी स्वतंत्र विचारों का है?"

दूसरी ने जवाब दिया, "अवश्य, वह हमेशा मेरे ही बारे में सोचता है।"

★

"पत्नी की याददाश्त से मुझे बहुत परेशानी हो गयी है," एक मित्र ने दूसरे से कहा।

"मैं भी पत्नी की याददाश्त से बहुत ज्यादा परेशान रहता हूं -- उसे कुछ याद ही नहीं रहता," दूसरे मित्र ने कहा।

"नहीं, वैसा कुछ नहीं। मेरी पत्नी को तो हर बात याद रहती है," पहला मित्र बोला।

● सुनीता

हंसिकाएं काव्य में

महिला-वर्ष

नवविवाहित पति ने, पत्नी से कहा
'ज्यादा फैशन में मत आओ
अपने आफिस
मांग में सिंदूर भरकर जाओ'
पत्नी बोली डपटकर
'विवाहित मैं ही नहीं तुम भी हो
मैं अभी जाकर,सरकार के द्वार, खटखटाती हूं
इस महिला-वर्ष में तुम्हारी भी मांग
भरवाती हूं'

प्यार

प्रेमी ने पूछा--
'क्या जीवन भर करती रहोगी मुझे तुम
इसी तरह प्यार'
प्रेमिका ने उत्तर दिया
'हां, अगर जीवन भर मिलता रहा तुम्हें
इसी तरह उधार'

नया विज्ञापन

प्रेम-नगर के एक प्रेमी ने दिया यूं विज्ञापन
'इस वर्ष की प्रेमिकाओं के ठेके का हुआ
समापन
हमको बनाना है नया पैनल
इसलिए चाहिए हमें नयी प्रेमिकाएं
कृपया अपने अनुभव के सर्टिफिकेट
भी साथ लाएं'

--प्रभा भारद्वाज 'वंचिता'
एल-१८, कालकाजी,नयी दिल्ली-११००१९

शिकार-कथा

शेर की शव-परीक्षा

● प्रीति

बैगा कबीले के लोगों को बलि देनी थी। शेर मरा पड़ा था। शिकार हो चुका था। बहुत आतंक फैला रखा था उसने। गाय, भैंस, बकरी जो सामने पड़ जाती उस पर हमला बोल देता। लेकिन उनके जंगल का राजा जो था वह! इसलिए उन्होंने शेर से अपने अपराधों की क्षमा मांगी।

शेर... शेर... शिकार का इरादा है। अपने कैंप के लिए हम मध्यप्रदेश को चुनते हैं। घने जंगल हैं, मीलों फैले हुए। जनवरी के दिन!

आखेट-यात्रा की शुरूआत

पहला दिन है। चांद पूरी जवानी पर है। छह घंटे हो गये, पर सड़क का सिलसिला खत्म नहीं होता। टेंपो से सफर कर रहे हैं। सफर खत्म और शानदार स्नान! रात्रि-भोजन जैसे राजकीय भोज हो। चैन की नींद। सुबह जल्दी उठना है। सुबह... क्या सरगर्मियां शुरू हुई हैं! छह बजे हैं। गुलाबी, ठंडी सुबह! झटपट नाश्ता किया और चल दिये।

काफी लोग हैं। काफिला दो जीपों और एक ट्रेलर में लदा है। मजा आ गया सफर में! तराशी हुई अलंकृत पहाड़ियां! घने जंगल! लंबे, ऊंचे पेड़! खड्ड ऐसे जैसे मौत मुंह बाये हो। एकाएक सामने आ पड़नेवाले सुई की नोक-जैसे नुकीले मोड़!

और धरती!

धरती... दूधिया... धरती लाल! स्याह पत्थर! हरे-भरे मैदान! इंद्र-

धनुष के रंग बिखरे पड़े हैं। जगह-जगह पुल और नाले ! डब्बों में चाय की चुस्कियां !
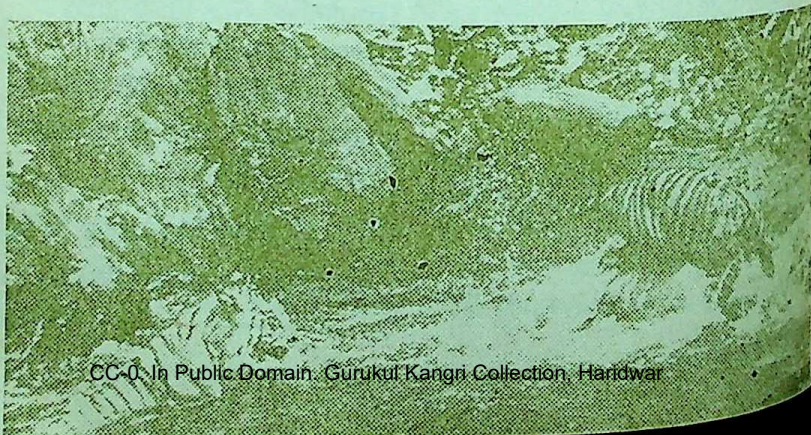
और यह दुपहरिया

तीसरा दिन ! कैंप में हलचल शुरू ! 'हांके' का प्रबंध कोई मामूली बात नहीं होती। दोपहर शरीर में सुस्ती भर देती है। इसके बावजूद, जंगल मन को खींच रहा है।

उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम ! दिशा-निदेशन सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। आज अभियान उत्तर दिशा की ओर ! शकुन अच्छे नजर आते हैं। जीप से जंगल में सात मील तक, फिर अंतिम दो मील पैदल ! घोर सन्नाटा ! सांसों की रफ्तार बढ़ गयी है। चारपाइयों का मचान बनाकर पेड़ों से लटका दिया गया है। आहिस्ता से हम उन पर चढ़ जाते हैं।

वक्त, जैसे पंख निकल आये हों। गोली चलने का घुटा-घुटा स्वर ! 'हांके' की घोषणा ! हमारी आंखें तन गयी हैं। काश, हमारे चार कान होते !

वह सामने क्या है ! सच हो सकता है वह क्या ? वे लंबे, पतले पेड़ ! हे भगवान ! कुछ हिल रहा है ! पता नहीं कौन कवि प्रेरणा के ज्वार में कह उठा था— **"जब वन-कांतार चलते, फिरते और मछलियां उड़ती हैं..."**

धोखेबाज कहीं का

सूरज इतना पीला है कि हर चीज तपकर सोना बन गयी है। बिना शक, शेर ही तो है ! धोखेबाज कहीं का ! धारियां मिल गयीं हैं, और रंग भी ! खूब कद्दावर है ! लगता है, ठोस स्टील के पांच सौ टन ! मांसपेशी पुट्ठे ! ढोलक के आकार का सौंदर्य, सुगठित कसा हुआ !

लेकिन क्या ? हमारे छिपने की जगह बेकार रही। ताड़ लिया उसने हमें ! वाह, विलक्षण बुद्धि है ! एकाएक मुड़कर नजरों से ओझल हो जाता है। हांका उठा लिया जाता है।

जो जरूरी है सो जरूरी है ही। अतः दूसरा हांका शुरू ! पांच मील पूर्व दिशा की ओर ! हरकारे बंदूकें और राइफल ढोकर ला रहे हैं। उत्तेजना चरम
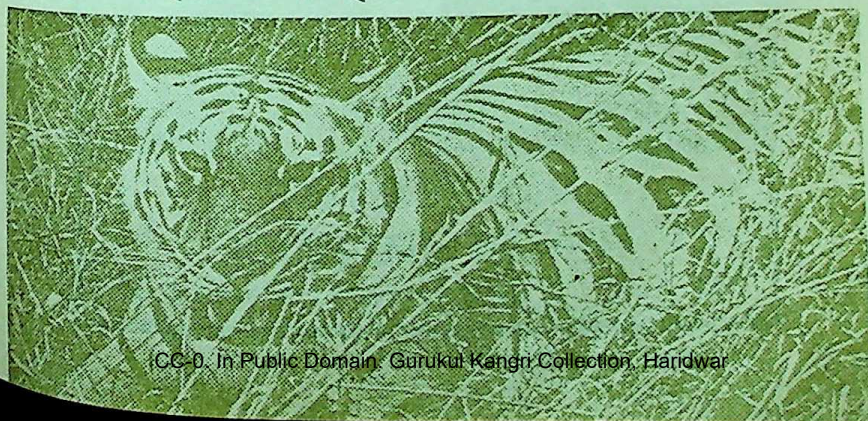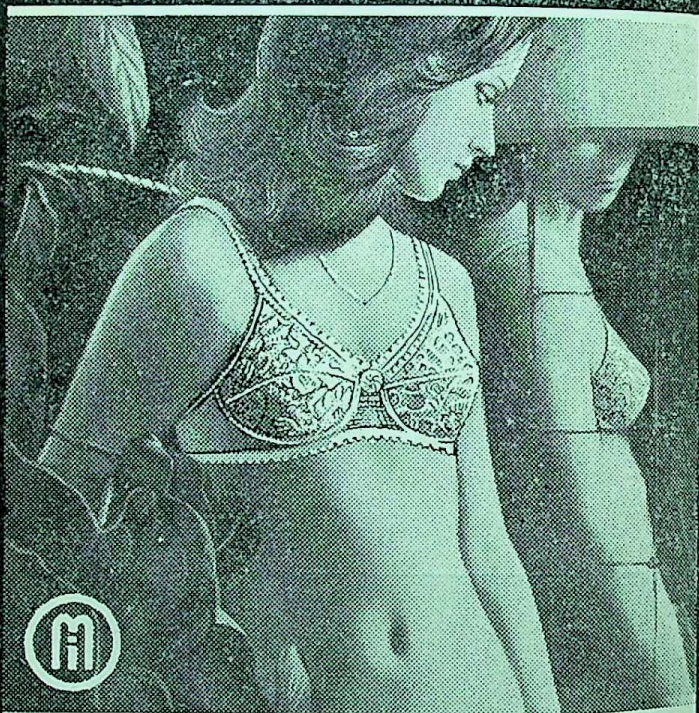
सीमा पर है।

हांका शुरू! एक सांभर लुढ़कता हुआ जा रहा है। फिर एक और! सिलसिला बंध गया है। लेकिन गोली नहीं चलायी जाती। 'शेर, या फिर कुछ नहीं'—इरादा यही है। वापस कैंप में! मौज, मस्ती का आलम! संगीत का अपना आनंद है। छोटे-छोटे बच्चे अपने निर्दोष गीत टूटी-फूटी कड़ियों में सुनाते हैं। तालियां बजा-बजाकर! हम उन्हें टेप किये गीत सुनाते हैं, घुप स्याह अंधेरे में एकाएक चीख! कोई जानवर शिकार हो गया। फुर्ती से हम जीप में सवार होते हैं। सर्द हवा थपेड़ा-सा मारती है। छोटा-सा एक बछड़ा शिकार हुआ है। चारों तरफ मोटे अनाज की फसल। चांद चढ़ाव पर! तारों-भरा आसमान! शांति का साम्राज्य! शेर... शेर तो इस समय दस मील दूर बसेरा किये हुए है। सो, आसानी से तो आने से रहा। हम रात भर के लिए रुखसत लेते हैं, सिर्फ आज रात के लिए।

अता-पता

चुनिंदा नेवाले! शायद शेर को पसंद नहीं। चर्बी की चिकनाई अभी तक मौजूद है। ये नेवाले! अब भी लगता है गाय-जैसे जुगाली करती हो। यह तो बड़ा चोंचलेबाज शेर मालूम पड़ता है। या, कई शेर भी हो सकते हैं! हमला कर रहे हैं किसी पर! कहां? किस जगह? हम दौड़ पड़ते हैं। वन-अंचलों की तरफ!

किसी पशु के बड़े-बड़े पद-चिह्न! रक्त-चिह्न! बहुत से शेर घूम-फिर रहे हैं शायद! कोई बात नहीं! उसकी हर चाल का सामना करना है! चौथा दिन! छह बजे हैं! निशाना मारने का अभ्यास!

सिगरेट की डब्बियां! माचिस! पेड़ों की आड़! दूरियां उतनी ही तय कर पा रहे हैं जितना दम है हममें। हमारी एअर-राइफलें।

ऐसी भी क्या लाज

आ...हा...वह आया। तृप्ति से भोजन किया है। नंद खबर लाया है। शेर एक 'चारा' तोड़ चुका है। तो यह बात है! जंगल के रंगमंच पर शेर उतरने की तैयारी कर रहा है।

हम भी अपनी सफारी पर! खतर-नाक क्षेत्र! होशियारी बरतनी होगी। घाटी बहुत तंग है। झाड़ियां! इतनी नजदीक, कांटेदार और सही-सहीं! जल्दी ही रात आ पहुंचेगी। मचानों पर पहुंच जाना चाहिए। हमारे कंधे अच्छी तरह कसे हुए हैं!

१५ मील का सफर तय करते हैं। फिर? कहां रुकें? पांच बज गये। सिर्फ दो मील रह गये, पर वापस! सीधे कैंप में। यहां रहनेवाले हमारी अपेक्षा ज्यादा जानते हैं—शेर नहीं आयेगा अब। गंध से पता चल जाता है सब। दूसरे रास्ते निकालने होंगे।

मुखिया आया है गांववालों के साथ। बलि देनी होगी वन-देवी को। रहस्य-

वादी आ जुड़े हैं। कैसे जादूभरे सूत्र हैं ! हम उनकी इज्जत करते हैं। चार दिन की मोहलत ! ठीक है, तब तक कैंप-वासियों के लिए मौज-मस्ती !
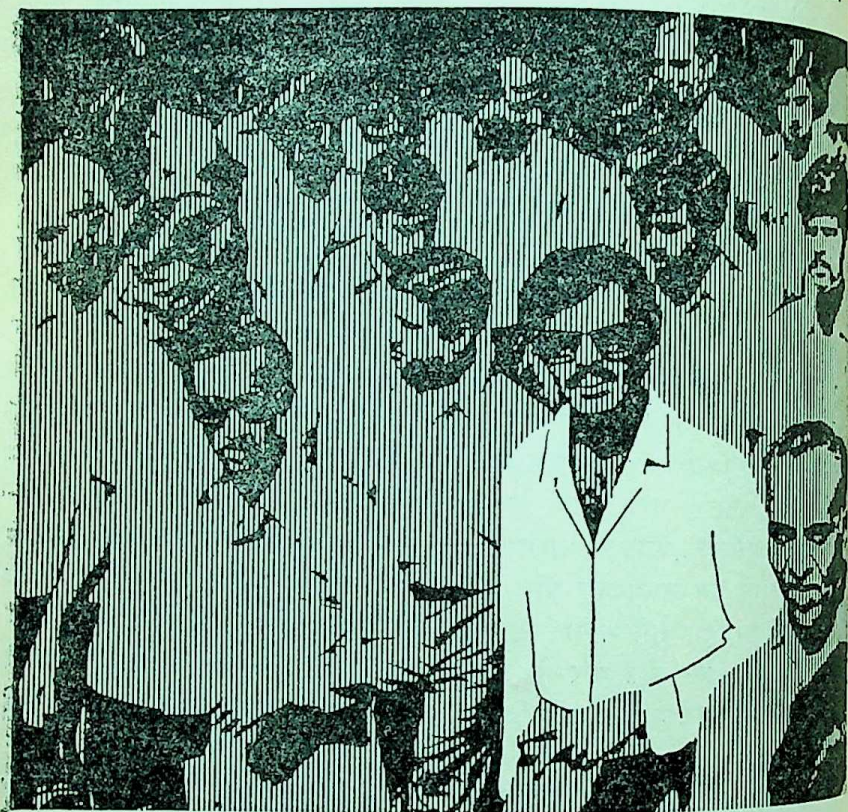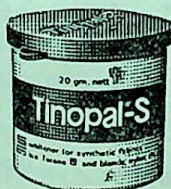
पांचवां दिन आ गया। इतने सारे दिन मानो हमने वाल्ट डिसने के परी-लोक की सैर की हो। लेकिन शेर...शेर... कहां... कहां...ओह कैसे !

कैंप को उदासी ने घेर लिया है। आंखों में घोर वेदना। जादूभरे सूत्र का छठा दिन और कैंप में दसवां दिन !

ग्यारहवां दिन सिर पर ! कैसा दुःख व्यापा हुआ है कैंप में ! नहाना, धोना, नाश्ता, कुछ नहीं !...उपवास !

भाग्य पलटा

चारा तोड़ लिया है शेर ने। सिर्फ पिछली टांग खायी गयी है। जरूर लौटेगा! जहां वह लेटा था वहां की जमीन नम है, अतः दाब से पता चलता है कि शेर कद्दा-वर है। क्या भाग्य है ! एकाएक स्थिति बदली है ! खोज-पार्टियां भेजी गयी हैं। सारी रात जागना होगा, यह तय है। या तो शेर छह से आठ बजे के बीच आयेगा या फिर तड़के तीन और चार के बीच !

पांच बजे तक हम मोर्चे संभाल लेते हैं। ६.४५ का वक्त ! कितनी चुप्पी ! और फिर, पत्तियों पर आहिस्ता से आहट !

नायक का आगमन

एक और स्वर ! वह है क्या ? शायद... कुछ नहीं घटता ! दस मिनट ! कोई स्वर नहीं ! कीड़े-पतिंगे तक चुप ! और फिर...फिर वह आता है ! थोड़ा--थोड़ा...सिर नजर आता है पहले।

अंत—इतनी चिकनाहट इस चांदनी में ! यह रही विशाल गरदन ! और फिर, बहुत शान से शेर एकाएक बाहर आता है। सुनहरी धारियां, चांदनी में चमकती हुई ! ठिठक कर खड़ा हो गया है। पांच मिनट ! उसकी निर्भीक ठिठकन से हम भयाक्रांत हैं ! आत्मविश्वास से भरा हुआ और राजसी शान !

जीत का जश्न होना चाहिए। हवा के पंखों पर सवार होकर खबर चारों तरफ फैल जाती है। शेर को कैंप ले आया गया है। दूर-दराज के गांवों से गोंड आते हैं। गहरी और धूसरित त्वचावाले। सफेद कपड़े पहने हुए वे कतार में खड़े हो जाते हैं। ढोल बज उठते हैं। उनके शरीर आहिस्ता-आहिस्ता झूम उठे हैं। रात भर नृत्य।

तेरहवां दिन। कैंप उठाया जा रहा है। शेर की खाल साफ की जा चुकी है। मूंछें अलग करके गांववालों ने जला दी हैं। पंजे भी अलग कर दिये गये। खाल को बांसों पर फैला दिया गया है। सूख जाएगी इस तरह !

शाम झुक आयी है। हम सड़क पर हैं, वापसी के लिए। "शेर...मंत्रविद्ध शेर..."

—बी-२२ डिफेंस कालोनी, नयी दिल्ली
-११००२४

जयशंकर प्रसाद

एक अंतरंग रेखाचित्र-२

छायावाद मन्वंतर के मनु

• श्री रामनाथ 'सुमन'

बड़े भाई शंभुरत्न के जमाने में 'प्रसाद' उनकी आज्ञा से नारियल बाजार, वाराणसी की दूकान पर बैठने लगे थे। भाई की अनुपस्थिति में ये दूकान की गद्दी पर बैठते और बीच-बीच में कागज के टुकड़ों पर कविताएं लिखते, समस्या-पूर्तियां करते और गद्दी के नीचे दबा दिया करते। एक दिन गद्दी की सफाई के समय बड़े भाई को इनके लिखे सैकड़ों कवित्त दीख गये। उन्होंने उस बाल-काव्य को नष्ट कर दिया और सख्त ताकीद की कि ये सब छोड़ो, काम-काज देखो। इन्होंने आज्ञा का पालन किया, कामकाज में मन भी लगाया, पर दूकान पर अकसर आनेवाले कवियों की कविताएं सुनते रहने के कारण काव्य-रचना की प्रवृत्ति निर्मूल नहीं हुई। एक बार इनकी एक समस्यापूर्ति सुनकर विद्वानों ने बड़ी सराहना की। तभी से इन्हें लिखने की आज्ञा मिल गयी।

'प्रसाद' की अधिकांश प्रारंभिक रचनाएं ब्रजवाणी में हैं। इस बाल-काव्य पर इनके संस्कृत-काव्य के अध्ययन का भी प्रभाव पड़ा है। यह उल्लेखनीय है कि 'प्रसाद' ने पहले प्राइमरी पाठशाला चेतगंज में और बाद को क्वींस कालिजिएट स्कूल में केवल आठवें दर्जे तक स्कूली शिक्षा पायी थी। इनकी अधिकांश शिक्षा घर पर ही हुई थी और बड़े-बड़े विद्वान इनकी शिक्षा-दीक्षा के लिए नियुक्त थे। कुशाग्रबुद्धि होने के कारण अल्पकाल में ही इन्होंने संस्कृत काव्य एवं दर्शन का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। कविता में भी इन्हें बचपन से ही अच्छा अभ्यास हो गया था। इनके बाल-काव्य पर दो साथियों का भी प्रभाव पड़ा था। एक तो इनके ही महल्ले के और सहपाठी भी थे—लक्ष्मीनारायण सिंह 'ईश'। 'ईश' से बाद में मेरा भी अच्छा परिचय हो गया था। कभी-कभी जब 'ईश' पहुंच जाते और काशी के ही रघुनाथसिंह जी (जो बाद में संसदीय कांग्रेस-दल के सचिव और शिपिंग बोर्ड के अध्यक्ष हुए) के बड़े मामा श्री बैजनाथसिंह भी मिल जाते,

तब ब्रजभाषा-कविता का समां बंध जाता था। 'ईश' जी तो बाद में खड़ी बोली में भी कविता करने लगे थे। दूसरे कवि, जिनकी मस्ती और सरसता का 'प्रसाद' पर प्रभाव पड़ा, रामानंद थे। रामानंद बड़े ही रसिक और चुलबुली तबीयत के थे, फारसी-उर्दू शब्द-प्रधान अच्छे कवित्त और सवैये कहते थे। उनका एक संग्रह भी 'उर्दू-शतक' नाम से, शायद १९०६ में, निकला था। १९०७ ई. की 'सरस्वती' में आचार्य द्विवेदीजी ने उसकी बड़ी प्रशंसा की है। 'उर्दू शतक' के छंद सचमुच ही चुटीले हैं। उन दिनों, किशोरावस्था में, मुझे भी देव, घनानंद, बोधा, रसखान और रामानंद के प्रेम-विषयक कवित्त-सवैये बहुत पसंद थे; याद भी थे। घनानंद की भांति रामानंद भी एक वारांगना पर मुग्ध थे। यह वारांगना 'प्रसाद' की दूकान के ऊपर ही, कोठे पर, बैठती थी। रामानंद नीचे से ही उसे अपनी कविताएं सुनाया करते। बहुधा वह 'प्रसाद' की दूकान पर भी बैठ जाते। कभी रूप-वर्णन करते; कभी विरह-वेदना सुनाते। एक दिन की बात है कि वारांगना बाल छिटकाये खिड़की पर बैठी थी। रामानंद आ गये, देखा और तुरंत यह सवैया रचकर सुनाया—

आफत के परकाले हैं काले ये गेसू निराले अजीबोगरीब हैं
गोश तक आये, बढ़ फिर दोष तक, ताकमर आकर पाये-तसीब हैं
हैं 'रामानंद' दो चंद ये मार-से, हाय किसी के न होते हबीब हैं
आशिक खूब संभाल के बैठो, कयामत शामत दोनों करीब हैं

इन मित्रों तथा वातावरण के प्रभाव से 'प्रसाद' कविता की ओर उन्मुख होते गये और ब्रजभाषा में विविध छंदों में रचना करने लगे। जुलाई, १९०६ के 'भारतेन्दु' में 'कलाधर' उपनाम से इनकी कविता पहली बार प्रकाशित हुई। तब से बराबर कुछ लिखने लगे।

संस्कृत-साहित्य का प्रभाव

किशोरावस्था की अधिकांश रचनाओं पर इनके संस्कृत साहित्य के अध्ययन का गहरा प्रभाव पड़ा है। 'फार्म' पर तो बहुत

ज्यादा। संस्कृत-कवियों की भांति ही इन्होंने चंपू, व्यायोग, भिन्न तुकांत काव्य आदि के विविध प्रयोग किये। संस्कृत-साहित्य में काव्य और नाटक का अभिन्न संबंध है। इसीलिए ये भी काव्य के साथ नाटक-लेखन की ओर अग्रसर हुए। नाटकों के कथानक भी सब प्राचीन हैं, यद्यपि उनकी पकड़ में एक नवीनता और मौलिकता है।

शैशव और यौवन की स्मृति

इनके काव्य में, क्या संपूर्ण रचना-मालिका में, बीते हुए सुखप्रद शैशव की झलक, यौवन के शृंगार एवं सौंदर्य की पुलक, विगत सुख-वैभव के लिए निराश ललक तथा भविष्य के संयम एवं त्याग की गरिमा है। बचपन का कुतूहल अंत में रहस्य बनकर रह गया है। उनके यौवन-सौंदर्य की झलक पर सदैव सामंती शराफत का पर्दा पड़ा रहा, गृह-सौंदर्य कभी खुलकर सामने नहीं आया, बाजारू नहीं हुआ। फिर इनका काव्य इनके जीवन के साथ-साथ प्रस्फुटित हुआ है। बड़े भाई ने अपने जीवन-काल में ही इनका विवाह तय कर दिया था। उनकी मृत्यु के कुछ दिनों बाद उसी लड़की से इनका विवाह हो गया। 'प्रसाद' की यह प्रथम पत्नी सुशिक्षिता थीं। देखने में भी रूपवती थीं और ये उन्हें बहुत चाहते थे। 'प्रसाद' कविता, कहानियां, नाटक पहले से ही लिख रहे थे। कविताएं तो ये शुरू से लिख रहे थे, परंतु पुस्तक रूप में इनकी पूरी रचना 'विशाख' नाटक है, जो १९०४ में, केवल १५ वर्ष की अवस्था में, लिखा गया था।

अपनी पत्नी के साथ इनका जीवन सुखपूर्वक बीत रहा था। सुखी दाम्पत्य-प्रेम के बल पर ये बाहर के सब झगड़ों को सहन करते हुए, आकंठ कर्ज में डूबे रहने पर भी, विश्वास और निष्ठापूर्वक जीवन का निर्माण कर रहे थे। 'प्रसाद' के काव्य की अधिकांश सौंदर्य-कलाओं में इसी प्रिया पत्नी की छवि अंकित होती गयी है। वे ही श्रद्धारूपिणी हैं। अपने जीवंत सहयोग के द्वारा जहां 'प्रसाद' के जीवन में उन्होंने साहित्य की विविध विधाओं को प्रतिष्ठित होने का अवसर दिया, वहां मृत्यु में भी उन्होंने 'प्रसाद' का त्याग नहीं किया। 'आंसू' जैसा श्रेष्ठ गीति-काव्य उन्हीं के विरह की स्मृतियों से आलोकित है। १०—१२ वर्ष के विवाहित जीवन के बाद पत्नी का देहावसान हो गया था और 'प्रसाद' अपने को निपट अकेला पाकर बहुत ही उद्विग्न तथा दुखी थे। यह मेरे सामने की बात है। किसी काम में इनका मन नहीं लगता था। एकांत में होते तो गुम-सुम बैठे रहते। कभी इनकी आंखें गीली हो जातीं, कभी अतीत में बिलकुल खो जाते। पत्नी की स्मृति इनको सदैव कचोटती रहती थी। जीवन-पट पर अनेक दृश्य आये और गये किंतु ये अपनी प्रथम पत्नी को कभी न भूले।

मैं साक्षी रहा हूं उनकी पीड़ा का।

जब समय गुजर गया और 'प्रसाद' कुछ प्रकृतिस्थ हुए तब भाभी ने दूसरे विवाह के लिए जोर दिया, क्योंकि न उन्हें, न 'प्रसाद' को कोई संतान थी । यहां एक बात बता देना जरूरी है। 'प्रसाद' जीवन-भर अपनी भाभी को मां समझते रहे । उनकी कोई आज्ञा अमान्य नहीं करते थे । मैंने यह देखा है कि सारे घर पर भाभी का ही राज्य था । किसे क्या देना, लेना, किससे क्या संबंध निबाहना, घर की मर्यादा-संबंधी हर काम उन्हीं की राय से होता था । 'प्रसाद' विवाह के लिए तैयार न थे, परंतु जानते थे कि भाभी का आग्रह बहुत दिनों तक टाल नहीं सकेंगे । अंत में इन्हें राजी होना पड़ा । दूसरी शादी हुई, किंतु कैसा दुर्भाग्य था कि वह स्त्री एक बार भी ससुराल नहीं आयी और साल के अंदर ही उसकी मृत्यु हो गयी । जब काफी दिन बीत गये और भाभी रो-रोकर वंश चलाने की बात कहने लगीं तब इन्होंने तीसरा विवाह किया । इनके एकमात्र पुत्र रत्नशंकर इसी पत्नी की संतान हैं ।

काव्य और जीवन की पार्श्वभूमि

मैं बता चुका हूं कि 'प्रसाद' की काव्य-रचना का आरंभ ब्रजवाणी से हुआ, परंतु उन रचनाओं में भी एक नवीन स्पर्श, एक जिज्ञासा का स्वर है । वही स्वर इनके जीवन में, अनुभव एवं अवस्था के साथ, प्रधान होता गया है ।

जब मेरा इनसे प्रथम परिचय हुआ, तब यूरोपीय युद्ध बंद हो गया था। १९१८ के दिन थे । 'चित्राधार' निकल चुका था और कहानियों का संग्रह 'छाया' अलग से भी छप गया था। 'चित्राधार' का प्रथम संस्करण बड़ा सुंदर था—कागज, छपाई, सज्जा सबमें एक नवीनता थी । प्रथम परिचय के बाद ही इन्होंने उसकी एक प्रति मुझे स्नेहोपहार-स्वरूप दी और उपहार का यह क्रम सदैव बना रहा । मैं उसी रात, रतजगा करके, 'चित्राधार' को आद्यंत पढ़ गया । उसमें 'प्रेम-पथिक' ने मुझे बहुत लुभाया । उस जमाने में प्रेम का ऐसा चित्र—सात्विक, उज्ज्वल किंतु आर्द्र—कहीं दिखायी नहीं पड़ता था, क्योंकि रीतिकालीन कविता की भोगबहुल मोहिनी तब भी हमें गुदगुदाती थी, वह हिंदी संसार के मानस पर छायी हुई थी। (क्रमशः)

एक महिला ने दूकानदार से पूछा, "आपके पास 'स्त्री का परमेश्वर पति' नाम की पुस्तक है ?"

दूकानदार ने गंभीर होकर उत्तर दिया, "हम हास्य-रस की पुस्तक नहीं बेचते ।"

*

सरोज ने पूछा, "सरला के बारे में जो तुमने सुना है, क्या तुम उस कहानी में विश्वास करती हो ?"

शोभा ने उत्तर दिया, "उसमें अविश्वास के योग्य क्या है ! पर यह तो बताओ कि वह कहानी क्या है !"

संदर्भ सहित व्याख्या

ऐसा क्यों है कि तुम पानी से भरे मटके में
बुलबुले खोजते हो
तुम्हारी आंखों ने मुझसे तो नहीं कहा
कि वहां वह तूफान उस सिरदर्द चुप्पी का था
तुम्हारी हथेलियों ने भी नहीं कहा
कि उनका खुरदरापन . . .
मेरी कोमल अंगलियों ने सोख ली थी
उनकी स्निग्धता
मैंने तो सिर्फ तुम्हारे होंठ स्पर्श करने
चाहे थे
फिर वह खूंख्वार नमी
तुम्हारी आंखों में क्यों उतर आयी थी
तुम्हारी हथेलियां क्यों चिपचिपा गयी थीं
मेरी अंगुलियां तो आज भी वैसी ही हैं
तुमने सब चीजों का संदर्भ चाहा है
और मैंने व्याख्या
तो सुनो प्रिय
मेरी अंगुलियां कोमल इसलिए हैं
मेरी मां मेरे जूठे बरतनों को मलती हैं
और उसके हाथ खुरदरे हैं
पर तुम्हारी हथेलियां तो
कॉफी हाउस में बिल चुका देने से ही
खुरदरी हो गयीं ऐसा क्यों है
इसकी व्याख्या तुम कर दो
संदर्भों के थपेड़ों से ही
तुम्हारी कमर क्यों झुक आयी है
इसे भी तुम व्याख्या दो
मेरे पास तो संदर्भ है
कि तुम रोज मुझे छूते हो
अपनी बरौनियों में टंगी दृष्टि से
पर मेरी तो पलकें भी कभी नहीं झुकीं
हमें सिर्फ सवालों के जवाब चाहिए
और जवाब
संदर्भ और व्याख्या का समीकृत रूप हैं
सुनो मेरे पास कागज की एक नाव है
उसमें मैं सारे संदर्भों को सहेज
बहा दूंगी तुम्हारे पास और तुम उन्हें
ठोक बजाकर, कुरेदकर, उधेड़कर,
व्याख्याओं को बुनना मेरे लिए
और फिर संदर्भों और व्याख्याओं को
उधेड़ते और बुनते हुए
हम सवाल की भी खोज कर लेंगे
कि उधेड़बुन शब्द कैसे बना
तो अध्याय पूरा है
आओ हम अपना संदर्भ खोजें
मेरा तो संदर्भ इतना है
कि मेरा प्रश्न मेरे पास है
तुम पानी से भरे मटके में
बुलबुले क्यों खोजते हो
इसे व्याख्या दे दो मेरे मित्र

—सुनीता बुद्धिराजा

—ए/१४ डी. सी. सी. कालोनी, शादीपुर, दिल्ली ११०००८

युवा विद्रोह रचनात्मक दिशाएं

• इंदु जैन

नारे लगाते युवक, बसों को फूंकते, कुलपतियों के आफिस के बाहर धरना देते, बांहें फैलाये, चीखते-चिल्लाते सारी दुनिया को धकियाते, रोज सुबह अखबारों के साथ हर घर में घुस आते हैं। आफिस जाने की भागाभागी में पिता हमेशा उन युवकों में पड़ोसी का चेहरा देखता है, अपने बच्चों का नहीं। मां सिर्फ परेशान होकर रह जाती है कि उसका बेटा समय से खाना खाने नहीं आता, न जाने कहां भटकता फिरता है। जिस दिन वह सिर फुड़वाकर या आंसू-गैस से आंख सुजाये घर लौटता है या विश्वविद्यालय से निष्कासित कर दिया जाता है, उस दिन माता-पिता चौंकते हैं और फिर पड़ोसी के लड़के को गाली देते हैं, जिसकी सोहबत में उनका होनहार बेटा बिगड़ गया। उन्हें समझ में नहीं आता कि उनका लड़का ऐसे तोड़-फोड़ के काम क्यों करता है, ऊलजलूल बातें क्यों कहता है, पढ़ता-लिखता क्यों नहीं, विद्रोही क्यों हो गया!

युवा विद्रोह का एक दूसरा रूप भी अखबारों के माध्यम से हमारे सामने आता है कि एक गरीब लड़का भीड़ में औरत का पर्स छीनकर भाग गया, गले की चेन खींच ली, या चार धनी परिवार के लड़कों ने किसी की गाड़ी उड़ा ली, किसी जौहरी की दूकान से हीरों का हार गायब कर दिया, पिस्तौल दिखाकर शराब की दूकान से विलायती शराब की बोतलें उड़ा लीं। यह भी युवा विद्रोह है।

तीसरा रूप दीखता है युवकों के लंबे बालों में, गले में झूलती मालाओं में, आंखों में छाये चरस, गांजे और मारि-

जुआना के नशे में, लपेटदार अमरीकी उच्चारण और स्वच्छंद यौन-व्यवहार में। वे बात करते हैं आत्मोन्नति, भगवान और प्रेम की, फूल-शक्ति की, ईर्ष्याहीन सामूहिक प्रणय-भाव और भेदरहित समाज की, लेकिन एक राक्षस का तिरस्कार करते हुए दूसरे जिन्न के वशीभूत हो बैठे हैं, जो बाह्य रासायनिक प्रभावों से उनके तन-मन का संचालन कर रहा है।

लेखिका

ये सब विद्रोह की वे तसवीरें हैं जो हमें दीख जाती हैं। आज जनता की मांग और समाचारपत्रों का उस मांगपूर्ति का तरीका कुछ ऐसा हो गया है कि जहां युवक एकजुट होकर शांतिपूर्वक अपने वर्तमान और भविष्य पर विचार करते हैं या कैंप लगाते हैं, विविध सहायता-कार्यों में हाथ बंटाते हैं, उसकी न कहीं विशेष चर्चा होती है, न चित्र छपते हैं। किसी को उसका पता ही नहीं चलता। कहने का तात्पर्य यह नहीं कि युवा-वर्ग इस तरह का काम बहुत कर रहा है, तोड़फोड़ का अनुपात इससे कम है! मेरा कहना केवल यह है कि जो चर्चा का विषय बनाया जाता है, वह आकर्षण का केंद्र होता है। यदि सार्थक कामों को अभिव्यक्ति दी जाए तो संभवतः उसके प्रति अधिक युवा खिचेंगे और उनके लिए ऐसी सूचनाएं दिशा-निर्देश का कार्य भी कर पायेंगी। यदि विदेशी फिल्म देखकर डाके की प्रेरणा मिल सकती है, तो सांप्रदायिक दंगों के रोकने के लिए जान की बाजी लगानेवालों की कहानी भी कहीं कोई ज्योति जरूर जगा सकती है।

जब हम युवक की बात करते हैं तो हमारे मन में विद्यार्थी का चित्र उभरता है, किंतु वास्तव में देखा जाए तो हमारे देश में विद्यार्थी युवा-वर्ग से कहीं बड़ा
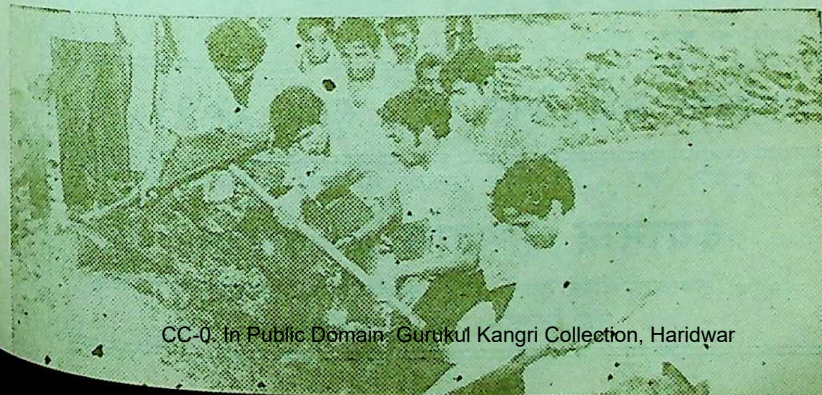
दूसरा युवा-वर्ग है जिसमें हर तरह का कामकाजी या बेकार युवक आता है। अफसर, क्लर्क, मजदूर, किसान, बोझा ढोनेवाला, ड्राइवर वर्ग... सब इसमें शामिल हैं। गांव और शहर सभी जगह यह युवा-वर्ग है। लेकिन वास्तविकता यह है कि सामूहिक विद्रोह का प्रदर्शन या तो विद्यार्थी-वर्ग में होता है या मजदूर-वर्ग में! कारण यह कि वे ही सबसे ज्यादा सुसंचालित और सुव्यवस्थित हैं।

विद्यार्थी-वर्ग और मजदूर-वर्ग की सामाजिक और नैतिक समस्याएं समान होते हुए, आर्थिक व व्यक्तित्व-संबंधी समस्याएं काफी भिन्न हैं। समाज में उनका स्थानीकरण भी इतना पृथक है कि अकसर विद्यार्थी-वर्ग के आंदोलनों की एक बड़ी आलोचना यह होती है कि वे ट्रेड-यूनियन के तौर-तरीकों को अपना रहे हैं, मानो यह करना भयंकर भूल है, अपराध है।

विद्यार्थी और कामगर का यह विभेद काफी हद तक हमारी वैचारिक कंगाली और पिछड़ेपन को अभिव्यक्त करता है। आज के युवा विद्रोह का प्रमुख कारण यही है कि शिक्षा और श्रम बिलकुल अलग क्षेत्र मान लिये गये हैं। विचारक-लेखक ज्यां पाल सार्त्र ने फ्रांस के विद्यार्थी नेता डेनियल कॉन-बेंदीत से कहा कि

विद्यार्थी एक 'वर्ग' नहीं है। उन्हें आयु और ज्ञान के संदर्भ से जाना जाता है। पारिभाषिक रूप से विद्यार्थी वह है जो किसी भी समाज में, हमारे सपनों के समाज तक में, एक न एक दिन अवश्यमेव विद्यार्थी नहीं रहता। इसका उत्तर देते हुए वेंदीत ने कहा था कि यहीं विचारधारा मुसीबत की जड़ है। आज के नियमानुसार कुछ लोग अध्ययन में रत हैं और कुछ काम कर रहे हैं। इस तरह हम सब सामाजिक कार्य-विभाजन (डिवीजन ऑव लेबर) के शिकार हो गये हैं। आज जरूरत है एक ऐसे युग की कल्पना की जहां हर कोई उत्पादन-कार्य में लगेगा और साथ-साथ विद्या-लाभ भी करेगा। कामगर और विद्यार्थी के विभेद को तोड़कर समानांतर श्रम व अध्ययन का सिद्धांत लागू करना होगा।

मेरे विचार में वर्तमान युवा आंदोलन के भटकाव की जड़ यह है कि उसके पास अपनी समस्याओं को समझने-बूझनेवाले, उन्हें रचनात्मक दिशा देनेवाले युवा नेता नहीं हैं। सब जानते हैं कि शिक्षा के क्षेत्र में सुधार अनिवार्य है, शिक्षा-प्रणाली का वास्तविकता से कोई संबंध नहीं। वह हमें जिंदगी के लिए तैयार नहीं करती। वह हमारे भीतर स्वतंत्र चिंतन की आदत नहीं डालती। उच्च शिक्षा के नाम पर ऊब और बांझ संभावनाओं का एक ऊसर धरातल हमारे सामने खुल जाता है, जिसमें डिग्री का भोंथरा खुरपा देकर छोड़ दिया जाता है। जीवन-संग्राम में रत प्राध्यापक या तो अनुपस्थित होता है या नितांत आदर्शवादी पाठ पढ़ाकर वास्तविकता से विसंगत करके युवा-शक्ति को जूझ-जूझ कर खंडित होने के लिए छोड़ जाता है। सबसे विचित्र बात यह है कि यह शिक्षा नौकरी दिलाने का कार्य भी सिद्ध नहीं कर पाती। और तो और, अधिकांश पाठ्यक्रम अव्यावसायिक होने के कारण एक ऐसे शीशमहल में कैद कर जाते हैं कि विद्यार्थी को समाज में 'आक्यूपेशनल आइडेंटिटी' तक नहीं मिल पाती।

ये सारी बातें इतनी स्पष्ट हैं कि हर एक की जबान पर हैं। विद्यार्थी भी इनसे अपरिचित नहीं, लेकिन युवा नेतृत्व इन पर सक्रिय और सुझावात्मक विचार करने में असमर्थ रहा है और इसीलिए कोई भी निश्चित सुधार-कार्यक्रम वह सामने नहीं रख पाया है। वह तोड़ता है, इस उम्मीद में कि अनावश्यक को हटाते-हटाते उसे आवश्यक का सुराग मिल जाएगा। विध्वंस के पीछे प्रेरणा और अंतिम लक्ष्य कुछ पाने, कुछ संवारने, सुधारने का है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता, लेकिन यह प्रयत्न नहीं, एक प्रकार का भाग्यवाद है, वैचारिक शून्यता का एक दूसरा रूप है।

कुछ अरसा हुआ, इंदौर में 'तरुण शांति सेना' का अधिवेशन हुआ था। अहमदाबाद की एक छात्रा मंदाकिनी दवे ने पुरानी पीढ़ी को स्थिति के लिए
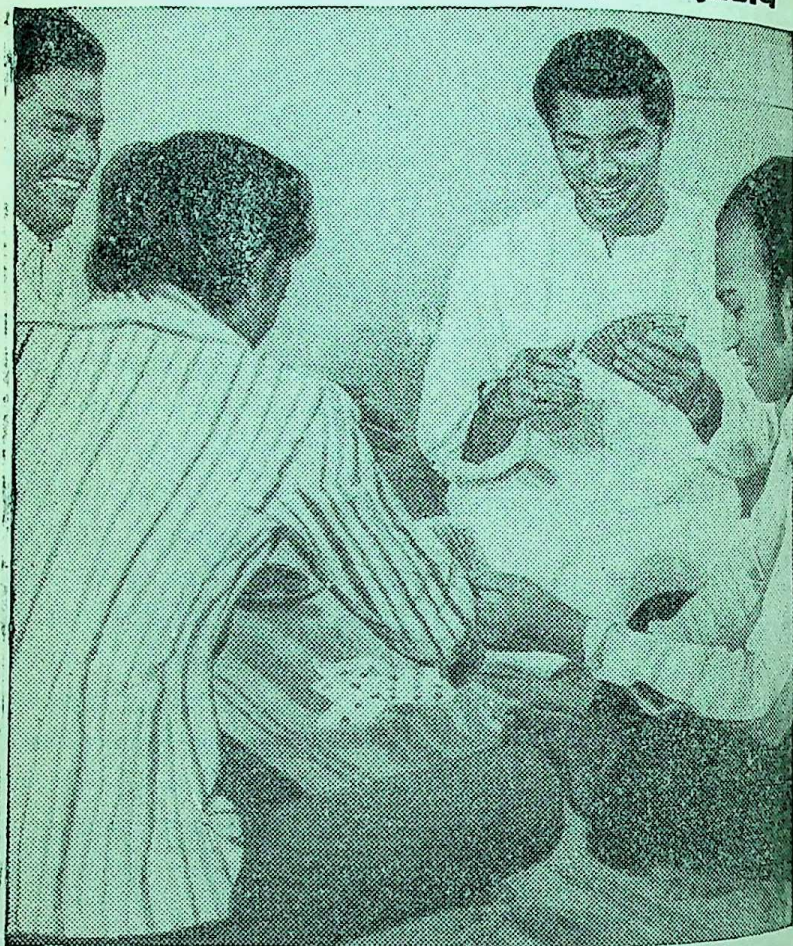
२ ऐस्प्रो लीजिये
ASPRO
ASPRO
ASPRO
Nicholas
माइक्रोफ़ाइन्ड ऐस्प्रो दर्द को जल्दी खींच निकालता है
A.G.62 HN

मुख्यतया उत्तरदायी ठहराते हुए यह भी कहा कि उनके कंधों पर दोष रख देने भर से हम अपनी जिम्मेदारी से बरी नहीं हो जाते, हमें समाज को बदलना होगा वरना आगे आनेवाली पीढ़ी हमें ही दोषी ठहरायेगी। अन्य सैकड़ों भारतीय युवक-युवतियों ने भी इसमें भाग लिया। बिना सैर-सपाटे, मुफ्त भोजन-निवास के आकर्षण के, अपने खर्च पर ये सब वहां जमा हुए। कैंप के दिनों में सड़क-निर्माण का कार्य और कानफ्रेंस के दौरान 'वामपंथी हिंसात्मकता और युवा-वर्ग', 'युवा और सांप्रदायिकता,' 'राष्ट्रीय पुनर्निर्माण में भारतीय युवक' तथा 'शिक्षा में क्रांति'—जैसे विषयों पर दिन-दिन भर और कभी-कभी देर रात गये तक चर्चाएं होती थीं। वहां तमिलनाडु से आये कुछ युवकों ने बताया कि उन्होंने किसी समय हिंदी-विरोधी आंदोलन में भाग लिया था, लेकिन 'तरुण शांति सेना' के आदेश पर बिहार के सूखा-ग्रस्त क्षेत्र में मदद पहुंचाने के लिए हिंदी पढ़ी और बिहार के कई परिवारों के मनचीते बन बैठे। बंबई की गंदी बस्तियों, भिवंडी व अहमदाबाद के सांप्रदायिक दंगों से ध्वस्त इलाकों और देश के अकाल-पीड़ित प्रदेशों में एक माह कड़ा परिश्रम करने के लिए तत्काल चौदह सौ अर्जियां उपस्थित हो गयी थीं।

इन युवक-युवतियों के प्रेरणा-स्रोत द्वितीय महायुद्ध के पूर्ववर्ती क्रांति-आंदोलन थे। इनका मानसिक भाईचारा पेरिस के लैटिन क्षेत्रों, प्राग के वेंसेस्टाज स्क्वेयर और अमरीकी विश्वविद्यालय के कैंपस से है।

आश्चर्य है कि युवा-वर्ग इस तरह की दिशाएं और अपने असंतोष के निकास के ऐसे सृजनात्मक मार्ग अधिकाधिक नहीं खोज रहा। वह असंतुष्ट है, लेकिन उस असंतोष के कारण को दूर करने का उपाय न जानता है, न जानने का पूरा प्रयत्न करता है। चारों तरफ की दलदल में वह धंसता जाता है, बल्कि उस दलदल को बढ़ाने में मदद करता है, घटाने में नहीं। उसने एक अजीब पलायन और हताशा की भावना का वरण कर लिया है। यह सही है कि छाया हुआ अंधकार बहुत घना है और अकसर युवक स्वयं को अकेला और बेसहारा महसूस करता है। 'मैं अकेला क्या कर लूंगा' की भावना से 'जाने दो, सब चलता है' की मनःस्थिति सिर्फ एक कदम के फासले पर है। यह पलायनवाद अपेक्षाकृत आसान है। ऐसे में जब व्यक्ति अवसरवादी होकर अपने स्वार्थ के लिए सारी शक्तियों को मोड़ देता है तब कहीं अटकाव आने पर उसका रोष पूरी तरह से एकांतिक और पाशविक हो जाता है। उसे विद्रोह नहीं कहा जा सकता। परिस्थितियों से अकेले जूझने का प्रयत्न कविता, कहानी, चित्र, संगीत और मूर्ति—जैसी कलाओं में उभरता है, लेकिन वह विद्रोह अकेले का होने के कारण शुद्ध सृजनात्मक होते हुए भी आत्मा में, अपने

आशय में, रचनात्मक नहीं हो पाता। इसीलिए युवा विद्रोह को रचनात्मक होने के लिए सामूहिक होना पड़ता है, समाजोन्मुख होना पड़ता है।

भारत–जैसे देश में जहां काम के असंख्य क्षेत्र खुले हुए हैं, युवा-वर्ग को दिशाहीनता का अनभव क्यों हो—समझ में नहीं आता। शायद इसलिए कि काम ज्यादा भारी, इतना ज्यादा विशाल और उलझा हुआ है कि वह शुरू करने से पहले ही हार मान लेता है या कभी-कभी विदेशी युवक की तर्ज पर अपना विद्रोह प्रकट कर अपने खून के उबाल को शांत कर लेना चाहता है। सारे उहापोह के बाद तथ्य यह निकलता है कि उसके रोष और विद्रोह को रचनात्मक दिशा देनेवाला कोई चाहिए। वह 'कोई' सरकार हो, युवा-नेता, माता-पिता, प्राध्यापक या फिर सब मिलकर इस ओर जुट जाएं। उसे वाद-विवाद, संलाप, विचार-विमर्श, यहां तक कि प्रलाप के लिए मंच चाहिए, उसे पठन-पाठन की अधिकाधिक सुविधा चाहिए ताकि वह मानस-मंथन कर सके, उसे लेखन का अधिकार चाहिए, सृजनात्मक लेखन और पत्रकारिता के लिए अवसर चाहिए। हाथ से काम करने की मजबूरी और खेल की तन्मयता चाहिए। एन. सी. सी., एन. एस. एस. और एन. एस. ओ.–जैसी स्कीमों का प्रचार और प्रसार इतना हो कि केवल विद्यार्थी ही नहीं, हर युवक और हर युवती इससे अनिवार्यतः लाभ उठा सके। सबसे बड़ी बात यह है कि युवा-वर्ग में भविष्य के प्रति आस्था और उससे भी ज्यादा भविष्य-निर्माण में अपनी शक्ति के प्रति आस्था उत्पन्न हो। यह तभी होगा जब तत्कालीन समस्याओं के प्रति वह संलग्नता महसूस करेगा। इस संदर्भ में युवा-सेवा-संघ–जैसी योजनाएं लाभकारी हो सकती हैं ताकि युवा-वर्ग आलोचना के साथ-साथ रचना भी करना सीख जाए। अनपढ़ों की शिक्षा, कुओं की खुदाई, सड़कों और पुलों के निर्माण, बीमार और असहायों की सहायता—सब कार्यों में युवकों की मदद अपेक्षित है। रूढ़ियों से छलनी हुए देश का उपकार युवक नहीं करेंगे तो और कौन करेगा? दहेज के अब तक चलन का उत्तरदायित्व सिर्फ युवकों पर है। भ्रष्टाचार का बोलबाला सिर्फ युवकों की कायरता के कारण है। जब सरसों के तेल में मिलावट के कारण बस्ती-की-बस्ती अपंग हो गयी है तब युवा विद्रोह देखने में क्यों नहीं आता? जब तक दूसरे की समस्या में अपनी समस्या का गठबंधन युवा-वर्ग नहीं देख पाएगा और जब तक उस समस्या का इलाज मांग कर नहीं, बल्कि दवा खोजकर, पीसकर, लगाकर नहीं करेगा, तब तक युवा विद्रोह की सार्थकता पर अकर्मण्यता का भारी पत्थर रखा रहेगा।

—एफ १८, पश्चिमी निजामुद्दीन
नयी दिल्ली-११००१३

सौभाग्य

जी हां
भाग्य सौ होते हैं
तभी तो
'सौ+भाग्यवती भव'
कहते हैं

दुर्भाग्य

भाग्य
जब दूर भाग जाता है
दुर+भाग्य
बन जाता है

—मोहिनी जोशी

नया लेखक

कुंठा और संत्रास
का मारा—
नया लेखक बोला—
'बड़ी पत्रिकाओं में छपने का
मोह नहीं पालूंगा—
इस बार यदि रचना लौटी
लघु पत्रिका निकालूंगा'

—राजा दुबे

भूखे व्यक्ति

आपको आशावादी बनाये रखने
के लिए
रोटी के टुकड़े-जैसी कोई भी
वस्तु नहीं है, क्योंकि
निराशावादी सदा ही
भूखे व्यक्ति होते हैं

—उषाप्रभा साने

सभ्यता

सभ्यता के शिखर पर चढ़ा आदमी
जीवित पिता से कहता है
'डैड' और मा से 'ममी'

—प्रदीप चौबे

सपने

सपने बुनने में बीत गया
पूरा जीवन
सपने टूटने में लेकिन
लगा न एक भी क्षण

—अरुणा शास्त्री

संसार की प्रसिद्ध जासूस महिलाएं

● सुरजीत

माताहारी बीसवीं सदी की सबसे प्रसिद्ध जासूस मानी जाती है। १८७६ में वह हालैंड के एक मध्यवर्गीय परिवार में पैदा हुई थी। उसने कानवेंट स्कूल में शिक्षा पायी, वहीं नाचना सीखा और फिर उम्र भर नाचती रही—बल्कि, दुनिया को अपने इशारों पर नचाती रही। उसने हालैंड के एक सैनिक अफसर मक्लोड से शादी की। उसके एक बेटी और एक बेटा पैदा हुआ। दोनों की ही हत्या कर दी गयी थी। बेटे के हत्यारे को तो उसने बड़ी निर्ममता से मौत के घाट उतारा, पर कानून के हाथ न आयी। इसके बाद उसको घरेलू जीवन से घृणा हो गयी। उसने मक्लोड से तलाक ले लिया। इसके बाद वह लंदन, पेरिस, जरमनी, फ्रांस और मैड्रिड के शाही होटलों और रात्रि क्लबों में गयी। नर्तकी के रूप में उसने बड़ी ख्याति प्राप्त की, फिर प्रथम महायुद्ध के दौरान उसने जासूसी का काम किया। उसने जरमनों के लिए भी जासूसी की और फ्रांसीसियों के लिए भी। उसे कई देशों के महत्त्वपूर्ण भेद मालूम थे। वह एक भेद बताने पर दस लाख फ्रांक लेती थी।

माताहारी पेशवर नर्तकी थी। बड़े-बड़े सैनिक अफसरों के सामने जब वह नाचती तब वे मदमस्त हो जाते और वह उनसे अनेक भेद मालूम कर लेती। अंत में वह पकड़ी गयी। फ्रांस की अदालत ने उसे मृत्युदंड दिया। १३ अक्तूबर, १९१७ को जब उसे मृत्युदंड दिया जाना था तब वह गहरी नींद में थी। उसे न कोई यातना थी, न दु:ख, न चिंता। आखिर जल्लाद आ पहुंचे। माताहारी को 'फांसीघर' में पेड़ से बांध दिया गया। निशाना बांधा गया। संरक्षक अधिकारी नंगी तलवार लिये खड़ा था। उसने तलवार हिलायी। गोलियां चलीं और वह सुगंधित गोला सदा के लिए ठंडा पड़ गया।

मर्थी रचर

मर्थी रचर ने एक फ्रांसीसी फौजी अफसर से शादी की थी, जो १९१६ में मारा गया और वह अकेली रह गयी। वह फ्रांस के गुप्तचर विभाग के मुखिया कप्तान लारोस को जानती थी। लारोस ने उसमें प्रथम श्रेणी की जासूस बनने की योग्यता पायी। अतः उसने उसे इस

काम पर नियुक्त कर दिया।

मर्थी बहुत सफल जासूस सिद्ध हुई। उसने कई कारनामे कर दिखाये, जिनमें से एक यह था कि उसने जरमन जासूसों का वह गोपनीय रास्ता ढूंढ़ निकाला जिसे वे फ्रांस में दाखिल होने के लिए काम में लाते थे।

महायुद्ध समाप्त होने पर वह फ्रांस आ गयी, पर फ्रांस उसका आभारी न हुआ। गुप्तचर विभाग ने इस बात को स्वीकार किया कि उसकी सेवाएं इतनी प्रशंसनीय थीं कि वह उच्च फ्रांसीसी सम्मान की अधिकारी थी, पर कार्य रूप में उसको कुछ न दिया। आखिर मर्थी बहुत निराश हुई और फ्रांस को अलविदा कहकर इंगलैंड चली गयी। यहां उसने विवाह कर लिया और संतोष व सुख का जीवन व्यतीत करने लगी। फ्रांस ने उससे दुर्व्यवहार किया था, फिर भी वह अपने मन में आश्वस्त थी कि उसने बड़ी कुशलता व वफ़ादारी के साथ देश की सेवा की है। आखिर १९३३ में फ्रांस ने उसकी सेवाओं को स्वीकार करके उसे देश का सबसे बड़ा सम्मान प्रदान किया।

मेरिया डी विक्टोरिया

मेरिया एक धनी स्त्री थी, जो जरमनी के एक सम्मानित परिवार से संबंध रखती थी। १९१६ में इधर महायुद्ध छिड़ा उधर उसे एक महत्त्वपूर्ण काम के लिए चुन लिया गया और ऐंटवर्प की प्रशिक्षण-शाला में प्रविष्ट कर दिया गया। जब वहां से निकली तो ध्वंसकारी कारवाइयों और जासूसी के लिए अमरीका भेज दिया गया। अमरीका में उसे खासी सफलता मिली। वह अति शीघ्र अजनबी देश के

सौंदर्य और चालाकी के लिए प्रख्यात माताहारी

स्वभाव से अवगत हो गयी। ब्रिटेन के गुप्तचर विभाग ने मेरिया के बारे में सचेत किया था कि उसका काम करने का ढंग यह है कि वह स्विट्जरलैंड से मूर्तियां मंगवाती हैं, जिनमें नयी किस्म का बहुत ही शक्तिशाली बारूद भरा होता है और इन मूर्तियों को वह अपने साथियों को दे देती है।

काफी दिनों तक पीछा करने के बाद अमरीकी पुलिस ने मेरिया को हिरासत में ले लिया। दिन-रात की रंगीन महफिलों

विलासिता और मदिरापान की अधिकता ने उसका स्वास्थ्य नष्ट कर दिया था। नशे की लत ने उसे रोगी बना दिया था। १९२० में लंबी बीमारी के बाद वह कारागार में ही मर गयी।

बांदा

बांदा यूरेशियाई नस्ल की थी। उसका पिता इंडोनेशिया का रहनेवाला था और मां यूरोपीय थी। बांदा बीस वर्ष की ही थी कि उसने हालैंड के एक साठ-वर्षीय रईस से शादी कर ली। वह जल्दी ही मर गया और उसकी सारी दौलत बांदा के हाथ आ गयी। १९३९ में जब यूरोप महायुद्ध की लपेट में था तब उसने जापान और इंडोनेशिया की दो-तरफा जासूसी शुरू कर दी। चीन की साम्यवादी सेना और रूसी बारूद के बारे में भी वह अमरीकियों को सूचित करती रही और कोरिया के युद्ध में उसने जासूसी की।

कोरिया में उसके भाग्य का पांसा पलट गया। वह उत्तरी कोरिया में काम कर रही थी कि एक ऐसे व्यक्ति से उसकी मुलाकात हुई जो कभी जावा में उसके अधीन काम करता था। वह बांदा की करतूतों से अच्छी तरह परिचित था। उसने बांदा का भंडाफोड़ कर दिया। वह गिरफ्तार कर ली गयी और तत्काल उसे गोली मार दी गयी।

रूथ क्वीन

रूथ क्वीन खानदानी जासूस थी। पर्ल हार्बर के कारनामे में उसकी जासूसी का बहुत बड़ा हाथ था। उसका घर समुद्र-तट के निकट था। उसकी छत ढालू थी। उसमें एक खिड़की थी, जो समुद्र में मीलों दूर से दिखायी देती थी, उस खिड़की से वह जासूसी का काम लेती थी। पर्ल हार्बर पर जापानियों का हमला उसने कराया था जिसमें तीन हजार अमरीकी मारे गये थे। दो युद्धपोत डूब गये थे तथा तीन को बुरी तरह नुकसान पहुंचा था। इसके अलावा नष्ट किये गये विमानों और हलके समुद्री जहाजों की तो कोई गिनती ही न थी। रूथ अपनी खिड़की से टार्च की रोशनी फेंक-फेंककर जापानी बमवर्षकों का पथप्रदर्शन कर रही थी। हमले के बाद रूथ और उसके घरवालों ने भागना चाहा, किंतु भाग न सके। सबको अमरीकियों ने पकड़ लिया। रूथ के पिता को मौत की सजा सुनायी गयी। उसकी मां को बाद में जरमनी भेज दिया गया।

मेटलडा कार

मेटलडा कार ने द्वितीय महायुद्ध में जासूसी की थी। वह मध्यवर्गीय परिवार में पैदा हुई थी। उसका पिता इंजीनियर था। कार बड़ी होशियार छात्रा समझी जाती थी। उसने मोरेस नामक एक शिक्षक से विवाह किया। उसके साथ वह चली गयी और स्वयं भी शिक्षिका बन गयी, पर यह शादी असफल रही। १९४१ तक उसने फ्रांस के लिए जासूसी की। उसने जो गुप्त सेवाएं राष्ट्रीय गुप्त आंदोलन के आरंभ में की थी, उनसे फ्रांस संतुष्ट

था, पर वह उसके उन विरोधी कार्यों पर भी विचार करने पर तुला हुआ था जो उसने ब्लेचर के उकसाने पर किये थे। आखिर अदालत ने उसे मृत्युदंड का आदेश सुनाया, जो बाद में आजीवन-कारावास में बदल दिया गया, पर १९५४ में उसे रिहा कर दिया गया। इस प्रकार मेटलडा किसी ओर की न रही। इसके बाद उसके जीवन में शांति न रही। वह एकांत में कुढ़-कुढ़कर जीती रही।

क्रिस्टीन ग्रीनवेल

इस स्त्री का असली नाम क्रिस्टीना स्टार था, किंतु इंगलैंड में क्रिस्टीन ग्रीनवेल के नाम से प्रसिद्ध थी। क्रिस्टीन न केवल सुंदर थी, बल्कि बला की साहसी भी थी। युद्ध के दिनों में उसने शत्रु की पंक्तियों में ध्वंसकारी कारवाइयां कीं और गुप्त आंदोलन में लोकप्रिय स्थान पैदा किया।

क्रिस्टीन को असाधारण सफलता मिली। उसके कारनामों को सराहा गया और उसे सम्मानित किया गया। क्रिस्टीन पोलैंड के एक प्राचीन परिवार में पैदा हुई थी, जो पोलैंड और रूस के किसी सीमांत प्रदेश पर रहता था। उसका बचपन बड़ी कठिनाइयों में बीता, जिसके कारण उसका स्वभाव कठोर हो गया था, पर उसकी स्वभाविक सुंदरता कायम थी। वह पोलैंड की सौंदर्य-महारानी भी रह चुकी थी। जब जरमनों ने पोलैंड पर हमला किया था तब उसका पति मर गया और

जूली कापलनि : प्रेम के लिए अपने देश अमरीका के विरुद्ध जासूसी की

क्रिस्टीन अकेली रह गयी।

क्रिस्टीन और उसके दो साथियों को जासूसी के अभियोग में पकड़ा गया। गोली मारे जाने में जब तीन घंटे रह गये थे तब क्रिस्टीन ने एक चाल चली, जो सफल रही और वह रिहा हो गयी।

इसके बाद उसकी आर्थिक दशा बहुत खराब हो गयी और उसने एक जहाज पर नौकरी कर ली। उन्हीं दिनों डेनिस जार्ज नामक व्यक्ति बुरी तरह उसके प्रेम में फंस गया, किंतु क्रिस्टीन उससे कतराने लगी। तब जार्ज ने एक दिन उसे चाकू भोंककर मार दिया। इस अपराध में जार्ज को भी फांसी दे दी गयी।

संथिया

इसका नाम एमी एलीजबेथ पैक था, पर

सर्दी-ज़ुकाम और फ़्लू का हमला और उसका मुकाबला

आपके लिए कुछ ज़रूरी बातें

"मैंने एनासिन को बहुत गुणकारी पाया है," नर्स एंजेला फ़र्नान्डेस का बयान है।

इन्होंने यही देखा है कि एनासिन सर्दी-ज़ुकाम और फ़्लू की पीड़ा से जल्द आराम दिलाने के लिए काफ़ी तेज़ असर है।

सर्दी-ज़ुकाम और फ़्लू कैसे होते हैं?
ये छूत से फैलने वाले उस विष से होते हैं, जो इन रोगों में ग्रस्त लोगों से हवा में फैलता है। आम तौर से शरीर में उसके मुकाबले की शक्ति होती है। परन्तु ज्यादा मेहनत या कम ख़ूराक के कारण शरीर में कमज़ोरी आ जाती है और रोग के मुकाबले की शक्ति कम हो जाती है।

रोग लक्षण क्या हैं?
बदन का दर्द, सर का भारीपन, छींकें आना और नाक बहना, जिसके साथ अक्सर कँपकँपी छूटती है, बेचैनी महसूस होती है और पसीना आता है। उसके बाद खाँसी, गले की ख़राबी, भूख की कमी और थकावट की शिकायत हो सकती है।

क्या इस से और तकलीफ़ें भी हो सकती हैं?
यदि लापरवाही बरती जाय तो निमोनिया और साँस की ऊपरी नाली में छूत का असर हो सकता है।

एनासिन कैसे सहायक होती है?
एनासिन सर्दी-ज़ुकाम और फ़्लू की पीड़ा से आराम दिलाती है। एनासिन तेज असर है- क्योंकि इस में वह दर्द-निवारक दवा ज्यादा है जिसकी दुनिया-भर के डॉक्टरे सब से ज्यादा सिफ़ारिश करते हैं। एनासिन पर लाखों लोगों को विश्वास है- क्योंकि यह आपके डॉक्टर की दवा की तरह दवाओं का नपा-तुला सम्मिश्रण है। सर्दी-ज़ुकाम या फ़्लू के पहले लक्षण देखते ही दिन में चार बार एनासिन लीजिए।

आपको और क्या करना चाहिए?
- उबाला हुआ पानी, सन्तरे या मौसंबी का रस और पीने के दूसरे पदार्थ काफ़ी पीजिए।
- पौष्टिक आहार खाइए।
- पूरा आराम कीजिए।
- पानी में ऐंटिसेप्टिक दवा या नमक डालकर ग़रारे कीजिए।
- कमरों को हवादार रखिए।

तेज़ असर और विश्वसनीय

भारत की सब से लोकप्रिय दर्द-निवारक दवा

Regd. User of TM: Geoffrey Manners & Co., Ltd.

जासूसी संसार में संथिया के नाम से जानी जाती है। वह अमरीका में पैदा हुई और ब्रिटिश राजदूत से शादी की। वह शरीर बेचकर शत्रुओं के बारे में जानकारी प्राप्त करती थी। उसका कहना था—"देश पर बलिदान होने के लिए हर समय तैयार रहना चाहिए। युद्ध में सब कुछ उचित है। शत्रु पर विजय पाने के लिए जो कुछ भी किया जाए, ठीक है।"

संथिया द्वितीय महायुद्ध में ब्रिटेन के लिए जासूसी करती रही। उसने दो बड़े काम किये। इतालवी, जरमन और फ्रांसीसी नौसेना के संदेश-प्रेषण की गुप्त भाषा का पता चलाया। इस संबंध में उसे अपना बलिदान भी देना पड़ा। उसने प्राग में जरमन नेता के यहां से वह मूल्यवान नक्शा चुराया जिसमें चैकोस्लोवाकिया के टुकड़े-टुकड़े कर देने की योजना थी। युद्ध के बाद उसने एक फ्रांसीसी राजदूत से शादी कर ली। फिर कैंसर के रोग में ग्रस्त हो गयी और ५३ वर्ष की आयु में १९६३ में मर गयी।

नूर इनायत खां

द्वितीय महायुद्ध में जिन साहसी महिलाओं ने जासूसी के क्षेत्र में ख्याति प्राप्त की, उनमें नूर इनायत खां एक थी। वह रेडियो-आपरेटर थी। मैसूर के टीपू सुलतान के परिवार से संबंध रखती थी। उसका जन्म रूस में हुआ था। जीवन का अधिकांश भाग उसने फ्रांस में बिताया और बच्चों के लिए कहानियां लिखती रही। उसका व्यक्तित्व बड़ा आकर्षक था। अंगरेजों ने उसे जासूसी में प्रशिक्षित किया। उसे दो जासूस स्त्रियों के साथ जन १९४३ में जहाज से फ्रांस भेजा गया, जहां यह वायरलेस के द्वारा लंदन संदेश भेजती थी। अक्तूबर १९४३ में रैनी-गीरी नामक स्त्री ने इसको पकड़वा दिया। नाजियों ने नर को उसके फ्लैट में पकड़ा। उसने नाजियों की कैद से भागने का प्रयास भी किया, किंतु असफल रही। आखिर एक दिन नूर और अन्य चार जासूस स्त्रियों को हिटलर के निर्देश पर गोली मार दी गयी। ●

कोलाहल

• दीप्ति खंडेलवाल

यूनीवर्सिटी सिंडीकेट की विशेष बैठक अचानक बुलायी गयी थी। भवन के भीतर मीटिंग चल रही थी। भवन के बाहर, झुंड के झुंड, वे खड़े थे।

भवन के भव्य द्वार आधे खुले थे, आधे बंद। मीटिंग करते वे सोच रहे थे—हमने दरवाजे बंद तो करवा दिये हैं। बाहर खड़े वे कह रहे थे—दरवाजे बंद कहां हैं? और अगर हैं भी तो हम चाहें तो इन्हें अभी खुलवा सकते हैं।

आज से परीक्षाएं आरंभ होनेवाली थीं, लेकिन उन्होंने परीक्षाएं देने से इनकार कर दिया था। उनके तेवर चढ़े हुए थे। उनके हाथों में परचे थे—'अभी हम परीक्षाओं के लिए तैयार नहीं, परीक्षाएं स्थगित की जाएं। जिनकी अटेंडेंस फॉर्टी परसेंट भी है, उन्हें परीक्षा देने दी जाए। परीक्षा-भवन में इनविजीलेटर्स की कोई जरूरत नहीं है—हम अपनी जिम्मेदारी समझते हैं। परीक्षा-भवन के बाहर पुलिस क्यों है—इसे हटाया जाए, यह हमारा अपमान है।'

अप्रैल के उस गरम दिन की हवा के तेवर भी चढ़े हुए थे। वातावरण में एक तनाव था—टूटने के पहले का तनाव।

विश्वविद्यालय के भवन की भव्य प्राचीरें मौन थीं। उन प्राचीरों पर शिक्षा की जिस गुरुता का भार था, वह गुरुता लड़खड़ा रही थी। और इंसपेक्टर सोच रहे थे—कैसी विचित्र ड्यूटी है यह कि वे शिक्षा-भवन में शांति कायम करने के लिए बुलाये गये हैं—उस शिक्षा-भवन में जहां 'मॉरल' सिखाये जाते हैं!

एक सीनियर इंसपेक्टर जूनियर के कान पर झुके, "देखो सूद, इन्हें देखो! ऐसा लगता है जैसे नानी से डाकू की कहानी सुनते-सुनते ये शौक में डाकू बन गये हों।"

जूनियर बेल्ट और कसते हुए हंसा, "और ये अपने को विद्रोही कहते हैं। 'सर', ऐसा लगता है जैसे हम कोई फिल्म देख रहे हों—द रिबेल्स!" सूद ने खलकर एक ठहाका लगाया।

"ओ नो! इतनी जोर से मत हंसो।

वे भड़क जाएंगे।" सीनियर की आवाज धीमी हो गयी, "जानते हो सूद, इनका लीडर मेरा भानजा है—दिवाकर। मेरी बहन का इकलौता बेटा। वो खड़ा है, उस गोरी-सी लड़की के साथ।"

सहसा किसी गार्ड के हाथ से गलती से हवा में एक फायर हो गया। भवन के कंगूरों पर बैठे कबूतरों का झुंड फड़-फड़ाकर उड़ गया। वे कबूतर हवा में चक्कर काटने लगे। सीनियर दौड़े, उस गार्ड को कसकर एक तमाचा लगाया, "यू ईडियट, क्या करता है!"

सूद भी दौड़ा, रुका, मुड़कर उन्हें देखने लगा, उनकी मुट्ठियां कस गयी थीं, जैसे यह फायर उनके अपमान का प्रमाण हो। उनके बीच कोलाहल होने लगा था। मॉड रंगबिरंगी पोशाकों में, उनके निर्दोष युवा चेहरे लाल हो रहे थे। 'वाह रे विद्रोही! क्या पोशाकें हैं और क्या क्रांति है! जिओ बादशाओ!' सूद को फिर जोर से हंसी आने को हुई, लेकिन आंखें सिर के ऊपर फड़फड़ाकर उड़ते कबूतरों को देखने लगीं।

माधवानी, आत्माराम, आशीष और नीरज का ग्रुप कॉलेज में प्रसिद्ध था। अंजना देसाई भी इस प्रसिद्धि में गुंथी रहती थी।

"ओ माई गॉड, यह साली मीटिंग कब तक चलेगी? मार्निंग शो का टाइम तो गया समझो।" माधवानी ने अपने

दीप्ति खंडेलवाल : 'कादम्बिनी' की सुपरिचित लेखिका । जन्म २१ अक्तूबर, १९३० सिकंदराबाद में । अपनी दीर्घ अस्वस्थता के कारण वे इंटरमीडिएट के बाद शिक्षा न प्राप्त कर सकीं । पहली कहानी 'जिंदगी' १९६८ में 'नयी कहानियां' के महिला कथाकार विशेषांक में प्रकाशित । कथा-लेखिका दीप्ति खंडेलवाल का कहना है, "कहानी में युग, मानवता अथवा स्वयं के प्रति कोई प्रतिश्रुति होनी चाहिए। सत्य की प्रतिध्वनि, सौंदर्य की प्रतिच्छबि या चेतना का कोई संघर्ष अनिवार्य है ।"

होठों के कोनों पर झुकी मूछों पर अंगुलियां फेरीं।

आशीष पैंट की क्रीज ठीक कर रहा था। क्रीज जरा भी बिगड़े तो वह स्वयं ढीला महसूस करने लगता है, "मार्निंग शो न सही, मैटिनी सही, मिस अंजना तो साथ रहेंगी ही।"

अंजना ने अपने कंधे तक कटे बालों को एक झटका दिया। बेल-बॉटम और शर्ट में कसी देह के उभार स्पष्ट थे।

"व्हाई नॉट, मैं किसी भी शो के लिए तैयार हूं। आई केअर ए डैम फिग फॉर एनीथिंग।" अंजना सीटी बजाने लगी थी।

"वाह, क्या माहौल है! समझ में नहीं आता इसमें सच क्या है!

"सच . . . सच तो कुछ भी नहीं है। सच तो हम तुम भी नहीं हैं प्यारे!" तीसरे ने कहा और जोर से हंस पड़ा। सब हंसने लगे थे। केवल एक चेहरा खामोश था। उस झुंड में वह अकेलापन महसूस कर रहा था। वह हरजीत था।

वे देर तक हंसते रहे। उस हंसी के बीच एक स्वर उभरा, हरजीत कह रहा था, "दोस्तो, आपने बहुत ठीक बात कही है कि सच तो हम तुम भी नहीं हैं!"

"लो, शुरू हो गये हमारे फिलॉसफर साहब! फिलॉसफी अपनी जगह है, जिंदगी अपनी जगह।" किसी और ने उतनी ही जोर से चीखकर कहा।

"जी नहीं, आप जिंदगी को गलत समझ रहे हैं। एक मिनट रुककर सोचिए कि आप क्या कर रहे हैं, क्यों कर रहे है!" हरजीत ने जैसे जोर लगाकर कहा।

'क्या, क्यों, कैसे का कोई सवाल

हमारे लिए नहीं है। बस, हम जो चाहते हैं, मिलना चाहिए।" एक जवाब आया।

हरजीत दो कदम बढ़कर उनके बीच में खड़ा हो गया, "जी हां, जरूर मिलना चाहिए . . . आप एक वाक्य में तीन गलतियां करते हैं और यही रफ्तार रही तो आप के बच्चे इतनी गलतियां करेंगे कि सारा वाक्य ही गलत हो जाएगा।"

"हमारे बच्चे होंगे ही नहीं। वी नो फैमिली प्लानिंग।" किसी ने ताली पीटकर कहा।

"हियर हियर!" वे सब तालियां पीटने लगे थे।

उन तालियों के बीच हरजीत कहे जा रहा था, "यह गलत है दोस्तो, आप एक शोर में खो गये हैं। बातों को ठीक करने की जगह आप उनका मजाक बनाने लगे हैं। किसी भी तरफ चल पड़ना 'प्रोग्रेस' नहीं है, 'प्रोग्रेस' के लिए राह और मंजिल होनी चाहिए, जरा सोचिए।"

"अरे भई, सोचकर, समझकर क्या होगा?" दूसरा बोला।

"और, आजकल कालेजों में पढ़ाई भी कहां होती है! एक मजाक होता है। जरा याद कीजिए, हिस्ट्री के प्रोफसर शर्मा ने पूरे एक साल में कितने क्लास लिये हैं?—सिर्फ तीन। और डेढ़-डेढ़ हजार तनखाह हर महीने उठायी है . . . यह फ्रॉड नहीं तो क्या है?" विनोद दांत पीसने लगा था।

हरजीत ने प्रतिवाद की एक कोशिश

और की, "आप डॉ. गुप्ता को क्यों भूल जाते हैं? वे भी तो हमारे टीचर हैं। उन्होंने कभी कोई क्लास मिस की? कभी कोई गलत काम किया?"

आशीष ने एक ठहाका लगाया, "तभी तो डॉ. गुप्ता सिर्फ लेक्चरर ही बने हुए हैं, रीडर तक नहीं बन सके।"

"चलो हटाओ यारो! उधर देखो, दिवाकर ऐंड मिस रीता। दे फार्म ए हैंडसम कपल!" आशीष ने इशारा किया।

वे चले गये, हरजीत अकेला खड़ा रह गया—खामोश।

एक ऊंचे टीले पर, गुलमोहर के पेड़ के नीचे दिवाकर और मिस रीता खड़े थे।

"तो तुम्हारा निश्चय है कि तुम एअर होस्टेस ही बनोगी?" दिवाकर पूछ रहा था।

"ओ दिवाकर डियर! तुम बार-बार एक ही बात क्यों पूछते हो? मैंने कहा न, मैं आजाद रहना चाहती हूं और आजादी के लिए हवा में उड़ने से अच्छा दूसरा रास्ता नहीं।"

उस तेज धूप में, गुलमोहर के लाल-लाल फूलों से लदे पेड़ के नीचे मिस रीता के गुलाबी कपोल लाल हो उठे थे। एक कचोट-सी दिवाकर के मन से उठकर होंठों तक आयी। उसने होंठ भींच लिये।

एक चपरासी आकर कह रहा था, "साहब, आपको अंदर बुलाया है।"

दिवाकर चौंक गया। गुलमोहर के लाल-लाल फूल, मिस रीता . . . नीचे खड़ी भीड़, शोर . . . और फैसले का यह दिन! वह जानता था कि फैसला उनके हक में होगा . . . एक कचोट-सी उसके भीतर फिर उठी, जैसी अभी गुल-मोहर के उन लाल फूलों के बीच मिस रीता को देखकर उठी थी . . . क्या वह स्वयं भी जो कर रहा है, उसका अर्थ समझता है . . ? अर्थ . . . दिवा-कर ने मन के होठों पर अंगुली रख दी . . . 'बाय रीता,' वह तेजी से टीले से उतरता, बढ़ गया। दिवाकर की रगों में खून गरम हो उठा था, बहुत गरम...।

सिंडीकेट-रूम में प्रवेश करते दिवा-कर के पैर पल भर के लिए कांपे। उसने देखा, अंडाकार मेज के गिर्द वे पंद्रह खामोश बैठे थे। मेज के एक सिरे पर बैठे वी. सी. खामोशी की प्रतिमूर्ति से लग रहे थे। दिवाकर पल भर के लिए उनके सफेद बालों पर द्रवित-सा हो आया। उसके दादाजी भी तो ठीक ऐसे ही लगते हैं! सफेद बालोंवाला उनका मुख जब खामोश हो जाता है तब दिवाकर उस खामोशी को नहीं सह पाता, वहां से हट जाता है। जाने कैसे त्रासदी-सी होती है सफेद बालों-वाली उस खामोशी में! दिवाकर उनकी ताड़ना सह लेता है, उस ताड़ना के प्रत्यु-त्तर में, ईंट के जवाब में पत्थर भी फेंक लेता है, लेकिन यह खामोशी उससे नहीं झेली जाती।

दिवाकर ने वी. सी. के मुख से दृष्टि हटा ली और कोई ऐसा मुख खोजने लगा जो उसके अपने मुख के निकट हो-उद्धत, आक्रामक, विद्रोही! दिवाकर ने देखा, ऐसा केवल एक ही मुख वहां था—प्रभाकरजी का। प्रभाकरजी हिंदी के अध्यापक ही नहीं, कवि भी थे। प्रभाकरजी का दृष्टिकोण भी आक्रामक था—वे भी मूल्यों पर, पद्धतियों पर जमकर प्रहार करते। दिवाकर को प्रायः लगता कि प्रभाकरजी में और उसमें कहीं साम्य है।

दिवाकर ने प्रभाकरजी के मुख पर दृष्टि स्थिर की। उसने देखा कि उनकी दृष्टि भी उसके मुख पर केंद्रित है और उनकी उस दृष्टि से चिनगारियां झर रही हैं।

"सर, आप आज्ञा दें तो मैं श्री दिवाकर से कुछ पूछना चाहूंगा।" प्रभा-

करजी ने वी. सी. की अनुमति चाही। वी. सी. ने संकेत से अनुमति दे दी।

वही चिनगारियां झरती दृष्टि दिवाकर के मुख पर निवद्ध कर प्रभाकरजी बोले, "आपके और मेरे नाम का अर्थ एक ही है, आप जानते होंगे।"

"जानता हूं, आप और मैं दोनों सूर्य हैं।" दिवाकर उद्धत हो उठा।

"तो आप यह भी जानते होंगे कि सूर्य का काम केवल जलाना नहीं, वह ऊष्मा देना भी है जो जीवन बनती है!" प्रभाकरजी का मेघ-गर्जन-सा स्वर गूंजा।

"आप भी जानते होंगे कि मैं एम. एस-सी. का, यानी कि विज्ञान का, विद्यार्थी हूं और सूर्य का हर वैज्ञानिक स्वरूप पहचानता हूं। सूर्य सिर्फ आग का एक गोला है—और कुछ नहीं।"

"किंतु आग का यह गोला सिर्फ जलाने लगे तो..."

"आग का काम ही जलाना है, इसमें किंतु, परंतु क्या..." दिवाकर हंस पड़ा।

"आग का काम जीवन देना भी है। हमारे आपके शरीर में ऊष्मा न हो तो

जीवन न रहा। प्रभाकरजी की आंखों से झरती चिनगारियों में किसी ऊष्मा के स्फलिंग थे, किंतु उस ऊष्मा को स्वीकार करना दिवाकर की हार थी। दिवाकर ने विध्वंस का व्रत लिया है, निर्माण का नहीं। जिन्होंने निर्माण का व्रत लिया था, वे भी तो हारे हैं। दिवाकर उस हार को क्यों दोहराये?

गहराई में डूबने पर मोती मिलते हैं—होंगे। दिवाकर उस पीढ़ी का प्रतिनिधि है जो केवल सतह पर जीने का दर्शन जानती है। सतह पर जीने के दर्शन में बीता हुआ कल और आनेवाला कल नहीं होता—केवल सामने खड़ा आज होता है। चिनगारियां दिवाकर की आंखों से भी झर रही थीं, किंतु दिवाकर भी जानता था कि ये चिनगारियां केवल सामने खड़े क्षण के लिए हैं, प्रभाकरजी की आंखों से झरती चिनगारियों की तरह वे न बीते कल से जुड़ी हैं, न आनेवाले कल से जुड़ेंगी।

पल भर के लिए दिवाकर का जी चाहा कि वह केवल जलानेवाली आग का दर्शन नहीं, जीवन की ऊष्मा देनेवाली आग का दर्शन स्वीकार कर ले। वी. सी. के सफेद बालोंवाले खामोश मुख के सम्मुख अपने सारे शोर को समर्पित कर दे—केवल सामने खड़े क्षण के लिए नहीं, आनेवाले कल के लिए भी जीना सीख ले . . . किंतु तभी उसने सुना, बाहर से शोर आ रहा था—"दिवाकर जिंदाबाद! जल्दी बाहर आओ प्यारे!" और दिवाकर

के भीतर उठती कोई आवाज बाहर के उस शोर में डूब गयी।

"मैं कुछ नहीं सुनना चाहता। हम अपनी मांगें आपके सामने रख चुके हैं। यदि आप उन्हें सेंट-परसेंट नहीं स्वीकार करते तो याद रखिए हम ..." दिवाकर ने हवा में मुक्का उछालकर कहा।

उसको लगा, उसने कसकर प्रभाकरजी के मुख पर तमाचा मारा है। दिवाकर के भीतर कुछ उमड़ा, यह गर्व है या ग्लानि—वह निश्चय न कर सका। दिवाकर प्रायः ऐसे ही किसी द्वंद्व से घिर जाता है—कोई फैसला नहीं कर पाता तो उस द्वंद्व को ही नकार जाता है।

प्रभाकरजी आवेश से कांपते उठ खड़े हुए। दिवाकर ने देखा, उनकी आंखों में शोले भड़कने लगे थे। अगल-बगल की कुरसीवालों ने उन्हें खींचकर बैठा लिया, वे फुसफुसा रहे थे, "लेट इट बी, मि. प्रभाकर! इट इज नो यूज।" उनके मुख और झुक गये थे।

वी. सी. ने प्रभाकरजी को उठते भी देखा था, वह फुसफुसाहट भी सुनी थी। दिवाकर ने लक्षित किया वी. सी. ने एक गहरी, ठंडी सांस ली है . . जैसे अपनी उस खामोशी को भीतर उतार लिया है। प्रकट में तनकर खड़ा दिवाकर अप्रकट में कांपने लगा था, लेकिन सतह के जिस दर्शन में वह जी रहा था, वहां किसी अप्रकट का कोई अर्थ नहीं होता। 'यह तन कर खड़ा होना ही सार्थक है उस कंपन का कोई अर्थ नहीं . . .' दिवाकर ने अपने आप से कहा और फाइल मेज पर फेंकते हुए चीखा, "इस पर साइन कर दीजिए।"

वी. सी. ने पल भर के लिए दृष्टि उठायी—वही खामोशी को पीती दृष्टि। रजिस्ट्रार ने उठकर फाइल वी. सी. के सामने रख दी। वी. सी. ने पेन निकाला, दस्तखत कर दिये, फाइल दिवाकर के हाथ में देते कहा, "प्लीज टेक इट।"

वी. सी. के हाथ से फाइल लेते दिवाकर के हाथ में फिर प्रबल कंपन उठा। "थैंक्स!" कहते दिवाकर के स्वर में भी वह कंपन उछल आया था। यह कंपन किसी जीत का है या किसी हार का? —सिंडिकेट-रूम से बाहर आते दिवाकर की सांसों में एक प्रश्न उठा, मिट गया। दिवाकर के भीतर का बहुत कुछ ऐसे ही बाहर आते-आते मिट जाता है।

सीढ़ियां उतरते दिवाकर ने फाइल हवा में हिलाकर विजय के संकेत में हाथ ऊंचे कर दिये। नीचे खड़ी छात्रों की भीड़ पागल हो उठी—"दिवाकर जिंदाबाद! जियो प्यारे!" कुछ ने बढ़कर दिवाकर को कंधों पर उठा लिया था। वे उन्मत्त हो उठे थे।

. . . और बाहर के कोलाहल में दिवाकर के भीतर उठती कोई आवाज फिर डूब गयी थी।

—न्यू रीडर्स क्वार्टर नं. १९, उस्मानिया यूनीवर्सिटी, हैदराबाद-५०००0६

१. **एक** महिला बाजार से कुछ फल खरीदकर लायी। घर आने पर उसके बेटे ने पूछा, "मां, कौन-कौन से फल और कितने-कितने लायी हो?"

महिला बोली, "बेटे, मैं आठ को छोड़कर बाकी सब आम, ८ के सिवा बाकी सभी संतरे और ८ को छोड़कर बाकी सभी केले लायी हूं।"

क्या आप बता सकते हैं कि वह कुल कितने फल खरीदकर लायी थी—क. ८, ख. ९, ग. १२, घ. १६ ?

२. **निम्नलिखित** बड़े वर्ग में प्रश्न-सूचक चिह्नवाले स्थान में साथ दिये चार छोटे वर्गों में से कौन-सा वर्ग लगाना उपयुक्त होगा?
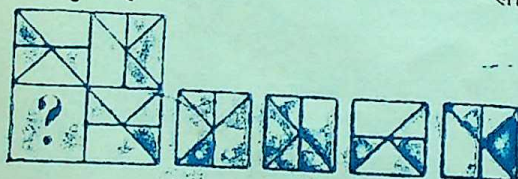
३. **सरला** सोहन की माता के एकमात्र पुत्र की पत्नी की पुत्री है। बताइए, सरला और सोहन में क्या संबंध है?

४. **एवरेस्ट** पर दो बार चढ़ने में सफल हुए व्यक्ति का क्या नाम है?

५. **क. राष्ट्रीय** फिल्म समारोह का प्रतीक क्या है?

ख. इस वर्ष अंतर्राष्ट्रीय शैक्षिक फिल्म समारोह (रोम) में भारत का कौन-सा वृत्तचित्र पुरस्कृत हुआ?

६. **भारत** के किस पहलवान ने 'रुस्तमे हिंद', 'भारत केसरी' तथा 'रुस्तमे भारत' खिताब जीते हैं? वह कहां का रहनेवाला है?

७. **निम्नलिखित** किसके संक्षिप्त रूप हैं—

क. किमलोप, ख. भाकपा, ग. कांसंद, घ. लोनिवि ?

८. **भारत** में पाइप-लाइन से लौह-खनिज भेजने की कौन-सी योजना बनी है? यह पाइप-लाइन कितनी लंबी होगी?

९. **क. क्षेत्रफल** की दृष्टि से भारत का सबसे बड़ा राज्य कौन-सा है?

ख. भारत के किस राज्य की आबादी सबसे अधिक है?

ग. किस राज्य में आबादी का घनत्व सर्वाधिक है?

१०. **क. दूसरे** एशियाई एथलेटिक्स

कहां हुए ?

ख. इसमें भारत को कुल कितने पदक मिले ? स्वर्ण-पदक कितने ?

ग. किस भारतीय ने दो स्वर्ण-पदक प्राप्त किये ?

११. निम्नलिखित के बारे में आप क्या जानते हैं—

क. बोडो, ख. मेथिलडोमा,
ग. लेटेक्स, घ. पेसमेकर ?

१२. जापान के किस मंदिर में भगवान बुद्ध की सैकड़ों वर्ष पुरानी काष्ठ की भव्य प्रतिमा है ?

१३. स्वेज नहर द्वारा जहाजों के आने-जाने से जिनोआ तथा हिंद महासागर के बीच कितने फासले की बचत हो जाती है ?

१४. दक्षिण अमरीका के किन दो देशों के पास समुद्र-तट नहीं है ?

१५. दुनिया का सबसे बड़ा परमाणु-शक्ति-चालित बिजली-संयंत्र कहां है ?

१६. निम्नलिखित घटनाएं किस सन में हुईं—

क. बर्मा में गणतंत्र की स्थापना,

अपनी बुद्धि पर जोर डालिए और यहां दिये प्रश्नों के उत्तर खोजिए। उत्तर इसी अंक में कहीं मिल जाएंगे। यदि आप सारे प्रश्नों के उत्तर दे सकें तो अपने सामान्य ज्ञान को श्रेष्ठ समझिए, आधे से अधिक में साधारण और आधे से कम में अल्प।

—संपादक

ख. लंका की स्वतंत्रता, ग. राजगोपालाचारी द्वारा भारत के गवर्नर जनरल का पद-ग्रहण ?

१७. कितने तापमान पर बर्फ पिघलना शुरू हो जाती है ?

१८. राम ने श्याम से कहा कि यदि तुम अपने रुपयों में से ३ रु. मुझे दे दो तो मेरे पास तुम्हारे पास बचे रुपयों से दो गुने रुपये हो जाएंगे। दोनों के पास मिलाकर कुल ६३६ रुपये थे। बताइए, हरेक के पास कितने रुपये थे ?

१९. वह कौन-सी संख्या है जिसमें ९ जोड़ने से योग ९ ही होता है ?

२०. किस व्यक्ति के नाम पर 'अमेरिका' नाम पड़ा है ? वह किस देश का था ?

२१. **वह** कौन-सी चिड़िया है जो 'सफेद' कमीज में छोटे-से आदमी' की तरह चलती है ?

२२. ऊपर दिये चित्र को ध्यान से देखिए और बताइए यह क्या है ? ●

क्या हम हंसना भूल गये हैं ?

● कमला रत्नम्

हंसना और मुसकराना मनुष्य की सहज प्रवृत्तियां हैं। किसी देश के साहित्य पर उसकी आर्थिक संपन्नता या विपन्नता का प्रभाव अवश्य पड़ता है, और यह प्रभाव परिलक्षित होता है उस साहित्य की हास्य-व्यंग्य विधा पर। भारतीय काव्य-शास्त्र के अनुसार शृंगार-रस के बाद हास्य-रस को प्रधान माना गया है। संस्कृत वाङमय में उत्कृष्ट हास्य के अनेक प्रसंग मिलते हैं, लेकिन अब स्थिति दूसरी है। साहित्य में सामयिकता के संदर्भ के अनुसार हिंदी के वर्तमान लेखन में हास्य-व्यंग्य की अच्छी सामग्री का अभाव-सा रहता है। एक-दो पत्रिकाएं ही ऐसी हैं जो नियमित रूप से हास्य-व्यंग्य की उत्कृष्ट सामग्री का प्रकाशन करती हैं।

हमारे शास्त्रकारों ने ही हास्य के मानवीय पक्ष की उपेक्षा करके, उसकी बहिरंग-परीक्षा पर ही अधिक ध्यान दिया है, यथा—

हासस्थायिभावको विकृतकृदालम्बनको वैकृताद्युद्दीपितो। गल्लफुल्लनाद्यनुभावितः श्रमादिसंचारितो हास्यः॥

—हास जिसका स्थायी भाव है, आलंबनविभाव जिसके विकृत हैं (जैसे सीता के प्रति रावण की आसक्ति, शिष्य की गुरु-पत्नी पर अनुरागपूर्ण दृष्टि आदि), अंग और शब्दादि की विकृति से जो उद्दीपित होता है (जैसे संस्कृत नाटकों के शकार, विदूषक आदि, लकड़ी की टांग और फूली नाकवाले सरकस के जोकर, शेक्सपियर के नाटकों के फाल्सटाफ आदि हास्य पात्र) तथा हंसते समय गाल आदि के फूल जाने से जो अनुभावित होता है, और दैन्य, श्रम आदि जिसके संचारी भाव हैं, वह हास्य है। यह हुई हास्य की शास्त्रीय परिभाषा !

संस्कृत वाङमय की परंपरा में हास्य-वाहक विदूषक होता है, जिसके लिए कहा गया है—**विकृतांगवचोवेषैः हास्यकारी विदूषकः।** विकृत अंग, वचन और वेश से विदूषक हास्य अथवा हंसी का कारण बनता है। जगन्नाथ पंडितराज ने तो स्मित, हसित, विहसित, उपहसित, अपहसित तथा अतिहसित की संज्ञा से हास्य के छह भेद भी बताये हैं। इनमें 'स्मित' (मुसकराना) जो वास्तव में अंतःहास्य है, तथा 'हसित' (निश्छल हंसी) उत्तम पुरुषों का गुण माना है। मध्यम वर्ग के पुरुषों का विनोद 'विहसित' और 'उपहसित' होता है, अर्थात किसी दूसरे

की हंसी उड़ाना अथवा उसे अपमानित करके उसकी खिल्ली उड़ाना। तीसरे प्रकार का हास्य नीच वर्ग की ईर्ष्याजनित स्थिति से उद्भूत होकर 'अपहसित' और 'अतिहसित' के रूप में प्रकट होता है।

शुद्ध हास्य क्या है ?

इस दृष्टि से शुद्ध हास्य स्मित और हसित ही समझा जाएगा, जो किसी हास्यास्पद घटना अथवा स्थिति से दर्शक के मन में उद्भूत हो। इसके दो अच्छे उदाहरण संस्कृत-साहित्य से याद आते हैं। साधारणीकरण की अद्भुत शक्ति के कारण ये आज की स्थिति का भी सही चित्रण करते हैं। पार्वती दुःखी होकर पति से कहती हैं, "आपके एक पुत्र गजानन हैं और दूसरे षडानन, स्वयं आपका वाहन नंदी है और आपके भी पंचमुख हैं। इतने सारे मुखों के लिए हे दिगंबर, मैं भोजन कहां से लाऊं?" पार्वती का उलाहना सुनकर भूतनाथ मसकराकर कहते हैं, "मेरे घर में साक्षात अन्नपूर्णा जो रहती है।" शिव के ही परिवार का दूसरा चित्र है—शिव के सर्प को भूख लगी है। वह गणपति के वाहन चूहे को खाना चाहता है। उधर कार्त्तिकेय का मयूर सांप के ऊपर आक्रमण कर रहा है। दूसरी ओर पार्वती का वाहन सिंह भूख से त्रस्त होकर गजानन के सिर पर गरज रहा है। स्वयं पार्वती शिव-जटाओं में विराजमान भागीरथी की ओर असूया-भरी दृष्टि से देख रही हैं, और त्रिनेत्र के मस्तक पर स्थित तीसरे नेत्र की अग्नि चंद्रशेखर की चंद्रकला को झुलसा देना चाहती है। अपने कुटुंब का यह कलह देखकर, ईश महादेव ने भी हलाहल पी लिया।

भारतीय सौंदर्यशास्त्र के युगप्रवर्तक आचार्य भरत के अनुसार किसी भी रस के निर्णायक छह तत्त्व माने गये हैं—अपेक्षाकृत स्थायी प्रभाव, सार्वभौम स्वीकृति (जिसे उस विशिष्ट रस के रूप में सब मान्यता दें), रंजकता अथवा उत्कट आस्वाद्यमानता, मनुष्य की किसी-न-किसी मूलप्रवृत्ति से प्रत्यक्ष संबंध, जीवन के परम पुरुषार्थों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) के प्रति उपयोगिता तथा परिष्कृत एवं उदात्त अनुभूति। हमारी दृष्टि में हास्य के संबंध में पांचवीं और छठी बातें अनिवार्य रूप से अविस्मरणीय हैं। आचार्य अभिनवगुप्त के शब्दों में —'अनुरूप रस और भाव से संबद्ध वस्तु का औचित्य के अनुसार चयन करना चाहिए। उसके प्रतिपादन में देश और काल की अनुकूलता का भी ध्यान होना चाहिए। औचित्य वह गुण है जो हास्य को राष्ट्रीय सीमाओं में बांधता है।'

भरत की पांचवीं स्थापना के अनुसार हास्य को निषेधात्मक नहीं होना चाहिए। हास्य यदि विनोदमिश्रित मंडन के स्थान पर कटुता अथवा ईर्ष्याजनित खंडन करने लगे तो वह कभी उपयोगी नहीं हो सकता। औचित्य की एक स्थिति यह भी है कि

हास्य की परिणति शोक में न हो। यद्यपि ग्लानि के निकट संचारी 'दैन्य' और 'श्रम' हैं और ये हास्य-रस के व्यभिचारी के रूप में पाये जाते हैं। **'दौर्गत्यादेरनौजस्यं दैन्यं मलिनादिकृत्'**— हंसी में दुर्गति बनायी जाने से श्रम और उसकी मलिनता से दैन्यभाव उत्पन्न होता है।

हास्य उभयपक्षीय हो

भारतीय सौंदर्य की दृष्टि से हास्य की रंजकता उभयपक्षीय होना चाहिए, जिससे दोनों पक्ष आनंदित हों। हंसी उड़ाने से यदि संबंधित व्यक्ति के मन में संताप हो, ग्लानि हो और तनाव बढ़े तो वह कैसी हंसी हुई!

साहित्य का प्रयोजन आनंदानुभूति और मनोरंजन के अतिरिक्त समाज का उन्नयन भी है। यह दूसरा कारण है जिसके लिए हास्य का निर्माणात्मक होना आवश्यक है। प्रसिद्ध-हास्य लेखक मोलियर ने नाटकों में हंसी के माध्यम से समाज सुधारने का प्रयत्न किया है। ऐसा ही एक अत्यंत सफल प्रयत्न संस्कृत के नाटक 'मृच्छकटिकम्' में है। शकार का वसंतसेना का पीछा करना और अंत में उसकी हत्या कर देना हास्य और करुण दोनों उत्पन्न करता है।

स्वस्थ हास्य की मनोवृत्ति का अभाव हमारी भाषा में भी प्रतिबिंबित हुआ है। हिंदी में हंसी और दिल्लगी के लिए हंसी, मजाक, चुटकी, मखौल, दिल्लगी, ठिठोली आदि शब्दों से ही संतोष करना पड़ता है। इसी प्रकार संस्कृत में भी भारतीय मानस की गंभीर और विश्वमानवता-परक प्रवृत्ति है। हंसी में भी किसी दूसरे का दिल दुखाना विश्वमानवता के सिद्धांतों के अनुसार अपने को ही पीड़ित करना है। अमरकोश हास, हास्य, हसित, हसन और स्मित के अतिरिक्त (जिनमें प्रथम चार एक ही धातु से निष्पन्न हैं) कोई नया शब्द नहीं बताता। इसके विपरीत अंग-रेजी में हंसी के लिए 'लाफ्टर' शब्द है और हास्यरस के लिए 'ह्यूमर'। इसके अतिरिक्त 'विट' (देखिए संस्कृत विट), 'सारकाज्म', 'मॉक', 'टीज', 'टांट' (TAUNT), 'कॉमिक', 'मेरी' (MERRY), 'मर्थ' (MIRTH), 'फन' 'फनी', 'अम्यूजिंग', 'ल्यूडिक्रस' (LUDICROUS), जोक, जॉकुलर आदि अवस्थानुकूल अनेक शब्द हैं। शुद्ध हास अथवा ह्यूमर अहिंसक है। उसका उद्देश्य दूसरे को दुःख पहुंचाना न होकर केवल हंसी अथवा मनोविनोद में किसी अप्रिय घटना का आघात कम करना होता है। **अतः शुद्ध हास आयुध की अपेक्षा कवच का अधिक कार्य करता है।** उसका उद्देश्य मनुष्य के अहं की सुरक्षा है। संक्षेप में ह्यूमर या तो जीवन के भाष्य का काम करता है अथवा व्यक्ति की मूर्खता, दंभ, ढोंग, दुर्बलता अथवा धूर्तता की ओर विनोदी दृष्टि से देखता है। संस्कृत का भाण-साहित्य इस विधा का उत्कृष्ट उदाहरण है।

आत्मस्थ और परस्थ हास्य

यद्यपि हास्य की विभिन्न स्थितियों

और मनोदशाओं का हमारे यहां संपूर्ण विवेचन नहीं है, फिर भी उससे उद्भूत विभिन्न शारीरिक विभावनाओं का अद्भुत बारीकी से विश्लेषण किया गया है। सत्रहवीं शताब्दी के अंत में जगन्नाथ पंडितराज ने लिखा, **'दांत दिखाना तथा अन्य प्रकार से उद्वेजित करना हास्यरस के अनुभाव और व्यभिचारी हैं . . . दूसरे को हंसता देखकर विभावरूपी हंसी आ जाती है।'** प्रारंभ में भरतमुनि ने हास्य के दो भेद माने थे—'आत्मस्थ' जो स्वयं हंसे और दूसरों को हंसाकर उनके साथ हंसे एवं 'परस्थ', जहां स्वयं न हंसे पर दूसरों को हंसाये। इस पर टिप्पणी करते हुए अभिनवाचार्य ने लिखा है कि आत्मस्थ हास्य स्वयं प्रमाता के चित्त में उद्भूत होता है। इसे 'स्वगत' अथवा 'अंतर्हास्य' भी कह सकते हैं। परस्थ हास्य दूसरों को हंसते देख उत्पन्न होता है। उसे 'अन्यसंक्रांत' हास्य भी कह सकते हैं। अभिनव ने शृंगार के समान हास्य के अन्य तीन भेद किये हैं—'वचनात्मक', 'वेषात्मक', 'क्रियात्मक'। इसके अतिरिक्त हंसी के और बहुत से कारण हैं, द्वयर्थक शब्द जिनका प्रयोग आज तेजी से फिल्मों में हो रहा है। ऐसे वाक्यों का संकेत अश्लीलता की ओर होता है, जो संस्कार-हीनता और कुरुचि का परिचायक है।

पंडितराज जगन्नाथ ने हंसी के सात भेद बताये हैं। जो वृद्ध नहीं हैं वे ईषत्फुल्ल कपोलों और कटाक्षों से हंसते हैं। जिस हंसी में दांत न दिखायी दें वह मधुरहास स्मित कहलाता है। मुंह, नेत्र और कपोलों के उत्फुल्ल हो जाने और किंचित दांतों के दिख जाने से हसित होता है। शब्द-सहित मधुर, थोड़ी देर तक चलनेवाला, मुंह लाल कर देनेवाला, आंखों को थोड़ा बंद करनेवाला, मंद हास 'विहसित' होता है। जिसमें कंधे और सिर हिल जाएं, आंखें टेढ़ी हो जाएं, नथुने फूल जाएं, वह हास 'उपहसित' कहलाता है। 'अस्थानज' (जो हंसी का
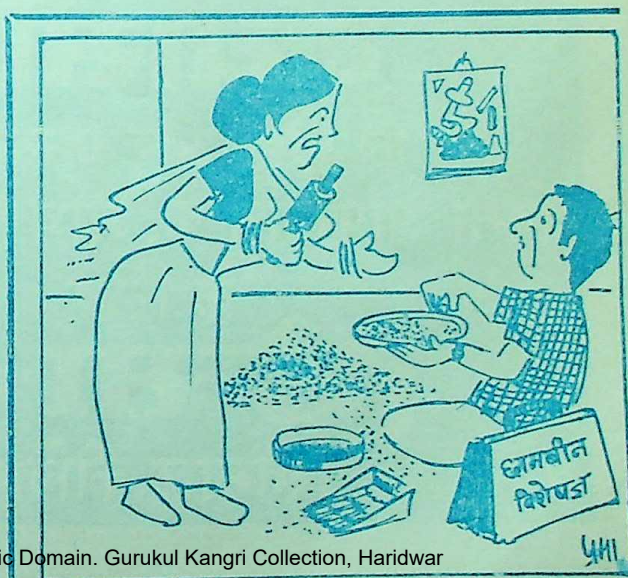
कारण नहीं है, ऐसे कारण से उत्पन्न), जिसमें आंखों से पानी बहने लगे, कंधे और बाल हिलने लगें, शारंगदेव के अनुसार, 'वह हास्य 'उपहासित' है। कानों को जो मोटा कर दे, कटु ध्वनिवाला, जिसमें दोनों आंखों से खूब पानी गिरने लगे, हंसी के कारण दुखते पेट को जिसमें हाथों से पकड़ना पड़े—ऐसे हास्य को 'अतिहसित' कहते हैं। यह भी कहा गया है कि अंतिम दो प्रकार के हास्य अत्यंत नीच प्रकृति के लोगों के हैं। पंडितराज ने भरत की ही स्थापनाओं की शारीरिक अनुभावों की दृष्टि से विस्तृत व्याख्या की है। अपनी ओर से वे कोई नया चिंतन नहीं जोड़ पाये हैं।

हास्य की मानसिक एवं परिस्थितिगत अनुभूतियों का हमारे यहां अभाव क्यों है? अंगरेजी में जिसे शिष्ट हास्य कहते हैं उसे हम भारतीय अनुभूति में क्यों नहीं उतार पाये हैं?

पश्चिम का शिष्ट हास्य

पश्चिम में मार्कट्वेन, वुडहाउस, लीकॉक, मोलियर सरीखे अनेक लेखक हैं, जिन्होंने स्वस्थ, स्वच्छ, शिष्ट हास्य-परिस्थितियों की परिकल्पना की है। चार्ली चैपलिन ने दरिद्रों और पददलितों की वेदना से प्रेरित होकर अभिनय के क्षेत्र में शुद्ध हास्य की सृष्टि की है। वास्तव में सफल हास्य उसी को कहा जा सकता है जो व्यक्तिगत विद्वेष से अछूता, कटाक्षरहित, निर्मल विनोद हो। इस दृष्टि से हास्य और व्यंग्य में भेद करना परमावश्यक है।

हास्य यदि जीवन का निष्प्रयोजन उल्लास है तो व्यंग्य प्रयोजनवद्ध होकर किसी दूसरे की आलोचना अथवा उस पर आक्षेप करता है। संस्कृत वाङमय में विशुद्ध हास्य के कई उदाहरण हैं, जिनमें संभवतया सबसे मोहक कालिदास की कल्पना है—रावण ने जब कैलास को उठाकर कंधों पर रख लिया, तब कैलास पर्वत के जोड़-जोड़ हिल गये। हे मेघ! तुम हिमालय पर पहुंचकर कैलास के शिखर के अतिथि बन जाना—वह कैलास जहां राशि-राशि बर्फ दर्पण के समान जम गयी है और तैंतीस करोड़ देवताओं की पत्नियां उसमें अपना मुख देखती हैं। वह कैलास जो अपने ऊंचे शिखरों पर विकसित श्वेत कुमुद पुष्पों के कारण त्र्यंबक के प्रतिदिन के ढेरों अट्टहासों का एकत्र समुच्चय है!

संसार के साहित्य में हंसी की इतनी विराट, इतनी बृहत, इतनी भव्य कल्पना मिलना कठिन है। लगता है एक समय हम हिमालय-जैसी हंसी हंसते थे।

शिष्ट हास्य के संदर्भ में नेहरूजी का भी नाम याद आता है। प्रतिपक्षी दलों की ओर से संसद में विविध निर्माण-कार्यों के लिए बाहर से गधे मंगाने का कड़ा विरोध किया जा रहा था। संबंधित मंत्री जैसे ही इसके बारे में अपना वक्तव्य देने के लिए खड़े हो रहे थे, नेहरू-जी ने उन्हें हाथ के संकेत से रोक दिया और स्वयं उठकर कहा, "सरकार अभी तक गधों को बाहर से ही मंगाना उचित समझती थी, पर माननीय सदस्यों के प्रस्ताव को देखते हुए इस कमी को अब देश में ही पूरा कर लिया जाएगा।"

अंगरेजी का अनैतिक वर्चस्व

हिंदी में समय-समय पर पानी के बुलबुलों के समान विविध हास्य रचनाएं जन्म लेती हैं और अपनी अवधि समाप्त कर अंधकार में सदैव को विलीन हो जाती हैं।

हास्य स्तर या तो इनमें विशुद्र राजनीतिक होता है, अथवा हंसी के नाम पर इनमें व्यक्तिगत ईर्ष्या-द्वेषजनित मन की भड़ास निकाली जाती है, और अपनी ही भाषा के बड़े-बड़े लेखकों, कवियों पर व्यक्तिगत आक्षेप किये जाते हैं, जो अशोभनीय ही नहीं स्पष्ट रूप से कुरुचिपूर्ण भी होते हैं। एक बात और चिंता उत्पन्न करती है। पूरा देश और उसकी राजधानी दिल्ली एक हैं, फिर हास्य-व्यंग्य के आलंबन हिंदी जगत से ही क्यों चुने जाते हैं? वास्तविक हास्यास्पद घटनाएं तो देश के उस तथा-कथित उच्च वर्ग में अधिक घटित होती हैं जो अंगरेजी के कवच से सुरक्षित जीवन जी रहा है, हम चाहते हैं कि समस्त भारतीय भाषाओं में, विशेषकर हिंदी में, ऐसा नया हास्य-साहित्य जन्म ले जो हिंदी की हीनभावना को दूर कर उनकी दुर्दशा के आंसू पोंछे और उसके मुंह पर स्वस्थ हंसी की एक रेखा ले आये।

—'ईशान', एफ १/७, हौज खास,
नयी दिल्ली–११००१६

नारी-विद्रोह का ओजस्वी स्वर

• आशारानी व्होरा

सिमॅन द बुवा—फ्रांस की प्रख्यात लेखिका जो नारी-जीवन में क्रांति और विद्रोह को लिखकर ही अर्थ नहीं देतीं, उसे जीती भी हैं। उनकी बहुचर्चित कृति 'द सेकंड सेक्स' को नारी-जीवन का महाकाव्य कहा गया है। संपूर्ण नारी-जीवन का शरीरविज्ञान, मनोविज्ञान, समाजविज्ञान, समाज-मनोविज्ञान की सभी दृष्टियों से इतना सूक्ष्म, इतना तथ्यपरक विश्लेषण इसके पूर्व किसी भी एक पुस्तक में प्रस्तुत नहीं किया गया।

सिमॅन द बुवा प्रसिद्ध फ्रांसीसी लेखक ज्यां पाल सार्त्र की मुग्ध-मोही मित्र हैं और तीस वर्षों के लंबे समय से इस अनूठी प्रेमल मित्रता को मन-प्राण से निभाये जा रही हैं। बुवा विवाह को एक 'अंतहीन बोरियत' मान उससे घृणा करती हैं। वे अस्तित्ववादी आंदोलन के अग्रणी नेताओं और विश्व की अग्रणी प्रबुद्ध नारियों में से एक हैं और इस सबके साथ चर्चित-स्थापित साहित्यकार भी।

सिमॅन द बुवा का जन्म १९०८ में पेरिस में हुआ। पिता पुराने सामंती विचारों के वकील, साथ ही एक अध्ययन-शील कलाकार। मां धार्मिक विचारों की शालीन, कुलीन, कर्तव्य-परायणा नारी। बालिका बुवा पर शैशव से किशोरावस्था तक दोनों का सम्मिलित प्रभाव पड़ा। हितैषी निर्देशक और सलाहकार के रूप में पिता ने उसे एक प्रबुद्ध, विकसित मानव बनने की ओर प्रेरित किया और मां ने त्यागमयी शालीन और कोमल नारी बनने की ओर। जी जान से वह अध्ययन करती, सीखती और अच्छी लड़की बनने की चेष्टा करती। पर भीतर कहीं ऐसा होता रहता कि कभी वह 'नर्वस' हो जाती तो कभी क्रोध से भर तोड़-फोड़ पर उतारू हो जाती। किशोरावस्था पार करते न

सिमन द बुवा

करते भीतर का यह विद्रोह बाहर फूटने लगा और बुवा की राह निश्चित हो गयी।

जीवंत अनुभूतियों का कोष

शैशव से किशोरावस्था तक की इन सारी जीवंत अनुभूतियों को सिमॅन द बुवा ने अपनी आत्मकथा के प्रथम भाग 'द मेमोरीज ऑव ए ब्यूटीफुल डॉटर' में बड़े विस्तार से लिखा है। 'द सेकंड सेक्स' में असंख्य 'केस-हिस्टरियां' संग्रहीत कर उसे प्रामाणिक बनाने के प्रयत्न के पीछे उनकी निजी अनुभूतियों की यह प्रेरणा भी पूरी तरह झांकती है। 'द सेकंड सेक्स' तथ्यपरक वैज्ञानिक रचना है, 'द मेमोरीज ऑव ए ब्यूटीफुल डॉटर' व्यक्तिगत कहानी, पर दोनों में कथ्य शैली की रोचकता और कृति-शिल्प किसी साहित्यक कृति से कम नहीं है। प्रारंभिक वर्णन की एक बानगी है—"मुझे प्रथम उपलब्धि मुंह के माध्यम से हुई। मां, गवर्नेस, दादी सब चाव से खिलातीं—'खाओगी नहीं तो बड़ी कैसे होओगी?'—मैं खाती गयी और बड़ी होती गयी। बड़ी होने के साथ ही भाग्य बंधता गया। 'यह मत करो' . . 'यह अवश्य करो' . . 'जुबान पर काबू रखो' . . . 'इच्छाओं को वश में रखो' . . . 'यह लड़कियों को शोभा नहीं देता' आदि निषेध-आदेश मेरी बालसुलभ योजनाओं में जहर भरते गये। आसपास के सब बड़े लोग मुझ पर अपना जादू डालने की शक्ति रखते थे, इतनी कि मुझे एक इंसान से जानवर या वस्तु में बदलने में समर्थ हो सकें। . . . पापा कभी-कभी गुस्से में कहते, 'यह लड़की असामाजिक होती जा रही है' और मैं केवल अवज्ञा के लिए अवज्ञा करने लगती। इसमें मुझे आनंद आता। बड़ों का व्यवहार मुझे शंकास्पद लगता जैसे कि मेरे छोटेपन का वे लाभ उठा रहे हों। किसी न किसी बहाने मैं विद्रोह करती, फिर भी बड़ों के जादू के प्रभाव से मैं वे सारे मूल्य स्वीकारती गयी। इसलिए कि मुझे झगड़े से सख्त घृणा थी। . . . मोटे तौर पर मेरी दुनिया दो हिस्सों में बंट गयी थी—बुराई और अच्छाई में। मेरी दुनिया अच्छाई के साथ जुड़ी थी; जोड़ी जा रही थी, पर उस अच्छाई में कुछ बुराइयां इस तरह झलक जाती थीं, जैसे अच्छाई के विभिन्न स्तरों पर विभिन्न शेड हों। घर की दुनिया से स्कूल की दुनिया में जाकर मैं बहुत खुश हुई कि यहां से अब मेरी दुनिया खुलनेवाली थी। स्वयं को समझने के लिए और आगे खुलनेवाली दुनिया को समझने के लिए मैं अध्ययन, और अध्ययन में डूबती चली गयी।"

इस तरह आत्मकथा का प्रथम भाग बुवा के सुविधासंपन्न और प्रतिष्ठित बचपन तथा उसमें फूटते विद्रोह के नन्हे अंकुरों की कहानी है, साथ ही 'टीन-एज' की एक दुर्लभ तसवीर भी, 'टीन-एज' लड़की जिस पर निगाह रखी जाती है

साहित्यिक उपलब्धियों का काल

बुवा की आत्मकथा के दूसरे भाग 'फोर्स

ऑव सरकमस्टांसेज' में उनके सार्त्र के साथ बिताये गये जीवन का स्पष्ट, निर्भीक वर्णन है। यही काल सिमॅन द बुवा की साहित्यिक उपलब्धियों का भी काल है।

ज्यां पाल सार्त्र से परंपरा-विरुद्ध संबंध को वे अपने जीवन की एक उपलब्धि मानती हैं और सफलता भी। दोनों को वैवाहिक जीवन से घृणा है। दोनों स्वयं को विद्रोही और आवारा मानते हैं, साथ रहते हैं। दिन में अपने अध्ययन-लेखन और संसार भर की घटनाओं पर विचार-विमर्श करते हैं, बहसें करते हैं, एक-दूसरे को सहयोग और लेखन-निदेश देते हैं। और रात पेरिस की सड़कों पर घूमकर या अपरिचित स्थानों पर अखबार के बिस्तरों पर सोकर बिता देते हैं। उनका जीवन लोगों के लिए चर्चा का विषय है। अकसर लोग उन्हें छेड़ते हैं, बुवा को तो अधिक ही क्योंकि वे स्त्री हैं। पर वे दोनों परवाह कहां करते हैं? कभी-कभी चिढ़कर बवा कह उठती हैं, 'लेखिका होना भी मुसीबत है।' फिर भी वे अपनी राह पर चली जा रही हैं। समाज में परिवर्तन लाने के लिए लीक से हटकर चलनेवालों को बहुत कुछ सहन करना पड़ता है। 'हर युग में ऐसा होता आया है, फिर परेशानी क्यों हो' उनका कहना है।

सार्त्र की निगाहों में—'कैस्तर'

अपने मित्रों में बुवा 'कैस्तर' नाम से जानी जाती हैं। उन्होंने सार्त्र पर बहुत लिखा है, पर सार्त्र के लिए ऐसा अवसर आया नहीं। अतः सार्त्र बुवा के बारे में क्या कहते हैं, यह जानने के लिए मैंदलिन गोबीन द्वारा सार्त्र का जो इंटरव्यू लिया गया था उसके कुछ अंश यहां प्रस्तुत हैं—विभिन्न प्रश्नों पर सार्त्र के उत्तर थे—'जितना कैस्तर मुझे जानती है, दूसरा कोई नहीं। इसलिए 'फोर्स ऑव सरकमस्टांसेज' के वर्णन प्रामाणिक ही होने चाहिए। . . . तीस वर्षों की मित्रता में हमारे बीच कभी लड़ाई नहीं हुई। बहसें होती हैं—अकसर सैद्धांतिक और राजनीतिक प्रश्नों पर। हमारी रचनाओं पर भी। उसमें क्रोध भी उभरता है, पर वह बहसों के साथ ही समाप्त हो जाता है। जैसे मैंने कैस्तर को अपनी कोई रचना दिखायी, उसने कह दिया, 'एकदम बकवास है'। मैं एकदम ताव खा गया। अपमानित अनुभव कर चौबीस घंटों के भीतर घोर श्रम से उसका नया संशोधित रूप प्रस्तुत कर दिया। देख कर बुवा ने कहा—'हां, अब ठीक है।' इस तरह हम एक दूसरे के निर्मम आलोचक भी हैं, सहयोगी भी। बहस में मुझे क्रोध आ जाता है तो मैं अनाप-शनाप बक जाता हूं। कैस्तर सह लेती है। फिर थोड़ी देर बाद ही समझौता हो जाता है और तटस्थ आलोचना हमें लाभ दे जाती है। कैस्तर की कसौटी पर रचना के ठीक उतरने के बाद ही मैं उसे पाठकों के सम्मुख लाता हूं।

सार्त्र बताते हैं, 'कैस्तर में ऊंचे

दर्जे की प्रज्ञा है। पर इस कारण उसमें नारीसुलभ कोमलता या संवेदना की कमी नहीं। उसमें पुरुषोचित गुण भी हैं, नारीत्व की सारी विशेषताएं भी। उसकी प्रेरणा से मेरे जबरदस्त अहंभाव में कमी आती है। वह न मिलती तो भी मैं लेखक तो होता ही, क्योंकि था, पर यह सुरक्षा और विश्वास न मिलता। अब हमें एकाकीपन खलता नहीं। साथ रहने से हमारी स्मृतियां और अनुभूतियां लगभग समान हैं।'

सार्त्र के इस बेबाक इंटरव्यू से बुवा के स्वभाव और आचरण, प्रतिभा और उद्देश्य की पवित्रता पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। वे स्वयं में 'नारी-जीवन के महाकाव्य' से कम नहीं हैं।

बहुर्चचित कृति

सिमॅन द बुवा की अनेक कृतियां चर्चित हैं, पर सर्वाधिक ख्याति उन्हें मिली है 'द सेकंड सेक्स' से ही। इस पुस्तक में यह सिद्ध किया गया है कि पुरुष से नारी की हीनता केवल इसलिए है कि समाज द्वारा उसे ऐसा बनाया गया है। शैशव, बचपन, किशोरावस्था, यौन-संबंध, विवाह, संतान, नारी-जीवन की संभावनाएं, उपलब्धियां और विकृतियां—सभी का सूक्ष्म बौद्धिक और वैज्ञानिक विश्लेषण है इसमें। हर वाक्य, हर पैरा बौद्धिक बारीकी और प्रामाणिक सूचनाओं से जैसे गुंथा हुआ है।

बुवा की मान्यताओं के अनुसार, आज नारी जो दिखायी देती है, वह परंपरागत नारीत्व की परिभाषा का ही कुफल है। स्वतंत्र अस्तित्व के लिए उसकी लड़ाई शैशव से ही आरंभ हो जाती है, पर मनोवैज्ञानिक और परिवेश-जनित कारणों से वह उसमें सफल नहीं हो पाती। परिवेश उसे मानवीय भूमिका देने में समर्थ नहीं, बाधक है। फलतः वह मानवी न होकर नारी रह जाती है, जिसका भाग्य विवाह है और सामान्य प्रवृत्ति पुरुष को आकर्षित करना। उसके व्यक्तित्व का निर्वाह वैसा ही हो पाता है, जैसा कि लोग उससे अपेक्षा करते हैं। वह भीतर से विद्रोह करती है, बाहर से सहयोग। उसके अबूझ पहेली होने या रहस्यमयी होने का यही कारण है। आज तक नारी-जीवन पर व्यंग्य, आलोचना, श्रद्धा, दया, प्यार सभी कुछ उंडेला गया, पर उसे समझने का प्रयत्न किसी ने नहीं किया।

बहुचर्चित और बहुपठित होने पर भी सिमॅन द बुवा को ही अभी कहां समझा गया है? पर कुंठित नारी-जीवन का उद्धार करनेवाली इस नारी को; उसके साहित्यकार के भीतर की नारी को, समझा जाएगा, इसमें संदेह नहीं।

सिमन द बुवा की ही एक बहु-चर्चित कृति का रूपांतर इसी अंक में सार-संक्षेप में

बी. ए. ३०८, टैगोर गार्डन,
नयी दिल्ली-२७

चीनी लोक-कथा

औरत

बात सदियों पुरानी है। च्वांग नामक एक दार्शनिक शांत एवं सुंदर ग्रामांचल में रहता था। गांव में सभी उसकी इज्जत करते थे। च्वांग की पहली पत्नी की मृत्यु हो गयी थी। दूसरी को उसने त्याग दिया था। अब वह अपनी तीसरी और अति सुंदर पत्नी के साथ रहता था।

एक दिन च्वांग एक पहाड़ी के पास से गुजरा तो उसने देखा कि एक खूबसूरत औरत एक गीली कब्र को पंखा झल रही है।

च्वांग यह देखकर चकित रह गया। वह उस सुंदरी के पास जाकर बोला,

● प्रस्तोता : सरोज वशिष्ठ

"आप यह क्या कर रही हैं?"

"मैं अपने पति की कब्र के सूखने का इंतजार कर रही हूं। मरते समय मेरे पति ने मुझसे वचन ले लिया था कि कब्र की मिट्टी सूखने के बाद ही मैं दूसरा विवाह करूं। अब आप ही बताइए कि मैं क्या करूं? यह मिट्टी तो सूखने को ही नहीं आती!"

च्वांग को उस पर बहुत दया आयी। वह बोला, "आप तो इस तरह थक जाएंगी।

पंखा मुझे दीजिए, मैं जल्दी से इस कब्र को सुखा देता हूं ।"

च्वांग ने जल्दी ही मिट्टी को सुखा दिया। सुंदरी ने एक नया पंखा और अपने बालों में लगी चांदी की एक पिन उसे दी। च्वांग ने पंखा तो ले लिया, लेकिन पत्नी के डर से पिन नहीं ली।

घर पहुंचते ही पत्नी ने पूछा, "यह पंखा कहां से लाये हो ?"

च्वांग ने पूरा किस्सा सुना दिया। पत्नी क्रोध के साथ बोली, "ऐसी औरतें तो स्त्री-जाति पर कलंक हैं . . ." और उसने पंखे के टुकड़े-टुकड़े कर डाले।

"सब औरतें ऐसी ही होती हैं !"

"क्या कहा ? सबके लिए ऐसा कहते तुम्हें शर्म नहीं आती ?"

च्वांग बात टालकर दूसरे कमरे में चला गया।

कुछ ही दिनों बाद च्वांग सख्त बीमार हो गया। अपनी पत्नी से वह बोला, "अब मेरा अंत समय आ गया है। उस दिन नाराज होकर तुमने पंखे के टुकड़े कर डाले थे, अगर आज वह तुम्हारे पास होता तो काम आता . . . मेरी कब्र की मिट्टी सुखाने के लिए।"

"अशुभ बातें मुंह से मत निकालो," पत्नी की आखों में आंसू भर आये। वह बोली, "सारी औरतें एक-सी नहीं होतीं। अगर तुम्हें यकीन न हो तो मैं इसी पल जान दे सकती हूं । तुमसे पहले मैं ही विदा हो जाऊंगी।"

च्वांग की मृत्यु शांतिपूर्वक हो गयी। पत्नी गहरे दुःख में डूबकर विलाप करने लगी। शोक प्रकट करनेवालों की भीड़ लग गयी। कुछ दिन बीते तब एक दिन च्वांग की विधवा के द्वार पर एक खूबसूरत नौजवान आकर घोड़े से उतरा। उसकी वेशभूषा राजकुमारों-जैसी थी। वह बोला, "मैं विद्वान च्वांग को गुरु बनाने आया था, पर मेरा यह दुर्भाग्य है कि वे अब इस संसार में नहीं रहे !" राजकुमार ने बार-बार उस धरती को चूमा जहां शव संदूक में बंद रखा था।

च्वांग की पत्नी राजकुमार पर मुग्ध हो गयी। उसने अनुरोध किया कि राजकुमार कुछ दिन वहीं रहे और च्वांग द्वारा रचित ग्रंथों का अध्ययन करे।

च्वांग की विधवा ने राजकुमार के प्रति अपनी भावनाएं प्रकट कर दीं। राजकुमार भी उसके प्रति आकर्षित था। दोनों का विवाह संपन्न हो गया तो दोनों सुहागरात मनाने कमरे में गये। अंदर पहुंचते ही राजकुमार बेहोश हो गया।

उनके सेवकों ने बताया कि इस बीमारी का एक ही इलाज है कि किसी आदमी का दिमाग निकालकर फौरन सुघाया जाए।

च्वांग की पत्नी ने गंडासा उठाया और अपने पति के ताबूत को काटने लगी। ऊपर की लकड़ी टूटते ही उसका पति च्वांग उठ बैठा।

वह घबरा गयी, किंतु फिर संभलकर बोली, "मुझे लगा कि तुम जीवित हो . . इसी कारण मैंने ताबूत को खोल दिया है।"

"लेकिन तुमने शादी के कपड़े क्यों पहन रखे हैं?"

"मैं तुम्हारा स्वागत मातमी कपड़ों में कैसे करती . . ."

अंदर सुहाग-सेज देखकर च्वांग हैरान हुआ; किंतु वहां से बेहोश राजकुमार को गायब देखकर च्वांग की पत्नी भी दंग रह गयी।

च्वांग ने कहा, "मुझे एक प्याला शराब दे दो।" जैसे ही उसने प्याला भरने के लिए पीठ मोड़ी तो च्वांग बोला, "उधर हमारी सेज के पास यह राजकुमार कौन है?

बुद्धि विलास के उत्तर

१. ग., २. ख., ३. पुत्री-पिता, ४. नवांग गोंबू, ५. क. कमल, ख. ऐटम, ६. सतपाल (दिल्ली), ७. क. किसान-मजदूर लोकपक्ष, ख. भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी, ग. कांग्रेस संसदीय दल, घ. लोक निर्माण विभाग, ८. पश्चिमी घाट से मंगलौर बंदरगाह तक—४० मील लंबी, ९. क. मध्यप्रदेश, ख. उत्तरप्रदेश, ग. केरल, १०. क. स्योल (द. कोरिया), ख. १९ पदक, (९ स्वर्ण-पदक), ग. श्रीरामसिंह (धावक), ११. क. असम की एक बोली, ख. एक जीवन-रक्षक औषध, ग. रबड़ के पेड़ से निकलनेवाला द्रव, घ. श्वास तथा हृदय-गति नियंत्रित करनेवाला यंत्र, १२. एनरेक्यूजी मंदिर (ओत्स्यु), १३. लगभग ६,२०० मील, १४. बोलीविया, पैराग्वे, १५. बिबलिस (पश्चिम जरमनी), १६. तीनों १९४८ में, १७. ३२ अंश फारेनहाइट, १८. राम-४२१ रु., श्याम-२१५ रु., १९. ०, २०. स्पेनी अन्वेषक एमरिगो, २१. पेंग्विन, २२. मेज पर रखा गिलास

च्वांग की पत्नी ने भयभीत नेत्रों से उस ओर देखा—राजकुमार सचमुच सेज के पास खड़ा था।

घबराकर उसने पति की ओर देखा—च्वांग वहां नहीं था! ●

गुलमोहर के रिश्ते

खिड़की से दिखता है एक पेड़ गुलमोहर का
न चाहने पर खिलता है
चाहने पर झरता है

अनुभूतियों की सीमा में
झरते गुलमोहर
और वृक्ष की प्रतिच्छाया में
निस्पंदित शव
और श्रद्धांजलियों-सा रिश्ता है

आंखों के दायरे में
सुर्ख गुलमोहर
और सफेदपोश धूप में
विधवा की मांग
और अस्पृश्य सिंदूर का रिश्ता है

ऐसे ही
मेरे मन के बीहड़ में
एक अकेला वृक्ष है
यादों के गुलमोहर का
सड़क का गुलमोहर झर जाता है
पर मन का झरता नहीं
सूखकर भी फूल टंगे हैं डालों पर
वृक्ष गल जाएगा पर गुलमोहर वहीं रहेंगे

सड़क के गुलमोहर
और यादों के गुलमोहर में
सिर्फ एक रिश्ता है
गुलमोहर होना उनकी विवशता है

—रमा पांडेय
सतसंगी-हाउस,
एम. आई. रोड, जयपुर

मन का चौराहा

यह रोम-रोम में छिपी हुई तेरी अनुभूति
कागज की प्लेट तो नहीं
कि फेंककर हाथ साफ कर लूं
क्या हुआ तू एक क्षण
एक चौखट पर बैठ नहीं सकता
मैं कई दरवाजों में से निकल नहीं सकती
यह टुकड़े-टुकड़े हुआ मेरा समर्पण
कांच का चूरा तो नहीं
कि फांककर यहां से कूच कर जाऊं

सोच कि
शारीरिक दौर से पहले
हमने कितनी अधिक मानसिक
चढ़ाइयां चढ़ी हैं
खयालों की गहराइयां बहुत बार नापी हैं
आहट के एहसास में
कितने क्षण बेताब जिये हैं
क्या हुआ शरीर के बंद गलियारे
अब मिल नहीं सकते
लेकिन मन के चौराहे पर
मुठभेड़ हमेशा ही होती है
तेरे इरादों से
कितनी बार साक्षात्कार किया
अब कोई प्रश्न नहीं बचा
जिसका उत्तर पाने के लिए
तेरी ड्योढ़ी पर फिर चढ़ जाऊं

—करुला वर्मा
हवाबाण, हरड़े डिपो,
कोट गेट के अंदर, बीकानेर
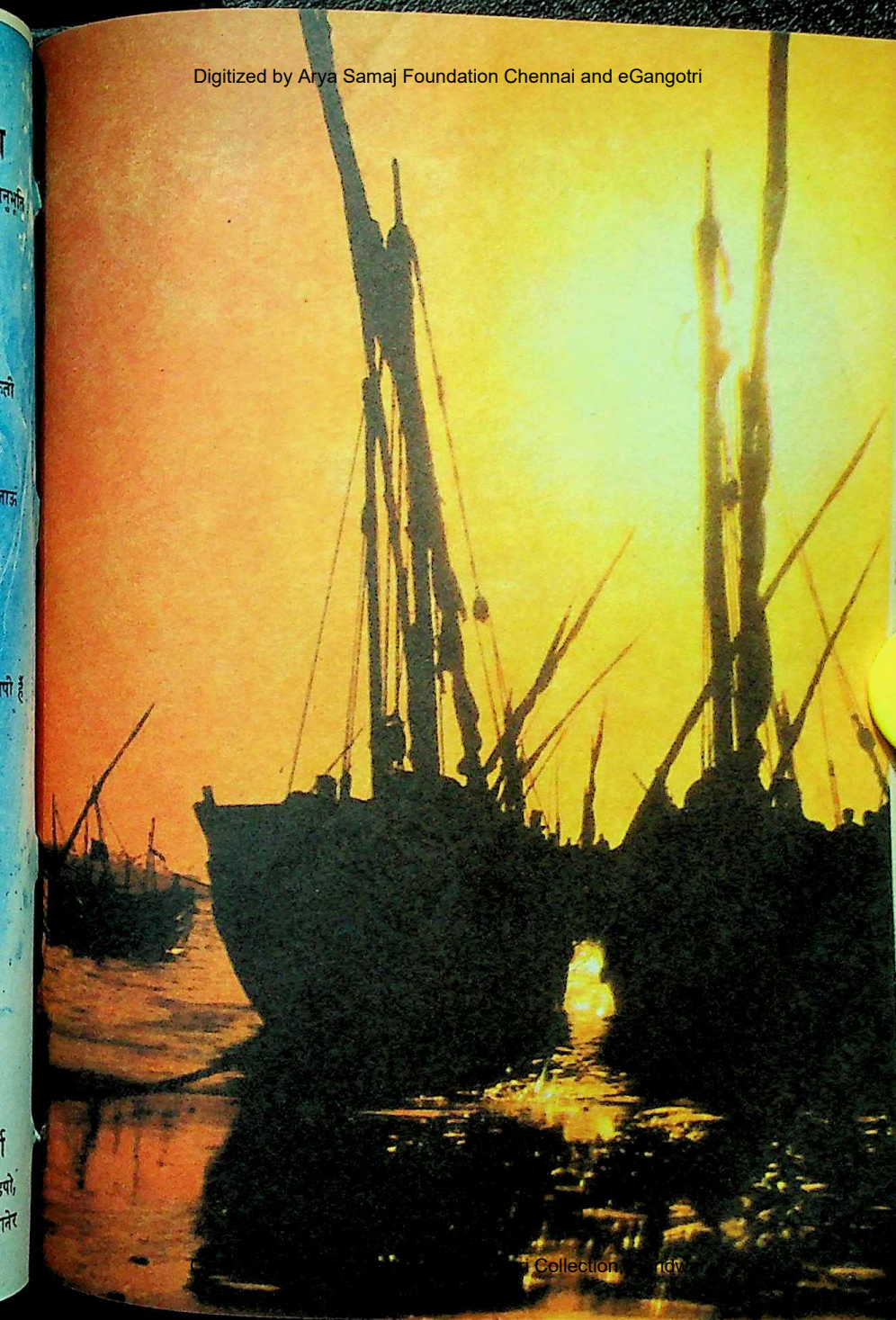
"क्या अब मैं भी आपसे कुछ प्रश्न पूछ सकती हूं?"
"पूछो!" उसने कहा था।
"क्या कभी आपने यह अनुभव किया है कि लेखन आपके जीवन-मरण का प्रश्न है?"
"हां, किया है, खूब किया है।"
"और यह भी कि कभी आपके लेखन में कुछ शैथिल्य आ गया है? आप चुक गये हैं, कुछ लिखने के लिए नहीं बचा?"
"यह भी लगा है, कई बार लगा है।"
"तब, तब आपने क्या किया?"
"फिर आरंभ किया। किया क्या, हो गया। कुछ समय के अवरोध के बाद फिर चल निकला।"
"पर कैसे?"

"किसी संपर्क से, किसी कुंठा से उवरने के वाद, किसी अन्य प्रकार से।"

"संपर्क से कैसे?"

"आपको मालूम है, हेमिंग्वे ने क्या कहा है?"

"क्या?"

"कि हर नये नारी-संपर्क ने मुझे एक नया उपन्यास दिया है।"

"हूं!"

"तो वस यही।"

"ओह!"

"तव?"

आत्म-साक्षात्कार

किसी वेक्युम को भरने के लिए नहीं, वल्कि उस वेक्युम को वनाने के लिए होता है, जो मेरे लिखने के लिए आवश्यक है, किंतु कभी-कभी प्रायः होता उलटा ही है—वेक्युम वनते-वनते दूसरी बहुत-सी चीजें उस वेक्युम में भरने लगती हैं और मन जहां-तहां उड़ता फिरता है।

आज भी यही हुआ है। वेक्युम में से ढेर-से प्रश्न उभरते चले आ रहे हैं। प्रश्नों की वौछार से वचकर आयी थी, इसीलिए

मैं कुछ नहीं हूं

—शशिप्रभा शास्त्री

"तव क्या?"

"अगर यही सव सवाल एक क्षण के लिए मैं आपसे भी पूछूं?"

"तो मेरे उत्तर यही होंगे," मैंने तुरत-फुरत जवाव दे दिया, विना एक क्षण गंवाये।

क्यों दे दिये? क्या मैंने अच्छा किया? क्या बुरा किया? वहुत देर से यही सव सोचती रही हूं—एक सूत्र से उड़कर मन वहुत से सूत्रों में उलझा चलता है और यह प्रायः तव होता है, जव मैं अपने को कोई चीज लिखने के लिए खाली रखना चाहती हूं, खाली रहकर दूसरे काम करती रहती हूं, जिनका लेखन से कहीं दूर-पास का भी रिश्ता नहीं होता। यह सव शायद
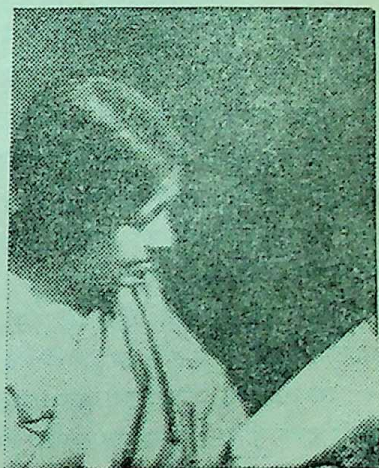
वह तुरुप चाल चली थी, प्रश्न-पर-प्रश्न जड़कर — पर अब अपने ही लिए कौन-सी चाल चली जाए ? अपने ही प्रश्नोत्तरों से छुटकारा कैसे पाया जाए ? खुद से ही बेईमान होने लगना—कैऽऽसे ? खुद प्रश्नोत्तरों की नौबत ही कैसे आ गयी ?

"आ जाती है, प्रायः आ जाती है—आज तो बात हो ही वैसी गयी थी । प्रश्न सुना और तुमने तुरंत उत्तर उछालकर बात समाप्त कर दी। इतनी तत्परता तुममें कहां से आ गयी ? तुम तो हमेशा अनिश्चय की डोर पर ही झूलती रहती हो ? यह अनिश्चय-वृत्ति जैसे तुम्हें विरासत में मिली हो ?"

"विरासत की बात कहकर किसी दूसरे को बीच में मैं क्यों लाऊं ? कोई-कोई वृत्ति कभी-कभी परिस्थितियों का परिणाम भी तो होती है—उनसे बचना मनुष्य के लिए प्रायः संभव नहीं होता । बात को गोलमोल ढंग से कह देना मेरे बस की बात यों भी नहीं है। मन कुछ और सोच रहा है, मुंह कुछ और कह रहा है—ऐसा कब हुआ है ? तुम्हीं बताओ। अपने किन्हीं भी भावों को आंखों में उभरकर न आने देने की क्षमता काश मुझमें होती !"

"हां, तुम्हारे साथ एक और भी कठिनाई है ।"

"मैं जानती हूं और अपनी उस आदत से भी परेशान हूं । लोग-बाग किसी की मौत पर रो रहे हैं, बेटी विदा हो रही है और अपना हृदय भावाकुल होने पर भी आंखों में उबाल नहीं ला रहा, ऐसा कई बार हुआ है और यह भी हुआ है कि लड़के की बरात चढ़ रही है, लोग हाथ में हाथ डालकर या बगलगीर हो खुशी से नाच रहे हैं । कहीं दूर-दूर तक गम-गाथा का नामोनिशान नहीं और मेरी आंखें झरती चली जा रही हैं, छिपाना मुश्किल हो रहा है । कब किस बात पर मैं व्यथित हो उठूंगी, कब किस मार्मिक से मार्मिक बात पर मैं पत्थर बनी बैठी रहूंगी, मैं खुद नहीं जानती पर इतना जानती हूं कि सालों बाद जब मैं खुद को इतना बदला हुआ महसूस करती हूं, वहां अपनी इस आदत में मैं अब भी ज्यों-की-त्यों हूं ।"

"बदला हुआ कैसे महसूस करती हो ?"

"लगता है, मैं एक दूसरी ही स्त्री हूं—कंप्लीटली अ चेंज्ड वूमेन।"

"कैसे ? यही पूछा है मैंने ?"

नैतिकता का मूल्यांकन

"कैसे, कैसे बताऊं, क्या उदाहरण दूं ? हां ऽ ऽ शायद यही ठीक रहेगा, नैतिक मान्यताओं का मूल्यांकन मैं अब दूसरे ही कोण से करने लगी हूं। अब मेरी निगाह में वह व्यक्ति बुरा नहीं है जो परपुरुष या परस्त्रीगामी है, सिगार या शराब पीता है, अभक्ष्य नामधारी पदार्थों का सेवन करता है—घृणा या अवमानना मेरे मन में अब उस व्यक्ति के प्रति उभरती है, जो वचन देकर भी उसके निर्वाह में कोताही करता है, धार्मिकता का स्वांग

रखकर भीतरी प्रकोष्ठों में रंगरेलियां रचाता है। जो अपने दायित्व और कार्य के प्रति ईमानदारी नहीं कर पाता, केवल बात करता है, सिर्फ बात।

"आस्था का बिंदु एक दूसरे स्तंभ पर भी टिककर खड़ा हो जाता है, जहां व्यक्ति नैतिकता के समान मानदंडों को स्वीकारता हुआ भी उनको क्रियात्मक रूप देने में इसलिए असमर्थ रहता है, क्योंकि उसे परिवार के नादान सदस्यों

चढ़ा दी है।"

"शीरी - फरहाद और लैला - मजनूं की तरह न?"

"ओह, व्यर्थ के उदाहरण देकर इसे लिजलिजा न बनाइए। बीमार बना देनेवाली भावुकता से मुझे चिढ़ है।"

"मुझे मालूम है।"

"अपने इस बदलाव के सामने जाति-पांति की प्रथा तोड़ने-फोड़ने-जैसी बातें अब बहुत बेकार की लगने लगी हैं। प्रेम

चेहरा एक, अंदाज अनेक : इसी को कहते हैं तेवर बदलना

को अनुशासित रखना है। आंखें कभी-कभी उस व्यक्ति के प्रति भी अर्घ्यदान देती चलती हैं, जो बिना किसी की चिंता किये अपने संबंधों के प्रति समर्पित हो जाता है वह संबंध चाहे पत्नी का हो, चाहे प्रेयसी का—भूत - भविष्य की चिंता किये बिना खुद को टिकटी पर चढ़ाकर जिसने अपने एकात्म या एकांत प्रेम के लिए बलि ही

और श्रद्धा के सामने सब छोटा लगता है।"

"तुम्हारे संबंधी? वे क्या सोचते हैं?"

असली रिश्ते

"इन बातों में मैं संबंधियों के प्रति कैसे प्रतिश्रुत हूं? फिर मेरे लिए तो आज नाते-रिश्तों की परिभाषा भी बदल गयी है, एक अंदरूनी रिश्ता, जो दिल की चार-दीवारी में समाया रहता है, जिसके प्रति

आसक्ति-विरक्ति की अनुभूतियां यों ही धुकुर-पुकुर करने लगती हैं, वही मुझे असली रिश्ते लगते हैं। खून के रिश्तों में से, जिन्होंने मेरे व्यवहार को संशय, भर्त्सना और उपेक्षा की दृष्टि से देखा, उनके प्रति हृदय अब संवेदनात्मक नहीं रह गया है।

"जी हां, शिकायती लंबी - लंबी चिट्ठियां लिखने की मेरी आदत ही नहीं है। भावुकता-भरे पत्र भी अब मैं कम ही लिख पाती हूं, आदत से मजबूर। ठीक तरह के संयमित सादे पत्र लिखकर लगता है, खुद को हर ठेस के लिए तैयार कर लिया है मैंने, किसी के द्वारा किसी भी प्रकार की अलगाव की भावना सहने के लिए जैसे धीरे-धीरे एक कवच बुनती चली जा रही हूं मैं।

"संवेदनाएं पूरी तरह मर ही गयी हों, ऐसी बात भी नहीं है। तनिक से भी स्नेह की आंच पाते ही मन कितनी जल्दी पिघल उठता है, विश्वास के कितने बड़े ताने-बाने बुने जाने लगते हैं, सपनों की पैंगें कितनी दूर तक उड़ानें लेने लगती हैं, जिंदगी भर निर्वाह करने की सामर्थ्य जुटाने की क्रिया-प्रक्रिया कितनी सजग हो उठती है— निरीह अशक्त होकर एक नन्हीं-सी रस-धार में तिरने की कितनी बड़ी क्षमता मैं स्वयं में समोये हुए हूं— मुझे कभी-कभी खुद आश्चर्य होता है!

"इतना सब कुछ तुमसे कह देने पर भी लगता है, पूरी तरह ईमानदारी नहीं बरत पा रही हूं, कहीं कुछ छूट गया है, खुलने का प्रयत्न कर रही हूं और मुंदती चली जा रही हूं। मुझे बुरा लग रहा है। सचमुच इस समय कुछ भी छिपाने के मूड में मैं नहीं हूं। पर खुद को पूरी तरह खोल-कर बिछा देना इतना सरल भी तो नहीं है, सचमुच नहीं है। बात दरअसल यह है कि मैं खुद नहीं जानती हूं कि कौन कब मुझे निजत्व की अनुभूति से भिगो देगा? किससे मैं कब किस बात पर घृणा करने लगूंगी—सौंदर्य के खानों को भी तो मैं तय नहीं कर पायी हूं। कोई भी कर पाया है क्या? **वह चितवन औरै कछू जेहि बस होत सुजान।** बहुत बड़े विराट जनसमूह में भी कौन-सी दो मौन आंखें तुम्हारे हृदय को चुपचाप आमंत्रित कर लेंगी, तुम जानते हो क्या?"

"एक दिन तुमने सोचा था, तुम कोई बहुत बोल्ड चीज लिखोगी?"

"एक बिलकुल नयी बात, तुम्हें कहां से याद आ गयी? तुम जानते ही हो अब मुझे कुछ बोल्ड नहीं लगता, सब कुछ साधारण ही लगता है—यों अपने कथ्य को डिस्कस करना मेरी प्रवृत्ति में नहीं है। मेरा कथ्य जैसे एक जादू हो, जो किसी की भी सांस लगते ही लुप्त हो जाएगा!"

"आप सोचिए, हम लोगों के कितने वर्ष नष्ट हो गये हैं और हम अब तक कुछ भी नहीं कर पाये हैं.... तुमसे बात करते हुए मुझे एक अन्य दिन की बात याद आ गयी है...." वह कुछ और भी कहता, पर मैंने ही बाधा दे दी थी मध्य में।

"ऊंह, मैं ऐसा कभी नहीं सोचती, लेखन के अतिरिक्त जो भी मेरे कार्य हैं, दायित्व है—सब मुझे लेखन को संतुलित रखने का एक माध्यम प्रतीत होता है।"

"क्या आप कभी यह नहीं सोचतीं कि किसी अच्छी कृति को रचने के लिए आपको इच्छानुसार समय मिले, सुख-सुविधाएं प्राप्त हों, 'अर्न' करने की चिंता से विमुक्ति हो जाए ?"

"न-न, मैं यह सब कुछ नहीं सोचती। मैं सोचती हूं सब तरह की असुविधाओं को जीते हुए या वे जिनमें से मैं गुजरी हूं—उन सब दुःख-दर्दों की मेरे पास एक बड़ी दौलत है, जिसका उपयोग मैं कभी भी कर सकती हूं। हां, उपयोग करने का समय कब आयेगा ? इसे मैं उस 'अदृश्य' पर छोड़ती हूं, जिसकी इच्छा के बिना मैं एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकती।"

"ईश्वर की बात कर रही हैं आप ? ईश्वर-पाप-पुण्य को मैं नहीं मानता।" वह और आगे बढ़ा था।

"मैं उस एक 'अदृश्य शक्ति' की बात कर रही हूं, जो मुझे संचालित प्रेरित करती है, जो मुझे ठेलकर जहां चाहे ले जा सकती है, ले जाती है। 'संयोग', 'नियति' कुछ भी कहें आप उसे, सच बताएं, आप स्वयं क्या कभी यह महसूस नहीं करते कि आपको जितना करना है, जैसा करना है—वह स्वतः होता चलेगा, होता चल रहा है ?"

"उस दिन की बात समाप्त हो गयी थी न जाने कैसे, आज इस समय तुमसे बात करते हुए मैं खुद महसूस कर रही हूं कि सुख-सुविधा-समय-निश्चितता—सब कुछ मिल जाने पर भी उन बारीक तारों को पिरो लेना कितना कठिन है, किसी की मुसकान के एक छोटे-से क्षण की पृष्ठभूमि में खचित राग-विराग के रंगों को लेखन में ज्यों-का-त्यों उपस्थित कर देना कितना तबाही का काम है। कितना कठिन है किसी क्षण को पकड़ लेना, कुछ गिने-चुने शब्दों में उसे सादगी से बांध देना, कला को रूप प्रदान करना, उसमें कशिश पैदा करना या उसको सपाटता देना, किसी के सुख-दुःख से उसके ही स्तर पर उतनी ही गहराई से जुड़ जाना, जुड़-कर उसकी उन तमाम मानसिक ग्रंथियों को लेखन में बुनते चले जाना—कितना जीवट का काम है ये सब कुछ और यह जीवट का काम लेखक को कितना निरीह बनाकर छोड़ देता है।

"मैं सचमुच सोचती हूं किसी तथ्य को प्रस्तुत करने के लिए कभी-कभी शब्द कितने बेमानी हो जाते हैं, कितने झूठे-अशक्त ! बलबलाकर एक झटके से निकल पड़नेवाली शब्दों की आलंकारिक लड़ी अब मुझे बहुत क्षुद्र और कृत्रिम लगने लगी है, खुद की देह को बेतुके ढंग से सच्चे-झूठे मोतियों से सजाने जैसी—अपनी रात-दिन की जिंदगी में भी मैं इतनी ही सादी हो गयी हूं।"

"तब तुमने जो कुछ जिया है, क्या

वही लिखा है ?"

"बिल्कुल वही तो नहीं पर वही समझिए।" "कैसे ?"

"हर सामान्य व्यक्ति की तरह मैं भी कई स्तरों पर जीती-मरती हूं। दुनिया में जितने भी रिश्ते होते हैं, जितने भी संबंध—गिनाऊं क्या ? गिनाने की जरूरत नहीं है, तुम जानते हो ! हर रिश्ते की गरिमा और गहराई को मैंने बहुत करीब से पहचाना है, उसमें सांस ली है, उसमें डूबी-तिरी हूं और प्रयत्न करती रही हूं कि अपने लेखन में सब कुछ उसी रूप में न रखकर बहुत कुछ उसी रूप में रख सकूं। सहे-भोगे-देखे-सुने को ऑब्जेक्टिव ढंग से प्रस्तुत कर देना ही हर लेखक का धर्म होता है, मैं इसका अपवाद नहीं हूं। झूठ-मूठ बना-बनाकर लिखना मेरे लिए बड़ा कष्टकर होता है ।"

"तुम सोचती हो, तुम बहुत अच्छा लिखती हो ?"

"अभी तो मैंने लिखने का 'क ख ग' भी आरंभ नहीं किया है, अच्छा लिखने का दंभ कैसे कर सकती हूं ? हां, लेखन के प्रति मैं अपनी प्रतिबद्धता को पहचानती हूं, उसके प्रति कहां तक न्याय कर पायी हूं—इसे मैं स्वयं कैसे बताऊं ?

"किसी की सहानुभूति और दया पर जीना मेरे लिए जितना कठिन है, पराजित होकर भी स्वाभिमान और दृढ़ निश्चय से जीने लगना मेरे लिए उतना ही सरल है। मन स्नेह-प्रेम की दृष्टि पढ़ लेने में जितना निपुण है, मस्तिष्क उपेक्षा की आंख को पल भर में ही पहचानकर उससे सदा के लिए कट जाने में उतना ही सशक्त—एक बार कटकर दुबारा जुड़ जाना जितना मुश्किल है, जुड़कर कट जाना उससे कहीं अधिक भयावह। एकांत रूप से स्वयं पर निर्भर हो जानेवाले के लिए हृदय कुछ भी करने के लिए उद्यत रहता है, तो हर किसी से याचना करनेवाले के प्रति चित्त उतना ही विरक्त हो उठता है। प्रेम में साझा करने के समझौते के किसी भी अंश से चिपके रहना मेरे लिए उतना ही मुश्किल है, जितना वायदा करके तोड़ देना। तुरत-फुरत वायदा कर लेना भी मेरे लिए आसान नहीं है। बराबर का प्रतिदान न मिलने पर निराशा होती है, तो किसी के द्वारा उपकृत किये जाने पर उसके प्रति कृतज्ञ न बने रहने पर खुद के प्रति घृणा भी उपजती है—जबरदस्त। कभी लगता है, कोई अपना नहीं है, कभी कोई भी अपना लगने लगता है। क्या हूं मैं? खुद नहीं समझती, सोचती हूं, जिसे मैं अब तक नहीं पहचान सकी हूं, वह मैं हूं।"

"तुम सही कह रही हो। तब ?"

"तब, क्या पूछना चाहते हो मेरे बारे में—मेरी योग्यता, अध्ययन कुल, जाति, धर्म, प्रदेश ? कहीं कुछ नहीं है। सब कुछ का उत्तर शून्य ही है। कुछ नहीं हूं मैं—सिर्फ 'शून्य' हो जाने की अनुभूति कभी-कभी कितनी सुखद लगती है!"

—३/६ भगवान नगर, देहरादून

कहानी

• विनीता अग्रवाल

स्कूटर अब तांगे के आगे था, तेजी से उसने अपने आपको उसके चाबुक की पहुंच के बाहर कर लिया था। इस नयी स्थिति को देखकर दीपा घबरा गयी थी, क्योंकि अब कभी तांगेवाले की बगल में, कभी थोड़ा पीछे, उसका अकेला रिक्शा ही था, और तांगेवाला रह-रहकर अपने घोड़े को सपाक से चाबुक लगा देता था। दीपा को लगता रहा कि हर बार उसका चाबुक लहराता हुआ, बस उसके एकदम करीब से ही गुजरता है और कभी भी स.. प्..प से उसके गाल पर.. ! इस दिवास्वप्न के साथ ही उसके गाल पर जलन होने लगती है। अनजाने ही वह पल्ले को पीठ पर डालने के बहाने से गाल को छू लेती है।

...उस दिन भी हाथ गाल पर ही आकर टिका था जब फाइनल रिहर्सल के दिन बीरू ने उसे कसकर मारा था। संवाद बोलने की जगह वह फूट-फूटकर रोने लगी थी। अमलदा बंगला-मिश्रित हिंदी में देर तक समझाते रहे थे। बीरू को डांट पड़ी, "अरे बाबा, मारना के माने धीरे से मारकर कसकर मारने का भाव टो देखाना है।" बीरू ने लज्जित होते हुए कहा था, "आई एम सॉरी दीपाजी. प्लीज माफ कर दीजिए।" और गाल सहलाती दीपा जोर से हंसी थी।

उसके बाद तो यह मारनेवाली बात उन लोगों के लिए रूठने और मान करने का अच्छा बहाना बन गयी थी। कभी बीरू नाराज होता तो तुरंत मुंह फैला लेता—"अच्छा तुम उस दिन रोयीं क्यों थीं ?" और वह सफाई देती, "सचमुच बीरू, चोट लग गयी थी, और तुमसे कोई इंटीमेसी भी नहीं थी। हम कतई तैयार नहीं थे। समझ में नहीं आया कि इस लडके ने इतनी जोर से क्यों मारा ? रियली, सच कह रहे हैं !"

"जब तुम 'रियली' कहती हो, तो लगता है सबसे ज्यादा झूठ बोल रही हो। अब समझ में आता है कि इस लडके ने तुमको क्यों मारा ! जानती हो क्यों मारा ? यह देखने के लिए कि कभी तुम्हारी सांवली रंगत पर कोई और रंगत आती है या नहीं ! सचमुच तुम्हारे गाल लाल कर दिये थे मैंने।"...अब दीपा मुंह फुलाती, क्योंकि बचपन से ही वह जानती है कि

वह सांवली है। घर की पुरानी बंगाली दाई ने उसका नाम कालो दीदी और गोरी बड़ी बहन का नाम गोरी रखा हुआ था।

अनजाने ही दीपा मुसकराने लगती है! रिक्शा अभी तक तांगेवाले की बगल में ही है। कसबानुमा शहर है, एकसाथ ही बस, ट्रक, मोटर, तांगा, रिक्शा, ऑटोरिक्शा, साइकिल सब चलते हैं, अपनी-अपनी स्वतंत्र इच्छा के साथ। एक खूबसूरत इमारत के सामने तीन लड़के एक ही रिक्शे से उतरकर कुछ वकझक कर रहे हैं और रिक्शेवाले ने इनके दिये पैसे सपाक से फेंक दिये। इन फेंके पैसों के बहुत करीब से, उन्हें छूता हुआ ही दीपा का रिक्शा गुजरा और दीपा सामने देखती रही। पर शुरू-शुरू में जब कालेज में नयी-नयी ही थी तब ज्योति दीदी वैसे ही बोल-बाल कर आगे बढ़ गयी थीं, तो रिक्शे-वाले के फेंके पैसे एकदम उनके पीछे आती दीपा की पीठ पर और पैर के पास गिरे थे। दीपा तमतमायी-सी तुरंत पलटी थी और रिक्शावाला हाथ जोड़कर बड़-बड़ाया था, "आप ही बताइए दीदीजी, वो बूढ़ी दीदी चौक से आ रही हैं और आठ आने थमाकर जा रही हैं! कहां से खायेंगे?" ...और अपने एक रुपये के साथ उसके गिरे हुए पैसे उसे थमाते हुए भी रिक्शे-वाले के व्यवहार और ज्योति दीदी की खुदगर्जी पर दीपा ऐंठकर रह गयी थी। देर तक उसकी पिंडली और पीठ जलती रही थी। उस दिन वह लड़कियों की अदाओं पर मुसकरा भी नहीं पायी थी। लड़कियां उसके क्लास में पहली बार सहमी थीं! क्लास उसने पंद्रह मिनट पहले छोड़ दिया था। सुनंदा जब उसकी तबीयत के बारे में पूछती हुई कहने लगी, "लड़कियों को तुम्हारा क्लास सबसे अच्छा लगता है, कहती हैं कि दीदी ने तो अर्थशास्त्र को साहित्य से ज्यादा रोचक बना दिया है" तब उसने अपने-आपको बहुत 'गिल्टी' भी समझा था...

दूर से ही बंद गेट पर छात्राएं दिखायी पड़ती हैं। सीताराम उन लोगों के साथ बातचीत में व्यस्त है। छात्राएं उसे देखकर अजीब-सा इशारा करती हैं। दीपा डांटकर पुकारती है, "सीताराम!" और सीताराम हड़बड़ाकर गेट खोलता है। रिक्शे के कालेज-कंपाउंड में दाखिल होते ही, उसके अंदर जो कुछ तना हुआ था, जाने क्यों ढीला पड़ने लगता है! उसे देर हो गयी है। कल भी मिसेज गुप्ता ने उसे टोका था, आज भी कोई टोकेगा, वह जानती है। प्रिंसिपल के कक्ष में जाने से पहले ही अर्चना मिलती है, "दीपा, लेक्चरर को सात बजे पहुंचना होता है, तुम आज भी लेट हो गयी हो।"

अर्चना उससे छह महीने जूनियर है। अपने जूनियर का रोब वह क्यों बर्दाश्त करे! अर्चना अकसर परीक्षा-विभाग में होने का रोब झाड़ने की कोशिश करती है। अमूमन दीपा ऐसी बातों पर ज्यादा ध्यान नहीं देती, इस बात को 'मिमिक'

कर वह सुनंदा के साथ हंस देती है, पर आज वह बोले बिना नहीं रही, "अर्चना, माइंड योर ओन बिजनेस... कोई और बोले न बोले, तुम्हारा बोलना सबसे ज्यादा जरूरी है इस कालेज में।" अर्चना अपनी चौकोर आकृति के साथ बड़बड़ाती हुई आगे बढ़ गयी।

और नैतिकता के टेढ़े-मेढ़े प्रतिमानों पर वे काफी देर तक बोलती रही थीं। उसका जी चाह रहा था कि तुरंत ही वह एक कोड लागू कर दे कि प्रिंसिपल को सप्ताह में एक नहीं, चार क्लास लेने की सहूलियत है।

एक बार पड़ोस में कोई रस्तोगी आये थे, जो एल्ड्रिन दवा के स्थानीय

मीटिंग से उठकर उसको लगा था कि ढेर-सी छिपकलियों के बीच रेंगकर आयी है और उसे तुरंत नहाना चाहिए! प्रिंसिपल ने चाय पिलायी थी और कालेज के आदर्श वातावरण, वर्तमान 'गुंडागर्दी', अध्यापकों और अध्यापिकाओं के सहयोग

प्रतिनिधि थे और उनकी सिफारिश से उसने अपने और अपने मकान-मालिक के कमरों के कीड़े-मकोड़ों और छिपकलियों को ठिकाने लगाया था। रस्तोगी साहब ने शायद रसिकता ही दिखायी थी, "देखिए ये दवाएं लिटरली जहर ही हैं, इसीलिए
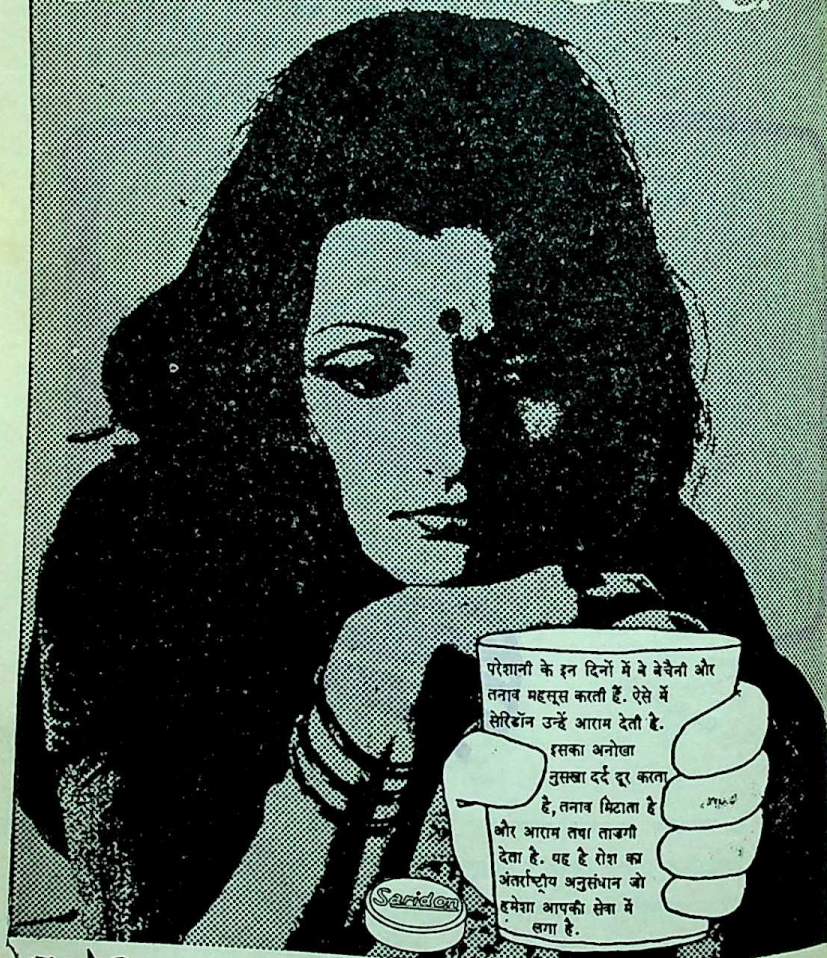
मैं आपको अपने किसी सहायक के बिना इन दवाओं का उपयोग नहीं करने दूंगा। "आई नो, यू आर वेरी सेंटीमेंटल!"

तो ऊपर से हंसती हुई भी अंदर ही अंदर वह सहम गयी थी और सुकून भी पाया था उसने। आज लगता है, जैसे उसने एल्ड्रिन खिलवाकर घर की छिपकलियों को मारा था, उसी तरह या तो अपने चारों ओर के लोगों को खिला दे या खुद ही खाकर...

उस दिन रवि चीख रहा था, "तुम! तुम तो जहर भी दे सकती हो। कमीनी औरत!" और जिस तरह छहफुटे गोरे रवि ने उसे सड़क-छाप गालियों से भी बढ़कर शब्द दिये थे, उसका सिर एकदम ही चक्कर खा गया था और जवाब में वह 'रवि!' चीख भी नहीं पायी थी कि उसकी जबान लड़खड़ा गयी थी...

प्रिंसिपल-रूम के बाथ-रूम में जाकर दीपा अपने आपको आईने में देखने लगी। ठीक एक साल पहले, इसी तरह अपने सेपरेशन की सूचना प्रिंसिपल को देने के बाद उसने इसी बाथ-रूम में अपनी खूब रोयी आखों को देखा था और मुसकराने की कोशिश की थी। उसने कहा था, "जिस दिन तुम रोती हो उस दिन तुम मुझको सबसे ज्यादा सुंदर लगती हो, क्योंकि तुम्हारी नाक, तुम्हारे गाल लाल हो जाते हैं, वरना तुम...तुम तो बस लेफ्ट-राइट करती हो।"

"जानते हैं कि आजकल वह छोटी

विनीता अग्रवाल : जन्म १७ मार्च, १९४६ भागलपुर में। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम. ए.। पहली कहानी 'परिवार की लतर' १९६३ में 'क ख ग' में प्रकाशित। युवा लेखिका विनीता अग्रवाल का कहना है, "कहानी बहाने से अपनी ही कथा होती है, चाहिए और न चाहिए की सीमा-रेखा से जूझती हुई।"

गोरी-सी लेडी-लाइक सुवी तुम्हें बहुत अच्छी लग रही है। ऐंड आई डैम केयर—जहन्नुम में जाओ तुम!" बगल से डॉ. आनंद गुजरे थे और बीरू धीरे से बोलता हुआ अलग हो गया था, "जाएंगे, पर तुम्हारे साथ... जहन्नुम में भी आपके बिना लेफ्ट-राइट करता हुआ रास्ता कौन दिखायेगा?"

दीपा को एकाएक याद आता है कि सुबह की हड़बड़ी में बच्चों को जल्दी-

जल्दी खिलाकर, उनको बस में बैठाकर वह चली आयी है! यों ही देर हो चुकी थी। यहां प्रिंसिपल-ऑफिस की चाय ने जैसे सारी ताकत के साथ उसके अंदर की भूख को जगा दिया था।

सुनंदा से उसने कहा था, "चलो ना, जरा कैंटीन में कुछ खायेंगे।" सुनंदा ने याद दिलाया था, "आज सत्ताईस हो गयी है, पहले अगले महीने में खाने का इंतजाम करो। कैंटीन में बाद में खा लेना या रास्ते में यूनीवर्सिटी में पे-बिल बनाकर लौटते हुए कुछ खायेंगे।" जब तक दोनों यूनीवर्सिटी ऑफिस पहुंची थीं, सूरज सिर पर आ गया था। गेट पर ही, चौकीदार ने एकदम छड़ी से रोका था, "कार्ड दिखाओ जी!" सुनंदा अपना कार्ड भूल आयी थी और दीपा अपने बैग में जब भी हाथ डालती, कार्ड के सिवा और सारे कागज निकल आते थे। उसने धीरे से उससे कहा था, "लेक्चरर हैं, कम से कम गेट के अंदर आने दो, फिर कार्ड भी दिखा देतीं हूं।" पर गेट के चौकीदार ने साफ कहा, "हमें क्या पता तुम कौन हो! कार्ड दिखाओ फिर चाहे चोर रहो चाहे कोई, अपन की ड्यूटी फिनिस।" और दीपा ने अपने बैग को सड़क पर उलट दिया था।

मीतू और काजू उसके बैग को सूटकेस कहते हैं। हर दो दिन के बाद मीतू आ जाती है बैग लिये हुए, "अम्मा, बैग साफ करो न!" और ये उन तीनों का पारिवारिक आनंद बन जाता है, क्योंकि बैग को मीतू और काजल उस एकमात्र कमरे में उलट डालते हैं, देर तक थम-थमकर उसमें से कोई कागज, कोई रबर, कोई छोटी पेंसिल, लिपस्टिक का ढक्कन और पांच पैसे या दस पैसे गिरते हैं, जो अंदर के कपड़े के फट जाने के कारण कहीं इधर-उधर दुबक गये थे। मीतू एक-एक कागज उसे थमाती है। किसी में रोल-नंबर, किसी में 'ब्रेड बटर' का बिल, किसी में छात्राओं का विषय बदलने का आवेदन, कभी किसी कट-पीसवाले का बिल रहता है, और वह जिसे फाड़ने की अनुमति देती है, काजल फाड़ने में बड़ा आनंद अनुभव करता हुआ किलकता है।

पर अभी, सड़क पर बैठकर बैग उलटना, और चौकीदार का कुछ इस तरह देखना कि वे इन दोनों औरतों को बस सींखचों के अंदर ही डालनेवाले हैं और तेज धूप...

कार्ड के मिलते ही दीपा ने उसे चौकीदार के ऊपर फेंक दिया था और चीखी थी "फर्स्ट बिहेव योर सेल्फ! तुम लोग अपने कायदे यहां भी लागू करते हो, यूनीवर्सिटी की टीचर्स से कैसे बिहेव करना चाहिए.....यू विल हैव टु लर्न..."

चौकीदार अपनी ही कह रहा था, "मैंने क्या बुरा कहा जी? मुझे हुक्म मिला है, बिना कार्ड के अंदर मत भेजो, मुझे क्या लेना-देना है! तुम कौन हो? भाड़ में जाओ, क्यों चिल्लाती हो मेरे ऊपर?" उसकी जान-पहचान के 'मेल कलीग्स'

उससे कन्नी कटाकर चले गये थे। वहां एक तमाशा बन गया था। ऊपर से रजिस्ट्रार आये और बहुत ठंडे स्वर में उन्होंने दीपा से कहा, "वह अपनी ड्यूटी कर रहा है ऐंड यू शुडंट क्रियेट ए सीन।"

जब दीपा अकेली ही अपमानिता-सी अंदर गयी थी, तब पे-बिल काउंटर के बाबू बाहर गये हुए थ चाय पीने, और आध घंटे बाद चपरासी ने बताया था, "शौचालय गये होंगे!"

बिना काम किये केवल वक्त और शक्ति को नष्ट करने के गहरे एहसास के साथ जब वह गेट पर लौटी थी, तब अंदर ही अंदर डरी हुई थी। वहां अभी भी चौकीदार चार-पांच आदमियों से कुछ कह रहा था और उसे देखकर जोर-जोर से बोलने लगा था, उसके कानों में—'औरत'... 'चीख रही थी'... 'ड्यूटी'... 'चोर हो या . . .'—शब्द पड़े और उसके पैर रिक्शे की ओर घिसटते रहे।

दोनों रास्ते भर एकदम चुप! सुनंदा चुपचाप अपनी रोड पर उतर गयी थी। 'अच्छा' उसने उतरकर कहा था। दीपा केवल सिर हिलाकर रह गयी थी!

अपने फ्लैट के सामने दीपा ने रिक्शे वाले को सवा रुपये की जगह एक रुपया और बारह आने दिये तो रिक्शेवाला जोर से बोला था, "कितना देते हैं आप!"

"दिखायी नहीं पड़ रहा है क्या?"

"औइत्ता देर हुआं पर भी लगाये, और दीजिए!" उसने हुक्म दिया था।

"देर लगायी है इसीलिए एक रुपये बारह आने मिल रहे हैं और उतना ही मिलेगा बस।"

"ले जाइए इसको भी" और झ—

न्न—न से दो अठन्नियां और तीन चवन्नियां उसके पीछे ही गिरी थीं। दीपा न तो रुकी, न उसने मुड़कर देखा, बस अपनी फ्लैट की सीढ़ियों पर चढ़ती गयी... आज तो पीठ पैर, पिंडली, कहीं कोई भी जलन नहीं।

—द्वारा 'समाचार भारती',
एम-२/४ श्रीकृष्णपुरी, पटना-१३

इंगलैंड का प्रसिद्ध कवि ओलिवर गोल्डस्मिथ (१७३०–१७७४) बड़ा सहृदय और उपकारी पुरुष था। वह चिकित्सा-शास्त्र का भी ज्ञाता था। गरीबों को मुफ्त दवा देकर सेवा करता था। एक गरीब बीमार का स्वास्थ्य निरंतर गिरता जा रहा था। गोल्डस्मिथ ने उस रोगी की देखभाल करके जान लिया कि उसे कोई विशष रोग नहीं है, गरीबी की चिंता में ही वह दिन-ब-दिन क्षीण होता जा रहा है। गोल्डस्मिथ ने रोगी की पत्नी से कहा, "मेरे घर आओ, मैं तुमको बढ़िया दवाई दूंगा, जिससे तुम्हारे पति की सेहत जरूर अच्छी हो जाएगी।" कवि ने उस महिला को एक छोटी-सी पेटी सजाकर सौंप दी और कहा, "जरूरत होने पर ही इस पेटी को खोलना।" घर जाकर महिला ने पेटी खोली तो देखा उसमें सोने की दस गिन्नियां करीने से सजाकर रखी हुई थीं। ऐसे थे परोपकारी गोल्डस्मिथ।

अंगरेज वैज्ञानिक सर हम्फ्री डेवी (१७७८—१८२९) ने एक सुरक्षा-दीप (अभय-दीप) का आविष्कार किया था। कोयले की गहरी खानों में काम करनेवाले मजदूरों के लिए वह वरदान सिद्ध हुआ। उसके द्वारा खानों में होनेवाली दुर्घटनाओं से लोगों की रक्षा हो जाती थी। डेवी ने अपने इस लैंप को पेटेंट नहीं कराया। एक बार एक मित्र ने डेवी से कहा, "अपने इस कीमती आविष्कार को तुमने पेटेंट क्यों नहीं कराया? इसको पेटेंट कराकर तुम आराम से साल भर में दस हजार पौंड तक कमा सकते थे।" डेवी ने कहा, "मैंने तो स्वप्न में भी इस बात का विचार नहीं किया है। मेरा उद्देश्य तो केवल जन-सेवा का है। मैं आसानी से अपनी रोटी कमा लेता हूं। मान लो, मेरे पास इस लैंप द्वारा बहुत-सा धन आ जाता, तो भी उससे मेरी कीर्ति में कोई वृद्धि होनेवाली नहीं थी। जनता का श्रेय ही मेरी सच्ची संपदा है।"

—शंकरदेव विद्यालंकार

डिलावेयर के राज्यपाल रसेल डब्ल्यू. पेटर्सन अपनी सरकारी कार से कहीं

जा रहे थे। अभी उनकी कार राजपथ से थोड़ी दूर ही आगे बढ़ी थी, इसी बीच कोई कार उनके पास से गुजरी। उस कार में बैठे एक सज्जन ने संतरे के छिलके आदि से भरा कागज का थैला बीच सड़क पर फेंक दिया। राज्यपाल पेटर्सन ने अपनी कार रुकवायी और तेजी से उतर उस थैले को उठा लिया। फिर कार में वापस आकर अपने ड्राइवर को उस कार का पीछा करने का आदेश दिया। जब उनकी कार निर्दिष्ट कार के पास पहुंची तो पेटर्सन ने थैले को सामनेवाली कार की खिड़की के अंदर डालते हुए कहा, "क्या यह आपका ही थैला है?" कार के अंदर बैठे हुए सज्जन ने झेंपते हुए कहा, "जी हां, यह मेरा ही थैला है!" पेटर्सन गंभीर हो गये और नम्रतापूर्वक बोले, "यदि आपके पास इसी तरह के और भी थैले हों तो कृपया मुझे देने का कष्ट करें! किंतु अब से अपनी सड़कों को इस तरह कूड़े से गंदा न किया करें।" उन सज्जन को उत्तरदायित्व का एहसास हो गया। **—श्यामबिहारी आलोक**

सिकंदर तथा उसके सैनिक भारत की संत-परंपरा से बहुत प्रभावित थे। एक बार जाड़े के दिनों में उसने कुछ साधुओं को वस्त्रहीन देखकर उन्हें कपड़े बांटने का निश्चय किया। सिकंदर ने नौकरों के सिर पर कपड़ों की गठरी उठवायी और साथ ही वह स्वयं साधुओं के डेरे पर पहुंचा।

"तुम कौन हो? क्या चाहते हो?" एक वृद्ध महात्मा ने पूछा।

"मैं हूं, विश्व-विजेता सिकंदर।"

"क्यों आये हो यहां?"

"आप लोगों को कुछ गरम कपड़े देना चाहता हूं।"

"अरे, हम उससे क्या लें जिसके पास कुछ भी नहीं है?"

सिकंदर को बड़ा आश्चर्य हुआ कि साधु यह क्या कह रहा है? उसने पूछा, "महाराज, मैं आपका मतलब नहीं समझा।"

महात्मा ने सरलता से कहा, "अरे नादान, लूटमार तो वही करता है, जिसके पास कुछ नहीं होता। जा, तेरे वस्त्र लेकर हम क्या करेंगे? तू तो लुटेरा है, दूसरों को लूटता फिर रहा है।" सिकंदर को बड़ी आत्मग्लानि हुई, वह उदास होकर लौट गया। **—सुरेंद्र श्रीवास्तव**

कहानी

● मीना सिंह

सुखद नींद के लिए डॉक्टर द्वारा प्रेस्क्राइव्ड गोली का मीठा-मीठा नशा, गरमियों के मौसम में जल्दी ही धूप निकल आने के बावजूद, साढ़े सात बजे के पहले नहीं टूटता। सुसंगता सुबह नाश्ता करके ईजीचेयर पर बैठ सेंट्रल टेबिल पर पांव पसारे रेडियो पर भूले-बिसरे गीतों का आनंद लेते हुए दूध का पहला ही घूंट भर पायी थी कि दरवाजे पर नॉक होते ही एकबारगी पूर्वाभ्यास की तरह सारा कमरा सतर्क हो गया। छोटे भाइयों के गुनगुनाते स्वर रुक गये। एक हाथ ने आगे बढ़कर रेडियो का वाल्यूम कम कर दिया।

"सत्यानाश! सुबह ही सुबह जाने कौन क्षेपक आ पड़ा!" छोटी बहन का दांत पीसता, खिझाया हुआ स्वर कमरे में चटख गया; और सुसंगता के पांव लापरवाही से टेबिल से सरककर चेयर के नीचे आ पड़े।

"देख यार, देख कौन है?" सुसंगता की आज्ञा पाकर मौके पर शिष्ट हो आये छोटे भाई का धीमा स्वर छोटी बहनों पर बिखर गया।

कमरे के बाहर पुष्पगंधा के बूढ़े पिता दुखी चेहरा लिये खड़े हैं। "पापा तो बराबर की दूकान पर हेयर कटिंग के लिए गये हैं।" अल्प समय से परिचित बूढ़े पुरुष के चेहरे पर घिरी वेदना को देखकर सुसंगता के चेहरे का तनाव एकाएक पिघल गया है। उसके व्यक्तित्व का विरोधाभास! ठीक जैसे एक ही गाछ पर फूलों की सुगंधित कोमलता और कांटों की जहरीली चुभन भी। उसने अकसर अपने व्यक्तित्व की विरोधी स्थितियों पर खीझ, आश्चर्य और आंतरिक संतोष के अनुभवों को जिया है।

आशा के स्वरों को सुनकर भी अन-सुना करके सभी के ढीठ कान सतर्क होकर दरवाजे पर लग गये हैं।

"वो पुष्पी है न, वो कल से बोल नहीं रही है। कल रात को पेट में थोड़ा दर्द हुआ था। डॉक्टर ने गोली दी तो सो गयी, लेकिन सुबह से न जाने क्या हो गया है, बोलती ही नहीं। उसकी मां

रो रही है।" पुप्पी के बाप की पनियायी आंखें असहाय-सी पसर गयी हैं।

किसी ने कुछ कहा तो नहीं था? घर में किसी ने कोई लगनेवाली बात कह दी हो? अकसर किशोर अवस्था में बच्चों को छोटी-छोटी बातें बहुत पिंच कर जाती हैं।... सुसंगता एकाएक प्रौढ़ हो गयी। सुबह-सुबह डिस्टर्ब किये जाने का कसैला भाव जाने कहां सरक गया है। स्वर का आतुर हो जाना और चेहरे पर घिरी बेचैनी अभी कुछ क्षण पहले के व्यक्तित्व को कितना बदल गयी है।

"चलिए, चलकर देखूं तो जरा। लोकल डॉक्टर को बुला लीजिए। बाद में जरूरत पड़ी तो कैजुअल्टी में ले जाइएगा।" और वह बालों को टेंपरेरी जूड़े की शेप में लपेटकर पुप्पी के घर की दूरी, कैंसीरियस घाव की-सी वेदना को चुप्पी से सधाये, तेज-तेज कदमों से चलकर लांघ गयी।

घर में आस-पास की औरतों का बच्चों समेत जमाव। बिरले ही मिले मौके की तरह ऊलजलूल संदर्भों का वास्ता देते हुए तरह-तरह के कमेंट करना। उसने सहज किंतु जिज्ञासु दृष्टि से एक बार भीड़ की ओर देखा। बस, झट एक कमेंट—"देखो, अच्छी-भली लौंडिया को जाने क्या हो गया! मां-बाप परेशान होकर सुबह से रोये जा रहे हैं... और यह महारानी-सी चुप साधे बैठी है! हां, यह भी कोई तमाशा है!...

बोल री! बोलती क्यों नहीं? सभी लोग तेरे बोल के लिए परेशान हुए जा रहे हैं। अच्छी-भली कल शाम को तो बबलू के साथ खेल रही थी। पकौड़ी छान-छानकर मेहमानों को, भाई-बहनों को खिला रही थी। अब क्या हो गया? हां, कोई बात हो, कुछ चाहिए तो बोल मुंह खोलकर।" . . . फिर कुछ सोच-समझकर उसके हकबकाये चेहरे को देखकर शुक्ला आंटी ने अपने पचास वर्ष के अनुभव और अटकलों को भिड़ाते हुए कहा था, "अरे, कुछ हुआ-हवाया

नहीं है। मैं तो कहूं बिटिया, इसे कोई हवा-हुवा लग गयी है। इधर-उधर दोपहरी में सहेलियन के साथ या जाने कहां घूमती फिरे है! हां, क्या ठिकाना, बखत बेला का . . ." कहते-कहते शुक्ला आंटी का स्वर धीमा और संदिग्ध हो उठा था।

अंदर भर आया कसैलापन! निगल लो तो मन कड़वा, उगल दो तो मुंह कड़वा!

पुष्पी के गुम चेहरे पर तनाव आ गया था। बोली कुछ नहीं। बस उठकर ओपेन टैरेस पर आकर चारपाई पर बैठ गयी। चेहरा स्याह पड़ा हुआ था। जैसे न जाने कितने महीने से बीमार हो। कपड़े गंदे, बाल बिखरे। हाथ-पैर ऐसे सुस्त और लिजलिजे जैसे जान ही न बची हो।

एक अबूझापन अजीब गंभीरता के साथ उसके दिमाग पर जम गया। दिमाग को बार-बार झटकने पर भी दूने वेग से विचारों का अंधड़ अंदर तक झकझोर जाता। फिर चुपचाप उसने पुष्पगंधा के बाप को डॉक्टर बुलाने भेज दिया और देर तक पुष्पी को बांहों में लपेटे प्यार और विश्वास से बांधते हुए उसकी तकलीफ जानने का प्रयास करती रही। लेकिन ऐसा महसूस हुआ कि पुष्पगंधा की गंध लुट गयी है। बहुत कोशिश के बाद भी वह कुछ नहीं बोली, बस स्थिर पुतलियों से उसके चेहरे को निहारती रही, जैसे जो विश्वास और प्यार शब्दों में उड़ेला जा रहा है, वह कितना वजनदार है?

और फिर, सुसंगता किसी अनहोनी आशंका के एहसास से अंदर ही अंदर सतर्क होने के बावजूद सिहर गयी। कहीं ऐसा तो नहीं कि पुष्पगंधा कली है और किसी अनुभवी ने खिलने के पहले ही उसकी गंध चुरा ली है?...तभी उसे असुरक्षा की भावना से स्थिर उसके अपने ही चेहरे को घूरती हुई पुष्पगंधा की आंखें याद हो आयीं।...

विवशताएं आदमी को कहां से कहां तक पहुंचा देती हैं। नहीं, किसी-किसी की वृत्ति ही ऐसी होती है—खुदगर्ज़ टाइप की। नैतिकता पेट-भरों की बपौती तो होती नहीं, गरीबों का भी अपना ईमान-धर्म होता है।...ठीक कहते थे शुक्ला अंकल, "तुम बहुत सीधी हो बिटिया, बहुत जल्दी दया आती है तुम्हें, लेकिन यह बड़ा कमीना है। जहां भी शादी हो पास-पड़ोस में, लड़कियों को लेकर बिना बुलाये ही पहुंच जाएगा खाने के लिए।... मेरा सूट ले गया बुड्ढा तो महीने भर में फाड़-फूड़ कर लौटाया। अरे तुम समझती नहीं हो, जरूरतमंद नहीं है, इसकी आदत है मांगने की। हल्दी-नमक से लेकर पैसा तक मांगने पहुंच जाते हैं। बिलकुल थर्ड क्लास फेमिली है।"...और चिढ़ के मारे शुक्ला अंकल का चेहरा तन जाता।

सुनकर कई क्षणों तक सुसंगता का मन भीतर तक तिक्त हो उठता, किंतु किसी को लेकर संशय की आत्म-घुटन को

झेलना जैसे उसकी आदत में शुमार नहीं है। बस, मौन अंधकारों में विचारों का क्रम अलग-अलग संदर्भों और अनुभवों से जुड़ता, देर तक बेचैन किये रहता है। —जिंदगी में कई बार ऐसी स्थितियां आती हैं कि अनिच्छा और अरुचि के बावजूद कब किस बात पर विश्वास करने के लिए विवश होना पड़ेगा, कौन जानता है।... "जीजी, और तो कोई विशेष बात नहीं मालूम। लेकिन, इधर यह कुछ महीनों से कह रही थी कि चाहे पचास रुपये की ही सही, मुझे नौकरी लगवा दो।... नहीं, नहीं, और कोई बात नहीं है। बाहर कोई बात हुई होती तो मुझे पता होता। यह हर बात मुझे बताया करती है।" ...कैजुअलटी में अमोनिया सुंघाने पर पुष्पी चीखी थी, "ये लोग मुझे जबर्दस्ती क्यों बुलवाना चाहते हैं, जब कि मैं नहीं बोलना चाहती। ... आपका क्या जाता है, मैं नहीं बोलती तो।"...पुष्पी डॉक्टर से डरती है। शॉक लगवाने का नाम सुनते ही उसके होश उड़ने लगते हैं। भीड़ और शोर से दहशत होने लगती है। लेकिन, बहुत कोशिश के बाद भी जब वह नहीं बोली तो डॉक्टर ने दूसरे दिन मनोचिकित्सक के पास ले जाने के लिए कहकर घर भेज दिया। संबंधों या परिचितों की गंध नहीं, परिचय की सीमा से परे आत्मीयता और विश्वास की वह चुंबकीय गंध ही थी कि बहुत थोड़े समय में पुष्पी ने सुसंगता का विश्वास कर लिया था। कैजुअलटी जाते वक्त जब कसकर उसके हाथ पकड़ लिये तब जाने कैसी तो
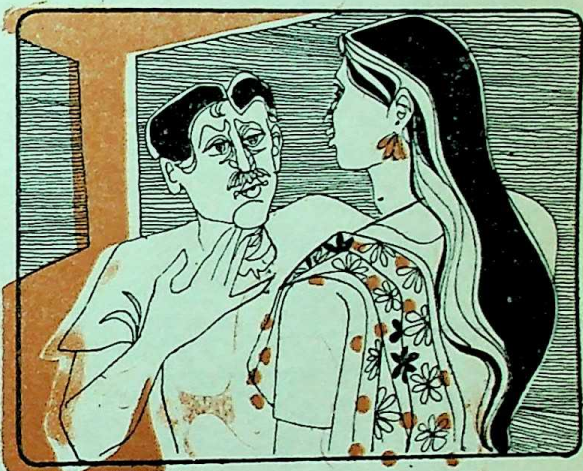
अपरिचित मोहजन्य आंतरिक पीड़ा से उसका मन भर आया और वह कैजुअलटी से दिखाकर उसे उसके घर तक छोड़ गयी थी।

बात चाहे जहां जाकर खत्म हो, लेकिन पुष्पी की बड़ी बहन झूठ कह रही थी। कैसी चालाक मुद्रा है उसकी। जैसे, जाने किस उम्र का अनुभव हो।...

मीठा जहर देकर पुष्पी की बदपरहेजी का सारा कारण-परिणाम उगलवा लिया
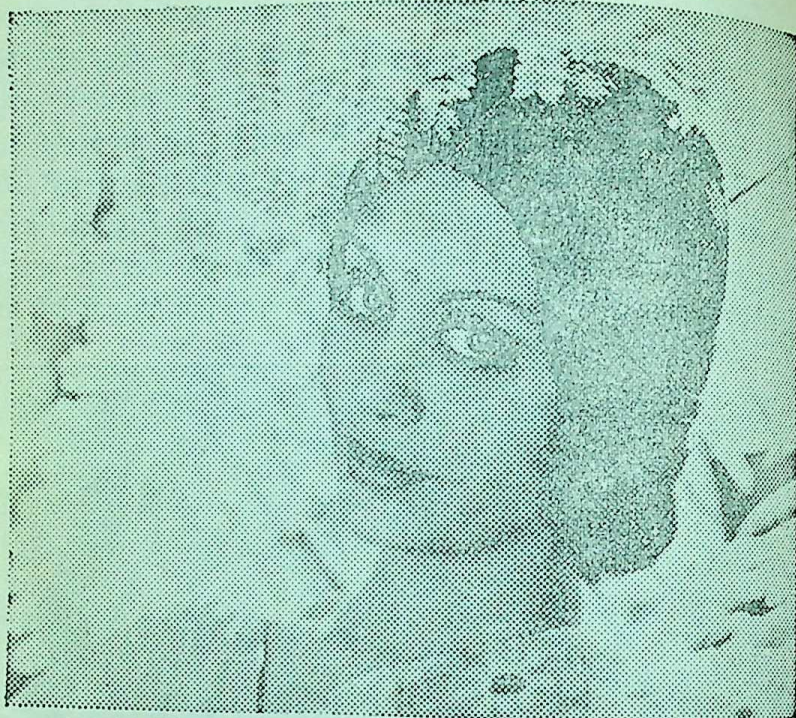
सुसंगता ने। बाद में पुष्पी भले ही आंखें चुराये, लेकिन सुसंगता की अनुमानित आशंकाओं को झूठ का वजनदार तसला औंधाकर ढक नहीं पायी। सरकारी डिस्पेंसरीवाले डॉक्टर बाबू के पास पैर में चोट की दवा लेने गयी थी पुष्पी। तभी डॉक्टर बाबू ने लड़की को सुंदर देखकर बहका लिया। पुष्पी कहती है, "शादी की बात पर मुकरकर उसने उसकी भावनाओं का सिलसिला क्यों तोड़ दिया?"...

"क्या बात है? डॉक्टर इससे शादी करने जाएगा। लव करती है! ये मुंह और मसूर की दाल!"

"तू ज्यादा इन्वाल्व मत होना। मैं तो पहले से इसके बारे में जानता हूं— किसी को भी लिफ्ट दे सकती है।... डॉक्टर इन्हीं के लिए तो बेचैन है।"

व्यंग-वाणों का प्रहार हर तरफ से पुष्पी को नहीं, सुसंगता को सुनना पड़ता है। डॉक्टर से प्रेम की बात सुनकर तो उसे भी हंसी आयी थी, किंतु न जाने किस अव्यक्त भावना ने उसे गंभीर बना दिया।... पुष्पी को डॉक्टर ने छुआ है, प्यार करते हुए चूमा है, और वह वनैली नवयौवना पार्कों और सिनेमाघरों में भी उसके साथ गयी है। डॉक्टर ने ब्याह का वायदा किया था। सारे 'भरम' एकाएक टूटें तो कैसे? सुकुमार उम्र का मोहक भरम!...पुष्पी ने नौवीं-दसवीं कक्षा में बायोलॉजी पढ़ी है, इसीलिए दैहिक वर्जनाओं को विशेष मान्यता नहीं देती,

मीना सिंह: जन्म १९ दिसंबर, १९५० कलकत्ता में। हिंदी में एम. ए.। पहली कहानी 'स्वीकारे हुए मोह का दर्द' १९७२ में 'सारिका' में प्रकाशित। युवा लेखिका मीना सिंह के अनुसार— "आदमी की उसके अंदर मौजूद आदमी से कशमकश की तीखी अभिव्यक्ति ही कहानी है। कहानी में स्वयं को, अपने परिवेश को और चारों ओर होनेवाले छोटे-बड़े ड्रामे को खत्म होने के पूर्व ही हर ऐंगिल से तराशकर फिट करना ही उसकी सार्थकता है।"

परंतु परंपरागत नैतिक मान्यताओं से भी 'भरम' टूटने का भय पहाड़-सा और बित्ते भर की बुद्धि का सामंजस्य हो तो कैसे?... पहाड़-सा भय और वह नाटकीय मौन!

सुसंगता भय की गांठों को खुद ही

चीर-फाड़कर मवाद बहा चुकी है। किसी औरत के मान-अपमान को व्यंग्य के पटाखों-सा फोड़ते जाना, फिर तमाशखोर बच्चों की तरह हंसना। कितनी घृणास्पद लगती है ऐसी हंसी ! ... शुक्ला अंकल ठीक कहते हैं, "पुष्पी का बाप खुदगर्ज है, मां अधपगली।" लेकिन शुक्ला अंकल गलत भी कहते हैं। पुष्पी के बाप के पास खुदगर्जी को रोकने का न दिमाग है न उपाय, परंतु शुक्ला अंकल के पास क्या है, पूछने पर वे आग-बबूला हो जाएंगे।... पानी में पड़ती परछाईं की खूबसूरती क्या, बदसूरती क्या ?

पुष्पी अब बोलने लगी है। सिर का भूत उतर गया है। परीक्षा में साल भर की लापरवाही के कारण फेल हो गयी है। बहुत से कारण हैं शायद इसीलिए सामने आने से पुष्पी सकुचाती है। बात का जवाब ज्यादातर सिर हिलाकर देती है। हमेशा की तरह आत्मदाह में झुलसते चले जाने की स्थिति से बच गयी थी। फिर भी, सामने पड़ते ही उसका झूठ फूस की छाजन-सा उड़ने लगता है, वह छाजन जिसके नीचे किसी तरह छुपकर पुष्पी ने एक रूपक ! रचा था। बड़ी चालाकी से बहनों और बाप की जानकारी में बड़ा ही रोचक रूपक। अनचाहे आर्थिक बोझ से मुक्ति पाने की चिंता में भीतर ही भीतर रूपक की संरचना में योग देता पुष्पी का बाप भी किसी अव्यक्त खुशी की अनहोनी कल्पना में नौसिखिए तैराक की तरह डूब गया था।

सच, 'कल्पना' और 'अनहोनी' दोनों कितने पर्यायवाची शब्द हैं, कितने निकटवर्ती अर्थबोधक !

डॉक्टर ने शॉक लगाने की बात कहकर डरा जो दिया था। उसका दिल अब कांपता है। डॉक्टर का दिया धोखा उसकी चाहना को झुठला नहीं पाएगा, लेकिन पुष्पी अब विपथगामिनी नहीं होना चाहती। मालूम नहीं यह बात कितनी सच है, कितनी झूठ ! हां, पुष्पी का बाप बिना हारी-बीमारी के चिड़चिड़ाने लगा है। आयेदिन उसकी बहनों को पीट देता है। मां को डांटता है।...दहेज देना पड़ेगा। वेतन पूरा पड़ता नहीं। महंगाई है कि लगता है इनसान चीजों को नहीं, चीजें इंसान को खरीद रही हैं। क्या करे कोई ? बोलो, क्या करे ? अभी कल ही तो आया था सुसंगता के पापा के पास—"लड़कियों की कहीं नौकरी लगवा दीजिए, पचास रुपल्ली की ही सही।"

--१४९/सेक्टर १२, रामकृष्णापुरम,
नयी-दिल्ली-११००२२

ऐसी मान्यता है कि अंकशास्त्र कभी गलत नहीं होता, परंतु कुछ 'दक्ष' लोग अंकशास्त्र से जो चाहे सिद्ध कर सकते हैं। उदाहरणार्थ, दस स्त्रियों का एक समूह लें। उसमें एक गर्भवती है, बाकी नौ कुंवारी है। अंकशास्त्र के मान से प्रत्येक कुंवारी दस प्रतिशत गर्भवती है और जो गर्भवती है, वह नब्बे प्रतिशत कुंवारी है।

नारी क्या चाहती है?

'पूर्ण पुरुष' की आकांक्षा

लेख में नारी को मां, बहन, प्रेमिका का हवाला देते हुए उसे भावात्मक सुनहरे दायरों में बांधकर हमेशा की तरह स्वार्थसिद्धि का साधन बनाया गया है। यही सब होता तो भी ठीक था, लेखक महोदय ने तो इस चक्कर में फ्रायड तक को घसीट लिया और नारी की शारीरिक भावात्मक कमजोरी का पुरजोर तर्क यह दिया, "नारी में एक 'महत्त्वपूर्ण अवयव' नहीं होता है और जब उसे इसका पता चलता है तब उसके मन पर जबर्दस्त आघात पहुंचता है। यह आघात उसके मानसिक विकास और शारीरिक गठन में अवरोध उत्पन्न करता है..." अगर मैं यह कहूं कि स्थिति विपरीत भी हो सकती है अर्थात, यही क्यों माना जाए कि नारी में 'अवयव विशेष' का अभाव होता है? यह भी तो कहा जा सकता है कि पुरुष में 'नारी अवयव विशेष' का अभाव होता है, क्योंकि इस अभाव के लिए पुरुष बहुत बड़ी कीमत अदा करता आया है जबकि नारी इसके लिए मनमानी कीमत वसूल करती रही है; चाहे वह आर्थिक हो या भावात्मक अथवा सामाजिक।

सहज विश्वास कर लेने की दृष्टि से भी पुरुष ही मात खाता आया है। बिना किसी ठोस आधार के नारी के कहने मात्र से ही वह पितृत्व-भार को सहज स्वीकार कर लेता है। इसे क्या कहें? पुरुष की कमजोरी अथवा तथाकथित बड़प्पन? वास्तव में लेखक ने फ्रायड के साये में विषय को उभारने की कोशिश की है। यदि नारी की दृष्टि से ही यह सब

फरवरी, १९७५ के अंक में हमने उपर्युक्त शीर्षक से एक लेख प्रकाशित किया था और उसके संबंध में प्रतिक्रियाएं आमंत्रित की थीं। अधिकांश प्रतिक्रियाएं घिसी-पिटी एवं पारंपारिक थीं अतः उनका प्रकाशन नहीं किया जा रहा है। यहां कुछ विशिष्ट एवं रोचक प्रतिक्रियाएं प्रकाशित की जा रही हैं। --सं.

फूलोंवाली चादर

तपिश अंतस की शीतल हो पाये
पानी का भरा गिलास अधरों तक जाए
इसके पहले ही छूट गिरा हाथों से
आज कोई प्यासा द्वार आएगा

बिस्तर पर बिछी हुई रंगीन फूलोंवाली
चादर की सिकुड़न कई बार सुधार चुकी
मैचिंग के लिए बार-बार
तकिये की खोल चढ़ा और उतार चुकी
रंग नहीं मिलता है
आज कोई थका द्वार आएगा

सुबह से कई बार दर्पण निहारकर
मन-ही मन मुझे हंसी आयी है
अधरों पर गुनगुन अंगों में थिरकन
प्यार के अनदेखे रंग-बिरंगे सपनों ने
नयनों में ली अंगड़ाई है

दुलहिन-सी सजधज कर
चाह उमग आयी है
आज कोई प्रेमी द्वार आएगा

—हंसमुखी

—के २४/२४, रामघाट,
वाराणसी-१

सोचा जाए तो कुछ बातें स्पष्ट रूप से समझ में आती हैं। सबसे पहले एकाधिकार की भावना को लीजिए। इस संबंध में कोई भी रियायत करने के लिए तैयार नहीं है, चाहे इस अधिकार को बटानेवाली नारी पुरुष की मां ही क्यों न हो। सास-बहू के झगड़े को इसका प्रत्यक्ष प्रमाण माना जा सकता है।

आजकल पढ़ी-लिखी नारियां इस संबंध में काफी उदार हैं बशर्ते उनकी उपेक्षा न की जाए। एक और बात इसी से जुड़ी हुई है। नारी उन सभी अभावों की पूर्ति पुरुष में देखना चाहती है जिन्हें बचपन से वह पिता, भाई या दोस्त में देखती आयी है। शायद इसीलिए वह 'पूर्ण पुरुष' की कल्पना करती है। इसके अभाव में वह भटक भी सकती है। सामाजिक प्रश्रय अथवा आर्थिक निर्भरता आजकल नारी के लिए बहुत अधिक महत्त्व नहीं रखते। पुरुष-प्रधान समाज ने धर्म, नैतिकता आदि की दुहाई देकर उसे मनोवैज्ञानिक रूप से निर्बल, आश्रित तथा कमजोर बना दिया है। —डॉ. शशि शर्मा

अन्य प्रतिक्रियाएं : प्रायः प्रत्येक पाठिका ने नारी के संबंध में पुरुष-वर्ग की ही परिभाषाएं देकर अपनी बात आगे बढ़ायी है। महर्षि याज्ञवल्क्य, टैगोर, आचार्य रजनीश आदि स्वदेशी विचारकों एवं कवियों से लेकर 'महायौन विज्ञानी' फ्रायड, कोमल भावनाओं के कवि राबर्ट ब्राउनिंग आदि विदेशी विभूतियों

के आर्ष वचन उद्धृत किये गये हैं। अधिकांश पाठिकाएं मूल प्रश्न से हटकर इसी उधेड़बन में पड़ गयी हैं कि नारी को पुरुष क्या समझता है। कमर कसकर वे 'स्वार्थी पुरुष-जाति' के पीछे तो पड़ गयी हैं, लेकिन यह बताना भूल गयी हैं कि आखिर नारी चाहती क्या है!

बिंदकी (फतेहपुर) से **सुधा मिश्रा** के अनुसार नारी किसी-न-किसी रूप में पुरुष का संरक्षण प्राप्त करना चाहती है, चाहे वह पति या प्रेमी के रूप में मिले या पिता अथवा पुत्र के रूप में। चूंकि वह संरक्षण चाहती है अतः वह ठकुरसुहाती करनेवाले पति या प्रेमी से घृणा करती है। **शीला मैत्रा** (रायपुर) के विचार में नारी अपने समर्पण के एवज में पुरुष का साहचर्य चाहती है। यह पुरुष उसका पिता, पति या और कोई भी हो सकता है। रायपुर की ही **पुष्पा शर्मा** पहले तो कह गयीं कि नारी की कोई इच्छा या अभिलाषा नहीं होती, वह तो त्याग और तपस्या की साक्षात प्रतिमूर्ति होती है; लेकिन प्रतिक्रिया के समापन में वह यह लिखने से नहीं चूकीं कि नारी पुरुष की दासी या बंदिनी न होकर उसकी सहयोगिनी एवं मित्र बनना चाहती है, पुरुष से वह आदर की आकांक्षिणी है। **मंजुल चंचला** (फैजाबाद) की राय में चिर-भिखारिणी नारी की युगों से यही लालसा रही है कि जितना उसने पुरुष को दिया है केवल वही वापस मिल जाए। इंदौर की **प्रेम तुलस्यान** कहती हैं कि घर और बच्चों के बीच स्वयं को पूरी तरह खपा देने के बाद नारी के लिए यह सोचने-समझने की गुंजाइश ही नहीं रहती कि वह क्या चाहती है। **जेबा रियाज** (कानपुर) के विचार में नारी सामाजिक प्रतिष्ठा, 'ही मैन' पति, संतान, यौनेच्छा-पूर्ति, वस्त्राभूषण तथा आर्थिक स्वतंत्रता की आकांक्षिणी है। नागपुर की **कुसुम श्रीवास्तव** के अनुसार नारी अपने स्वतंत्र अस्तित्व की स्वीकृति तथा अपनी प्रतिभा, आस्था, सौंदर्य, विश्वास तथा कमियों को एक नये मानवीय दृष्टिकोण से देखे जाने की आकांक्षिणी है। कोटपूतली (जयपुर) की **कमला जोशी** की राय में सृष्टि के उत्पादन एवं संरक्षण-कार्य के संपादन के लिए नारी पुरुष का सहयोग चाहती है।

'मैं तो यही कहूंगा कि नारी चूहे के भय से ही पुरुष के सहयोग की आकांक्षिणी होती है।'

कुअंक भाल कैं

• नीला चावला

कौन नहीं जानता कि यह वर्ष 'नारी वर्ष' के एक खूबसूरत नाम और महक के साथ घोषित ही नहीं किया गया, वरन मनाया भी जा रहा है ! कह सकते हैं कि एक शोर है, जो हर जमीन पर, हर भाषा में और हर खान-पान में मिलावट की तरह प्रयोग किया जा रहा है। जब किसी वस्तु का इतना अधिक प्रचार-प्रसार किया जाता है, तब निश्चय ही वह चीज बाजार से उठ जाती है और तस्करी को पर खोलने का सुअवसर मिल जाता है। घटिया चीज को बढ़िया लेबल लगाकर उसकी उपयोगिता लोगों की नजर में बढ़ायी गयी है और वास्तविकता को किनारे रख दिया गया है। खैर साहब, एक शोर है ! हम भी क्यों न इसमें शामिल हो जाएं : पर एक सहज स्वाभाविक सवाल है—"नारी को वास्तव में कितने प्रतिशत स्वतंत्रता मिली है ?"

जी हां ! यह तो ठीक है, हर क्षेत्र में नारी आगे आ रही है ! पर क्या उसके व्यक्तित्व - निर्माण में यह स्वतंत्रता सहायक हुई है ? हमारे सामने एक नहीं, अनेक उदाहरण ऐसे हैं जो इस 'नारी-वर्ष' के संदर्भ में 'श्लाघनीय' हैं। लीजिए, दो-चार का 'रस-पान' कीजिए, और देखिए नारी-व्यक्तित्व के निर्माण का 'उज्ज्वल-पक्ष' !

विश्वविद्यालय की स्नातकोत्तर युवती ! विवाह एक वैज्ञानिक से ! साहब घर आये मित्रों से पत्नी का परिचय कराते हैं। पत्नी पूछे गये सवालों का

निस्संकोच जवाब देती जाती है । . . . और मित्रों के जाते ही पति का आरोप— "तुम फ्लर्ट हो।" बात यहीं तक नहीं ! उसे बाप के घर वापस भेज दिया जाता है। कभी 'मेडिकल चेकअप' कि यह पागल है, शादी का एक वर्ष नहीं बीतता, पति के साथ वह दो सप्ताह भी नहीं रहने पाती, उसे बांझ घोषित कर दिया जाता है। उस लड़की की दशा क्या होगी ?

दूसरा उदाहरण, प्रतिभाशाली लड़की की शादी। मां-बाप थे नहीं, लड़के वाले स्वयं प्रस्ताव लाये थे। लिखने-पढ़ने में शौकीन, डबल एम. ए. लड़की। लड़के के परिवार को पहले ही बता दिया गया था—"भाई हैं, जो चाहेंगे, करेंगे ! अगर आपकी कोई मांग हो तो हमें शादी नहीं करनी !" इसके बावजूद शादी पर ही ससुर और उसका बेटा, दोनों अकड़ गये—"प्रबंध ठीक नहीं है !" शादी के बाद पहली रात 'दूल्हा मियां' पत्नी से कहते हैं, "मैंने शादी अपने माता-पिता के लिए की है। मुझे कोई दिलचस्पी नहीं।" यह पहली मुलाकात थी !

उधर ससुर, सुबह से शाम गालियां। न कहीं जाने-आने की स्वतंत्रता, न पुस्तकें पढ़ने की, न डायरी लिखने की। गरमी में बहू कमरे में पंखा चला ले, तो ससुर गालियां शुरू कर देते ! सिर के बाल न दिखायी दें, पीठ न दिखे, परदेदारी का यह हाल और ससुर महाशय कमरे में इस तरह घुसते हैं गोया सब्जी-बाजार में आये हों दबे पांव ! यानी बहू किसी समय भी घर को घर नहीं समझ पाती ! दिन भर चूल्हा-चौका ! जब कभी सुस्ताने बैठो, ससुर खोपड़ी पर आ खड़े होते हैं, "सिलाई करो महारानी, या रामायण पढ़ो !" यह उस नवविवाहिता, सुशिक्षित

लड़की के लिए आदेश है जिसकी सबसे ज्यादा रुचि पढ़ने और लिखने में थी ! पति ने तो पहले ही छुट्टी कर दी थी, मां-बाप थे नहीं, भाइयों ने किसी तरह शादी की थी, कोई विकल्प नहीं इस स्थिति में छुटकारे का !

तीसरा किस्सा - पति ने पत्नी को

सुंदरियों के लिए
एक निराला नया साबुन

निर्वस्त्र करके तेल छिड़ककर इसलिए जला दिया क्योंकि उसने पति की बात नहीं मानी और उसके लिए अपने बाप से रुपया नहीं मांगा !

चौथी घटना--पत्नी नौकरी कर रही है। ससुर पैसा अपने पास जमा करवा लेते हैं और वह अपना जेबखर्च भी पूरा नहीं पाती। उस पर घर का सारा काम !

ध्यान रहे, ये सब लड़कियां एम. ए. और उससे भी अधिक शिक्षित हैं, लेकिन कोई भी पति का घर इसलिए नहीं छोड़ सकती कि समाज में ऐसी स्त्रियों का क्या स्थान है—वे जानती हैं। जब से उन्होंने आंखें खोली हैं, पुरुष-समाज में उन्होंने गुलामी ही देखी है . . . इस शानदार उदार वाक्य के साथ —'स्त्री घर की लक्ष्मी है!' या 'जहां स्त्री का सम्मान होता है वहां देवता निवास करते हैं!'

इस 'महिला वर्ष' के संदर्भ में हम यह सोचना चाहते हैं कि क्या वास्तव में इन मीठी नीति-कथाओं में कोई तत्त्व है? नहीं, यह स्त्री को सदैव से छलने के पुराने और कारगर नुस्खे हैं जो हर युग में अपनाये जाते रहे हैं . . नये-नये लेबिलों के साथ, ताकि नकेल कभी ढीली न होने पाये ! बैल को जब नकेल में कसा जाता है तब उसके गले में घुंघरुओं को, पीठ पर रंगीन चादर डालकर उसे सुंदर बनाया जाता है ! पांव में झांझर बांधी जाती हैं, ताकि जब वह चले तो अपनी ही आवाज पर मुग्ध होता रहे ! उसे लगे कि उसका बहुत महत्त्व है ! 'नारी' को हमेशा इस 'बैल' की तरह गुमराह किया जाता रहा है, और लोग अब तक कर रहे हैं !

कभी लोगों ने 'पुरुष-वर्ष' का नाम क्यों नहीं सुना ? सब जगह यह अफवाह है कि पति 'गुलाम' होता है ! हास्य-नाटिकाएं स्त्रियों पर लिखी जाती हैं ! जब कोई बात जड़ से ही विपरीत होती है, तब उसे इसी तरह प्रचार द्वारा उलटा जाता है ! पुरुष सत्ता का प्रतीक है। सलमा सिद्दीकी ने इसी संदर्भ में कहा था, "चली है रस्म, न कोई सिर उठा के चले।" जी हां, लड़कियों को जब सिर उठाने की इजाजत नहीं तब व्यक्तित्व-निर्माण का प्रश्न ही कहां उठता है? इसके विपरीत समय-समय पर उनका 'पर्सनैलिटी मर्डर' किया गया है ताकि वे समाज की संपदा बनी रहें। यह साजिश उसके जन्म के साथ शुरू हो जाती है, पक्षी को पकड़कर शैशव में ही पर काट देने की तरह ताकि वह परवाज का मतलब ही न समझ सके ! महिला के माथे की भाग्यलिपि ही शायद टेढ़ी-मेढ़ी है । काश, कभी मिट पाते ये कुअंक भाल के ! इस 'महिला वर्ष' में एक शैर याद आता है—"बड़ा शोर सुनते थे पहलू में दिल का जो चीरा तो कतरा-ए-खूं न निकला !"

कोई संपादक इसे छापेगा शक है ।

—चावला स्टोर्स, बाबूगंज, लखनऊ

स्त्रियों की अंतर्राष्ट्रीय दुर्बलताएं

• हरपाल कौर

महिलाओं में यह प्रवृत्ति देखी गयी है कि वे प्रायः अपनी सही आयु नहीं बताती हैं, कुछ वर्ष घटाकर बताती हैं। यह दुर्बलता विश्व-व्यापी है और अनादि-काल से स्त्रियां इसका शिकार हैं। अनुमान लगाया गया है कि बाईस-तेईस वर्ष की आयु की स्त्रियां चार-पांच वर्ष की चोरी करती हैं और अपनी उम्र सत्रह-अठारह वर्ष बताती हैं। चौबीस और तीस वर्ष की आयु में स्त्रियां छह-सात वर्ष और तीस तथा पचास वर्ष की उम्रवाली स्त्रियां दस-बारह वर्ष आसानी से चुरा लेती हैं। किंतु रोचक बात यह है कि हजार प्रयत्न करने और झूठ के बावजूद सही उम्र छिपाये नहीं छिपती। जरा किसी स्त्री से उसकी आयु पूछिए तब उसके चेहरे के उतार-चढ़ाव देखने लायक होंगे।
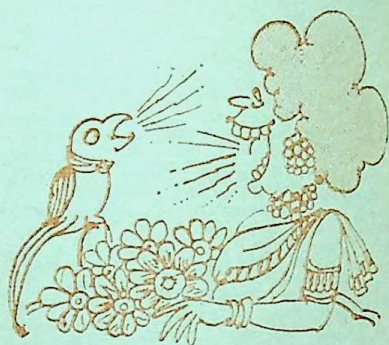
कभी न खत्म होनेवाली बात

स्त्रियों में दूसरी विशेषता यह होती है कि वे लगातार बोलती रहती हैं और बोलते हुए कभी थकती नहीं। यह ऐसी दुर्बलता है जिससे मतभेद की कोई गुंजाइश ही नहीं है। ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में मनोविज्ञान विभाग के डायरेक्टर प्रो. ए. सी. ओल्डफील्ड ने इस बारे में जो आंकड़े एकत्रित किये हैं, उनके अनुसार एक स्त्री दिन के बारह घंटों में से नौ घंटे बातों में ही नष्ट कर देती है, जबकि एक पुरुष केवल सात घंटे नष्ट करता है। जरमनी और इंगलैंड के तीन डॉक्टरों ने, जो गले के रोगों के विशेषज्ञ हैं, यह सिद्ध

करने के लिए कि स्त्रियां पुरुषों से अधिक बातूनी हैं, एक वैज्ञानिक सिद्धांत बनाया है। उनका दावा है कि स्त्रियों की आवाज की रगें पुरुषों की अपेक्षा अधिक नरम, लचकदार और कोमल होती हैं और उन रगों में हर वातावरण में गतिशील रहने की विशेषता होती है। यही कारण है कि स्त्रियां हर जगह और हर अवसर पर वार्तालाप करने से नहीं चूकतीं।

यह भी कहा जाता है कि पुरुषों की तुलना में स्त्रियां कमअक्ल होती हैं। अमरीका, इंगलड, चीन, जापान, फ्रांस और संसार के अन्य देशों के विश्व-विद्यालयों के परिणाम इस बात की पुष्टि करते हैं।

ईर्ष्यालु स्वभाव

जी हां, यह भी स्त्रियों की एक दुर्बलता है। कोई स्त्री न तो यह सहन कर सकती है कि उसकी तुलना में किसी अन्य स्त्री को सुंदर समझा जाए और न ही यह सहन कर सकती है कि उसका पति किसी अन्य स्त्री को पत्नी बनाने की बात सोचे। कमाल की बात तो यह है कि मां बेटी से ईर्ष्या करती है और बेटी मां से, बहू सास से और सास बहू से और बहन बहन से। एक चीनी कहावत है कि जब मैं बहू थी तब मुझे सास अच्छी नहीं मिली और जब मैं सास हूं तो बहू अच्छी नहीं है।

आंसू : अंतिम हथियार

पुरुष की तुलना में स्त्री बात-बात पर आंसू बहाने लगती है। पति-पत्नी के झगड़े में जब स्त्री के पास तर्क समाप्त हो जाएं तब

वह रोना शुरू कर देती है और अपने आंसुओं के हथियार से काम लेकर पति को काबू में करती है। संभव है कि पश्चिमी संसार के किसी मनचले ने इस संदंध में आंकड़े भी एकत्रित किये हों, किंतु अनुमान यही है कि एक पुरुष अपने सारे जीवन में जितना रोता है, स्त्री यह रिकार्ड एक ही अवसर पर तोड़ देती है।

प्रदर्शन की भूख

कौन ऐसी स्त्री है जो इस सत्य को झुठलायेगी कि उसमें प्रसिद्धि प्राप्त करने और झूठे प्रदर्शन की भावना नहीं। मेकअप से लैस होकर पुरुषों के लिए चित्ताकर्षक बनना और उनकी सहनशीलता की परीक्षा लेना सामान्य बात है। स्त्री अपने चारों ओर गहनों और कपड़ों के ढेर लगवाकर भी संतुष्ट नहीं होती और सदा 'और गहने, और कपड़े' का नारा लगाती रहती रहती है।

संकीर्ण दृष्टिकोण

धन, स्त्री और धरती के सभी झगड़ों में

स्त्री ही मुख्य रोल अदा करती है। स्त्री की तंगदिली के कारण नित्य नये झगड़े पैदा होते रहते हैं। पुरुष जैसे ही कारखाने, खेल, दफ्तर या अस्पताल से लौटकर घर आता है; स्त्री शिकायतों का दफ्तर खोलकर बैठ जाती है और घर के वातावरण को नरक का नमूना बना देती है।

कितनी दुर्बल ?

स्त्रियां पुरुषों की अपेक्षा हर तरह से दुर्बल मानी जाती हैं। स्त्रियों की शारीरिक बनावट, दिमागी विशेषताएं, चलने का अंदाज और रफ्तार, यहां तक कि आवाज भी बारीक, नरम और लचकदार होती हैं। स्त्री के दुर्बल होने का प्रमाण वे सारे कानून हैं जिनके अधीन उसे कठोर परिश्रम वाले कामों से छुट्टी दी गयी है।

स्त्रियां जिन्न-भूत से लेकर चूहे, छिपकली और कीट-पतंगे तक से डर जाती हैं और कई बार तो उन्हें अपनी ही छाया से डरते हुए देखा गया है।

पुरुष पर निर्भरता

जी हां, यह उसकी सबसे बड़ी दुर्बलता है। हर कदम हर मोड़ और हर जगह पर वह पुरुष के सहारे, सहायता और सहयोग की मोहताज है। फ्रांसीसी स्त्रियों ने पुरुषों में जो पंद्रह अंतर्राष्ट्रीय दुर्बलताएं निकाली हैं, इस काम में भी उन्होंने पुरुषों की ही सहायता प्राप्त की थी। क्या इस सत्य के बाद भी इस दावे के लिए अन्य किसी प्रमाण की आवश्यकता बाकी रह जाती है?

भेद नहीं छुपा सकतीं

स्त्री की इस दुर्बलता ने संसार में जितने तूफान और हंगामे खड़े किये हैं, उनका विवरण देने के लिए ढेरों कागज चाहिए। जब भी किसी स्त्री को कोई भेद बताया गया है, उसने उसका भांडा अवश्य फोड़ा है। यहां तक कि कई स्त्रियों ने अपने पति के ऐसे भेद भी खोल दिये हैं जिनके कारण बेचारे पति को प्राण से भी हाथ धोना पड़ा। स्त्रियां भेद की बात जब तक दूसरे से न कह दें, उन्हें शांति नहीं मिलती।

—सी ३४, सुदर्शन पार्क, मोतीनगर, नयी दिल्ली-१५

एक स्टोर में पति-पत्नी कपड़ा खरीदने गये, इसी बीच पत्नी किसी अन्य विभाग में चल दी। पति ने परेशान होकर मैनेजर से पूछा, "ओह! इतनी देर में वह कहां चली गयी?"

मैनेजर ने कहा, "घबराइए नहीं, मेहरबान। आप इस स्टोर में किसी सेल्सगर्ल से हंसकर बातें करने लगिए, आपकी पत्नी दौड़कर आपके पास पहुंच जाएंगी।"

प्रवेश

सलवटों का समुद्र

ऐसी छांह को लेकर मैं क्या करूं
जो जाने-अनजाने, सहला देती है धूप को
हिलती हुई खिड़की के शीशे से खेलता
धूप का टुकड़ा
बिस्तर की सलवटों के समुद्र पर
डोल जाता है किश्ती-सा
कैसे लिखूं
बूढ़े शब्द गीले कागज पर फैलती स्याही-से
आगे बढ़ने से इनकार कर देते हैं
अनजाने अवरोध
अपर्ण तरुओं-से सिर उठाये
निष्पंद,अर्थों को छू-छूकर मटमैला कर देते हैं
धूप का टुकड़ा
आश्रय के साथ दिशा बदलता रहता है
सलवटें खिच जाती हैं
बूढ़े शब्द बैसाखियों के सहारे
झुके-झुके चल पड़ते हैं
ठूंठे तनों की मिट्टी झरते-झरते
मटमैलेपन का अंदाज गलत सिद्धकर जाती है
निष्पंद शब्दों से निष्पन्न अर्थ
स्याही का एक धब्बा छोड़ जाता है
कहते हैं, पुरानी मिट्टी से भी
नया अंकुर निकलनेवाला है

--रेवती केलकर

(द्वारा—श्री एस. वी. केलकर, दि अपर दोआब शुगर मिल्स लि.,शामली-२४७७७६, जिला-मुजफ्फरनगर)

"२ मई १९५४ को जन्म। मातृभाषा मराठी होते हुए बी. ए. में अध्ययन करते समय, हिंदी में कहानियां और कविताएं लिखना प्रारंभ किया। एक स्थानीय स्नातकोत्तर विद्यालय द्वारा आयोजित प्रतियोगिता में कहानियां और कविताएं पुरस्कृत। संप्रति महादेवी कॉलेज, देहरादून में एम. ए. (हिंदी) की अंतिम वर्ष की छात्रा।"

● पी. टी. सुंदरम
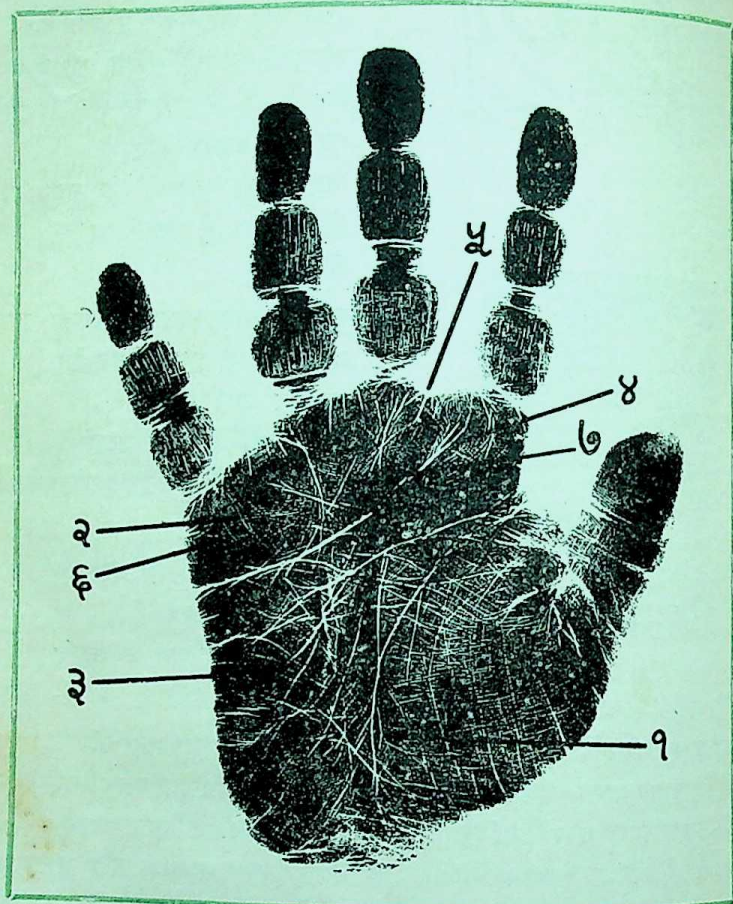
हमारे सामने एक महिला का हाथ है। अध्ययन के लिए हमारी वही रीति होगी, जो हमने पिछले अंक में प्रकाशित हाथ के छापे के अध्ययन में अपनायी थी, अर्थात पहले हाथ की बनावट, फिर विभिन्न पर्वतों एवं अंत में रेखाओं का अध्ययन।

हाथ की चौकोर बनावट से स्पष्ट है कि यह गुरु-प्रबल अथवा 'ज्यूपिटीरियन' है। जिस महिला का यह हाथ है, वह अवश्य व्यावहारिक होगी, क्योंकि ऐसे हाथों की यह विशेषता है। जैसा कि हमने पहले बताया है ऐसे व्यक्ति कला, साहित्य

एवं परंपराओं के प्रेमी होते हैं। ऐसे हाथों-वाले व्यक्ति व्यावहारिक भी होते हैं। सुविकसित शुक्र-पर्वत तथा स्पष्ट सूर्य-रेखा से भी यही बात पुष्ट होती है कि यह महिला कला, साहित्य, संगीत में अच्छी-खासी रुचि लेती है। विशाल शुक्र-पर्वत से यह भी पता चलता है कि वह काफी खर्चीली, वेशभूषा में सतर्क ढंग से रहनेवाली है।

अब रेखाओं को लें। सबसे पहले जीवन-रेखा। इस हाथ में जीवन-रेखा स्पष्ट है, किंतु उसके प्रारंभ और अंत में द्वीप हैं। द्वीपों की उपस्थिति किसी सकता है। (चित्र में–१) इन दो अशुभ चिह्नों के अतिरिक्त जीवन-रेखा साफ-सुथरी है, अतः सामान्यतः स्वास्थ्य ठीक होना चाहिए।

अब मस्तिष्क-रेखा। मस्तिष्क-रेखा काफी स्पष्ट और शक्तिशाली है। वह दोहरी भी है। इससे पता चलता है, यह महिला काफी पढ़ी-लिखी है एवं डिग्रियां भी हासिल की हैं। बुध पर स्थित खड़ी लकीरें भी यही दर्शाती हैं। (देखें, चित्र में : २) मस्तिष्क-रेखा को अंत में कई रेखाएं काट रही हैं। इसका अर्थ यह

एक सफल व्यावहारिक हाथ

भी रेखा पर अच्छी नहीं मानी जाती। जीवन-रेखा पर शुरू में स्थित द्वीप यह बतलाता है कि प्रारंभ में इस महिला का स्वास्थ्य ठीक नहीं रहा होगा। चूंकि जीवन-रेखा के साथ-साथ स्पष्ट सहायक रेखा भी है अतः स्वास्थ्य के कारण जीवन में उपस्थित संकट टल गये होंगे। इस महिला को शायद आपरेशन भी करवाना पड़ा हो।

जीवन-रेखा के अंत के पूर्व भी एक द्वीप है। इससे यही पता चलता है कि ५८ वर्ष की अवस्था में इस महिला को पेट का ऑपरेशन करवाना पड़ेगा। चूंकि यह आपरेशन कुछ कठिन होगा, इसलिए जीवन के लिए वह संकट भी उपस्थित कर

है कि यह महिला कभी तो काफी प्रसन्न होती है और कभी बेहद परेशान। वह तार्किक भी होगी।

अब भाग्य-रेखा को लें। भाग्य-रेखा को देखने से स्पष्ट होता है कि इस महिला का जीवन २६, २७ वर्ष की अवस्था के बाद ज्यादा सुखकर रहा है। यह स्थिति ५८ वर्ष की अवस्था तक बनी रहेगी। इस हाथ में एक से अधिक भाग्य-रेखाएं हैं। इनमें से एक भाग्य-रेखा जीवन-रेखा से निकल रही है तो दूसरी चंद्र-पर्वत से निकलकर शनि-पर्वत तक पहुंच रही है। ये सब सौभाग्यसूचक चिह्न हैं। उनके अतिरिक्त चंद्र-पर्वत पर, शुक्र-पर्वत की ओर झुका एक वृत भी समृद्धि का सूचक

है। (चित्र में–३) ऐसे चिह्नवाले व्यक्ति बहुत अधिक संपन्न होते हैं। इसे बहुत अच्छा चिह्न माना गया है। यदि यह महिला कोई व्यापार-व्यवसाय करे तो उससे काफी लाभ होगा।

अब हृदय-रेखा का अध्ययन करें। जीवन एवं भाग्य-रेखाओं की भांति हृदय-रेखा भी काफी स्पष्ट और गहरी है। बुध-पर्वत से शुरू होकर वह गुरु-पर्वत तक चली गयी है। (चित्र में–४) इसका अर्थ यही है कि यह महिला अपने क्षेत्र में लोकप्रिय होगी। चूंकि उसमें दूसरों की सहायता करने की भी प्रवृत्ति है, अतः लोग उसके पास सहायता मांगने आते होंगे। उसे साहित्य, संगीत आदि से भी लगाव है, और वह एक समाजसेविका के रूप में भी जानी जाती होगी।

कुल मिलाकर यह एक सुखी, संपन्न व्यावहारिक महिला का हाथ है। इस हाथ में कुछ और अच्छे चिह्न हैं, जिनकी ओर हम विशेष ध्यान दिलाना चाहेंगे, जैसे शनि-पर्वत पर स्थित मत्स्य, अर्थात मछली का चिह्न (चित्र में–५)। इससे पता चलता है कि ४५ वर्ष की अवस्था के बाद यह महिला वहुत अधिक धनी और सुखी होगी। बच्चों की ओर से भी उसे सुख मिलेगा। उसका अपना एक सुंदर मकान भी होगा। यह बात भाग्य-रेखा से मिलते चतुर्भुज से स्पष्ट होती है।

अब एक ऐसी बात, जिस पर इस महिला को विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। यद्यपि इस महिला का वर्तमान वैवाहिक जीवन सुखी है और रहेगा, पर भविष्य में अपने पति से किन्हीं प्रश्नों पर उसका मतभेद हो सकता है। कई बार गलतफहमियां होने की पूरी संभावनाएं हैं, अतः पारिवारिक दृष्टिकोण में उसे सावधान रहना चाहिए तथा प्रयत्न करना चाहिए कि ऐसी अप्रिय स्थिति ही उत्पन्न न हो। यह चेतावनी मैं विवाह-रेखा देख कर दे रहा हूं। इस हाथ में विवाह-रेखा अंत में द्विमुखी हो गयी है (चित्र में ६)। ऐसा चिह्न न महिलाओं और न पुरुषों के हाथ में अच्छा माना जाता है।

इस महिला के हाथ में सूर्य-पर्वत से एक रेखा शनि-पर्वत की ओर जा रही है (चित्र में ७)। यह इस बात का द्योतक है कि यदि इस महिला के पति राजनीति में जाएं तो उन्हें काफी सफलता मिलेगी और लाभ भी होगा। इसमें उन्हें अपनी पत्नी के भाग्य से काफी सहायता मिलेगी।

खां साहब के नौकर ने आकर कहा, "बावरची नौकरी छोड़ रहा है।" खां साहब ने उसे बुलवा भेजा।

बावरची आया तो उन्होंने डपटकर पूछा, "क्या कह रहा था तू?" उसने कहा, "मैंने कहलवा भेजा था कि हमारी तनख्वाह बढ़ा दें वरना..."

खां साहब ने डंडा तान लिया और कहा, "हां कहो, 'वरना' के बाद क्या करेगा?" बावरची ने सिर झुकाकर जवाब दिया, "वरना इसी तनख्वाह पर रहेंगे।"

बचत के आठ सुझाव उन्हें दिये। अब आठ मास बीतने को आ गये। कई स्मरण-पत्रों के बावजूद अभी तक मुझे कोई स्वीकारोक्ति-पत्र प्राप्त नहीं हुआ है! अब आप ही बताइए, कमी हम मजदूर-नौकरों में है या सत्ताधीश नेता एवं मालिकों में ?

—वेदप्रकाश कपूर, गार्ड, प. रे., ईदगाह, आगरा स्टेशन

बीस वर्ष से मैं रेलवे में सेवारत हूं। पाता हूं कि रेलवे में दस-बीस लाख की ही नहीं, करोड़ों रुपयों की प्रति वर्ष बचत की जा सकती है। सौभाग्य से पिछले वर्ष मुझे माननीय कुरेशी साहब से रेलवे-बोर्ड के दफ्तर में मिलने का सौभाग्य मिला। मैंने उन्हें बताया—पोस्ट ऐंड टेलीग्राफ डिपार्टमेंट ने 'बुक्स ऐंड फार्म्स' के संबंध में एक करोड़ रुपये प्रतिवर्ष की बचत की है। अपनी रेलों में 'बुक्स ऐंड फार्म्स' आदि के आकारों तथा प्रयोगों में घोर अराजकता तथा अंतर है। अधिकतर फार्म एक तरफ प्रयोग में आते हैं तथा आधे से अधिक खाली रहते हैं। यदि इन्हें युक्तिसंगत कर दिया जाए तो लगभग छह करोड़ रुपये प्रतिवर्ष की बचत की जा सकती है। मैंने कई फार्म उनके समक्ष (बोर्ड के अन्य सदस्य तथा निदेशक भी मौजूद थे) प्रस्तुत किये तथा उन सबकी प्रशंसा अर्जित की।

मैंने पंद्रह, बीस करोड़ रुपये तक की

हमारे कारखाने को विमान-संबंधी उपकरणों को बनाने का एक बड़ा विदेशी आर्डर प्राप्त हुआ। स्वाभाविक ही था कि हम छोटे कर्मचारियों में इस चुनौतीपूर्ण कार्य को पूरा कर डालने का जोश उमड़ पड़ता। काम शुरू हुआ और बिजली-संकट तथा तनावपूर्ण श्रम-संबंधों के बावजूद अनुमानित अवधि से बहुत पहले पूरा हो गया। इस दौरान उच्च-श्रेणी के अधिकारी-वर्ग के लिए नये-नये पदों की सृष्टि हुई। काम पूरा हो जाने के वर्ष भर बाद भी पदोन्नतियों की बाढ़ जारी रही। इसे विडंबना ही कहिए कि निचले स्तर के कर्मचारियों के लिए पदोन्नति के अवसर तो दूर, सामूहिक तबादले, छंटनी आदि की तलवार हमारे सिर पर लटक रही है।

हमारी सहयोगी यूनिट के महाप्रबंधक महोदय ने हमारे काम से खुश होकर सौ रुपये का 'पुरस्कार' भेजा। साथ ही अनुरोध भी किया कि इस रकम को जल्दी-

से-जल्दी चाय-पानी के लिए वितरित कर दिया जाए (प्रति-व्यक्ति सोलह पैसे के हिसाब से)। इसे कहते हैं, 'जले पर चाय छिड़कना'। मैंने तथा कुछ अन्य साथियों ने अपना हिस्सा लेने से इनकार कर दिया, पर अपने उन सहयोगियों को क्या कहूं जिनका संचित आक्रोश संबंधित अधिकारी महोदय की 'सहृदयता' के सम्मुख विनीत भाव से खड़ा है।

कहकहों के दौर के बीच चाय-पार्टी चली। कार्यालय अधीक्षक छोटी-छोटी बातों को आत्मसम्मान का प्रश्न बना लेनेवालों के 'कुचक्र' से सावधान रहने की अपील करते रहे।

—श्रीनाथ, ११०/२२६, जवाहर नगर, कानपुर-१२

मैं एक उच्च विद्यालय में प्रधानाध्यापक था। एक परिचित शिक्षक ने मेरे कार्यालय में आकर कहा कि विद्यालय के मंत्री महोदय ने मुझे विद्यालय में काम करने के लिए भेजा है। लेकिन मेरे मांगने पर भी उन्होंने कोई नियुक्तिपत्र नहीं दिया। शिक्षक कामचलाऊ थे और विद्यालय में शिक्षकों की कमी थी, मंत्री महोदय का मौखिक आदेश भी था; अतः मैंने पढ़ाने की मौखिक अनुमति दे दी। सोचा, मंत्री के लौटने पर रविवार को उनसे बातें कर लूंगा। इधर शिक्षक उपस्थिति-पंजिका पर अपने दस्तखत नहीं करने देने के लिए मुझे ही दोषी ठहराये जा रहे थे। एक रोज उन्होंने सभी शिक्षकों के बीच यह सवाल उठा दिया। मैंने स्वाभाविक ढंग से कहा कि आप उसी रोज से पंजिका पर अपने दस्तखत करेंगे जिस दिन से काम कर रहे हैं, लेकिन मंत्री महोदय का नियक्तिपत्र पाने के बाद ही। उन्हें यों उत्तेजित देखकर मुझे कहना पड़ा कि कोई रास्ता चलता आये और कहे कि मुझे पंजिका पर मंत्री महोदय के मौखिक आदेशानुसार हस्ताक्षर करने दें, तो अनुभवी व्यक्ति होने के नाते क्या आप उसे ऐसा करने देंगे?

मंत्री महोदय आये, शिक्षक ने नियुक्तिपत्र प्रस्तुत कर काम संभालने के दिन से पंजिका में हस्ताक्षर किये। इसके तुरंत बाद, मंत्री ने जिस षड्यंत्र से मुझे हटाया, उसमें वे शिक्षक भी शायद शामिल थे। मुझे अनुचित ढंग से हटाने के बाद मंत्री महोदय ने मेरे वेतन के बकाया रुपये नहीं चुकाये। बिहार सरकार के शिक्षा-विभाग से लेकर राज्यपाल एवं राष्ट्रपति तक को मैंने लिखा, लेकिन ईमानदारी, परिश्रम और नियमानुसार अर्जित मेरी राशि का अब तक भुगतान नहीं हुआ है।

—सांवलिया वि. शरण, मोहननगर, छपरा

इस स्तंभ के अंतर्गत चपरासी से लेकर मंत्री तक के संस्मरणों का स्वागत है। संस्मरण व्यक्तिगत हों, पर १५० शब्दों से अधिक नहीं होने चाहिए—संपादक

अनुराधा बंसल, बलंदशहर : क्या सिर के बाल गिने जा सकते हैं ?

क्यों नहीं, लोगों ने तो गिन भी लिये हैं । आदमी के (औरतों के भी) सिर पर औसतन १,५०,००० बाल होते हैं । लेकिन यह जानने के लिए सारे सिर के बाल गिनने के बजाय एक वर्ग सेंटीमीटर के स्थान में उगे बालों को गिनकर पूरे सिर पर उगे बालों का हिसाब लगाया जा सकता है । जंगल में पेड़ों को गिनने में भी यही तरीका काम में लाया जाता है।

के. पी. सिंह, भिलाईनगर : मानव-शरीर किन-किन चीजों से बना है ? क्या उन चीजों में सोना (धातु) भी है ?

मानव-शरीर ऑक्सीजन, कार्बन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, कैलशियम, फास्फोरस, गंधक, सोडियम, पोटाशियम, क्लोरीन, मैगनीशियम, लोहा, आयोडीन, फ्लोरीन, ब्रोमीन, मैंगनीज, तांबा आदि से बनता है । बहुत संभव है कि अन्य सब तत्त्व भी, जिनमें सोना भी हो सकता है, शरीर में पाये जाएं, लेकिन वे रासायनिक रूप से अधिक सक्रिय नहीं होते और अभी तक ठीक-ठीक पता नहीं चल सका है कि शरीर में उनका कार्य क्या होता है ?

जगदीश वढेरा, हिसार : क्या गलत तराजू पर किसी चीज का सही वजन मालूम किया जा सकता है ?

जी हां, मगर तोलने का तरीका भिन्न होगा । आप यह करें कि तोली जानेवाली चीज को एक पलड़े में रखकर दूसरे पलड़े में ईंट-पत्थर, रेत, अनाज आदि भरकर तराजू को संतुलित कर लें, फिर तोली जानेवाली चीज को हटाकर उसके पलड़े में बाट रखें और दूसरे पलड़े में भरी हुई चीजों से संतुलित कर लें। उन चीजों को तोलने के लिए जितने बाट चढ़ेंगे, उतना ही आपकी चीज का वजन होगा ।

तेजिंदर सिंह 'तेज', अंबाला : रेगिस्तान में आदमी रेत में धंस जाता है, लेकिन युद्ध के भारी-भारी टैंक नहीं, इसका क्या कारण है ?

कारण यह है कि उनके भार का दबाव आदमी के पैरों-जितनी छोटी-सी जगह पर न पड़कर विस्तृत क्षेत्र पर पड़ता है । इसे आप 'स्कीइंग' करनेवालों के पैरों में बंधी 'स्की' के उदाहरण से अच्छी तरह समझ सकते हैं । ताजा और नरम बर्फ में, जहां पैर धंस जाते हैं, स्कीइंग करनेवाले मजे में दौड़ते रहते हैं (खड़े

भी रह सकते हैं), क्योंकि उनके पैरों में बंधी 'स्की' उनके भार को अपेक्षाकृत अधिक बड़े क्षेत्र पर बांट देती है। मान लीजिए, एक 'स्की' की सतह आपके पैर के तले से बीस गुना बड़ी है तो 'स्की' पर खड़े होकर आप अपने भार का बीसवां हिस्सा ही बर्फ पर डालेंगे। यही बात टैंकों के साथ है। टनों-भारी टैंकों का भार उनकी लंबाई-चौड़ाई के कारण प्रति-वर्ग-सेंटीमीटर केवल कुछ ग्राम होता है।

देवबाला, रांची : शारीरिक ऊर्जा की क्षति-पूर्ति कैसे होती है ?

चर्बी, कार्बोहाइड्रेट और प्रोटीन शरीर में ईंधन की तरह जलकर (और इस तरह कार्बन डाईऑक्साइड और पानी बनाते रहकर) शारीरिक ऊर्जा की क्षति-पूर्ति करते रहते हैं। लेकिन हमारा शरीर वस्तुत: एक ही प्रकार के ईंधन से चलता है, वह है ग्लूकोज। अत: शरीर को ऊर्जा प्रदान करने के लिए चर्बी और कार्बोहाइड्रेट को ग्लूकोज में परिवर्तित होना पड़ता है।

दौलतसिंह शेखावत, चूरू : भारतीय नीतिशास्त्र के आदि-ग्रंथ (जो एक लाख अध्यायोंवाला कहा जाता है) का परिचय देने की कृपा करें।

ऐसा कोई ग्रंथ उपलब्ध नहीं है। हां, महाभारत के शांति-पर्व में यह उल्लेख अवश्य मिलता है कि ब्रह्मा ने एक लाख अध्यायोंवाला नीतिशास्त्र रचा था। उसके पहले पाठक शिव थे और उन्होंने उस नीतिशास्त्र को दस हजार अध्यायों में संक्षिप्त किया, जो (शिव का नाम 'विशालाक्ष' होने के कारण) 'वैशालाक्ष्य' कहलाया। फिर इंद्र ने उसका अध्ययन किया और संक्षिप्त करके पांच हजार अध्यायोंवाला बना दिया। यह 'बाहु-दंतक' कहलाया। फिर बृहस्पति ने तीन हजार अध्यायों में उसका संक्षेप किया और उसका नाम 'बार्हस्पत्य' हुआ। इसी प्रकार शुक्राचार्य आदि भी उसको संक्षिप्त करते चले गये, ऐसा माना जाता है।

क्षमा मेहता, इंदौर : यदि एक-जैसे दो सिक्कों में से एक को स्थिर रखकर दूसरे को उसके चारों ओर, उसकी परिधि से सटाकर, घुमाया जाए तो पूरा चक्कर लगाने पर घुमाया जानेवाला सिक्का कितनी बार घूमेगा ?

दो बार। चित्र में देखें, स्थिर सिक्के की आधी परिधि नापते-नापते घुमाया जानेवाला सिक्का पूरा घूम गया है।
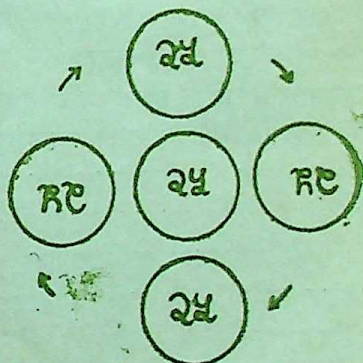
ज्ञान-गंगा

तस्करेभ्यो नियुक्तेभ्यः शत्रुभ्यो नृपवल्लभात् ।
नृपतिर्निजलोभाच्च प्रजा रक्षेत्पितेव हि ।।

—राजा या शासक को चोरों, भ्रष्टाचारी अधिकारियों, शत्रुओं, मंत्री आदि निकटवर्तियों और अपने लोभ से प्रजा की रक्षा पिता के समान करनी चाहिए ।

न च विद्यासमो बन्धुर्न च व्याधिसमो रिपुः ।
न चापत्यसमः स्नेही न च धर्मो दयापरः ।।

विद्या के समान कोई भाई या हितैषी नहीं है। रोग से बढ़कर कोई शत्रु नहीं है। संतान से बढ़कर प्यारा नहीं है और दया से बढ़कर धर्म नहीं है।

द्वावम्भसि निवेष्टव्यौ गले बद्ध्वा दृढां शिलाम् ।
धनवन्तमदातारं दरिद्रं चातपस्विनम् ।।

—राजा या शासक को चाहिए कि इन दो मनुष्यों को गले में मजबूत पत्थर बांधकर जल में डुबो दे—जो धनी होने पर भी दान नहीं करता और निर्धन होता हुआ भी परिश्रम नहीं करता ।

सकृज्जल्पन्ति राजानः सकृज्जल्पन्ति पंडिताः
सकृत्प्रदीयते कन्या, त्रीण्येतानि सकृत्सकृत् ।

—राजा कोई भी बात केवल एक बार ही कहते हैं । पंडित भी एक बार ही बोलते हैं । पिता द्वारा कन्या का दान एक बार ही किया जाता है । ये तीनों एक बार ही जो निश्चय कर लेते हैं, उससे हटते नहीं ।

—प्रस्तोता : ब्रह्मदत्त शर्मा

प्रदीपकुमार राय, पूर्णिया : क्या किरासिन (मिट्टी का तेल) धातु या कांच को भेदकर बाहर निकल आता है? हमने यह नोट किया है कि लैंप को तेल से भरने के बाद अच्छी तरह पोंछ देने पर भी थोड़ी देर बाद उसके ऊपर तेल दिखायी देने लगता है ।

इसका कारण किरासिन का धातु या कांच को भेदकर बाहर निकल आना नहीं, बल्कि ताप बढ़ने पर उसका फैलना है। लैंप जलने पर गरम हो जाता है तो उसके अंदर भरा तेल फैलकर अपना आयतन बढ़ाने लगता है, और यदि बर्नर ढीला है तो उसके रास्ते निकलकर बाहर आ जाता है, या बत्ती के पास से निकलकर भक-भक जलने लगता है । किरासिन का आयतन प्रति १०० अंश ताप बढ़ने पर दस गुना बढ़ जाता है, इसलिए लप को कभी ऊपर तक नहीं भरना चाहिए।

राजेंद्रकुमार जैन, सिरोही : 'बेल' Bel) क्या है ?

'बेल' ध्वनि की सघनता का स्तर बतानेवाली इकाई है । आम तौर पर ध्वनि के संदर्भ में 'डेसीबेल' (decibel) का प्रयोग किया जाता है, जिसका मतलब होता है, 'बेल' का दशमांश ।

चलते-चलते एक प्रश्न और...

कु. क. ख. ग. : पुरुष का सौभाग्य?

अविवाहित होना।

—बिंदु भास्कर

आत्म कथात्मक शैली में

एक उपन्यास : मुझे माफ करना

इस मार्मिक उपन्यास में एक धनाढ्य से विवाह के लिए विवश प्रतिभा-संपन्न नवयुवती की आशा-निराशा और मनोव्यथा का सूक्ष्म चित्रण है।

उपन्यास की नायिका सन ४०–५० की उस भारतीय युवती का प्रतीक है जो अपनी तमाम प्रतिभा एवं उच्चशिक्षा के बावजूद संस्कार और परिवेशजन्य मध्यमवर्गीय दुर्बलताओं से उबर नहीं पायी थी। उस युग में जहां देश की स्वाधीनता के लिए सत्याग्रह में भाग लेनेवाली, विप्लवी, क्रांतिकारियों के साथ काम करनेवाली युवतियां हुईं, वहीं उपन्यास की नायिका-जैसी तरुणियां भी थीं जिन्होंने आर्थिक सुरक्षा और संघर्षहीन जीवन को पाने के लिए अनचाहे व्यक्ति के साथ जीवन बिताने की नियति स्वयं स्वीकार की।

इस उपन्यास की नायिका भी गरीबी से नफरत करती है। वह 'कला के पूर्ण विकसित सरोज का उदय संघर्षहीन आर्थिक संपन्नता के कुलीन आलोक में देखती हैं'। इसीलिए वह अपनी इच्छा के विरुद्ध, अपनी रचनाओं पर रीझे एक अधेड़ उद्योगपति से, जो 'कई संतानों का पिता और कई स्त्रियों का भर्ता भी है,' विवाह कर लेती है। नायिका के पति का आचरण और चरित्र, नायक की बजाय किसी खलनायक से अधिक मिलता-जुलता है। पारिवारिक षड्यंत्रों और उपेक्षा से व्यथित नायिका को वह स्वयं तो सीता, सावित्री आदि सतियों का जीवनचरित सुनाता है किंतु स्वयं बहु-विवाह एवं मुक्तभोग का समर्थक है। इसीलिए जब व्यापारिक पेचीदगियों को सुलझाने की उसकी 'कूटनीतिक-क्षमता' से अभिभूत होकर नायिका उसे 'लौह पुरुष' के रूप में पूजने लगती है तब उपन्यास के प्रारंभ में मिली पाठकों की सहानुभूति खो बैठती है।

पूरे उपन्यास में मुख्य पात्रों की अपेक्षा नायिका के भाई-बहन-जैसे गौण पात्र अधिक सशक्त, दृढ़ और परिस्थितियों से जूझनेवाले नजर आते हैं।

इस उपन्यास की भाषा में गद्यगीतों–जैसा लालित्य है। स्थान-स्थान पर लेखिका का चिंतन भी मुखर हो उठा है। उपन्यास का उत्तरार्ध उच्च कोटि का है। खेद

है कि लेखिका यह क्रम पूरे उपन्यास में नहीं निभा पायीं। यों भी यह उपन्यास अपूर्ण-सा लगता है। इसमें नायिका ने आत्मालोचन का साहस तो किया है, पर औरों पर आंच न आने देने की कोशिश के कारण बहुत कुछ कह नहीं पायी है।

मुझे माफ करना

लेखिका–दिनेशनंदिनी डालमिया, प्रकाशक–राजपाल एंड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली-६, पृष्ठ–१७२, मूल्य–१२ रु.

नाट्य-समीक्षा

नाटककार मोहन राकेश : विभिन्न समीक्षकों द्वारा मोहन राकेश के नाटकों के विभिन्न पक्षों पर लिखे गये लेखों का संग्रह है। चार भागों में विभाजित इन लेखों में जहां राकेश के व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला गया है, वहां उनके नाटकों की विस्तृत समीक्षा के साथ-साथ उनमें आधुनिक एवं समसामयिक युग-बोध, मध्यमवर्गीय विसंगतियों और अस्तित्व-बोध के संकटों के प्रभाव को भी खोजा गया है। अंतिम भाग में शिल्प, रंग-कौशल, एवं विभिन्न पात्रों का मूल्यांकन किया गया है। अधिकांश समीक्षकों की राय में मोहन राकेश ने हिंदी नाट्य साहित्य को जो आधुनिक संवेदना एवं रंग-शिल्प दिया है, वह बेजोड़ है। एक समीक्षक के अनुसार तो 'आधुनिक नाटकों की शुरूआत ही मोहन राकेश से मानी जा सकती है'। इस प्रश्न पर मतभेद हो सकता है। इस बात में संदेह नहीं कि राकेश ने अपने नाटकों में, फिर चाहे वे मिथक एवं ऐतिहासिक आधार-भूमिवाले ही क्यों न रहे हों, आधुनिक, समसामयिक जीवन के विभिन्न अंतर्विरोधों एवं संकटों को चित्रित करने की कोशिश की है।

पुस्तक के संपादक ने राकेश के नाटकों में शास्त्रवर्णित किंतु सामान्यतः अपरिचित नये रस 'कार्पण्य' की खोज की है। उनके अनुसार 'नाटक ही नहीं, राकेश का समग्र कथा-साहित्य इसी कार्पण्य रस की चेतना उजागर करता है'। इस रस का स्थायी भाव 'स्पृहा', उद्दीपन भाव 'अभाव' और आलंबन 'अभावग्रस्त व्यक्ति' बताया गया है। राकेश के नाटकों में नये रस की यह खोज 'प्राध्यापकीय-समालोचना' के स्तर से ऊपर नहीं उठ पायी है। पुस्तक के अनेक लेख इस दोष के शिकार हैं, फिर भी किसी नाटककार की समस्त कृतियों के विवेचन का यह प्रयास स्वागत-योग्य है।

नाटककार मोहन राकेश

संपादक–सुंदरलाल कथूरिया, प्रकाशक–कुमार प्रकाशन, नयी दिल्ली-१५, पृष्ठ–२४६, मूल्य–३० रु.

सुंदर शिक्षाप्रद गीत

बाल गीतायन : गीतों और कथात्मक कविताओं का सुंदर, सचित्र संकलन है। ४ से १४ वर्ष के बालक-बालिकाओं की रुचि एवं मनोविज्ञान के अनुरूप १९२

रचनाएं हैं। इनमें शिशु-गीतों, प्रकृति संबंधी गीतों, एवं बच्चों के कल्पनालोक से संबंधित गीतों के अतिरिक्त शिक्षा-प्रद गीतों का भी समावेश है। लेखक ने हिंदी बाल-साहित्य के सृजन एवं मूल्यांकन के क्षेत्र में काफी काम किया है। संकलन के गीत सरल और बच्चों को सहज ही याद हो जानेवाले हैं, किंतु खेद है कि पुस्तक की अधिक कीमत के कारण वे सामान्य परिवारों के बच्चों तक पहुंच न पाएंगे। इनके छोटे, कम कीमतवाले संकलन प्रकाशित होने चाहिए।

--राजशेखर

बाल गीतायन

लेखक–**द्वारिकाप्रसाद माहेश्वरी, प्रकाशक–ज्वालाप्रसाद विद्यासागर, कामताप्रसाद कक्कड़ मार्ग, इलाहाबाद, पृष्ठ–२९४, मूल्य–३० रु.**

कहानी-संग्रह

दूसरा फुटपाथ : सुरेन्द्र तिवारी की प्रारंभिक कहानियों का पठनीय संग्रह है। यही कारण है कि 'समानान्तर रेखाएं', 'समझ', 'दूसरा फुटपाथ'–जैसी कहानियां होते हुए भी तकनीकी वैविध्य का इनमें अभाव है। एक ही 'पैटर्न' पर लिखी गयी अधिकांश कहानियां जीवन की प्रायः एक-सी ही स्थितियों को भोगती हैं। स्वयं लेखक को भी इन कहानियों की श्रेष्ठता का पूर्वाग्रह नहीं है।

दूसरा फुटपाथ

लेखक–सुरेंद्र तिवारी, प्रकाशक– विद्या प्रकाशन, कलकत्ता–२५, पृष्ठ–७३, मूल्य–५ रु.

एक काव्य-संग्रह

अंधेरे की आहट : काव्य संग्रह है जिसमें युवा पीढ़ी द्वारा भोगी जा रही अनिश्चित स्थितियां, दायरे और यातनाओं के संबंध, बेमानी व्यवस्था, आत्म-दर्दहीनता आदि को जीवन के कठोर धरातल पर उतारा गया है। यहां कवि की कुछ पंक्तियां इसे स्पष्ट कर देती हैं–

यहां जो सत्य बसता है
उसका नाम है रामनाम
जो अर्थी के आगे से गुजरता है

कवि का यह पहला संग्रह होते हुए भी भाषाशैली और कथ्य की दृष्टि से आधुनिक कविता की एक झलक प्रस्तुत करता है। अधिकांश कविताएं छोटी और तीखी हैं।

अंधेरे की आहट

लेखक–देवेन्द्र ध्रुव, प्रकाशक – शब्दकार, २२०३ गली डकौतान तुर्कमान गेट, दिल्ली-६, पृष्ठ–४८, मूल्य–६ रु.

ऐतिहासिक उपन्यास

अग्निपर्व : महारावत कान्हड़देव के जीवन पर आधारित एक ऐतिहासिक उपन्यास है जिसमें आधुनिक परिप्रेक्ष्य में युगबोध, स्वदेश-भक्ति, कर्तव्यबोध,

वचन वीथी

जो कभी चिंतन नहीं करते वे हमेशा बोलते रहते हैं।
—प्रायर

जो व्यक्ति मित्रों के लिए अपने जीवन का भी मोह नहीं करता, उससे अधिक प्यार अन्य किसी व्यक्ति में नहीं हो सकता। —एन. टी. जॉन

हम मृत्यु को पहली बार तभी समझते हैं जब हमारे किसी प्रिय व्यक्ति का देहांत होता है। —डी. स्टायल

कभी-कभी हम किसी व्यक्ति के गुणों के बजाय उसकी गलतियों से अधिक सीख सकते हैं। —लांगफेलो

फैशन न तो बहुत जल्दी ग्रहण करना चाहिए और न देर तक उससे दूर ही रहना चाहिए। साथ ही फैशन के मामले में कभी अतिवादी भी नहीं होना चाहिए। —लैवेटर

जुए में हम मानव-जीवन की दो बहुमूल्य चीजें—समय और संपत्ति—खो देते हैं।

—फाल्थम

सांप्रदायिक समता, धार्मिक सहिष्णुता आदि प्रवृत्तियों को अभिव्यक्त किया गया है। प्रच्छन्न रूप से यह युवा पीढ़ी को संदेश देता है। ऐतिहासिक घटनाओं की रुक्षता का परिहार करने के लिए लेखक ने शहजादी फिरोजा तथा कुंवर वीरमदेव के प्रेम-प्रसंग तथा गुर्जर नर्तकी सोमप्रभा, दासी मंजरी, नटकन्या शिवानी आदि काल्पनिक पात्रों की सर्जना की है।

——डॉ. शशि शर्मा

अग्नि पर्व

लेखक——डॉ. रामगोपाल गोयल, प्रकाशक—अभिनव प्रकाशन, अजमेर, पृष्ठ—१९८, मूल्य—१२ रु.

एक सम्मिलित प्रयास

उसके बयान : यह पुस्तक साहित्यकार और चित्रकार का सम्मिलित प्रयास है। प्रत्येक लेख के साथ एक चित्र दिया गया है। जहां शब्द मौन हो गये हैं वहां रेखाएं बोलती हैं। यहां दोनों कलाकारों ने अपने कला-जीवन में आये कुछ ऐसे क्षणों को, जो मस्तिष्क में अभी भी ठहराव लिये हैं, व्यक्त किया है। शैली की दृष्टि से दोनों ने अपनी-अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। **——मीनासिंह**

उसके बयान :

लेखक —कृष्ण बलदेव वैद, रेखांकन—रामकुमार, प्रकाशक—राजपाल एंड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली-६, पृष्ठ—७५, मूल्य—१० रु.

टूटते हुए रिश्ते

सिमॅन द बुवा
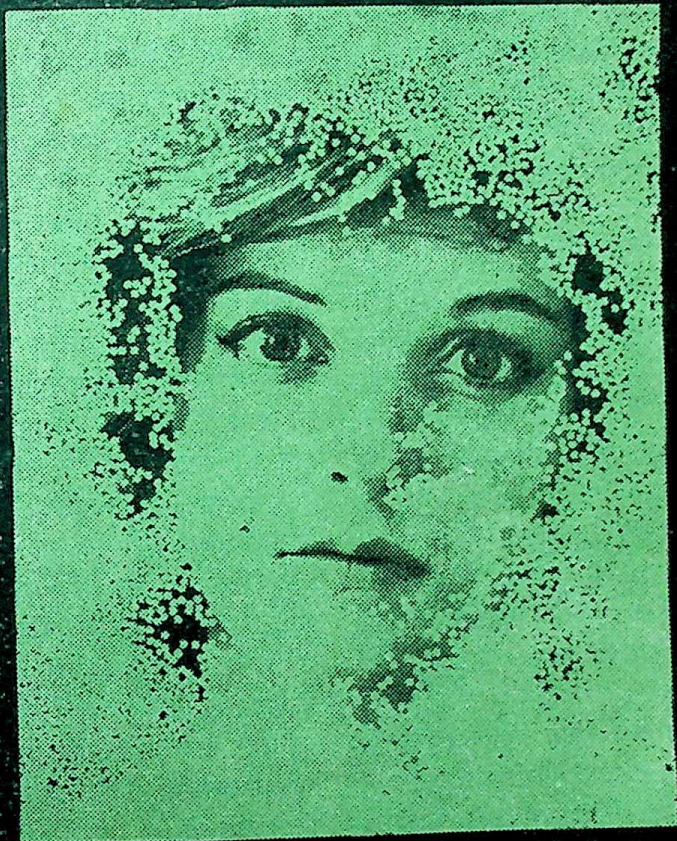
नारी की आशाओं, निराशाओं और स्वभावगत विशेषताओं के सूक्ष्म चित्रण में सिद्धहस्त सिमन द बुवा यूरोप की अग्रणी लेखिका हैं। अपने लघु उपन्यास 'द वूमेन डिस्ट्रायड' में उन्होंने एक ऐसी स्त्री की व्यथा का मार्मिक चित्रण किया है, जिसके पति के जीवन-पथ में एक अन्य स्त्री आ गयी है। प्रस्तुत है इसी लघु उपन्यास का सार-संक्षेप—'टूटते हुए रिश्ते', प्रस्तोता हैं—सुशीला गुप्ता।

शनिवार, २५ सितंबर : खिड़की अंधेरी थी। मुझे एहसास था कि ऐसा ही होगा। पहले कभी ऐसा नहीं होता था। अगर मैं कभी मॉरिस की अनुपस्थिति में बाहर जाती भी थी तो लौटने पर सदा खिड़कियों पर पड़े परदों की कोरों से प्रकाश झांकता मिलता था। ओफ! कितना भयावना लग रहा है खाली फ्लैट।

कल कोलेट की जांच रिपोर्ट आ जाएगी। उसे फ्लू हुआ है। शादी के बाद वह दूसरे फ्लैट में चली गयी है। लुसिना अमरीका में है। मैं अंधेरे फ्लैट में अकेली खड़ी हूं। और मॉरिस . . . क्या हो गया है उसे? सदा अपने मरीजों में, शोध में डूबा रहता है। शामें प्रयोगशाला में गुजरती हैं।

'मुझे तुम्हारी जरूरत है और तुम मेरे पास नहीं हो।' चाहती हूं ये शब्द लिखकर हाल में ऐसी जगह रख दूं, जहां आते ही उसकी नजर पड़ जाए।

मॉरिस में बदलाव आ गया है। पूरी तरह धंधे में डूब गया है। किताबों के शौकीन को अब किसी भी पुस्तक में रुचि नहीं। संगीत उसे नहीं खींचता। हमें साथ-साथ पेरिस घूमे अरसा हो गया। कहने को हम घंटों पास बैठे रहते हैं पर एक भी शब्द हमारे बीच नहीं बोला जाता।

नहीं, नहीं, मैं कुछ लिखकर नहीं रखूंगी। सीधी बातचीत करूंगी। शादी के बीस-बाईस वर्ष बाद हम अकसर मौन का आसरा ढूंढ़ते हैं। यह बहुत खतरनाक है। पिछले कुछ वर्षों में मैं इन दोनों लड़कियों कोलेट और लुसिना में कितना खोयी रही हूं। शायद मैं मॉरिस के प्रति उतनी उन्मुक्त, उतनी प्राप्य नहीं रह गयी थी, जितनी वह चाहता रहा होगा। लेकिन क्या यह अच्छा न होता कि अपने को काम में डुबाने के बजाय, मुझसे दो बातें कर लेता।

सोमवार, २७ सितंबर : तो मॉरिस ने मुझ से झूठ कहा था। न जाने कब से झूठ बोलता आ रहा है। शनिवार रात की ही तो बात है। मुझे नींद काफी देर से आयी थी। बीच-बीच में अधजागी हो जाती थी। सुबह के तीन बजे थे शायद। वह अंदर आया था। उसके हाथ में व्हिस्की का गिलास था, जिसे उसकी अंगुलियां हिला रही थीं।

"यह लौटने का समय है, कहां थे तुम ?"

"मैं जानता हूं, इस समय तीन बजे हैं।"

"कोलेट बीमार है। मैं परेशान हूं और तुम . . . इतनी देर से क्यों आये ? शराब, गप्पें . . ." मैं उलटा-सीधा कहती रही और वह खामोश बैठा रहा। "क्या कोई औरत . . . आ गयी है मेरे तुम्हारे बीच ?" मेरे मुंह से निकल गया।

मॉरिस कुछ पल मेरी ओर देखता रहा, फिर बोला, "हां, मोनिके, एक औरत आ गयी है मेरी जिंदगी में—नोइली गुइरार्द।"

नोइली—सुंदर, उग्र और हर समय उपलब्ध। एक ऐसा महत्त्वहीन ऐडवेंचर जो किसी को भी आह्लाद से भर देता है।

"तो तुम अकसर उसके पास जाते हो ?"

"अरे नहीं, तुम तो जानती हो कि मैं कितना व्यस्त रहता हूं।"

"तुमने मुझे पहले क्यों नहीं बताया ?"

उसने कनखियों से मुझे देखा, "तुम कहा करती थीं, अगर ऐसा हुआ तो तुम दुःख से मर जाओगी ?"

मन हुआ चिल्ला पड़ूं। मैं यह सुनकर नहीं मरूंगी—यही सबसे दुखद था। पंद्रह साल पहले कहे गये वे शब्द शायद . . . सिर्फ शब्द थे बस।

अंदर उफनते गुस्से ने मुझे जल्दी जगा दिया। मेरे पास सोया मॉरिस कितना निर्दोष लग रहा था। बाल माथे पर बिखरे हुए। (अगस्त में जब मैं कोलेट के साथ पहाड़ पर गयी थी। मेरी जगह वह जागी होगी, इसी तरह। मुझे विश्वास नहीं होता।) अभी उसे झिंझोड़ दूं, चिल्लाऊं, अपमान करूं।

'शाम को मिलूंगी।' ये शब्द लिखकर मैंने कागज तकिये के नीचे दबा दिया। मुझे विश्वास था कि गुस्से से ज्यादा मेरी अनुपस्थिति उस पर प्रभाव डालेगी। मैं सड़कों पर निरुद्देश्य घूमती रही। जो सड़क जहां जाती थी, मैं वहीं चली गयी। मन में सिर्फ एक बात घुमड़

रही थी—उसने मुझसे झूठ कहा।

बाद में मैं कोलेट के पास चली गयी। मैं उसकी देखभाल करती रही, पर अंदर ही अंदर एक ज्वार मुझे मथे जा रहा था। घर लौटी तो पोर-पोर दुख रहा था।

वह घर में ही था। मुझे बांहों के घेरे में भरकर, मेरी आंखों में देखते हुए बोलता रहा। हां, झूठ बोलकर उसने गलती की थी, लेकिन मुझे समझना होगा। झूठ बोलने और सहने की भी एक गुंजाइश रखनी ही चाहिए।

मैं इसाबेल के पास गयी। वह सदा मुझे हिम्मत बंधाती है। पर क्या वह मुझे ठीक-ठीक समझ पाती है? इसाबेल और चार्ल्स की आस्था मुक्ति में है, वफादारी में नहीं, जैसे मैंने और मॉरिस ने किया है। उसने मुझे धीरज रखने की सलाह दी। उसे पूरी उम्मीद थी कि मॉरिस फिर से मेरे पास लौट आयेगा। समय नोइली के ग्लेमर को चूस लेगा। वह मॉरिस की नजरों में गिर जाएगी। लेकिन धीरज तो मुझमें कभी रहा ही नहीं। शायद इसाबेल ठीक कहती है। बीस-बाईस वर्ष के वैवाहिक जीवन के बाद किसी पुरुष के लिए दूसरी स्त्री की ओर चले जाना स्वाभाविक ही है।

आज शाम मैं मॉरिस के साथ घूमने जा रही हूं। उससे पूछने के लिए मेरे पास बहुत प्रश्न हैं।

मंगलवार, २८ सितंबर: मैंने काफी पी ली थी। मॉरिस मुसकरा रहा था, उसने कहा, मैं अच्छी लग रही हूं। क्या मजाक है? उन जवान रातों के सपने फिर से अपनी आंखों में बसा लूं इसके लिए उसे मुझे धोखा देना होगा। मैं १५ वर्ष बाद नाइट क्लब में आयी थी। हर चीज मुझे खुशनुमा लग रही थी। हमने डांस किया। एक बार उसने मुझे बांहों में भींचकर कहा भी—"हमारे बीच कुछ भी नहीं बदला है।" ढेर सारी बातें जो मैं बिलकुल भूल गयी। नोइली एक महत्वाकांक्षिणी वकील है, परित्यक्ता है, एक बेटी की मां, एकदम उन्मुक्त, पानी में बहती मछली-सी। मुझसे एकदम उलट। शायद मॉरिस यह जानना चाहता था कि वह वैसी किसी औरत की आंखों में खुब सकता है या नहीं? और मैंने भी तो अपने से यही प्रश्न पूछा था, जब मैं क्विलान के साथ . . . लेकिन मैंने वह सब जल्दी ही छोड़ दिया था।

बुधवार, २९ सितंबर: यह पहली बार था, मॉरिस ने मेरे जानते हुए नोइली के साथ अपनी शाम गुजारी थी। सिर्फ यही बात अच्छी है कि मैं शारीरिक रूप से ईर्ष्यालु नहीं हूं। मेरी देह अब तीस की नहीं, और मॉरिस की भी तो नहीं है। वे दोनों प्रसन्नता के लिए मिलते हैं, पर उनके मिलने में वह आग न होगी। नहीं, नहीं मैं गलती पर हूं। नोइली एक 'नावेल्टी' है। उसकी शय्या में मॉरिस का यौवन लौट आता है।

गुरुवार, ३० सितंबर: कोलेट का

ज्वर ठीक है। अमरीका से लुसिना का पत्र आया है।

शुक्रवार, १ अक्तूबर : मैंने पहली बार बुरा व्यवहार किया। नाश्ते के समय मॉरिस ने मुझे बताया कि अब से वह जब भी नोइली के साथ शाम गुजारेगा, रात को उसी के घर रहा करेगा।

कितनी बार वह लंच पर घर नहीं आता, कई शामें प्रयोगशाला में गुजरती सिर्फ उसी के पास होता है।

अंत में मैं नरम पड़ गयी। अगर मैं कुछ न कहूं तो हो सकता है, वह उससे ऊब जाएगा।

शनिवार, २ अक्तूबर—सुबह : वे दोनों रात्रि-पोशाक में हैं, एक दूसरे को देख-देखकर मुसकरा रहे हैं। यह तसवीर मन में बार-बार चुभती है। जब पत्थर की चोट लगती है तो पहले एक धक्का-

हैं। इसका मतलब यह नोइली को मेरे जितना ही समय देगा। मैं उत्तेजित हो उठी। उसने हिसाब लगाकर मुझे चौंका दिया। अगर घंटों को गिना जाएगा तो वह अकसर मेरे पास रहता है। लेकिन उन्हीं में वह समय भी तो है जब वह कार्य-व्यस्त होता है, पढ़ता है, मित्रों से मिलता है। और जब नोइली के पास होता है तो
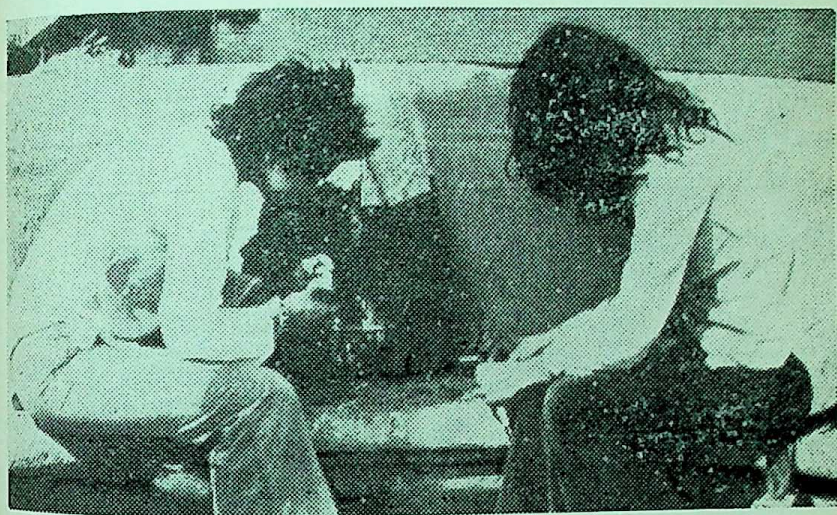
सा लगता है, दर्द बाद में उभरता है। अब एक सप्ताह बाद मैं संत्रस्त हूं। दर्द मुझ पर बरस रहा है। मैं कमरे में टहल रही हूं। ये तसवीरें मुझे परेशान कर रही हैं। मैं अलमारी खोलती हूं। मैं उसके कपड़े देखती हूं और रो पड़ती हूं। हाय, एक दूसरी औरत उसके गाल सहला रही है, और मैं . . नहीं, नहीं, मुझसे

सहन नहीं होता।

मैंने ही ध्यान नहीं दिया। मेरा खयाल था, वह बूढ़ा हो रहा है। वह काम में डूबा रहता है। वह शायद मुझे बहन की तरह समझने लगा था। नोइली ने उसकी सोयी इच्छाओं को जगा दिया। और मॉरिस ने एक नारी को पूरी तरह संतुष्ट करने की कला का गौरव फिर से पा लिया। उनमें वही अपनत्व है जो कभी मेरा था।

ओह! मेरा दिल दुधारी आरी से काटा जा रहा है।

शनिवार, ९ अक्तूबर : मुझे पता चला वह शाम को भी उसके पास जाता है—और यहां मैं समझती हूं वह प्रयोगशाला में काम कर रहा है।

"नोइली, क्यों तुमसे बार-बार मिलना चाहती है?"

"हां, उसे भी यह स्थिति पसंद नहीं है।"

"मैं रास्ते से अलग हट सकती हूं।"

उसने मेरा हाथ पकड़ लिया, "ऐसा मत कहो, मोनिके। तुम्हारे आंसू मुझे दुखी कर देते हैं। लेकिन मुझे . . नोइली का खयाल भी रखना होगा।"

तो समस्या वह नहीं, मैं हूं। शायद नोइली और मॉरिस मेरे बारे में भी इसी तरह बातें करते हैं, जैसे मॉरिस और मैं

उसके बारे में।

गुरुवार, १४ अक्तूबर : मॉरिस ने कहा है अब से वह शनिवार नोइली के साथ गुजारा करेगा। मैं फट पड़ने को हुई। पहले वह नाराज हुआ, फिर नरम पड़ गया। बाद में मैंने उससे अपने व्यवहार की क्षमा मांगी। कहा, जो वह चाहे ठीक है (इसाबेल ने मुझसे धीरज रखने को कहा है)। मॉरिस की आंखों में दुःख था। उसने कहा, "मैं तुमसे बहुत बड़ी चीज मांग रहा हूं। ऐसा मत समझो कि मुझे इससे तकलीफ नहीं होती।"

रात भर मैं जागती रही, वह भी जागता रहा। क्या मुझे एक के बाद दूसरी छूट इसी तरह देते जाना होगा ?

मैं अतीत में सहारा ढूंढ़ती हूं। पुराने चित्र फैलाये देख रही हूं। हम दोनों के चित्र। एक में मॉरिस की बांह पर पट्टी बंधी है। कैंप कोर्स रोड पर एक रात हमारी कार जवाब दे गयी थी। पहाड़ी सन्नाटा और गहरा अंधेरा। हम एक दूसरे की बांहों में बंधे बैठे रह गये थे। और मेरे मन में उभरने वाली तस्वीरें . . .

मैं अपने से प्रश्न पूछ-पूछकर परेशान हो गयी हूं, क्योंकि उनके उत्तर मुझे पता नहीं।

बुधवार, २० अक्तूबर : मैंने अपनी सहेली डियाना को फोन किया। उसे नोइली के बारे में काफी कुछ मालूम है। (नोइली ने उसके पति को अपने जाल में फंसाने की कोशिश की थी, पर सफल न हुई।) बीस वर्ष की उम्र में उसने एक अमीर आदमी से विवाह किया था, जिसने बाद में उसे तलाक दे दिया। न जाने नोइली कितने आदमियों के साथ बिस्तर में... अगर उसे कोई और आदमी मिल जाए तो वह मॉरिस से भी पीछा छुड़ा लेगी। उसकी बेटी १४ वर्ष की है। उस की शिकायत है, मां उसकी उपेक्षा करती है। नोइली अपने मुवक्किलों से खूब रकम ऐंठती है, और आत्मप्रचार की भावना तो उसमें कूट-कूटकर भरी हुई है। ये खबरें मुझे संतुष्ट कर गयीं। उसके व्यक्तित्व का यों टुकड़े-टुकड़े होना। मुझे आराम महसूस हुआ।

गुरुवार, २१ अक्तूबर : मैं मॉरिस से नोइली के बारे में कुछ नहीं कहूंगी। वह समझेगा, मैं ईर्ष्यावश ऐसा कह रही हूं। लेकिन अगर नोइली में ये सब बुराइयां हैं तो मॉरिस उसे कैसे पसंद करता है ? उसके मूल्य बदल गये हैं ? वह बदल गया है। या उसे गलतफहमी हो गयी है। मेरा धैर्य तेजी से रिस रहा है।

रविवार, २४ अक्तूबर : तो यह है नोइली का षड्यंत्र। वह मुझे एक घर में खोयी रहनेवाली, स्नेहमयी पत्नी बनाकर छोड़ देना चाहती है मॉरिस की नजरों में। मुझे मॉरिस के साथ घर में बैठे रहना रुचता है। लेकिन वह सदा नोइली को ही नाटकों व दूसरे कार्यक्रमों में ले जाता है।

नोइली उसे पुस्तकें पढ़ने को देती है।
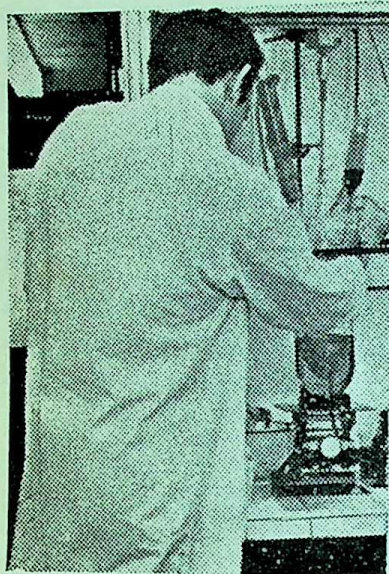
उसके सामने बुद्धिजीवी बनने का नाटक रचती है। चलो, यही सही, मैं आधुनिक साहित्य व संगीत के बारे में उससे कम जानती हूं लेकिन कुल मिलाकर मैं उससे कम सुसंस्कृत व कम समझदार तो नहीं हूं। कभी मॉरिस ने मेरी निर्णय-शक्ति को सराहा था। कहीं नोइली मॉरिस को चौंधिया न दे। मैं इसाबेल से मदद मांगती हूं। हां, उसे पता न चले। नहीं तो हंसी उड़ायेगा।

वह अब भी धैर्य की सलाह देती है। आखिर मॉरिस ने मेरे साथ बुरा व्यवहार तो किया नहीं है। और मैंने मन ही मन उसे क्या कुछ नहीं कह डाला है। हमने शुरू के वर्षों में एक दूसरे को कितना प्यार किया। हम दोनों ही खुश रहे हैं। इसके अलावा उसके प्रति कोई शिकायत भी नहीं है मुझे।

मैंने मॉरिस से कहा है कि अगला शनिवार वह मेरे साथ बिताये। मैं उसे अतीत की याद दिलाना चाहता हूं।

बुधवार, २७ अक्तूबर : इस शनिवार को वह पेरिस से बाहर नहीं जा सकता। यानी नोइली नहीं चाहती कि वह जाए। मेरा मन विद्रोह कर उठता है। मैं पहली बार उसके सामने चीख पड़ती हूं। वह घबरा उठता है, "ओह, यों मत करो। मैं किसी न किसी तरह ठीक कर लूंगा।" शायद मेरे आंसू उस पर छा गये हैं।

गुरुवार, २८ अक्तूबर : "मैंने ठीक कर लिया" उसने विजयी स्वर में कहा था। शायद उसे गर्व अनुभव हो रहा था कि वह नोइली से अपनी बात मनवा सका। यानी उन दोनों में खूब झगड़ा हुआ होगा। इसका मतलब यह कि नोइली मॉरिस के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। सारी शाम वह उत्तेजना की स्थिति में रहा। उसने एक के बजाय दो गिलास शराब पी। एक के बाद दूसरी सिगरेट पीता चला गया। मेरी गंभीरता ने उसे छू लिया। "तुम खुश नहीं दिखायी देतीं ?" उसने कहा था।

नोइली पूर्ण रूप से मेरी प्रतिद्वंद्वी बन गयी है। लेकिन मैं मॉरिस के लिए उससे लड़नेवाली नहीं।

हम खूब घूमे। कार में काफी दूर

निकल गये। आज एक प्रसन्नता थी, जो मेरे मन को बोझिल बना रही थी। इधर मैं उसकी अनभ्यस्त जो हो गयी थी।

हमने ढेर सारी बातें की। उसी होटल में रुके जहां बीस वर्ष पहले आये थे। मैं शय्या पर लेटी उसे देख रही थी। कमरे में बिछे घिसे कालीन पर नीले पाजामे में वह इधर-उधर फिर रहा था। उसका चेहरा न खुश था, न उदास। और बीस साल पहले की वह रात। यही मॉरिस था। ओह कितनी बातें की थीं हमने। मॉरिस बेसिरपर की बात करता रहा था—एकदम बचकानी। मुझे उस मॉरिस से प्यार था। वह मॉरिस कहां रह गया है? सब कुछ वही है। माहौल, हम दोनों, लेकिन फिर भी...!

आंख खुलती है तो वह नहीं है। बाहर बारिश हो रही है। वह लौटता है। "मैं घूमने गया था।"

लेकिन उसके कपड़े सूखे हैं। वह बाहर नहीं गया था। यहीं से नोइली को फोन कर रहा था। वह इतने समय के लिए भी हमें अकेला नहीं छोड़ सकती।

उसने मुझे परे क्यों धकेला? राह चलते लोगों की नजरें तो मुझे अब भी टटोलती हैं। सिनेमा हाल के अंधरे में मुझे कई स्पर्श मिलते हैं। कुछ स्थूल अवश्य हो गयी हूं। लेकिन वही मैं हूं जो कभी मॉरिस को उत्तेजना से भर देती थी। दो वर्ष पहले क्विलान तो मेरे साथ रात बिताने के लिए पागल हो उठा था। लेकिन अब मॉरिस है कि नोइली के अतिरिक्त किसी और के साथ रात बिताने की कल्पना भी नहीं कर सकता।

बुधवार, ३ नवंबर : यह मॉरिस की कृपा है। वह प्रेम नहीं करता, उसके होंठ कभी मेरे होंठों के नजदीक नहीं आते।

शनिवार, ६ नवंबर : मैंने कह दिया है, "मैं तुम्हारे लिए नोइली से नहीं लड़ूंगी। अगर तुम्हें वह मुझसे ज्यादा पसंद है, तो फिर मुझे कुछ नहीं कहना।"

बुधवार, १० नवंबर : मैंने परसों क्विलान को फोन किया था। यह सब मुझे अच्छा नहीं लगा, पर मैं जानना चाहती हूं, क्या मैं अब भी किसी को आकृष्ट कर सकती हूं? यह तो प्रमाणित हो गया। अपने को सजाया-संवारा है। इस पर मन खुश नहीं, आंखों में आंसू आते हैं।

क्विनाल का चेहरा ज्यादा दिलचस्प हो गया है। हम एक रेस्तरां में गये। उसने गिटार पर गाना गाया। मेरी छोटी से छोटी बात उसका ध्यान आकृष्ट कर रही थी।

वह मेरे साथ घर आया। मैं देख रही थी, क्विनाल की निगाहें मुझ पर टिकी थीं। मैं सिहर उठी। मॉरिस के स्थान पर उसे बैठा देख न जाने कैसा लग रहा था।

"तुम्हें सर्दी लग रही है शायद।" कहकर वह आतिशदान की ओर लपका, लेकिन अपनी उत्सुकता में उसने वहां रखी मेरी प्रिय मूर्ति गिरा दी। मैं चीख

पड़ी। मूर्ति टूट गयी थी।

वह चला गया। मैं टूटी मूर्ति हाथ में लिये बैठी सिसकती रही।

गुरुवार, १८ नवंबर : मैं देखने गयी हूं, मॉरिस प्रयोगशाला में नहीं है। वहां से नोइली के घर। दिल में धक्का-सा लगता है। मॉरिस की कार बाहर खड़ी थी। यह कार मुझे कितनी पसंद थी। मैं चाहती हूं, मॉरिस फ्लैट से बाहर निकले तो मैं एकाएक उसके सामने प्रकट हो जाऊं। कितना गुस्सा आयेगा उसे। और तभी वे दोनों बाहर निकले। उन्होंने मुझे नहीं देखा। हाथ में हाथ डाले, मुसकराते, बातें करते वे सड़क पार करके काफे में चले गये। मैं देखती रही। फिर घर वापस लौट आयी।

अगले दिन उसने कहा, "मैं प्रयोग-शाला जा रहा हूं।"

"सचमुच? कल तो तुम नोइली के घर थे।"

उसने ठंडेपन से मुझे घूरा, "तो तुम जासूसी कर रही हो।"

मेरी आंखें भीग गयीं, "तुम मुझसे झूठ क्यों बोलते हो?"

सोमवार, २२ नवंबर : मैं अब मॉरिस की उपेक्षा करने लगी हूं।

मंगलवार, २३ नवंबर : आज मॉरिस से झगड़ा हुआ है। उसे पता चल गया है कि मैंने डियाना से नोइली के बारे में पूछताछ की थी। नोइली भी जान गयी है। "ऐसा क्यों? तुम्हें मुझसे पूछ लेना चाहिए था।" मॉरिस कहता है।

शुक्रवार, २६ नवंबर : मैं जब भी मॉरिस के साथ होती हूं, मुझे लगता है, मैं किसी जज के सामने बैठी हूं।

शनिवार, २७ नवंबर : मैं अपने को संभाल नहीं पाती। संयम कभी मेरी आदत नहीं रहा। मेज से उठते ही उसने पत्रिका उठायी और उसमें डूब गया। मैं चीख उठी, "क्या नोइली के पास बैठकर भी तुम ऐसा ही करोगे?"

उसकी आंखें आग उगलने लगीं—"जरा-जरा सी बात पर झगड़ा मत करो।"

"तुम मेरे पास बैठकर बोर क्यों हो जाते हो? हम आपस में बातें भी नहीं कर पाते।"

"इसकी जिम्मेदार तुम्हीं हो। तुम्हीं ने हम दोनों के बीच दीवार बना दी है।" वह ठंडेपन से कहता है।

सोमवार, २९ नवंबर : कल मैंने पूछा था, "सर्दियों में हम कहां जाएंगे?"

उसने चलते हुए कहा, "जहां तुम चाहो वहां, लेकिन मुझे कुछ दिन नोइली के साथ भी गुजारने हैं।"

मन में कुछ घुमड़ता है—'मैं या वह', उसे दोनों में से किसी एक को चुनना होगा?

मंगलवार, ३० नवंबर : मैंने उससे कह दिया है। फैसला करना ही है तो दोनों में से एक।

"डार्लिंग, अभी नोइली को छोड़ने पर मजबूर मत करो।"

"नहीं, अभी और इसी समय। तुम दोनों में से किसे चाहते हो?"

"तुम्हें।" उसने स्वादहीन, बदरंग स्वर में कहा, "लेकिन मैं नोइली को भी पसंद करता हूं।"

"ठीक है, तुम उसी के पास जाओ। निकल जाओ।" मैं फट पड़ती हूं। मैं सूटकेस निकालकर फेंकती हूं। कपड़े बिखरा देती हूं। "जाओ, उसी कुतिया के पास चले जाओ।"

वह मेरी कलाइयां थामता है, "अपने शब्द वापस लो।"

"नहीं नहीं, कभी नहीं।" जो कुछ मन में आता है, कहे चली जाती हूं, "तुम स्वार्थी हो।"

"मैं नहीं, तुम स्वार्थी हो।" वह इतने जोर से चिल्लाता है। "तुम्हीं इसकी जिम्मेदार हो।"

"तुम मुझे इतनी बुरी समझते हो तो प्यार कैसे करते हो?"

"मैं अब तुम्हें प्यार नहीं करता। दस साल पहले ही छोड़ चुका।"

"मुझे विश्वास नहीं होता। "तुम मुझे चोट पहुंचाना चाहते हो, इसीलिए झूठ बोल रहे हो।"

तो वह दस वर्षों से दूसरी औरतों के साथ, उस दक्षिणी अमरीकी रोगिणी के साथ, अस्पताल की नर्स के साथ, और पिछले १८ महीनों से इस कुतिया के साथ रहता रहा है। मैं चीखती चली जाती हूं। वह मुझे गाली देता है, "सुनो मैंने जो कहा, वह सब कहना नहीं चाहता था, लेकिन तुमने मुझे मजबूर कर दिया।"

तो यह मामला बहुत दिनों से चल रहा है। मैंने ही मॉरिस पर अविश्वास नहीं किया। क्या मैंने बेवफा आदमी को चुनकर अपने पैरों पर खुद कुल्हाड़ी मार ली?

बुधवार, १ दिसंबर : इसाबेल को विश्वास नहीं होता कि कोई आदमी २२ वर्ष तक किसी एक महिला से बंधकर रह सकता है। दूसरी महिलाओं से संबंध एकदम स्वाभाविक है।

रविवार, ५ दिसंबर : नींद नहीं आती। शय्या का मेरा पास वाला हिस्सा खाली है, ठंडा है, सूना है। मैं नींद की गोली खाती हूं, बेकार। अंधेरे का बोझ छाती पर जमता जाता है। मेरा अतीत भूकंप में जमीन की तरह दरारें खा गया है। मैं देख रही हूं, वह टुकड़े-टुकड़े बिखर रहा है। अब पीछे नहीं लौटा जा सकता। पूरा मकान, घाटी सब धरती के पेट में चले गये हैं।

रात के बाद सुबह उठा नहीं जाता। बारह बजे तक बिस्तर में पड़ी रहती हूं।

रविवार, १३ दिसंबर : दुःख के गर्त में गिरते जाना कैसा लगता है। घंटी बजती है। खुले दरवाजे से एक लड़का अंदर आता है। गुलाब का गुलदस्ता दे जाता है। साथ की चिट पर लिखा है—'जन्मदिन शुभ हो! —मॉरिस।' ये फूल नहीं, ध्वस्त अतीत के प्रतीक हैं।

एक बजे मॉरिस अंदर आता है। मैं उसकी बांहों में सुबकती हूं। वह मेरे बाल सहलाता है—"रोओ नहीं, डार्लिंग। मैं तुम्हें दुखी नहीं देख सकता। तुम जानती हो, मैं तुम्हें कितना चाहता हूं।"

"लेकिन तुमने तो कहा था, तुम पिछले ८ साल से मुझे प्यार करना छोड़ चुके हो।"

"अरे वह! वह तो यों ही कह दिया था गुस्से में।"

"लेकिन अब तो नहीं करते प्यार।"

"प्यार भी कई तरह के होते हैं, डियर।"

बुधवार, १५ दिसंबर : बाहर बारिश हो रही है। खिड़की के शीशों पर बूंदें आड़ी-तिरछी ढुलक रही हैं। मन नहीं होता कुछ करने को। मॉरिस के प्यार ने मेरे हर पल को सार्थक बना दिया था। अब सब कुछ खाली-खाली लगता है। समय चुक गया है। मैं रीत गयी हूं।

मैंने मॉरिस से कह दिया है कि सब मेरा अपराध है। वह परेशानी के भाव से मुझे रोक देता है—"बार-बार अतीत में मत उलझो।"

"और मेरे पास है ही क्या?"

एक गहरा मौन व्याप जाता है।

अगर मॉरिस दयावश मेरे पास टिका हुआ है, तो मुझे उसे जाने को कह देना चाहिए। अगर वह नहीं जाएगा तो नोइली किसी और के पास चली जाएगी।

एक दिन वह मुझसे प्यार दिखाता है तो अगले दिन कटु हो जाता है।

शुक्रवार, १७ दिसंबर : कल शाम मैंने उन्हें फिर साथ-साथ देखा। वे मुसकरा रहे थे। जब वह मेरे साथ होता है, तब उसे एक पल को भी नहीं भूल पाता।
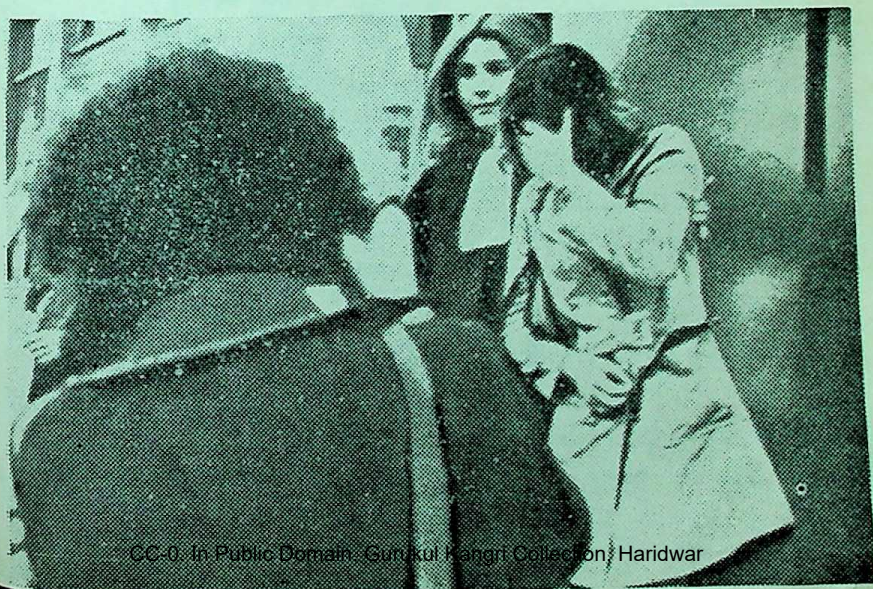
विश्वसनीय और अहानिकर

गर्भ-निरोधक खाने की गोलियाँ

सलाह व मुफ्त गोलियाँ पाने के लिए अपने निकट के केन्द्र से सम्पर्क कीजिए।

अब सभी शहरी परिवार कल्याण नियोजन केन्द्रों पर उपलब्ध है।

अन्य सूचना के लिए दिल्ली में इस नम्बर पर टेलीफोन कीजिए : 373737

लेकिन जब उसके साथ होता है तब मुझे बिलकुल ही भूल जाता है। उसकी हंसी एकदम उन्मुक्त है, कहीं कोई छाया तक नहीं।

रविवार (शाम) २० दिसम्बर: महान आश्चर्य। मॉरिस ने कहा, "हम क्रिसमस व नववर्ष इकट्ठे बितायेंगे।" शायद वह नुकसान का मुआवजा है। कारण कोई भी हो। प्रसन्नता के इन टुकड़ों को लपकने में क्या हर्ज है?

१ जनवरी: ज्यादा खुश होने की वजह नहीं। इसके बाद वह १० दिन के लिए नोइली के साथ जा रहा है।

२ जनवरी: कल शाम मॉरिस ने मेरे व कोलेट के साथ बितायी। मेरे मन में संदेह-सर्प ने सिर उठाया। मैंने नोइली के फ्लैट पर फोन किया। पता चला वह कल शाम तक पेरिस लौटेगी। बाहर गयी है। मैं भी कितनी बेवकूफ हूं। नोइली बाहर गयी है, इसीलिए मुझे मेरी जगह मिल गयी है—सिर्फ उतने समय के लिए।

मन होता है—मॉरिस को बाहर फेंक दूं।

मैं चीख पड़ती हूं, मॉरिस कहता है, "नोइली इसीलिए गयी कि मैंने क्रिसमस व नववर्ष तुम्हारे साथ बिताया है।"

नहीं, मुझे पता है कि वह ये दिन हमेशा अपनी बेटी के साथ बिताती है।

कब रात हुई। कब वह बीत गयी। मुझे पता नहीं चलता। मैं शराब पीती हूं, गोलियां खाती हूं, नींद लानेवाली गोलियां। जब सन्नाटा चुभता है, तब मैं रेडियो खोल लेती हूं। हर कहीं राख बिखरी है। मेरे कपड़े गंदे हैं। पलंग की चादरें मैली हैं। खिड़कियों के शीशों पर धूल की परत है। यह मेरा रक्षा-कवच है, मैं इससे बाहर नहीं आऊंगी। यहां से शून्य में जाना आसान है। जहां से लौटने की आवश्यकता नहीं। लेकिन मैं मरूंगी नहीं। अभी कुल जमा चौवालिस की हूं। इतनी जल्दी मरना, लेकिन मैं जी भी तो नहीं सकती। मैं मरना भी नहीं चाहती।

मुझे किस तरह बेवकूफ बनाया गया है। मॉरिस मुझे वहां तक ले आया है जहां मैं यह कहने पर मजबूर हो गयी कि वह अपना मनपसंद चुनाव कर ले ताकि वह कह सके, "मैं नोइली को नहीं छोड़ सकता।"

दो दिन बाद: बेचारी कोलेट। मैंने उसे दो बार फोन किया। प्रसन्न स्वर में बातचीत की, ताकि वह चिंतित न हो। उसे आश्चर्य होता है कि मैं उससे मिली क्यों नहीं? उसे अपने पास बुलाती भी नहीं। उसने आकर इतने जोर से दरवाजा भड़भड़ाया कि उसे अंदर बुलाना पड़ा।

वह आंखों में आश्चर्य भरे मुझे देख रही है। मैं उसकी आंखों में अपने को देखती हूं।

१९ जनवरी: क्या यह सच हो सकता है कि मॉरिस को आजाद छोड़ देने से

मुझे आराम मिला है? कल रात दुःस्वप्न नहीं आये। मेरा वजन ९ पौंड कम हो गया है। मॉरिस आया तो उसके पहले शब्द थे, "तुम कितनी बीमार दिखती हो।"

आश्चर्य! मैंने उसकी आंखों में आंसू देखे—"मैं बुरा हूं, बहुत बुरा।"

"दूसरी औरत को प्यार करना कोई बुरी बात नहीं।"

"क्या मैं सचमुच उसे प्यार करता हूं?"

मैं उसके इन शब्दों को संजोकर रख रही हूं। बात क्या है? वे दोनों चौदह दिन पहाड़ों में बिताकर आये हैं। और फिर वह ये शब्द कह रहा है। शायद वह मेरी ओर लौट रहा है। शायद!

२३ जनवरी : उसने पूरी शाम घर में गुजारी। नये रिकार्ड लाकर सुने। वह कहता है, "फरवरी के आखिर में हम दक्षिण जाएंगे।"

लोग दुःख में सहानुभूति दिखाते हैं। मैंने मेरी लेम्बार्ट से कह दिया—"मॉरिस वापस लौट रहा है।"

२४ जनवरी : नोइली का फोन आया था। मॉरिस पास बैठा अखबार पढ़ रहा था। मैं चाहती थी कि फोन पटक दूं, कह दूं, वह नहीं है लेकिन...

मॉरिस ने सकुचाते हुए फोन लिया। कई बार कहा, "नहीं यह असंभव है।" अंत में बोला, "ठीक है, मैं आऊंगा।"

उसके फोन रखते ही मैंने कहा, "तुम मत जाओ, वह यहां भी परेशान करती है।"

"हममें खूब झगड़ा हुआ था। मुझे एक बार जाना ही होगा, वरना वह कुछ कर बैठगी।" और वह चला गया।

२५ जनवरी : उसका फोन आया है कि रात को वह वहीं रहेगा। वह उसे यों छोड़कर नहीं आ सकता। मैंने विरोध करना चाहा तो उसने फोन रख दिया। मैंने दोबारा फोन किया लेकिन कोई उत्तर नहीं। मन होता है, अभी चलकर नोइली के फ्लैट की कालबेल दबा दूं, लेकिन... मैं यों ही बाहर घूमने निकल जाती हूं। और कई घंटों बाद आकर कपड़े पहने-पहने गिर पड़ती हूं। मॉरिस अंदर आकर मुझे जगाता है।

तो वह मेरे साथ इसलिए था कि नोइली से झगड़ा हो गया था—"मैं जानती हूं कि अंततः तुम मुझे छोड़ कर चले जाओगे।"

३० जनवरी : मेरी सहेलियों को क्या हो गया है। वे सब मॉरिस की हिमायत करती हैं। मुझे गलत समझती हैं।

३१ जनवरी : हर चीज मुट्ठी में से निकलती, फिसलती जा रही है। मॉरिस मेरे प्रति सहानुभूतिशील है, पर उसकी खुशी छिपाये नहीं छिपती कि उसने नोइली को फिर से पा लिया है।

३ फरवरी : "तो तुमने नोइली के साथ रहने का फैसला कर लिया है?" मैंने मॉरिस से पूछा।

"नहीं, लेकिन यह भी सच है कि

मझे और तुम्हें कुछ समय के लिए अलग रहना चाहिए। तभी तनाव कम होंगे।"

"लेकिन मैं इसे सह नहीं सकूंगी।" मैं चीखती हूं।

नोइली ने उसे मुझे त्यागने के लिए तैयार कर लिया। लेकिन मैं भी हटने-वाली नहीं।

६ फरवरी : और उसके बाद कोई तारीख नहीं : मॉरिस मुझसे बार-बार कहता है कि मैं किसी डॉक्टर से सलाह लूं। कल शाम मॉरिस आया तो मैं अंधेरे कमरे में बैठी थी।

"तुमने रोशनी क्यों नहीं जलायी?"

"जरूरत क्या थी?"

उसकी सहानुभूति में परेशानी व चिड़चिड़ाहट घुल रही है। मैं हमेशा घर में ही क्यों रहती हूं। इस तरह चलने-वाला नहीं।

वह अपने को 'स्टडी' में बंद कर लेता है। उसका खयाल है, मैं उसे ब्लैकमेल कर रही हूं।

इस बार चार-पांच दिन अधिक हो गये हैं, पर खून जाना बंद नहीं हो रहा है। मैं किसी को कुछ नहीं बताती हूं। मुझे डर लगता है।

मॉरिस से मिलती है अपंगों के प्रति दया व चिड़चिड़ाहट।

२३ फरवरी : मैंने लुसिना को पत्र दिया था। प्यार भरा उत्तर आया है उसका। वह मुझे न्यूयार्क बुला रही है।

मुझे लगता है, अब संघर्ष करना छोड़ देना चाहिए।

२६ फरवरी : मैंने मनोचिकित्सक की सलाह मान ली है। मैंने एक नौकरी कर ली है। कुछ स्वस्थ भी हो गयी हूं।

३ मार्च : तो मामला यह था। अंतिम चोट मारने से पहले मुझे चोट झेलने लायक बनाया गया। जैसे नाजी तड़पाने के लिए अपने शिकार को बार-बार होश में लाते थे।

"नाजी! हत्यारे!" मैं चीख उठती हूं। वह चकित आंखों से देखता रह जाता है। कहता है, "मोनिके, कुछ दया करो मुझ पर।" वह एक बार फिर समझाता है कि साथ रहना ठीक नहीं। वह नोइली

के फ्लैट में नहीं रहेगा। इसके बाद भी हम दोनों साथ-साथ समय बिता सकेंगे।

मैं मना कर देती हूं।

मैंने नौकरी छोड़ दी है।

५ मार्च : मनोचिकित्सक भी मुझे मॉरिस से अलग रहने की सलाह देता है। क्या मॉरिस ने उसे भी सिखा-पढ़ाकर तैयार कर लिया है?

८ मार्च : मॉरिस फ्लैट ढूंढ़ रहा है। इस बार मैं कुछ नहीं कहती। हमारे बीच अब गुस्सा नहीं, खालीपन है।

वह मुझ पर दबाव डालता है कि मैं कुछ दिनों के लिए न्यूयार्क चली जाऊं। वह मेरे पीछे से मुझे छोड़कर जाए तो यह कम दुखद होगा। शायद।

१५ मार्च, न्यूयार्क : मुझे मॉरिस के तार की प्रतीक्षा है—'मैंने नोइली को छोड़ दिया है। मेरा इरादा बदल गया है। मैं घर छोड़कर नहीं जा रहा हूं।' लेकिन ऐसा कोई टेलीग्राम नहीं आया।

न्यूयार्क भेजने से पहले मॉरिस व कोलेट ने मुझे खूब गोलियां खिला दी थीं। न्यूयार्क में लुसिना मेरी 'डिलीवरी' ले लेगी—मैं एक पार्सल ही तो थी। एक अपंग, बेवकूफ! मैं सारे रास्ते सोती रही।

लुसिना कितनी बड़ी और सुंदर हो गयी है।

मैं उससे कहती हूं, "तुम्हारे पापा ने मुझे प्यार करना छोड़ दिया है।"

वह दयापूर्ण हंसी हंसती है, "मां, शादी के १५–२० साल बाद ऐसा हो जाना कुछ अचरज नहीं। तुम प्यार को अनंत समझ बैठी, यही गलती है तुम्हारी।"

२३ मार्च : मैं कल वापस जा रही हूं। चारों ओर रात का अंधेरा पहले जैसा ही घना है। मैंने मॉरिस को तार दे दिया है कि मुझे लेने ओरली हवाई अड्डे पर न आये। मुझमें इतनी नैतिक शक्ति नहीं कि उसके सामने हो सकूं।

२४ मार्च : कोलेट और जीन पियरी मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। मैं अपने फ्लैट में लौटी हूं। खिड़की अंधेरी है। अब ऐसी ही रहेगी भी। हम सीढ़ियां चढ़े। मैं कोलेट को यहां नहीं रहने दूंगी। मैं अकेली ही इस सबकी अभ्यस्त होना चाहती हूं। सामने बंद दरवाजे हैं—हमारा शयनकक्ष, मॉरिस की स्टडी। कुछ है जो उन बंद दरवाजों के परे से देख रहा है मुझे। अगर मैं न उठूं तो ये कभी नहीं खुलेंगे। समय का बहाव रुक जाएगा।

लेकिन मुझे उठना ही है। दरवाजा धीरे से खुलेगा और मैं देख लूंगी दरवाजे के पीछे क्या है? यह है—भविष्य! मेरे बिना चाहे भी भविष्य का दरवाजा खुलेगा। मैं चौखट पर खड़ी हूं। सामने बंद दरवाजा है। मैं आतंकित हूं। किसी को मदद के लिए नहीं बुला सकती। मुझे डर लग रहा है। ●

दी हिन्दुस्तान टाइम्स लिमिटेड की ओर से रामचन्दन सिन्हा द्वारा हिन्दुस्तान ... प्रेस, नयी दिल्ली में मुद्रित तथा प्रकाशित

चलते चलते

• सुशील कालरा

रजि. नं. डी.-(सी)-१०७

[illegible]म्बर १९७५

मासिक प्रकाशन

कादम्बिनी

भारतीय भाषाओं की विशिष्ट पत्रिका

बहस्पती धार का पानी

हिन्दुस्तान टाइम्स प्रकाशन

राजेश
खन्ना

FREE
Crest hair dye stick
and pair of hand gloves
in each pack
IMPRESSIONS D-55-1/75

हम आपके सहयोग से परिपक्वता-दावों का भुगतान अधिक गति से कर सकेंगे

१४,८८९ आवश्यकताओं की पूर्ति के अभाव में
११९१ लाख रुपयों के दावों
का भुगतान रुका हुआ है।

३,२४,००० आवश्यकताओं की पूर्ति होने के कारण
८१२४ लाख रुपयों के दावों
का भुगतान हो चुका है।

पालिसी की अवधि पूर्ण होने पर दावों के भुगतान में देरी होने का एक कारण यह है—बीमेदारों द्वारा आवश्यकताओं की पूर्ति समय पर न होना।

जीवन बीमा निगम सामान्यतः डिस्चार्ज वाउचर बीमेदार के पास परिपक्वता-तिथि के एक महिने पहले भेज देता है। अगर वाउचर ठीक तरह से न भरा हो और पालिसी के साथ निगम के पास न भेजा हो तो दावे के भुगतान में देरी हो जाती है।

यदि आपकी पालिसी की मियाद पूरी हो चुकी हो और यदि आपको डिसचार्ज वाउचर न मिला हो (१ प्रतिशत मामलों मे मशीन या कर्मचारी की त्रुटी से ऐसा हो जाता है) तो तुरन्त निगम के उस कार्यालय से सम्पर्क स्थापित कीजिए जहाँ से आपको सेवा मिलती थी।

निगम द्वारा भेजे गये डिस्चार्ज वाउचर बीमेदारों को नही मिलते, इसकी वजह यह है कि बीमेदार या तो अपनी पुरानी जगह छोड़कर नई जगह पर चले जाते है या पते के हेरबदल की ईत्तला निगम को देना भूल जाते है। ऐसे मामलों में निगम कर ही क्या सकता है।

१९७३-७४ में ४,०३४ बीमेदारों का पता निगम को मालूम न होने के कारण दावों का भुगतान बीमेदारों को न हो सका।

१९७३-७४ में डिस्चार्ज वाउचर या पालिसी-दस्तावेज न मिलने के कारण ४१,४५२ पालिसियों या यानें ७९ प्रतिशत परिपक्वता दावों का भुगतान न हो सका।

आवश्यकताओं की पूर्ति का मतलब है दावों का शीघ्र भुगतान।

सामान्यतः डिस्चार्ज वाउचर ठीक तरह से भरने और पालिसी के साथ भेजने पर भुगतान जल्द होता है।

१९७३-७४ में ८,१२४ लाख रुपयों के ३,२४,००० परिपक्वता-दावों का भुगतान हुआ।
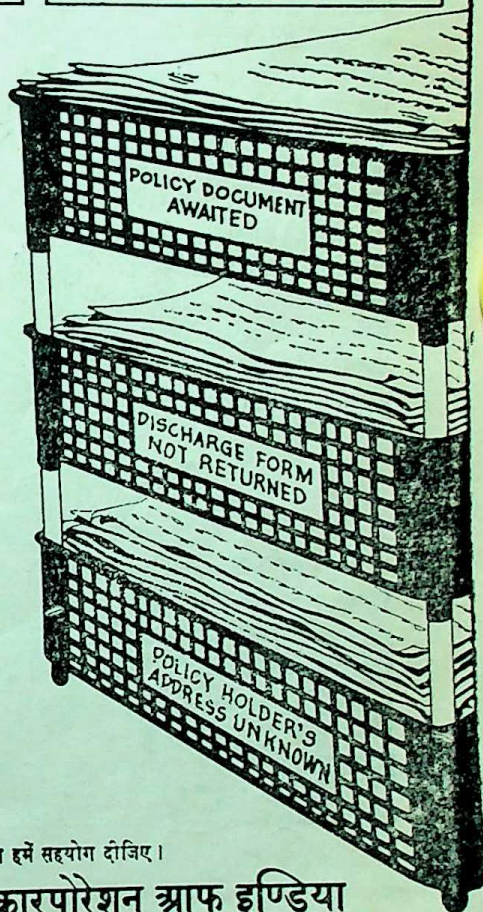
आपको अच्छी सेवा करने के लिए आप हमें सहयोग दीजिए।

लाइफ इन्श्योरेन्स कारपोरेशन ऑफ इण्डिया

LIC/AS-9

बढ़ता बचपन
बलवान बने-
इनक्रिमिन* से
बचपन के पहले २ वर्ष, मुन्ने के लिये बढ़ने के दिन हैं। इन दिनों उसका शरीर फूल की तरह खिलता है– विकसित होता है, उसे इनक्रिमिन ड्रॉप्स् जरूर दीजिये। फिर देखिये, खाने से आनाकानी के बजाये इसकी भूख कैसे जाग उठती है—खाया पिया तन को लगने लगता है। लाभदायक विटामिनों से परिपूर्ण इनक्रिमिन में विशेष अमीनो एसिड, लायसिन भी शामिल है— जो आहार के सभी पोषक तत्वों को ग्रहण करने में सहायता करता है।
वाह वाह! क्या कहने!
घपाघप वो खाये-
झटपट बढ़ता जाये!

10 ml
Incremin
drops LYSINE-VITAMINS
TONIC APPETITE
STIMULANT
Sista's INC-364 G/75 Hin
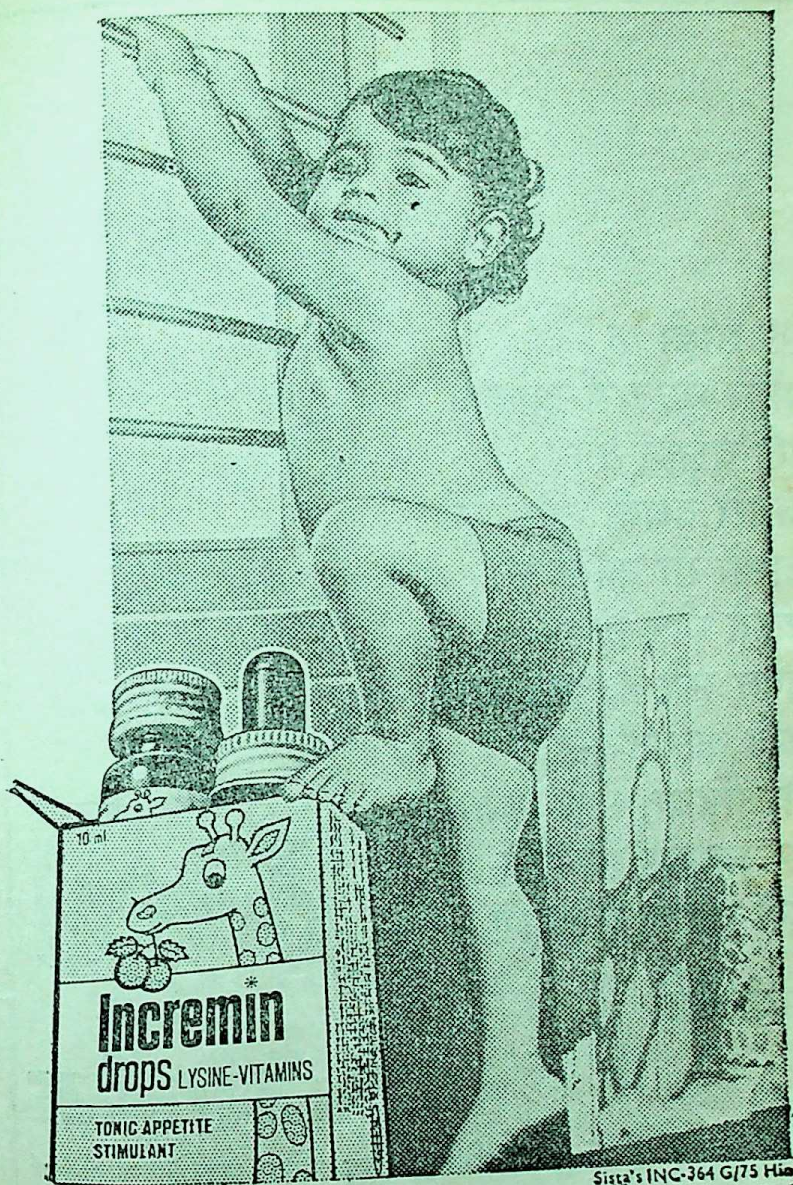
लाल साड़ी के
शर्मीले घूंघट से झांकती
गोरी दुल्हन की
सुनहरी नथनी और झूमर
घटाओं सी काली लटों से
लटकते पीले झुमके
उपटन लगे हल्दयी हाथों में
चटख कत्थई मेहंदी
हरी चूड़ियां, पीले कंगन
लाल महावर रचे पैरों में
चंदेरी पायल व बिछुए

रंग ही रंग

नेरोलॅक

रंग—जीवन का एक अभिन्न अंग

-GNC-43

• **विशालाक्ष**

निम्नलिखित शब्दों के जो सही अर्थ हों उन पर चिह्न लगाइए और साथ दिये उत्तरों से मिलाइए।

१. **धन्यंमन्य**—क. स्वयं को धन्य माननेवाला, ख. धनीमानी, ग. घमंडी, घ. सुकृती।

२. **तलछट**—क. निकृष्ट, ख. पेंदी में बैठा तरल पदार्थ का मैल, ग. तड़पन, घ. सार।

३. **उपस्कर**—क. पुरस्कार, ख. तस्कर, ग. साजसज्जा, घ. अचार-चटनी।

४. **कृतविद्य**—क. निपुण, ख. कृतज्ञ ग. विद्याभ्यासी, घ. विद्वान।

५. **मंथर**—क. मत्त, ख. मंद, ग. सुस्त, घ. आलसी।

६. **ग्रासाच्छादन**—क. घास पर पड़ी ओस, ख. छिपाकर निवाला लेना, ग. अन्न-वस्त्र, घ. हरियाली।

७. **सम्यक**—क. पूर्ण, ख. अनुकूल, ग. व्यापक, घ. असीम।

८. **सूफियाना**—क. शौकीन, ख. चटकदार, ग. उत्तम, घ. सादा और साफ-सुथरा।

९. **याथातथ्य**—क. सचाई, ख. अनुकूलता, ग. हूबहूपन, घ. यथायोग्य होना।

१०. **मूर्धन्य**—क. सर्वोच्च स्थानीय, ख. प्रसिद्ध, ग. मस्तकरूप, घ. प्रथम।

११. **लघुचेता**—क. अदूरदर्शी, ख. ओछे विचारोंवाला, ग. जिसे क्षण भर को चेत हो, घ. मूर्छित।

१२. **लावण्य**—क. सुंदरता, ख. खारापन, ग. सलोनापन, घ. शोर-गुल।

१३. **संवाहक**—क. बहानेवाला, ख. ढोनेवाला, ग. संवाददाता, घ. मजदूर।

१४. **मर्दनीक**—क. रौंदनेवाला, ख. घोंटनेवाला, ग. मालिश करनेवाला, घ. मथनेवाला।

१५. **दैवतंत्र**—क. भाग्याधीन, ख. स्वाधीन, ग. देव का शासन, घ. देव-राज्यप्रणाली।

१६. **निष्परिकर**—क. कमरबंद के बिना, ख. साथियों के बिना, ग. निःशस्त्र, घ. अनुद्यत।

१७. **मोघ**—क. स्थूल, ख. निष्फल, ग. वीरान, घ. शुष्क।

उत्तर

१. क. स्वयं को धन्य माननेवाला। नेता के दर्शनों से **धन्यंमन्य** जनता। तत्. (धन्य = कृतार्थ, अनुगृहीत, भाग्यशाली+मन्य = स्वयं को माननेवाला), वि., पुं.।

२. ख. पेंदी में बैठा तरल पदार्थ का मैल। (आलंकारिक) समाज का **तलछट**—अधम व्यक्ति। लो. भा. (तल=

पेंदी-।-छट=छंटा हुआ), सं. उ. लिं. । **कीट, तलौंछ ।**

३. ग. साजसज्जा। **उपस्कर**-सहित मकान भाड़े पर लिया। तत्. सं., पुं., उपस्कार, उपस्करण, उपस्कृति, फर्निशिंग। वि. उपस्कृत।

४. घ. विद्वान। वह **कृतविद्य** अवश्य है किंतु पढ़ाना नहीं जानता। तत्. (कृत-।-विद्या), विं., पुं., जिसने विद्याभ्यास किया हो।

५. ख. मंद। **मंथर** गति, **मंथर** विवेक। तत्., वि., उ. लिं.। जड़, मंथर बुद्धि। मद-मत्त जैसा मंद।

६. ग. अन्न-वस्त्र। उस राज्य में कोई **ग्रासाच्छादन** से विरहित नहीं है, वेतन तथा **ग्रासाच्छादन**। तत्. (ग्रास = आहार-।-आच्छादन = तन ढंकने का वस्त्र),

७. क. पूर्ण। गांधीजी का **सम्यक** दर्शन, **सम्यक** दृष्टि, **सम्यक** जीवन। तत्., वि., उ. लिं.। **संपूर्ण, अखंड, समस्त,** विषय के हर पहलू को व्याप्त करनेवाला।

८. घ. सादा और साफ-सुथरा। **सूफियाना** मिजाज, लिबास, ढंग। सूफी (अरबी) इआना (फारसी), वि., उ. लिं.। **परिमार्जित, परिष्कृत,** सूफियों–जैसा।

९. ग. हूबहूपन। चित्र, वर्णन **याथातथ्य** है। तत्. (यथा-।-तथ्य), सं., पुं.। यथातथ्यता, वास्तविक वस्तु से अनुरूपता, **यथार्थता।**

१०. क. सर्वोच्च स्थानीय। देशभक्तों, दानियों, विद्वानों में **मूर्धन्य**। तत्. (मूर्धन = शिर, शिखर, अग्रभाग), वि. पुं.। **श्रेष्ठ, शिरोमणि, सरताज, अव्वल।**

११. ख. ओछे विचारोंवाला। उदारचेताओं के बीच उस **लघुचेता** का क्या काम? तत्. (लघुचेतस्, लघु = ओछा-।-चेता = विचारोंवाला) वि., पुं.। **क्षुद्र, नीच।**

१२. ग. सलोनापन। उसके **लावण्य** से कौन प्रभावित नहीं होगा। तत्. सं. पुं.। **सौंदर्य, लवणिमा, लुनाई।**

१३. ख. ढोनेवाला। **संवाहकों** ने सामान ढोया। तत्. सं., पुं.। **संवाही, वाहक।**

१४. ग. मालिश करनेवाला। वह कुशल **मर्दनीक** है। तद्. सं. पुं.। गात्र-मर्दक, तैल-मर्दक।

१५. क. भाग्याधीन। मैं स्वतंत्र नहीं, **दैवतंत्र** हूं। तत्. (दैव = भाग्य-।-तंत्र = अधीनता) वि. उ. लिं.। **दैवाधीन, अदृष्टाधीन।**

१६. घ. अनुद्यत। युद्धकाल में देश **निष्परिकर** नहीं था। तत्. (निः= विहीन-।-परिकर=कमर-कसे हुए) वि., उ. लिं.।

१७. ख. निष्फल। **मोघ** कर्म मोघकर्मा, **मोघ** प्रयत्न, औषध **मोघ** सिद्ध हुई। तत्. वि., उ. लिं.। व्यर्थ चूक जानेवाला। मिलाइए—**अमोघ**। ●

आपके पत्र

'यह कहानी नहीं' (अमृता प्रीतम) तथा 'कोलाहल' (दीप्ति खंडेलवाल) कहानियां पसंद आयीं। 'यह कहानी नहीं' के पात्र सहज ही पाठकों की सहानुभूति प्राप्त कर लेते हैं। 'किसी ने फूल रौंदे हैं' (पुष्पा राही), 'मन का चौराहा' (कमला वर्मा) तथा सरोजनी प्रीतम की चार हास्य कविताएं अच्छी लगीं।

—'सुधाकर', दिल्ली

'लेखिका कथा-विशेषांक' के रूप में यह अंक प्रशंसनीय है। 'युवा-विद्रोह', 'क्या हम हंसना भूल गये हैं?' लेखक ही कर रही है। 'आत्म-साक्षात्कार', 'काल-चिंतन', विशेष प्रभावशील स्तंभ हैं। **—देवेन्द्रनाथ कौशिक, जबलपुर**

ताजा अंक देखा। सामग्री, छपाई एवं साजसज्जा की दृष्टि से 'कादम्बिनी' संग्रहणीय बन पड़ी है।

—पुरुषोत्तम गर्ग, दिल्ली

दीप्ति खण्डेलवाल की कहानी 'कोलाहल' में आज के विश्वविद्यालयों के वातावरण का बड़ा सटीक वर्णन है। छात्र-संघ के नेता अपना स्वार्थ देखते हैं, विश्वविद्यालय अधिकारी प्रायः सिद्धांतहीन और चापलूस हैं। ऐसे में एकाध उचित स्वर दबकर रह जाता है।

हरपाल कौर के लेख 'स्त्रियों की अंतर्राष्ट्रीय दुर्बलताएं' से असहमत हूं। पुरुष और स्त्री की प्रकृति में जो भी अंतर है वह परिस्थितियों के ही कारण है। दबे हुए स्वर को अचानक ढीला करने से उसमें विकृति तो आएगी ही, लेकिन कुछ समय बाद स्वतः ही स्थिति सामान्य हो जाएगी।

और एक बात तो 'लेखिका-कथा विशेषांक' ने सिद्ध कर ही दी है कि औसतन महिला एक पुरुष से अच्छी कहानी लिखती है।

—चन्द्रमणि पाण्डेय, भागीरथी, पटना-१

चिंतन को उत्तेजित करते हैं। 'संसार की प्रसिद्ध जासूस महिलाएं' एवं 'कुअंक भाल के' भी अच्छी रचनाएं लगीं।

कविताओं में 'प्रवेश' के अंतर्गत रेवती केलकर की 'सलवटों का समुद्र' ने काफी प्रभावित किया।

सारगर्भित 'काल-चिंतन' ने एक बार फिर हृदय के तारों को झंकृत कर दिया। 'मनुष्य की सबसे बड़ी आकांक्षा और इच्छा क्या है?' इस विशद प्रश्न का कितना छोटा-सा उत्तर मिलता है—'यश'। **—सुरेन्द्र श्रीवास्तव, भिवानी**

आधुनिक व्यस्त जीवन के कोरे पन्नों को खोलने का कार्य 'कादम्बिनी'

महिला-वर्ष को समर्पित 'कादम्बिनी' का अगस्त अंक काफी रोचक और विचारणीय रहा। परिचर्चा में यूं तो महिलाओं ने अपने-अपने सशक्त विचार प्रस्तुत किये हैं, किंतु जहां उनकी एक बात मजबूत जान पड़ती है वहीं दूसरी कमजोरी भी दीख जाती है।

नारी का जीवन-निर्वाह के लिए घर से बाहर काम करना अमला शंकर के लिए दु:ख की बात हो सकती है, पर आज की परिस्थितियों में सिर्फ पुरुष के आर्थिक सहयोग से गाड़ी नहीं चल सकती। तारकेश्वरी सिन्हा के अनुसार साम्यवादी देशों में, जहां दोनों नौकरी करते हों, पारिवारिक इकाई का अभाव रहता है। प्रश्न उठता है कि राजनीति-जैसे जटिल क्षेत्र में रहकर वे स्वयं अपने परिवार को कितना समय दे पाती होंगी?

संपादकीय में नारी के नाम बदलने पर आपत्ति की गयी है तो क्या अहंकारी पुरुष उसकी इस 'अपील' पर ध्यान देगा?

—सुधीरकुमार 'अज्ञात', मुरादाबाद।

'समय के हस्ताक्षर', परिचर्चा, हरपाल कौर के लेख तथा 'महिला-वर्ष' वास्तविक स्थिति को स्पष्ट करने में सफल हैं।

—बसन्तकुमार 'चकोर', मुजफ्फरपुर-२
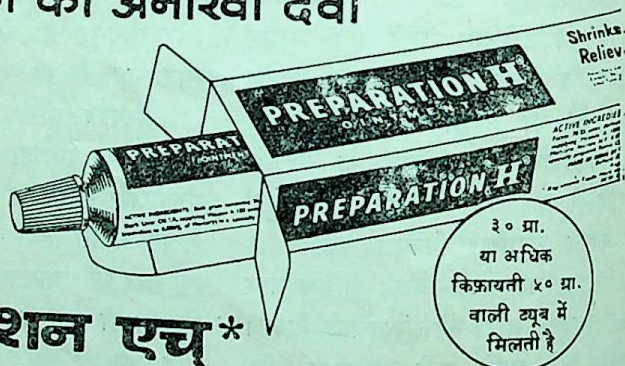
अंतर्राष्ट्रीय महिला-वर्ष के विषय में प्रायः सभी पत्र-पत्रिकाओं में कुछ-न-कुछ पढ़ने को मिल रहा है।

स्त्री-पुरुष, जो एक ही सिक्के के दो रूप हैं, उनका एक-दूसरे पर कैसा स्वामित्व है? कहा जाता है कि नारी चूल्हे-चौके तक ही बंधकर रह जाती है, जैसे सारे दुःख और झंझट चूल्हे-चौके के पास ही बैठे होते हैं, और पुरुष बाहर खुली हवा में स्वतंत्र फिरता रहता हो! जिन बच्चों के नाम पर स्त्री चूल्हे-चौके से बंधी बतायी जाती है, उन्हीं के लिए पुरुष भी ताउम्र मेहनत करता है। भारत में औरतें नौकरी कर रही हैं। डाकघर एवं बैंक पूर्णतया स्त्रियों द्वारा चलाये जा रहे हैं; पर इसे भी वे पब्लिसिटी स्टंट बता रही हैं। क्या कीजिएगा अब!

स्त्री-पुरुष की बराबरी के नाम पर वियतनामी महिलाओं का उदाहरण दिया जा रहा है। पाकिस्तान से युद्ध के समय भारतीय महिलाओं ने जवानों को रोटियां पका-पकाकर खिलायीं। क्या यह काम युद्ध-मोर्चे पर बंदूक पकड़ने से कम था? महत्त्व की बात यह नहीं कि जो एक करे वही दूसरा भी करे। महत्त्व सहयोग में होता है। अगर किसान सारा दिन झुलसाती धूप में खेत में हल चलाये और उसकी पत्नी उसके लिए घर में रोटी तैयार करे, तो क्या यह कहा जाना चाहिए कि उसने पति के समान काम नहीं किया है?

स्त्री को सबसे अधिक दुःखी अगर कोई करता है तो वह स्वयं स्त्री। सास-बहू का रिश्ता ही झगड़े का रिश्ता है। मां लड़कों को लड़कियों की अपेक्षा अधिक चाहती है।

क्यों कोई विवाहिता या कुमारी किसी विवाहित पुरुष के साथ प्रेम की पेंगें बढ़ाती है? क्या उस समय उसे एक स्त्री की भावनाओं और अधिकारों को चोट पहुंचाते शर्म नहीं आती?

स्त्री को स्त्री से मुक्ति की आवश्यकता है, न कि पुरुष से!

—सी. आर. वशिष्ठ, मंडी (हि. प्र.)

नीला चावला का लेख 'कुअंक भाल के' प्रशंसनीय था। ऐसी घटनाएं आस-पास रोजमर्रा सुनने और कभी-कभी देखने को मिल जाती हैं।

इस साल जो महिला-वर्ष का शोर सुनायी दे रहा है, वह औसत भारतीय महिलाओं के लिए लगभग प्रभावहीन है।

—नीना उपाध्याय, इंदौर

अगस्त का मुखपृष्ठ-संयोजन विशेष आकर्षक लगा। विनीता अग्रवाल की 'अपमानिता' पसंद आयी, लगा कि कहानी लेखिका की ही नहीं, पाठिका की भी कथा होती है। युवा लेखिका को मेरी अनेक बधाइयां। आपने कुछ नये हस्ताक्षरों को इस अंक में मौका दिया, यह 'कादम्बिनी' की परंपरा के अनुकूल है।

—नीलांजना किशोर, सहारनपुर।

वर्ष १५ : अंक ११
सितम्बर, १९७५

आकल्पं कविनूतनाम्बुदमयी कादम्बिनी वर्षतु

संपादक

राजेन्द्र अवस्थी

कविताएं

कथा-साहित्य

सार-संक्षेप

मुखपृष्ठ : छायाकार–प्रेम कपूर (माडल : राधा)

स्थायी-स्तंभ

सह-संपादक : शीला झुनझुनवाला, उप-संपादक : कृष्णचंद्र शर्मा दुर्गाप्रसाद शुक्ल, विजयसुन्दर पाठक। चित्रकार : सुकुमार चटर्जी

काल-चिंतन

—विदेश जाते हुए विवेकानंद अपने प्रशंसकों से घिरे थे। उन्होंने पूछा, "आप सब यहां किसलिए आये हैं?" उत्तर मिला, "आपको विदा देने।" विवेकानंद मुसकराये और आगे चले गये।

—उनकी मुसकान अबोले बहुत कुछ कह गयी और लौटकर जब वे आये तो अपने साथ उसका उत्तर भी लेते आये। उन्होंने कहा, "मैं अकेला गया था, अपने साथ पूरा भारत लेकर लौटा हूं। यह सब आपकी विदा-वेला का प्रताप है।"

—विदा के क्षण आत्म-प्रवंचनाओं में डूबे होते हैं। उसके माथे पर करुणा का तिलक और जूड़े में प्यार का फूल लगा होता है।

—अलग होना टूटना है, जिसके बाद संन्यासी की तरह एक निर्मम याद के सिवा कुछ नहीं रह जाता।

—नशीली सर्पिणी की तरह उभरे हुए क्षण यादों में बदल जाते हैं।

—विदा के साथ एक टूटता है, दूसरा जुड़ता है।

—कण्व ऋषि के आश्रम से शकुंतला को जो विदाई दी गयी थी, उसमें सर्जनाओं के स्वर थे।

—अंतिम दर्शन के लिए रखा हुआ शव अपने ऊपर वर्जनाओं की चादर लपेटे विदा के लिए तैयार पड़ा रहता है।

—जानेवाला प्रेमी समर्पण की समस्त उपलब्धियों को अपने चिंतन-प्रकोष्ठ में कैद कर लेता है।

—जो पीछे छूट जाते हैं उनकी आंखें ओस से नम हो जाती हैं और उस ताप की प्रतीक्षा करती हैं, जो उन्हें स्याहीसोख-सा पी जाता है।

—इसलिए विदा के क्षण ओस में डूबे होते हैं।

—श्मशान-वैराग्य की तरह विदा-वैराग्य में भी अनास्थाओं और अनस्तित्व का एक कैनवास बनता है।

●●

—विरह की पीड़ा बिच्छुओं के डंक की तरह तीखी होती है।

—शीशे की तरह प्यार को भी चिटक जाने का भय होने लगता है।

—टूटी हुई अभिव्यक्तियां परंपराओं का मोह नहीं छोड़ सकतीं, यह किस व्यवहार-शास्त्र में लिखा है?

—आदमी सबसे बड़ा होते हुए भी समय और स्थितियों के हाथ बिका हुआ एक विवश कथानक है।

●●

—विदा एक दर्पण है, विदा एक्सरे मशीन से लिया गया एक नग्न चित्र है।

—आदमी के बीच के प्यार और घृणा की तसवीर उसी में देखी जाती है।

—विदा दो समूहों की विभाजन-रेखा है। यह रेखा हमेशा वैसी ही विभक्त रह सकती है और उससे गहरी जुड़ भी सकती है।

—इसलिए यह संघर्ष का अनमोल क्षण है। समर्पण की उपलब्धियों का निर्णायक केंद्र-बिंदु है।

—महाकवि टेनीसन ने लिखा था, 'अपनी महायात्रा को स्मारकों में बांधकर, विदा के दीर्घ क्षणों को मैं छोटा नहीं करना चाहता। मैं चाहता हूं, स्मृतियों में जीता रहूं और वही मेरा वास्तविक स्मारक होना चाहिए।'

—स्मृतियों में ही जिंदगी की धड़कनें करवटें लेती हैं। जिस दिन उसका एहसास टूट जाता है, अपनी ही वर्जनाओं का वह शिकार बनता है।

—यादें मुट्ठियों में बंद नहीं की जा सकतीं, उनका स्रोत मन की शिराओं के एक कोने में एक घाव की तरह होता है। इसलिए यादें रिसती हैं और आंखों के रास्ते वे बाहर बहती हैं।

—अलगाव के क्षणों में घाव और गहरा हो जाता है, शायद इसीलिए रोकने पर भी आंसू नहीं रुकते।

—मन के भीतर से तभी बोल उठते हैं 'विदा की बात मत कहना।'

—गिनी जानेवाली जिंदगी अभी-अभी अंगड़ाई लेकर उठी है, उसके अवगुंठन आज भी शरमाये हुए आंचल से बाहर नहीं आ पाये, अभी तो जाना-पहचाना भी नहीं है, फिर . . .!

—फिर ये क्षण कहां से आ गये?

●●

—विदा एक महायात्रा है : वह फिर जोड़ भी सकती है और काल-यात्रा को खंडित भी कर सकती है।

—इसीलिए यदि विवेकानंद ने कहा था, 'मैं अकेला गया था और अपने साथ सारा भारत लेकर लौटा हूं,' तो बुद्ध ने कहा था, 'मेरे महाप्रयाण का अंतिम वक्त आ गया, मेरी विदा की तैयारी करो!'

—एक लौटता है, एक खो जाता है; एक में प्यार की चिरंतनता का रक्त है तो दूसरे में अलगाव का पीलापन—दोनों विदा के मूलस्रोत से उपकृत हुए हैं।

—हम नहीं जानते कब, कौन-सी विदाई हमें मिलती है। यह न जानना ही तो सब-कुछ जानना है, क्योंकि जानने के बाद हमारे पास फिर बच ही क्या जाता है!

[signature]

क्रांतिकाल में जनतंत्र

• दीनदयाल दिनेश

सन १८५७ का स्वातंत्र्य - संग्राम न तो साधारण सिपाही-विद्रोह था और न ही कोई निरुद्देश्य आंदोलन। केवल अंगरेजों को देश से निकाल बाहर करने के लिए अंधाधुंध किया गया प्रयत्न भी नहीं था। उस समय के कागजात और ऐतिहासिक विवरणों से ज्ञात होता है कि यह एक ठोस और सुनियोजित योजना के अधीन छेड़ा गया स्वतंत्रता-संग्राम था, जिसके पीछे उच्च कोटि के मस्तिष्क कार्य कर रहे थे। मुगल सम्राट बहादुरशाह के दरबार में मुंशी जीवनलाल नामक एक इतिहासकार था। उसने अपना रोजनामचा लिखा है जिसमें स्वातंत्र्य-संग्राम की घटनाओं का विवरण दिया गया है। जीवनलाल एक प्रभावशाली व्यक्ति था।

जीवनलाल ने लिखा है, दिल्ली पर भारतीय सेना का शासन स्थापित हो जाने पर एक सैनिक न्यायालय की स्थापना की गयी थी, जिसे फौजी कोर्ट कहते थे। इसके दस सदस्य थे, जिनमें से छह सेना में से चुने गये थे और चार नागरिक थे। अध्यक्ष को निर्णायक मत का अधिकार प्राप्त था। इसके निर्णयों को कार्यान्वित करने से पूर्व प्रधान सेनापति से

वीरांगना लक्ष्मीबाई : झांसी की रानी
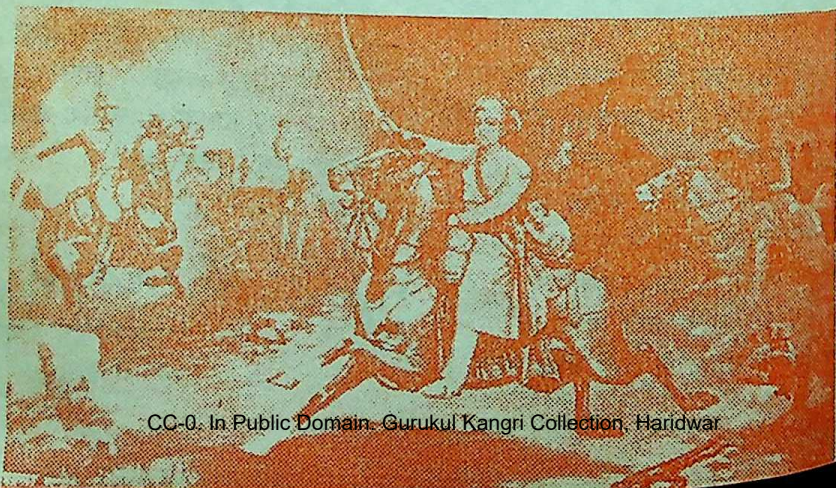
उनकी पुष्टि होना आवश्यक था। जब कोर्ट और प्रधान सेनापति किसी बात पर एकमत न होते थे तब मामला बादशाह के पास जाता था और उसका निर्णय अंतिम माना जाता था। यही कोर्ट नगर की शासन-व्यवस्था के लिए भी उत्तर-दायी था।

इस कोर्ट ने सैनिकों को कठोर आदेश दिया था कि कोई भी किसी प्रकार की लूटपाट न करने पाये। साथ में यह घोषणा भी की गयी कि जो सैनिक लूट-मार करता पाया जायेगा, उसके हथियार छीन लिये जायेंगे।

राजकाज चलाने के लिए सेठ-साहूकारों से चंदा लिया जाता था। जीवन लाल के २१ मई के रोजनामचे के अनुसार महाजनों ने चंदे के रूप में एक लाख रुपया दिया था।

पंजाब सरकार ने १९११ में 'गदर संबंधी क़ागजात' प्रकाशित किये थे। उनसे इस कोर्ट के विषय में बहुत-सी बातें ज्ञात होती हैं। एक आदेश-पत्र में कोर्ट के इन अधिकारियों के हस्ताक्षर हैं: सूबेदार मेजर बहादुर जीवाराम, सूबेदार मेजर बहादुर सेवाराम मिश्र, सूबेदार मेजर तालेयार खां, सूबेदार मेजर हेत-लाल, सूबेदार धनीराम। इसमें उन्होंने एक व्यक्ति को लिखा था, "आपका पर-वाना मिला। आपने लिखा है कि आपके पास शाही निर्देश-पत्र है; और जो खजाना लाया गया है, वह फौज की रोज-बरोज की जरूरतों पर खर्च किया जा रहा है; जो बचा है, वह कुछ दिन में खर्च हो जाएगा और आप चाहते हैं कि कोर्ट के अफसर रुपयों का प्रबंध करें। इसके बारे में आपको नीचे लिखे ढंग से प्रबंध करना चाहिए और सेना भेज देनी चाहिए—

'पहला प्रस्ताव—किसी महाजन से

अंतिम मुगल सम्राट : बहादुरशाह जफर

सूद पर रुपया ले लेना चाहिए और अंतिम बंदोबस्त होने के बाद ब्याज के साथ मूल-धन चुका देना चाहिए।

'दूसरा प्रस्ताव—इलाकों में व्यवस्था कायम करने के लिए डेढ़ हजार पैदल सेना, पांच सौ घुड़सवार और घोड़ोंवाली दो तोपें रवाना कर देनी चाहिए। थाना,

तहसील और डाक-व्यवस्था कायम करनी चाहिए, जिससे यह मालूम हो जाए कि बादशाह की हुकूमत कायम हो गयी है। और जहां भी सरकारी रुपया जमा किया गया हो, समझौते के द्वारा उस पर अधिकार कर लेना चाहिए, परंतु जो सेना भेजी जाए, उसे चेतावनी दे दी जाए कि यदि वह लूट-मार करेगी या जोर-जबरदस्ती से काम लेगी तो उसे कठोर दंड दिया जाएगा।

'तीसरे, जो सरदार भेजा जाए उसे कोर्ट द्वारा यह चेतावनी दे दी जाए कि यदि वह किसी गरीब आदमी या जमींदार, थानेदार या तहसीलदार को सतायेगा या घूस या नजरें लेगा तो कोर्ट उसे कठोर दंड देगा। जमींदारों के साथ बंदोबस्त इस प्रकार होगा: अगर सरकारी मालगुजारी दे दे के बारे में और इसकी बाबत कि गांव का बंदोबस्त पिछली बार उसके साथ हुआ था, कोई तहसीलदार को रसीद पेश करे तो कानूनगो, पटवारी और मुखिया के बयानों के बाद बंदोबस्त उसके साथ होना चाहिए। अगर कोई दूसरा फरीक आगे आये तो उसकी अर्जी ले लेनी चाहिए और उस पर यह हुक्म लिखना चाहिए कि उसके अधिकार की जांच के बाद उस पर माकूल हुक्म दिया जाएगा; लेकिन बंदोबस्त के समय नंबरदार का ओहदा उसे दिया जाए जिसके पास वह पहले था।

'चौथे, इस हुक्म के मुताबिक अगर सरदार बंदोबस्त न कर पाये तो जमींदार अपनी शिकायत कोर्ट के पास भेज सकेंगे; और अगर कोर्ट जरूरत समझेगा तो सरदार का हुक्म बदल देगा और असली मालिक का हक मंजूर करेगा।'

इस दस्तावेज से स्पष्ट है कि शासन-व्यवस्था कितनी सुचारु, न्यायपूर्ण और तर्क-संगत थी। ऐसा प्रतीत होता है कि यह निर्देशपत्र किसी राजा या नवाब को भेजा गया था, इसीलिए 'प्रार्थना' शब्द का प्रयोग किया गया है। फिर भी इस बात को स्पष्ट कर दिया गया है कि सर्वोपरि अधिकार सैनिक न्यायालय के पास ही था। इससे यह भी ज्ञात होता है कि कोर्ट सैनिक अधिकारियों की समिति थी। सेना-संचालन के अतिरिक्त मालगुजारी आदि के दीवानी कार्य की देखभाल भी वही करती थी। साथ ही वह सर्वोच्च न्यायालय के रूप में असंतुष्ट जमींदारों के मामलों की भी सुनवाई करती थी। घूसखोरी, नजरें लेने आदि की कुप्रथाओं पर प्रतिबंध लगाकर और गरीबों को न सताने का आदेश देकर उसने अपना जनतांत्रिक रूप प्रस्तुत किया था, जो सामंती परंपरा से भिन्न था।

सैनिक अधिकारी बादशाह के नाम पर सैन्य-संचालन करते और उसकी ओर से पत्र-व्यवहार करते थे, जिस प्रकार इंगलैंड का निर्वाचित मंत्रि-मंडल अपने सम्राट के नाम पर समस्त कार्य करता है।

दिल्ली के दस्तावेजों में प्राप्त प्रधान सेनापति के नाम लिखा गया कोर्ट का एक पत्र उल्लेखनीय है । इस पत्र में सेनापति द्वारा किये गये सुप्रबंध, सैनिक-व्यवस्था, परिश्रम-शीलता, युद्ध-कौशल की सराहना करते हुए कहा गया था, "दिल्ली का राज्य, ईश्वर की कृपा से जिसका जन्म हुआ है, अभी शैशवावस्था में है और एक शिशु के सदृश है। हम समझते थे कि ईश्वर ने आपको इस शिशु के लालन-पालन के लिए भेजा है और ईश्वर पर विश्वास करके हम आशा करते थे कि आप इस शैशवावस्था में राज्य का प्रबंध संतोषजनक रीति से करेंगे ।"

पत्र में सेनापति के कुछ कार्यों की आलोचना करते हुए आगे लिखा गया था, "हम सरदारों को, जिनसे इस कोर्ट का निर्माण हुआ है, केवल इस कर्तव्य का पालन करना है कि हम यह देखते रहें कि राज्य के मामलों का ठीक प्रबंध हो, शासन सुदृढ़ हो और किसी के कार्यों से उसकी जड़ कमजोर न हो; और यह कि प्रत्येक कार्य राजनीति के अनुसार किया जाए तथा सिपाही व छोटे अधिकारी बड़े सरदारों की आज्ञा का पालन करें एवं प्रत्येक वस्तु अपने स्थान पर नियमानुसार रहे। जैसा हमने सोचा, वैसा लिखा। उत्तर जल्द भेजिएगा।"

इस पत्र के अंतिम चार अनुच्छेद विशेष रूप से दृष्टव्य हैं। उनसे कोर्ट की राजनीति और जनतांत्रिक पद्धति पर समुचित प्रकाश पड़ता है। उनका जनतांत्रिक दृष्टिकोण इस बात से प्रकट होता है कि वे संघर्ष की आरंभिक कठिनाइयों में प्रतापी ब्रिटिश साम्राज्य को चुनौती देनेवाले साधारण सैनिकों एवं छोटे अधिकारियों को स्मरण करते हैं और उन्हें भुला देने के लिए प्रधान सेनापति की आलोचना करते हैं।

क्रांति के अग्रदूत : तांत्या टोपे

इससे स्पष्ट है कि १८५७ में दिल्ली में स्थापित यह नयी राज्यसत्ता इस देश की जनता के गौरव के अनुरूप थी। न तो वह मुगल सामंतशाही के अनुरूप थी और न ब्रिटिश भारतीय शासन की भांति निरंकुश !

—सैलानी भवन, घोंडा, दिल्ली-११००५३

शिखर-सम्मेलन किरायेदारों का

● देवेन्द्र इस्सर

शील्डन कोर्ट को छात्रों ने घेर लिया है। बिल्डिंग के बाहर 'साइडवाक' पर एक दायरे में छात्र चक्कर काट रहे हैं और गा रहे हैं। इस समूह-गान में कुछ राजनीतिक और कुछ अश्लील शब्दों का प्रयोग भी हो रहा है—दायरे के अंदर घिरा पुलिस का सिपाही उन्हें रुकने नहीं देता, क्योंकि ऐसा करना कानून की दृष्टि में सार्वजनिक स्थान पर अनधिकृत कब्जा समझा जाता है।

माइक पर जिम केफ्री बार-बार घोषणा कर रहा है—'बातचीत अभी जारी है। जेसन फेन के प्रतिनिधियों ने कुछ मांगें स्वीकार कर ली हैं और इन्हें एक निश्चित समय के अंदर पूरा करने का आश्वासन दिया है। लेकिन मीटिंग समाप्त होने तक प्रदर्शन जारी रहेगा। बातचीत टूट जाने पर अगली कार्रवाई की घोषणा की जाएगी।'

उधर जेसन फेन के प्रतिनिधि पीटर डुमांट की धमकी थी, 'यदि प्रदर्शन किया गया तो मैं बातचीत नहीं करूंगा, तुम पिस्तौल दिखाकर मुझसे अपनी शर्तें नहीं मनवा सकते।'

पुलिस के वर्दीवाले और बिना वर्दी के सिपाही इधर-उधर तैनात थे। उनमें से एक कह रहा था—'यह प्रदर्शन उन दिनों की याद दिलाता है जब छात्रों ने विश्वविद्यालय के कार्पेन्टर हॉल पर सशस्त्र कब्जा कर लिया था और खूब दंगे हुए थे।' लेकिन यहां तो दंगों की कोई संभावना नहीं थी। सभी छात्र शांतिपूर्ण थे। उनमें उत्साह था अपनी मांगें पूरी करवाने का।

'यह सब क्या हो रहा है?' एक राहगीर ने पूछा।

'कॉर्नेल विश्वविद्यालय, इथका (न्यूयॉर्क) के कुछ छात्र, जो मकान-मालिक जेसन फेन के मकानों में किराये पर रहते हैं, अपनी शिकायतें लेकर उसके दफ्तर आये हैं।'

लेकिन जेसन फेन किसी आवश्यक कार्य से इथका से बाहर चले गये थे और बातचीत उनके प्रतिनिधियों पीटर डुमांट और टिम गार्वी तथा इथका किरायेदार संघ और फेन के मकानों के छात्र-प्रतिनिधियों के बीच चल रही थी। रेडियो से खबर प्रसारित हो रही थी—'बातचीत जो सायं ४.३० बजे शुरू हुई थी, अभी तक जारी है। प्रदर्शन भी जारी है।'

टी. वी. में दिखाया जा रहा है—सामूहिक गान गाते हुए देश-विदेश से आये हुए छात्र, जिनमें अधिकतर इन छात्रों के समर्थन के लिए एकत्र अमरीकी नवयुवक थे।

घटनास्थल था कालेज टाउन में ४१० कालेज एवेन्यू पर स्थित शील्डन कोर्ट और मीटिंग हो रही थी मकान-मालिक के कमरा नं. २११ में। प्रदर्शन में भाग ले रहे थे फेन के मकानों में रहनेवाले छात्र जो २१०, २१४, २१७ और १२३ ड्रायडन रोड तथा ४१० थर्स्टन एवेन्यू में रहते थे। बाद में फेन की तीन अन्य इमारतों के निवासी भी अपनी मांगें लेकर पहुंच गये थे। शिकायतों की एक लंबी सूची थी—अपर्याप्त गरम पानी, थर्मोस्टेट का शोर और रेडियेटर की खराबियां, अग्नि-सुरक्षा के पूरे बंदोबस्त का न होना, कूड़ा, कर्कट और बर्फ की अनियमित सफाई, समय पर मकानों की मरम्मत न होना, 'स्टार्म विंडोज' का न होना, कमरों की सफाई न करना, बिस्तर आदि की चादरें न बदलना। रसोई में दो से अधिक व्यक्तियों के बैठने का स्थान न था। चूहों और कीड़े-मकोड़ों की भरमार। गैस-स्टोव के ठीक न होने के कारण जल जाने की दुर्घटनाएं। 'लिविंग-रूम' का अभाव। आठ-आठ व्यक्तियों के लिए एक ही फ्रिज। न स्क्रीन है, न रसोई के परदे।

और इस पर सितम यह कि गत वर्ष के मुकाबले में इस वर्ष प्रत्येक कमरे का किराया २० से २५ डालर तक बढ़ा दिया गया। २१० ड्रायडन रोड के जिस कमरे में मैं रहता था, उसका किराया अब ८५

सड़क पर खड़ी कार पोस्टर बनाने के लिए उपयुक्त सिद्ध हुई
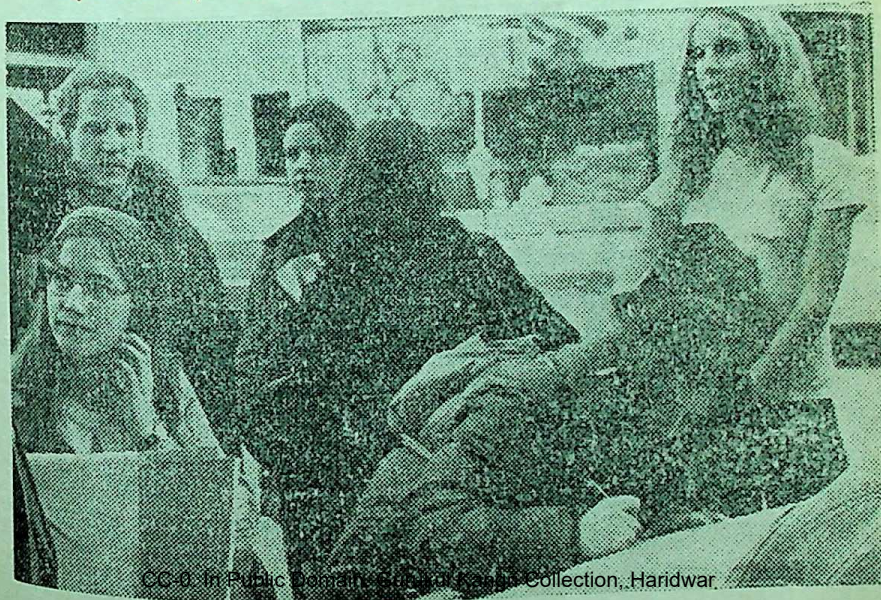
डालर था। गत वर्ष इसी कमरे का किराया ६५ डालर था और सफाई की सभी सुविधाएं थीं। मकान-मालिक जेसन फेन ने किराया बढ़ा दिया और सुविधाएं कम कर दीं। आम तौर पर छात्र नौ महीने तक इथका में निवास करते हैं और फिर नौकरी की तलाश में दूसरे स्थानों पर या अपने घर वापस चले जाते हैं, लेकिन 'लीज' १२ महीने की ही लिखवायी जाती थी। उन्हें १२ महीने का किराया देना पड़ता था और १०० डालर बतौर जमानत के पेशगी, जो किसी-न-किसी बहाने हड़प कर ली जाती थी।

हमारे समर्थन में 'इथका टेनेंट्स यूनियन' ने सामूहिक आंदोलन की घोषणा कर दी और विज्ञप्ति जारी कर दी कि जब तक ये मांगें पूरी नहीं की जातीं, संघर्ष जारी रहेगा—'हम फेन के मकानों का बायकॉट कर देंगे।' समाचारपत्रों में विज्ञापन छप गया कि फेन के वर्तमान और नये किरायेदार 'किरायेदार संघ' से तुरंत संपर्क स्थापित करें। इन शिकायतों के बारे में फेन का कथन था, 'यह शिकायतें किसी ने भी उस तक नहीं पहुंचायीं . . . . वह इनके बारे में पहली बार सुन रहा है और इनमें से अधिकतर बेबुनियाद हैं।' पीटर डुमांट का कथन था, 'ये शिकायतें ऐसी हैं जो विश्वविद्यालय द्वारा दिये गये निवासस्थानों के बारे में भी सही हैं . . . फिर भी जब कोई शिकायत हमारे पास आती है, हम तुरंत उसको दूर कर देते हैं . . . अगर कोई यांत्रिक खराबी है तो उसके लिए कुछ समय लग सकता है . . . अगर कोई शिकायत उस तक पहुंची ही नहीं तो वह उसे ठीक कैसे कर सकता है?' फेन का कथन था, 'स्मरणपत्र में ५०० शिकायतें हैं। मैं सबको एक ही बार में दूर नहीं कर सकता . . . यह किरायेदार संघ की सोची-समझी साजिश है उपद्रव करने की।' उसके विचार में—'ये शिकायतें जीवन-सुरक्षा से संबंधित न होकर महज 'शृंगारिक' हैं . . . कूड़ा-कर्कट जमा करके कूड़ागाड़ी के लिए सड़क के किनारे रखना किरायेदारों का काम है मेरा नहीं।'

यूनियन की प्रतिनिधि किटी कोल्बर्ट और जेम्स केफ़ी ने स्पष्ट कहा, 'फेन और उसके सहयोगियों ने लगातार कहने के बावजूद शिकायतें दूर नहीं कीं। यहां तक कि उसने हमसे मिलने से भी इनकार कर दिया है और कारण यह बताया है कि वह उस दिन शहर से बाहर जा रहा है . . . उसने एक ही बिल्डिंग में एक आदमी को एक साधारण-सी मरम्मत के लिए भेजा है जबकि बुनियादी शिकायतों को नजरंदाज कर दिया है। पहला स्मरणपत्र अक्तूबर, १९७३ को भेजा गया था और अब जनवरी, १९७४ का अंत होनेवाला है—करीब चार मास बीत चुके हैं।'

सत्य यह है कि शहर के अखबारों ने लगातार कई दिन तक इस 'मुठ-

भेड़' की खबरें और लोगों की भेंट-वार्ताएं प्रसारित कीं। दूरदर्शन और रेडियो के प्रतिनिधि इन बिल्डिगों में आये और प्रदर्शन के स्थान पर जगह-जगह घूमकर फिल्म लेते रहे और भेंट रिकार्ड करते रहे। जब रेडियो से यह घोषणा की जाती कि जेसन फेन के प्रतिनिधि पीटर डुमांट, किरायेदार-संघ और किरायेदारों के प्रतिनिधियों की मीटिंग को चार घंटे हो गये हैं, मीटिंग अभी जारी है लेकिन बुनियादी शिकायतों पर समझौते के कोई आसार नजर नहीं आते तब ऐसा लगता जैसे कोई शिखर-सम्मेलन हो रहा है, जिसमें हेनरी किसिंजर और अरब के नेता भाग ले रहे हैं।

बातचीत समाप्त होने पर किटी कोल्बर्ट ने कहा, 'हमें संतोष है कि हमारी बातचीत सफल रही, यदि वे समझौते पर अमल करते हैं तब यदि उन्होंने निर्धारित समय के अंदर कोई ठोस कदम नहीं उठाया तो संघर्ष तेज कर दिया जाएगा।'

लेकिन यह संघर्ष समाप्त नहीं हुआ। अप्रैल, १९७४ में 'किराया बंद' की हवा चली, क्योंकि समझौते पर अमल नहीं किया गया। पीटर डुमांट का कहना था कि उन्होंने सब शर्तें पूरी कर दी हैं, जो रह गयी हैं उन पर कारवाई हो रही है। . . . लेकिन . . . जैसा कि एक विद्यार्थी ने कहा, 'वे व्हाइटवाश नहीं आईवाश करते हैं।'
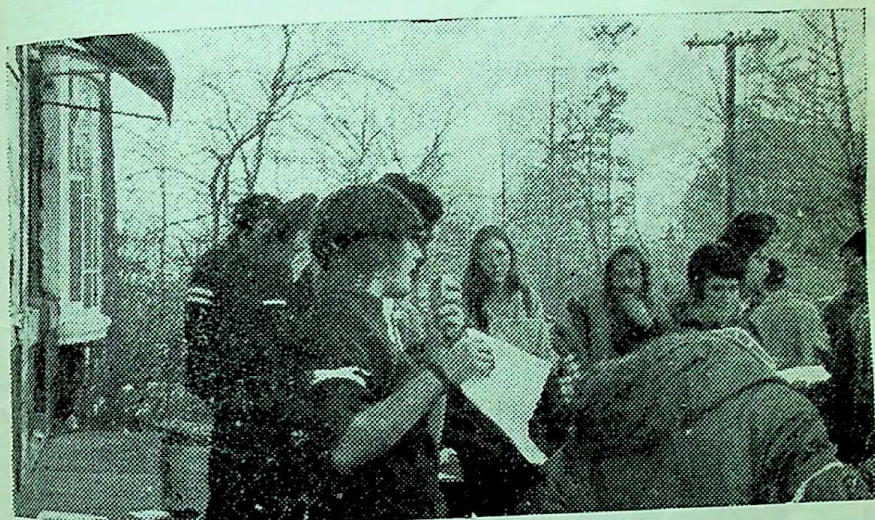
मकान मालिक सतर्क हों! सम्मेलन किरायेदारों का

४७/११ ईस्ट पटेल नगर,
नयी दिल्ली-११०००८

प्रोटीन के धनी स्रोत

शारीरिक विकास के लिए ही प्रोटीन का महत्त्व नहीं है, यह मस्तिष्क के स्वस्थ विकास के लिए भी बहुत आवश्यक है। अधिकांश भारतवासियों के भोजन में प्रोटीन बहुत कम होता है, इसीलिए उनकी शारीरिक एवं मानसिक क्षमताएं अपेक्षाकृत कम होती हैं।

सत्य तो यह है कि विश्व भर में प्रोटीन की कमी के कारण वैज्ञानिक बहुत चिंतित हैं। प्रोटीन की उपलब्धि के लिए वे नये-नये स्रोत खोज रहे हैं, जिससे सबको सस्ता और अच्छा प्रोटीन उपलब्ध हो सके।

आजकल पेट्रोलियम से प्रोटीन प्राप्त करने के लिए प्रयास किये जा रहे हैं। हमारे भोजन में अधिकतर अन्न से बने पदार्थ होते हैं, जो हमें पर्याप्त मात्रा में ऊर्जा तथा शक्ति प्रदान करते हैं; पर प्रोटीन के बारे में स्थिति बहुत हास्यास्पद है। शरीर-निर्माता एमिनो-एसिड अधिकतर जीव-जंतुओं से प्राप्त प्रोटीन में होते हैं। शीत-प्रदेशों में रहनेवाले मांस तथा मछली से प्रोटीन प्राप्त कर लेते हैं। इन प्रदेशों में पर्याप्त मात्रा में मांस प्राप्त होता है। ये पूर्णतः विकसित देश हैं। विकासशील देशों के लिए, जिनकी आबादी निरंतर

● डॉ. अशोक कुमार चौबे

बढ़ती जा रही है, प्रोटीनयुक्त भोजन की उपलब्धि एक समस्या बनती जा रही है। नयी पीढ़ियां अपने अंदर व्याधियां लेकर उत्पन्न हो रही हैं। विश्व-जनसंख्या सन २००० में छह अरब से ऊपर हो जाएगी। तब प्रोटीन की समस्या विश्वव्यापी बन जाएगी। इसी कारण वैज्ञानिक प्रोटीन प्राप्त करने के नये-नये साधनों का अन्वेषण कर रहे हैं।

प्रोटीन के साधन

इस समय प्रोटीन प्राप्त करने के सर्वप्रथम साधन प्रकृति में प्राप्त वनस्पतियां हैं। पेड़-पौधे कार्बन डाई-आक्साइड को शोषित करके बहुत से कार्बनिक यौगिकों तथा प्रोटीन का निर्माण करते हैं। विभिन्न वनस्पतियों की शिराओं तथा कोशिकाओं का भक्षण करके हम प्रोटीन प्राप्त करते हैं, लेकिन यह प्रोटीन प्रचुर मात्रा में नहीं होता। इनमें बहुत-से एमिनो-एसिड तथा अन्य पदार्थों की कमी होती है। वसायुक्त वनस्पति से बनी खाद्य-सामग्रियों, सोयाबीन आदि में पूर्ण प्रोटीन होता है लेकिन ये पदार्थ प्रकृति में बहुत अल्पमात्रा में

मिलते हैं। अतः हमारे भोजन में इनका उपयोग नहीं के बराबर किया जाता है। पागुर करनेवाले पशुओं की आंतों में कुछ विशेष प्रकार के जीवाणु होते हैं, जो एमिनो-एसिड से रहित निम्न श्रेणी की प्रोटीन को उच्च श्रेणी में बदल देते हैं। इन पशुओं के मांस से बहुत अच्छा प्रोटीन मिल जाता है। लेकिन हमारी आबादी के अनुपात में इन पशुओं में कोई वृद्धि नहीं हो रही है, अतः प्रोटीन का यह स्रोत भी धीरे-धीरे कम होता जा रहा है।

प्रोटीन के धनी सागर

कुछ ठंडे प्रदेशों के सागरों में मछलियां बहुतायत से होती हैं। अतः प्रोटीन की खेती के लिए इन सागरों की सहायता ली जा सकती है, लेकिन गरम सागरों में फास्फोरस, नाइट्रोजन आदि कम होने के कारण मछलियां भी कम होती हैं। ऐसे स्थानों पर स्वच्छ जलवाली झील और तालाबों में मछलियां पाली जा सकती हैं तथा इन मछलियों को वही भोजन, जो इन्हें सागरों में प्राप्त होता है, खिलाने से प्रोटीन प्राप्त किया जा सकता है। तालाबों में मछलियां पालकर तथा उन्हें उचित भोजन खिलाकर प्रोटीन प्राप्त करने का यह साधन ठीक वैसे ही है जैसे भूमि में खाद मिलाकर वनस्पति-प्रोटीन की खेती करना। प्रोटीन का यह साधन भी बढ़ती हुई जनसंख्या की पूर्ति नहीं कर सकता। इस प्रकार प्रोटीन प्राप्त करने की विधि को विश्व-व्यापी बनाने में अधिक व्यय तथा तकनीकी

कुपोषण का शिकार

ज्ञान की आवश्यकता है।

किण्वीकरण

भविष्य के लिए क्या किया जाए? भविष्य के भोजन को किस प्रकार प्रोटीनमय बना सकते हैं? अगले तीस वर्षों में विश्व-जनसंख्या जब लगभग दुगुनी हो जाएगी तब प्रोटीन प्राप्त करने के लिए हमें तेजी से काम करना होगा। यही कारण है कि कार्बनिक यौगिकों से प्रोटीन पाने का कार्य शुरू किया जा चुका है।

कार्बनिक यौगिकों की सूक्ष्म जीवधारी रचना से प्रोटीन प्राप्त करने का यह विचार नया नहीं है। चिरकाल से मानव तथा पशुओं के लिए खमीरी योजना का निर्माण होता आया है। खमीर बनाना

तो एक लघु उद्योग रहा है। शीरे के कार्बन-हायड्रेटों में फनगाई खमीर (Fungi yeast) का निर्माण किया जाता है, जो पशुओं से प्राप्त प्रोटीन की तरह ही विटामिन तथा प्रोटीन का निर्माण करता है। प्रोटीन प्राप्त करने की यह विधि आकर्षक भी है। इसमें सूक्ष्म जीवधारियों की संख्या बहुत तेजी से बढ़ती जाती है। लगभग प्रत्येक पांच घंटे पश्चात इनकी संख्या लगभग दूनी हो जाती है। यह समय पशुओं द्वारा प्रोटीन संश्लेषण करने का एक-लाखवां भाग है। यह सूक्ष्म जीवधारी तालाबों में उत्पन्न किये जा सकते हैं। इनके लिए किसी भी प्रकार की मिट्टी, सूर्य का प्रकाश तथा वर्षा की आवश्यकता नहीं, और न ही आवश्यकता है किसी परिश्रम की। फनगाई प्रोटीन की एक विशेषता यह भी है कि यह पशुओं से प्राप्त मांस-प्रोटीन की तरह नहीं है अपितु यह वनस्पति के किण्वीकरण द्वारा प्राप्त होता है। इसके उपयोग के संबंध में किसी धर्म का निषेध भी नहीं। इस प्रोटीन को 'वानस्पतिक मांस' कहा जा सकता है।

हायड्रोकार्बनों से प्रोटीन संभव

किण्वीकरण में अभी तक कार्बोहायड्रेटों से प्रोटीन उपलब्ध होता आ रही है। देखना यह है कि क्या हायड्रोकार्बनों से भी सूक्ष्म जीवधारी उत्पन्न किये जा सकते हैं? बहुत समय से यह ज्ञात है कि पेट्रोलियम पर फफूंदी उत्पन्न हो जाती है। पेट्रोलियम - शोधकों की तली में भी यह पायी जाती है। १९५२ में एक जरमन जीवशास्त्री ने मोम की जाति के एक हायड्रोकार्बन से सूक्ष्म जीवधारियों का निर्माण किया था। जरमन वैज्ञानिकों की इस खोज ने फ्रांस के वैज्ञानिकों का ध्यान आकर्षित किया तथा ब्रिटिश तेल कंपनी और योग्यतम जीवशास्त्रियों की सहायता से पेट्रोलियम को प्रोटीन में परिवर्तित करने का कार्य प्रारंभ कर दिया।

कार्बोहायड्रेट से किण्वीकरण द्वारा खमीर बनाते समय कार्बोहायड्रेटों को पानी में घोलकर इनमें घुलनशील खनिजों, फास्फोरस, नाइट्रोजन, पोटेशियम आदि से युक्त कार्बनिक यौगिकों का मिश्रण भी मिला दिया जाता है। इस घोल को ऑक्सीजन प्रदान करने के लिए बाह्य वायुमंडल से वायु प्रवाहित की जाती है, जो ऑक्सीजन प्रदान करने के साथ-साथ जीवधारियों के अधिकतम उत्पादन के लिए द्रव के तापक्रम तथा अम्लता को एक निश्चित सीमा के अंदर रखा जाता है। इस प्रकार प्राप्त जीवाणुओं को केंद्रापसारी विधि द्वारा या छानकर पृथक कर लिया जाता है। धोने या सुखाने के पश्चात फिर ठोस खाद्य-पदार्थ के रूप में इसका प्रयोग किया जा सकता है। इस भोजन में ५० प्रतिशत भोजन होता है।

यह तो रही कार्बोहायड्रेटों से प्रोटीन प्राप्त करने की बात, लेकिन हायड्रोकार्बनों से प्रोटीन प्राप्त करना इतना सरल नहीं। पहली बात तो यह है कि हायड्रोकार्बन

जल में घुलनशील नहीं, बल्कि तेल और पानी का मिलकर एक घोल-सा बन जाता है। तेल की बूंदों को पानी में पूर्ण रूप से मिश्रित करने के लिए घोल को तेजी से चलाना होगा। प्रयोगशाला में थोड़ी मात्रा में तेल-पानी को मिश्रित करना तो संभव है, लेकिन जब व्यापारिक रूप में अधिक मात्रा

है जबकि हायड्रोकार्बन में बिलकुल नहीं। अतः हायड्रोकार्बन से प्रोटीन बनाते समय बाह्य स्रोतों से आक्सीजन प्रदान करनी होगी। यह ऑक्सीजन चीनी से प्रोटीन बनाते समय उपयोग में आनेवाली ऑक्सीजन से तीन गुना अधिक होगी। ऑक्सीजन की इतनी बड़ी मात्रा का उपयोग होने से
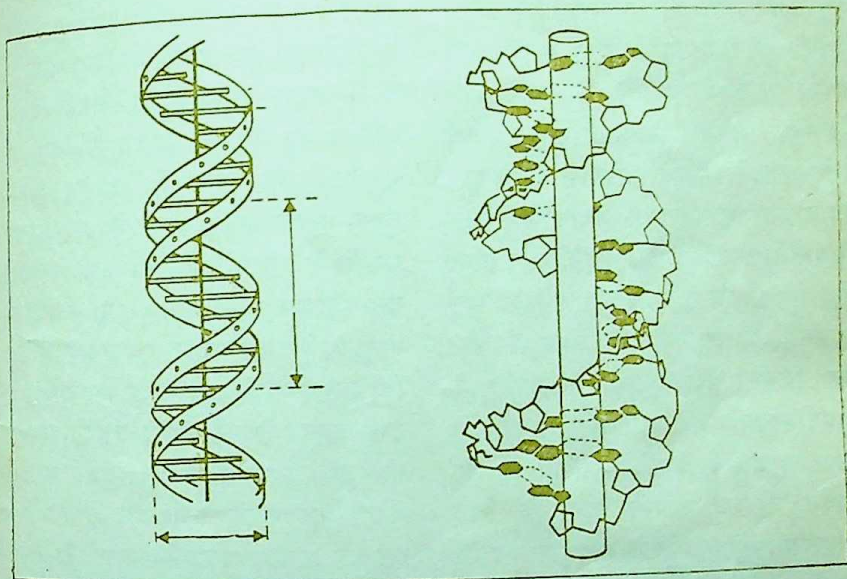
प्रोटीन-संहिता कार्य : दोहरी कुंडलीदार संरचना (बायें), डी.एन.ए. अणु का प्रारूप (दायें)

लेकर यह क्रिया की जाएगी तब घोल को तीव्र गति से चलाना भी समस्या बन जाएगी। हायड्रोकार्बन को प्रोटीन में परिवर्तित करते समय जब पता चलेगा कि हायड्रोकार्बन में ऑक्सीजन नहीं होती तब दूसरी कठिनाई सामने आयेगी। कार्बोहायड्रेट में लगभग ५० प्रतिशत ऑक्सीजन होती

ताप भी लगभग तीन गुना अधिक उत्पन्न होगा। अतः तापक्रम कम करने के लिए शीतलीकारकों का उपयोग करना होगा। ऑक्सीजन किसी अन्य स्रोत से लेने के कारण हायड्रोकार्बन का कार्बन तत्त्व ज्यों-का-त्यों बना रहता है, जबकि कार्बोहायड्रेटों के कार्बन तत्त्व की मात्रा क्रिया में

ऑक्सीजन उत्पन्न करने के लिए व्यय हो जाती है। इस कारण आदर्श स्थिति में १ किलोग्राम हायड्रोकार्बन से १ किलोग्राम जीवाणुओं को बनाया जा सकता है, जबकि १ किलोग्राम कार्बोहायड्रेट से लगभग आधा किलोग्राम खमीरी पदार्थ प्राप्त होगा।

मिट्टी का तेल भी भोजन !

मिट्टी के तेल का उपयोग करके बहुत अच्छा प्रोटीन बनाया जा रहा है। वैज्ञानिकों ने देखा कि बहुत थोड़े-से कच्चे पेट्रोलियम से काफी मात्रा में जीवाणुओं को बनाया जा सकता है, जबकि शुद्ध पेट्रोलियम से अल्प मात्रा में ही जीवाणु प्राप्त होते हैं। प्रारंभ में सभी प्रकार के हायड्रोकार्बनों से प्रयोग किये गये, लेकिन परिणाम यह निकला कि एरोमेटिक जाति के हायड्रोकार्बन जीवाणुओं की उत्पत्ति में बाधा पहुंचाते हैं, जबकि पैराफिन हायड्रोकार्बन जीवाणु उत्पन्न करने के लिए उत्तरदायी हैं। पैराफिन हायड्रोकार्बन से, जिसमें मिट्टी के तेल तथा कुछ गैस तेलों का प्रयोग किया गया था, अधिक मात्रा में प्रोटीन बनाया जा सका। आजकल प्रोटीन बनाने के लिए गैस-तेलों का उपयोग किया जाता है। यह गैस-तेल पेट्रोलियम से निकलनेवाले पदार्थों में मिट्टी के तेल तथा कुछ चिकनाईवाले तेलों का मिश्रण होता है। इस तेल से प्रोटीन बनाते समय इसमें अमोनिया लवण तथा सामान्य खाद को भी मिला दिया जाता है, जो जीवाणुओं को नाइट्रोजन, पोटेशियम तथा फास्फोरस प्रदान करते हैं। इस प्रकार प्राप्त जीवाणुओं में ५० प्रतिशत से अधिक प्रोटीन पदार्थ होता है।

तेल से प्राप्त प्रोटीन कोई नवीन पदार्थ नहीं है। यह प्रोटीन वनस्पति, पशु, मछली तथा चीनी से प्राप्त प्रोटीन से किसी बात में भिन्न नहीं। हां, इस प्रोटीन में विशेषता यह है कि इसमें विटामिन-बी की मात्रा अधिक होती है तथा एमिनो-एसिडों का मिश्रण उचित परिमाण में प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त यह प्रोटीन-युक्त भोजन सभी प्रकार के हानिकारक पदार्थों से रहित है। जिस प्रकार चीनी, वनस्पति तथा अन्य स्रोतों से प्राप्त प्रोटीन-युक्त भोजन को शुद्ध रूप में संग्रहीत करके विभिन्न स्थानों को भेजा जा सकता है उसी प्रकार तेल से प्राप्त प्रोटीन को भी गंध तथा स्वादरहित सफेद चूर्ण के रूप में एकत्रित करके भेजा जा सकता है। इस प्रोटीनयुक्त भोजन में चीनी से प्राप्त प्रोटीन की अपेक्षा बहुत कम गंध होती है।

घास से पर्याप्त प्रोटीन

नयी शोधों के अनुसार घास से भी पर्याप्त मात्रा में उच्च कोटि का प्रोटीन प्राप्त किया जा सकता है। जब इन सभी विधियों से बना प्रोटीनयुक्त भोजन बाजार में आने लगेगा तब सभी को पर्याप्त मात्रा में स्वास्थ्यवर्धक भोजन मिलने लगेगा।

—प्रवक्ता, भौतिक-विज्ञान विभाग, अलीगढ़ मुसलिम यूनीवर्सिटी, अलीगढ़

बंगला-कहानी

रोजी

• समरेश बसु

घटना संभव है, फिर भी इसे किस्सा सुनाने के ढंग से कहा जाए। दृश्य पूर्णरूप से अविश्वसनीय-सा ही लगता है, लेकिन अविश्वसनीय नहीं। वह औरत अंधेरे मैदान में चली जा रहीं है और सीने पर आंचल की आड़ में दायें हाथ की मुट्ठी में जिसे छिपाकर पकड़े हुए है वह एक जिंदा सांप का सिर है। नहीं, सिर नहीं, सांप को गले के पास से पकड़ा है उसने। अंधेरे में भी सांप के काले चमकते रंग को देखकर समझा जा सकता है कि उस औरत के हाथ में कोई साधारण सांप नहीं, भयंकर काली नागिन है। दोनों आंखें मानो धधक रही हैं। फैले नकसोरे के नीचे ही उसकी चिरी हुई जीभ चिकुर-सी लपलपा रही है। रह-रहकर नागिन फुफकार उठती है तो वह हाथ से उसे झकझोर-कर घुड़की की आवाज में कहती है, "ओफ, चुप !"

औरत के बदन पर कोई कुरती नहीं।

सस्ती-सी धारीदार साड़ी के सिवा उसके बदन पर कुछ भी नहीं है। उम्र शायद तेईस, चौबीस से ज्यादा न हो। आपात दृष्टि से दो दिन पहले गूंथे हुए सूखे जूड़े मैले कपड़े एवं खुश्क चेहरे में जो दुर्भाग्य उभरकर आया है, उसका मजबूत ढीठ जिस्म मानो उस दुर्भाग्य को स्वीकार नहीं सका है। तेल-पानी से चिकनाई भरी न होने पर भी उसके धूलभरे सूखे जिस्म में एक आब है। उसकी मांग में सुहागिन का चिह्न है। बासी सिंदूर का दाग इतना साफ नहीं। माथे की बिंदी पुंछ ही गयी है। लाख की बनी चूड़ियों के अतिरिक्त कांच लगी पीतल की एक कील है नाक में। उसकी चपटी चपटी-सी नाक इसी से मानो प्रखर हो उठी है। बड़ी-बड़ी आंखोंवाली सांवली-सी औरत! बंगाल के गांव-देस के घरों की दुर्दशाग्रस्त औरतों की तरह!

चैत का महीना! मैदान की हवा में एक सनसन-सी आवाज! बर्दवान के दूर गांव के सिवान पर चैत की हवा में बदन जुड़ा देने की तासीर है। यहां तक कि खुनकी-सी सरदी भी लगती। धान काटने के बाद अब खेत बिलकुल सूने। बारिश की प्यास से दिन-ब-दिन खेत सैकड़ों मुंह खोल रहे हैं। चारों ओर जमीन में दरारें पड़ने लगी हैं। धूलभरी मिट्टी औरत के पांव और बदन पर उड़ रही है। जो खेत पार कर वह औरत आ रही है है, उसके पीछे एक गांव अंधेरे में गुम होता जा रहा है। सामने का दूसरा एक गांव क्रमशः स्पष्ट हो रहा है। औरत मानो कुछ चुराये ले जा रही है। दूर में इर्द-गिर्द बार-बार नजर दौड़ाती है कि कहीं कोई देख न ले। काली नागिन का मुंह उसके सीने के पास आंचल के नीचे। चिरी जीभ से वह अकसर उसकी छातियों को चाटे दे रही है। इससे उस औरत में कोई विकार नहीं, लेकिन नागिन जब भी औरत की मुट्ठी में फूल-कर फैल उठना चाहती या फुफकारती है, तभी वह औरत जोर से दबाकर उसे झटका देती और बिगड़कर कहती है, "दिखाऊं मजा! दूं दो हाथ।"

काली नागिन घुड़की लगते ही या झटका खाते ही शांत हो जाती है।

अब खेत खतम हो गये हैं— सामने एक गढ़ैया–सी। इस पार और उस पार कमर तक ऊंचा बबूल का जंगल। औरत यहां एक बार थमककर खड़ी हो गयी। उस पार के गांव की ओर उसने देखा—

गांव के छोर पर एक बंसवारी और एक मंदिर का कलश। वह औरत बबूल के वन में से कांटे बचाकर उतर गयी। उसे पार कर सिर झुकाये तेज कदमों से वह बंसवारी की ओर बढ़ गयी। बंसवारी के भीतर से एक ढिबरी की रोशनी उसे दिखायी पड़ी। मद्धिम प्रकाश में उसने देखा, ढिबरी मिट्टी की दीवार पर एक झरोखे पर जल रही है।

उस औरत ने होंठ दबा लिये। काली नागिन को दो बार झटका दिया, आंखें

फेरकर कुछ सोचा फिर मंदिर की आड़ से निकलकर, बंसवारी के बायीं तरफ से घूमकर एक छोटी-सी तलैया के पास आयी। तलैया को घेरे कुछ मकान। चिकनी मिट्टी की दीवार से घिरा पीछेवाला निकसार बंद। वह औरत फुर्ती से चल दीवार के पास आकर खड़ी हो गयी। हर कहीं जंगल: बबूल, सेंहुड़। छिपने में दिक्कत नहीं। दीवार से लगकर चलती हुई वह तीसरे मकान के सामने खड़ी हो गयी। जहां खड़ी हुई, वहां दीवार नीची होने के कारण भीतर का सहन दिखायी दे रहा था। सहन के एक कोने में खलिहान, खलिहान के पास एक ऊंचे चबूतरे पर एक अधेड़ उम्र के व्यक्ति बैठे हैं। सामने लालटेन जल रही है। एक छोटा लड़का सामने किताब लेकर पढ़ रहा है।

उस औरत ने काली नागिन का मुंह अपने मुंह के पास उठाया। चुपके से कहा, "यहां दे जा रही हूं।" उसने अपनी चिरी जीभ से औरत का मुंह चाट लिया। औरत ने कहा, "बड़ी नेक हो तुम।" फिर रस्सी की तरह उसे दीवार के उस पार फेंक दिया।

क्षण भर वह खड़ी रही। फिर जिधर से जिस तरह आयी थी, उधर ही उस तरह लौट गयी।

घंटे भर बाद! शशिकांत बनर्जी आतंक से चौंक पड़े। बस खाना खाकर चबूतरे पर बैठे ही थे। लड़का पढ़ाई खत्म कर सोने गया था। अपने सामने लालटेन की रोशनी में उन्होंने देखा, उनसे तीन हाथ दूर से कालांतक यम-सा एक लंबा-सा काला नाग कमरे की ओर जा रहा है। वे छलांग भरकर सहन में खड़े हो गये और चिल्लाने लगे, "अरे मारे गये!

यह तो बहुत बड़ा काला नाग है!" हो-हल्ला मच गया। कमरे से लड़का दौड़कर निकल आया। घर के सभी लोग आंगन में इकट्ठे होकर शोर मचाने लगे। आस-पड़ोस के लोग भी भागते हुए आये। सभी के हाथों में लाठी-बरछी और गदेला। जिसे जो मिल गया, लेकर आ गये।

सांप ने शोरगुल और भागदौड़ देखकर फुफकारकर अपना फन काढ़ लिया। पंचा बाउरी ने लाठी तानी तो लक्ष्मी बनर्जी ने उसका हाथ पकड़ लिया। और लोगों ने मना किया कि अचानक चोट न की जाए क्योंकि ठीक-ठीक चोट न पड़ने पर यह गुस्सा किस पर टूट पड़ेगा नहीं कहा जा सकता। घर की औरतें रोने-धोने लगीं। जाने अब क्या होगा! कुछ देर तक फन काढ़े सांप स्थिर बना रहा। उसकी निगाह लालटेन की ओर थी। मारा जाए या नहीं, इस बहस में जब सभी लोग मशगूल थे तभी सहसा सांप फन समेटकर कुलबलाते हुए दहलीज लांघकर कमरे में हेल गया। सभी लोग फिर चिल्ला उठे लेकिन किसी की भी कमरे में जाने की हिम्मत नहीं पड़ी। तभी दुस्साहसी पंचा बाउरी उछलकर चबूतरे पर उठा और तुरंत दरवाजे की सांकल चढ़ा दी। कमरे में कोई था नहीं इसलिए थोड़ा-सा निश्चित हुआ क्योंकि कमरे से निकलने का दूसरा कोई रास्ता नहीं। चबूतरे की ओर एकमात्र खिड़की, उसके भी पल्ले बंद। अब फिक्र हुई कि सांप की कौन-सी गति की जाए।

इस इलाके में बस हिदे मालो ही अकेला संपेरा है। वह किसी भी खौफनाक सांप को पकड़ सकता है लेकिन इतने बड़े काले नाग को देखने के बाद, उत्तर के खेतों को पार कर इस रात को कोई हिदे मालो को बुलाने जाने के लिए तैयार नहीं हुआ।

अगले दिन सवेरे, कौवा बोलने से पूर्व ही पंचा बाउरी, कार्तिक चरवाहे को साथ लेकर खेतों को पार कर हिदे मालो को बुलाने चल पड़ा। चैत का सवेरा, देखते ही देखते धूप निकल आती है। धूप निकल आने पर हिदे मालो आया। मालो इस इलाके में सपेरों को ही कहते हैं। हिदे मालो आकर आंगन में खड़ा हो गया। सारा ब्यौरा सुना। रात-जैसे काले-कलूटे हिदे मालो की उम्र तीस के लगभग। सिर पर रूखे बालों का ढेर। मोटे होंठ फटे-फटे। नंगा बदन। मैली-सी छोटी धोती पहने। सारे बदन भर में रूसी। मानो पेट में दाना नहीं, रात को नींद नहीं। हाथ में दो हाथ लंबी पतली-सी टहनी। टहनी के सामने की ओर दो भागों में विभाजित, कुछ-कुछ गुलेल की तरह।

सब कुछ सुनने के बाद उसने सबको दूर हटा दिया। बनर्जी महाशय को बुला-कर बोला, "एक धुले बरतन में पाव भर कच्चा दूध देने को कहिए।"

सवेरे के वक्त कच्चे दूध की कोई कमी नहीं। सामने दूध लेकर हिदे मालो

जाने क्या कुछ बुदबुदाता रहा। फिर बिना बरतन से मुंह लगाये गट-गट सारा दूध पी गया। पीने के बाद चबूतरे पर उठ, दरवाजे के सामने खड़े हो चिल्लाकर उसने कहा, "सुन री मां, तेरा काम तू करेगी और मेरा काम मैं। बाल-बच्चों को लेकर ये घर करते हैं, यहां तू नहीं रह सकती। मेरे पेट में मां का दूध है।"

कहकर ही उसने झन्न से सांकल खोल डाली। आंगन में आतंकग्रस्तों की भीड़। सांकल खुलते ही लोग पीछे खिसक गये। और तभी सब लोगों ने कमरे में फुफकार का शब्द सुना। हिदे मालो ने पेड़ की टहनी कमरे में डाल दी और उकड़ू हो बैठ गया। उसका स्वर सुनायी पड़ा, "फो-फो करने से क्या होगा? तुम्हारा ठांव कहीं और है।"

क्षण भर बाद उसने चिल्लाकर कहा, "अजी ओ बाबूजी, यह तो बहुत बड़ी काली नागिन है! यह तो गांव को खा जाए!"

आंगन में खड़े सारे दिल थरथरा रहे हैं। हिदे मालो की आवाज फिर सुनायी पड़ी, "एक नयी हांडी और सकोरा लाने को कहिए बाबू, और एक नया अंगोछा।" फौरन हुक्म हो गया। कई लोग हांडी, सकोरा और अंगोछा लाने दौड़ पड़े।

यह ब्यौरा बढ़ाने से कोई फायदा नहीं। सभी ने भय से देखा, लगभग डेढ़ घंटे की कोशिश के बाद हिदे मालो काली नागिन को कमरे के बाहर बहलाकर ले आया। ले आते ही इतनी बड़ी काली नागिन देखकर

जब सब लोग दौड़भाग मचाने लगे तभी हिदे मालो ने उसे पूंछ से पकड़कर ऊंचा उठाया। लेकिन नागिन की फुफकार बंद न होती। वह कमर टेढ़ी कर उठना चाहती। हिदे मालो के सारे शरीर में पसीना। दोनों आंखें भी धकधक धधकने लगीं।

शशि बनर्जी ने हांक लगायी, "दिखाने की अब कोई जरूरत नहीं, तुम इसे झटपट हांडी में डाल लो।"

हिदे मालो उस काली नागिन के साथ जाने कितनी बातें करता रहा, छंद सुनाता रहा, फिर उसे हांडी में बंद कर, सकोरे से उसका मुंह ढंक, अंगोछे से पूरी हांडी को

लपेटकर उसका मुंह ढांप दिया।

इसके बाद हिदे मालो का नाश्ता आया। बनर्जी महाशय ने दोपहर को खा करजाने के लिए कहा। हिदे ने कहा, "बाबू, खाकर नहीं जाऊंगा। माताराम लोग जो कुछ भी पकवान बनायेंगी, सब केले के पत्ते में बांधकर घर ले जाऊंगा। घर में और भी दो प्राणी जो हैं।"

इसके अलावा, हिदे मालो यह कहने से नहीं चूका, "यह जो नागिन है जी पंडितजी, तनी छू भी दे तो समझ लो फिर आंखें मुंदी की मुंदी रह जाएं! दस रुपया दीजिएगा और एक धोती।"

बनर्जी महाशय को यह मांग कुछ ज्यादा लगी। फिर वे नगद पांच रुपये और धोती पर राजी हो गये। लेकिन धोती देने में एकाध दिन की देर होगी।

इसके बाद की घटना संक्षिप्त है। नागिन की हांडी लेकर उत्तर का मैदान पारकर दुपहरिया तक हिदे मालो घर गया। वहां उसकी बीवी इंतजार करती खड़ी थी। गोद में तीनेक साल का बच्चा। उसे देखते ही बोल पड़ी, "आ गये? बच्चा भूख के मारे मुरझा-सा गया है।"

हिदे ने अपनी बीवी से कहा, "तेरा हाल भी तो देख रहा हूं उससे कोई बेहतर नहीं। ले हंडिया तो थाम ले।" कहकर बीवी को पहले नागिनवाली हांडी ही दे दी। खाने की पोटली खुद लेकर अंदर दाखिल हुआ। हंडिया लेकर बीवी ने पहले नया अंगोछा देखा। बेटे को झकझोरकर जगाते हुए बोली, "उठो मेरे लाल, बप्पा भात लेकर आ गये!"

'बप्पा' और 'भात' सुनकर ही बेटे ने सिर में झटका देकर देखा। उसे बिठाकर बीवी ने पोटली खोली। कोई बुरा नहीं। करीब हांडी भर भात, मिट्टी के कुल्हड़ में दाल, चटनी, कुम्हड़े की तरकारी, छह बोटी मछली का व्यंजन। उसने पति और पुत्र के लिए परोस दिया।

हिदे मालो खाने लगा। बीवी ने आकर नये अंगोछे से बंधी हंडिया खोल दी। सकोरा हटाते ही नागिन फन काढ़कर खड़ी हो गयी। बीवी ने उसे फन के नीचे पकड़ लिया फिर गाल के पास ले आयी। वह वही धारीदार साड़ी पहने हुई है। नागिन ने मानो चाटकर देख लिया—यह वही कल रातवाली है! सीने के पास नागिन को लेकर बीवी ने उसकी ओर नेहभरी आंखों से देखा। पति के सामने छातियां खुली हुईं। "मेरी नेक बिटिया, आज तुमको दो जिंदा चूहे पकड़कर दूंगी।"

हिदे मालो भात चबाते हुए यह दृश्य देखता रहा, बोला, "बाभन को ठग आया। करूं भी तो क्या! बूंद भर बारिश नहीं। काम-काज कोई मिलता नहीं। मां मनसा ही पेट भर रही हैं।" फिर मानो अचानक ही याद आ गयी हो, टेंट से पांच रुपये निकालकर बोला, "ले, पंडितजी ने दिया है। हो सकता है कि यह पाप है। लेकिन बच्चा भी तो जिंदा रखना है।" ●

पर या उसके नजदीक प्रतिष्ठित करता है। अगर वह कोई पुस्तक लिखता है तो पुस्तक का सूत्रपात करने से पहले वह गणेशजी को नमस्कार करता है। पत्र लिखते समय भी उन्हें सबसे पहले याद किया जाता है और यात्रा आरंभ करने से पहले उन्हें प्रणाम किया जाता है। उनकी मूर्तियां सड़कों के किनारे और विशेषकर उस जगह, जहां दो मार्ग आपस में मिलते हैं, पायी जाती हैं। उनकी प्रतिमाएं साहूकारों की दूकानों के ऊपर अथवा दूकानों के अंदर आम तौर से पायी जाती हैं। हिंदूदेव-परिवार में शायद ही कोई दूसरा देवता हो जिसका पूजन इतना अधिक प्रचलित हो।"

दक्षिण भारतीय उनका पूजन दिन में तीन बार करते हैं। प्रातःकाल स्नान के समय उनका पूजन सभी देवों से पूर्व किया जाता है, तदुपरांत दोपहर को और फिर रात को सोने से पहले उनकी वंदना की जाती है। गणपति-विनायक की कृपा-प्राप्ति के लिए उनकी वंदना-अर्चना प्रत्येक काम के प्रारंभ में की जाती है, भले ही वह काम धार्मिक, अर्ध-धार्मिक अथवा सामाजिक ही हो।

पंचदेवोपासना में भी गणपति को पर्याप्त महत्ता मिली, और इस प्रकार उनकी पूजा शिव, विष्णु, पार्वती तथा आदित्य-जैसे प्रमुख देवताओं के साथ होने लगी। गृहस्थियों की शिव पंचायतन-पूजा में भी गणपति की प्रतिमा पूजी जाने

गणपति–भुवनेश्वर (उड़ीसा)

लगी। गाणपत्य लोग (गणपति के परम-भक्त) गणपति-विनायक को विश्व का सत्ताधीश तत्त्व मानते हैं और उन्हें अनादि, अनंत तथा परमब्रह्म के रूप में पूजते हैं। उनके अनुसार गणपति ही समूचे संसार की सृष्टि, स्थिति तथा संहार के स्वामी हैं। गाणपत्यों द्वारा प्रयुक्त एक प्रार्थना इस बारे में पर्याप्त प्रकाश डालती है।

विनायक-विग्रह

इस प्रार्थना में उनकी वंदना 'परमतत्त्व' के रूप में की गयी है। यह प्रार्थना 'शंकर-दिग्विजय' नामक सुप्रसिद्ध ग्रंथ (दसवीं शताब्दी में लिखित) में मिलती है। प्रार्थना का भाव इस प्रकार है—

"गणपति आपकी जय हो! आप वास्तविक सत्य हैं! आप ही सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता तथा संहार-कर्ता हैं! आप परमब्रह्म हैं और आप ही सर्वव्यापक आत्मा हैं! विश्व का प्रादुर्भाव आपसे ही होता है! विश्व पंचभूतों (जल, वायु, पृथ्वी, अग्नि और आकाश) के रूप में आपसे ही प्रकट होता है! आप ही ब्रह्मा हैं, आप ही विष्णु हैं, आप ही रुद्र हैं! आप त्रिमूर्ति से महान हैं! ॐ गणपति आपकी जय हो!"

'ब्रह्मवैवर्तपुराण' गणपति को साक्षात भगवान कृष्ण मानता है और इससे वैष्णवों पर गणपति के विशेष प्रभाव की ओर संकेत मिलता है। गणपति केवल गाणपत्यों तक सीमित नहीं रहे, बल्कि उन्होंने दूसरे धर्मों तथा संप्रदायों के क्षेत्रों में भी पदार्पण किया। परिणामस्वरूप वे शैवों, वैष्णवों तथा शाक्तों द्वारा भी पूजित हुए। जैनियों तथा बौद्ध-धर्मावलंबियों ने भी गणपति-पूजा को विशिष्ट स्थान प्रदान किया।

गणपति-पूजा केवल भारतीय महाद्वीप तक सीमित नहीं रही, बल्कि विदेशों में भी प्रविष्ट हुई, जैसे—जावा, बाली, बोर्निओ आदि। गणेश-पूजा ने नेपाल, लंका, तिब्बत, थाईलैंड, ईरान, अफगानिस्तान तथा मध्य-एशिया में भी प्रवेश किया। यही नहीं, गणपति सुदूरपूर्व—चीन, जापान आदि देशों—में भी पूजित हुए। गणपति इन्ही देशों से ही संतुष्ट नहीं रहे, वे अमरीका में भी जा धमके।

त्रिमुख चतुर्भुज गणेश

मध्य-अमरीका और मेक्सिको में उत्खनन से हिंदू देवताओं की ३,००० मूर्तियां मिली हैं जिनमें गणेश की मूर्तियां भी हैं।

प्राचीन रोमन देवता 'जेनस' से भी गणेश की पूर्णरूपेण समता पायी जाती है। इससे स्पष्ट होता है कि भारतीय सभ्यता प्राचीनकाल में रोम में जा पहुंची थी और गणपति की महत्ता से तो रोमन लोग इतने अधिक प्रभावित हुए कि उन्होंने भी गणपति विनायक को 'सर्वाग्रपूज्य' का महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया।

इतिहास के अति प्राचीनकाल में हमारे गणपति-विनायक ईरान में पहुंच चुके थे। कुछ ही वर्ष पहले पश्चिमी ईरान के 'लुरीस्तान' स्थान पर गजानन-गणेश की चित्रित तश्तरी प्राप्त हुई है।

भावात्मक दृष्टि से देखने पर लगता है कि गजानन-गणेश सूक्ष्म और स्थूल, यानी मनुष्य और भगवान की एकता के प्रतीक हैं।

गणपति की बहुत-सी प्रार्थनाएं वेदों में हैं, जिनमें गणपति को महत्त्व-पूर्ण आसन दिया गया है। निम्नलिखित मंत्र में गणपति की वंदना संसार के स्वामी के रूप में है और उनसे संपन्नता तथा प्रसन्नता-प्राप्ति की प्रार्थना की गयी है—

ॐ गणानां त्वा गणपतिं ह्वामहे कविं
कवीनामुपमश्रवस्तमम्।।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः
शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम्।।

—ऋग्वेद, २।२३।१

सुवर्ण गणपति

तैत्तिरीय आरण्यक (१०।१) में गण-पति विनायक के पूजन हेतु एक गणेश-गायत्री मंत्र है, जिसमें इन्हें दंती के नाम से भी संबोधित किया गया है। मंत्र इस प्रकार है—

तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि।
तन्नो दन्ती प्रचोदयात्।।

गणपति-विनायक की पूजा देश के प्रत्येक कोने में की जाती है। गणेश के अलग मंदिर भी हैं। इनमें वाराणसी का गणपति-मंदिर, चिंचवाड़ (महाराष्ट्र) का गणेश-मंदिर तथा नेपाल का गणपति-विनायक मंदिर सुप्रसिद्ध हैं। त्रावनकोर में भी गणपति के पुण्यस्थान हैं।

—पुरातत्त्व विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, हरियाणा

'प्रसाद' ने पहली बार उस प्रेम की झलक हमें दी जो जीवन का बंधन नहीं, जीवन की मुक्ति है। 'प्रेम-पथिक' के कवि के लिए प्रेम भोग नहीं, जीवन-यज्ञ है, जिसमें स्वार्थ और कामना का हवन करना पड़ता है। यह व्यक्ति में ही बंधकर नहीं रह जाता, क्योंकि यह प्रभु का स्वरूप है—

प्रेम पवित्र पदार्थ, न इसमें कहीं कपट की छाया हो
इसका परिमित रूप नहीं जो व्यक्ति मात्र में बना रहे
क्योंकि यही प्रभु का स्वरूप है, जहां कि सबको समता है
इस पथ का उद्देश्य नहीं है श्रांत भवन में टिक रहना
किंतु पहुंचना उस सीमा पर जिसके आगे राह नहीं

इस महत प्रेम का वर्णन करके ही कवि संतुष्ट नहीं है; वह इसके चरम अनुभव की आवश्यक शर्तें भी सामने रखता है—

इसका है सिद्धांत मिटा देना अस्तित्व सभी अपना
प्रियतममय यह विश्व निरखना फिर उसको है विरह कहां
फिर तो वही रहा मन में, नयनों में प्रत्युत जगभर में
कहां रह गया द्वेष किसी से, क्योंकि विश्व ही प्रियतम है
जब ऐसा वियोग हो तो संयोग स्वयं हो जाता है
ये संज्ञाएं उड़ जाती हैं, सत्य तत्त्व रह जाता है
आत्म-विसर्जन करो उसी विश्वात्मा को पुलकित होकर
प्रकृति मिला दो विश्व-प्रेम में, विश्व स्वयं ही ईश्वर है

छायावाद मन्वंतर के मनु

● श्रीरामनाथ 'सुमन'

इसमें न केवल प्रेम की एक स्वच्छ कल्पना हम देखते हैं बल्कि आगे चलकर उनके जीवन और काव्य में जो दर्शन विकसित हुआ, उसके बीज भी इसमें पाते हैं। सत्य पुरुष से उद्भूत कोई वस्तु मृषा नहीं हो सकती; सत्य से असत्य नहीं, सत्य ही उद्भूत होगा। इसीलिए यह प्रकृति भी पुरुष की ही अंगभूता समझनी चाहिए।

दोनों अभेद हैं और एक-दूसरे की पूर्ति और आनंद के लिए हैं। जल-वीचि-सम

वे भिन्न होकर भी अभिन्न हैं ।

जब 'प्रसाद' ने मुझे 'झरना' दिया तब उससे प्राण अघा गये । 'प्रेम-पथिक' में सात्त्विकता थी; जीवन की संवेदना भी थी परंतु रसानुभूति की मात्रा कम थी। 'झरना'–जैसा उसका नाम उन्होंने दिया—उमड़ते हृदय से फूटकर वह निकला था। 'प्रसाद' उस वय:संधि में थे जब उस परम प्रेम की साधना स्वयं किसी के प्राणों को छूकर उसके अंधेरे हृदय को प्रकाशित करने से, अपने को किसी पर लुटाने से ही संभव होती है। 'झरना' का समर्पण ही उसकी भूमिका है—

हृदय ही तुम्हें दान कर दिया
क्षुद्र था, उसने गर्व किया
तुम्हें पाया अगाध, गंभीर
कहां जलबिंदु, कहां निधिक्षीर
हमारा कहो न अब क्या रहा
तुम्हारा सब कब का हो रहा
तुम्हें अर्पण; और वस्तु त्वदीय
छीन लो छीन ममत्त्व मदीय

"तुम्हें तो मैंने हृदय ही दान कर दिया था परंतु वह क्षुद्र था, इसलिए उसने गर्व किया . . . अब हमारा क्या रह गया है ? जो कुछ था, वह तो कभी से तुम्हारा हो रहा है। तुम्हें क्या अर्पण करूं तुम्हारी ही वस्तु ! मुझसे मेरा यह ममत्व छीन लो।"

रवि ठाकुर ने भी एक दिन निवेदित होकर गाया था—

आमार माथा नत करे दाउ
तोमार चरण धूलार तले
सकल अहंकार हे आमार
डुबाओ चोखेर जले

(तेरी चरण-धूलि के नीचे
सिर मेरा नत हो जाए
अहंभाव मेरा तेरी
आंखों के जल में बह जाए)

यह आत्मार्पण ही श्रेष्ठ जीवन और महत काव्य की पृष्ठभूमि है। यही वह जिज्ञासा है जो प्रकाश की ओर ले जाती है; वह करुणा है जो मृदुल स्पर्श से हमें आर्द्र एवं द्रवीभूत करती है। ये पंक्तियां निश्चय ही प्रेम की मंजुल देहरी पर जीवन के विराट अंकन को कलेजा मथते हुए लिखी गयी होंगी :

अखिल भारतीय हिन्दी, कहानी, निबन्ध तथा एकांकी प्रतियोगिता

वर्ष १९७५-७६

प्रतियोगिता निःशुल्क होगी और निम्नलिखित वर्गों में होगी : (क) कहानी (ख) एकांकी (ग) निबन्ध (साहित्यिक एवं सांस्कृतिक) प्रत्येक वर्ग में निम्न तीन-तीन पुरस्कार होंगे :

प्रथम पुरस्कार	२५०.०० रुपए
द्वितीय पुरस्कार	१५०.०० रुपए
तृतीय पुरस्कार	१००.०० रुपए

१. उक्त तीनों पुरस्कारों को विभाजित भी किया जा सकता है।

२. पुरस्कृत तथा अच्छी रचनाएं विभागीय पत्रिकाओं में प्रकाशित भी की जा सकेंगी।

३. लेखक द्वारा रचना के मौलिक, अप्रकाशित, अप्रसारित तथा किसी पूर्व प्रतियोगिता में न भेजने का प्रमाण-पत्र अवश्य संलग्न होना चाहिए। अन्यथा रचना पर कोई विचार नहीं किया जाएगा।

४. लेखक का नाम (मोटे अक्षरों में), पता केवल अग्रेषण-पत्र पर होना चाहिए, रचना की किसी प्रति पर नहीं।

५. कृपया पत्र व्यवहार करते समय रचना का रजिस्टर नं. तथा तिथि अवश्य लिखें।

६. प्रतियोगिता में प्राप्त रचनाओं को लौटाया नहीं जाएगा।

७. एक वर्ग में लेखक की एक ही रचना स्वीकार्य होगी। रचना की टाइप की हुई अथवा सुवाच्य तीन प्रतियां १५ अक्तुबर, १९७५ तक निम्न पते पर अधोहस्ताक्षरी को अवश्य पहुंच जानी चाहिएं। बाद में प्राप्त रचनाओं पर कोई विचार नहीं किया जाएगा।

निदेशक,

भाषा विभाग, हरियाणा

कोठी नं. १५८०-१८ डी, चंडीगढ़-१६००१८

डी. पी. आर. हरियाणा (डी-१०५-७५)

जिज्ञासा :

कौन प्रकृति के करुण काव्य-सा
वृक्षपत्र की मधुछाया में
लिखा हुआ-सा अचल पड़ा है
अमृत-सदृश नश्वर काया में
किसके अंतःकरण-अजिर में
अखिल व्योम का लेकर मोती
आंसू का बादल बन जाता
फिर तुषार की वर्षा होती

जिज्ञासा का उत्तर भी कवि देता है :

किसी हृदय का यह विषाद है
छेड़ो मत यह सुख का कण है
उत्तेजित कर मत दौड़ाओ
करुणा का यह थका चरण है

इस प्रकार कवि प्रेम की साधना में आगे बढ़ गया है, परंतु विवशता यह है कि आत्मार्पण अब भी नहीं कर पाता है, मन में अब भी द्विधा है, अभिमान है। वह इसे अनुभव करके रोकर कहता है :

प्रणयी प्रणत बनूं मैं क्योंकर
दुर्बलता निज समझ क्षोभ से
जीवन-मदिरा कैसे रोकर भरूं
पात्र में तुच्छ लोभ से
हाय ! मुझे निष्किचन क्यों
कर डाला रे मेरे अभिमान
वही रहा पाथेय तुम्हारे
इस अनंत पथ का अनजान
बूंद-बूंद से सींचो, पर ये भीगेंगे
न सकल अणु तुम से
खोजो अपना प्रेम-सुधाकर
प्लावित हो अब शीतल हिम से

'आंसू' तक आते-आते 'प्रसाद' ने स्वरूप-दर्शन कर लिया था। 'आंसू' में उनका निजत्त्व सबसे अधिक है। यह उनके जीवन के संचित रस से उद्भूत हुआ है। यह उनके अपने भोगे हुए जीवन का प्रसाद है।

'आंसू' की रचना कैसे हुई ?

मैं लिख चुका हूं कि 'प्रसाद' अपनी प्रथम पत्नी को बहुत चाहते थे। उनको पाकर वे पूर्ण संतुष्ट थे। अपने संघर्षमय जीवन में इस पत्नी के कारण उन्होंने आश्वासन प्राप्त किया। वे सुदर्शना, विदुषी तथा समझदार थीं। उनसे 'प्रसाद' का पूर्ण मतैक्य था। उन्हीं को लेकर 'प्रसाद' ने अपनी कल्पना-सृष्टि सजायी थी। इसलिए उनके मरने पर 'प्रसाद' बड़े बेहाल हो गये थे। उनका कहीं मन नहीं लगता था। सदा उन्हीं की बात सोचा करते थे। एकांत में रहने लगे थे; गुम-सुम। उन्होंने पत्नी को बचाने के लिए बड़ी दौड़-धूप की थी, काफी चिकित्सा-व्यवस्था की थी, परंतु उन्हें राजयक्ष्मा हो गया। उस जमाने में राजयक्ष्मा सबसे भयंकर और प्रायः असाध्य माना जाता था। प्राणवायु-सेवन के लिए उन्हें पिशाच-मोचन के पास एक बाग में रखा गया किंतु अंत में सब निष्फल हुआ। इस वज्र-पात से 'प्रसाद' बिलकुल श्रीहत हो गये और उनका लिखना-पढ़ना सब छूट गया। ऐसा आघात था वह।

मैथिलीशरण गुप्त प्रायः प्रतिवर्ष

रायकृष्ण दास के यहां आकर कई-कई दिनों तक रहते थे। वे 'प्रसाद' के भी अन्यतम मित्र थे। जब वे काशी आये तब 'प्रसाद' से मिलने गये। उनकी दुरवस्था देख बड़े दुःखी हुए और आश्वासन देते हुए बोले, "तुम कवि हो; पत्नी-वियोग में इस प्रकार रोते और आंसू बहाते हो? जानते हो कवि के अश्रुबिंदु कितने मूल्यवान होते हैं? फिर तुम्हारे आंसू बहाने से तुम्हारी प्रियतमा की आत्मा भी अशांत होकर भटकती रहेगी, उसे शांति नहीं मिलेगी।"

'प्रसाद' ने कहा, "सब कुछ जानता और समझता हूं, परंतु उसकी स्मृति किसी तरह नहीं भूलती। जब थोड़ी देर रो लेता हूं तब आंसू निकल जाने पर कुछ संतोष होता है।"

मैथिलीशरण—"यदि ऐसी बात है तो उनकी स्मृति में निकलनेवाले इन आंसुओं को कविता में अमर कर दो और उनकी याद को चिरस्थायित्व प्रदान करो। इससे तुम्हें संतोष होगा और उनकी आत्मा को भी शांति मिलेगी।"

'प्रसाद'—"कहते तो ठीक हो। मैं भी कुछ इसी प्रकार सोचता, और करना चाहता हूं, किंतु मेरी अक्ल ठिकाने नहीं है। मेरी शक्ति कुंठित हो रही है। कोई रास्ता नहीं सूझता कि कैसे क्या करूं! तुम्हीं कोई रास्ता बताओ तो मैं उस पर चलने का यत्न करूंगा।"

इस पर दोनों चुप हो गये। फिर मैथिलीशरण कुछ देर गुनगुनाते रहे। बोले, "देखो, एक पद बन गया है:

जो घनीभूत पीड़ा थी
मस्तक में स्मृति-सी छायी
दुर्दिन में आंसू बनकर
वह आज बरसने आयी

इसी राह पर चलो; गंतव्य पर पहुंच जाओगे। अपने आंसुओं को काव्य की भूमि पर प्रवाहित करो।"

मैथिलीशरण की सलाह मानकर 'प्रसाद' ने इसी छंद में अपने भावों को गूंथना शुरू कर दिया। विदग्ध हृदय अपने को प्रवाहित करने लगा। तुरंत ही 'प्रसाद' ने दूसरा पद कहा—

इस करुणाकलित हृदय में
अब विकल रागिनी बजती
क्यों हाहाकार स्वरों में
वेदना असीम गरजती

इस प्रकार हुआ 'आंसू' का आरंभ। १९२३ में जब वे इसे लिख रहे थे तभी बीच-बीच में अपने मुख से रोज बने छंद मुझे सुनाते थे। उन दिनों मैं उन्हीं के मकान में, उनके भवन के बिलकुल निकट रहता था। अकसर भोजनादि के बाद मुझे आवाज देते। हम लोग उनकी बैठक में चले जाते और मैं छेड़-छेड़कर उनसे ताजे पद सुनाने को कहता। वे सुनाते। आज तक मेरी डायरी में उस समय के बहुतेरे छंद लिखे हुए हैं। आरंभ में इनका वह क्रम भी न था, जो प्रथम संस्करण में दिखायी पड़ा।

—क्रमशः

शिकार-कथा

शेर पेड़ पर चढ़ गया ?

• भगवतीशरण सिंह

मैंने अनेक शिकार-कथाएं लिखी हैं और मेरा इरादा है कि अपने और अपने मित्रों के शिकार-संबंधी अनुभवों को संग्रहीत करूं। इधर कुछ वर्षों से शिकार पर जाने का अवसर नहीं मिल सका है। एक कारण यह भी है कि शेर का शिकार कई वर्षों से बंद हो गया है। अपने देश में जिन जानवरों की बहुतायत थी और जो यहां की विशेषता माने जाते थे उनमें से कई तो लुप्तप्राय हो गये हैं। आम धारणा यही है कि ऐसा अनवरोधित शिकार के कारण हुआ है। यह सही भी है। इनकी रक्षा में जो लोग संलग्न हैं उनमें से अधिकांश शिकारी नहीं रहे हैं। मेरा यह तात्पर्य नहीं है कि जिसने शिकार नहीं खेला है वह जंगली जानवरों की रक्षा नहीं कर सकता, पर इतना जरूर कहना चाहूंगा कि वन्य संस्कृति और पशुओं की जैसी रक्षा सचेत शिकारियों द्वारा हुई है वैसी दूसरों द्वारा नहीं। जिम कारबेट ने लगभग ५४ तो आदमखोर शेर और गुलदार ही मारे थे। उनके इतर-शिकार का हिसाब उपलब्ध नहीं है पर कोई भी यह कहने का दुस्साहस नहीं कर सकता कि उन्हें वन्य पशुओं से प्रेम नहीं था और वे उनकी रक्षा में सचेष्ट नहीं थे। जंगल, जंगली वनस्पतियों, वन्य संस्कृति और पशुओं का जितना ज्ञान और उनसे जितना साहचर्यजन्य प्रेम उन्हें था, बहुत कम लोगों में पाया जा सकेगा।

हमारे कुछ वन-अधिकारी ऐसे हुए हैं जिन्हें शिकार के साथ-साथ शिकारी जानवरों की रक्षा का भी शौक रहा है। इसी परंपरा में उत्तरप्रदेश के एक वन-अधिकारी श्री ई. ए. स्मिथी थे। उन्हीं की एक शिकार-कथा यहां प्रस्तुत है।

श्री भगवतीशरण सिंह आई. ए. एस. आफीसर हैं और हिमाचल-प्रदेश के दिल्ली में रेजिडेंट कमिश्नर हैं। वे गॉल्फ और शिकार के प्रेमी हैं। सघन वनों में उन्होंने रात को ही नहीं, दिन-दहाड़े नर-भक्षी शेर का भी शिकार किया है। यह कथा उनके मित्र स्मिथी की है। उन्होंने एक ऐसे शेर को मारा जो बिल्ली की तरह पेड़ पर चढ़ गया था। आम तौर से शेर पेड़ पर नहीं चढ़ सकता। —संपादक

ज्वालासाल वनखंड सदा से शिकारियों का मनचाहा आखेटस्थल और शेर का मौतकुंड माना जाता रहा है। इस वनखंड में एक टुकड़ा ऐसा है जिसमें जाकर शेर जीवित निकलने की नहीं सोच सकता। रायला के इस टुकड़े की वनावट ही कुछ ऐसी है। इसके बायीं ओर एक पथरीली नदी बहती है। उसके ऊपरी हिस्से पर दूसरी ओर ऊंची पहाड़ी है। दाहिनी ओर इसी नदी में एक जलस्रोत बहता हुआ आ मिलता है। यह नाला जहां से आता है वहीं से पहाड़ी की चढ़ाई शुरू हो जाती है। इन दोनों पहाड़ियों के बीच ऊपरी हिस्से में बड़ी-बड़ी घास है।

जाड़े की खुली धूप की सुहावनी सुबह थी। स्मिथी अपनी पत्नी के साथ इसी वनखंड में पड़ाव डाले हुए थे। इस वनखंड का विश्रामगृह कुछ ऊंचाई पर है। हिमालय के पदतल में बसा यह भूखंड घने वृक्षों, झाड़ियों, छोटे-छोटे जलस्रोतों के कारण पशुओं का नैसर्गिक विहारस्थल है। यहां सांभर मस्ती में झूमते चलते थे। जंगली वराह वनकुंजों में जड़ों को खोद-खोदकर गुर्राते बड़े ही आकर्षक लगते। इस दैवी संपदा के बीच शेर अपना आहार सहज ही पाने का लोभ कभी संवरण न कर सका। शिकारी का व्यसन उसे यहां लाता और तभी दोनों में मुठभेड़ भी हो जाया करती।

स्मिथी ने इसी नाले-नदी के संगम पर अपना कटरा बांधा था। बदस्तूर शेर उस कटरे को मारकर वहीं ले गया जहां उसके अग्रज उससे पहले अपनी जान गवां चुके थे। ज्वालासाल के विश्रामगृह जब यह खबर पहुंची तब स्मिथी शिकार के पूरे साज-सामान के साथ तीन हाथियों पर चढ़कर निकल पड़े। मार से लगभग आध मील पहले ही हाथियों से उतरकर यथावत 'रोक' बिठाने की व्यवस्था की और फिर एक लंबा चक्कर लेकर मचान बांधने की जगह पहुंचे। लंबा चक्कर इसलिए लगाया कि शेर को इनके आने का आभास न मिले। नंबर एक के स्थान पर उन्होंने अपना मचान बंधवाया और नंबर दो के स्थान पर अपनी पत्नी का। इनकी पत्नी कुछ ही दिन पहले एक शेर मार चुकी थी।

श्रीमती स्मिथी के मचान के लिए तुन का एक मजबूत पेड़ चुना गया था। इसी पेड़ पर जमीन से लगभग १४ फुट की ऊंचाई पर मचान बांधा गया। श्रीमती स्मिथी अपने मचान पर आराम से पेड़ से पीठ लगाये पांवों को एक-दूसरे पर चढ़ाकर बैठ गयीं। उनका मचान पति के मचान के पीछे लगभग ४० फुट की दूरी पर था। यह एक प्रकार से आखिरी रोक थी। उद्देश्य भी यही था कि अगर किसी तरह शेर स्मिथी से बच निकले तो श्रीमती स्मिथी उसका सफाया कर दें।

जब पति-पत्नी दोनों आराम से आसन जमा चुके तब हांका शुरू हुआ।

हाका शुरू होते देर न हुई कि स्मिथी ने एक स्टाप को ताली बजाकर आवाज करते सुना। जाहिर था कि शेर उठ चुका था और उस रोक की ओर जाना चाहता था। स्मिथी के मचान के आगे नरकुल का एक बड़ा झुंड था। कुछ ही क्षणों में स्मिथी ने शेर को इसी में एक ओर घुसते देखा और वे पूरी तरह सजग होकर बैठ उसी ओर भागते हुए श्रीमती स्मिथी के पेड़ की ओर जाना चाहिए था पर वह लौटकर फिर उसी नरकुल के झुंड में घुस गया। वह बेहद गुस्से में भर उठा था और स्मिथी के मचान के पास ही गुर्रा रहा था। छिपे हुए शेर पर आवाज के अंदाज पर गोली चलाना खतरे से खाली नहीं होता।
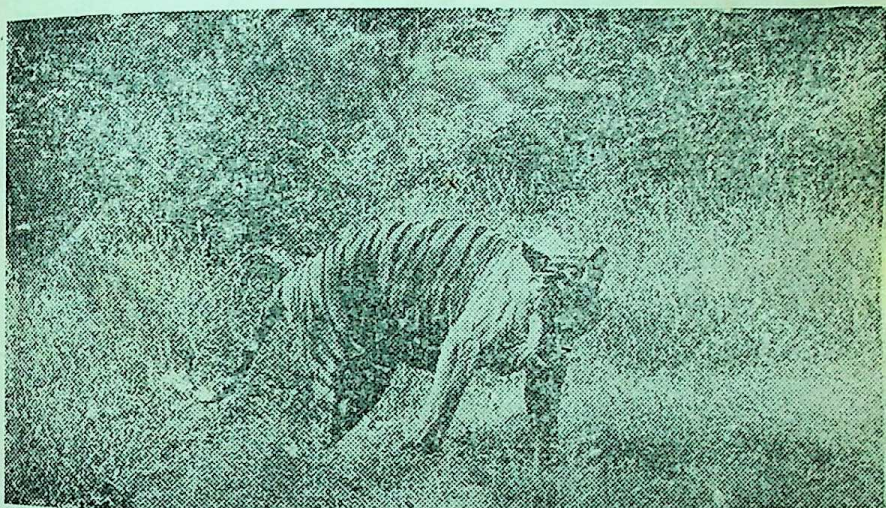
गये। थोड़ी देर में शेर इसी झुंड के दूसरी ओर से भागता हुआ निकल पड़ा। अब स्मिथी को देर नहीं करनी थी। यही अवसर था, और उन्होंने ठीक समय पर गोली भी चलायी पर न जाने किन कारणों से उनका निशाना चूक गया। स्वयं स्मिथी भी नहीं समझ पाये थे। लोग कहते हैं कि घायल शेर शेर होता है पर यहां तो उसे गोली छू भी नहीं सकी थी। शेर को

हांके के हाथी अपने रास्ते चलते और आवाज करते अब तक नरकुल के इस झुंड में पहुंच चुके थे। शेर के एक ओर मौत मुंह बाये बैठी थी, दूसरी ओर से हाथी रौंद देने की आहट दे रहे थे। हाथियों ने अब घेरा डाल दिया। हाथियों की चिंघाड़ और शेर की दहाड़ का तुमुल-नाद आकाश गुंजा रहा था। इस कोला-हल में सारे पशु-पक्षी घबराये हुए इधर-

उधर भागने लगे। हाथी अपने पावों से रौंदकर छोटे-मोटे पेड़ गिराने लगे थे। स्मिथी की आंखें शेर की झलक खोज रही थीं। सजग और शंकाकुल श्रीमती स्मिथी मचान से पति की रक्षा में उद्यत हो गयी थीं। हाथियों के पांव से गिराया गया पेड़ शेर के ऊपर ही जा गिरा। वह दहाड़ के साथ हाथियों पर टूट पड़ा, पर हाथी और महावत दोनों ही सधे हुए थे। वे वजाय भागने के शेर की ओर झपटे। शेर पीछे मुड़कर स्मिथी के पेड़ के नीचे से निकलना चाहता था। स्मिथी ने दूसरी गोली चलायी और स्मिथी का निशाना एक बार फिर चूक गया। शेर वच निकला। पर जाता कहां?
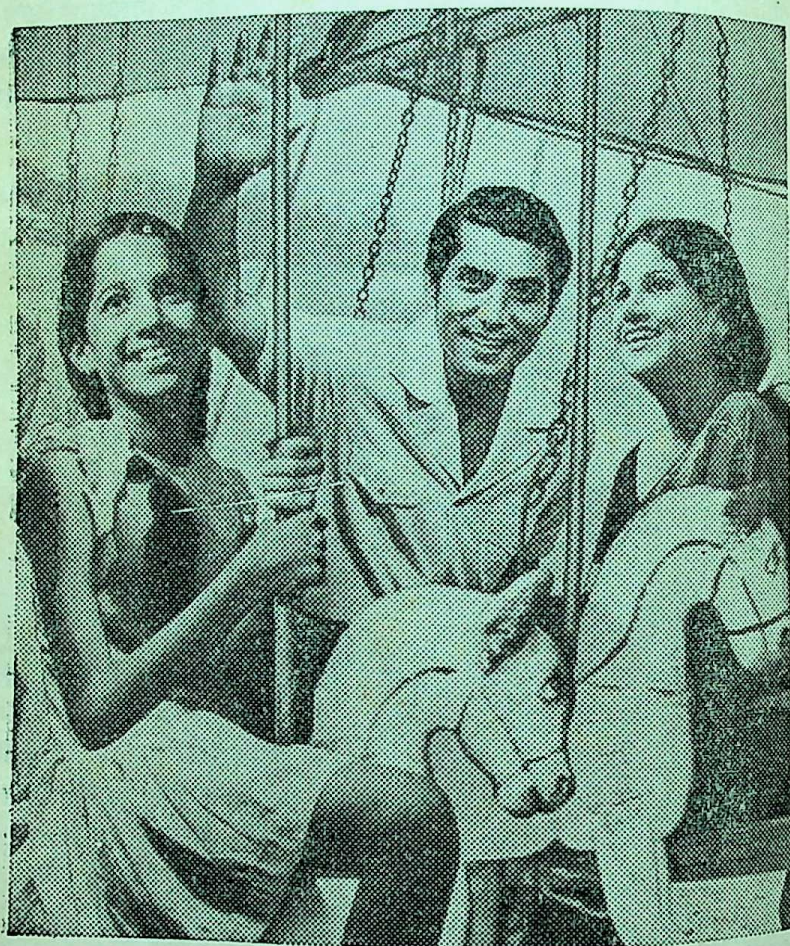
इसके पहले कि स्मिथी आखिरी गोली चलाते शेर श्रीमती स्मिथी के मचान तक पहुंच चुका था। स्मिथी ने यह भी देखा कि उनकी पत्नी अब मचान पर खड़ी हो गयी थीं और शेर धड़ तक मचान के ऊपर निकला हुआ उनकी पत्नी की राइफल की नली लगभग आठ इंच तक अपने मुंह से चवा रहा था। यह साहस और संग्राम का अद्‌भुत दृश्य था और इसको शिकारी ही आंक सकता है। श्रीमती स्मिथी ने इस हालत में भी साहस नहीं छोड़ा और गोली चला दी। गोली चूक गयी। शेर के वजन से मचान इस बुरी तरह हिल रहा था कि श्रीमती स्मिथी को अपना संतुलन बनाये रखना संभव नहीं था। वे धम से नीचे आ गिरीं। शेर क्रोध से अंधा हो रहा था। वह मचान को ही अपना शत्रु समझकर नोचे जा रहा था। स्मिथी के लिए यह आखिरी दांव था—अपनी पत्नी को बचाने के लिए। अब स्मिथी ने अपनी गोली साधकर चलायी। वह ठीक निशाने पर पड़ी। शेर बोरे के समान नीचे गिरा। भागती हुई श्रीमती स्मिथी को उनकी रक्षा में आते हुए हाथियों ने ऊपर उठा लिया था।

उस स्थान पर एक स्मारक इस घटना की याद दिलाता रहता है। ●

हर आंगन में

दो अक्षर का 'सुख'
खोजे से नहीं
मिला करता है
पर दो ही अक्षर का
'दुख'
हर आंगन में
फूला-फूला फिरता है
'सुख' 'दुख' का है दोस्त
मगर, इस 'दुख' का
कोई दोस्त नहीं
है न आश्चर्य की बात
मगर
अब कुछ भी
आश्चर्य नहीं होता है

● नरेन्द्र भारद्वाज
५०, दरियागंज, दिल्ली-११०००६

● शांता गांधी
● किरण बेदी ● अनीस जंग
● मधु मालती ● रामी बरुआ

एक और औपचारिक संदर्भ : महिला-वर्ष
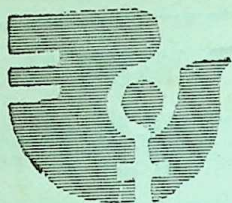
जरूरी तो नहीं है कि हर बात से हर आदमी सहमत हो, हर चीज के बारे में हर आदमी की एक ही दृष्टि हो, हर आदमी एक ही तरह से सोचता हो—जब दृष्टि समय, स्थान और वस्तु-सापेक्ष हो—तो यह बात अंतर्राष्ट्रीय महिला-वर्ष के विषय में भी लागू होती है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर महिलाओं को रिकग्नाइज करना, 'पुरुषों के साथ समानता' की बात कर महिला-वर्ष-जैसा कुछ मनाना—कहीं महिलाओं को 'डिग्रेड' करना तो नहीं ?

बाल-भवन की निर्देशिका कुमारी शांता गांधी यदि महिला-वर्ष मनाने के लिए इसलिए सहमत हैं कि इससे स्त्री और पुरुषों के बीच की खाई को पाटना संभव हो जाएगा, तो श्रीमती रामी बरुआ इस कारण कि इससे नारी को अधिक स्वतंत्रता प्राप्त हो सकेगी। 'यूथ टाइम्स' की संपादिका कुमारी अनीस जंग के अनुसार 'वीमेंस इयर' मनाने से कुछ नहीं होनेवाला, क्योंकि महिलाओं की स्वतंत्रता के माने हैं—पूरी सामाजिक स्वतंत्रता। यानी 'टोटल सोसाइटी फ्रीडम' जब तक समाज की ही दृष्टि नहीं बदल जाती (जो कि बदल भी नहीं सकती), तब तक चाहे कितने नारे दे दें, कोई फर्क नहीं पड़ेगा।' सुश्री मधु मालती दिल्ली दूरदर्शन केंद्र में प्रोड्यूसर हैं। उनका कहना है कि 'वीमेंस इयर' मनाने से निश्चित ही लाभ हैं, क्योंकि इससे महिलाओं की समस्याओं से परिचित हुआ जा सकेगा और उनका समाधान खोजना भी संभव होगा।

भारत की प्रथम महिला पुलिस अधीक्षक श्रीमती किरण बेदी का कहना है, "जैसे हमने 'ह्यूमन राइट्स इयर' मनाया है, वैसे ही 'वीमेंस इयर' भी मना रहे हैं। यह तो सबको मालूम है कि औरतों को परेशानियां हैं, पर उनको अब 'हाईलाइट' किया है यू. एन. ओ. ने। यदि ज्यादातर औरतों को इसके बारे

में पता नहीं है तो वह अब पता चल रहा है—प्रदर्शनियों के जरिये, रेडियो के जरिये। गांवों में रेडियो तो है ही, रोज महिलाओं के लिए कार्यक्रम होते हैं, इसलिए गांवों में भी महिलाएं इससे परिचित हो रही हैं।"

महिलाओं की स्वतंत्रता : एक सापेक्ष तत्त्व

'स्वतंत्रता' को ये सभी महिलाएं सापेक्ष मानती हैं, पर सबके लिए वह सापेक्षता भिन्न है।

कुमारी अनीस जंग का कहना है कि हमारे देश की महिला स्वतंत्र होकर सोच भी नहीं पाती, स्वतंत्रता से कार्य करना तो और बात है। वह अपनी योग्यता से, अपनी क्षमता से ही परिचित नहीं है, वह अपने व्यक्तित्व की महत्ता को ही नहीं जानती, अपने खोखले होते हुए अस्तित्व की पहचान भी नहीं कर पाती—वह केवल यह जानती है कि वह महिला है—और आंख मूंदकर काम करती

परिचर्चा-आयोजिका
सुनीता बुद्धिराजा

रहती है।

कुमारी शांता गांधी के अनुसार **स्वतंत्रता का अर्थ है—समानता की भावना।** यह संबंध पुरुष और स्त्री के बीच का या अमीर-गरीब के बीच का संबंध नहीं है, यह तो मानवीयता का संबंध है, उसके प्रति उत्तरदायित्व की भावना है। प्रश्न केवल यह है कि आप क्या करने को तैयार हैं—और कितना अपनी परिस्थिति

शांता गांधी — अनीस जंग — रामी बरुआ — किरण बेदी

के अनुकूल उसे ढाल सकती हैं! वहीं स्वतंत्रता परिस्थिति-सापेक्ष, व्यक्तित्व-सापेक्ष और क्षमता-सापेक्ष हो जाती है।

श्रीमती मधु मालती मानती हैं—"आप अपने व्यक्तित्व को, अपने निजीपन को कितना जमाकर रख सकती हैं, इस पर स्वतंत्रता निर्भर करती है। आपमें इतनी शारीरिक, आर्थिक, नैतिक

सामर्थ्य हो कि आप स्वतंत्र होकर रह सकें, पर इसका यह भी अर्थ नहीं कि आप अपने नारीत्व को और नारीसुलभ गुणों को भी छोड़ दें। नारी की सुकोमलता स्वतंत्र रहते हुए भी सुरक्षित रह सकती है।"

स्वतंत्रता का कोई महत्त्व नहीं

श्रीमती रामी बरुआ कहती हैं कि हमारे देश में तो नारी को अधिक स्वतंत्रता मिलती दिखायी नहीं देती। एक तो हमारे यहां की महिला अपने ही संस्कारों से जुड़ी है, फिर विवाह से पूर्व वह अपने पिता और विवाह के पश्चात अपने पति और परिवार के साथ इतनी उलझ जाती है, या कहें कि उसका व्यक्तित्व अपने परिवेश से इतना घुल-मिल जाता है कि वह स्वाधीनता को कोई महत्त्व नहीं दे पाती। फिर भी पहले की अपेक्षा आज वह अधिक स्वाधीन है।

श्रीमती किरण वेदी 'स्वतंत्रता' शब्द सुनते ही चौंकती हैं। वे कहती हैं—"आप नारी को किस तरह की स्वतंत्रता नहीं देना चाहते? जब सबसे बड़ा अधिकार—'वोट देने का अधिकार'—आपने उसे दे दिया, तब उसे किस अधिकार से वंचित रखेंगे? शिक्षा के अधिकार से या नौकरी करने के अधिकार से? अब यदि यह कहें कि वह अधिकारों का दुरुपयोग कर सकती है, तो पुरुष भी वैसा कर सकता है। दुरुपयोग तो किसी चीज का तब होगा जब प्रयोग करनेवाला व्यक्ति मानसिक रूप से विकसित नहीं होगा। इसके लिए प्राथमिक शिक्षा और प्रौढ़-शिक्षा, दोनों की जरूरत है, क्योंकि जब तक बड़े लोग ही किसी चीज को स्वीकार नहीं करेंगे—चाहे वह नारी के अधिकारों के विषय में हो या कुछ और—समाज में तो वह आ ही नहीं सकती।"

महिलाएं नौकरी के लिए?

'क्या महिला को नौकरी करनी चाहिए?'—इसके उत्तर में श्रीमती रामी बरुआ कहती हैं—"आज की जरूरतों को देखते हुए तो महिलाओं के लिए भी नौकरी करना आवश्यक लगता है।"

कुमारी अनीस जंग का कहना है कि जरूरी नहीं कि महिला बाहर जाकर ही काम करे। 'ए वूमेन कैन बी सेल्फ-एम्पलाएड आलसो।' वह घर में रहकर भी काम कर सकती है। उसमें इतनी क्षमता है कि वह स्त्री या पुरुष दोनों के काम कर सके, दोनों के उत्तरदायित्व संभाल सके, क्योंकि उसका मूल गुण ही यह है कि वह संरक्षण करती है। महिला को यदि लड़ना है तो वह पहले अपने-आपसे लड़े, अपने आपको वह व्यक्ति के तौर पर पहचाने, केवल मां, पत्नी, बहन के रूप में नहीं। यह हिम्मत उसमें आनी चाहिए, तब वह आर्थिक दृष्टि से भी स्वतंत्र हो पाएगी। औरत में तो ज्यादा काम करने का माद्दा है।

सुश्री मधु मालती सोचती हैं कि नौकरी करने से महिलाओं को समय की

कीमत पता चलती है। उसे वक्त को बांटने की आदत पड़ जाती है, इसलिए वह सवेरे घर की सारी जिम्मेदारियां पूरी करके काम पर जाती है। यही कारण है कि काम करनेवाली महिलाओं का घर, घर में रहनेवाली महिलाओं की अपेक्षा सुचारु रूप से चलता है।

"लेकिन मैं अपने अंदर घुटनेवाले भावों को कैसे जाहिर करूं ?"

इस संबंध में श्रीमती किरण वेदी मुझसे ही पूछती हैं -- "महिलाओं को नौकरी क्यों नहीं करना चाहिए ? यदि पुरुष के लिए काम करना जरूरी है तो स्त्री के लिए भी जरूरी है। यदि रोटी खाना जरूरी है तो काम करना भी जरूरी है।" उनका कहना है, "वह अपनी जिंदगी इसीलिए सैक्रीफाइस क्यों कर दे कि उसे सिर्फ बच्चे पैदा करने हैं या खाना बनाना है। यदि यह कहा जाए कि पुरुषों को तो नौकरी मिलती नहीं तब महिलाएं क्यों नौकरी करें--तब हमने तो नहीं कहा कि आप हमें कोई रियायत दें। यह तो 'फेयर कॉम्पिटीशन है। जिस कॉलेज में महिलाओं को शिक्षा दी जाती है, जहां उसे और अधिकार दे दिये, तो फिर वहां वह नौकरी क्यों न करे ?"

वैसे तो महिलाएं समानता की मांग करती हैं, फिर वे विवाह करके पुरुष का संरक्षण भी प्राप्त करना चाहती हैं, उस संस्था में भी बंधना चाहती हैं, ऐसा क्यों ? यह एक और प्रश्न इसी संदर्भ में उभर कर आता है।

सुश्री शांता गांधी कहती हैं कि लग्न या विवाह एक संस्था है। यदि इस संस्था की कोई शुरूआत थी तो कोई-न-कोई आखिरी सीमा भी होगी।

श्रीमती रामी बरुआ प्रश्न को भारतीय संदर्भ में रखकर उत्तर देती हैं--"अभी भारत में तो ऐसी स्थिति नहीं है कि नारी अलग रह सके। एक परिवार की कामना तो वह करती ही है, और परिवार के लिए विवाह-जैसी

संस्था को स्वीकार करना आवश्यक है।"

श्रीमती मधु मालती तो विवाह-जैसी संस्था को ही नहीं मानतीं (यह बात दूसरी है कि वे स्वयं विवाहित हैं)। उनके अनुसार बंधना तो मन और शरीर का व्यापार है। कुछ तृप्तियों के संचय के लिए यदि विवाह करके बंधा जाए और वह प्रगति में बाधा बने तो उसे नकारना ही उचित है।

विवाह संरक्षण नहीं : एक कंपनी

श्रीमती किरण वेदी बंधन को स्वीकार नहीं करतीं। वे प्रश्न को ही गलत ठहरा देती हैं—"औरत शादी इसलिए नहीं करती कि उसे संरक्षण चाहिए बल्कि इसलिए करती है कि उसे कंपनी चाहिए क्योंकि अभी तक तो हमारे यहां की औरतें पतिव्रता ही हैं—कि शादी करो, एक देवता ले आओ और उसकी पूजा करो। इसलिए शादी करना कम-से-कम हिंदुस्तान में तो जरूरी ही है—कंपेनियनशिप के लिए।"

कुमारी अनीस जंग स्वतंत्र विचारों-वाली महिला हैं, पर वे भी विवाह करके 'घर बसाना' चाहती हैं। वे कहती हैं कि उस प्रगति से, संतोष से क्या लाभ यदि उसे किसी के साथ बांटा न जा सके! पुरुष और स्त्री दोनों को ही एक-दूसरे के संरक्षण की आवश्यकता है।

कुल मिलाकर मुझे यह लगा कि चाहे संरक्षण के लिए, चाहे कंपनी के लिए, महिला के लिए आवश्यक है कि वह विवाह-संस्था को स्वीकार करे।

सेक्स : एक मिली-जुली प्रतिक्रिया

एक और प्रश्न—'सेक्स' से संबंधित। श्रीमती मधु मालती और कुमारी अनीस जंग का कहना है कि 'फ्री सेक्स' की धारणा व्यक्ति-व्यक्ति पर निर्भर करती है। कोई व्यक्ति यदि इसे सही समझता है तो वह इसे स्वीकार करे, और यदि गलत समझता है तो अस्वीकार कर दे।

श्रीमती रामी बरुआ 'फ्री सेक्स' के पक्ष में नहीं हैं। कुमारी शांता गांधी 'फ्री सेक्स' और 'पाप' को एक नहीं मानतीं। उनके अनुसार स्वतंत्र विचरण में कोई बुराई नहीं है—पर यदि व्यक्ति संतान की कामना भी करता है तो उसे विवाह का ठप्पा लगवाना पड़ेगा—क्योंकि तब यह एक सामाजिक दायित्व हो जाएगा। यदि दो व्यक्ति साथ-साथ रहना चाहते हैं तो यह बंधन नहीं है, पर यदि कोई महिला आर्थिक संरक्षण के लिए विवाह करती है, तो वह मुक्ति या स्वतंत्रता के लिए उपयुक्त पात्र नहीं है। इसके लिए तो कोई कानून भी नहीं हो सकता, यह केवल आत्मिक संतोष की बात है।

ऐसा संभव था कि 'पढ़ी-लिखी' होने के कारण इन महिलाओं की कुछ विशेष समस्याएं होतीं। मेरा अंदाज सही था। कुमारी जंग का तो कहना है कि उनकी और अन्य कई महिलाओं की समस्याओं में सबसे बड़ा अंतर तो यह है कि उनकी समस्याएं बौद्धिक अधिक हैं, शारीरिक
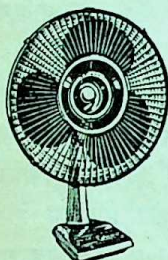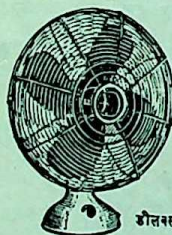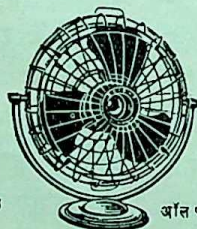
ओरिएन्ट
ORIENT
अब आकर्षक
आफ-सीजन
दामों
में खरीदिये
डेस्क पंखा
सुपर डीलक्स टेबल पंखा
स्टैण्ड पंखा
डीलक्स टेबल पंखा
ऑल परपज़ पंखा
ओरिएन्ट
पंखा
विश्व विख्यात
ओरिएन्ट
पंखा
ओरिएन्ट जनरल इन्डस्ट्रीज़ लि० ६, घोर बीबी लेन, कलकत्ता-१४
फैक्ट्री : कलकत्ता और फरीदाबाद
CC/O/4/73 HIN

कम, पर यह अनुभव की बात है। अपने-अपने कार्यक्षेत्र के अनुसार समस्याएं भी बदल जाती हैं। कुमारी शांता गांधी मानती हैं कि आज जब जीवन के प्रति बौद्धिक दृष्टिकोण होता जा रहा है तब महिलाओं की समस्याएं भी बौद्धिक हैं।

श्रीमती किरण बेदी का कहना है कि नौकरी करनेवाली विवाहित महिला की सबसे बड़ी समस्या है कि उसके बच्चे की देखभाल कैसे हो ? इसके लिए सरकार को अधिक से अधिक बाल-संरक्षण केंद्र खोलने चाहिए। विवाह भी अपने-आप-में एक समस्या बन सकती है। हो सकता है कि पति और परिवार के अन्य लोग एक गृहिणीनुमा बहू की कल्पना करते हों। तब वहां एक आपसी समझौते की और समझदारी की आवश्यकता है। श्रीमती किरण बेदी का संपर्क पुरुषों से अधिक रहता है। एक महिला होने के नाते उनसे संपर्क करना भी एक समस्या हो सकती है, पर वे कहती हैं, "पुरुषों के साथ काम करना ज्यादा आसान है। मैं उनकी जरूरतों को, उनकी परेशानियों को भी समझ पाती हूं। हमारे सामने केवल कानून है। कानून हमें जहां तक अधिकार देता है, वहां तक हम दयालु भी होते हैं, पर इसके आगे तो सख्त होना ही पड़ता है।"

विवाह और नाम बदलने के सख्त स्वर

'स्वतंत्रता चाहते हुए भी महिलाएं विवाह के बाद अपना कुल-नाम बदल लेती हैं—ऐसा क्यों? इसका उत्तर देते हुए कुमारी शांता गांधी और कुमारी अनीस जंग ने कहा कि अपने कार्यक्षेत्र में तो महिलाएं अपना पहला नाम ही प्रयुक्त कर सकती हैं, पर समाज के लिए अपने पति का नाम चला सकती हैं। ऐसा ही चला आ रहा है, इसमें कुछ खराब नहीं है। श्रीमती किरण बेदी व्यक्तिगत रूप से नाम बदलने की इस प्रथा को पसंद नहीं करतीं। विवाह के बाद उन्होंने कुछ दिन तक अपना पहला नाम 'किरण पेशोरिया' चलाने की कोशिश भी की, पर बात नहीं बनी (लोगों ने बेदी साहब को 'मि. पेशोरिया' कहना शुरू कर दिया)। वे मानती हैं कि इस विषय में विकल्प होना चाहिए।

कुल मिलाकर इन सभी महिलाओं से चर्चा करते हुए मेरे मन में बार-बार एक बात उठी—परंपराओं का बोझ उतारना आसान नहीं है। प्रगति की बात करते हुए भी विवाह-जैसी संस्था को झुठलाना उनके लिए कठिन है और एक पुरुष का साहचर्य किसी न किसी रूप में आवश्यक है। प्रत्येक महिला घर, परिवार और संतान की कामना-जैसी कमजोरी की शिकार है, इसके बावजूद कि वह कई बार अत्यधिक आधुनिक बनने का उपक्रम करती है। किसी ने ठीक ही कहा है: 'दुनिया को समझना जितना आसान है, नारी को समझाना उतना ही कठिन है।'

—ए-१४, डी. टी. सी. कालोनी, शादीपुर, नयी दिल्ली-८

एक महिला एक पैकेट अदृश्य हेयर-पिन खरीदकर दूकान से बाहर निकल रही थीं। आश्वस्त होने के लिए सेल्स-मैन से उन्होंने पूछा, "आपको पक्का पता है न कि ये हेयरपिन अदृश्य ही हैं ?"

"जी हां, पक्का यकीन है। सबूत यह है कि आज सुबह से हम इनके दस पैकेट बेच चुके हैं, जबकि पिछले दस दिनों से इनका स्टाक खत्म हो चुका है।"

*

"डॉक्टर साहब, मेरे पति रात में बहुत बड़बड़ाते हैं, इनका कोई इलाज कीजिए प्लीज !"

"इन्हें दिन में बोलने का मौका दीजिए।"

*

मैनेजर : "क्या बात है, कल कई कर्मचारी मेरे भाषण देते समय सभा के बीच में ही उठकर चल दिये ?"

पी. ए. : "उन्हें नींद में चलने की आदत है, सर !"

*

बेटा शैतानियों से नाक में दम किये था। मां ने उसके पिता से शिकायत की और कहा, "इसे साइकिल ले दीजिए।"

"साइकिल ! साइकिल से इसकी शैतानियां कैसे दूर हो जाएगीं ?"

"दूर नहीं होंगी, कम-से-कम दूर-दूर तक फैल तो जाएंगी।"

*

उपदेशकजी भाषण दे रहे थे, "दूसरे-लोग इस पीढ़ी की बात सोचते हैं, जब-कि मैं आनेवाली पीढ़ी के हित की बात कह रहा हूं . . ."

"जब तक नयी पीढ़ी नहीं आ जाएगी, आप लगातार बोलते ही रहेंगे क्या ?" बोर हुए एक श्रोता ने बात काटी।

*

"अखबार में लिखा है कि स्त्रियों की अपेक्षा पुरुष अधिक पागल हो जाते हैं," पति ने बताया।

"बात तो ठीक है, पर पागल हो किसकी वजह से जाते हैं ?" पत्नी ने पूछा।

*

एक लड़की नदी में डूब रही थी, नदी के किनारे खड़े एक युवक ने उसे नहीं बचाया। बाद में पता चलने पर उस युवक से किसी ने पूछा, "आपने उस लड़की को क्यों नहीं बचाया ?"

इस पर युवक ने कहा, "यदि मैं उस लड़की को डूबने से बचा लेता तो वह मुझसे शादी करने का भी अनुरोध करती ! तब मुझे उससे कौन बचाता ?"

*

"डैडी, चांद पर महिला अंतरिक्ष-यात्री क्यों नहीं भेजी गयी ?" बच्चे ने पूछा।

पास ही मेकअप करती पत्नी की ओर संकेत करके डैडी ने जवाब दिया, "शायद इसलिए कि राकेट का ठीक समय पर उड़ान करना असंभव हो जाता !"

★

किसी तैराक ने एक डूबते बच्चे को बचाया और उसकी बड़ी प्रशंसा हुई। दूसरे दिन बच्चे के पिता तैराक के पास आये और कहा, "कल जब आपने मेरे लड़के..."

तैराक ने नम्र होकर कहा, "वह तो मेरा कर्तव्य था....जाने भी दीजिए।"

"जाने कैसे दूं महाशय... बच्चे की हीरे की अंगूठी कहां है ?"

★

एक महोदय सुबह-सुबह अपने कुत्ते को साथ लिये घूमने जा रहे थे, रास्ते में उनके मित्र मिल गये। "सुबह-सुबह इस गधे के संग कहां जा रहे हो ?" मित्र के मुंह से शब्द निकले।

"भाई, यह गधा नहीं कुत्ता है," उन महोदय ने स्पष्टीकरण दिया।

"तुमसे कौन पूछ रहा है यार ! मैं तो इस कुत्ते से पूछ रहा हूं," मुसकराते हुए मित्र ने कहा।

—नंदकिशोर झाझरिया

हंसिकाएं : काव्य में

अनारकली

बेटी की करतूतों से खिन्न होकर
वृद्ध पिता रहा यों रोता
कि जिंदा दीवार में चुनवा देता इसे
ईंट-गारा-चूना अगर
महंगा न होता

कैसे ?

'कामायनी' में
मनु की उदासीनता
समझ न पायी
और लगी सोचने
कि श्रद्धा के आने से पहले
आखिर प्रलय कैसे आयी

बुखार

बांहों में जकड़न
होंठों पर गरम सांसों का
आभास रहता है
प्रेमी है यह
इसे ताप कौन कहता है !

आवश्यक

हाथों में ईंट-पत्थर लेकर
खड़े थे लोग
मजनू को सिर्फ यह बताने के लिए
कि ईंट-पत्थर कितने आवश्यक होते हैं
एक घर बनाने के लिए

—डॉ. सरोजनी प्रीतम

ये दिन

ये दिन
बरसात में
पहाड़ी शहर
कोहरे की बांहों में
जकड़ा हर पहर
बौछारों में खोया
उम्मीदों में संजोया
सोंधी गंध में डूबा
दिन भर
पहाड़ी शहर
भीगते हुए
देवदारु हम
अनदेखी आशा किरन
डूबे मन ऊबे चरण
फड़फड़ाती उम्र
गुजारने के लिए
दो बोझिल हिमहासी शरीर
कतरनभरे चूहों के
बिल में
राहत पैठ गयी है
आग लगे दिल में

——डॉ. उमाशंकर सतीश
प्राध्यापक, केंद्रीय हिंदी संस्थान, के-११८,
हौजखास एन्क्लेव, नयी दिल्ली-११००१६

तूफान की पैमाइशें

अंधड़ के बीच
गुमसुम खड़े अमलतास को
गाली देना बहुत आसान है
पत्तियां हिलने से
अंदर के तूफान नाप लेना
उससे भी ज्यादा आसान
क्या कहोगे
बौखलाकर अंगारे फूलनेवाले गुलमोहर को
कि उसके रोम-रोम से दहकता हुआ लावा
उसकी खुशियों का पोस्टर है ?
तुम्हें कैसे बताऊं
कि गुलाब की पंखुरियों की लाली में
गुलमोहर की आग नहीं ढूंढ़ी जा सकती
और कि
गुलमोहर की एक टहनी से
महज गुलदस्ता
बनाया जा सकता है
मगर
क्या फर्क पड़ता है
बौखलाया हुआ गुलमोहर हो
या गुमसुम खड़ा अमलतास
तुम्हारे पैमाने
फूलों की भाषा के आदी नहीं हैं
इसीलिए
अंधड़ के बीच गुमसुम खड़े अमलतास को
कांच के झरोखों से
गाली देना बहुत आसान है

——कन्हैयालाल 'नंदन'
डी ४३, जंगपुरा एक्सटेंशन,
नयी दिल्ली-११००१४
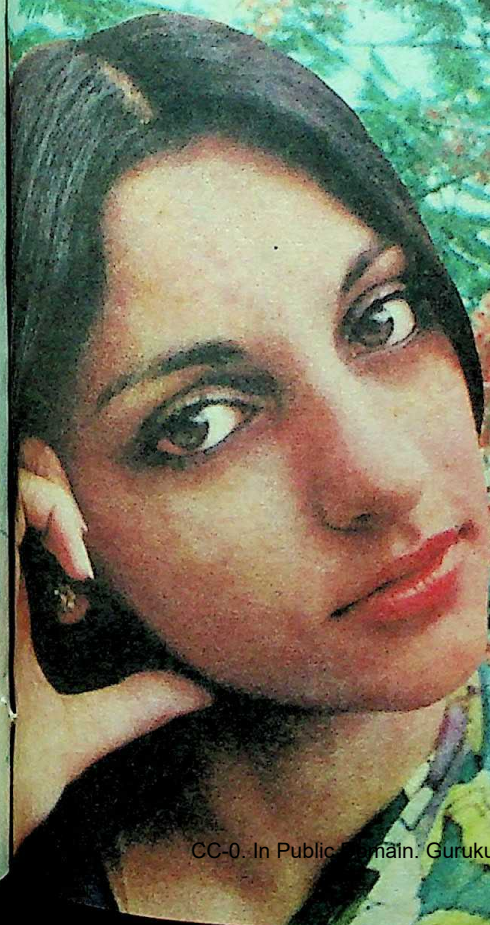
तुम्हें कैसे
कि गुलाब की पंखुरियों की लाली में
ढूंढी जा

नायक और नायिका का रंगोत्सव

अलवर संग्रहालय के सौजन्य से; (१८वीं शती) कलाकार रामला कारीगर,

• डॉ. जयसिंह नीरज

जयपुर की चित्रकला में मुगलों का प्रभाव

भारतीय चित्रकला में समन्वयात्मक प्रवृत्ति की बहुलता मिलती है। संस्कृति के मिलन, कलाकारों के आदान-प्रदान के कारण कला में ही नवीनता नहीं आयी है, वरन देश में समय-समय पर भाईचारे का वातावरण भी बढ़ता रहा है। मुगल शैली अपने आप में दो संस्कृतियों के समन्वय की धरोहर है। हुमायूं के साथ फारस के दो कलाकार सैयद अली और अब्दुस्समद भारत आये थे। वे ईरानी शैली के कलाकार होते हुए भी भारतीय प्रभाव से अछूते न रह सके। अकबर का नाम इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है कि उसने राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक समन्वय के कार्य में महत्त्वपूर्ण योग दिया। हिंदू वैवाहिक संबंधों के कारण उसके दरबार में हिंदू और मुसलिम कलाकारों का जमघट लगने लगा। मुसलिम कलाकार जो ईरानी शैली में चित्रकारी करते थे, वे हिंदू कलाकारों एवं भारतीय परिवेश के संपर्क में आये और इस प्रकार के कलात्मक आदान-प्रदान से जिस नवीन शैली ने जन्म लिया वह मुगल शैली के नाम से प्रख्यात हुई।

अंबर-शैली

जयपुर के राजसी दरबार और सामंती वर्ग में परिपोषित हुई चित्रकला जयपुर-शैली के नाम से विख्यात है। महाराजा सवाई जयसिंह (१६९९-१७४३) के जयपुर नगर बसाने से पूर्व कछवाह वंश की राजधानी आमेर थी, इसलिए ऐतिहासिक दृष्टि से जयपुर-शैली को 'कछावा-शैली' या 'अंबर-शैली' विरासत में मिली। अंबर-शैली के बहुत कम उदाहरण उपलब्ध हैं और जो हैं उनमें मुगल और राजपूत संस्कृति का पूर्ण समन्वय परिलक्षित होता है।

हाल ही में श्री कार्ल खंडालवाला ने आमेर की चित्रकला पर एक कला-पुस्तक प्रकाशित कर उस शैली को उजागर किया है। आमेर स्थित भारमल की छतरी में कुछ भित्ति-चित्र हैं जो आरंभिक मुगल-काल (१६००-१६१५) के सुंदर उदा-

हरण कहे जा सकते हैं। इसी प्रकार बैराठ (प्राचीन विराट नगरी) के मानसिंह उद्यान में महत्त्वपूर्ण भित्ति-चित्र हैं जो अकबर के अंतिम एवं जहांगीर के उदय-काल के चित्र माने जाते हैं।

इन चित्रों में राजस्थान की लोक-शैली और मुगल कला का सुंदर समन्वय है। अपनी सादगी, देशी रंगों की मौलिकता, रेखाओं की सुघड़ता और विषय-वस्तु की देशजता के कारण बैराठ के भित्ति-चित्र कला के अच्छे उदाहरण हैं। राजा मानसिंह का जन्म मौजमाबाद में हुआ था। मौजमाबाद के महल के भित्ति-चित्र, जो अब विगलित दशा में हैं, अंबर-शैली के उत्तम उदाहरण हैं। आमेर के महलों के भित्ति-चित्र भी इस परंपरा के दर्शनीय चित्र हैं।

अंबर-शैली का दूसरा चरण मिर्जा राजा जयसिंह (१६२५—१६६७) से प्रारंभ होता है। बिहारी–जैसे रीति-कालीन कवि राजा के दरबारी रत्न थे, जिनकी 'बिहारी सतसई' ने अनेक चित्र-कारों और रसिकजनों को प्रभावित किया। निश्चय ही मिर्जा राजा जयसिंह के समय में 'बिहारी सतसई' जैसे चित्रोपयोगी ग्रंथ को आधार बनाकर अनेक चित्र बने।

जयपुर-शैली का विकास

अंबर-शैली का तीसरा चरण राजा सवाई जयसिंह (१७००–१७४३) से प्रारंभ होता है। उन्होंने सन १७२७ में अपने समृद्ध राज्य के अनुरूप नयी राजधानी जयपुर को बसाकर विभिन्न कलाओं के उत्थान में विशेष योगदान दिया। सवाई जयसिंह महान गणितज्ञ, ज्योतिषी, नक्षत्र-शास्त्री, विद्वान एवं कलाप्रेमी राजा थे। जयपुर नगर को वैज्ञानिक ढंग से बसाकर तथा अनेक महल और हवेलियां बनवाकर उन्होंने जयपुर की कला को स्थायित्व प्रदान किया। जयपुर-शैली की कला में लोक-तत्त्व के स्थान पर सुसंस्कृत कोमल चित्रांकन को महत्त्व मिला तथा संस्कृत ग्रंथों और हिंदी ग्रंथों के आधार पर चित्रण-बाहुल्य पुरस्सर हुआ। मुहम्मद शाह उनका विशिष्ट दरबारी चित्रकार था, जिसने ग्रंथ-चित्रण की परंपरा में महत्त्वपूर्ण चित्र बनाये। तत्कालीन चित्रकला पर मुगल प्रभाव इतना है कि जयपुर-शैली और मुगल-शैली को अलग कर पाना कठिन है।

सवाई जयसिंह के पुत्र ईश्वरीसिंह (१७४३–१७५०) तांत्रिक थे। साहिबराम और लाला चितारा उनके समय में प्रमुख चित्रकार थे, जिन्होंने व्यक्ति-चित्र और पशु-पक्षियों की लड़ाई के अनेक चित्र बनाये। इन्होंने अलंकारों के चित्रण के स्थान पर मोती, लाल तथा लकड़ी की मणियों को चिपकाकर रीति-कालीन आलंकारिक मणि कुट्टिम की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया। रामजीदास तथा गोविंद भी इसी समय के प्रमुख चित्रकार थे। सवाई पृथ्वीसिंह (१७६७-

१७७९) के समय में हीरानंद और त्रिलोक प्रसिद्ध चित्रकार हुए। उन्होंने राजाओं के कलाकार साहिबराम की परंपरा में व्यक्ति-चित्र ही अधिक बनाये।

सवाई प्रतापसिंह (१७७९–१८०३) ने जयपुर के कलात्मक जीवन में नवीन पृष्ठ जोड़ा। काव्य और धर्म के प्रति उनकी विशेष रुचि थी। उनके समय में राधा-कृष्ण की लीलाओं, नायिका-भेद, राग-रागिनी, ऋतु-वर्णन आदि से संबंधित चित्रांकन विशेष रूप से हुआ, जिसमें राजा और रानियों के आदमकद चित्र तथा भागवत-पुराण, गीतगोविंद, दुर्गा सप्तशती, कृष्णलीला आदि के अनेक चित्र उल्लेखनीय हैं। तीन पीढ़ी के कलाकार साहिबराम के तत्कालीन चित्र भी विशेष महत्त्व के हैं। अन्य कलाकारों में जीवन, घासी, गोपाल, सालिगराम, रघुनाथ, रामसेवक, उदय आदि का नाम प्रमुख है। उपर्युक्त जयपुर की चित्रकला की मौलिक छाप महाराजा जगतसिंह (१८०३–१८१८) तक चलती रही। उनके दरबार में पद्माकर–जैसे प्रसिद्ध रीतिकालीन कवि ने 'जगद्-विनोद' की रचना कर जयपुर घराने को 'विहारी सतसई' से जोड़ दिया।
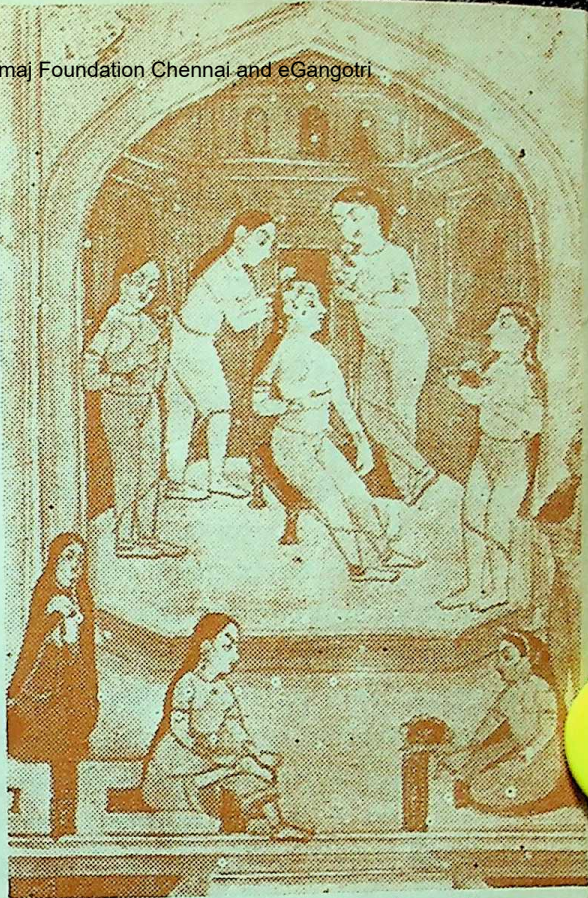
'स्नान'–जयपुर-शैली (१८ वीं शती) का एक चित्र

सवाई जगतसिंह के उपरांत जयपुर-शैली की मौलिकता अंगरेजी सभ्यता और संस्कृति के प्रभाव के कारण अधिक नहीं टिक सकी और उसमें कंपनी-शैली का प्रभाव प्रविष्ट होने लगा। महाराजा रामसिंह ने कलाओं के प्रचार-प्रसार तथा संरक्षण में महत्त्वपूर्ण योग दिया, किंतु पाश्चात्य प्रभाव एवं फोटोग्राफी से आक्रांत जयपुर-शैली सन १९०० तक

धीरे-धीरे अपनी मौलिकता खो बैठी।

जयपुर-शैली के विषय

विषय-वस्तु की दृष्टि से जयपुर-शैली में समयानुकूल विविधता मिलती है। छतरियों, महलों, बड़ी-बड़ी हवेलियों, मंदिरों आदि में निर्मित भित्ति-चित्रों में भोराकसी ढंग से बनाये गये चित्रों की सुंदरता और चमक-दमक विशेष दर्शनीय है। रामलीला, कृष्णलीला, लोक-कथाएं, शाही दरबार और होली-दशहरे की शोभा-यात्राएं, शिकार, नायिका-भेद, युद्ध आदि का चित्रण दीवारों पर सजीव हो उठा है। जयपुर नगर की एवं शेखावाटी की हवेलियों में भित्ति-चित्रण की परंपरा विशेष दर्शनीय रही है। राजाओं की छतरियों, अंबर तथा जयपुर के महलों, मोजमाबाद के महल, पुंडरीक की हवेली, बैराठ के मानसिंह उद्यान तथा जयपुर नगर की अनेक हवेलियों में जयपुर-शैली की भित्ति-चित्रण परंपरा देखी जा सकती है, जिसमें विषय-वस्तु की दृष्टि से भी वैविध्य है। मुगलों के संपर्क के कारण ग्रंथ-चित्रण की परंपरा का निर्वाह भी जयपुर-शैली में हुआ है। लघु चित्रण (मिनिएचर पेंटिंग) में भी राग-रागिनी, बारहमासा, ऋतुवर्णन, राजाओं व जागीरदारों की महफिलों, दरबार, शिकार तथा व्यक्ति-चित्रों का अंकन बहुलता से हुआ।

जयपुर-शैली की विशेषताएं

विषय-वस्तु के अतिरिक्त जयपुर-शैली की कुछ ऐसी विशेषताएं हैं, जिनके आधार पर उसकी पहचान आसान होती है। पुरुषाकृति में पगड़ी बांधे, घेरदार जामे पहने, दुपट्टे से कमर कसे हुए युवक दिखाये जाते हैं। साधारणतया सम आकृति, मोटे अधर, मांसल चिबुक, मीनाकृत नेत्र, भरा हुआ शरीर तथा कानों तक लटकी हुई जुल्फें जयपुर की विशेषता रही हैं। स्त्री-आकृति में जयपुरी सौंदर्य की आभा दर्शनीय है। गठीला मांसल शरीर, गौर वर्ण, देदीप्यमान मुख, आभूषणों से लदी बेगमों–जैसी राजसी वेशभूषा में चित्रित विभिन्न रानियां और नायिकाएं जयपुर-शैली में अंकित हुई हैं। रेखाओं का आलेखन सुस्पष्ट और साधनमय तथा चित्रों के हाशिये बेलबूटों, फूल-पत्तियों, विभिन्न पशु-पक्षियों की आकृतियों से सुसज्जित हैं। स्वर्ण के पानी का बाहुल्य, मोतियों की जड़ाई, माणिक और पन्नों की सज्जा, आलंकारिक छटा आदि जयपुर-शैली की विशेषताएं हैं। हरे रंग का अधिक प्रयोग तथा चांदी के रंग की पतली किनार, काले तथा लाल हाशिये जयपुर-शैली में देखते ही बनते हैं। रंग टिकाऊ, होते हैं।

मुगलों की परंपरा से समन्वित यह शैली कला-जगत में अपना विशेष महत्त्व रखती है। कुं. संग्रामसिंह, कार्ल खंडालवाला, रामगोपाल विजयवर्गीय, मोहनलाल गुप्त आदि कलाप्रेमियों ने इस शैली को प्रकाश में लाने का प्रयत्न किया है।

—७४ बैंक कॉलोनी, अलवर (राज.)

पंजाबी कहानी

मुंहबोला भाई

• कर्तारसिंह दुग्गल

आज तीस से ज्यादा वर्ष हो गये थे उनको ब्याहे हुए। इस बीच एक दिन के लिए भी वे एक-दूसरे से अलग नहीं रहे थे। एक रात भी ऐसी नहीं थी जब सलमा का शौहर उससे एक हाथ की दूरी पर न हो। उसकी लंबी-लंबी सांस, हौले-हौले सांस। सांसों की खुशबू। यह खुशबू फूलों की नहीं थी, लेकिन फूलों से कहीं सुहावनी। एक स्वाद-स्वाद। यह स्वाद शहद का नहीं था, लेकिन शहद से कहीं मीठा। एक गरमाहट-सी, जाड़े में कोसी-कोसी धूप की गरमाहट।

एक उम्र उसकी इस नशे-नशे में बीत गयी। नौकरीपेशा लोग, तरक्की की एक सीढ़ी, उससे अगली सीढ़ी, अगली से अगली सीढ़ी। फूलों—जैसे उनके दो बच्चे हुए। ब्याहे, बस गये। जहाज—जैसे घर में अब सलमा थी और सलमा का शौहर। और कोई भी नहीं।

और अब जावेद को दस दिन के लिए दौरे पर जाना पड़ रहा था। काम कुछ इस तरह का निकला था जहां सलमा नहीं जा सकती थी। घुरसीमात में कोई तफतीश करनी थी। इस दौरे में उसका साथ जाना ठीक भी नहीं था।

दस दिन सलमा अकेली रहेगी। सारे दिन अकेली, सारी रात अकेली। सलमा सोचती और उसे अजीब-अजीब-

सा लगता। बार-बार वह कहती, 'डर किसका ? मुझे कभी डर नहीं लगता। मैं तो रिवाल्वर भरकर अपने पास रख लूंगी। मुझे डर काहे का ?'

और सलमा सोचती, कैसे उन्होंने अपनी जिंदगी के तीस वर्ष बिता दिये थे। जब कभी वह मायके गयी, उसका शौहर भी उसके साथ हो लेता। ब्याह-शादी, खुशी, गमी, जहां कहीं भी वह जाती, परछाईं की तरह जावेद उसके साथ रहता। जितनी बार उसे अस्पताल रहना पड़ा, जब-जब उनके यहां बच्चा हुआ, उनके बच्चों का बाप साथ होता। नर्सें अंदर जच्चाखाने में उसका जिक्र करती रहतीं। किसी को कुछ ला देता, किसी को कुछ। और वे उसका बरामदे में खड़ा रहना अनदेखा कर देतीं। जावेद की नौकरी कुछ ऐसी थी कि उसे दौरे पर ज्यादा नहीं जाना पड़ता था, लेकिन जहां कहीं भी वह जाता, सलमा को साथ बांध लेता। सलमा को भी यह अच्छा लगता था। दिल्ली शहर में किसका दम नहीं घुटने लगता !

गरमियों में हर दूसरे साल, जब पहाड़ पर जाना होता तब सारा कुनबा साथ जाता।

अब जब बच्चे ब्याहे गये थे, अपने-अपने घरों में बस गये थे, सलमा को कभी-कभी एक अजीब अकेलेपन का अहसास होने लगता। जावेद तो जैसे उसका ही एक अंग बन गया हो। इतने वर्ष इकट्ठे सोते, इकट्ठे जागते, इकट्ठे खाते-पीते, इकट्ठे हंसते-खेलते, सलमा को लगता जैसे जावेद की सांसों में उसकी सांस घुल गयी हो। उनके दिलों की धड़कनें एक हो गयी थीं। कई बार जावेद के पास बैठी सलमा को लगता कि कोई हो, जिससे वह बात कर सके। एक अजीब अकेलेपन का अहसास। और उसका शौहर एक बालिश्त की दूरी पर उसके पास बैठा होता।

सलमा की यह आकांक्षा भी पिछले कुछ दिनों से पूरी हो गयी थी। उनके पड़ोस में एक मास्टरजी रहते थे। इसलामिया स्कूल में पढ़ाते थे। मास्टरजी सलमा के मुंहबोले भाई बन गये। थोड़ी बहुत शायरी करते थे। सलमा का दिल लगाये रखते। कभी अपने शेर सुनाते, कभी पराये। नौजवान आदमी थे, लेकिन यूं लगता, जैसे अपनी बीवी के साथ उनकी पटती न हो। जब फुरसत होती, सलमा के यहां आ जाते। कभी सलमा का कोई काम करते, कभी कोई। खास तौर पर बगीचे की देखभाल में, मास्टरजी की मदद सलमा को बहुत पसंद थी। मास्टरजी ने कालेज में बागबानी पढ़ी थी। फूलों और सब्जियों के बारे में उनका ज्ञान बड़ा उपयोगी था। और नहीं तो क्यारियों को पानी ही लगा देते। सलमा भी उनकी बड़ी खातिर करती। उनके बीवी, बच्चों के लिए कुछ-न-कुछ भेजती रहती।

और अब, जबकि जावेद को दस दिनों के लिए बाहर जाना था, मास्टरजी

बार-बार कहते सलमा को अकेला नहीं रहना चाहिए। इतने बड़े घर में एक अकेली औरत! यह ठीक नहीं। सलमा हंसने लगती। कहती, 'डर किसका? मुझे कभी डर नहीं लगता।'

जितनी बार सलमा बेपरवाह-सी हंसी हंसती, मास्टरजी उसके सुंदर चेहरे की तरफ देखकर अरबी में कोई कलमा पढ़ते। सलमा को अरबी का इतना ज्ञान नहीं था। डर के नाम पर हंस रही सलमा मास्टरजी को और भी अच्छी लगने लगती। वह नये जमाने की थी—गाने, नाचने और शेर सुनने की शौकीन। उसे डर काहे का? और सलमा मास्टरजी को अपनी पुरानी तसवीरें दिखाती—कहीं घोड़े की सवारी कर रही, कहीं दुनाली से निशाना बांध रही, कहीं शिकार को समेट रही, कहीं जीप चला रही।

चलने से पहले, सलमा को देखकर जब जावेद एक क्षण के लिए ठिठक-सा गया तब उसने मास्टरजी का जिक्र किया। आखिर उसका मुंहबोला भाई था। अगर कोई जरूरत पड़ी तो वह था ही। दस कदम की दूरी पर ही तो वे लोग रहते थे—मास्टरजी, मास्टरजी की बीवी और उनके चार बच्चे। पांच सालों में शायर साहब ने चार बच्चे पैदा कर लिये थे। अभी बीवी के साथ उनकी कोई खास बनती नहीं थी। बात-बात पर उसकी बुराइयां करने बैठ जाते। सलमा को किसी शौहर का अपनी बीवी को बुरा-भला

कहना अजीब-सा लगता था और वह मास्टरजी को समझाती रहती।

उधर जावेद की टैक्सी आंखों से ओझल हुई, इधर सलमा को यूं लगा, जैसे एकदम दिल बैठ गया हो। इतने में मास्टरजी उधर से गुजरे। दूध लेकर आ रहे थे। सलमा को देखकर बातें करने लगे। सलमा गेट के इस ओर, मास्टरजी उस ओर। आधा घंटा, घंटा यूं गुजर गया होगा कि सलमा ने मास्टरजी को याद दिलाया कि उनकी घरवाली दूध का इंत-जार कर रही होगी। उनके छोटे-छोटे मासूम बच्चे भी थे। ऊपर से धूप निकल आयी थी। और फिर मास्टरजी को स्कूल भी तो जाना था।

आपके रूप के अनेक चहेते...
आपकी त्वचा के अनेक दुश्मन
पॉण्ड्स वैनिशिंग क्रीम को अपना साथी बनाइए.
हवा, धूल और मौसम के तीखे प्रभाव से आपकी त्वचा की रक्षा करती है पॉण्ड्स वैनिशिंग क्रीम. आपके रूप को और भी सलोना बनाने के लिए इसमें एक खास पदार्थ ह्युमेक्टेंट मिला है जो आपकी त्वचा की नमी को सुरक्षित रखता है. तभी आपका मुखड़ा मोतीयारा दीखता है और तैलमुक्त भी.
इसे आप आदर्श पाउडर बेस के रूप में प्रयोग कर सकती हैं. घंटों-पहरों यह आपके सौंदर्य को अम्लान और मोहक बनाए रखती है. आप इसे संपूर्ण सौंदर्य प्रसाधन के रूप में भी प्रयोग कर सकती हैं.
आप तो जानती ही हैं, आपकी त्वचा को भी उतना ही प्यार-दुलार चाहिए जितना कि आपको.
पॉण्ड्स वैनिशिंग क्रीम - आदर्श पाउडर बेस
PONDS
VANISHING CREAM
चीज़ब्रो-पॉण्ड्स इन्कॉ.
(सीमित दायित्व सहित यू.एस.ए. में संस्थापित)

मास्टरजी ने सुना और बेबस-से घर की ओर चल दिये। घर की ओर जाते हुए वे एक शेर प्रायः गुनगुनाया करते थे—

हजारों साल नर्गिस अपनी बेनूरी पे रोती है।
बड़ी मुश्किल से होता है चमन में दीदावर पैदा।

सलमा ने सुना तो जैसे कोई चीज उसके दिल के किसी कोने में जा चुभी हो। सुबह की पहली किरण की तरह, उर्दू के इस शेर के अर्थ सलमा की आंखों के सामने तैरने लगे।

और फिर सलमा अपने बगीचे की देखभाल करने लगी। बगीचे में काम करते हुए सलमा पर एक वहशत-सी सवार हो जाती थी। दोपहर होने लगी कि वह थक-टूटकर कोठी के अंदर गयी। नौकर नाश्ता तैयार कर इंतजार कर रहा था। नाश्ते के बाद सलमा, नौकर की मदद से, गोल कमरे को सजाने लगी। इसी में दोपहर ढल गयी। सलमा दोपहर का खाना भी भूल गयी। थक-हारकर वह सो गयी। सोने से पहले उसने नौकर को छुट्टी दी और कोठी के दरवाजे अंदर से बंद कर लिये। थकी-हारी सलमा ऐसी सोयी कि शाम हो गयी। आंख तभी खुली जब बाहर कोई दरवाजा खटखटा रहा था। मास्टरजी थे।

मास्टरजी प्रायः शाम को आया करते थे। आज जरा जल्दी आ गये थे। "मैंने सोचा कि सलमा बी की खबर ले आऊं। कोई चीज तो नहीं चाहिए ?" कहते-कहते मास्टरजी अंदर गोल कमरे में आ बैठे। सलमा के नये ढंग से सजाये कमरे को देखकर उनकी आंखें खुली की खुली रह गयी। "इसे मैं जादूगरी कहता हूं। इसे हम शायर लोग हुस्न की जादूगरी कहते हैं। वही फरनीचर, वही कमरा और सलमा बी, तुमने इसे जन्नत बना दिया। इसे मैं तिलिस्म कहूंगा।" एक नशे में बोलते हुए मास्टरजी सामने सोफे पर जा बैठे। हर चीज की बार-बार तारीफ करने लगते। सुन-सुनकर सलमा का मुंह लाल सुर्ख हो रहा था। उसके कानों में से जैसे धुआं निकल रहा हो। और सलमा मास्टरजी के लिए चाय तैयार करने के लिए रसोई में चली गयी। रसोई में व्यस्त सलमा ने सुना, मास्टरजी गुनगुना रहे थे, जैसे कोई गजल कह रहा हो।

कोई आधा घंटे के बाद सलमा आयी, चाय के साथ उसने ताजा पकौड़े बनाये थे। चटनी फ्रिज में से निकाल ली। ढेर सारी मिठाई ला रखी। चाय पी रहे मास्टरजी चटखारे ले रहे थे। बार-बार कहते, इस तरह की चाय, इस तरह के पकौड़े, इस तरह के गोल कमरे में . . .।

"सलमा बी ! आपकी अंगुलियां एक कलाकार की अंगुलियां हैं।" सलमा को महसूस हुआ जैसे मास्टरजी आज कुछ ज्यादा ही चहक रहे हों।

उसे याद आया, भोपाल में उसकी

लेखक

एक सहेली उसे बताया करती थी, जब उसका घरवाला दौरे पर होता, तब मुंडू (नौकर) गुसलखाने में कपड़े धोते हुए, ऊंचे स्वर में फिल्मी गाने गाया करता था। हर रात सिनेमा देखने चल देता।

नहीं, इस तरह की कोई बात नहीं हो सकती। मास्टरजी मुंहबोले भाई थे।

चाय पीकर मास्टरजी चल दिये। कुछ देर से सलमा अजीब बेचैनी-सी महसूस कर रही थी। "आप चल दिये? बैठते, खाना खाकर जाते," सलमा ने मास्टरजी को रस्मी तौर पर कहा।

"नहीं मैं सिनेमा देखने जा रहा हूं। चलो आपको भी ले चलूं।"

'नहीं जी, तोबा - तोबा . . . मैं तो जावेद के बगैर" . . . और बाकी शब्द सलमा के मुंह में जैसे सूख गये हों। उसके शौहर को गये, एक दिन भी नहीं बीता था कि वह उसे इस शिद्दत से याद आ रहा था। सलमा को लगता कि जैसे वह रो देगी।

और मास्टरजी जाने के लिए उठ खड़े हुए। चलने से पहले कहने लगे, "पता नहीं आपको कैसे अकेले डर नहीं लगता! खुदा की कसम, मुझे यूं रात अकेले काटना हो तो बड़ा डर लगे। एक अकेली औरत?"

"डर काहे का? मुझे डर नहीं लगता कभी। मैं तो रिवॉल्वर भरकर साथ रखती हूं। मुझे डर काहे का?"

कुछ देर बाद नौकर आया। सलमा खाना पकाने में लग गयी। अकेली औरत, उसे कौन-सा ज्यादा खाना था। लेकिन सलमा की आदत थी खाने की मेज जरूर सजी हो। जब तक दो-चार तरह की सब्जियां-तरकारियां मेज पर न लगी हों, उसकी तसल्ली नहीं होती थी।

खाना खिलाकर, काफी पिलाकर, बरतन साफ करके नौकर चल दिया। नौकर गया और सलमा ने पिछली तरफ कोठी का दरवाजा बंद कर लिया, अंदर से चटखनी लगा ली।

खबरें कब की खत्म हो चुकी थीं। हर रोज की तरह कोई आधा घंटा सलमा गैलरी में टहलती रही। आम तौर पर वह बाहर लान में या बरामदे में टहला करती थी। आज वह सारे किवाड़ बंद करके अंदर गैलरी में टहल रही थी। रात भी कितनी अंधेरी थी। और वह इतने बड़े घर में अकेली थी।

और फिर सलमा के सोने का समय हो गया। वह जमुहाइयों पर जमुहाइयां लेने लगी। सलमा ने कपड़े बदले। हर रोज की तरह पांच-सात मिनट चेहरे पर क्रीम की मालिश की और फिर बत्ती

बुझाकर सोने के लिए लेट गयी। लेटने से पहले उसने तकिये के नीचे छूकर देख लिया। उसका छह गोलियोंवाला रिवॉल्वर ठीक अपनी जगह रखा हुआ था।

आंखें बंद करने से पहले, सलमा के मन में पता नहीं क्या आया कि हाथ बढ़ाकर उसने बत्ती फिर जला ली। और उठकर वह सब दरवाजे, खिड़कियां देखने लगी—कोई चटकनी खुली तो नहीं रह गयी थी ? एक-एक कर उसने हर दरवाजे, हर खिड़की को देखा—सारे कमरे, सारे गुसलखाने, पिछली गैलरी, और फिर निश्चित होकर वह सोने के कमरे में चली गयी। उसने बत्ती बुझा दी।

कोई दस मिनट बाद, अभी उसकी आंख नहीं लगी थी कि सलमा को खयाल आया कि अगर चटकनियां ठीक से बंद न की जाएं तो बाहर से धक्का देने पर किवाड़ खुल जाते हैं। मायके में कई बार उसने इस तरह दरवाजा खोला था। फिर उठकर उसने बत्ती जलायी और कोठी के हर दरवाजे की चटकनी को हाथ लगा-लगाकर देखने लगी कि वह ठीक तरह से बंद है या नहीं।

सलमा को लगा, जैसे उसे हलका-हलका बुखार हो। उसका शरीर एकदम जैसे गरम हो रहा था, जैसे उसे चक्कर आ रहे हों। सलमा ने सोचा कि आज उसे सोने में देर हो गयी थी, इसीलिए उसे यूं महसूस हो रहा था। वह जल्दी-जल्दी कमरे में आकर लेट गयी। उसने बत्ती बंद कर दी।

अचानक उसे ध्यान आया, सामने ड्योढ़ी के दरवाजे की चटखनी उसने देखी ही नहीं थी। शायद देखी थी, शायद नहीं देखी थी। हां, ड्योढ़ी की ओर तो वह गयी ही नहीं थी। न पहली बार, न दूसरी बार। यह कैसे हो सकता है ? उसका बुखार जैसे बढ़ रहा हो। चक्कर, अंधेरा-अंधेरा ! और अकस्मात सलमा

खतरे की जंजीर खींचते ही रेलवे चालन में एक के बाद एक भारी गड़बड़ी शुरू हो जाती है। सैकड़ों यात्रियों सहित अनेक रेलगाड़ियां रुक जाती हैं. उनके पीछे आने वाली गाड़ियों का समय भी अनियमित हो जाता है। बाद के स्टेशनों पर प्रतीक्षा करने वाले यात्रियों को भारी असुविधा का सामना करना पड़ता है।

हो सकता है कि रोकी गयी गाड़ियों में से किसी में आपत्कालीन कार्य के लिए मनुष्य और माल ले जाया जा रहा हो या पीड़ित क्षेत्रों के लिए दवाइयां तथा भोजन भेजा जा रहा हो।

आपके अविवेकपूर्ण कार्य से गाड़ियों के चलने में बाधा के कारण आवश्यक राष्ट्रीय प्रयासों में बाधा पड़ सकती है। इस लिए समझदार और उत्तरदायी बनिए। यदि आवश्यक न हो तो इस सुरक्षा उपकरण से छेड़ छाड़ न करें।

केवल आपत्ति के समय ही उपयोग कीजिये

उत्तर रेलवे

अपने पलंग से उठकर, वैसी की वैसी, अंधेरे में ड्योढ़ी की ओर चल दी। ड्योढ़ी में उसने मुख्य द्वार की चटकनी को हाथ लगाकर देखा। उसकी अंगुलियों से जैसे आग निकल रही हो। चटकनी उसे बर्फ की डली की तरह महसूस हुई। सलमा का सिर चकरा रहा था। तीसरी बार तसल्ली करते हुए कि चटकनी ठीक बंद है, सलमा ने उलटे चटकनी खोल दी। और रात के अंधेरे में, वैसी-की-वैसी बुखार में झुलस रही, वह फिर पलंग पर आ पड़ी। उसका सिर फिरकी की तरह घूम रहा था। उसे नहीं पता था कि वह क्या कर बैठी है, कहां पड़ी है; और फिर उसकी आंख लग गयी।

इधर सलमा पलंग पर आकर लेटी, उधर हवा के जोर से बाहर का दरवाजा हौले-हौले सरकने लगा। दरवाजे का एक पट आहिस्ता-आहिस्ता खुलता जा रहा था। इतने में मास्टरजी उधर से गुजरे। सिनेमा देखकर वह किसी शराबखाने में जा बैठे थे। आज पता नहीं, क्यों वह उदास-उदास थे! जैसे किसी की कोई चीज खो गयी हो। देर रात गये तक मास्टरजी शराब पीते रहे और सिगरेट पर सिगरेट फूंकते रहे। आधी रात, जब शराबखाना बंद हुआ तब यार लोगों ने उन्हें रिक्शे पर बैठा दिया। अपने घर जाने के बजाय, मास्टरजी ने रिक्शा सलमा की कोठी के पास छोड़ दिया। एकदम उन्हें खयाल आया कि सलमा अकेली थी। रिक्शे को छोड़कर वे आगे बढ़े और उनकी ऊपर की सांस ऊपर, और नीचे की सांस नीचे रह गयी। सामने सलमा का दरवाजा खुला था। यह कैसे हो सकता है? नहीं हो सकता! लेकिन दरवाजा तो खुला था। मास्टरजी आगे बढ़े तो बाहर बगीचे की आड़ में से एक बिल्ली छलांग लगाकर ड्योढ़ी के अंदर चली गयी। शराब में बदमस्त, लड़खड़ाते कदम, मास्टरजी को लगा, जैसे खुला दरवाजा उनकी राह देख रहा हो। और वह हौले-हौले कदम कोठी के अंदर जा घुसे। ड्योढ़ी, गोल कमरा, सोने का एक कमरा, और सोने का दूसरा कमरा जिसमें सामने सलमा सोयी पड़ी थी। एक मरी-जैसी औरत!

मास्टरजी ने परदा हटाकर अंदर झांका ही था कि अकस्मात सलमा चीख मार कर उठी और तकिये के नीचे से रिवाल्वर निकाल, छहों की छहों गोलियां उसने झोंक दीं।

मास्टरजी जहां थे, वहीं-के-वहीं, लहू की तलैया में ढेर हो गये।

—पी. ७, हौजखास एनक्लेव,
नयी दिल्ली–१६

पत्नी (अध्ययनशील पति से), "काश, मैं किताब होती और हमेशा तुम्हारी आंखों के सामने रहती!"

पति, "काश, तुम डायरी होतीं ताकि मैं हर वर्ष बदल सकता!"

पौधों की फिजूलखर्ची

पौधे अकसर बहुत फिचूलखर्च होते हैं। जरूरत से ज्यादा पानी खर्च करने का उनका स्वभाव बन गया है। अब जरा सोचिए कि उन देशों की क्या स्थिति होगी जहां बहुत कम वर्षा होती है! अतः इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि संसार के अधिक उर्वर भू-भाग वही हैं जहां समय-समय पर समुचित वर्षा होती है। ऐसी स्थिति न होने पर सिंचाई के स्थायी साधनों

विज्ञान नयी उपलब्धियां

का विकास करना होता है। लेकिन सिंचाई के ये साधन सदैव ही विश्वसनीय नहीं हो सकते।

फिर क्या उपाय है? एकमात्र उपाय यह है कि पौधों की फिजूलखर्ची रोकी जाए। प्रकाश-संश्लेषण की प्रक्रिया में कार्बन डाइऑक्साइड का कार्बोहाइड्रेट में रासायनिक परिवर्तन हो जाता है। इससे पौधों के विकास के लिए आवश्यक तत्त्व मिल जाते हैं। वास्तव में, इसी प्रक्रिया पर धरती का सारा जीवन आधारित होता है। कार्बोहाइड्रेट तथा अन्य जैव-यौगिक प्रधानतया प्रस्तुत ऊर्जा को संग्रह करने के साधन हैं। धरती पर होनेवाले पौधे सूर्यताप को सोखकर एवं क्लोरोफिल तथा अन्य रंगद्रव्यों का उपयोग करके यह ऊर्जा प्राप्त करते हैं। इन पौधों की चौड़ी पत्तियां आवश्यकतानुसार सूर्य का विकिरण एकत्र करती हैं।

कार्बन डाइऑक्साइड प्राप्त करना बड़ी समस्या है। वायुमंडल में इसका अनुपात १०,००० में तीन भाग होता है, अतः इसकी प्राप्ति के लिए पौधे को बड़ा क्षेत्र मिलना चाहिए। बहुत-से छोटे कोष जिनकी सतहें पत्ती के 'आंतरिक वायुमंडल' से संपर्क बनाये रखती हैं, इस क्रिया को संपन्न करती हैं। कोषों की सतह में मौजूद नमी में कार्बन डाइऑक्साइड घुल जाती है लेकिन साथ ही जल वायुमंडल में उड़ जाता है। पत्तियों से जल का लोप हो जाना 'वाष्पोत्सर्जन' कहलाता है। इसे एक ऐसी बुराई माना जाता है जो जरूरी है क्योंकि पौधे सरलतापूर्वक वायुमंडल में से बिना जल खोये कार्बन डाइऑक्साइड प्राप्त नहीं कर सकते।

'वाष्पोत्सर्जन' द्वारा गायब हुआ जल जड़ों द्वारा खींचकर पूरा किया जाता है, पर प्रायः यह काम भारी पड़ता है। फसल देनेवाले सारे पौधों की पत्तियां एक ऐसे आवरण से ढकी होती हैं जो जल-वाष्प तथा कार्बन डाइऑक्साइड से करीब-करीब अभेद्य होता है। इस आवरण में

बहुत-से छोटे-छोट रंध्र होते हैं और उन्हें 'स्टोमेटा' कहा जाता है। पत्ती के प्रत्येक वर्ग-सेंटीमीटर पर ५,००० और २०,००० के बीच ऐसे रंध्र होते हैं।

मतलब यह कि इस प्रक्रिया में ऐसे परिवर्तन करने के प्रयोग चल रहे हैं जिससे जल-अभाववाले भू-भाग पौधों की फिजूल-खर्ची रोक सकें। 'स्टोमेटा' की गतिविधियों को नियंत्रित किया जा रहा है। मक्का, कपास, जौ और घास-जैसी कई फसलों पर इन प्रयोगों द्वारा आशाप्रद सफलता मिली है। कनेक्टीकट में लाल चीड़ के ५० फुट ऊंचे पेड़ों पर चार माह तक प्रयोग किये गये हैं।

फलस्वरूप, प्रति एकड़ २०,००० गैलन जल की बचत हुई। बहराल, प्रयोग आगे भी चल रहे हैं।

हवा में उड़नेवाले शत्रु

कीटाणु-नाशक दवाओं के कीटाणु प्रति-रोधी हो जाते हैं अतः वैज्ञानिक ऐसे किसी पदार्थ की खोज में थे जिससे फसलों को हानि पहुंचानेवाले कीटाणु मारे जा सकें। दूसरी बात यह है कि नाशि-कीट-मार (पेस्टीसाइड) स्वयं में प्रदूषक होते हैं।

टिड्डियों का समूह विनाश-यात्रा पर

डॉ. ग्लीन शेफर (ब्रिटेन) ने एक क्रांतिकारी उपाय ढूंढ़ा है। फसलों पर हमला करने के लिए आते टिड्डी-दल पर हवा में ऊंचे-से-ऊंचे (संभावित) स्थान से दवा छिड़की जाएगी। फसलों पर बैठे टिड्डी-दल पर नाशि-कीटमार छिड़कने से फसलें दूषित होने का डर है। रडार की सहायता से टिड्डी-दल की

सही स्थिति का पता लगाकर विमान से नाशि-कीटमार छिड़का जा सकता है। यह उपाय वैसे तो बहुत साधारण लगता है पर इस काम को मौजूदा टिड्डी-दल का सामना करने के बाद ही खत्म नहीं समझ लिया जाता। रडार की सहायता से भागती टिड्डियों का पीछा किया जाता है। इस नयी विधि से जीवशास्त्रियों को इस कीट का वैज्ञानिक अध्ययन करने में भी सहायता मिलेगी।

कुपोषण और मस्तिष्क

शरीर का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भाग मस्तिष्क है। इसके निर्देश पर ही सारी क्रियाएं संचालित होती हैं। खतरे से बचना हो, पढ़ने के लिए शेल्फ से कोई पुस्तक उठाना हो, या फिर मुंह तक ग्रास ले जाना हो, संबंधित अंगों तक निर्देश मस्तिष्क ही भेजता है। इसलिए मस्तिष्क की सुरक्षा का ध्यान रखना चाहिए।

वर्तमान स्थिति बड़ी विषम है। प्रायः तीस करोड़ बच्चे इस समय संसार में मस्तिष्क-विकार से पीड़ित हैं। कुपोषण के कारण उनके मस्तिष्क को इतनी हानि पहुंच चुकी है कि उनका स्वस्थ होना असंभव है। मस्तिष्क पर कुपोषण के घातक प्रभाव को अब तक ठीक ढंग से आंका नहीं गया था। आरंभिक दो वर्ष में बच्चे के मस्तिष्क पर पड़नेवाले अल्प पोषण के संबंध में अभी 'मैनचेस्टर मेडीकल स्कूल' (ब्रिटेन) ने अध्ययन किया है। मूढ़ता, अर्धपरिपक्व बुद्धि और पागलपनभरा व्यवहार—ये सब कुपोषण के परिणाम हैं। चूहों तथा बच्चों पर इस संबंध में किये गये प्रयोगों का यही निष्कर्ष निकला।

मस्तिष्क का कई विशेष अवस्थाओं में विकास होता है। चर्चित शोध से पूर्व यह जानकारी नहीं थी कि मानव-मस्तिष्क का किन-किन अवस्थाओं में विकास होता है। दस सप्ताह के भ्रूण से लेकर जन्म बाद सात वर्ष तक के १०० से अधिक मानव-मस्तिष्कों की जांच करके शोधकर्ता डॉबिंग और सैंड्स ने स्थिति स्पष्ट की है। स्नायविक कोषों की संवृद्धि तब शुरू हो जाती है जब भ्रूण दस सप्ताह का होता है और उसकी वय बीस सप्ताह होते-होते यह संवृद्धि समाप्तप्राय हो जाती है। पहले समझा जाता था कि यह अवस्था गर्भाधान की अंतिम तिमाही में आती है।

एक बात विशेष है। यद्यपि परिमाण की दृष्टि से कुपोषण जन्य कुप्रभावों से मस्तिष्क की कोष-संख्या पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ता, तथापि आभ्यंतरिक चेता-कोशा की वृद्धि (चेता-कोशा उन कसे तारों की तरह हैं जिन पर संदेशों का संप्रेषण होता है) पर अवश्य विपरीत प्रभाव पड़ता है। जीवन के प्रथम दो वर्षों में ऐसी आशंका अधिक होती है, अतः उन पर प्रभाव पड़ सकता है। ●

दस वर्ष पुराने अपराधी का आत्मसमर्पण

• उपकार चोपड़ा

पुलिस को आये दिन ऐसे अपराधियों का सामना करना पड़ता है कि अपराधी पुलिस की आंखों में धूल झोंककर चंगुल से बच निकलता है और पुलिस ढूंढ़ती रहती है। साल, दो साल के अंदर पुलिस उसे पकड़ लेती है। इस तरह की घटनाएं केवल हमारे देश में ही नहीं होती हैं, अपितु विदेशों में भी होती हैं।

अमरीका के अपराध-इतिहास में ऐसी पहली घटना थी कि अपराधी पुलिस के चंगुल से भाग निकला और दस वर्ष तक 'फेडरल ब्यूरो ऑव इन्वेस्टीगेशन' उसे ढूंढ़ता रहा। उसका नाम ब्यूरो की उन दस अपराधियों की सूची में था जिनको तुरंत ढूंढ़ा जाना था। प्रतिदिन समाचार-पत्रों तथा टेलीविजन आदि पर उसके चित्र के साथ विज्ञापन दिया जाता। दस वर्ष तक छिपे रहने के बाद पिछले वर्ष उसने यह कहकर आत्मसमर्पण कर दिया, "सज्जनो, 'फ्लोरिडा फाक्स' अब और नहीं भागेगा।"

बहुमुखी अपराध

उसने स्वयं ही अपना नाम 'फ्लोरिडा फाक्स' रखा था। उसका वास्तविक नाम जॉन विलियम क्लाउसर है। कभी क्लाउसर आरलेंडो (फ्लोरिडा) के एक पुलिस-स्टेशन पर डिटेक्टिव सारजेंट के पद पर काम करता था। उसने इस

पुलिस की नजरों से बचता क्लाउसर या फ्लोरिडा फाक्स अंततः हथकड़ियों में
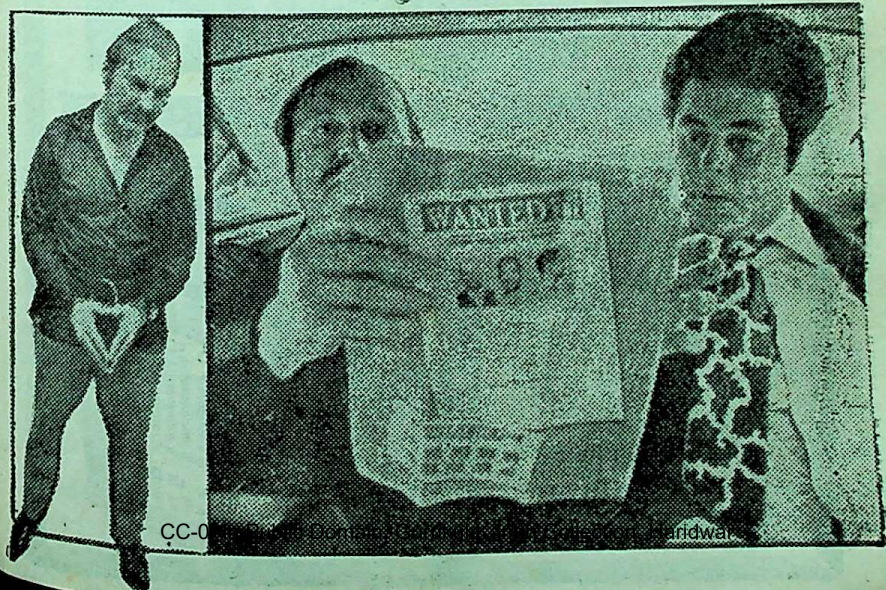
पद से उस समय त्याग-पत्र दिया जब उच्च अधिकारियों ने यह जानने के लिए दबाब डाला कि उसकी एक से अधिक पत्नियां क्यों हैं। त्याग-पत्र देने के साथ ही उसकी बहुमुखी अपराधी जीवन-चर्या का प्रारंभ हुआ। त्याग-पत्र देने के कुछ ही दिनों बाद वह एक सशस्त्र-डकैती के अभियोग में पकड़कर पुलिस-स्टेशन लाया गया। न्यायालय में उसे ३० वर्ष के कठोर कारावास की सजा सुनायी गयी। क्लाउसर आखिर तक चिल्लाता रहा कि वह इस अपराध में सम्मिलित नहीं था। फिर भी उसे जेल भेज दिया गया। वहां भी वह कानून से लड़ने के लिए किताबों का अध्ययन करता रहा। दो वर्ष के बाद, उसने अपना मुकदमा स्वयं लड़ा और मुकदमा जीत भी गया।

कुछ दिन की आजादी

जेल से मिली स्वतंत्रता कुछ ही दिनों की थी। पुलिस ने तीन और अपराधों के जुर्म में उसे पकड़ लिया। उसने बिना अदालत में पेश हुए दो अपराधों से बचने का इंतजाम कर लिया। क्लाउसर ने मन-ही-मन निश्चय कर लिया कि वह भाग्य के भरोसे नहीं रहेगा। वह अपने ऊपर काले जंगल के जरमन देव 'वोल्काम' के चढ़ने का ढोंग करने लगा। वह बिलकुल पागल-सा बन गया। उसे पागलखाने भेज दिया गया, लेकिन लगभग पचास दिनों के बाद ही वह फ्लोरिडा की दल-

दल से भाग निकला।

उसकी खोज आरंभ हो गयी। यह कहा गया कि उसने किसी की कार चुरायी और अपने तीन साथियों के साथ भाग गया। "हमने अपनी कार जार्जिया के पर्वत पर रोकी," क्लाउसर का कहना था, "मैंने जार्जिया की मिट्टी हाथ में ली और आकाश की ओर देखकर प्रार्थना करने लगा। मैंने भगवान से दस वर्ष का समय मांगा जिसमें मैं देख सकूं कि बिना चोरी किये किस प्रकार जीवित रहा जा सकता है। यही मेरी इच्छा थी।" पुलिस के कुत्ते फ्लोरिडा फाक्स की गंध सूंघते-सूंघते उसे ढूंढ़ते हुए इधर-उधर घूमने लगे। परंतु असफल रहे।

फ्लोरिडा फाक्स उर्फ क्लाउसर के निकटतम मित्र भी यह नहीं जानते थे कि वह बहुत बड़ा अपराधी है। एक बार की बात है। क्लाउसर अपने दो साथियों के साथ हवाई में रह रहा था। रविवार के दिन सवेरे जब वह सोकर उठा, उसने देखा कि उसके साथी नाश्ता कर रहे हैं और उनके हाथ में समाचार-पत्र का रविवासरीय संस्करण है। अखबार में खोजे जानेवाले दस अपराधियों की कहानी प्रकाशित की गयी थी। उसके साथियों ने जैसे ही उस पृष्ठ को खोला, क्लाउसर ने तुरंत उठकर उनको अखबार पढ़ने से रोक दिया। उसके साथियों ने हंसते हुए कहा, "तुम्हें परेशान होने की जरूरत नहीं हैं। तुम्हारा नाम इस सूची में नहीं है।" उसके साथी गलत सोच रहे थे। क्लाउसर की तसवीर भी उस अखबार में छपी थी। उस समय तक वह पुलिस की नजरों से छिपा रहनेवाला पुराना अपराधी हो चुका था।

समाज का सम्मानित सदस्य

चार साल इधर-उधर घूमने के बाद क्लाउसर डेनिस रे सिमॉन्स बन गया। उसने सामाजिक सुरक्षा कार्ड भी बनवा लिया और बैंक में खाता भी खुलवा लिया। उसने एक और शादी कर ली। यह उसकी आखिरी शादी थी। चार पत्नियों में से दूसरी पत्नी को अपने पास रखा। अब तो वह समाज का सम्मानित स्तंभ बन चुका था—वह अपंग बच्चों की सहायता करनेवाली संस्था 'ईगल्स' का सदस्य बन गया। उसने खेल भी खेलने शुरू कर दिये। उसने कई स्थानीय गॉल्फ चैंपियनशिप भी जीती थीं।

अब तो उसने सैन फ्रांसिस्को (कैलीफोर्निया) के 'अमेरिकन केन कारपोरेशन' में नौकरी भी कर ली थी। वह वहां की 'शीट मेटल' कर्मचारियों की यूनियन का सदस्य भी बन गया। तात्पर्य यह कि क्लाउसर उर्फ फ्लोरिडा फाक्स एक तरह से मर चुका था।

फिर वही पुराना धंधा

८ जून, १९७४ को डेनिस रे सिमॉन्स भी समाप्त हो गया, क्योंकि पुलिस ने उसे मारपीट करने के अपराध में गलती से पकड़ लिया। हालांकि पुलिस ने कुछ

बातें करने के बाद उसे छोड़ दिया, चलते-चलते पुलिस ने उसके 'फिंगरप्रिंट्स' ले लिये। क्लाउसर पुलिस में काम कर चुका था, इसलिए जानता था कि अंगुलियों के निशान की सहायता से वह पकड़ा जा सकता है। डेनिस रे सिमॉन्स पुलिस-स्टेशन से बाहर निकलते ही फिर क्लाउसर बन गया। फिर वही पुराना धंधा . . .

क्लाउसर दस वर्षों में बहुत से अपराधों के आरोप में पकड़ा भी गया। एक बार तो वह फेडरल ब्यूरो ऑव इन्वेस्टीगेशन के हाथों में भी आ गया था, लेकिन उनकी नजरों से भाग निकला। उसका इस तरह बिना किसी लड़ाई-झगड़े के भाग निकलना अपराधियों के इतिहास में अपना अलग ही उदाहरण था। इस घटना से एक लेखक डेविड फिशर को 'द मोस्ट वांटेड मैन इन अमेरिका' नामक पुस्तक लिखने की प्रेरणा मिली थी।

लेखक से संपर्क

क्लाउसर ने निश्चय किया कि अब वह पुलिस से और नहीं छिपेगा और 'किलर' नामक पुस्तक के लेखक डेविड फिशर को किताब लिखने में सहायता करेगा। क्लाउसर फिशर से मिला। फिशर ने उससे अपनी अगली किताब के लिए पुलिस की नजरों से बच निकलनेवाले रोमांचकारी संस्मरणों पर लंबी बातचीत की। क्लाउसर ने उसे बताया कि फेडरल ब्यूरो के वारंट की अवधि अब समाप्त हो चुकी है, किंतु अभी उस पर पुराने फ्लोरिडा के पुलिस-स्टेशन के '६४ के अभियोग बाकी हैं।

२१ अगस्त, १९७४ को फिशर ने न्यूयार्क के एक प्रसिद्ध वकील को मुकदमा लड़ने के लिए निश्चित कर दिया। उस समय लगभग २४ रिपोर्टर और प्रेस-फोटोग्राफर समाचार एकत्रित करने और फोटो लेने आये थे। क्लाउसर ने उनको बताया, "शायद मेरे बच्चों को मेरी जरूरत है। अपनी पहली पत्नी को देखे मुझे दस वर्ष हो चुके हैं। मेरे पुत्र अब १४ और १५ साल के हैं।"

अंत में क्लाउसर ने कहा, "मैं किसी भी अपराध में दोषी नहीं हूं। परंतु अब 'फ्लोरिडा फाक्स' और नहीं भागेगा।"

—४/१७–१८, बी. एस. ए. एक्सटेंशन,
दिल्ली-९

मेहताजी ने पार्टी दी। उसमें अधिकतर प्रोफेसर और वकील थे। एक व्यक्ति ने मेहताजी से पूछा, "आपके खयाल में कितने आदमी आये हुए हैं?"

"चार या पांच।"

"जी! कम-से-कम बीसं तो मैं ही गिन सकता हूं!"

"आदमी तो इतने ही हैं, बाकी तो प्रोफेसर और वकील हैं भैया," मेहताजी ने बात साफ की।

एक सफल व्यक्तित्व की क्रियाशीलता

● रामचंद्र तिवारी

व्यक्ति का व्यक्तित्व उसकी सफलता-विफलता की कहानी अनकहे, अनजाने, अनचाहे कहता रहता है। पंडित कमलापति त्रिपाठी के व्यक्तित्व की भव्यता और गरिमा प्रथम दर्शन पर ही उनके विषय में बहुत कुछ कह जाती है—निर्विकार सहजता, सुकोमल दृढ़ता, निर्णय की अडिगता, चरित्र की उदात्तता, हर स्थिति में समभाव-वृत्ति आदि। वार्त्तालाप आरंभ होने पर इनकी स्पष्टवादिता, विद्वता और दूसरे पक्ष की बात धैर्यपूर्वक सुनकर चंद शब्दों में अपने मंतव्य की अभिव्यक्ति आदि गुण सहज ही झलक जाते हैं। व्यक्तित्व की इन विशेषताओं ने ही इन्हें जीवन के हर क्षेत्र में सफल बनाया है। जो एकबार इनके सान्निध्य में आया, सदा के लिए इनका हो जाता है।

उत्तरप्रदेश में कांग्रेस-संगठन तथा राज्य सरकार का दशकों तक कर्णधार रहने के बाद 'बाबू' को (घर में सभी श्रद्धापूर्वक पंडितजी को 'बाबू' ही कहते हैं) जब भारत सरकार में नौवहन एवं परिवहन-मंत्रालय का कार्य-भार सौंपा गया तब कुछ समय के उपरांत ही इन्होंने दिल्ली की जीर्ण परिवहन-व्यवस्था में आमूल परिवर्तन कर दिया। बंदरगाह

काशी-विश्वनाथ एक्सप्रेस का उद्घाटन करते हुए रेलमंत्री श्री कमलापति त्रिपाठी
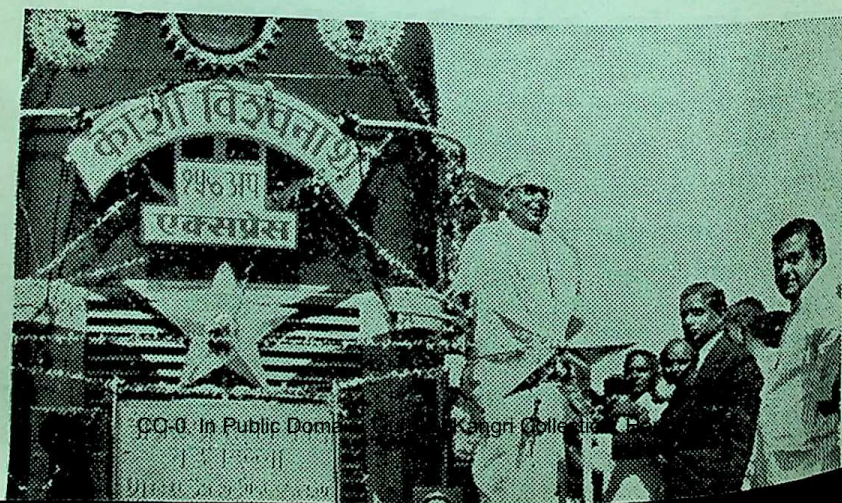
एवं गोदी-कर्मचारियों की हड़ताल को चार दिन के अंदर सद्भाव एवं सौमनस्यता के वातावरण में समाप्त कराना पंडितजी की ही व्यवहारकुशलता का परिणाम था।

रेल-कर्मचारियों का मन जीता

उन दिनों रेलों पर प्रशासन-कर्मचारी संबंध सुखद नहीं थे। मई, '७४ की रेल-हड़ताल टूट तो गयी थी, लेकिन उसके बाद मनों में असंतोष तथा कसक शेष थी। इस स्थिति को संतोषजनक मोड़ देने की आवश्यक सक्षमता देखकर ही संभवत: प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने पंडितजी को रेल-मंत्रालय का कार्य-भार सौंपा। ११ फरवरी, १९७५ को रेल-मंत्री बनने के बाद त्रिपाठीजी ने सबसे पहले रेल-कर्मचारियों की ओर ध्यान दिया। हड़ताल में भाग लेनेवालों के सेवा-भंग को उन्होंने उदारतापूर्वक क्षमा कर दिया।

श्री कमलापति त्रिपाठी
जिनका हिंदी-प्रेम प्रसिद्ध है

जिन लोगों पर हिंसा, तोड़-फोड़ या डराने-धमकाने के आरोप थे, उनका सेवा-भंग माफ नहीं किया गया, लेकिन उनके साथ भी नरम नीति बरती गयी। रेल-हड़ताल में बरखास्त किये गये १६,८००

वातानुकूलित शयनयान

आदमियों में से उन्हीं लोगों को वापस नहीं लिया गया जिनके विरुद्ध हिंसा या तोड़-फोड़ के आरोप सिद्ध हो गये या जो अदालतों में दंडित हो गये। अदालतों में चल रहे १,३०० मुकदमों में से पंडितजी ने ८०० मुकदमे वापस लेने के तुरंत निर्देश दे दिये। इसी प्रकार रेल-हड़ताल में निकाले गये २१ हजार नैमित्तिक श्रमिकों में से जिन लोगों (करीब ८,९ हजार) को नौकरी पर नहीं लिया गया था, उनको भी यथासंभव लेने के लिए आदेश दिये। इन बातों से इन्होंने रेल-कर्मचारियों का मन सहज ही जीत लिया।

कर्मचारियों का सद्भाव अर्जित करने के लिए पंडितजी ने कर्मचारी हित-निधि में प्रति व्यक्ति साढ़े चार रुपये के स्थान पर नौ रुपये की व्यवस्था की और उनकी अन्य कठिनाइयों पर भी सहानुभूतिपूर्वक विचार करने के निर्देश दिये। इन्होंने अधिकारियों को भी परामर्श दिया कि वे कर्मचारियों के प्रति स्नेह-सद्भाव के साथ व्यवहार करें। रेलों की क्षमता बढ़ाने के लिए कर्मचारियों में रेलों के प्रति निष्ठा-भाव जाग्रत होना नितांत आवश्यक है। कर्मचारियों के सामने उज्ज्वल भविष्य की किरण दिखायी देने लगी है क्योंकि त्रिपाठीजी ने तीसरी और चौथी श्रेणी के कर्मचारियों को पद-वृद्धि के अवसर देनेवाली विस्तृत योजना वित्त-मंत्रालय की स्वीकृति के लिए भेजी है। इस प्रकार कर्मचारियों का सद्भाव और निष्ठा प्राप्त करने में त्रिपाठीजी को अद्भुत सफलता प्राप्त हुई है।

जनता के प्रति दायित्व

राजनेता के रूप में लंबे जन-जीवन के अनुभव से पंडितजी जानते हैं कि रेलों का राष्ट्र के जीवन से कितना गहरा संबंध है। देश के दो-तिहाई यात्री रेलों से चलते हैं (जिनकी संख्या प्रतिदिन करीब ७५ लाख होती है) और तीन-चौथाई माल-यातायात (प्रति-दिन करीब साढ़े पांच लाख मी. टन) रेलों से होता है। यदि रेलें एक दिन न चलें, तो सारे देश का जन-जीवन गड़बड़ाने लगता है। देश के सात हजार से अधिक स्टेशनों से गुजरनेवाली ५,८६० यात्री-गाड़ियों में गरीब मजदूर, किसान, पत्रकार, व्यापारी, उद्योगपति, सरकारी अफसर सभी चलते हैं। रेलों से प्रति वर्ष चलनेवाले करीब २७० करोड़ यात्रियों में से ९० प्रतिशत से भी अधिक यात्री दूसरे दर्जे में चलनेवाले होते हैं, इसलिए पंडितजी ने कहा है कि रेलों को सबसे पहले अपने उपयोगकर्ताओं की आवश्यकताओं की ओर ध्यान लेना चाहिए।

सामान्य जनता की स्थिति को समझते हुए इन्होंने सबसे पहला निर्णय तो यह किया कि रेलों के किरायों में कोई वृद्धि न की जाए। माल-भाड़े में मामूली-सा हेर-फेर ही किया। इसके अतिरिक्त रेल-उपभोक्ताओं की सुविधाओं की ओर भरपूर ध्यान देना आरंभ किया।

ममता की कसौटी पर खरा डालडा

शुद्ध स्वादिष्ट भोजन के लिए

क्योंकि डालडा में शुद्धता सीलबंद है. डालडा इस्तेमाल में आसान है—तेलों की तरह बहने, छलकने का नुकसान नहीं.

डालडा वनस्पति में पके खाने सचमुच बहुत स्वादिष्ट होते हैं. शुद्ध डालडा विटामिनों से युक्त है और पौष्टिक भी. इसीलिए तो आपकी ममता को इस पर पूरा विश्वास है.

डालडा

डालडा—३० वर्षों से भी अधिक समय से विश्वसनीय

लिंटास-DLD. 2-77 HI

हिंदुस्तान लीवर का एक उत्कृष्ट उत्पादन

समय की पाबंदी

गाड़ियां ठीक समय से चलें, इस संबंध में इन्होंने सर्वाधिक रुचि ली। शुरू में प्रमुख पचास गाड़ियों की रिपोर्ट मंगानी शुरू की और अब सौ गाड़ियों की रिपोर्ट स्वयं देखते हैं कि ये गाड़ियां समय से चलीं या नहीं। इस काम के लिए रेल-मंत्रालय में एक विशेष कक्ष स्थापित कराया गया है और हर क्षेत्रीय रेलवे और हर रेलवे के हर मंडल में भी ऐसे ही कक्ष खुलवाये गये हैं, जो समय की पाबंदी पर चौबीसों घंटे नजर रखते हैं।

इसके अच्छे परिणाम निकले हैं। जून में जहां ६९.६ प्रतिशत गाड़ियां समय की पाबंद थी वहां जुलाई के तीसरे सप्ताह में ९० प्रतिशत गाड़ियां समय से चलने लगीं। यदि रेलवे के किसी दोष या त्रुटि के कारण व्याघात आता है तब उस पर फौरन कार्रवाई की जाती है और दोषी को दंडित किया जाता है।

रेलों की समय की पाबंदी को बरकरार रखने में सबसे बड़ी बाधा खतरे की जंजीर अकारण खींचनेवालों से उपस्थित रही है। जब त्रिपाठीजी ने देखा कि १९७४ में ५,७६,८४० बार जंजीर खींचने की घटनाओं में से २,८५,२१४ मामलों में खतरे की जंजीर का अनुचित प्रयोग किया गया और यह पता भी नहीं चला कि ऐसा करनेवाले कौन हैं, तब उन्होंने इसके लिए विशेष दस्ते तैनात किये जो खतरे की जंजीर अकारण खींचनेवालों को पकड़ते हैं।

यात्री-सुविधाओं में वृद्धि

रेलों के उपयोग करनेवालों को अधिक से अधिक सुविधाएं मिलें, इसका ध्यान त्रिपाठीजी को सदैव रहा है। दूसरे दर्जे के डब्बों में पंखे, पीने का पानी; प्रतीक्षालयों, विश्रामालयों खानपान-व्यवस्था आदि की जो सुविधाएं रेलों पर पहले से चली आ रही हैं, वे ठीक-ठीक हालत में रहें, इस पर तो आप जोर देते ही हैं; साथ में अन्य नयी सुविधाएं प्रदान करने के लिए भी उत्सुक रहे हैं।

जनता की लंबी अरसे से चली आ रही मांग पूरी करते हुए इन्होंने वाराणसी और दिल्ली के बीच एक सीधी एक्सप्रेस गाड़ी चलवायी। वस्तुतः त्रिपाठीजी चाहते हैं कि सभी धार्मिक-सांस्कृतिक केंद्रों को देश के प्रमुख नगरों से जोड़ा जाए। इसी दृष्टि से सिकंदराबाद और तिरुपति एवं बंगलूर के बीच एक अन्य एक्सप्रेस भी चलायी गयी है। इनके स्पष्ट आदेश हैं कि यदि भीड़ अधिक हो तो गाड़ियों में यथासंभव अतिरिक्त डब्बे लगाये जाएं।

त्रिपाठीजी ने दूसरे दर्जे का दो-टीयर का वातानुकूलित शयनयान चलाने का परीक्षण भी आरंभ किया जिससे यात्रियों को कम खर्चे में ही वातानुकूल-यात्रा का सुख मिल सके। त्रिपाठीजी ने व्यवस्था की है कि कोई भी व्यक्ति किसी भी गाड़ी से एक वर्ष पहले से आरक्षण करा सकता है।

रेलों में चोरियां, डकैती या अन्य अपराधों के कारण यात्री त्रस्त होते हैं।

तात्कालिक उपाय के तौर पर रात में चलनेवाली प्रमुख गाड़ियों पर सशस्त्र रक्षक भेजने की व्यवस्था की गयी है। महिला यात्रियों की सुरक्षा के लिए रेलवे-सुरक्षा-दल में एक महिला-स्कंध भी स्थापित किया जा रहा है।

आर्थिक स्थिति में सुधार के प्रयास

रेल-मंत्री के रूप में पंडितजी ने रेलों की वित्तीय स्थिति में भी सुधार करने का प्रयास किया है। जब किराये नहीं बढ़ाये गये तब विगत आठ-दस वर्षों से घाटे में चल रही रेलों की स्थिति सुधारने के लिए अन्य उपाय करना आवश्यक था। अतः एक ओर तो रेलों में अनुशासन बढ़ाकर क्षमता बढ़ाने का अभियान चलाया और दूसरी ओर उन क्षेत्रों की ओर ध्यान दिया जिनसे रेलों की आमदनी मारी जाती थी।

रेलवे-बजट से निबटते ही त्रिपाठी-जी ने इस ओर ध्यान दिया। इन्होंने पाया कि बेटिकट यात्रा से रेलों को मोटे तौर पर २०-२५ करोड़ रुपये की प्रतिवर्ष हानि हो रही है, अतः बेटिकट यात्रा रोकने के लिए जबरदस्त अभियान शुरू कराया, जिसमें रेल-राज्यमंत्री, रेल-उपमंत्री तथा उच्च रेलवे-अधिकारी रास्ते में गाड़ियां रोककर छापा मारते हैं। फलस्वरूप तेजी से टिकटों की बिक्री बढ़ी है।

चोरियों आदि के कारण रेलों को प्रति-वर्ष करीब १३ करोड़ रुपये हरजाने के रूप में अदा करने होते हैं। चोरियों के विरुद्ध तीव्र अभियान शुरू किया गया है।

हिंदी-प्रेम

त्रिपाठीजी अपने सार्वजनिक जीवन में आरंभ से ही हिंदी से जुड़े रहे हैं। संस्कृत, हिंदी के प्रकांड विद्वान होने के साथ-साथ इन्होंने सुदीर्घकाल तक 'आज', 'संसार' सरीखे श्रेष्ठ पत्रों का संपादन किया है। इनकी मान्यता है कि रेलवे-सरीखे विभाग में, यदि हिंदी का व्यापक प्रयोग आरंभ हो जाता है, तो देश में हिंदी को अपना गौरवपूर्ण स्थान मिलने में बड़ी सुविधा होगी।

इस संबंध में त्रिपाठीजी ने अन्य अधिकारियों से बातचीत, मीटिंगों में भाषण आदि में हिंदी का सतत प्रयोग करना आरंभ किया। रेलों पर आने-वाली पीढ़ी हिंदी पढ़ी-लिखी आये, अतः इन्होंने रेलवे-सेवा आयोगों में भरती के माध्यम के रूप में हिंदी लागू करने के लिए कदम उठाये हैं। पंडितजी हिंदी का विस्तार पूरे स्नेह एवं सद्भाव के वातावरण में चाहते हैं।

सब मिलाकर त्रिपाठीजी ने रेलों में एक ऐसा आस्था एवं निष्ठा-भाव भर दिया है कि सभी संबद्ध व्यक्ति श्रेष्ठ-तम कार्य करके दिखाने को उत्सुक हैं। रेल-मंत्री के रूप में पंडितजी की यह बहुत बड़ी सफलता है।

—३१३/९०, तुलसीनगर, समीप जखीरा, दिल्ली

सोवियत रंगमंच जनमानस के आकर्षण-केंद्र

● उदयनारायण सिंह

किसी भी देश के राजनीतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अभ्युत्थान में वहां के रंगमंचों की विशिष्ट भूमिका रही है। हमारे देश में भी रंगमंच की एक गौरवशाली परंपरा है और इसने हमारे देश की स्वाधीनता की लड़ाई में महत्त्वपूर्ण योग दिया है। भारतीय रंगमंच के इतिहास में एक ऐसा भी समय आया था जबकि देश के जनमानस के आकर्षण का वह केंद्रबिंदु था और जनता इससे बराबर प्रेरणा लिया करती थी।

चलचित्र के विकास के बावजूद सोवियत संघ में वर्तमान समय में रंगमंच जितने लोकप्रिय हैं उतने शायद दुनिया के किसी और देश में नहीं। इस समय सोवियत संघ में ५०० से अधिक पेशेवर रंगमंच हैं। दूसरे शब्दों में, ४,५०,००० लोगों के पीछे औसतन एक रंगमंच है। इसके साथ ही सैकड़ों शौकिया नाटक-मंडलियां हैं जिनके अपने स्थायी कार्यालय हैं और उनके नाटक प्रतिदिन रेडियो से प्रसारित होते और टेलीविजन से दर्शाये जाते हैं। सोवियत रंगमंच की स्थापना ५० वर्ष पूर्व उस समय हुई जबकि देश में सर्वत्र गृह-युद्ध की आग फैली हुई थी और नये सामाजिक संबंधों का विकास हो रहा था। इन रंगमंचों के मुख्य नायक और

उमंग और उल्लास

दर्शक वह जनता थी जो अपने देश के उज्ज्वल भविष्य के लिए संघर्ष में लगी हुई थी।

सत्य का प्रकटीकरण

ऐतिहासिक सत्य को कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करना इस नये रंगमंच का सिद्धांत

पश्चिम के मंच पर पूरब का नृत्य

रहा। जनता वह सच्चाई जानना चाहती थी जो अतीत के संबंध में वैज्ञानिक और क्रांतिकारी दृष्टिकोण से प्रकट हुई। साथ ही वह अपने भविष्य की संभावनाओं के संबंध में भी जानना चाहती थी।

रूसी पेशेवर रंगमंचों के २५ प्रतिशत बाल-रंगमंच है। रंगमंच सोवियत व्यक्ति का बाल्यकाल से ही एक अभिन्न साथी बन जाता है और रंगमंच के प्रति उसका आकर्षण कभी कम नहीं होता। प्रसिद्ध नाटक-मंडलियों की यह लोकप्रिय कार्य-पद्धति बन चुकी है कि वे बड़े उद्योगों के कर्मचारियों के साथ संपर्क कायम करते, शौकिया नाटक-मंडलियां कायम करने में उनकी मदद करते और उसके लिए उन्हें प्रोत्साहित करते हैं। वह शारीरिक और मानसिक श्रम-भेद मिटाने की अपूर्व ऐतिहासिक प्रक्रिया का एक अंग है। इससे सोवियत जनता की संस्कृति और उनकी बहुमुखी प्रतिभा की समुचित पुष्टि होती है।

सोवियत रंगमंच का लक्ष्य जनता को जाग्रत करना तथा उसमें कला के प्रति प्रेम और आकर्षण को उभारना है। इस प्रकार पूरे समाज का सम्यक् विकास करना ही सोवियत रंगमंच का उद्देश्य है।

जीवन की सच्चाई को कला की सच्चाई में बदलने के अनेक वैयक्तिक तरीके हैं और ये सभी तरीके छोटी धाराओं की तरह बहते हुए एक बड़ी नदी में मिल जाते हैं। यह ऐसी विधि है जिसमें एक ही सिद्धांत को अनेक प्रकार से तथा अनेक रचनात्मक दृष्टिकोण से सशक्त ढंग से अभिव्यक्त किया जा सकता है।

सोवियत मंच पर भारतीय नृत्य

विश्व के जनगण के सांस्कृतिक जीवन में नृत्य की बहुत बड़ी भूमिका है। सोवियत

जनगण में भारतीय नृत्य विशेष रूप से लोकप्रिय है। मास्को की संगीत-सभाओं और आख्यान-भवनों में किसी को भी 'भारत के बारे में कहानियां' विषयक असाधारण कार्यक्रम मिल सकते हैं। इसे न तो संगीत सभा और न ही आख्यान, फेदिन द्वारा संकलित किया गया है। गुसेवा की जीवंत और चित्ताकर्षक कहानियां बड़ी दिलचस्प हैं, क्योंकि वे एक विशेषज्ञ और प्रत्यक्षदर्शी द्वारा कही जाती हैं। उनके साथ वृत्तचित्र दिखाये जाते हैं और बीच-बीच में वी. फेदिन द्वारा अभिनय

यौवन की उमंग

साहित्यिक संध्या अथवा विविध मनोरंजन-कार्यक्रम कहा जा सकता है, हालांकि इसमें इन सभी विधाओं के अंश शामिल हैं। इसे जवाहरलाल नेहरू पुरस्कार-विजेता, भारतीय संस्कृति और नृत्य शास्त्र के एक प्रमुख विशेषज्ञ, कई वैज्ञानिक और साहित्यिक कृतियों के लेखक मतात्या गुसेवा तथा बैने सोनोइस्ट व्लादीस्लाव

प्रस्तुत किया जाता है, जिन्होंने नृत्य की कठिन भरतनाट्यम पद्धति में दक्षता प्राप्त की है। ये संगीत-सभाएं बहुत शिक्षाप्रद हैं और दो महान देशों के बीच सांस्कृतिक संबंधों के विकास में बढ़ावा देती हैं।

प्रसिद्ध सोवियत संगीतकार तथा सोवियत संघ के जन-कलाकार एन. नियाजी को 'चित्रा' बैले की संगीत रचना के

लिए जवाहरलाल नेहरू-पुरस्कार प्राप्त हुआ है। यह बैले रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कहानी पर आधारित है। 'चित्रा' बैले के कुछ अंश अजरबैजान बैले-मंडली के कलाभंडार में सम्मिलित किये गये हैं। इस मंडली ने हाल ही में भारत की यात्रा की थी और यहां अपना प्रदर्शन प्रस्तुत किया था। नियाजी अजरबैजान के राजकीय सिंफोनी आर्केस्ट्रा (वाद्यवृंद) का कई वर्षों से संचालन कर रहे हैं। यह वाद्यवृंद रूसी एवं विदेशी क्लासिक संगीत की सर्वोत्तम रचनाएं तथा सोवियत जनतंत्रों की संगीत-रचनाएं पेश करता है। नियाजी के कथनानुसार उनके वाद्यवृंद को अजरबैजान सिंफोनी की प्रयोगशाला कहा जा सकता है। जनतंत्र के संगीतकारों की सभी सर्वोत्तम रचनाएं इस वाद्यवृंद के साथ घनिष्ठ संपर्क में तैयार की गयी हैं। यह कारखानों, तेल के क्षेत्रों, गांवों और संगीत-भवनों में अपने कार्यक्रम पेश करता है।

'चित्रा' का अभिनय

'चित्रा' बैले का जन्म तब हुआ था जब सोवियत-जन रवीन्द्रनाथ ठाकुर की शत-वार्षिकी मना रहे थे। कुइबीशेव (वोल्गा पर स्थित एक नगर) के संगीत-थियेटर ने 'चित्रा' का नृत्य-रूपांतरण रंगमंच पर पेश करने का निश्चय किया और नियाजी को उसकी संगीत-रचना करने के लिए नियुक्त किया। उस समय तक नियाजी संगीतकार के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे और कई ओपेरा, बैले, सिंफोनी के अंशों, गानों, नाटकों एवं फिल्मों के लिए संगीत-रचना कर चुके थे। कुइबीशेव-थियेटर ने नियाजी के पास रवीन्द्र-संगीत का एक टेप-रिकार्ड भेजा, जो उसे आल इंडिया रेडियो से प्राप्त हुआ था। लेकिन रवीन्द्रनाथ ने अपना संगीत भारतीय लोक-वाद्यों के लिए रचा था और सिंफोनी वाद्यवृंद के लिए उसकी पुनर्रचना करनी थी। साथ ही उसकी राष्ट्रीय प्रकृति और विशेषताओं को ज्यों-का-त्यों रखना था। नियाजी के अध्ययन-कक्ष में कई महीनों तक रवीन्द्र-संगीत गूंजता रहा। 'चित्रा' के मानववाद एवं उसकी सुंदर कविता के प्रति वे अधिकाधिक आकृष्ट होते गये। जयंती-समारोहों के दौरान कुइबीशेव-थियेटर ने मास्को में अपनी कला प्रदर्शित की। यह पहला मौका था जबकि 'चित्रा' का एक आधुनिक संगीत तथा नृत्य-रूपांतरण भारत के बाहर रंगमंच पर पेश किया गया। भारत में भी इसका प्रदर्शन हाल ही में किया गया था।

—ई. ९२० बंगाली कालोनी, कालकाजी,
नयी दिल्ली-११००१९

दो व्यक्ति एक ऊंची इमारत पर खड़े थे। नीचे सड़क पर ठेले में लदे तरबूजों को देखकर एक व्यक्ति बोला, "देखो तो, ये अमरूद कितने हरे हैं!"

"तुम्हें अमरूद नजर आ रहे हैं! भैये, अंगूर हैं ये तो।" दूसरे ने कहा।

कहानी

ग्राम-बुआ

● डॉ. हरगुलाल

देवी के मंदिर के सामने चबूतरे पर 'बड़' के पेड़ के नीचे गणेश-मूर्ति से सटा हुआ जो छोटा-सा दरवाजा है, वह एक महल का रहस्य-द्वार है। अंदर से यह महल छोटी-बड़ी मूर्तियों, बहुत-सी पीठिकाओं, टूटे-फूटे जल-फुहारों के भग्नावशेषों, अलभ्य भित्ति-चित्रों और नाना फूल-पौधों से भरा हुआ है। लोग इस महल को जानते हैं, पर इसकी निवासिनी के जीवन से अपरिचित हैं। महल के इतिहास पर काल की मोटी परत चढ़ गयी है। वर्तमान में इतना ही शेष रह गया है कि 'बड़' के नीचे 'बीरा-बताशा' (इसमें नागरमोथा, सुपारी और लालकंद होता है, जो देवी-पूजन की सामग्री है।) बेचनेवाली बुआ इस महल की मालकिन हैं। सारे गांव की बुआ लगती हैं वे। बड़े-बूढ़े तो बुआ के जीवन को जानते हैं, पर बच्चे हर समय यही कहकर चिढ़ाते हैं—"बुआ हलुआ बना! फूफा आ रहे हैं!" और बुआ बेचारी उनके पीछे भागती-भागती बेदम हो कोसने लगती हैं। पंडित रुद्रदत्त ऐसे नाजुक वक्त में बुआ और बच्चों के बीच पड़कर हमेशा यही कहते हैं—"पागल कहीं के! तुम क्या जानो। ये तो रानी हैं, रानी! इनके दरवाजे पै पांच-पांच हाथी झूमते थे।" और बच्चे पांच-पांच हाथियों की सुनकर

सहम-से जाते हैं, और एकाएक फिर चुप्पी छा जाती है।

बुआ इस गांव की बेटी हैं। लोग तीन बीसी से उन्हें यहीं देख रहे हैं। बुआ का मान-सम्मान सबका अपना है। पहले से तुनकमिजाज रही हैं वे। उनका विवाह ऊंचे गांव के रईस धनपाल-जी से हुआ था। घर के मुख्य दरवाजे पर पीतल की तोप लगी थी। आनगांव (अन्य गांव) के लोग इस तोप को छूकर जरूर देखते थे। एक संतरी तोप के पास ही ढीली-ढाली पोशाक में तनकर खड़ा रहता और आने-जानेवालों को बेभाव रोक-टोककर अपने रोब का एहसास कराता रहता था। सुनते हैं, अन्य शहरों में भी धनपालजी की कोठियां थीं। बुआ का वे बड़ा आदर करते थे, पर पुत्र का अभाव दोनों के बीच में शिला बनकर अड़ा हुआ था। पुत्र हमारे देश में तो स्वर्ग की नसैनी माना जाता है न! यही सब सोचकर बुआ ने एक दिन जली-कटी सुनाकर पहल की—"बुढ़ापे में तुम्हें कोई पानी देनेवाला भी नहीं रहेगा। तुम्हारे बाद इस कुल का दीपक बुझ जाएगा। कोई 'तरपन' करनेवाला भी नहीं बचेगा। कितने दिन से कह रही हूं कि दानगढ़वाले जब खुशी-खुशी लड़की दे रहे हैं तब कुल का नाम चलाने के लिए क्यों नहीं शादी कर लेते हो?"

"पर इस बुढ़ौती में मैं शादी करता अच्छा लगूंगा! अरे रामसिरी की मां, बेटी की शादी की फिकर करो! आखिर बेटी-बेटा में क्या फर्क है, और फिर तो हमारी बेटी हजारों में एक है, इसलिए हमारे लिए तो वही बेटा है," धनपाल हर बार यही बात कहा करते थे।

मगर बुआ ने एक न सुनी और लोरी तथा बिहाई (बन्ने) गाने का खुद इंत-जाम कर बैठीं। पर मानव स्वभाव हमेशा एक-सा नहीं रहा है। हम जो कुछ हैं, वह बदलते प्रभावों की छाया-मात्र हैं, तभी तो हमने एक रूप और एक विचार को कभी अपनी धरोहर नहीं बनाया। इसलिए एक मास से लड़की के साथ 'मायके' चली आनेवाली बुआ की अंतः-प्रेरणा ने उन्हें कुरेदा—'आखिर सुकेशी, तुझे क्या मिलेगा उनकी शादी करवाकर? अभी तो तू इसलिए भी कह रही है कि कुछ कर दिखलाना चाहती है, लेकिन कल को जब तेरी छाती पर सचमुच को सौत आ बैठेगी तब तू क्या करेगी? सौत तो चून की भी बुरी होती है, अब भी चेत जा! अपने हरे-भरे संसार को क्यूं मशाल दिखाती है?' अगले दिन सुबह होते ही मझोली (रथनुमा एक बुर्ज की सवारी) से लड़की की अंगुली पकड़कर जब बुआ तोप के निकट उतरीं तब पुराना नौकर रामू चिल्ला पड़ा—"गजब हैगौ सरकार! मालिक कू गे का सूझी बुढ़ौती में आपके रैत भये ब्याह की? बरात तो कल साम गयी, अरे वा ससुर ने बैलन को दानो-पानी बचायबे

कै लैं रेलते बरात बुलायी ए, सो साम कू चल दये यहां ते सबरे लोग !" और संतरी ने चाबी का गुच्छा हवा में झुला दिया। बुआ रामू की ठकुरसुहाती सुनते हुए भी उलटे पांव मझोली में बैठकर बिटिया के साथ मायके चली आयीं, फिर कभी ऊंचे गांव न गयीं, और न कभी उन्हें

जल चढ़ाती आयी हैं। दोनों समय अपने इष्ट को गंगाजल में डुबोने में कभी नागा नहीं किया और बच्चों को प्रसाद बांटने में भी कभी आनाकानी नहीं की है। अपने साधनामय जीवन को और अधिक पूर्ण बनाने के लिए उन्होंने गंगासागर जाने के लिए पड़ोस की स्त्री के भी पैसे

बुलाने की जरूरत ही समझी गयी। फिर भी, जिजीविषा मनुष्य की संचित इच्छा-शक्ति का अंतिम पड़ाव है। यहीं से आदमी साहस बटोरकर परिस्थितियों के सामने घुटने टेकता है। तभी तो बुआ को आज तक अपने पतिदेव के लौटने की प्रतीक्षा बनी हुई है।

वर्षों से बुआ तुलसी के 'बिरवा' को

देकर खुर्जा से कलकत्ता के दो टिकट कटवाये। कलकत्ता पहुंचते-पहुंचते मोहनिया काफी बीमार हो गयी। बुआ के लिए एक नयी मुसीबत खड़ी हो गयी। सहारा पाने की गरज से वे एक बड़ी हवेली में घुस गयीं, पहले से ही उनकी रुचि काफी साफ-सुथरी जो रही थी।

"बहूजी, आप ! अरे, यह तो आप

की ही कोठी है एकदम! कागज-पत्तरों में भी आपका नाम भरा है। पिछले साल ही मालिक ने बनवायी है, गेट पर संगमरमर की आपके नाम की पटिया लगनी रह गयी है।" पतीला थामें एक लमहे में यह सारी बात रामू कह गया। अचानक उसे क्या सूझी, फोन पर मालिक को बड़ी मालकिन के आने की बात कह दी।

फिर क्या था! तूफान आ गया। खड़े-खड़े बुआ ने रामू को पचास गालियां दे डालीं। यह भी कह दिया कि वह कलकत्ता क्या आ गया, कुछ ज्यादा ही बोलने लगा है, उड़ने लगा है, पाजी को नौकरी से निकलवा दिया जाएगा, टांगें झाड़ दी जाएंगी, आदि, आदि।

बेचारा रामू सकते में आ गया। वह हाथ जोड़ गेट को घेरे खड़ा था और कहे जा रहा था, "बड़ी मालकिन, मेरो सिर और आपकी जूती। जो चाहो करो, पर मालिक से मिलकर जाओ, गाड़ी से दो मिनट में आ रहे हैं।"

पर बुआ रामू पर गालियों की बौछार करती वहां से चली गयीं। पूरा दिन घूमने के बाद शाम को कहीं जाकर उन्होंने अपनी साथिन को अस्पताल में दाखिल करवाया। रामू पर उन्हें कभी प्यार आता, कभी क्रोध आता और कभी वे अपने भाग्य को कोसने लगतीं। नवें रोज बिना गंगासागर गये लौट आयीं। यदि हमारी सारी इच्छाएं बिना किसी बाधा के पूरी होती रहें तो फिर हम मनुष्य काहे के ठहरे! मनुष्य जन्म ही अपूर्णताओं का प्रतीक है। अपूर्णताएं हमें जीवित रहने की शक्ति देती हैं। हमारा चेतन मन रात-दिन अपूर्णताओं की ओर दौड़ लगाता है, उपचेतन में घुसकर ख्याली पुलाव पकाता है, और हम वहीं के वहीं रहते हैं। इस जन्म में हम कभी अपने गंतव्य तक नहीं पहुंचेंगे, और अगर पहुंच भी गये तो फिर शुरू कर देंगे किसी और ऊंचाई की ओर बढ़ना।

जन्माष्टमी के अवसर पर बुआ झांकियां सजाती हैं। आठ-दस रोज पहले सारा समान जुटाया जाता है। अनेक स्त्रियां इस काम में बुआ का हाथ बटाती हैं। कोई खेत तैयार करती है, कोई गाय-बछड़े बनाती है, कोई कलात्मक चौक पूरती है और कोई कृष्णजी के हिंडोले पर रंगीन कागज या पिन्नी चिपकाती है। बुआ ने आज के काम से छुट्टी पायी ही थी कि रामू बड़े ही अजीबोगरीब रूप में सामने आ खड़ा हुआ। बुआ तो हैरत में पड़ गयीं। अटकते गले से रामू ने इतना ही कहा, "मालकिन! सरकार बहुत बीमार हैं।" बुआ जोर-जोर से चिल्लाने लगीं, "मेरा आज कोई भी नहीं है जो मुझे उन तक पहुंचा आवे।" इतने दिनों का मान न जाने कैसे एक क्षण में गल गया! एक अजीब वेदना और तड़प से उनका दम घुटा जा रहा था। पंडित रुद्रदत्त उन्हें कलकत्ता पहुंचा आये।

सुना है, बुआ को देखकर धनपालजी

काफी रोये। वर्षों का वियोग मिलन की तृप्तिदायक बूंदों में बह गया और रह गयी एक ऐसी अमर अनुभूति जिसने बुआ से यायावरों का-सा उखड़ा जीवन छुड़-वाकर 'बड़ी अम्मा' का संबोधन दिया। सौत के बार-बार आग्रह करने पर भी बुआ न जाने क्यों दूसरे दिन वहां से चली आयीं, यह आज तक स्पष्ट नहीं हो सका है।

बुआ के जीवन का वह कौन-सा बिंदु है जिसके आधार पर वे अपने पति के पास न जाते हुए भी उनके अस्वस्थ होने पर एकदम व्याकुल हो उठीं, और वह कौन-सा विश्लेषित दृष्टिकोण है जिसने उन्हें पास होते हुए भी जिंदगी भर दूर रखा अपने आराध्य से? भारतीय नारी शुरू से ही अपनी शक्ति और साधना पुरुष में केंद्रित करती है और पुरुष ही जब उसके विश्वास का ठीक से अपने में आधान नहीं कर पाता है तब वह उदासीनता के वृत्त में उसे गेंद की तरह उछाल देती है या स्वयं छिटककर अलग हो जाती है। आज धनपाल नहीं रहे। बुआ के सूत्रात्मक वाक्यों को ही इस समस्या के बिखरते संदर्भ में माना जा सकता है—'पुरुष स्वार्थी है...उसे अपनी ही सुविधा का ध्यान रहता है... नारी को उसने कभी समानता का दर्जा नहीं दिया ... नारी को धरती की तरह सहनशील बतलाकर वह उसका शोषण करता है', आदि।

और जीवन के हाशिये पर से बुआ के चित्र को पुराना कहकर तब तक नहीं उतारा जा सकता जब तक उन्हें सारा गांव बुआ मानता है। जब तक उन्हें गांव का प्रत्येक व्यक्ति आदर देता है, तब तक उन्हें दुनिया ब्राह्मणी गीतों में, चमेली बनैनी कुआं पूजने में, सोरन ठाकुर की बीबी-बाग की दावत में, छदम्मी चमार बेटी के ब्याह की दावत में, और धामसिया खटिक टेढ़ी खेत की मेढ़ को ठीक करने में पूछते हैं और तब तक उनका चित्र गांव के हर घर में पूजा जाता रहेगा; और वे पूजी जाती रहेंगी गिल्लू की टांग टूटने पर रातभर जागने में, हरी के शीतला निकलने पर छींटा देने में, प्रसव-वेदना से छटपटाती छोटे की बहू के सिरहाने बैठकर उसकी पीठ सहलाते रहने में, हर मां के अलवाये बच्चे की नजर उतारने में। हर नयी दुलहिन को बेटा होने का गंडा देकर वे सभी बहुओं की प्यारी मनभायी बुआ हो गयी हैं। सदियों में जाकर कहीं ऐसा अस्तित्व फिर जन्म लेता है।

लेखक

—वरिष्ठ प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
पी. जी. डी. ए. वी. कालेज, नेहरूनगर,
नयी दिल्ली

जादू भरी जिंदगी

• प्रस्तोता : अजय व्यौहार

हवा में उठती रस्सी, जमीन पर रंगारंग कपड़े पहने, ढोलक बजाता बाजीगर, कौतुकभरी हजारों आंखें, और फिर पलक झपकते आसमान से झरते जामुनी, कौस्तुभी फूल ! विस्फारित आंखों से यह हैरतअंगेज नजारा देखता हुआ एक सात-आठ बरस का लड़का भीड़ के करीब, और करीब खिसक आता। अपनी अंगुलियों से बाजीगर के कपड़ों को छूने की कोशिश करता कि शायद कपड़ों में ही कोई चमत्कार हो! अरसे बाद कहीं जाकर जिंदगी के काफी पतझड़ देखने के बाद उस लड़के ने जाना कि चमत्कार गंडों, ताबीजों या लिबास में नहीं, लगन और अनवरत साधना में किया है।

वह लड़का था मैं, यानी जादूगर एस. के. निगम।

पिताजी जबलपुर के प्रख्यात कांग्रेस कार्यकर्ता रहे। वे सेठ गोविन्ददास के साथी और प्रख्यात बिसकुट-निर्माता थे। हमारी 'स्टार बिसकुट कंपनी' तब जबलपुर में बहुत प्रसिद्ध थी। ये तब की बातें हैं, जब मैंने होश भी नहीं संभाला था। होली के रंग-बिरंगे त्योहार पर (१५ मार्च, १९४८) मेरा जन्म हुआ था। मिडिल स्कूल में आते-न-आते वे अच्छे दिन दुर्भाग्य में बदल गये। मेहनत-मशक्कत करनेवाले, पर अपनी तकदीर और वक्त से थके-हारे मेरे पिता मुझे चार्टर्ड एकाउंटेंट बनाना चाहते थे, लेकिन मैं था कि अपने भूल-भुलैया–जैसे, अंधेरे-बंद कमरे के किसी एकांत कोने में एसिड और फास्फेट की बोतलें रखे नाइट्रिक एसिड पीने और कांच के टुकड़े चबा जाने के प्रयोग सीखता

सर्वश्रेष्ठ जादूगर की ट्राफी के साथ

हाथों द्वारा सम्मोहन
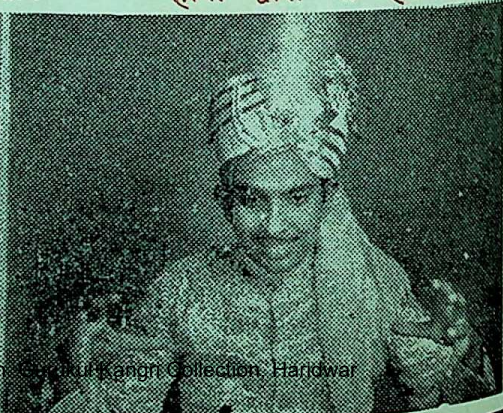
रहता! शायद अचेतन मन में बनते, गहराई से नक्श होते, उन प्रभावों का ये परिणाम था, जिन्हें मैं रोज घर के सामने, तमाशों के रूप में देखा करता था। घर से मुझे स्कूल भेजा जाता, लेकिन मैं शिक्षकों की नजर बचाकर बाजीगरों के मजमें में शरीक हो जाता। वे अजीबो-गरीब लोग बड़े आकर्षक और चित्रोपम लगते थे मुझे। उनके प्रति वह ललक मेरे मन में अभी तक बनी हुई है।

पिताजी मुझे कलक्टर और चार्टर्ड एकाउंटेंट एकसाथ बनाना चाहते थे, पर मैंने अपनी पढ़ाई, वाणिज्य की स्नातकोत्तर उपाधि लेने का इरादा कायम रखा और जबलपुर विश्वविद्यालय से ही डॉक्टरेट करने का विचार भी किया। उन्हीं दिनों मेरे हाथ लगीं तंत्र और इंद्रजाल की कुछ किताबें। पी. सी. सरकार के संपर्क में भी मैं तभी आया। तब महसूस हुआ कि हर रंग-बिरंगी दुनिया के पीछे, जादू के विस्मय-विजड़ित कर देनेवाले जगत में, हम-तुम–जैसे साधारण जन ही मौजूद हैं। पी. सी. सरकार ने बतलाया कि हर सुपरमैन असल में साधारण जन ही होता है, सिर्फ उसके करिश्मे उसे असाधारणता की श्रेणी में धकेल देते हैं।

मैं भी कुछ करना चाहता था, लेकिन अवरोध थे कि हर रास्ते में पत्थरों की शक्ल में आड़े आते थे। जेबखर्च के लिए जो मिलता, उनसे मैं नाइट्रिक एसिड खरीदता और खरीदता जादू की किताबें। अपने सहपाठियों के बीच मैं जादूगर के रूप में मशहूर हो गया था और जब तब अध्यापक भी मुझे ताने देते—"निगम, तुम तो जब चाहे दिव्य दृष्टि से परीक्षा का परचा देख सकते हो! पढ़ाई करने की जरूरत क्या है?" लेकिन न तो मेरे पास दिव्य दृष्टि थी और न ही अकल्पनीय बुद्धि या शक्ति का विलास। सोलह साल की उम्र में श्मशान में शव-साधना करते हुए मुझे दो बरस गुजर गये थे।

कागज के खाली पैकेट से साड़ियां निकलनी प्रारंभ

वेस्पा पर अंधा सफर
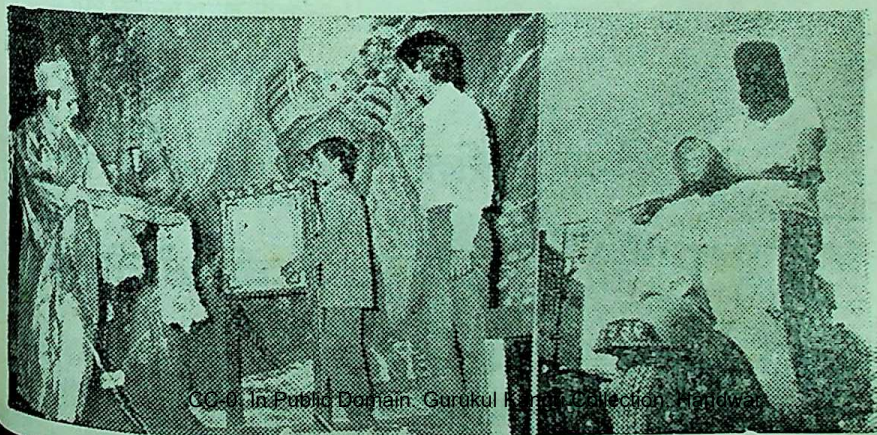
वो दो जो मेरी साँसों में बसा करते हैं —

एक तुम...

सच, बिनाका ग्रीन की निर्मल ताज़गी में बसीं मेरी साँसें... और मेरी हर साँस में समाए तुम! मुझे तुमसे प्यार है... मुझे बिनाका ग्रीन से प्यार है क्योंकि क्लोरोफ़िलयुक्त बिनाका ग्रीन में पाये जाने वाले प्राकृतिक गंधनाशक से मेरी साँसों में फूल खिल जाते हैं... आह! वह बहार... तुम्हारे साथ गुज़रे वह सुनहरे क्षण... वह महका महका सा मेरी साँसों का मधुबन!

एक बिनाका ग्रीन...

महकी साँसों का मधुबन
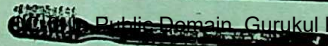
बिनाका टूथब्रश की गोल बनायी गयी नोकें आपके मसूड़ों को छिलने से बचाती हैं।

घर-परिवार था, लेकिन एक फूटी कौड़ी भी मांगना मेरे लिए पाप—जैसा था।

उन्हीं दिनों, श्मशान की भस्म, सन्नाटेभरी रातों की भयावह कालिमा और अपने आपको पढ़ने-समझने के दौरान मुझे पता लग गया कि जादू कुछ नहीं, केवल विस्मय-विजड़ित कर देने का हुनर है। जिसमें यह हुनर जितना है, वह उतना ही सफल जादूगर है। राबर्ट हूडिन से लेकर जॉन कलवर्ट तक जादू का सफर सिर्फ ध्यान-पद्धति और एकाग्र साधना का ही चमत्कार है। 'अरेबियन नाइट्स' की कहानियों से भी अधिक रहस्यात्मक भारतीय जादू के उलझे जाल को सुलझाकर कला की सुदृढ़ता एवं भव्यता प्रदान करने के लिए 'माया-महल' नामक संस्था खोली। इसके अंतर्गत समय-समय पर परिचर्चा, भाषण, वाद-विवाद प्रतियोगिता, निबंध, जादुई विषयों पर आयोजित कर जनसामान्य को इस कला से परिचित कराया। जादू को फिल्म-व्यवसाय की टक्कर पर स्वस्थ एवं भव्य मनोरंजन दर्शकों को प्रदान करने के लिए मैंने 'मैजिक फायनेंस कारपोरेशन' की स्थापना की मांग की। लेकिन काले और सुनसान श्मशान ने ही एक रोज दृष्टि दी मुझे। अमावस्या की एक खून जमा देनेवाली रात थी वह। नर्मदा का किनारा, चिर कुंवारी नदी की उद्दाम तरंगें चंचल पवन से उद्वेलित होकर श्मशान के किनारे से टकरा रही थीं। चिताएं जल रही थीं। उनसे निकलती चिरांध और जगह-जगह बिखरी हड्डियां भयावह दृश्य प्रस्तुत कर रही थीं। उस निस्तब्ध रात्रि में तभी मैंने पीपल के पेड़ के नीचे बैठे एक व्यक्ति को देखा। पता नहीं वह साधु था या वामाचारी, या फिर कोई कापालिक!

खूब ऊंचा, पूरा शरीर, आबनूसी रंग और माथे पर बड़ी धधकती-सी आंखें और धधकता हुआ सिंदूर! मैं नित्य श्मशान में बिखरी खोपड़ियों को चना खिलाता था। मुट्ठी भरकर चने लेकर मैं मरघट में चला जाता और फिर एक-एक खोपड़ी को बुलाता—"आओ रे..." लेकिन उस रात बुलाने पर भी खोपड़ियां लुढ़कती हुई मेरे पास नहीं आयीं। मैंने तमाम चने बिखेर दिये, लेकिन नरमुंड हिले भी नहीं।

मुझे विस्मय हुआ! आज क्या हो गया है इन खोपड़ियों को? या तो वे जस की तस हैं या मुझे ही कुछ हो गया है। मैंने चारों तरफ देखा। पीपल के नीचे वही व्यक्ति खड़ा था और मेरी तरफ स्थिर दृष्टि से देख रहा था! मैंने कहा, "महाराज यह क्या कौतुक कर रहे हैं? मुझे अपना काम करने दीजिए!"

मेरी बात सुनकर वह करीब आ गया। निमिष भर वैसी ही जलती हुई निगाहों से देखता रहा मेरी तरफ, फिर ठठाकर हंस पड़ा। बोला, "लड़के, तमाशा तू कर रहा है या मैं? तंत्र-साधना को

कारोबार में तबदील करना चाहता है!"

सुनकर मेरे प्राण तो हिम हो गये! यह तो ठीक था कि मैं तांत्रिक सिद्धियों के संधान में उन दिनों जुटा हुआ था, लेकिन उनका उपयोग व्यापार-बुद्धि में करूंगा, यह कल्पना भी नहीं की थी। सूखे गले से मैंने कहा, "महाराज, तंत्र का उपयोग ज्ञान के विकास में करूंगा।"

"मैं जानता हूं, व्यवसाय करेगा रे! याद रख!" वह बोल पड़ा।

हवा का एक तेज झोंका आया और सूखे पत्ते खड़खड़ाते हुए उड़े। लगा, नर्मदा की लहरों में प्राणांतक प्रपीड़न जाग उठा हो। मैंने कहा, "महाराज, साधना अपनी जगह है और व्यवसाय अपनी जगह। ये एक नहीं होने पाएंगे।"

फिर वह दिन भी आया जब अखिल भारतीय स्तर पर मेरे बहुरंगी कार्यक्रम समाचारपत्रों की सुर्खियों में आ गये। मुझे प्रतियोगिता में 'वर्ष ७३ का सर्वश्रेष्ठ जादूगर' पुरस्कार भी प्राप्त हुआ। पूरे देश का दौरा किया। जापान आदि देशों की यात्रा पर जानेवाला हूं। तब से लेकर आज अपनी २५ साल की उम्र तक, जब-जब अपने भीतर की तंत्र-शक्ति के सार्वजनिक प्रदर्शन की चेष्टा की है, तब तब आंखों के सामने नरकंकाल और खोपड़ियां मंडराने लगी हैं। आंखों पर पट्टी बांधकर मोटरसाइकिल चलाते, युवक के शरीर का मध्य-भाग स्पंज-जैसा खींचते, सब कुछ जला देनेवाले नाइट्रिक एसिड को पीते, कांच के टुकड़े चबाते और आग की लपटें निगलते हुए, हर बार नर्मदा-तट की उन खोपड़ियों ने आ-आकर जैसे मुझे चेतावनी दी है। जयपुर में 'अखिल भारतीय जादू-प्रतियोगिता' के समय, रात की खामोशी में डूबे होटल में, उसी कापालिक की मौजूदगी की अनुभूति मुझे हुई थी। कोई जैसे कानों में फुसफुसाकर कह गया था—'खबरदार, जो तंत्र को कारोबार बनाया।'

लोग कहते हैं, मेरे पास सिद्धि है, लेकिन मैं उसे अपने अध्यवसाय और परिश्रम का प्रतिफल मानता हूं। बालाघाट की सड़कों पर आंखों पर पट्टी बांध और उस पर भी काला थैला ओढ़कर स्कूटर द्वारा मैंने ५ मील की दूरी १४ मिनट में तय करके उस समय एक कीर्तिमान स्थापित किया था। मेरा इरादा अब हठयोग पर आधारित, जल पर नंगे पांव चलने का तथा उसके बाद धधकती हुई चिता में प्रवेश करने का है। मैं समझता हूं कि मेरे ये आगामी प्रदर्शन जादू-कला के संबंध में प्रचलित गलत धारणाओं को सही परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत कर सकेंगे। लेकिन वास्तव में क्या मैं सच कहता हूं?

इसकी विवेचना मैं दूसरों पर छोड़ देता हूं। मैं चाहता हूं, जादू-कला कला की सफलता का पर्याय बन जाए। भारत के हर घर में एक जादूगर हो। मैं चाहता हूं कि जादू-कला को विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जाए। ●

ग्रामोत्थान विद्यापीठ, मंगरिया (राजस्थान) के संचालक स्वर्गीय स्वामी केशवानंदजी गांवों का भ्रमण कर रहे थे। रास्ते में मेहरवाला गांव पड़ा। उन्हें देखकर लोग एकत्र हो गये। याद नहीं किस प्रसंग में, चाय की बुराई होने लगी। चाय की खराबियां बताते हुए स्वामीजी ने एक भाषण ही दे डाला। यह चर्चा चल ही रही थी कि एक जमींदार ट्रे में चायदानी और प्याले लेकर आता दिखायी दिया। उसे देखकर सब हंसने लगे। स्वामीजी ने भी अपने समाज की कमजोरी भांपते हुए कहा, "ल्योजी, जहर पियो, ओ निरो रोग हो...!" चाय कपों में डाली गयी। किसानों के साथ स्वामीजी ने भी बड़े प्रेम से चाय पी। लेकिन मैं मन-ही-मन स्वामीजी के इस व्यवहार से खिन्न था, इतने बड़े महात्मा होकर उनकी कथनी और करनी में कोई तालमेल नहीं! इसके बाद हम अपने गंतव्य की ओर चले। मैंने उनसे एकांत में कहा, "स्वामीजी, आप तो अत्यंत कमजोर साधु हैं। चाय को बुरा बताते-बताते स्वयं भी चाय पीते गये।" स्वामीजी ने विशिष्ट ढंग से उत्तर दिया, "हो सकता है; उसके घर में उसके बच्चों के लिए भी दूध (अमृत) न हो तो, क्या मैं आतिथ्य सत्कार में मिली उसकी चाय (विष) को फेंक दूं?"—**रामचंद्र मक्कासर**

पश्चिम बंगाल के स्वर्गीय मुख्यमंत्री डॉ. विधानचंद्र राय चिकित्साशास्त्र में जितने पारंगत थे उतने ही गणित में भी! अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के तत्कालीन महासचिव श्रीमन्नारायण ने उनसे एक बार कहा, "डॉक्टर साहब, अगर आप इंजीनियरिंग पढ़ने गये होते तो आज देश के उच्च कोटि के अभियंता भी बन गये होते।"

डॉ. राय हंसकर बोले, "मैं जब बी.एस-सी. आनर्स सहित प्रथम श्रेणी में प्रथम

उत्तीर्ण हुआ, तब कलकत्ता इंजीनियरिंग कालेज के प्राचार्य तथा कलकत्ता मेडिकल कालेज के प्राचार्य—दोनों के पास प्रवेश हेतु आवेदन-पत्र भेज दिया। आवेदन में मैंने बी. एस-सी. में प्राप्त सफलता को ध्यान में रखते हुए स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम में एक वर्ष की छूट देने की प्रार्थना की थी। लगभग पंद्रह दिन में मुझे इंजीनियरिंग कालेज के प्राचार्य का उत्तर मिला—'वैसी छूट हम आपको देने में असमर्थ हैं'। दूसरे ही दिन मेडीकल कालेज के

प्राचार्य का पत्र मुझे मिला कि 'आपको एक साल की छूट दी जाती है, तुरंत प्रवेश ले लें'।

"मैंने उसी दिन मेडीकल कालेज में प्रवेश ले लिया। दूसरे दिन इंजीनियरिंग कालेज के प्राचार्य का दूसरा पत्र मिला जिसमें लिखा था—'हमारा पहला पत्र रद्द समझें। आपकी शर्त के अनुसार आपको इंजीनियरिंग कालेज में प्रवेश दिया जाता है'। मैंने सोचा, मेरा भी तो कोई स्वाभिमान है, और तुरंत उस पत्र का उत्तर लिख दिया—'आपने बहुत विलंब से सूचित किया। मैंने पहले ही मेडीकल कालेज में प्रवेश ले लिया है। क्षमा करें।"

—धीरेन्द्रकुमार दीक्षित

भारत और पाकिस्तान के बीच हुए १९६५ के संग्राम में सबसे भयानक और घमासान लड़ाई लाहौर क्षेत्र में "इच्छोगिल नहर' के किनारे डोगराई नामक स्थान में हुई थी। इस क्षेत्र की जिम्मेदारी एक वीर मेजर को सौंपी गयी थी। मेजर अपने सैनिकों के साथ युद्ध-क्षेत्र में बढ़ रहा था कि उसी समय उसके सीने में शत्रु की दो गोलियां लगीं और वह घायल हो गया। उसका शरीर खून से लथपथ था, पर वह वीर बराबर शत्रुओं पर प्रहार करता रहा। घायल अवस्था में भी उसने शत्रुओं के एक टैंक को नष्ट कर दिया, साथ ही कई पाकिस्तानियों को भी मौत के हवाले किया। इसी बीच उसे तीसरी गोली लगी। खून से सराबोर मेजर ने इस दशा में भी दुश्मन के दो और टैंकों को नष्ट कर दिया। ऐसा करते समय उसके शरीर में दो और गोलियां प्रवेश कर गयीं। आखिर जब शरीर गोलियों से छलनी बन गया, तब यह वीर धरती की गोद में गिर पड़ा। इस समय भी वह अपने साथियों को आगे बढ़ने के लिए ललकार रहा था। घायल अवस्था में उसे अमृतसर अस्पताल लाया गया। मेजर ने अस्पताल में दम तोड़ने से पहले इच्छा व्यक्त की कि मुझे मेरे गांव ले जाया जाए, ताकि मेरी मां यह भलीभांति देख ले कि मैंने दुश्मन की गोलियों के वार पीठ पर नहीं बल्कि सीने पर सहे हैं। सिर्फ सीने पर शत्रु की गोलियां सहनेवाला यह भारतीय वीर था मेजर आशाराम त्यागी, जिसे सरकार ने मरणोपरांत 'महावीर चक्र' से सम्मानित किया।

—विंदेश्वरी प्रसाद 'विजय'

प्रसंग १८५७ की क्रांति के समय का है। हैदराबाद के पास एक छोटी-सी रियासत थी जोरापुर। वहां के अल्पवयस्क राजा ने अंगरेजों से लड़ने के लिए एक सेना जमा कर ली। फरवरी, १८५८ में उसे हैदराबाद जाना पड़ा। सालारजंग ने उसे गिरफ्तार करा दिया। इस आकस्मिक विपत्ति से वह वीर नहीं घबराया। एक अंगरेज अफसर को उसके पास भेद लेने भेजा गया। अफसर को राजा 'अप्पा'

कहा करता था। अतः राजा आदर के साथ अफसर से मिला। अवसर देखकर अफसर ने क्रांतिकारी नेताओं के नाम पूछे। राजा ने उत्तर दिया, "नहीं अप्पा, मैं यह नहीं बताऊंगा! आप मुझे सलाह देते हैं कि मैं रेजीडेंट से जाकर मिलूं? मैं यह नहीं करूंगा। अप्पा, मैं दूसरे की भीख पर जीना नहीं चाहता और न मैं अपने देशवासियों के नाम बताऊंगा।"

अफसर की सिफारिश पर राजा को मौत के स्थान पर कालापानी की सजा दी गयी। इस सफर के दौरान राजा ने अपने साथ चल रहे अंगरेज पहरेदार से खेल-खेल में पिस्तौल ले ली और अपने ऊपर गोली दाग दी।

उसने एक दिन कहा था—"मैं काला-पानी की सजा की अपेक्षा मौत पसंद करता हूं। मेरी प्रजा में अति साधारण जन भी जेल में रहना पसंद नहीं करेगा, फिर मैं तो उनका राजा हूं।"

—विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी

शांति निकेतन के कला-विद्यालय में श्रीमंत परिवार का एक शिक्षार्थी प्रविष्ट हुआ। उसे अपना कार्य अपने हाथों करने की आदत नहीं थी। कुछ ही दिनों में उसके कमरे में धूल जम गयी, दीवारों पर जाले लग गये। एक दिन वह भोजन करने के बाद लौटने पर यह देखकर दंग रह गया कि सभी वस्तुएं सही जगहों पर रखी हैं, रंग का सामान और कूचियां सुव्यवस्थित हैं, समीप ही धूपबत्ती जल रही है। यह क्रम कई दिनों तक चालू रहा। एक दिन वह भोजन करके अपने कमरे में जरा जल्दी लौट आया। उसने देखा, कला-विभाग के आचार्य नंदलाल बसु उसका कमरा साफ कर रहे हैं। नंदलाल बाबू कहने लगे, "तुम मेरे छात्र हो। तुम्हारे सब प्रकार के कल्याण का दायित्व मुझ पर है। तुम बचपन से स्वच्छता में पले हो, परंतु उसके लिए

तुम्हें नौकरों के सहारे रहना पड़ा है। स्वाभाविक है कि मलिन स्थान पर तुम्हारा चित्त विकल रहता होगा और तुम वांछित कार्य नहीं कर पाते होगे। कला केवल रंग-रेखाओं की रचना मात्र नहीं है, उसके लिए तुम्हारे जीवन में सुरुचि की आवश्यकता है।"

इस तरह नंदलाल बाबू ने एक शिष्य की आदत को सुधार दिया।

—शिवकिशोर

हिंदी नाटकों में श्रीकृष्ण

● डॉ. मलखानसिंह सिसौदिया

पौराणिक एवं ऐतिहासिक संधि-काल की विस्तृत परिधि में लोक-नायकों में राम और कृष्ण का नाम सर्वोपरि है। उनका कृतित्व और व्यक्तित्व लौकिकता तथा मानवीयता की सीमा-रेखा को लांघकर अलौकिकता और अतिमानवीयता का स्पर्श करता है। धर्मग्रंथों में उनको अवतार की कोटि में रखा गया है। कृष्ण रूढ़ परंपराओं के भंजक और युगानुरूप नवीन व्यवस्था के समर्थक थे। उन्होंने सत्य-असत्य संबंधी परिस्थिति-सापेक्ष नयी व्याख्याएं दीं।

भारतीय साहित्य में कृष्ण का जो रूप मुख्यतः ग्राह्य हुआ वह लीलामय और प्रेमप्रधान था। भक्ति-काव्य में भी उन्हें शृंगार के आलंबन के रूप में प्रस्तुत किया गया, राष्ट्र-निर्माण की प्रेरक शक्ति के रूप में नहीं। उनका यह रूप धार्मिक भावना से उद्भूत था, जिसको कालांतर में व्यावसायिक रूप दे दिया गया। इसी व्यवसायी मनोवृति के कारण कृष्ण के व्यक्तित्व का अधिक महत्त्वपूर्ण पक्ष उपेक्षित हो गया। हिंदी नाटकों में हिंदी-काव्य की भांति कृष्ण का शृंगार-

गीतं मधुरं, नृत्यं मधुरं: 'गीत गोविंद' — मनुहार . . .

प्रधान रूप ही अधिकांशतः चित्रित है।

यद्यपि संस्कृत नाटकों में कृष्ण नायक के रूप में प्रतिष्ठित नहीं हुए, किंतु लोक-नाट्य परंपरा में उनके चरित्र को प्रधानता मिली। स्पष्ट है कि कृष्ण-चरित्र ने लोक-मानस को आकृष्ट किया। 'गीत-गोविंद' के अतिरिक्त चैतन्य के आविर्भाव ने लोकनाट्य साहित्य को पर्याप्त प्रभावित किया। एक ओर बंगाल और दूसरी ओर वृंदावन कृष्ण-लीलाओं के केंद्र बने। चैतन्य महाप्रभु के प्रधान शिष्य रूप गोस्वामी एवं गदाधर भट्ट के अतिरिक्त स्वामी वल्लभाचार्य तथा हितहरिवंश के साथ तानसेन के गुरु हरिदास के वृंदावन-वासी हो जाने के परिणामस्वरूप वहां कृष्ण-लीलाओं का अभिनय दैनिक जीवन का अंग बन गया। किंतु इन लीलाओं में कृष्ण का रूप आनंदमय और शृंगार-प्रधान था, जिनमें परोक्षतः आध्यात्मिक संकेत और संदेश होते थे। यद्यपि कृष्ण को सोलह कला से युक्त अवतार माना गया है, किंतु इन लीलाओं में उनके स्वरूप की एकांगिता के कारण वह सोलह कलाओं के स्थान पर एक कला में ही सिमट कर रह गया। फलस्वरूप उनका महान व्यक्तित्व भक्ति-भावना के आवेश में क्षतिग्रस्त हो गया।

हिंदी के ब्रजभाषा-नाटकों में कृष्ण-चरित्र से संबद्ध एकमात्र नाटक कृष्ण-जीवन लछिराम-कृत 'करुणाभरण' है। इसमें द्वारिकाधीश कृष्ण के कुरुक्षेत्र-गमन और उनके राधा से मिलन की कथा है। नाटक के छठे अंक में राधा-कृष्ण को अपने साथ ले जाती हैं और

नृत्य–नाटिका के रूप में
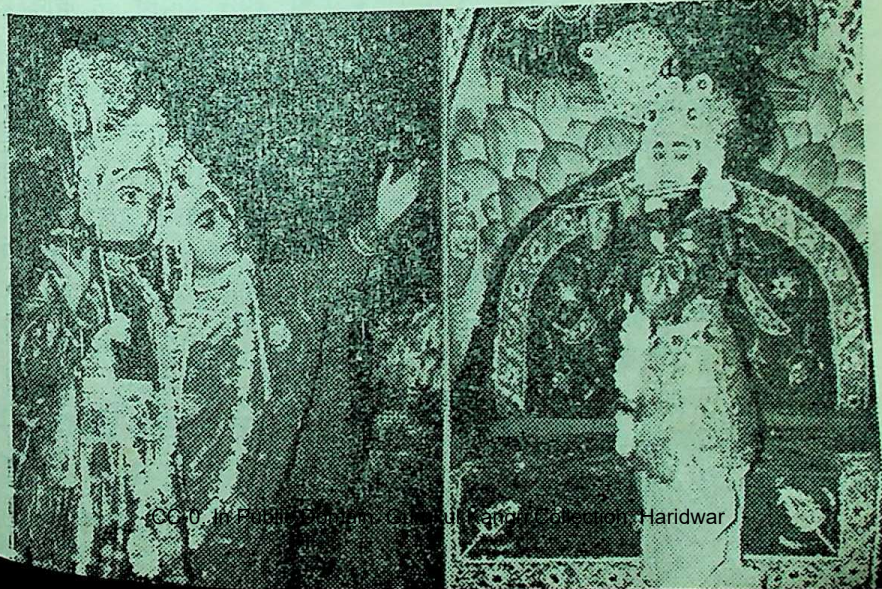
व्यथितहृदया रुक्मिणी निराश द्वारिका लौटती हैं। इस वियोगांत को बचाने के लिए सातवें अंक में कृष्ण का अद्वैत रूप चित्रित किया गया है। इसके द्वारा कृष्ण, राधा और रुक्मिणी में अभेद सिद्ध किया गया है।

भारतेंदु हरिश्चंद्र के नाटकों से हिंदी नाटकों में आधुनिक युग प्रारंभ होता है, किंतु यह विचित्र विरोधाभास है कि भारतेंदु-युग से लेकर प्रसाद-युग तक एक-दो अपवादों को छोड़कर कृष्ण के चित्रण में आधुनिकता का निदर्शन नहीं मिलता है, वरन उनके स्वरूप में भक्तिकालीन एवं रीतिकालीन प्राचीन भावनाओं का समावेश मिलता है। भारतेंदु-रचित 'चंद्रावली' नाटिका, राधाचरण गोस्वामी-रचित 'श्रीदामा' नाटक और 'सती चंद्रावली', लाल खड्गबहादुर मल्ल-कृत 'महारास' नाटक एवं 'कल्पवृक्ष' नाटक, अयोध्यासिंह उपाध्याय-कृत 'रुक्मिणी-परिणय', बलदेवप्रसाद मिश्रकृत 'प्रभास-मिलन' और 'नंद-विदा' नाटक, जमुनादास मेहरा-कृत 'कृष्ण-सुदामा', वियोगी हरि-कृत 'छद्म योगिनी' तथा उदयशंकर भट्ट-कृत 'राधा' आदि रचनाओं में युग-परिवर्तन की किसी नवीन भावना का आरोपण कृष्ण के रूप में नहीं है, वही गतानुगतिक चित्रण है। सामान्यतः उसमें सांप्रदायिक दृष्टिकोण ही प्रधान है।

पूर्वोक्त नाटकों में जो दो-तीन अपवाद हैं, उनमें कृष्ण को दो अन्य रूपों में प्रस्तुत किया गया है। उनमें एक उनका मित्र-रूप है और दूसरा रक्षक एवं उद्धारकर्ता का रूप है। ये नाटक राधाचरण गोस्वामी-कृत 'श्रीदामा', जमुनादास मेहरा-कृत 'कृष्ण-सुदामा' तथा अयोध्यासिंह उपाध्याय-कृत 'रुक्मिणी-परिणय' हैं। यद्यपि इन रचनाओं में भी रूप अथवा भावना की दृष्टि से युगानुरूप कोई नवीनता नहीं है, किंतु विशिष्टता केवल यह है कि इनमें कृष्ण के श्रृंगार-प्रधान रूप से भिन्न उन्हें अन्य परिस्थितियों में नितांत मानवीय भूमिकाओं में प्रस्तुत किया गया है। यह रूप भी आध्यात्मिकता-मुक्त नहीं है।

उपर्युक्त काल में रचित माखनलाल चतुर्वेदी के 'कृष्णार्जुन-युद्ध' नाटक में कृष्ण के व्यक्तित्व का सर्वथा भिन्न रूप चित्रित है। इसमें द्वारिकाधीश कृष्ण को राजसत्ता के मद में औचित्य-अनौचित्य तथा न्याय-अन्याय के ज्ञान को विस्मृत करते हुए अंकित किया गया है। स्पष्ट है कि इस रचना में नाटककार ने कृष्ण को सामान्यतः मान्य रूप से सर्वथा भिन्न प्रस्तुत किया है। उनके इस रूप में आंग्ल शासन द्वारा सत्ता की निरंकुशता का चित्रण है और इस पर राष्ट्रीय परिस्थितियों का प्रभाव है।

प्रसाद-युग में सेठ गोविंददास के 'कर्तव्य-उत्तरार्ध' नाटक में कृष्ण के स्वरूप पर युग-प्रभाव स्पष्ट हो जाता है। आधुनिक बौद्धिकता के प्रभाव के अंत-

र्गत उन्हें अलौकिक शक्ति-संपन्न अतिमानव के रूप में नहीं, अपितु मानव-रूप में प्रस्तुत किया गया है। नाटक के अंत में उनकी मृत्यु दिखाकर उनके मानव-रूप की पूर्ण संपुष्टि कर दी गयी है। मानव-रूप में कृष्ण आजीवन कर्तव्य-पालन के लिए संघर्षरत रहते हैं। कर्तव्य-पालन के लिए ही वे अपनी बाल-क्रीड़ास्थली गोकुल एवं प्राण-प्रिया राधा को त्यागकर मथुरा चले जाते हैं और अनंतर परिवर्तित परिस्थितियों में देशरक्षा की दृष्टि से उस स्थान को भी त्यागकर द्वारिका में रहने लगते हैं। कृष्ण का रण से पलायन, रुक्मिणी-हरण और भामासुर द्वारा बंदी की गयी अनेक स्त्रियों से विवाह आदि के प्रसंग लोक-रीति के विरुद्ध हैं। इसी प्रकार महाभारत के युद्ध में भीष्म, द्रोणाचार्य, कर्ण एवं दुर्योधन के वध से संबद्ध उनका आचरण परंपरागत नीति के विरुद्ध है। किंतु व्यक्तिगत निंदा-प्रशंसा की उपेक्षा कर वे व्यापक लोकहित के लिए इन प्रसंगों में निर्लिप्त भाव से उद्देश्य को दृष्टि में रखकर परिस्थिति के अनुसार कर्तव्य का पालन करते हैं। इस नाटक में कृष्ण पूरी तरह सैद्धांतिकता से ऊपर कर्तव्य के व्यापक लोकहितकारी पक्ष के प्रतीक हैं। उनमें कर्तव्य का गतिशील रूप प्रदर्शित है।

जयशंकर प्रसाद का महाभारतोत्तर कथा से संबद्ध नाटक 'जनमेजय का नागयज्ञ' है। इसमें काल-भिन्नता के कारण कृष्ण के पात्र-रूप में चित्रित किये जाने का प्रश्न नहीं उठता है, किंतु वेदव्यास द्वारा उनका जिस संदर्भ में उल्लेख किया गया है, उससे उनकी राष्ट्र-निर्मात्री भूमिका स्पष्ट हो जाती है।

उदयशंकर भट्ट-कृत 'राधा' नाटक में महान उद्देश्य के प्रति समर्पित उस परम-ज्ञानी और कर्मयोगी के रूप में कृष्ण का चित्रण किया गया है, जिसका कार्य-क्षेत्र विशाल और व्यक्तित्व विराट है। वे प्रेम और सौंदर्य के भी प्रतीक हैं, किंतु वे राधा तथा अन्य गोपिकाओं के प्रेम के कारण अपने कर्तव्य का विस्मरण नहीं कर देते, बल्कि प्रेम को आत्मा की अलंकृति मानकर उसके उदात्तीकरण के लिए उन्हें प्रेरित करते हैं। इस रूप में कृष्ण एक रूढ़ि-भंजक विद्रोही की भूमिका में चित्रित हैं।

लक्ष्मीनारायण मिश्र के 'चक्रव्यूह' नाटक में कृष्ण का स्वरूपांकन स्वल्प है, किंतु नाटककार अपनी उद्‌घोषणा के अनुसार अलौकिक घटनाओं से बचाते हुए उनका जो स्वरूप प्रस्तुत करता है उसमें कृष्ण बिना किसी शस्त्र के महाभारत-युद्ध के अकेले संचालक हैं। उसमें अंकित है कि वे किसी दिन सृष्टि के संचालक कहलायेंगे। इस प्रकार उनके मानवीय रूप में अतिमानवीयता की झलक आ गयी है।

'अपराजित' नाटक में कृष्ण यद्यपि नायक नहीं हैं, किंतु उनकी भूमिका

नायक अश्वत्थामा से अधिक प्रभावशाली है। उनके समक्ष द्रोण, कर्ण आदि असहाय और विवश हो जाते हैं। उनको कालपुरुष बताया गया है। कृष्ण पहले से कुछ स्वीकार नहीं करते हैं, बल्कि समय

के शब्दों में 'श्रीकृष्ण यादवगण के कुरु-पांचाल में स्पर्धा रखनेवाले वृषल क्षत्रिय हैं, जिन्हें भाग्य ने दो मार्जारों के बीच वानर-न्यायाध्यक्ष बनने का सुयोग दिया था।' दुर्योधन द्वारा कृष्ण-नीति

जित देखौं तित स्याममयो है...

और परिस्थिति के अनुसार कर्तव्य का निर्धारण करते हैं। उनकी दृष्टि में सत्य वह है जिसे लोक स्वीकार करे तथा वे परलोक की सफलता में नहीं, इस लोक की सफलता में विश्वास करते हैं।

प्रगतिशील लेखकों में रांगेय राघव-कृत 'स्वर्ग-भूमि का यात्री' नाटक में गांधारी

को छल-कपट तथा मिथ्या का पर्याय बतलाया गया है। इस रचना में कृष्ण नितांत लौकिक पुरुष हैं जो मरणासन्न दुर्योधन एवं शोकग्रस्त गांधारी से व्यंग्य करते हैं। उनको अर्जुन, भीम द्वारा अश्वत्थामा का जीवित छोड़ दिया जाना अच्छा नहीं लगता। गांधारी के द्वारा

शाप दिये जाने पर वे उत्तेजित हो जाते हैं तथा धर्मराज एवं विदुर के प्रार्थना करने पर ही शांत होते हैं। धर्मराज के मन में बंधु-बांधवों के संहार से प्राप्त राज्य के प्रति विरक्ति उत्पन्न होने पर वे उन्हें राज्य-ग्रहण करने के लिए प्रेरित करते हैं। नाटककार ने बलराम के मुख से कृष्ण-नीति की विफलता का उल्लेख कराया है। यादवगण परस्पर संघर्षरत होकर विनाश को प्राप्त होते हैं। कृष्ण नितांत असहायावस्था में द्वारिका छोड़कर अंधेरे वन में तृषित पलायन करते हैं, जहां वे अहेरी द्वारा चरण में बाण-प्रहार से मर जाते हैं। किंतु कृष्ण की मृत्यु के बाद आर्य-शक्ति का क्षय एवं नाग-आभीरों का उदय संकेतित कर उनके प्रयासों की महानता के विषय में अर्जुन तथा युधिष्ठिर द्वारा कहलाया गया है। वे लौकिक धरातल पर राष्ट्रों की सत्ता के सूत्रधार बनकर राजाओं को नटों और नटियों की भांति नचानेवाले हैं। लेकिन रांगेय राघव ने कृष्ण के स्वरूप में ईश्वरत्व का समावेश नहीं किया है।

उपर्युक्त समस्त नाटकों में अंकित कृष्ण के स्वरूप से नितांत भिन्न रूप धर्मवीर भारती के 'अंधायुग' में चित्रित है। वे आधुनिक युग की अनास्था एवं संशय की भावना से अनुरंजित हैं। वे प्रभु होते हुए भी शापग्रस्त होकर मृत्यु को प्राप्त होते हैं। उनका भक्त युयुत्सु यंत्रणाओं के भोगने में असमर्थ होकर आत्मघात कर अंध-प्रेतलोक जाता है। अश्वत्थामा अंध प्रतिहिंसा का वासी और अनास्था का प्रतीक है। कृष्ण अश्वत्थामा सहित सबके शुभाशुभ कर्मों का दायित्व अपने ऊपर लेकर उसका दंड भोगते हैं। इसी कारण वे गांधारी का शाप स्वेच्छा से स्वीकार कर स्वयं को बाण मारने के लिए जरा नामक व्याध को प्रेरित करते हैं और मरण के माध्यम से नूतन मर्यादा की प्रतिष्ठा का संकेत देते हैं।

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटकों में यद्यपि कृष्ण का स्वरूप-चित्रण देश की राजनीतिक एवं राष्ट्रीय परिस्थितियों से प्रभावित है, किंतु अब तक नाटककारों द्वारा उनको राष्ट्र-निर्मात्री भूमिका में प्रधान पात्र के रूप में नहीं प्रस्तुत किया गया है। यह अवश्य है कि इस काल के नाटकों में उनका लीलामय प्रेमी रूप नहीं प्रस्तुत किया गया और उनके व्यक्तित्व को आधुनिक संदर्भों में व्यापकता प्रदान की गयी है, किंतु आज भी उनके स्वरूप–चित्रण में देवत्व का अंश न्यूनाधिक मात्रा में प्रदर्शित किया जाता है। नवीन विचारों में परिवर्तित राष्ट्रीय परिस्थितियों के संदर्भ में कृष्ण के स्वरूप का नया चित्रण अभी अपेक्षित है। यह कथन विचित्र भले ही लगे, किंतु इसकी सत्यता को अस्वीकार करना कठिन है कि उस पौराणिक युग में भी श्रीकृष्ण आधुनिक चेतना के संवाहक थे।

—कल्पना कुटीर, एटा, उ. प्र.

व्यंग्य

चरित्र-निर्माण के दिन

● शशिकांत

जीवन का एक-तिहाई बिना चरित्र के ही बीत गया, पर अब लगता है चरित्र बिना बने नहीं रहेगा।

दैन्य और अभाव बालसखा हैं, जो जन्म से अब तक सच्चे मित्र की तरह साथ छोड़कर भागे नहीं। महंगाई ढीठ हरजाई—जैसी प्रेमिका है, जो कहीं भी जाऊं—पीछा नहीं छोड़ती। टोपी से जूते तक हर चीज उसके कब्जे में आ चुकी है। मैं भागा-भागा फिरता हूं कि कहीं दो मिनट का समय मिल जाए, जरा बच्चे को पुचकार लूं, पत्नी को मुसकराकर एक नजर देख लूं, पर इसका खौफ तबाह किये है। सबसे नजरें बचाता फिर रहा हूं। घर में रहना रेल की यात्रा बनकर रह गया है। माया-मोह के बंधन अपने आप कटते चले जा रहे हैं।

अच्छी पुस्तकें, जिनमें कभी प्राण बसते थे, जो प्रेरणास्रोत थीं, अब परकीया हो गयी हैं। शो-केस के राजमहल में उनका निवास है, जहां नजर डालते ही उनके असली मालिक की आग्नेय दृष्टि बुलडाग-जैसी पीछे लग जाती है। अवकाश की सहेलियां पत्र-पत्रिकाएं, नशे की तरह त्याज्य बन गयी हैं। अभाव की यारी और महंगाई की आशिकी मेरी साख डुबा चुकी है। ऐसे में कबीर बड़ा सहारा देते हैं। सोचता हूं कि 'पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ' वाली श्रेणी में अपने को गिनाना मेरे-जैसे 'विद्वान' के योग्य नहीं है। अतः केवल ढाई अक्षर पढ़कर पंडित बनने के मौके की तलाश में हूं।

खान-पान के मामले में अवधूत दत्तात्रेय का 'प्राग्वृत्यैव संतुष्ये . .' अपना सिक्का जमा चुका है। मात्र जीवन-धारण के लिए भोजन होता है। स्वाद का मोह अनायास छूट गया है। दूध के भाव पानी खरीदते-खरीदते एक दिन बुद्धत्व प्राप्त हो गया, जब पत्नी ने कहा कि पानी के इतने दाम? सहारे के लिए तिनका मिल गया! तब से गुड़ के साथ बिना दूध की चाय (उसे चाय ही तो कहेंगे) चल रही है। पत्नी का विचार था कि एक गाय पाल ली जाए, पर मैंने गांधी-वचन को ला खड़ा किया कि बकरी का दूध ज्यादा मुफीद होता है। जब तक इस पर मतैक्य हो, मेरी आत्मा और ऊंची उठ गयी। तिलक का 'स्वराज्य

हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' याद आया ! तिलक से गीता और गीता से 'शुनिश्चैव श्वपाको च . . .' याद आया। मन ने उसी ऊंचाई से पुकार-कर कहा—"सब जीव समान हैं।" पांडित्य की आड़ में ही अपने स्वार्थ के लिए किसी की स्वतंत्रता हरण न करने का व्रत ले डाला। सारे परिवार की

स्वार्थपरक दृष्टि की स्थितप्रज्ञ की भांति उपेक्षा करने से यह शुभ-संकल्प भी अकाल में ही वीरगति को प्राप्त हुआ।

गेहूं से जी ऊब गया था। चना घोड़ों के लिए कहा जाता है, अतः बाजरा चला ! जौ के गुण देर से मालूम हुए। अब सत्य के प्रयोगों की तरह जौ के प्रयोग हो रहे हैं। अंगरेजी उक्ति 'यूज द ग्रीन्स ऐंड कीप इन टीन्स' की सत्यता जांचने के लिए बथुआ-सरसों पर कंसंट्रेट कर रहा हूं। उत्तम सब्जी के मामले में घर में उगी सेम भविष्य में आत्मनिर्भर होने की आस बंधाये है। हार्ट-अटैक्स के डर से देशी घी, सूखे मेवे (जिस नाम से मूंगफली खायी जाती थी), आलू, चावल, चीनी सब बंद है। शरीर से ज्यादा आत्मा की ओर ध्यान है, पर चूंकि आत्मा के लिए शरीर का मकान चाहिए ही, अतः सेहत बनाने के ये सारे इंतजाम मैंने कर रखे हैं।

वस्त्रों के मामले में विदेशी अनु-करण छूट गया है। गांधीजी की लंगोटी अब आदर्श बन गयी है। मितव्ययिता के आकस्मिक भूचाल ने मेरी एक पुरानी

सरदर्द का मुक़ाबला
सेरिडॉन से कीजिए.
सिर्फ़ सेरिडॉन सरदर्द
और शरीरदर्द से आपको
आराम—बेहतर तौर
पर आराम—देती है.
इसका अनोखा
नुसख़ा दर्द दूर
करने के साथ-साथ
आपका मन हल्का
करता है और ताज़गी
भी देता है. यह है
रोश का अन्तर्राष्ट्रीय
अनुसंधान जो हमेशा
आपकी सेवा में लगा है.
Saridon
सिर्फ़ एक सेरिडॉन से सभी तरह के सरदर्द ग़ायब
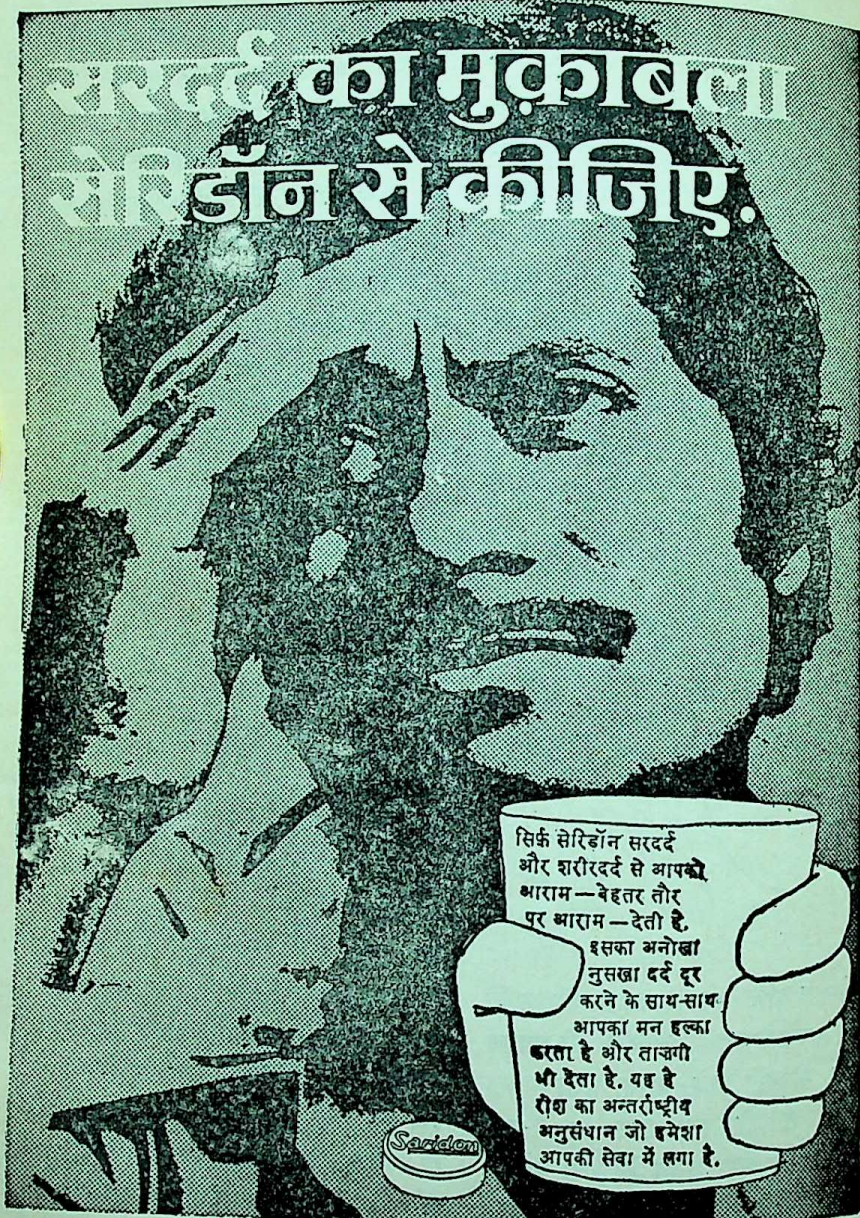
पैंट से बच्चों के दो पैंट पैदा कर दिये हैं, और बुश्शर्ट का भूगोल बदलकर उसे ब्लाउज का रूप दे डाला है। स्वदेशी के गंगावतरण से दृष्टि के विभेदकारी कीटाणु नष्ट हो गये हैं। भाव के हिसाब से अब की मारकीन यों भी पहले के रेशम से मोर्चा ले रही है। फिर उच्च विचार का हमला भी है कि वस्त्र लज्जा का आवरण हैं न कि प्रदर्शन की वस्तु। अब 'मन रंगाने' पर जोर है। जिसमें स्वाभिमान, देशभक्ति और आत्मा का उत्थान सभी का 'स्कोप' है।

ट्यूशन छुड़वा दिये हैं। शिक्षा के मामले में बच्चों को परावलंबी बनाने के पक्ष में मैं कभी नहीं था। उन्हें खुद पढ़ाकर विद्या के 'व्यये कृते वर्द्धति एव नित्यम्' को सत्य सिद्ध करने की कामना है। अपनी योग्यता में इतना विश्वास है कि उन्हें पास होने के मामले में न सही, तो फेल होने के मामले में तो स्वावलंबी बना ही दूंगा। 'सा विद्या या विमुक्तये' का अर्थ अब खलकर सामने आया है। अपनी विद्या ने मुझे बच्चों की विद्या की चिंता से मक्त कर दिया है।

सिनेमा, कैबरे आदि कुत्सित ढंग के मनोविनोद हैं, यह उम्र और अनुभव बढ़ने के बावजूद अभी हाल ही समझ में आया। अतः थोड़े दिन से इन्हें त्याग दिया है (पड़ोस के सिनेमा का फ्री पास मिलना इसका एक अपवाद रहेगा)। उतना समय घर की इकलौती पुस्तक 'सुदामा-चरित' और आत्मालोचन (जिसमें 'आत्मवत सर्वभूतेषु' के अनुसार पड़ोसी तथा संबंधी भी शामिल हैं) में लगता है। 'लव दाई नेवर' का सूर्य अचानक अंधेरे मानस में चमक उठा है, अतः मौका मिलते ही अधिक से अधिक समय पड़ोसियों और इष्टमित्रों के यहां रहकर, उनके 'रूखे-सूखे आतिथ्य' को स्नेहपूर्वक स्वीकार करते हुए अपना प्रेम-प्रदर्शन करता हूं।

चिंता का दाह फिर भी कभी-कभी पीछे लग जाता है। उसके लिए लाटरी का टिकट आशा का रसायन बन गया है। उसे एक दिन निष्काम भाव से खरीदकर तीस दिन तक अनिश्चित 'फारेन एड' पर आश्रित योजनाएं मैं बनाता रहता हूं।

भाषणों की वृष्टि में सराबोर होते हुए आश्वासनों की खाद के सहारे पनपा हूं। अतः आनेवाली समृद्धि की आशा का 'गोवर्धन' धारण किये हूं—इस आस्था के साथ कि समृद्धि का सूरज या चरित्र का सोना—कोई-न-कोई तो चमकेगा ही। ज्यादा संभावना चरित्र बनने की ही है। और अगर वह बन गया तो शरीर की चिंता किसे रहेगी! आत्मा को ऊंचा उठाऊंगा . . . ऊंचा . . . ऊंचा . . . और ऊंचा—कि वह जीते-जी जाकर परमात्मा में मिल जाए!

—द्वारा, आर. एन. अवस्थी,
बिक्रीकर अधिकारी, हरदोई (उ. प्र.)

ऊर्जा संकट की घड़ियों में

● बी. एल. जोशी

बंबई महासमुद्र की तटीय गहराइयों में बहुचर्चित 'सागरसम्राट' ने बंबई हाई में खोदे गये दूसरे कूप से तेल के स्रोतों को खोज निकाला है। तेल और रसायन मंत्री ने इसे अब तक की तेल-संबंधी खोजों में सबसे बड़ी उपलब्धि कहा है। उनका विश्वास है कि इस तेल-स्रोत से प्रतिदिन १,५०० बैरल से २,५०० बैरल तक तेल प्राप्त किया जा सकेगा। इस तरह यह तेल-स्रोत १९७६ के मध्य से ही लगभग १० लाख मीटरी टन तेल का प्रतिवर्ष उत्पादन करेगा। इससे विश्व बैंक के अनुसार हम ८ करोड़ डालर की विदेशी मुद्रा की बचत हर वर्ष कर सकेंगे तथा इस राशि का उपयोग सागरतट में तेल की खोज के कार्यक्रम को गतिशील बनाने के लिए किया जा सकेगा।

यद्यपि बंबई हाई के तेल-क्षेत्र की संरचना की रूपरेखा अंकित किया जाना तत्काल संभव नहीं है, तथापि तेल तथा प्राकृतिक गैस आयोग के विशेषज्ञों को यह निर्देश दिया गया है कि वे उत्पादन के प्रथम चरण के बारे में सर्वेक्षण कर उत्पादन-संबंधी सभी संभावनाओं पर अविलंब अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करें, ताकि इससे उत्पादन प्रारंभ होकर ऊर्जा-संकट यथाशीघ्र दूर हो सके। आज जबकि

बाय : सागर सम्राट दाहिने : तेल की खोज के लिए नकली भूकम्प पैदा किया जा रहा है
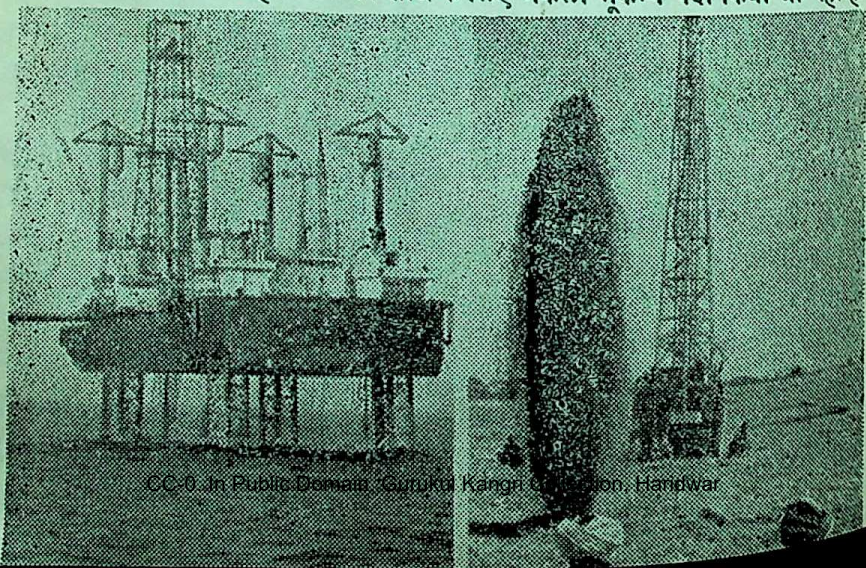
ऊर्जा-संकट से उबरने के लिए भारत को न सिर्फ तेल-उत्पादक देशों से बल्कि यूरोपीय आर्थिक समुदाय से भी आर्थिक सहायता लेनी पड़ रही है, विदेशी मुद्रा का संकट बढ़ रहा है, भुगतान-संतुलन ठीक नहीं है, उत्पादन अवरुद्ध-सा हो गया है, ऐसी स्थिति में बंबई हाई का तेल-स्रोत इस क्षेत्र में आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ने का ठोस आधार बन सकेगा।

संसार में तेल के कुल ज्ञात भंडार का २९ प्रतिशत तेल सऊदी अरब की धरती के गर्भ में छिपा हुआ है, लगभग २५ प्रतिशत अमरीका में तथा शेष कुवैत, ईरान, इराक, लीबिया, आबूधाबी, ओमन एवं अन्य देशों की धरती में उपलब्ध होता है। तेल ऊर्जा का ऐसा एकमात्र साधन है जिसका अब तक कोई विकल्प ही नहीं है। अब संसार के कुल तेल-उत्पादन का लगभग २० प्रतिशत महासमुद्रों की तटीय गहराइयों से प्राप्त किया जाने लगा है। सागरतटों पर तेल की शोध एवं खुदाई के बढ़ते प्रयत्नों को देखकर इस तथ्य पर विश्वास किया जा सकता है कि १९८० तक संसार के कुल तेल-उत्पादन का ३३.३३ प्रतिशत अंश महासागरों की तटीय संरचनाओं से प्राप्त किया जाने लगेगा।

महासमुद्रों की तटीय गहराइयों से तेल-प्राप्ति का सिलसिला आज से २५ वर्ष पहले मेक्सिको की खाड़ी में ल्योइसीना से १० मील दूर संसार के पहले महासागरीय तेलकूप के खनन से प्रारंभ हुआ। तत्पश्चात अमरीका ने सागरतल में तेल की खोज एवं तेल-उत्पादन की तकनीक में त्वरित विकास किया। आज मेक्सिको की खाड़ी, कैरीबियन सागर, वैनेजुला, उत्तरी सागर, पश्चिमी एशिया, इंडोनेशिया, पश्चिमी अफ्रीका, पूर्वी कनाडा,

अनुसंधानशाला में बाल के नमनों की जांच
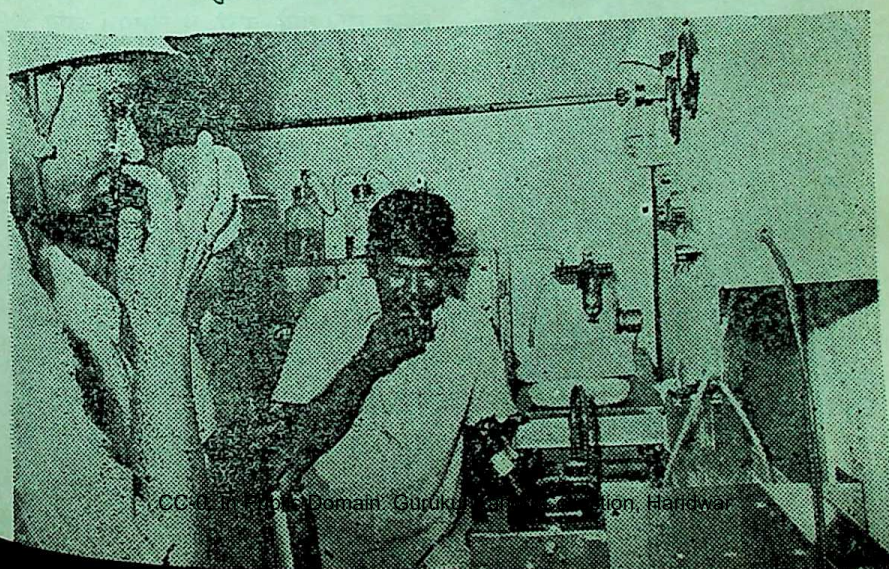
आस्ट्रेलिया एवं जापान में कई स्थानों पर सागरतल में तेल की प्राप्ति हुई है।

भारत में समुद्र से तेल की खोज

भारत में ३,९०,००० वर्ग-किलोमीटर महासागरीय-तट में तथा १० लाख वर्ग-किलोमीटर भूक्षेत्र में तेल की संभावनाएं व्यक्त की जाती हैं। खंभात की खाड़ी, अरब सागर, कच्छ की खाड़ी, कारोमंडल-तट, आंध्रप्रदेश में कृष्णा-गोदावरी के डेल्टा-क्षेत्र, बंगाल में महानदी के पश्चिम तक फैले हुए सुंदरवन-क्षेत्र, केरल, अंडमान एवं निकोबार द्वीपों के तटीय क्षेत्रों में तेल की संभावनाओं पर विचार कर तेल तथा प्राकृतिक गैस आयोग ने १८ संरचनाओं को भूगर्भ एवं तेल-संबंधी खोजों की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण बताया है।
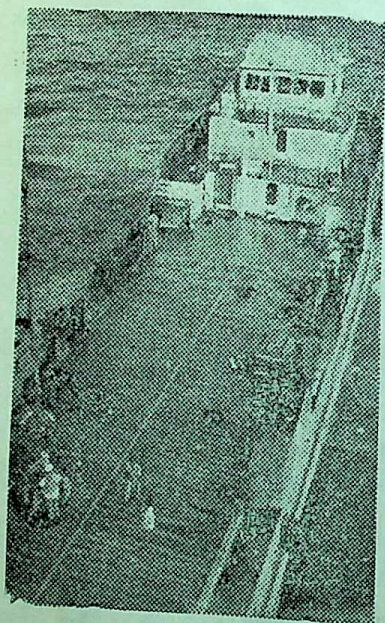
भारवाहक नौका

सागरतल से तेल की खोज का कार्यक्रम १९६३ से भारतीय जहाज 'एम. वी. महावीर' के सहयोग से खंभात की खाड़ी के उत्तरी भाग में भूकंपीय सर्वेक्षण से प्रारंभ किया गया। उसके बाद रूस के भूकंपीय सर्वेक्षण जहाज 'अकाडेमिक अहखान गैपलस्के' के सहयोग से १९६४ में और अधिक भूकंपीय सर्वेक्षण कच्छ की खाड़ी, खंभात की खाड़ी, अरब सागर, केरलतट, मन्नार की खाड़ी, पाक जलडमरूमध्य, कारोमंडल तट एवं बंगाल की खाड़ी में किये गये।

इन्हीं सर्वेक्षणों से उत्साहित होकर तेल तथा प्राकृतिक गैस-आयोग ने अलियाबेट, बंबई हाई, तारापुर, बासिन, देहनू तथा ड्यू की संरचनाओं में तेल की खोज का कार्य हाथ में लिया। फ्रांस के कुछ सागरतलीय सर्वेक्षकों के सहयोग से खदाई के क्षेत्र निर्धारित किये।

तेल तथा प्राकृतिक गैस आयोग खंभात की खाड़ी में स्थित अलियाबेट में सागर के छिछले पानी में पहला कूप-खनन १९७० में प्रारंभ किया। इसके लिए भारतीय इंजीनियरों द्वारा बनाये गये स्थायी मंच का उपयोग किया गया तथा मार्च, १९७१ में इस कूप में पहले तेल-स्रोत का पता लगाया, किंतु व्याव-

सायिक दृष्टि से लाभप्रद न होने से इस कूप का कार्य स्थगित कर देना पड़ा।

'सागर-सम्राट' की विशेषता

जापानी फर्म मेसर्स मिश्युबीसी से १२ करोड़, ७० लाख रुपयों की लागत से 'सागर-सम्राट' नामक व्यधन-पोत (ड्रिलिंग-शिप) बनवाया गया। 'सागर- सम्राट' पर कार्यारंभ से पूर्व भारतीय इंजीनियरों एवं तकनीशियनों को अमरीका तथा पश्चिम एशिया के विभिन्न समुद्रतटीय संरचनाओं पर तेल की खोज एवं व्यधन-कार्य का क्रियात्मक शिक्षण दिया गया।

'सागर-सम्राट' संसार का तीसरा मर्करी-टाइप स्वतःअग्रगामी तथा स्वतः-उन्नतगामी व्यधन-पोत है। इसका व्यधन-मंच (ड्रिलिंग-प्लेटफार्म) ८५ मीटर लंबा और ४० मीटर चौड़ा है। इस पर २५ यात्रियोंवाले हेलीकॉप्टर के उतरने के लिए ८५ फुट अर्द्धव्यास की ६ मीटर की अर्ध-चंद्राकार पट्टी है। यह जहाज १२,-५०० किलोमीटर तक बिना अतिरिक्त ईंधन के चल सकता है।

एक स्थान से दूसरे स्थान तक आगे बढ़ाने के लिए इसमें ८,००० अश्व-शक्ति का डीजल से चलनेवाला भीमकाय जेन-रेटर है। इस पोत का व्यधन-मंच १०० मीटर लंबी टांगों पर हवा में खड़ा है। 'सागर-सम्राट' समुद्र में इधर-उधर यात्रा में ८.५ नाट (६,०८० फुट प्रति-नाट का समुद्री माप) की गति से घूम सकता है।
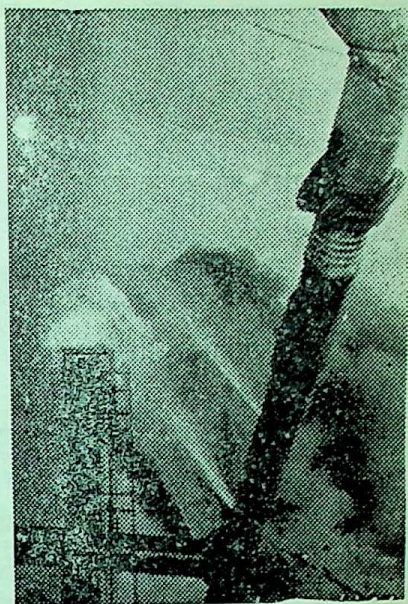
यह व्यधन-पोत समुद्र में कम-से-

कूपों से निकले तेल का परीक्षण जलाकर किया जा रहा है

कम ७ मीटर और अधिक-से-अधिक ८० मीटर की गहराई में व्यधन-कार्य कर सकता है। इस जहाज का भार ९,०७० टन है तथा इसके मध्य में २ वाता-नुकूलित डेक-क्वार्टर हैं, जिनमें ७२ व्यक्तियों के रहने की व्यवस्था है तथा २५ टन क्षमता की दो घुमावदार क्रेनें लगी हुई हैं। यह जहाज ६,००० मीटर तक की गहराई में १२० फुट प्रति-घंटा व्यधन-कार्य कर सकने की क्षमता रखता है।

इस जहाज के बीमे की किस्त ८४ लाख रुपया प्रतिवर्ष है।

इस समय इस जहाज पर १७ ऑफ-

शोर इंटरनेशनल के विशेषज्ञ ७० अन्य कार्यकर्ताओं के साथ भारतीय कप्तान के निर्देशन में तेल की खोज के कार्य में लगे हुए हैं।

'सागर-सम्राट' का व्यधन-कार्य

३१ मार्च, १९७३ को 'सागर-सम्राट' हिरोशिमा पर भारतीय तेल तथा प्राकृतिक गैस आयोग के अधिकारियों को सौंपा गया, किंतु 'सागर-सम्राट' के बीमादार मैसर्स लायड्स ऑव लंदन ने जलवायु एवं मौसम-संबंधी विषमताओं को देखकर मई, '७३ में व्यधन-कार्य प्रारंभ करने की अनुमति नहीं दी। अंततोगत्वा सितंबर, १९७३ से बंबई हाई में प्रथम कूप-खनन प्रारंभ हुआ तब 'सागर-सम्राट' को एक स्थान से दूसरे स्थान तक हटाने की क्रिया की जांच के उद्देश्य से ११ अक्तूबर, १९७३ को तारापुर संरचना पर लाया गया तथा यहां ४,५०० मीटर की गहराई तक व्यधन-कार्य प्रारंभ किया गया, किंतु २,७८१.५ मीटर तक व्यधन-कार्य करने पर खुदाई-यंत्रों पर अधिक भूगर्भिक दबाव, चट्टानों की टूटन, एवं भारवाही यंत्र पर आंतरिक तरंगों से पत्थर के बड़े-बड़े टुकड़ों के ऊपर उठने की असंगतियों के परिणामस्वरूप विशेषज्ञों की राय के अनुसार इस स्थान पर व्यधन-कार्य स्थगित कर दिया गया।

विवशतः बंबई हाई पर बंबई के सागरतट से १७५ किलोमीटर दूर अरब सागर में ३ फरवरी, १९७४ को 'सागर-सम्राट' ने पहला कूप-खनन प्रारंभ किया। २२ फरवरी, १९७४ को ९६२ से ९८९ मीटर की गहराई पर तेल के प्रथम स्रोत का तथा १,३५० से १,६१२ मीटर की गहराई पर तेल के दो अन्य स्रोतों का पता चला। ७ अक्तूबर, '७४ से बंबई हाई पर 'सागर-सम्राट' द्वारा दूसरा कुआं खोदना प्रारंभ किया गया। परिणामस्वरूप यह स्पष्ट हो गया कि इस कूप में पर्याप्त मात्रा में तेल उपलब्ध है तथा यह तेल चूने के पत्थरों की परतदार चट्टानों में पाया गया है जबकि अब तक भारत में बलुआ पत्थरों की परतों में ही तेल की प्राप्ति हुई थी।

इस कूप में १९७६ के मध्य १,५०० से २,५०० बैरल तक तेल प्रतिदिन प्राप्त होने की आशा से उत्पादन-कार्य में शीघ्रता तथा अन्वेषण-कार्य में तीव्रता लाने के उद्देश्य से भारत सरकार ने तेल तथा प्राकृतिक गैस आयोग को फिलहाल एक व्यधन-पोत किराये पर लेने तथा साथ-साथ दो अन्य व्यधन-पोत प्राप्त करने के अधिकार प्रदान किये हैं।

इस कूप का परीक्षण पूरा करने के बाद 'सागर-सम्राट' इस स्थान से १५ किलोमीटर पूर्व की ओर हटा लिया जाएगा, तीसरे कूप का यह स्थल बंबई हाई के साथ एक छोर पर स्थित है, जबकि चौथा कूप वर्तमान स्थल से ५० किलोमीटर दक्षिण में खोदा जाएगा। इन दो स्थानों पर व्यधन-कार्य से बंबई

हाई की संरचना की रूपरेखा निर्धारित करने तथा संभावित उत्पादन का अनुमान लगाने में सहायता मिलेगी।

देश में पेट्रोल का उत्पादन बहुत कम है। परिणामत: आजादी के २७ वर्षों के बाद भी हमें अपनी आवश्यकता का ६५.४ प्रतिशत पेट्रोल संसार के पेट्रोल-उत्पादक देशों से आयात करना पड़ रहा है। पेट्रोल-आयात पर जहां हमारा व्यय १९७० में मात्र ११८ करोड़ रुपये था, आज ४८७ करोड़ रुपया है। संसार में बढ़ते मूल्य और बढ़ती हुई मांग के अनुसार हमें १९७८-७९ तक ८११ करोड़ रुपये, १९८३-८४ में १,२४० करोड़ रुपये एवं १९८५-८६ में १,५०० करोड़ रुपये मूल्य के पेट्रोल का आयात करना पड़ेगा। इस बढ़ते हुए खर्च एवं विदेशी मुद्रा की कमी को देखते हुए यह आवश्यक है कि हम अपनी संपूर्ण सामर्थ्य से सागर-तट के छिछले पानी में तेल की खोज के महत्त्वपूर्ण कार्य में जुट जाएं।

इस हेतु हमें—

● पेट्रोल के नये स्रोतों की खोज करने के लिए जोरशोर से महासमुद्र की तटीय गहराई में तेल-संभावित क्षेत्रों का भूकंपीय सर्वेक्षण कर तेल का पता लगाने के काम को हर दृष्टि से प्राथमिकता देना चाहिए।

● बंबई हाई की संरचना की रूपरेखा का निर्धारण कर इस क्षेत्र में और अधिक कुएं खोदने चाहिए तथा प्राप्त तेल का उत्पादन शीघ्र प्रारंभ करने की दिशा में भारत सरकार को ठोस कदम उठाने चाहिए।

● आयोग को तेल की खोज एवं व्यधन-कार्य की अधुनातन तकनीक की जानकारी के लिए व्यापक प्रयत्न करने चाहिए। तकनीकी ज्ञान की प्राप्ति किसी एक स्रोत तक सीमित न रखकर उसका क्षेत्र अधिक व्यापक किया जाना चाहिए।

● व्यधन-कार्य एवं खोज कार्य के लिए और अधिक व्यधन-पोत तथा सर्वेक्षण-जहाजों का प्रबंध किया जाना चाहिए।

● विदेशों से सेवा तथा सामग्री का सहयोग प्राप्त कर यदि हम इस कार्य को अपने नियंत्रण एवं निर्देश में पूरा करें, तो हम राष्ट्रीय हितों की रक्षा कर सकेंगे तथा आत्मनिर्भरता की ओर तेजी से बढ़ सकेंगे।

● पांचवीं योजना में इसके लिए १,२६० करोड़ रु. की राशि का प्रावधान है। उसका पूर्णरूपेण सदुपयोग किया जाना चाहिए।

यदि हम वर्तमान विश्वव्यापी ऊर्जा-संकट को देखते हुए इस दिशा में द्रुत गति से प्रगति कर आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ सके तो निश्चित ही देश के भविष्य के निर्माण की दिशा में यह ठोस एवं सशक्त कदम होगा।

—वरिष्ठ अध्यापक अर्थशास्त्र, उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, वल्लभनगर, उदयपुर (राज.)

काले समुद्र के तीर का शहर

• शंकरदयाल सिंह

बलगारिया आकर अगर कोई वारना न जाए तो उसका इस देश में आना बेकार ही कहा जाएगा। सोफिया बलगारिया की राजधानी जरूर है, लेकिन बलगारिया का वास्तविक सौंदर्य वारना में वास करता है। बलगारिया का बहुत बड़ा भाग काले समुद्र के किनारे है और उस समुद्र को बलगारियावासियों ने केवल तिजारत या मनोरंजन के लिए ही उपयोग में नहीं लिया वरन सौंदर्य का मुकुट भी उसे पहना दिया है। 'ब्लैक-सी' के किनारे बलगारिया के कई नगर हैं, लेकिन वारना उन सबों का सरताज है।

दुनिया में शायद ही कोई इतना बड़ा समुद्री किनारा हो जहां जंगलों की सघनता, वस्तुओं का ऐसा सुनहलापन और इतनी समतल भूमि एकसाथ देखने को मिले। इसीलिए बलगारियावासी वारना को 'खूबसूरती की रानी' कहते हैं।

सोफिया से करीब पांच सौ किलो-मीटर दूर स्थित वारना रेल, सड़क और हवाईजहाज तीनों से जुड़ा है। बलगारिया में विचित्र पद्धति है, सोफिया से वारना जाने के लिए हवाईजहाज से विदेशियों को २३ लीवा देना पड़ता है और बल-गारियावासियों को केवल १३ लीवा। एक लीवा भारत के सवा छह रुपयों के बराबर है।

वारना के एक होटल में नृत्य, गीत और संगीत

लेकिन एक बार यात्री अगर वारना पहुंच जाए तो वहां से हटने का उसका मन नहीं करेगा। साफ-सुथरी, चौड़ी सड़कें, सड़कों के दोनों ओर लंबी-लंबी वृक्षों की कतारें, वारना के आस-पास मीलों फैले अंगूरों के फर्श, मीलों फैला समुद्री किनारा, जंगल, पुराने और नये मकानों की पंक्तियां, एक-से अनेक रेस्तरां, डिपार्टमेंटल स्टोर, चमचमाती गाड़ियां, तितलियों के समान फुदकती बलगारियाई बालाएं—ये सब मिलकर वारना को अंतर्राष्ट्रीय समुद्री किनारा या पर्यटक-केंद्र का गौरव प्रदान करते हैं।

वारना में कुल मिलाकर ७० बड़े-बड़े होटल और हजारों कैंप हैं तथा एकसाथ ६० हजार पर्यटकों को रखने की क्षमता है। किसानों, मजदूरों के लिए अलग भवन, पायनियर-कैंप अलग, लेखकों-पत्रकारों के लिए अलग, अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों के लिए अलग, सरकारी आवास अलग, कम्युनिस्ट पार्टी और अग्ररेरियन पार्टी के लिए अलग तथा विदेशी पर्यटकों के लिए अलग। यहां बने भवन भी अपने आप में नमूने हैं—कहीं जापानी शिल्प, कहीं बलगारिया का प्राचीन शिल्प, कहीं क्यूबा की शैली और कहीं अत्याधुनिक होटल, यरोपियन शिल्प-शैली। यात्रियों के लिए 'बलकान-टूरिस्ट' द्वारा सारी सुविधा प्रदान की जाती है।

वारना गरमियों में दुनिया भर के सैलानियों का एक प्रमुख केंद्र हो जाता है, जिसमें सबसे अधिक यात्री सोवियत संघ, फ्रांस, इंगलैंड, जरमनी, पोलैंड और अरब देशों से आते हैं। इनके अतिरिक्त बलगारिया की पूरी आबादी का भी एक बहुत बड़ा हिस्सा यहां गरमियों में आता है। पूछने पर पता चला कि पिछले वर्ष देशी-विदेशी कुल मिलाकर करीब १५ लाख पर्यटक यहां आये।

यहां का काला समुद्र जहां एक ओर इस धरती के लिए वरदान है, वहीं कभी-कभी अभिशाप भी। जब कभी उसमें तूफान आता है तो वह 'पागल' हो जाता है तथा कितनों की जान उसमें चली जाती है।

लेखक

लेकिन इस सबके बावजूद वारना का तट सागर-सौंदर्य का जीता-जागता नमूना है। किसी यूरोपीय यवती के सुनहले बालों के समान बालुओं के ढेर, मदमाती हवा, जंगल की हरीतिमा, जल का कालापन, समुद्र-तट को छूते सैकड़ों होटल-बार-रेस्तरां, ढेर के ढेर सैलानियों का दीवानापन, शराब के नशे में धुत्त किसी युवती की आंखों के रंग के समान समुद्र किनारे फैली मस्ती—वारना की प्रशंसा या उसके चित्र के लिए कुछ भी कहा जाए थोड़ा है।

सोफिया के समान ही यहां भी सैकड़ों पार्क हैं, लेकिन यह स्थान सोफिया से बढ़कर है, कारण सोफिया के पास जो कुछ भी है वह वारना के पास है। लेकिन सोफिया के पास समुद्र का किनारा नहीं है, और समुद्र का किनारा केवल अनोखा ही नहीं होता बल्कि क्षितिज के छोर को छूने की चाह रखनेवालों के लिए जीवन की मधुमय थपथपाहट भी होता है।

मैंने शुरू से समुद्र को बार-बार ललचायी नजरों से देखा है और आज अपने देश से हजारों मील दूर वारना के इस काले समुद्री तट पर खड़े होकर लहरों के द्वारा चाहता हूं कि वह संदेश किसी अनचाहे और अनदेखे सपने को भेज दूं और कह दूं कि स्वप्न तू सत्य हो जा और चाहता हूं कि क्षितिज के छोर को लपक कर पकड़ लूं।

वारना के समुद्री किनारों का नाम भी विचित्र रखा है इन सबों ने—'दुजवा', जिसका अर्थ होता है मैत्री, 'अलवेना'—बलगारिया की खूबसूरत लड़कियों का नाम हुआ करता है तथा 'इस्लाल्नीप्यासस्सी'—सुनहली बालू का फर्श। समुद्री किनारों का नाम ही इन्होंने ऐसा नहीं दिया है बल्कि उसे इसी प्रकार सजाया और संवारा भी है।

लेकिन वारना की ख्याति केवल समुद्री किनारे के कारण नहीं है, वरन इसके औद्योगिक विकास के कारण भी है।

—४३ मीना बाग, नयी दिल्ली-११

दो करोड़पति एक बड़े अमरीकी डिपार्टमेंटल स्टोर में पहुंचे। एक खूबसूरत कार देख उनमें से एक ने उसे खरीदने की नीयत से पर्स से नोट निकालने चाहे तो दूसरा बोला, "ठहरिए, इसका बिल मैं चुकाऊंगा। आप पहले ही लंच का बिल दे चुके हैं।"
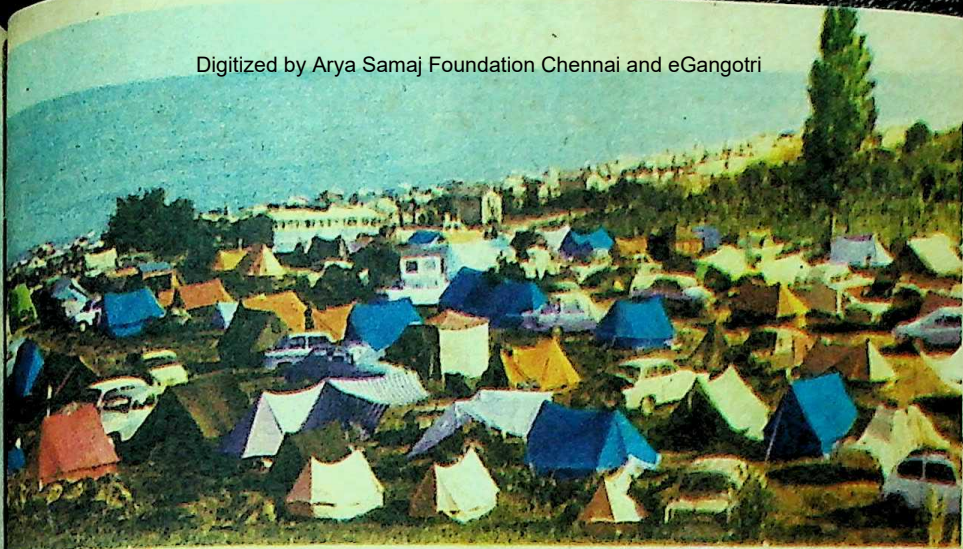
१. समुद्र-तट के सामने एक और समुद्र...
वारना में सैलानियों का समुद्र

२. काले सागर का तीर : वारना शहर
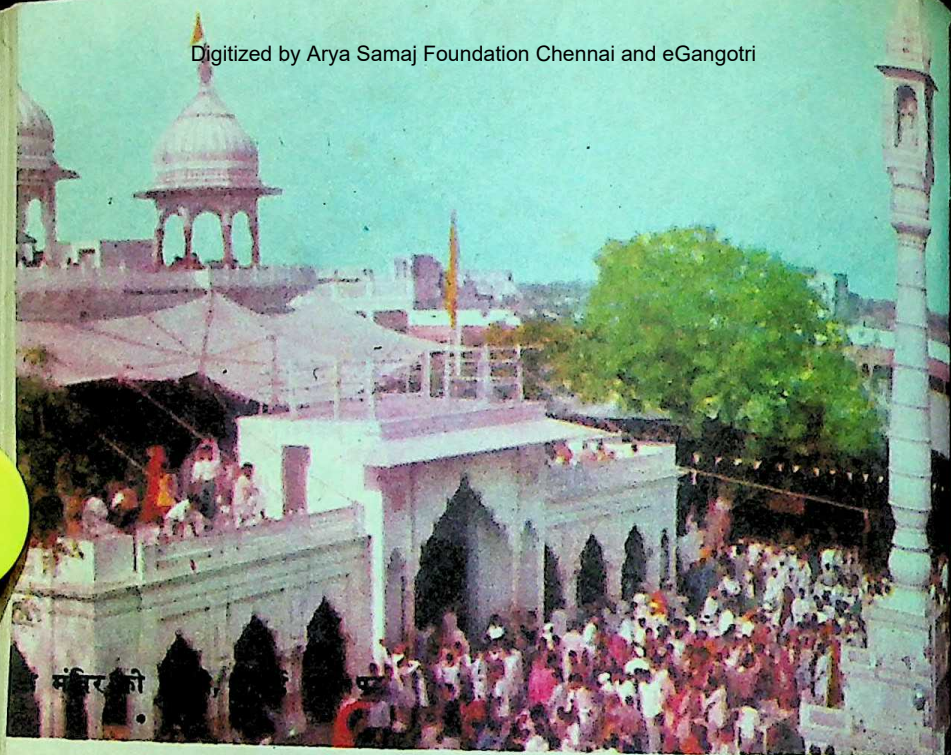
छतरियों और स्मारकों के देश में

• रतनलाल मिश्र

राजस्थान का मरुप्रदेश अनेक आकर्षणों का केंद्र है। बालू-धूल के भूरे रंग के उत्तुंग टीले, और सघन, हरियाली की झोली-भरे छोटे-छोटे कोमल वृंतवाले पौधे, लालिमा से आच्छादित पुष्प-संभार और इन सबके बीच से इनको चीरकर दूर से दिखायी देते स्मारकों के गुंबज आगंतुक को बरबस अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। इस प्रदेश में स्मारकों और छतरियों का बाहुल्य है तथा वे एक-दूसरे के इतने पास हैं कि देखकर आश्चर्य होता है।

छतरियां और स्मारक मानव की जिजीविषा के मूर्तरूप हैं। भौतिक देह जब भस्मीभूत हो जाती है तब भी किसी-न-किसी रूप में ऐहिक जगत में उपस्थिति के प्रयत्न किये जाते हैं तथा इस प्रकार इस मनःस्थिति के लोग स्मृति-शेष रूप में भी जीवित रहते हैं। उनकी स्मृति इतनी रक्षणीय होती है कि उनके अनुयायी, वंशज, शिष्य उनके भौतिक अवशेषों पर विशालकाय स्मारक खड़ा करते हैं तथा छतरियों का निर्माण करते हैं। छतरियां भौतिक अवशेषों के ऊपर

बनती हैं तथा स्मारक प्रायः मृतात्माओं की स्मृति के स्थायीकरण के कलात्मक प्रतीक होते हैं।

राजस्थान में स्मारकों का अपना स्थापत्य है। इनके दो प्रकार हैं। प्रथम, राजघरानों द्वारा निर्मित छतरियां; दूसरे, धनीमानी लोगों की स्मृति में बनी, रेगिस्तानी प्रदेश शेखावाटी की विशाल छतरियां। शेखावाटी की छतरियों में निर्माण-शैली की भव्यता के साथ-साथ कलात्मक बारीकी भी है।

इन स्मारकों का स्थापत्य इतना विविध स्वरूपवाला है कि कोई भी स्थापत्य-कला-प्रेमी उसकी उपेक्षा नहीं कर सकता।

उदयपुर के आहाड़ नामक ग्राम में राजाओं की विशाल छतरियों का जाल बिछा हुआ है। कुंड के बीच ऊंचे चबूतरे पर गंधर्वसेन की छतरी है तथा कुंड के समीप महाराणा अमरसिंह प्रथम की छतरी है। इसकी नींव वि. सं. १६७७ में रखी गयी थी। यहां महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय की विशाल छतरी है, जो जैन स्थापत्य-कलाविधि से बनी है। निर्माण का बाहरी आकार-प्रकार मुसलिम प्रभाव लिये हुए है। इसके पास अग्निकोण में ऊंचे स्थल पर महाराणा कर्णसिंह तथा जगतसिंह की छोटी छतरियां हैं। यहीं महाराणा भीमसिंह, जवानसिंह, सरदारसिंह, स्वरूपसिंह, शंभुसिंह तथा सज्जनसिंह के स्मारक बने हुए हैं। यह एक विडंबना है कि सबसे प्रसिद्ध महाराणा प्रताप की छतरी छोटी-सी

छतरी निर्माण के सघन प्रकार की द्योतक : फतेहपुर (शेखावाटी प्रदेश) की प्रसिद्ध छतरी
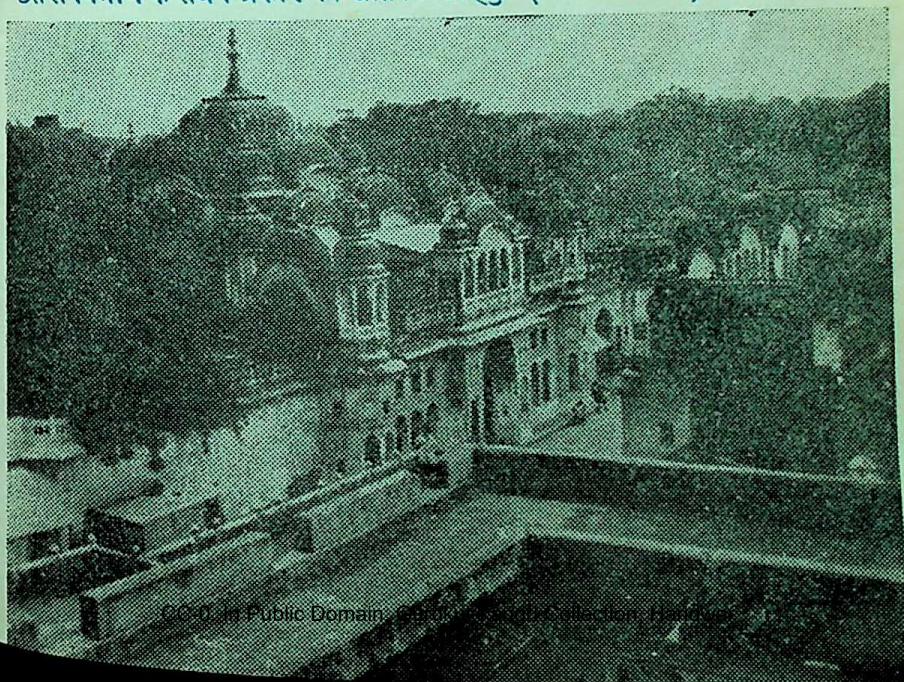
है, जो चावड़ नामक गांव में बनी है। कर्मठ, कीर्तिशाली जीवन पर छोटा-सा सीधा-सादा स्मारक विचित्र विरोधाभास है; जो अपनी एकांतता में खोया है।

जोधपुर नगर से पांच मील दूर उत्तर में नागद्रि नदी के किनारे पंचकुंड नामक पवित्र स्थान है। यहीं पहले राजकीय श्मशान थे। राव चूड़ा, राव रणमल, राव जोधा, राव सांगा के विशाल स्मारक यहीं हैं। मालदेव के समय से श्मशान इस स्थान से हटाकर मोतीसिंह के बाग के पास रखा गया था, जहां महाराजा अजीतसिंह की विशाल कलापूर्ण छतरी है। यह स्थापत्य-कला का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। इस स्मारक में कारीगरी से चित्रित स्तंभोंवाला विशाल कक्ष है, जिसके चारो कोनों पर उन्नत कलश लगे हुए हैं। तीन विभिन्न मंजिलों में तोरण-द्वार एवं झुके हुए धनुषाकार छज्जों की पंक्तियां हैं। स्मारक के शिखर अत्यंत कलापूर्ण हैं। शिखर और कलश सभी आकर्षक हैं। इनकी कला की प्रशंसा एच. डब्लू. गैरिक को भी करनी पड़ी, जो राजस्थानी स्थापत्य-कला के प्रति अधिक सदय नहीं थे। आर्चीबाल्ड ऐडम ने इसे सर्वोत्कृष्ट देवल की संज्ञा दी है तथा निर्माण की विशेषता तथा कला की बारीकी के लिए इसे बेजोड़ बताया है।

बीकानेर शहर से लगभग पांच मील की दूरी पर देवीकुंड नामक स्थान पर नरेशों का दाह-स्थल है। यहां बड़ी संख्या में छतरियां हैं, जो राजा कल्याण-

रायगढ़ नगर की कलापूर्ण छतरी : चारों ओर के गुंबजों की आकर्षक बनावट
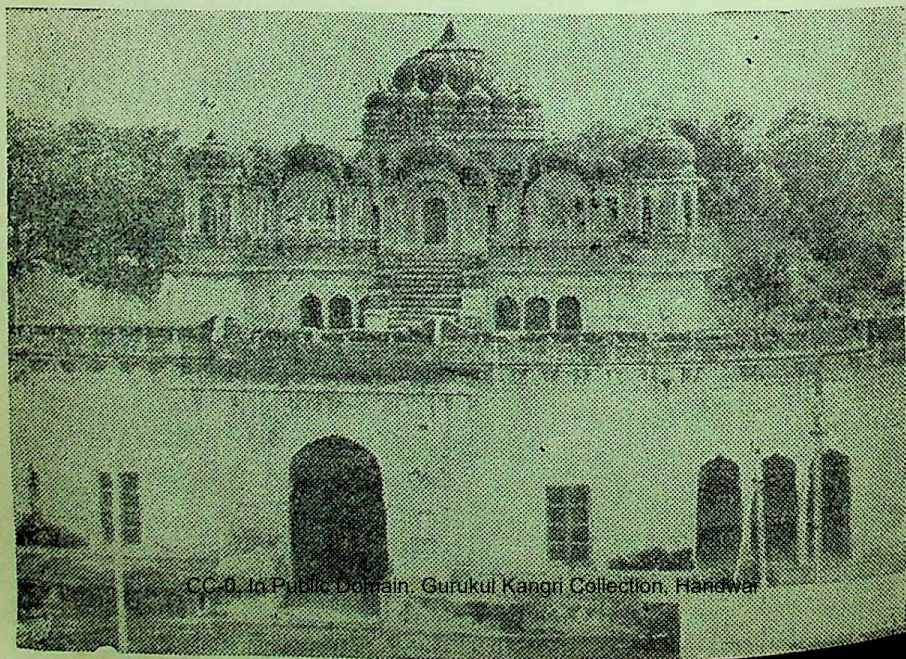
सिंह (१५३९-७१) से लेकर बीकानेर के अंतिम शासक शार्दूलसिंह तक की हैं। सभी छतरियां लाल पत्थर की बनी हुई हैं। इनमें गजसिंह की छतरी उल्लेखनीय है। संगमरमर-निर्मित छतरियों में महाराणा गंगासिंह तथा शार्दूलसिंह की छतरियां कलापूर्ण हैं। शार्दूलसिंह की छतरी पाश्चात्य प्रभाव लिये हुए है।

जयपुर में नाहरगढ़ किले की तलहटी के पास गेटूर है, जहां जयपुर के महाराजाओं की विशाल छतरियां हैं। इनमें तीन छतरियां विशाल हैं। जयसिंह द्वितीय से लेकर माधोसिंह द्वितीय तक की छतरियां यहां हैं। संगमरमर की बनी इन छतरियों में सुनहरी पच्चीकारी है। अधिकांश छतरियों में कृष्ण-जीवन-लीला के दृश्य अंकित हैं। भारी-भरकम न होकर ये छतरियां कलापूर्ण अधिक हैं।

इन प्रसिद्ध राजघरानों के अतिरिक्त बूंदी, सिरोही, जैसलमेर आदि स्थानों में छोटे राजघरानों पर बनी छतरियां हैं, जिनका अपना इतिहास है। इन छतरियों की निर्माण-शैली प्रायः एक-सी होते हुए भी इनमें स्थानीय विभेद भी हैं। कहीं संगमरमर का प्रयोग है तो कहीं लाल पत्थर का, पर एक अन्य प्रकार का निर्माण भी पिछले ३०० वर्षों में शेखावाटी के मरुस्थलीय प्रदेश में प्रचलित हुआ है। यहां छतरियां दुमंजिली-तिमंजली हैं, चूने और पत्थर की हैं तथा रमणीय चित्रकला से युक्त हैं। नीचे उन्नत आधार, ऊपर केंद्रीय

राजस्थान के स्थापत्य का गौरव—प्रसिद्ध जसवंत 'थड़ा'—छतरियों में सर्वश्रेष्ठ
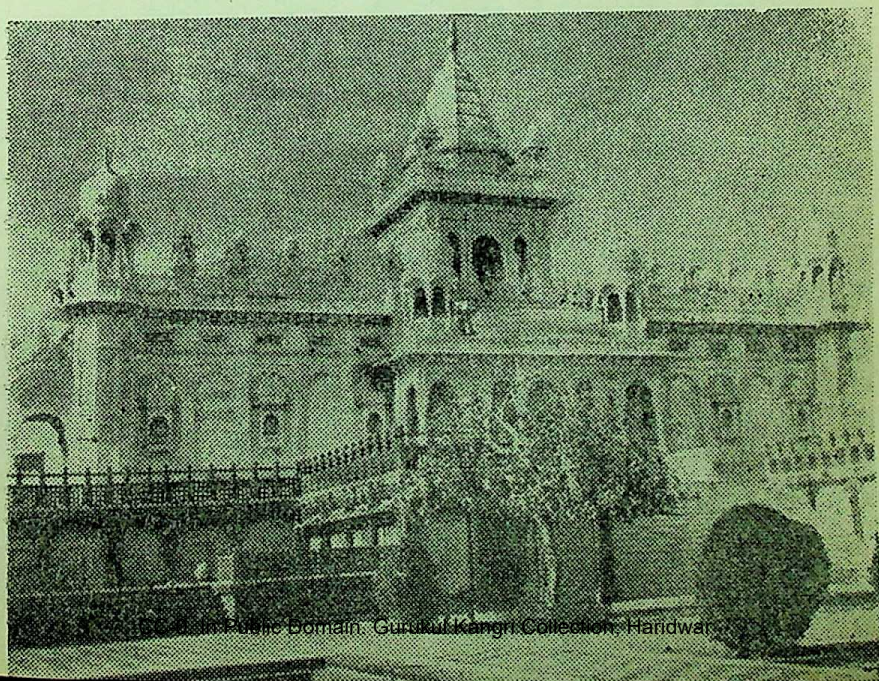
स्थान पर विशाल चबूतरा, जिस पर गोलाकार में आठ या सोलह खंभों की पंक्तियों पर विशाल गुंबजनुमा छत है। कलशों का सौंदर्य देखते ही बनता है। विशेषता यह है कि इस गोल गुंबज के चारों ओर अनेक छोटे गंबज सारी गोलाई में बने हुए हैं, जो किसी भी राजघराने की छतरियों में दिखायी नहीं पड़ते हैं। चारों कोनों पर फिर छोटी-छोटी छतरियां हैं। इस प्रकार प्रभाव की एकरूपता पैदा की गयी है। ये जितनी विशाल हैं उतनी ही कलापूर्ण। शेखावाटी के रामगढ़, फतेहपुर, मंडावा आदि स्थानों पर इस प्रकार के स्मारकों का जाल बिछा हुआ है।

नाथ संप्रदाय के लोगों पर बनी छतरियां भी रेगिस्तानी भू-भाग में यत्र-तत्र फैली हुई हैं। चूरू कस्बे में नाथ साधुओं पर बनी छतरियों में मूर्तियां प्रतिष्ठित की गयी हैं, जो प्राचीन परंपरा का एक पुनर्जीवन है। ये छतरियां सीधी-सादी हैं।

छतरियों के बीच के उन्नत स्थल पर प्रायः शिलालेख मिलते हैं या शिवलिंग स्थापित हैं। साधु-संतों पर बनी हुई छतरियों पर पद-चिह्न एवं लेख मिलते हैं। यह बात कम विस्मयकारी नहीं है कि मृत व्यक्ति का वृत्त या मूर्ति यहां नहीं होती है। इसके पीछे सुविख्यात आत्मगोपन का जीवनदर्शन है, जिसका उदाहरण अनेक कलाकृतियां हैं।

भारत में प्राचीनकाल में छतरियां एवं स्मारक बनाने की प्रथा नहीं थी। हमारे धर्मग्रंथों, उपाख्यानों, काव्य-कृतियों एवं लोकाख्यानों में इनका उल्लेख नहीं है। अनेक दिग्विजयी नरेशों के भौतिक अवशेषों पर कुछ भी निर्मित नहीं हुआ। स्मारकों का एकमात्र प्राचीन उल्लेख महाकवि भास-कृत 'प्रतिमा' नाटक में मिलता है।

मृतों के लिए भौतिक संभार जुटाने की बात भारतीय प्रज्ञा के विपरीत पड़ती थी, अतः स्मारकों के निर्माण का प्रचलन नहीं था। स्मारक निश्चय ही बौद्ध धर्म की देन हैं। बौद्ध भिक्षुओं पर स्तूप बनाये जाते थे, जो प्रारंभ में मिट्टी का छोटा टीला मात्र होता था, जिसमें मृतक के भौतिक अवशेष गड़े रहते थे। भरहुत, सांची, बोध-गया, अमरावती एवं नागार्जुन कुंड के प्रसिद्ध बौद्ध स्तूप छोटे राजछत्रनमा आकार के विकसित स्वरूप हैं।

बौद्धों की इस देन के साथ-साथ मुसलिम प्रभाव भी प्रभावकारी सिद्ध हुआ। कुछ व्यक्ति छतरियों, स्मारकों के निर्माण को मुसलिम कला का अनुकरण-मात्र मानते हैं। पहले स्मारकों की अनुपस्थिति और मुसलमानों के आगमन के पश्चात बड़ी संख्या में उनका निर्माण इस स्थापना को बल प्रदान करता है।

—विवेक विकास कार्यालय, केसरगढ़, पो. जयपुर

आईना

अपने ही आईने में
अपनी ही सूरत
कितनी भली है
बस... यही एक बात आईनों को खली है

—भूपेन्द्र कौशिक

गरीबी

और फिर ये हुआ
(कि) मुर्गा कटा
मछली तली गयी
गरीबी शाकाहारी थी
वहां से चली गयी

—महेश अनघ

उम्र

उम्र एक शीशे का घर है
जिसे हर समय
मौत के पत्थर का डर है

—शिवकुमार 'अर्चन'

अजायबघर

आदमी से अछूता आदमी
आबादी से दूर शहर है
जंगल के हैं पास बस्तियां
पूरा देश अजायबघर है

—सुधांशु उपाध्याय

कुर्ता

आज का आदमी
समय की बारीक सुई में
मजबूरियों का
मोटा धागा पिरो रहा है
और
जिम्मेदारियों का कुर्ता
क्षण-क्षण फट रहा है

—शिवनारायण शर्मा

यथार्थ

एक नये लेखक से
संपादक ने पूछा
'आपकी रचनाओं के नायक
अस्वीकृति के शिकार
दिखते हैं
क्या आप केवल
भोगे हुए यथार्थ पर लिखते हैं'

—राजा दुबे

बैरी

कुत्ता
कुत्ते का बैरी है
इसीलिए ... आदमी का प्रहरी है

—भूपेन्द्र

रामचरितमानस में दंड-विधान

● डॉ. इन्द्रपाल सिंह 'इन्द्र'

भारत के मनीषी शास्त्रकारों ने राजनीति के चार अंग निरूपित किये हैं—साम, दाम, दंड और भेद। साम सर्वोत्तम साधन है, जिसका तात्पर्य है कि शासक का व्यक्तित्व इतना सौम्य तथा उसकी नीति इतनी सौहार्दपूर्ण हो, जिससे प्रेरित हो कर प्रजाजन संयमित एवं व्यवस्थित जीवन व्यतीत करें। दाम मध्यम कोटि का साधन है, जिसका अर्थ है कि राजा की आर्थिक नीति ऐसी हो जिससे सर्वसाधारण को जीवनयापन की सभी सुविधाएं हों। अव्यवस्था और शांति-भंग के मूल कारणों में आर्थिक अभाव मुख्य है। दंड निकृष्ट कोटि का साधन है, जहां अव्यवस्था और असंतोष अधिक होता है, वहीं दंड का आश्रय लेना पड़ता है। मनुष्य अपराध क्यों करता है? किसी अभाव के कारण ही तो, और अभाव का उत्तरदायी कौन है? शासन ही न? इसलिए जो शासन दंड या आतंक से चलता है, वह निकृष्ट कोटि का शासन है। भेद अधम कोटि का साधन है, जहां शासक की नीति इतनी दोषपूर्ण और भ्रष्ट होती है कि प्रजाजन से उसका गोपन आवश्यक समझकर भेद-नीति का सहारा लिया जाता है।

तुलसी संभवतः दंड-नीति को ही अधम मानते प्रतीत होते हैं, तभी तो उन्होंने अपने युग के शासन के संबंध में तीव्र आक्रोश व्यक्त करते हुए कहा है—**'साम न दाम न भेद कलि, केवल दंड कराल'** इसलिए राजकीय दृष्टि से 'रामचरित मानस' में दंड-नीति का समर्थन नहीं है। दंड के मूल में अपराध के कारणों का उन्मूलन और अपराधी का सुधार होना चाहिए। 'रामचरितमानस' के दंड-विधान का राजकीय उद्देश्य तो यही है।

'रामचरितमानस' में व्यक्तिगत और राजकीय, दोनों ही प्रकार के दंडों का वर्णन है। व्यक्तिगत दंड का एक रूप शाप है, जो ब्राह्मणों, ऋषियों या देवताओं द्वारा दिया गया है। दूसरा रूप अन्य व्यक्तियों के क्षोभ या कोप का परिणाम है। शाप प्रायः उत्तेजनावश ही दिया जाता है, जिसको अनुग्रह में परिवर्तित

करा दिया गया है। नारद जब काम-मोहित होकर विष्णु से हरि, अर्थात बंदर का रूप पाकर विश्वमोहिनी से विवाह करने में असफल हो जाते हैं और उन्हें अपने रूप का पता उपहास करनेवाले हर-गणों से लगता है, तब वे विष्णु को शाप देते हैं—

बंचेहु मोहि जवन धरि देहा,
सोई तनु धरहु शाप मम एहा।
कपि आकृति तुम कीन्ह हमारी,
करिहहिं कीस सहाय तुम्हारी।
मम अपकार कीन्ह तुम भारी,
नारि विरह तुम्ह होब दुखारी।

हर-गणों को शाप देते हुए वे कहते हैं—

होहु जाइ निसाचर तुम्ह, कपटी पापी दोऊ।
हँसेउ हमहिं सो लेहु फल, बहुरि हँसेउ पुनि कोउ।।

किंतु जब उनका मोह भंग होता है और वस्तुस्थिति ज्ञात होती है तब शाप को अनुग्रह में परिणत कर राक्षस-योनि से मुक्ति का वरदान भी दे देते हैं।

शंकर भी व्यक्तिगत अपराध के कारण दंड देते दिखायी पड़ते हैं। उनके द्वारा दिया गया प्रथम दंड मानसिक है, जो सती के साथ-साथ अपने को भी दिया गया प्रतीत होता है। जब विरही वेश में राम को देखकर सती को उनके ईश्वरत्व में संदेह होता है, तब प्रथम अपराध तो वे अपने पति का अविश्वास करके करती हैं और दूसरा अपराध **'कछु न परीक्षा लीन्ह गोसाईं, कीन्ह प्रनाम तुम्हारिहि नाईं।'** इस असत्य भाषण द्वारा करती हैं। इसलिए शिवजी संकल्प करते हैं—**'एहि तन सतिहि भेंट**

मोहि नाहीं' और इस संकल्प का यावज्जीवन निर्वाह करते हैं। पत्नी के हृदय में विश्वास न जगा सकने का दंड उन्होंने अपने को भी दिया।

सती जब अपने पति के अपमान का दंड अपने पिता दक्ष को उनके यज्ञ-विध्वंस द्वारा देती हैं, तब शिवजी हृदयस्थ विकारों पर विजय प्राप्त करने के लिए समाधिलीन हो जाते हैं, जिसे भंग करने का भीषण अपराध कामदेव देवराज की प्रेरणा से करता है--

छांड़े विषम विसिख उर लागे,
छूटि समाधि संभु तब जागे।
भयउ ईस मन छोभु बिसेखी,
नयन उघारि सकल दिसि देखी।
सौरभ पल्लव मदन विलोका,
भयउ कोपु कंपेउ त्रैलोका।
तब सिव तीसर नयन उघारा,
चितवत काम भयउ जरि छारा।

साधना-मार्ग के अवरोधक के लिए यह दंड उचित ही है, किंतु रति के विलाप से करुणार्द्र शिव उसे वरदान भी दे देते हैं।

इस प्रकार शाप द्वारा जिस दंड-विधान का वर्णन 'रामचरितमानस' में किया गया है, उसके मूल में उत्तेजना है और वह शापदाता तथा अपराधी के विकारों का शमन करने में सहायक है।

व्यक्तिगत रूप से दंड निजी अपराध के कारण अथवा अपने प्रियजन के अपराध के कारण दिया जाता है। राम सभी को प्रिय हैं। उनका कष्ट या उनका अहित उनके सभी प्रियजनों के हृदय में कोप उत्पन्न करता है तथा वे पात्रानुरूप दंड भी देते हैं। राम वन-गमन के मूल में दो व्यक्ति हैं—कैकेयी और मंथरा। कैकेयी मां हैं, इसलिए उनको भर्त्सना के अतिरिक्त क्या दंड दिया जा सकता है? भरत उनकी भर्त्सना करते हुए कहते हैं—

भे अति अहित रामु तेउ तोही,
को तू अहसि सत्य कहु मोही।
जो हसि सो हसि मुंह मसि लाई,
आंखि ओट उठि बैठहि जाई।

मंथरा जब सुसज्जित होकर व्यंग्यपूर्वक मुसकराती हुई शत्रुघ्न के समक्ष आती है तब उनकी कोपाग्नि में घृत पड़ जाता है और वे उसे इस प्रकार दंड देते हैं-

हुमगि लात तकि कूबर मारा,
परि मुंह भर महि करत पुकारा।

× × ×

सुनि रिपुहन लखि नखसिख खोटी,
लगे घसीटन धरि-धरि झोटी।

किंतु भरत उसे छुड़ा देते हैं।

हनुमान संजीवनी औषधि लेने जाते समय कपट मुनि वेषधारी मार्गावरोधक कालनेमि को मृत्यु-दंड देते हैं। इसी प्रकार सीता की शोध के लिए लंका में प्रवेश करते समय लंकिनी हनुमान से कहती है—

जानेहि नहीं मरमु सठ मोरा,
मोर अहार जहां लगि चोरा।

कितनी विडंबना है! पर-नारी के चोर की सेविका चोर को दंड देने का साहस करती है! जो शासक स्वयं भ्रष्ट और

अत्याचारी है तथा अनीति का प्रश्रय लेता है, वह क्या न्याय कर सकता है ? वह न्याय या दंड का स्वांग भले ही करे, उसका कोई प्रभाव नहीं हो सकता। अतः हनुमान उसे ही इस प्रकार दंड देते हैं—

मुठिका एक महा कपि हनी,
रुधिर बमत धरनी ढनमनी।

इस दंड से उसका सुधार हो जाता है।

राम भी अपने व्यक्तिगत अपराधों के लिए अपराधियों को दंड देते हैं। जयंत जब सीता के चरण को आहत कर भागता है, तब राम उसे दंड देने के लिए सींक के बाण का संधान करते हैं—

चला रुधिर रघुनायक जाना,
सींक धनुष सायक संधाना।

किंतु जब वह आर्त्त होकर शरण में आ जाता है, तब केवल नयन-विहीन करके छोड़ देते हैं।

काम-पीड़िता शूर्पणखा वासना-पूर्ति के लिए कभी राम के समीप जाती है, कभी लक्ष्मण के और जब उसकी पिपासा को उपचार नहीं मिलता तब भयंकर रूप धारण कर सीता पर आक्रमण करना चाहती है। उसी समय राम संकेत से लक्ष्मण को उसे दंड देने का आदेश देते हैं और **'लछिमन अति लाघव सो नाक कान बिनु कीन्ह'** — इसका सीधा अर्थ है कि राम-लक्ष्मण की बात को न सुनकर वह इतनी निर्लज्ज (नाकहीन) हो गयी कि उसे किसी से भी वासना-पूर्ति की याचना में संकोच नहीं हुआ, इसलिए उसके लिए यह दंड उचित ही था।

अपने मित्र सुग्रीव का अपराध करने के कारण राम बालि का वध करते हैं और अपराधी को अपने दंड का औचित्य बताते हुए कहते हैं—

अनुज-बधू, भगिनी, सुत-नारी,
सुनु सठ कन्या सम ये चारी।
इन्हिं कुदृष्टि बिलोके जोई,
ताहि बधे कछु पाप न होई।

इस प्रकार व्यक्तिगत अपराधों के लिए निजी रूप से दंड देने का वर्णन 'रामचरितमानस' में हुआ है।

राजकीय दंड-विधान पर विचार करें, तो उस समय के तीन राज्यों का वर्णन 'रामचरितमानस' में हुआ है—जनकपुर, अयोध्या तथा लंका। जनकपुर के राजा आत्मज्ञानी विदेह जनक हैं, इसलिए वहां अपराध और दंड की कल्पना ही नहीं की जा सकती। अयोध्या के राजा दशरथ हैं। वे अपने राज्य में ऋषियों के यज्ञ का विध्वंस करनेवाले मारीच, सुबाहु और ताड़का को दंड देने के लिए विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण को भेजते हैं। दशरथ के बाद अयोध्या के शासक पहले पादुका का अवलंब लेनेवाले भरत और फिर राम होते हैं। राम-राज्य में तो प्रजा इतनी सुखी, समृद्ध तथा संयमित जीवन व्यतीत करती है कि अपराध का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। फिर दंड कैसा ? वहां तो—

रूप रंग की छटा बिखेरे

कौन न उस को प्यार से छेड़े

बताइए भला ऐसे रूप पर से कौन नज़र हटा सकेगा ?
निगाहें पड़ीं कि रुकी रह गईं। इस मनोरम सौंदर्य का रहस्य है
लॅक्मे वैनिशिंग क्रीम। रूप की उज्ज्वलता के साथ ऐसी ताज़गी जै
आप सौंदर्य की फुहार में भीग कर आई हों!
श्रेष्ठ मेकअप का आदर्श आधार—लॅक्मे वैनिशिंग क्रीम
जिस पर पाउडर अधिक देर तक टिका रहता है।
कितना सहज और स्वाभाविक। और कहीं अधिक आकर्षक।

लॅक्मे वैनिशिंग क्रीम
से पाउडर भी अधिक देर तक टिका रहता है।

लॅक्मे सब कुछ रूपरंग के हक़ में।

दंड जतिन कर भेद जहं, नर्तक नृत्य समाज।
जीतहु मनहि सुनिय अस, रामचंद्र के राज।

अपनी वन-यात्रा में राम भावी राजा की भूमिका का निर्वाह करते हुए प्रतीत होते हैं। इसलिए मार्ग में जन-कल्याण, सार्वजनिक हित और धर्म की रक्षा के लिए अपराधियों को उनके अनुकूल दंड भी देते जाते हैं। वन-प्रदेश में मुनियों की भूमि के निकट अस्थि-समूह देखकर तथा यह जानकर कि राक्षसों द्वारा खाये हुए मुनियों की ये अस्थियां हैं, वे करुणाप्लुत हो जाते हैं तथा उन्हें मृत्युदंड देने की प्रतिज्ञा करते हैं—

निसिचरहीन करहुं महि,
भुज उठाई प्रन कीन्ह।
सकल मुनिन के आश्रमनि
जाइ-जाइ सुख दीन्ह॥

खर, दूषण, त्रिशिरा, कबंध, रावणादि के वध में इसी प्रतिज्ञा की पूर्ति है। यद्यपि किसी की हत्या का उचित दंड तो मृत्यु ही है, तथापि राम पहले साम नीति का ही प्रयोग करते हैं, दंड तो उन्हें विवश होकर देना पड़ता है। सीता का हरण करनेवाले रावण को भी समझाने के लिए वे अंगद को दूत बनाकर भेजते हैं और उसे आदेश देते हैं—**'काज हमार तासु हित होई, रिपु सन करब बतकही सोई।'**

शत्रु के जो भेदिये उनकी सेना का भेद लेने आते हैं, उनके पकड़े जाने पर सुग्रीव उनके अंग-भंग के दंड की व्यवस्था देते हैं, किंतु लक्ष्मण राम की नीति को पहचानकर उन्हें क्षमा-दान देकर मुक्त कर देते हैं, जिससे उनका हृदय परिवर्तित हो जाता है और वे राम के पक्ष में आ मिलते हैं। विभीषण के शरण में आने पर सुग्रीवादि उसे शत्रु का भाई जानकर परामर्श देते हैं—**भेद हमार लेन सठ आवा, राखिय बांधि मोहि अस भावा।**

राम तुरंत उत्तर देते हैं—

'सखा नीति तुम नीक बिचारी,
मम पन सरनागत भय हारी।'

और उसे बाहु-पाश में आबद्ध कर अपना सबसे विश्वस्त सेनापति नियुक्त करते हैं।

अपने व्यक्तिगत कार्यों में अवहेलना करने पर भी वे पहले साम नीति ही अपनाते हैं, किंतु—

विनय न मानत जलधि जड़,
गये तीन दिन बीति।
बोले राम सकोप तब,
भय बिनु होइ न प्रीति॥

और विवश होकर बाण संधान करते हैं।

जब सुग्रीव वर्षा-शरद् के बाद भी सीता की खोज कराने के अपने वचन का पालन नहीं करता, तब राम को पहले तो क्रोध आता है और वे कहते हैं—

'जेहि सायक मारा मैं बाली,
तेहि सर हतउं मूढ़ कंहु काली।'

किंतु जब लक्ष्मण को उसके पास भेजते हैं, तब साम नीति अपनाते हुए ही आदेश देते हैं—**'भय दिखाइ लै आवहु तात सखा सुग्रीव!'**

इससे स्पष्ट होता है कि राम दंड-नीति को उचित नहीं समझते।

लंका का शासक अत्याचारी, नृशंस, अनीतिगामी होने के साथ-साथ अविवेकी भी है, इसलिए वह दंड-विधान में भी कुशल नहीं है। वह दंड देकर भी अपना ही अहित करता है। अक्षयकुमार-वध और अशोकवाटिका को उजाड़ने के लिए हनुमान को पहले तो मृत्युदंड ही देना चाहता है, किंतु फिर विभीषण आदि के समझाने पर व्यवस्था देता है—

कपि के ममता पूछ पर सबहि कहौं समुझाइ।
तेल बोरि पट बांधि पुनि पावक देहु लगाइ॥

इस अविवेकपूर्ण दंड का परिणाम हुआ लंका-दहन। सत्परामर्श देने पर रावण भाई को स्वयं ही पाद-प्रहार का दंड देता है अपना विरोधी बना लेता है।

इस प्रकार 'रामचरितमानस' में विविध प्रकार के दंड-विधान का वर्णन तो किया गया है, किंतु तुलसी ने राम-राज्य का वर्णन करके दंड-नीति का समर्थन नहीं किया, अपितु उसे शासन की असफलता ही समझा है।

—ए–१५, यूनीवर्सिटी क्वार्टर्स,
अमरावती रोड, नागपुर–१०

"मेरी पत्नी ने सब कुछ लेकर मुझे तलाक दे दिया।"

"भाग्यशाली हो, मेरी पत्नी ने तो सब कुछ भी ले लिया और तलाक भी नहीं दिया।"

Rishi

विमोचन पर

• डॉ. इन्द्रनाथ मदान

हर जाति के अपने-अपने संस्कार होते हैं। जन्म से लेकर मरण तक हिंदू जाति के सोलह संस्कार माने जाते हैं। मेरा एक भी संस्कार नहीं हो पाया है—विवाह-संस्कार भी नहीं, जो जीवन में सबसे बड़ा माना जाता है। आखिरी संस्कार का पता खुद को नहीं होता, दूसरों को ही हो सकता है। इसलिए हिंदू होने का दावा मैं किस तरह कर सकता हूं ! यह सही है कि हिंदी जाति या समाज से मेरा नाता गहरा रहा है जिसमें तीन बड़े संस्कार माने जाते हैं—अभिनंदन, उद्घाटन और विमोचन।

पंजाब सरकार ने दस साल पहले मेरा अभिनंदन एक छोटे लेखक के नाते कर दिया था और लेखक का अभिनंदन आज का रिवाज भी बन गया है। बड़े साहित्यकार को उसकी मौत के बाद ही पहचाना जा सकता है। इसके बाद यारों ने मेरे खिलाफ अनाम या गुमनाम पत्र लिख-लिखकर मेरा उद्घाटन करना

लेखक कुलपति डॉ० रायचंद का धन्यवाद - ज्ञापन करते हुए

शुरू कर दिया था, जो अब तक जारी है और शायद मेरे बाद भी जारी रहेगा। एक संस्कार अभी बाकी था। पंजाब यूनीवर्सिटी ने जानबूझकर पहली अप्रैल को मेरा विमोचन संस्कार कर दिया। यह शायद इसलिए कि मेरे-जैसे व्यक्ति के लिए यह दिन अधिक संगत बैठता था।

मैंने पूरी कोशिश की कि मेरा विमोचन 'संस्कार' के रूप में न किया जाए, लेकिन यह कोशिश नाकाम साबित होकर रही। यह सही है कि मैं घिरता तो पहले भी रहा हूं, लेकिन बहाने बना-बनाकर इस तरह के घेरों से निकलता भी रहा हूं। उस दिन मैं घेराव में आ गया था। इस चक्रव्यूह से निकलना मेरे वश का रोग नहीं था। हिंदी समाज के सब सदस्य जानते हैं कि विमोचन ग्रंथ का होता है, दुःख का भी हो सकता है, लेकिन उस दिन एक व्यक्ति का विमोचन हो गया। मैं इस संस्कार से इसलिए भी कतरा रहा था कि उन लोगों के मन में मेरे लिए दया का भाव उमड़ेगा जिनका विमोचन अभी नहीं हुआ है—'बेचारा जा रहा है!' क्या दया का पात्र बनने से घृणा का पात्र बनना बेहतर नहीं होता?

इसके बाद मेरे मित्रों ने मुझे हर तरह का मशवरा देना शुरू कर दिया। एक मित्र ने वाराणसी से यह सलाह दी कि विमोचन संस्कार के बाद मुझे गंगा-स्नान के लिए सोचना चाहिए। यह मेरे 'भावी' हित में होगा। यह मैं जानता हूं कि इस देश में गंगा रिटायरों और तस्करों के लिए बहती है, लेकिन भावी की चिंता करना बेकार समझा। अगर बैकुंठ के बजाय नरक में भी भेज दिया गया तो यह मेरे लिए बेहतर होगा। नरक में रौनक तो होगी, जबकि बैकुंठ में तो उजाड़ की ही संभावना हो सकती है।

एक हमदम ने मुझे यह चेतावनी दी कि अब मुझे सुबह-शाम सैर पर निकलने की बात सोचना चाहिए। मैंने सैर की सोची भी थी, पर सैर करते समय इस तरह के दृश्यों को देखकर दिल बैठ गया था, घर लौटकर मन उदास हो गया था। एक थुलथुल औरत अपना वजन कम करने के लिए अपनी नजर में दौड़ लगा रही थी, लेकिन मेरी नजर में वह तेज कदम उठाने की कोशिश कर रही थी। एक दूसरा जपजी का जाप कर रहा था, एक तीसरा गायत्री का पाठ कर रहा था और एक चौथा दातून चबा रहा था और सड़क पर ही थूक रहा था, जो भारत में उसका जन्मसिद्ध अधिकार है। इन नजारों को देखकर सैर करने का नेक इरादा छोड़ना पड़ा।

एक अजीज ने विमोचन के अवसर पर मेरी तारीफ सुनने के बाद, जो बेमानी होती है, कहा, "सच कह दूं ऐ बरहमन, गर तू बुरा न माने कि तू एक मीडियॉकर है, औसत है, मामूली है।" अगर वह इसके साथ 'फालतू' जोड़ देता तो तसवीर शायद इतनी अधूरी न होती।

उसका मशवरा यह था कि लिखने—विखने का वहम छोड़कर मैं विदेश की सैर पर क्यों नहीं निकल जाता! उसकी खरी बात से मैं पूरी तरह सहमत हूं। मैंने कभी यह दावा नहीं किया कि मैं दीदावर हूं, जो चमन में बड़ी मुश्किल से पैदा होता है। मेरा अजीज अपनी बेनरी पर रो रहा था या मेरे बारे में अपनी गलतफहमी को धो रहा था—यह मैं नहीं जानता। इतना जानता हूं कि मैं बाहर इसलिए नहीं जा सका कि मेरे संबंध बाहर भेजने-वालों से न गहरे थे और न हैं, जो महिलाओं के एक-दूसरे के यहां आने-जाने से या दावतें देने से पैदा होते हैं। आजादी के बाद जहां बैठ गये सो बैठ गये। दूसरी बार उखड़ने को मन नहीं किया। अपने वतन से उखड़कर जब अपने देश में आ गया, अपनी जन्मभूमि को छोड़कर जब अपनी मातृभूमि में आ गया तब आराम से बैठ गया। अब रिसालों में बाहर की दुनिया चित्रों में देखकर संतोष की सांस ले लेता हूं।

इस तरह एक बेकार की तरह विमोचन के बाद इनसान लोगों के मशवरों से घिर जाता है। यह इब्तदा होती है, आगे-आगे क्या होता है इसे देखना होता है। अगर घरवाली होती तो वह डांट-डपटों की झड़ी लगा देती—"पता नहीं खाली बैठे-बैठे तुम क्या करते रहते हो! और कुछ नहीं तो लोगों को पत्र ही दे दिया करो, लेकिन बैरंग। यह इसलिए

अब समझे! मैंने बाल क्यों नहीं कटाये हैं?

कि इनके पहुंचने की संभावना अधिक होती है। बाजार से सब्जी ही खरीद लाया करो, कुछ तो बचत होगी। तेरे विमोचन का कुछ तो लाभ हो।" इस तरह की डांट-डपट से तो बच गया हूं, लेकिन शुभचिंतकों के मशवरों से नहीं।

जिंदगी की शाम में कैसी कसक, कैसा मलाल
पास के हर फूल में तेरी महक, तेरा जलाल

किसकी महक और किसका जलाल—इसका अंदाज पाठक बेहतर लगा सकते हैं। इस अवसर पर रिवाज के मुताबिक सबका शुक्रिया भी अदा करना पड़ता है—दोस्तों का, जिनसे स्नेह मिलता रहा है; दुश्मनों का, जिनसे बल मिलता रहा है और अजीजों का, जिनको स्नेह दिया जाता रहा है, ताकि जिंदगी के बहीखाते में लेन-देन बराबर हो सके और कयामत के बाद फरिश्तों को हिसाब न देना पड़े।

—५९५, सेक्टर १८, चंडीगढ़-१८

अतीत तो अच्छा बीत गया

• सरोज तिवारी

धूल-धूसरित लालिमामय आकाश, प्रचंड आंधी के आसार लिये थमी-थमी-सी हवा, झिझककर झांकती सूर्यास्त की मटमैली किरणें और गहरे स्लेटी रंग के बादल, सामने बहती दक्षिणगंगा गोदावरी की अस्त-व्यस्त लहरें, काले पत्थरों से बने हुए घाट के ऊपर अहल्याबाई होल्कर की असीम शिव-भक्ति के प्रमाणस्वरूप काले पत्थरों से ही निर्मित पुरातन काल का विशाल नारीशंकर मंदिर . . . अतीत की अंधेरी बारहदरी में भागता मन देख रहा है ३० वर्ष पहले का वह दिन जब मैंने विवाह के पूर्व नासिक के बारे में सुना था। जब मैंने सुना कि राम की कर्मभूमि, गोस्वामी तुलसीदास द्वारा वर्णित 'पंचवटी परम-कुटी पत्तन से छायी' यहीं है, तब बचपन से ही राम के प्रति भक्ति-भाव में डूबा मन आह्लाद से भर उठा था कि अब मुझे राम की नगरी में रहने का पुण्यलाभ होगा।

इसमें कोई संदेह नहीं कि यदि 'रामचरितमानस' की पंचवटी कहीं है तो बस यहीं है। वही दंडकारण्य! पांच विशाल वटवृक्षों की लटकती हुई ढेर-सी लंबी-लंबी जटाएं! कई फर्लांग के घेरे में छाया फैलाये हुए गरुड़ के पंखों-जैसे पांचों बरगद के पेड़! दूर-दूर तक हरि-

पुराना नासिक और गोदावरी तट
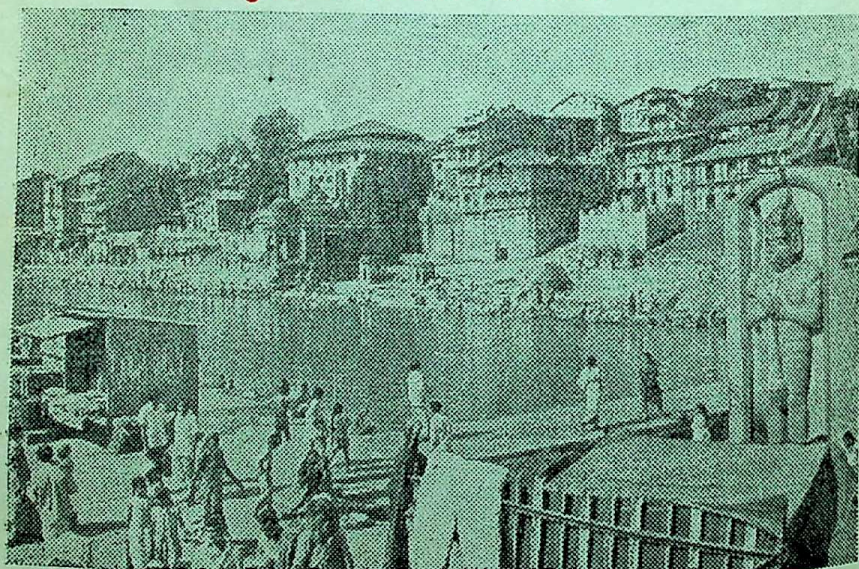
याली! गोदावरी व कपिलगंगा का संगम, ऊबड़-खावड़ पथरीली चट्टानों से टकराता फेनिल, धवल, पिघली चांदी-सा गोदावरी का जल और थोड़ी-थोड़ी दूर पर झिर-झिरकर झरनेवाले झरने इस भूमि को राम के तपोवनवाली गरिमा प्रदान कर रहे थे। सोचा, राम के चरण-कमल इसी तट से होते हुए सुदूर लंका की ओर गये होंगे, यहीं सीताहरण हुआ, शूर्पनखा की नाक काटी गयी और इसी नासिका के कारण इस शहर का नाम नासिक पड़ गया।

अन्य तीर्थ-स्थानों की तरह यहां भी कुंभ व कुंभी का मेला लगता है, प्रयाग व हरिद्वार की तरह यहां भी पंडे, पुरोहित पिछली पीढ़ियों के बुजुर्गों के नामोंवाली सालों पुरानी लंबी-लंबी पोथियां बगल में दबाये स्टेशन से ही यात्री का पीछा करते हैं। करीब २९–३० साल पहले नासिक रोड स्टेशन से ५ मील दूर बसे नासिक शहर तक आने के लिए एकमात्र साधन था तांगा। स्टेशन से शहर तक आने के लिए, खास तौर से रात में, काफी हिम्मत की जरूरत होती थी। तब न तो आज की तरह पूरे रास्ते चहल-पहल रहती थी, न भारत सरकार के दो-दो विशाल प्रेसों के लिए लगातार ५-६ मील तक बसाये गये गांधीनगर, उप-नगर और नेहरूनगर थे, न एक लहरे का विद्युत-केंद्र था, न नियॉन-लाइट की चमक-दमक और न संगमरमर का नव-निर्मित मुक्तिधाम!

पथरीले मैदानों का शहर

इतिहास साक्षी है कि इस क्षेत्र के पहाड़ी और पथरीला होने के कारण यहां के निवासियों को जीवनयापन के लिए कठिन परिश्रम करना पड़ा है। शहर के चारों ओर फैली विभिन्न आकार की पहाड़ियों का अपना-अपना महत्त्व है। इन पथरीले मैदानों से जूझते हुए ही आम जनता कर्मठ जीवन जी रही है, खासकर यहां की महिलाएं मेहनत से कभी नहीं थकतीं। केवल शारीरिक ही नहीं, मानसिक रूप से भी यहां की महि-लाओं की सहनशक्ति काफी अधिक है। ये महिलाएं मराठी जूड़ा बनाकर, उसे फूलों की वेणी से सजाकर शाम के समय जब घूमने निकलती हैं, तब उनका प्रफु-

श्री राम मंदिर पंचवटी
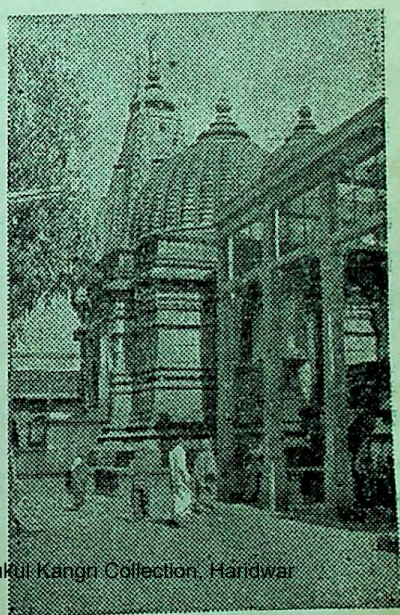
ल्लित चेहरा देखकर अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता कि इन्होंने सुबह से शाम तक कितना अधिक श्रम किया है।

जैसे पेरिस की आत्मा सीन नदी के तट पर बसती है, उसी तरह नासिक शहर की आत्मा गोदावरी-तट पर। इस नदी के किनारे और रामकुंड के आस-पास चहकती हुई बालाएं, नये फैशन में सजे युवक-समुदाय और बड़े-बड़े चबूतरों पर बैठे, बच्चों सहित परिवार सूर्यास्त का रमणीय दृश्य निहारते, खटमिट्ठे अंगूरों, प्याज और कच्चे आम की फांकों से सजे चिवड़े का स्वाद लेते हुए गोदावरी-रूपी सीन के किनारे बसे भारतीय पेरिस की याद दिलाते हैं।

पहली फिल्म 'लंकादहन'

भारत का पहला सैनिक स्कूल 'भोंसले मिलिटरी स्कूल' नासिक में ही है। भारतीय फिल्म-जगत के जनक दादासाहब फालके ने अपनी पहली फिल्म 'लंका-दहन' यहीं बनायी थी। गोदावरी नदी पर केवल मिट्टी से बनाया गया काफी मजबूत गंगापुर बांध यहीं है, जो इस कार्य में मिट्टी की उपयोगिता का प्रथम सफल प्रयास है। विदेशी खेल गोल्फ ने भी बहुत पहले ही नासिक को विश्व-स्तरीय महत्त्व दिया था। यहां बना गोल्फ का विस्तृत मैदान संसार में दूसरे नंबर का माना जाता था। कहा जाता है कि ब्रिटेन के कंजर्वेटिव दल के चर्चिल और लेबर दल के एटली इस मैदान में गोल्फ खेल गये हैं।

नासिक की समशीतोष्ण जलवायु में छापे गये नोट और डाक-टिकट हर दृष्टि से उत्तम ठहरे हैं। इसी अनुकूल जलवायु के कारण बंबई आदि बड़े शहरों में स्थापित व्यापारी तथा बड़े-बड़े अधिकारी अपना अवकाशकालीन निवासस्थान बनाने के लिए नासिक को ही प्राथमिकता देते हैं। गरमी की छुट्टियों में यहां कारों का तांता लगा रहता है। धर्मप्रवण गुजराती सेठ अपने परिजनों, सेवकों और सारे साज-सामान के साथ धर्मशालाओं में ठहरते हैं और तीर्थयात्रा का पुण्य लेते हुए दिखायी देते हैं। बंबई की उमसभरी गरमी से त्रस्त पर्यटक बड़े-बड़े होटलों की शोभा बढ़ाते हैं। आजकल नासिक के प्राकृतिक सौंदर्य पर फिल्मवालों की भी विशेष नजर है। अकसर प्रसिद्ध अभिनेताओं और अभिनेत्रियों की बड़ी-बड़ी गाड़ियां, सामान से भरे हुए ट्रेलर और बंबइया फैशन के फिल्मी लोग शूटिंग करते दिखायी पड़ते हैं।

सात पहाड़ोंवाली देवी

गोदावरी का उद्गम-स्थान त्र्यंबकेश्वर यहां से केवल १८ मील दूर है। सात पहाड़ों पर स्थित सप्तश्रृंगी देवी का मंदिर नैसर्गिक सुंदरता में अद्वितीय है। शहर के बाहर कई नयी औद्योगिक संस्थाएं भी बनी हैं जो उपयोगी वस्तुओं का निर्माण कर रही हैं। नासिक निरंतर चारों ओर से बढ़ रहा है, प्रसिद्ध होता जा रहा है।

पुराने नासिक के काजीपुरा और कोकणी
पुरा में बीजापुर के आदिलशाह की बन
वायी हुई नक्काशीदार और मुगल शैली
की पुरानी हवेलियां इस बात की याद
दिलाती हैं कि इसी जगह का नाम
गुलशनाबाद था।

क्रांतिवीरों की भूमि

अपनी स्फूर्तिदायक कविताओं द्वारा क्रांति
वीरों को जोश दिलाकर, प्रसन्नता
मृत्यु को गले लगानेवाले राष्ट्रकवि गोवि
और जयभारत के गीत गानेवाले क
रेवरेंड रिलक दोनों नासिक के ही
देशभक्तों पर अत्याचार करनेवाले अंग
कलेक्टर को गोली से उड़ाकर वंदेमात
का जयघोष करते हुए फांसी पर च
वाले क्रांतिकारी वीर कान्हेरे यहीं
थे। सामाजिक और राजनीतिक क्ष
तथा ललित साहित्य के निर्माण में यहां
इतिहास पीछे नहीं है। रामगणेश गडक
का साहित्य जिन लोगों ने पढ़ा है वे
इस बात की पुष्टि करते हैं। अपने प्र
पांडित्य और अमोघ वक्तव्यों से पुरानी
रूढ़ियों का कल्मष धोनेवाले जगद्गुरु
डॉ. कुर्तकोटी की जीवन-संध्या यहीं बीती
है। शिवाजी का शौर्य, अहल्याबाई होल्कर
की धार्मिकता, मुगलों की लालसा, पेश-
वाओं का राजनीतिक षड्यंत्र और वन-
वास के समय की 'अरण्यकांड' में वर्णित
राम की कार्यस्थली, 'गंगा बड़ी गोदावरी
तीरथ बड़े प्रयाग' इन सबने मिलकर
नासिक को सम्मिलित प्रसिद्धि प्रदान की है।

सिर्फ एक संदर्भ

सिर्फ एक संदर्भ जोड़कर
खूब प्रताड़ित हुई चेतना
और वही जब टूट गया तब
फूट-फूट रो पड़ी वेदना
अंतिम श्वास दीप की बाती
धूमिल शिखा दीप्त हो जाती
कौन मौन रह सका अभी तक
बिछुड़ी जब जीवन की थाती
त्रुटियों की संज्ञा देना भी
लगता न्याय-परिधि के बाहर
और बांधकर आदर्शों में
हास्यास्पद हो गयी महावर
विस्मृति के कोहरे में सुधियां
माना धुंधली हो जाती हैं
पर बीते मौसम के आते
पर सभी उभर आती हैं
... देखे कितने
...ती हैं

चप. ...
रहा था, ...
था और वहीं ...
ड़ियां रखकर बेच रहा था
बाद वही हिप्पी समूह बरगद की
में आ गया और चिलम भर-भरकर ग...
का प्रसाद बंटने लगा। आने-जानेवाले
प्रत्येक यात्री को उनका 'ऑफर' रहता,
कोई सैलानी एकाध दम मार देता। फिर

... हुआ। ... थ और दूसरे ... विदेशी कलाबाजियों को ... कैद कर रहे थे। दो-चार ढोंगी ... भी उन्हीं में शामिल हो गये थे। फिर तमाशबीनों की क्या कमी! मेहमानों ने सोचा होगा—"अच्छा तीर्थ कराया, कहीं से भी तो राम की कोई झलक न मिली।"

क्या इसी 'तपोवन' के लिए कवि मैथिलीशरण गुप्त ने 'साकेत' में लिखा था—

अवध को अपनाकर त्याग से
वन तपोवन-सा प्रभु ने किया

फिर भी, यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि यहां की मिट्टी में मिस्र की ...पमी' वाला मसाला मौजूद है, जो वर्षों ...क व्यक्ति को जैसे का तैसा बनाये रखता ..., न उम्र का असर, न बुढ़ापे का प्रभाव।

भविष्य क्या होगा?

...रपालिका की लापरवाही से सड़कों ... बने तमाम गढ़े, बहती नालियों की ...गी और जगह-जगह कचरे से भरे ...ड्रम अपनी अलग कहानी कह रहे ... दिन-पर-दिन खुलती जाती शराब ... दूकानों पर भीड़ भी बढ़ती जा रही ... घर आकर देखती हूं कि बिजली चली ...ने के कारण घर अंधेरे में डूबा है। ...र, अतीत तो अच्छा बीत गया, यह वर्त...न है, अब भविष्य क्या होगा? तभी ...कानंद की पंक्तियां याद आती हैं—

मैं भविष्य को नहीं देखता, न ही उसे जानने की चिंता करता हूं। किंतु एक दृश्य मैं अपने मनश्चक्षुओं से स्पष्ट देख रहा हूं: यह प्राचीन माता पुनः जाग गयी है और अपने सिंहासन पर आसीन है—पहले से कहीं अधिक गौरव एवं वैभव से प्रदीप्त। शांत और मंगलमय स्वर में उसकी पुनर्प्रतिष्ठा की घोषणा विश्व में करो।

(द्वारा श्री पी. के. तिवारी, तिवारी महल्ला, आगरा रोड, नासिक सिटी)

कविता

सिर्फ एक संदर्भ

सिर्फ एक संदर्भ जोड़कर
खूब प्रताड़ित हुई चेतना
और वही जब टूट गया तब
फूट-फूट रो पड़ी वेदना
अंतिम श्वास दीप की बाती
धूमिल शिखा दीप्त हो जाती
कौन मौन रह सका अभी तक
बिछुड़ी जब जीवन की थाती
त्रुटियों की संज्ञा देना भी
लगता न्याय-परिधि के बाहर
और बांधकर आदर्शों में
हास्यास्पद हो गयी महावर
विस्मृति के कोहरे में सुधियां
माना धुंधली हो जाती हैं
पर बीते मौसम के आते
मन पर सभी उभर आती हैं
मन मरते तो देखे कितने
सुधियां नहीं मरा करती हैं
हंसते अधर जगत की खातिर
पर आंखें आंसू भरती हैं

—हरिकृष्ण कश्यप
—आई. सी. एम. आर., अंसारी नगर,
नयी दिल्ली-११००१६

"उत्तरप्रदेश के एक गांव में सन १९४२ में जन्म। वहां से दिल्ली आकर बी. ए. की डिग्री तथा कमर्शियल आर्ट का डिप्लोमा प्राप्त किया। छह वर्ष तक दिल्ली पब्लिक लाइब्रेरी में कला-सेवा की। आजकल 'इंडियन कौंसिल ऑव मेडिकल रिसर्च,' नयी दिल्ली में चित्रकार के पद पर कार्य कर रहा हूं। अध्ययन-काल से ही काव्य के प्रति रुचि रही है, लेकिन महानगर में यह रुचि काव्य-गोष्ठियों तक ही सीमित रही।"

आपकी भाग्य-रेखाएं

● पी. टी. सुंदरम
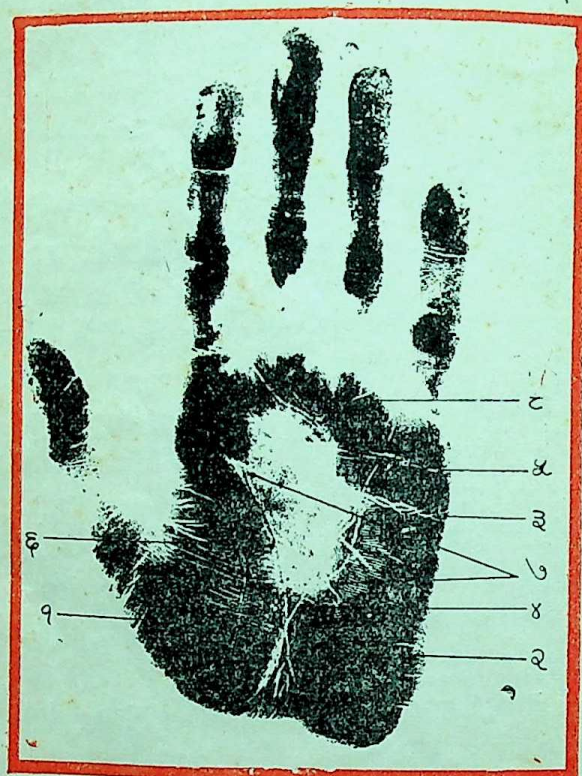
इस अंक में ऐसे हाथ का अध्ययन है, जिसे कई अर्थों में अनोखा कहा जा सकता है। जैसा कि छापे से स्पष्ट है, यह एक बुध-प्रबल हाथ है। इसमें जहां शुक्र-वलय (गर्डल ऑव वेनिस) और भाग्य तथा जीवन-रेखाएं काफी स्पष्ट और सुंदर हैं, वहां हृदय तथा विवाह-रेखाएं उतनी ही दोषपूर्ण एवं अशुभ हैं।

पर्वतों का अध्ययन

इस हाथ में शुक्र तथा चंद्र-पर्वत, अन्य पर्वतों की तुलना में काफी अच्छे हैं। शुक्र-पर्वत से इस व्यक्ति के कलाप्रिय होने का पता चलता है (**चित्र में १**) चंद्र-पर्वत को देखकर मैं इस व्यक्ति को चेतावनी दूंगा कि वह प्रेम के मामले में अत्यंत सावधानी बरते (**चित्र में २**)

एक अनोखा हाथ : सुंदर किंतु दोषपूर्ण

इस हाथ में चंद्र-पर्वत पर एक वृत्त है। इससे पता चलता है कि यह व्यक्ति यात्रा-प्रिय है, और हमेशा भ्रमण करता रहेगा।

शनि तथा बुध-पर्वत के मध्य एक चतुर्भुज है। इसके कारण यह व्यक्ति एक सफल व्यावसायिक भी हो सकता है। यह योग ३५ वर्ष के बाद है। इसी चतुर्भुज के कारण इस व्यक्ति को चित्र-कारी आदि के क्षेत्र में भी यश और अर्थ-लाभ हो सकता है।

अब रेखाओं का अध्ययन। सबसे पहले हृदय-रेखा को लें। यह रेखा काफी दोषपूर्ण है, अर्थात उस पर अनेक द्वीप हैं, विशेषकर सूर्य एवं बुध-पर्वत के नीचे **(चित्र में ३)** किसी भी रेखा पर द्वीप की उपस्थिति अच्छी नहीं समझी जाती, विशेषकर स्वास्थ्य के मामले में। हृदय-रेखा पर द्वीपों की स्थिति दुर्बल हृदय के साथ-साथ नेत्र-रोगों की भी अग्रिम सूचना देती है। यदि यह व्यक्ति सिगरेट, शराब आदि का आदी है तो उसे तत्काल ये व्यसन बंद कर देना चाहिए।

भाग्य-रेखा को देखें। भाग्य-रेखा से पता चलता है कि इस व्यक्ति ने अपना अध्ययन एक साथ न पूरा कर, खंडों में पूरा किया है। २१ वर्ष की अवस्था में इस व्यक्ति ने कोई नया काम शुरू किया, पर किन्हीं कारणों से उसे यह काम छोड़ना पड़ा।

२३ से २७ वर्ष तक का जीवन साधारण है। ३० वर्ष की अवस्था के बाद इस व्यक्ति का भाग्योदय है, पर यह भाग्यो-दय उसके अपने कार्यों पर निर्भर करेगा। तात्पर्य यह है कि यदि इस व्यक्ति को अपने लोगों का साथ मिलेगा तो यह अवश्य ही उन्नति करेगा। **(चित्र में ४)**

दोषपूर्ण विवाह-रेखा

इस व्यक्ति की विवाह रेखा काफी दोषपूर्ण है, अतः मेरी राय में इसे विवाह नहीं करना चाहिए। यदि वह विवाह करेगा भी तो उसे संबंध-विच्छेद का सामना करना पड़ेगा। इस विवाह से उसे बदनामी भी मिल सकती है। अतः वह अविवाहित जीवन बिताये तो अधिक बेहतर है। **(चित्र में ५)**

अब जीवन-रेखा को लें। इस हाथ में जीवन-रेखा प्रारंभ में टूटी हुई है। इससे ज्ञात होता है कि इस व्यक्ति को १४ से १७ वर्ष की अवस्था के मध्य परि-वार के किसी महत्त्वपूर्ण व्यक्ति के निधन के कारण क्षति उठानी पड़ी। मूल जीवन-रेखा के साथ-साथ एक सहायक जीवन-रेखा इस व्यक्ति के लिए काफी शुभ सिद्ध होगी क्योंकि उसके कारण वह जीवन में आनेवाले खतरों को पार कर जाएगा।

हाथ में मस्तिष्क-रेखा जीवन
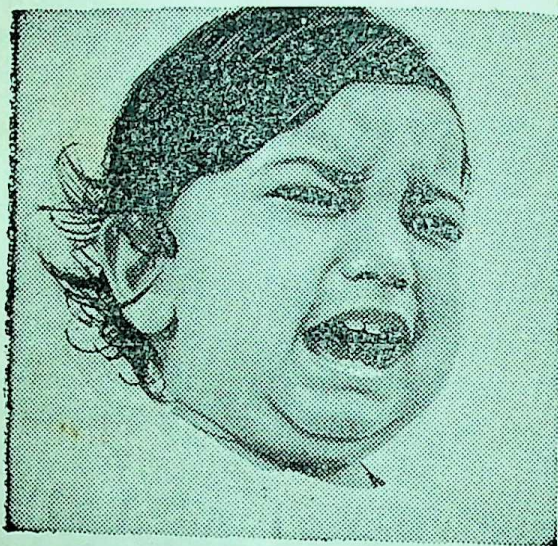
रेखा से काफी गुंथी हुई है। साथ ही उसका झुकाव-चंद्र पर्वत की ओर है। इससे पता चलता है कि यह व्यक्ति अत्यंत भावुक और इसी कारण मानसिक रूप से अशांत भी रहता है। **(चित्र में ७)** हो सकता है कि ऐसे ही अशांत क्षणों में उसने आत्महत्या की भी कोशिश की हो, पर दोहरी जीवन-रेखा के कारण उसका अहित नहीं हो पाया।

इस हाथ को देखकर पता चलता है कि यह व्यक्ति दो तरह के चरित्र वाला हो सकता है। या तो यह अत्यधिक सच्चरित्र होगा या फिर अत्यधिक दुश्चरित्र। इस व्यक्ति में दोनों तरह का जीवन बिताने की क्षमता है। यदि यह अध्ययन करेगा एवं अपनी कलात्मक अभिरुचियों का परिष्कार करेगा, तो निश्चय ही एक सफल कलाकार बनेगा अन्यथा बुरी संगत में पड़कर यह अपना जीवन नष्ट कर लेगा। यह बात शुक्र वलय, यानी 'गर्डल ऑव वेनिस' को देखकर कही जा रही है। **(चित्र में ८)** इस हाथ में 'गर्डल ऑव वेनिस' सुंदर और विच्छिन्न है। ऐसे शुक्र-वलयवाला व्यक्ति दोनों तरह के जीवन बिता सकता है। ऐसे चिह्नवाले व्यक्ति हमेशा अति करते हैं। जिस तरफ जाएंगे, उसके अंतिम छोर तक। शनि की अंगुली से प्रारंभ होनेवाले इस शुक्र वलय से पता चलता है कि इस व्यक्ति के जेल जाने तक की नौबत आएगी, पर वह बच जाएगा। ●

ज्ञान-गंगा

न कूपखननं युक्तं प्रदीप्ते वह्निना गृहे।
चिन्तनीया हि विपदां आदावेव प्रतिक्रिया॥

—आग से जलते हुए घर को देखकर कुआं खोदना शुरू कर देना बुद्धिमानी की बात नहीं है। आनेवाली विपत्ति का पहले ही प्रतिकार सोच लेना चाहिए।

उद्योगे नास्ति दारिद्र्यं जपतो नास्ति पातकम्।
मौनिनः कलहो नास्ति न भयं चास्ति जाग्रतः॥

—उद्योग करते रहने से कंगाली पास नहीं फटकती। जप करने से पाप नष्ट हो जाते हैं। मौन रहने से कलह से दूर रह सकते हैं, जागरूक या सावधान रहने से भय मुक्त हो सकते हैं।

प्रथमे नार्जिता विद्या द्वितीये नार्जितं धनम्।
तृतीये न तपस्तप्तं चतुर्थे किं करिष्यति॥

—जिसने बचपन में विद्या नहीं पढ़ी, जवानी में धनोपार्जन नहीं किया, प्रौढ़ावस्था में तप नहीं किया, ऐसा व्यक्ति बुढ़ापे में क्या कर सकता है! जीवन के चार भागों का यथेष्ट उपयोग ही उचित है।

यानि कानि च मित्राणि कर्तव्यानि शतानि च।

—मनुष्य या राष्ट्र को सैकड़ों मित्र बनाने चाहिए।

—प्रस्तोता : ब्रह्मदत्त शर्मा

दक्खिनी हिंदी के प्रमुख कवि मुल्ला गवासी

● डॉ. राजकुमार अहलूवालिया

कुत्वशाही सल्तनत के राज्याश्रित कवि मुल्ला गवासी की गणना दक्खिनी हिंदी के प्रमुख कवियों में की जाती है। सुलतान अब्दुल्ला कुत्वशाह ने उसकी काव्य-प्रतिभा से प्रभावित होकर उसे 'मलिकुश्शुअरा' (कविसम्राट) की उपाधि प्रदान की तथा १६३५ ई. में उसे राजदूत बनाकर बीजापुर भेजा। गवासी सूफियों के कादिरिया संप्रदाय में दीक्षित था और सैयद शाह अवल-हसन अली हैदर (निधन १६८८ ई.) उसके पीर (गुरु) थे।

'मैना सतवंती'

'मैना सतवंती' नामक प्रेम-काव्य गवासी का प्रथम उपलब्ध ग्रंथ है। इसका रचनाकाल १६२६ ई. के पूर्व निर्धारित किया जाता है। इसमें कवि ने चंदा और लोरक के प्रेम की प्रसिद्ध भारतीय लोककथा को काव्य का वर्ण्य-विषय बनाया है। इसका कथानक इस प्रकार है: एक दिन राजा बालाकुंवर की कन्या चंदा, लोरक नामक ग्वाले को देखकर मुग्ध हो गयी। उसने संकेत से लोरक को बुलाया और अपनी प्रेम-पीड़ा व्यक्त करते हुए अन्यत्र भाग चलने तथा विवाह करके सुखद जीवन व्यतीत करने का प्रलोभन दिया, परंतु लोरक विवाहित युवक था। उसका विवाह मैना नामक सुंदरी से हुआ था। अतः उसने चंदा की बातों पर तनिक भी ध्यान न दिया। अंत में चंदा ने हाव-भावयुक्त एवं व्यंग्यपूर्ण मधुर शब्दों में कहा—'ऐ ग्वाले! निर्धनता का जीवन व्यतीत करना तुम्हारा स्वभाव है। तुम्हारे भाग्य में आनंद और ऐश्वर्य का जीवन व्यतीत करना नहीं लिखा। मेरी अपार धन-राशि तुम्हें समर्पित है।' लोरक पर इस बात का गहरा प्रभाव पड़ा और वह धन-राशि सहित चंदा के साथ भाग गया।

चंदा के भाग जाने का समाचार पाकर राजा तनिक भी शोकाकुल न हुआ, अपितु उसने लोरक की सुंदर पत्नी को अपने अंतःपुर में लाने के लिए एक अनुभवी और चतुर वृद्धा कुटनी को भेजा। कुटनी उसे विचलित न कर सकी। राजा मैना के उच्च चरित्र

से बहुत प्रभावित हुआ। उसने अपनी पुत्री को मृत्यु-दंड दिया तथा मैना को पुनः लोरक से मिलाया।

गवासी के पूर्व भी इस लोककथा को कुछ कवियों ने अपने काव्य का वर्ण्य विषय बनाया था। ३७९ ई. में मुल्ला दाऊद ने 'चांदायन' नामक काव्य का अवधी भाषा में प्रणयन किया, जो हिंदी साहित्य का प्रथम उपलब्ध प्रेमाख्यान है। १५६७ ई. में साधन ने अवधी भाषा में 'मैनासत' की रचना कर इस कथा को एक नया रूप प्रदान किया। 'मैनासत' के कथानक के आधार पर १६० ई. में हमीदी ने फारसी भाषा में 'अस्मतनामा' काव्य का प्रणयन किया। यही ग्रंथ गवासी के ग्रंथ का आधार है।

फारसी प्रेमाख्यान

गवासी का दूसरा ग्रंथ 'सैफुलमुलूक व बदीउल जमाल' है, जिसकी रचना १६२६ ई. में हुई। इसमें फारसी गद्य ग्रंथ 'अलिफलैला' की एक प्रख्यात कहानी को काव्य में संजोया गया है।

सैफुलमुलूक मिस्र के बादशाह आसिमनवल का एकमात्र पुत्र था, जिसका जन्म बड़ी मन्नतों के पश्चात हुआ था। ज्योतिषियों ने बादशाह को बताया था कि चौदह वर्ष की अवस्था में शहजादे पर गहरा संकट आयेगा, परंतु उस संकट से किसी प्रकार की जीवन को हानि नहीं होगी। अतः बादशाह शहजादे के पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा के प्रति सजग था।

एक दिन बादशाह ने सैफुलमुलूक को परियों के बादशाह सुलेमान द्वारा भेंट की गयी वस्तुएं दीं, जिनमें अंगूठी, घोड़ा और एक जरीदार वस्त्र भी था। उस पर गुलिस्ताने-एरम की राजकुमारी बदीउलजमाल का चित्र चित्रित था। सैफुलमुलूक ने एकांत में उस वस्त्र पर चित्रित चित्र को ध्यानपूर्वक देखा और अपनी सुध-बुध खो बैठा। वह अपने कुछ

प्रम-कथाओं के रचयिता : गवासी

साथियों के साथ गुलिस्ताने-एरम की खोज के लिए घर से निकल पड़ा।

जलयात्रा करते समय समुद्र में तूफान आ जाने के कारण उसके सभी साथी और जलपोत जलमग्न हो गये। सौभाग्यवश सैफुलमुलूक और साअद किसी तरह बच गये और लकड़ी के एक तख्ते

के सहारे भिन्न दिशाओं में बहने लगे। चालीस दिनों के पश्चात सैफुलमुलूक हब्शियों के द्वीप में पहुंचा। हब्शियों के बादशाह की पुत्री उस पर आसक्त हो गयी, परंतु सैफुलमुलूक अवसर पाते ही वहां से भाग निकला। अनेक कष्ट और विपत्तियां सहन करता हुआ वह इस्फंद नामक द्वीप में पहुंचा, जहां उसकी भेंट सिंहलद्वीप की राजकुमारी से हुई, जो बारह वर्षों से वहां एक दैत्य की बंदिनी के रूप में जीवन व्यतीत कर रही थी। सैफुलमुलूक ने दैत्य का वध करके उसे मुक्ति दिलायी और स्वयं उसके साथ सिंहलद्वीप आ गया।

सिंहलद्वीप की राजकुमारी की मुक्ति का समाचार पाकर बदीउलजमाल उससे मिलने आयी। ये दोनों सखियां जब बाग में टहल रही थीं तब उन्हें सैफुलमुलूक का गायन सुनायी पड़ा। बदीउलजमाल उसके कंठ पर मुग्ध हो गयी। अंततः उनका विवाह हो गया।

गवासी का यह काव्य-ग्रंथ इतना लोकप्रिय हुआ कि उत्तरी भारत के परवर्ती प्रेमगाथाकारों पर भी इसका प्रभाव पड़ा।

'तूतीनामा' गवासी की अंतिम कृति है, जिसकी रचना १६३९ ई. में हुई। इस ग्रंथ में कवि ने जियाउद्दीन नख्शबी के फारसी ग्रंथ 'तूतीनामा' की, जो संस्कृत के ग्रंथ 'शुकसप्तति' का अनुवाद है, पैंतालीस कथाओं का चयन कर दक्खिनी हिंदी-काव्य में प्रस्तुत किया।

उपर्युक्त ग्रंथों के अतिरिक्त गवासी ने गजलों, शोकगीतों तथा प्रशस्ति-गीतों का भी प्रणयन किया है, जो उसके काव्य-संग्रह में विद्यमान है। उसके इन सभी ग्रंथों की हस्तलिखित प्रतियां फारसी लिपि में हैदराबाद के सालारजंग संग्रहालय तथा स्टेट सेंट्रल लाइब्रेरी (कुतुबखाना आसफिया) में विद्यमान हैं। नागरी लिपि में अभी तक केवल एक ग्रंथ 'सैफुलमुलूक व बदीउलजमाल' ही प्रकाशित हुआ है।

दक्खिनी हिंदी के प्रेमाख्यानकारों में गवासी का स्थान निश्चित रूप से सर्वोच्च है। उसके प्रेमाख्यान हिंदी प्रेमाख्यान-परंपरा के जगमगाते रत्न हैं। एक ओर जहां उसने सामी परंपरा की प्रेम-कथा का चयन किया, वहां दूसरी ओर भारतीय कथाएं भी ग्रहण कीं। वस्तुतः गवासी एक प्रतिभासंपन्न कवि था। उसमें कवि के समस्त सहजगुण विद्यमान हैं। परंतु खेद का विषय है कि गवासी के जीवन-वृत्त के संबंध में सामग्री का नितांत अभाव है। इसके अतिरिक्त गवासी की रचनाओं में भी जीवन-संबंधी संतोषजनक सामग्री उपलब्ध नहीं होती। यही कारण है कि उसके जन्मस्थान, जन्मकाल, वंश-परंपरा आदि का पूर्ण परिचय नहीं मिल पाता।

—३८६४, गली मंदिर वाली,
पहाड़ी धीरज, दिल्ली–६

कहानी

• कृष्णकुमार

मन्नो मुझसे उमर में कुछ बड़ी थी, यह बात मुझे शायद ही कभी याद रही हो। लेकिन मन्नो को हमेशा याद रहती थी, यह मैं अब कहीं समझ पाया हूं।

वह मुझे बात-बात पर सताती थी, मेरी बहुत मामूली-सी ख्वाहिशों को पूरा करने के पहले नाक रगड़वाती थी। हम दोनों रेडियो पर गाने सुनने के शौकीन थे, लेकिन मैं कभी किसी गाने के शब्द ठीक-ठीक याद नहीं रख पाता था जबकि मन्नो को एक ही बार में पूरा गाना याद हो जाता था। कभी-कभी मैं गाना ठीक-से सुन भी नहीं पाता था, जैसे 'यूं तो हमने लाख हसीं देखे हैं' कि मुझे 'मूं तो हमने ढाक वहीं देखे हैं' सुनायी देता और जब इसका कोई मतलब मेरी समझ में न आता तब मैं मन्नो से पूछता। मन्नो पहले तो जोर-जोर से हंसती और फिर गाने की एक-एक पंक्ति के लिए मुझसे तरह-तरह के काम और वायदे कराती। काम बहुत सरल होते थे जैसे एक गिलास पानी लाना या किताब पर कवर चढ़ाना या पेंसिल छीलना, लेकिन गाने की एक पंक्ति की खातिर एक काम करना मुझे बहुत खराब लगता था। फिर भी मैं सारे काम चुप-चाप कर देता था, क्योंकि गाने का जादू काफी जबरदस्त होता था, खास तौर से अधूरा गाना, पूरा और गलत गाना ठीक-ठीक जानकर याद करने का लोभ किसी तरह नहीं छूटता था। वायदे भी कोई खास नहीं होते थे, जैसे यह कि कभी चोटी नहीं खींचूंगा, चुगली नहीं करूंगा, वगैरा। और वायदे करते समय मैं अच्छी तरह सोच लेता था कि गाना पूरा होते ही ठीक वही करूंगा जो न करने का वायदा कर रहा हूं। वायदा तोड़ने में हमेशा कामयाबी मिलती हो, ऐसा नहीं था। कई बार चोटी खींचना असंभव हो जाता था, लेकिन वायदे को हलके तौर पर लेना मेरी आदत बन चुकी थी।

हां, कसम की बात कुछ भिन्न होती थी। जैसे—कभी मन्नो ने विद्या की या भगवान की कसम खिलाकर वायदा करवाया कि कभी परेशान नहीं करूंगा तो कम से कम एक दिन मैं कुछ दबा-दबा रहता था। अगली सुबह उस कसम की याद न मुझे रहती थी, न मन्नो को।

मन्नो मेरे घर के सामने रहती थी और मेरे पिताजी की तरह उसके पिताजी भी स्कूल में पढ़ाते थे। फर्क इतना था कि वे चश्मा लगाते थे और धोती-कुरता पहनते थे, मेरे पिताजी कुरता-पाजामा पहनते थे और चश्मा नहीं लगाते थे। दोनों अच्छे दोस्त थे, पर मेरा खयाल है कि मेरी और मन्नो की दोस्ती ज्यादा पक्की और गहरी थी। मन्नो की अम्मा नहीं थीं, सिर्फ एक बड़ी बहन थी, जो कभी-कभी आती थी। मैं अपने घर में अकेला था, मन्नो अपने घर में; लेकिन हम कभी अपने-अपने घर में रहते हों, तब न! इम्तहान के दिनों के सिवा हम कभी शायद ही अकेले रहते हों। मन्नो मुझसे एक दर्जा आगे थी, इसलिए मेरी अपेक्षा ज्यादा पढ़ती थी। देखने में भी मन्नो मुझसे कहीं ज्यादा अच्छी लगती थी। उसके रंगीन रिबन और फ्राकों—जैसा मेरे पास क्या था! खाकी या भूरी या नीली या कैसी भी निकर और पीली या सफेद या हरी या कैसी भी कमीज पहनकर मैं मन्नो की बराबरी नहीं कर सकता था। फिर मेरे कपड़े साफ कब रहते थे! कॉलर पर हमेशा एक मोटी काली लकीर बनी रहती थी और सामने स्याही या सब्जी के दाग लगे रहते थे। मेरे बाल हर वक्त माथे पर झूलते रहते थे जबकि मन्नो के बाल चोटियों में शान से गुंथे चमकते रहते थे। मेरे घुटनों पर हमेशा मक्खियां बैठी रहती थीं या फिर मोटी-सी पट्टी बंधी होती; मन्नो को कोई फुंसी भी शायद ही कभी हुई हो, चोट लगना तो दूर रहा।

कभी-कभी खेल में गुस्सा आ जाने पर या और किसी बात पर मैं भले ही मन्नो को एकाध घूंसा जमा दूं या उसकी चोटियां खींच दूं, लेकिन मेरे मन में मन्नो के लिए ऐसी जगह थी जहां अम्मा और पिताजी भी नहीं आ सकते थे।

एक बार जब मैंने मन्नो को स्कूल के ड्रामे में देखा, मैं विश्वास न कर सका कि यह मन्नो ही है। उसने लाल रंग का लहंगा पहन रखा था, जो स्टेज की तेज रोशनी में चमचमा रहा था और चेहरे पर भी लाली लगी थी। उस शाम के बाद तीन-चार दिन तक मैं मन्नो से बात करने की भी हिम्मत न कर सका। मुझे अपने सारे कपड़े बदरंग लगे। चार-पांच दिन बाद जब स्टेजवाली मन्नो कुछ पुरानी पड़ गयी तब पहला काम मैंने वह गाना लिखवाने का किया जो मन्नो ने स्टेज पर नाचकर गाया था।

इस गाने को पूरा करने के लिए मुझे क्या-क्या करना पड़ा, अब बताना

बेकार है। गरमी के दिन थे, एक पंक्ति पर मन्नो ने मुझे बर्फ लाने बाजार तक दौड़ा दिया था। हफ्ते भर की मेहनत के बाद मिले उस गाने को मैं कई महीने गुनगुनाता रहा। पहली पंक्ति मुझे अभी तक याद है—"गुड़िया! औरत एक कहानी।"

हिस्सा दिखायी देता था। पीछे की तरफ एक बड़ा-सा तालाब था। एक दिन खेलते-खेलते तालाब की तरफ देखते हुए मैंने पूछा, "मन्नो, वह क्या चीज है तालाब के बीच में?"

"लंकापुरी," मन्नो ने बिना देखे जवाब दिया।

हां, यह बताना तो मैं भूल ही गया कि मन्नो अपनी किताबों-कापियों को हमेशा साफ-सुथरा रखती थी और उसकी लिखाई भी बहुत साफ थी। मेरी किताबों के कोने कान की तरह मुड़े होते थे और कापियां हर पन्ने पर कटी-पिटी रहती थीं।

रोज शाम हम छत पर 'नागिन-टापू' खेलते थे। छत से शहर का काफी

"वहां क्या होता है?"

"कुछ नहीं।"

"कुछ भी नहीं होता?"

"कभी-कभी होता है।"

"क्या होता है?" मैंने नागिन-टापू से बाहर आकर पूछा। मैं उड़कर लंकापुरी पहुंच चुका था।

"दशहरे के दिन रावण को जलाकर

नष्ट कर देते हैं।"

"बाकी दिन क्या होता है?"

"कुछ नहीं।"

"खाली पड़ी रहती है?"

"और क्या!"

मुझे इस उत्तर से संतोष नहीं हुआ। लंकापुरी का खाली पड़ा रहना मेरे लिए बड़ी अजीब बात थी। कम से कम रावण का कुछ सामान वहां पड़ा रह सकता था।

मन्नो ने गप्पी मेरे हाथ से छीन ली और बोली "तुम्हारी बारी गयी, लो देखो।" और उसने सचमुच गप्पी चौथे घर में फेंककर अपनी बारी शुरू कर दी। मेरे लिए नागिन-टापू डूब चुका था, सिर्फ लंकापुरी खड़ी थी।

उस रात मैंने सपने में देखा कि लंकापुरी में एक स्कूल है जिसमें केवल मैं और मन्नो पढ़ते हैं।

सुबह स्कूल जाते हुए मैंने मन्नो से कहा कि हमें किसी न किसी तरह लंका-पुरी जाना है। पहली बार मन्नो ने साफ मना कर दिया। बहाना यह बनाया कि बहुत चलना पड़ेगा। एक तरह से यह सच भी था। लंकापुरी पहुंचने का मतलब था सारा तालाब घेरकर जाना और तालाब कोई ऐसा-वैसा नहीं था, शंकरजी के मंदिर से लेकर जानवरों के अस्पताल तक फैला हुआ था। इतनी जगह तो शहर के सारे घर भी नहीं घेर सकते थे जितनी तालाब ने घेर रखी थी। लंकापुरी तालाब के दूसरे किनारे पर थी लेकिन दूर से ऐसा दिखायी देता था था जैसे बीचोबीच हो। उसके दोनों तरफ खजूर के पेड़ थे और सामने कुछ दूर तक रेत थी।

अंत में मन्नो मान गयी कि सुबह घूमने जाने के लिए एक दिन हम कुछ जल्दी निकलेंगे और लंकापुरी घूमकर लौटेंगे। यह योजना हमने घर में किसी को नहीं बतायी। बता देते तो कोई न कोई अड़ंगा लग जाता, शायद सब मना कर देते। एक तो इसलिए कि लंका-पुरी इतनी दूर थी, दूसरे इसलिए भी कि वह बिलकुल सुनसान जगह पर थी।

उस हफ्ते लंकापुरी को अपनी छत से मैंने कई बार देखा। मुझे वहां कभी कोई आदमी नहीं दीखा। जहां कोई न जाता हो, वहां मुझे और मन्नो को कैसे जाने दिया जाता?

मैं रोज सुबह जल्दी से जल्दी जागने की कोशिश करने लगा, लेकिन तीन-चार दिन तक कोई फर्क नहीं पड़ा। जब तक हम तालाब के किनारे पहुंचते, सूरज उग आता और हमें स्कूल जाने की खातिर लौटना पड़ता। अगली सुबह बिस्तर से उठते ही मेरा दिल फिर उछलने लगता, लेकिन सड़क पर आते ही देखता कि देर हो चुकी है। तालाब के साथ-साथ चलते हुए मैं लगातार लंकापुरी की तरफ आंखें किये रहता। तालाब मेरे भीतर होता और लंकापुरी आंखों के सामने। पानी में कूदनेवालों की 'छपाक'

और मंदिर के घंटों की आवाज मुझे सुनायी भी न देती।

आखिर एक सुबह हमने पाया कि हमारे पास लंकापुरी जाने का समय है। हम सूरज निकलने के काफी पहले सड़क पर आ गये थे। तालाब के पार पूर्व में हलका-सा उजाला था, जिसमें अभी कोई रंग देख पाना मुश्किल था। सिर पर

तारे थे, लेकिन झांकनेवाले तारे, रात की तरह टंके हुए तारे नहीं। ताजी हवा वह रही थी, जिसमें हलकी-सी ठंड थी।

आनन-फानन हम तालाब का सारा किनारा चलकर छोर पर पहुंच गये। यहां से सड़क छोड़कर खेतों की मेड़ पर चलना था। मेरे पांव जमीन पर न पड़ते थे और मेड़ गीले साबुन की तरह चिकनी थी। मन्नो आगे संभल-संभलकर चल रही थी, मैं कदम दबाकर चिड़िया की तरह चल रहा था। सड़क छोड़ते ही मुझे लगा कि किसी अजीब जगह पहुंच गया हूं। तब तक मैं अपने शहर के बाहर कभी नहीं गया था। जंगल मेरे लिए सपने में देखी हुई जगह थी, मुलायम घास पर लोटते खरगोश, और घने, ऊंचे पेड़ों से आती पक्षियों की आवाजें! गांव मेरे लिए तीसरे दर्जे की किताब में बने चित्र-जैसा था—कुएं पर पानी भरती औरतें, झुरमुट, एक पेड़ के नीचे चबूतरे पर बैठे लोग, नन्ही झोपड़ियां और झूला-झूलते बच्चे!

वह रही लंकापुरी! सुबह की रोशनी लाल होने को थी जब हम लंका-पुरी पहुंचे। चारों तरफ रेत थी और वीरानगी: किनारे की आवाजें बहुत

दूर रह गयी थीं।

लंकापुरी किसी बहुत पुराने घर-जैसी थी। चारों तरफ काई थी और कोनों पर पौधे उगे थे। बाहर की सीढ़ी पर पैर रखते हुए मन्नो बोली, "पहुंच गये!"

"अंदर तो चलो," मैंने कहा और अंदर जाने को मुड़ा।

"पहले थोड़ा सुस्ता लें।"

"नहीं, पहले अंदर चलो।"

"नहीं, बहुत थक गये।" और मन्नो सचमुच सीढ़ी पर बैठ गयी। मुझे उसका बैठना बहुत खला। मैंने गुस्से में कहा, "बैठी रहो! दिन भर बैठी रहना!"

मैं सीढ़ियों पर छलांग लगाकर निर्भीकता से लंकापुरी के अंदर दाखिल हो गया।

मैंने देखा कि लंकापुरी बिलकुल खाली थी। चारों तरफ दीवारों के सिवा कुछ न था। दरवाजों और खिड़कियों में कुछ नहीं था। उनमें घुसते हुए सुबह के धुंधले उजाले में मैंने देखा कि दीवारों पर कुछ लिखा हुआ है। मैं सामने वाली दीवार के पास पहुंचा और पढ़ने की कोशिश करने लगा। बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा हुआ था—'सुशीला'। आगे ऐसे शब्द लिखे थे जैसे मैं स्कूल की दीवार के पीछे, तालाब की सड़क पर और कई जगह देख चुका था। शहरों के पास कोयले से ही एक लड़की की तसवीर बनी थी। उसने बिलकुल कपड़े नहीं पहन रखे थे।

मेरी नजर अंधेरे में घुस गयी। मैंने देखा कि चारों तरफ वही कुछ लिखा था। मैं जैसे-जैसे देखता गया, मेरे पैर ठंडे पड़ते गये, हाथ जेबों में फंस गये और मैं भूल गया कि कहां खड़ा हूं। फिर भी मैं बढ़ता गया, जब तक सूरज ने एक खिड़की में एकदम से घुसकर मुझे चौंधा न दिया।

मुझे याद आया कि मन्नो बाहर बैठी है।

मैं दबे कदम बाहर सीढ़ी के पास पहुंचा। मन्नो घुटनों पर सिर रखे ऊंघ रही थी। जैसी मेरी आदत थी, मेरा हाथ मन्नो की चोटी की तरफ बढ़ा, लेकिन रुक गया। उसे वापस जेब में डालकर मैं तालाब की लहरें देखने लगा। कुछ देर बाद मेरा मन हुआ कि मन्नो की पीठ पर एक धौल जमाऊं, लेकिन इस बार मेरा हाथ जेब से निकला ही नहीं। मैं फिर तालाब की आगे-पीछे भागती लहरें देखने लगा।

अचानक मेरी गरदन उठी और मैंने सामने देखा। तालाब पर रोशनी फैल चुकी थी और किनारे पर हलचल बढ़ रही थी। मुझे लगा जैसे मेरे सिर में एक दरार पड़ गयी हो और आंखों के ठीक आगे कोई चाकू की नोक साधे हो, जब मैंने सोचा कि किनारे पर नहाते लोग मुझे और मन्नो को घूर रहे होंगे।

—क्यू-३१, मॉडल टाउन, दिल्ली-९

प्रसन्नकुमार वर्मा, पीलीभीत : ऐटम-बम को अणुबम भी कहा जाता है और परमाणुबम भी । क्या ठीक है ? अणु तथा परमाणु में अंतर क्या है ?

ऐटम-बम को अणु-बम कहना गलत है, क्योंकि 'ऐटम' का अर्थ परमाणु है, जबकि अणु 'माल्यीक्यूल' के लिए प्रयुक्त होता है । परमाणु किसी तत्त्व की सबसे छोटी इकाई है, जबकि अणु किसी यौगिक (कंपाउंड) की सबसे छोटी इकाई । यौगिक दो या दो से अधिक तत्त्वों से मिल

कर बनता है और उसके एक अणु में उन तत्त्वों के अनेक परमाणु हो सकते हैं । उदाहरण के लिए पानी (H2O) एक यौगिक है, जिसका एक अणु हाइड्रोजन नामक तत्त्व के दो परमाणुओं और आक्सीजन नामक तत्त्व के एक परमाणु से मिलकर बनता है ।

सुभाष 'चातक', सुलतानपुर : ओर्सटेड (Oersted) क्या है ?

ओर्सटेड (Oersted) अर्थात प्रतियासा चुंबकीय क्षेत्र की शक्ति को (सेंटीमीटर-ग्राम-सेकंड प्रणाली में) मापने की इकाई है । पृथ्वी के चुंबकीय क्षेत्र की शक्ति लगभग ०.५ प्रतियासा है ।

रामकुमार, भोपाल : विश्व हिंदी सम्मेलन के सिलसिले में होएर्नले की चर्चा सुनी थी, उनका परिचय दें ।

होएर्नले (पूरा नाम आगस्टस फ्रेडरिक रुडोल्फ होएर्नले) एक जरमन विद्वान थे, जिन्होंने हिंदी भाषा के प्रायः सभी रूपों का सर्वप्रथम और सर्वांगीण अध्ययन प्रस्तुत किया था । १८८० में प्रकाशित ग्रंथ 'A comparative Grammar of the Gaudian Language' में उन्होंने भोजपुरी का विस्तृत वर्णनात्मक व्याकरण देने के साथ-साथ प्रत्येक अध्याय में आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं से संबंधित प्रचुर सामग्री दी है । इस ग्रंथ के अतिरिक्त होएर्नले ने हिंदी-धातुओं का संग्रह भी प्रकाशित किया था । इस पुस्तक का अनुवाद आगरा विश्वविद्यालय के हिंदी विद्यापीठ ने प्रकाशित किया था । होएर्नले ने चंद बरदाई के 'पृथ्वीराजरासो' के कुछ अंशों का संपादन और अंगरेजी में उनका अनुवाद भी किया था । भारतीय भाषाओं से संबंधित कई महत्त्वपूर्ण लेख भी उन्होंने लिखे हैं ।

उषारानी अग्रवाल, हापुड़ : 'मिलटोन' दुग्धपेय कैसे बनाया जाता है ? क्या उसे घर में तैयार कर सकते हैं ?

'मिलटोन' मूंगफली के प्रोटीन, तरल ग्लूकोज, खनिज और विटामिन मिलाकर बनाया जाता है। इसके लिए मूंगफली की खली से शुद्ध प्रोटीन निकालकर उसे पानी में मिला देते हैं और यंत्रों द्वारा खूब हिला-मिला देने के बाद वाष्पोपचार से उसकी गंध दूर कर देते हैं। फिर इस प्रोटीन-घोल में स्टार्च तथा रासायनिक लवण मिलाते हैं और जितना घोल होता है, उतना ही ताजा दूध डालकर विटामिन आदि मिला देते हैं। इसे घर में तैयार करना कठिन है, क्योंकि इसके लिए जो यंत्र-उपकरण आदि अपेक्षित हैं, वे बड़े पैमाने पर उत्पादन करने के लिए ही लगाये जा सकते हैं।

मुहम्मद रईस खां, अलीगढ़ : 'हाफ लाइफ पीरियड' क्या है ?

प्रकृति में मौजूद भारी रेडियोधर्मी तत्त्व विघटित होकर हलके तत्त्वों में परिवर्तित होते रहते हैं। (ऐसे तत्त्वों को रेडियोधर्मी तत्त्व इसलिए कहा जाता है कि इनके विघटन के दौरान इनसे 'रेडिएंट एनर्जी—विकिरण-ऊर्जा—निःसृत होती रहती है।) किसी रेडियोधर्मी तत्त्व के अर्द्धांश का विघटन होने में जितना समय लगता है, उसे उस तत्त्व का 'हाफ लाइफ पीरियड' (एच.एल.पी.) कहते हैं। उदाहरण के लिए यदि किसी तत्त्व का अर्द्धांश चार दिन में विघटित हो जाए तो उसका एच.एल.पी. चार दिन होगा। शेष अर्द्धांश का अर्द्धांश अगले चार दिन में विघटित होगा और इस प्रकार मूल तत्त्व की रेडियोधर्मिता १ प्रतिशत तक पहुंचने तक लगभग सात 'हाफ लाइफ पीरियड' बीत चुके होंगे।

सदानंद आर्य, पुरुलिया : 'घुसपैठ' शब्द का ठीक-ठीक अर्थ क्या होता है ? पूछने का कारण यह है कि इसका प्रयोग विभिन्न अर्थों में होते पाया जाता है।

हिंदी में खूब प्रचलित होने के कारण यह शब्द हिंदी का ही माना जाएगा, लेकिन मूलतः यह शब्द अरबी के दो शब्दों से मिलकर और परिवर्तित होकर बना है। इसका मूल रूप 'घुश्शे फिअत' था। 'घुश्श' का अर्थ है फूट डालना और 'फिअत' का अर्थ है जमात। यानी 'घुश्शे फिअत' का अर्थ है जमात में फूट डालना। संभवतः इन दोनों शब्दों को मिलाकर पहले 'घुश्शफेट' और बाद में 'घसपैठ' बना होगा। हिंदी में भी इसका सही अर्थ फूट डालना ही है।

मीरा बंसल, जबलपुर : क्या गर्भाधान से पहले स्तनों से दूध आ सकता है ?

जी हां, और इसका कारण है रक्त में दुग्ध-स्रावण को प्रेरित करनेवाले हारमोनों की उपस्थिति। मां से प्राप्त इन हारमोनों के कारण कई बार तो नवजात शिशुओं की स्तन्य ग्रंथियों से भी दूध निकल आता है।

हरभजन सिंह, रोहतक : इंगलैंड का 'स्टार चैंबर' क्या है ?

है नहीं, था। 'स्टार चैंबर' प्राचीन

इंगलैंड का एक विशिष्ट न्यायाधिकरण था। इसका प्राचीनतम उल्लेख १४८७ में मिलता है, किंतु संभवतः उससे भी पहले इसका अस्तित्व था। इसका काम था सरकार-विरोधी लोगों पर मुकदमा चलाकर उन्हें दंडित करना। इस न्यायाधिकरण में स्थापित कानूनों की परवाह नहीं की जाती थी और फैसला 'स्टार चैंबर' के सदस्यों की मर्जी पर होता था। चार्ल्स प्रथम और उसके दल ने 'स्टार चैंबर' का उपयोग अपने विरोधियों को दबाने के लिए किया था। १६४१ में 'स्टार चैंबर' को समाप्त कर दिया गया।

जोजफ हैरिसन, अजमेर: 'पैरेसिस' कौन-सी बीमारी है?

अपनी भाषा में इसे आंशिक पक्षाघात कहते हैं, जो प्रायः उपदंश-संदूषण (आतशक की छूत) के परिणामस्वरूप होता है। इसका प्रभाव पक्षाघात की तरह मस्तिष्क पर तो पड़ता है लेकिन प्रमस्तिष्क-मेरुतंतु इससे बचा रहता है, इसलिए पक्षाघात आंशिक ही होता है।

सतीशचंद्र श्रीवास्तव, बुलंदशहर: पेड़-पौधे जो आक्सीजन पैदा करते हैं, वह उनके किस काम आती है?

वह उनके काम आने के बजाय उनकी वृद्धि को रोकती ही है। दरअसल पेड़-पौधों ने इतनी आक्सीजन पैदा कर डाली है कि उनके लिए वातावरण में कार्बन-डाईआक्साइड कम पड़ती है। आधुनिक अनुसंधानों से पता चला है कि वातावरण में आक्सीजन का दो प्रतिशत भी (जो वातावरण में उपस्थित कुल आक्सीजन का दसवां हिस्सा ही होगी) प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया में बाधक है, जिससे पेड़-पौधों का विकास बाधित होता है।

प्रभात, जमशेदपुर: 'इलेक्ट्रोडाइग्नोसिस' क्या है?

शरीर के अंदर रोगों का पता लगाने के लिए जब वैद्यत-उपकरणों का प्रयोग किया जाता है, तब उसे 'इलेक्ट्रोडाइग्नोसिस' (वैद्युत-निदान) कहते हैं। रोग-निदान की यह विधि प्रायः तंत्रिका और पेशी-तंत्रों की जांच में अपनायी जाती है।

स्नेहलता, वाराणसी: एक यात्रा-वर्णन में पानी पर जलती हुई 'नीली आग' के बारे में पढ़ा। ऐसा संभव है?

जी हां, कुछ जलीय जीव सांस के साथ ज्वलनशील गैसें छोड़ते हैं, जो खुली आक्सीजन के संपर्क में आने पर स्वतः ही प्रज्ज्वलित हो उठती हैं। जलीय जीवों द्वारा छोड़ी हुई ये गैसें जब ऊपर उठकर पानी की सतह पर आ जाती हैं तब नीली लपट के साथ जलने लगती हैं।

चलते-चलते एक प्रश्न और...

कु. क. ख. ग.: 'अपने मुंह मियां मिट्ठू' का मुहावरा किसी स्त्री के संदर्भ में प्रयुक्त करना हो तो?

कहिए: बीवी अपने मुंह मीठी।

—बिंदु भास्कर

अपराध - शास्त्र की सैद्धांतिक स्थापनाएं

'अपराध' शब्द का सामान्य अर्थ जितना सहज है, उसकी सर्वमान्य वैज्ञानिक परिभाषा उतनी ही कठिन। अपराध क्या है? वह मात्र पारित नियमों का उल्लंघन है अथवा सभी अनाचरणों का पर्याय? मनुष्य क्यों अपराध करता है? उसके लिए वह स्वयं जिम्मेदार है अथवा इसका दायित्व समाज पर है? उन्नीसवीं शती के उत्तरार्ध में पश्चिमी देशों में माना जाता था कि मनुष्य सुख-दुःख के विचारों से प्रेरित होकर कोई काम करता है। अपराध मनुष्य की इसी सुख-लालसा के कारण घटित होता है। अब इस धारणा में काफी संशोधन हो चुका है तथा विगत तीन सौ वर्षों के चिंतन-मनन के फलस्वरूप अपराधों के कारणों और निवारणों के लिए कतिपय वैज्ञानिक आधारवाले निश्चित सिद्धांत मिल गये हैं। भारत में इस समय प्रचलित अपराधशास्त्र अथवा 'क्रिमिनॉलॉजी' पश्चिम की देन है, फिर भी उस पर भारतीय जीवन-मूल्यों का प्रभाव स्पष्ट है। अपराध संबंधी भारतीय एवं पाश्चात्य दृष्टिकोण में एक मूल अंतर यह है कि हमारे यहां मनुष्य के भीतर मौजूद काम, क्रोध, लोभ, मद, मत्सर को कुकर्मों अर्थात अपराध के लिए जिम्मेदार ठहराया गया है, जब कि पश्चिमी विचारकों की राय में सामाजिक पर्यावरण ही इसके लिए दोषी होता है। इटली के विचारक एनरिको फेड्री का ग्रंथ 'आपराधिक समाज-विज्ञान' इसी सिद्धांत की स्थापना करता है।

आपराधिकी में लेखक ने अपराध-शास्त्र की मूल सैद्धांतिक स्थापनाओं का छात्रोपयोगी दृष्टि से ही विवेचन किया है, क्योंकि यह पुस्तक मूलतः विश्वविद्यालयीय छात्रों के लिए ही लिखी गयी

है। इससे क्रिमिनॉलॉजी के पाश्चात्य सिद्धांतों का अच्छा परिचय मिल जाता है, पर भारतीय अपराध-दर्शन के बारे में यह बात नहीं कही जा सकती। पुस्तक के इस अध्याय में लेखक ने वेदों, उपनिषदों, स्मृतियों के उद्धरणों एवं उनके संक्षिप्त विवेचन से काम चला दिया है। पृष्ठ ३८७ पर एक वाक्य की अपूर्णता इस बात की द्योतक है कि इस अध्याय पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया।

फिर भी कुल मिलाकर लेखक का प्रयास प्रशंसनीय है, क्योंकि हिंदी में इस विषय पर बहुत कम अच्छी पुस्तकें हैं।

आपराधिकी

लेखक--बदरीनारायण सिन्हा, प्रकाशक--बिहार ग्रंथ अकादमी, पटना-३, पृष्ठ--४३३, मूल्य--१९.०० रुपये

भारतीय राजनय : विदेशों में देश का सही चित्र प्रस्तुत करने में राजनयिकों का बहुत बड़ा हाथ होता है। एक-चौथाई शताब्दी से अधिक वर्षों में विश्व में भारतीय राजनय ने कितनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है इसकी एक झलक प्रस्तुत पुस्तक में मिलती है। इसके साथ ही साथ एक राजनय के कार्यकलाप, उसका प्रभावशाली व्यक्तित्व, व्युत्पन्न-मति, वाक्पटुता, कौशल आदि पक्षों को लेखक ने नेहरू, के. पी. एस. मेनन, कृष्ण मेनन, श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित, श्रीप्रकाश, मोहम्मद करीम छागला आदि भारत के विशिष्ट राजनयिकों के उदाहरणों द्वारा व्यक्त करने का प्रयास किया है। राजनय के कलात्मक पक्ष तथा शैली के साथ इसका संक्षिप्त विकास भी दिया गया है।

भारतीय राजनय

लेखक--पुष्पेश पंत, प्रकाशक--मैकमिलन प्रकाशन, पृष्ठ--१०३, मूल्य--२०.०० रुपये।

बर्ट्रेण्ड रसेल का शिक्षा-दर्शन : बर्ट्रेण्ड रसेल एक बहुमुखी प्रतिभा के व्यक्ति थे। यह पुस्तक उनके जीवन-परिचय के साथ उनके शिक्षाविद रूप का भी दिग्दर्शन कराती है। शिक्षा के स्वरूप, अभिकरण, उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण-विधि आदि पक्षों पर रसेल के मौलिक विचार प्रस्तुत किये गये हैं। किंतु ये विचार पाश्चात्य वातावरण के लिए अधिक अनुकूल हैं। जहां उन्होंने आचरण, अनुशासन, चरित्र-विकास--जैसे सर्वमान्य तत्त्वों की ओर संकेत किया है वहीं अतिबौद्धिकता, यौन-वृत्ति, दंड, निंदा आदि बातों का भी समर्थन किया है। अनेक स्थलों पर रसेल ने परस्पर-विरोधी सिद्धांतों का प्रतिपादन करके विषय के प्रति उलझाव पैदा कर दिया है।

बर्ट्रेण्ड रसेल का शिक्षा-दर्शन

लेखक--डॉ. रामसकल पाण्डेय, प्रकाशक--मैकमिलन प्रकाशन, पृष्ठ--१११, मूल्य--१५.०० रुपये

हिंदी उपन्यास में पारिवारिक चित्रण : एक शोध-प्रबंध है, जिसमें हिंदी उपन्यास में पारिवारिक चित्रण को दर्शाने का प्रयास किया गया है। पूरे शोध-प्रबंध के कुल २७४ पृष्ठों में से २२२ पृष्ठ लेखक ने विभिन्न युगों में परिवार की कल्पना को खोजने में लगा दिये हैं। शेष ५२ पृष्ठों में उस कल्पना को उपन्यासों में ढूंढ़ा गया है। इसका शीर्षक

उपन्यास में पारिवारिक चित्रण के स्थान पर पारिवारिक चित्रण में उपन्यास का योगदान होना चाहिए था। इस प्रकार के प्रयासों में शोध कितना हो पाता है, यह इस पुस्तक को देखने पर ज्ञात हो सकता है।

हिन्दी उपन्यासों में पारिवारिक चित्रण
लेखक—महेन्द्रकुमार जैन, प्रकाशक—जैन ब्रदर्स, नयी दिल्ली-५, पृष्ठ—२८७, मूल्य—३०.०० रुपये

प्रसाद के नाटक तथा रंगमंच : प्रसाद और उनके नाटकों पर काफी कुछ लिखा जा चुका है, किंतु रंगमंचीय संदर्भ में उनका मूल्यांकन होना अभी शेष है। इस पुस्तक को देखकर कुछ आशा बंधी, किंतु पढ़कर लगा कि हिंदी में रंगमंच से अभी बहुत अनभिज्ञता है, उसके आधार पर नाटकों के मूल्यांकन की तो बात ही और है। रंगमंच के नाम पर इस पुस्तक में प्रसाद के नाटकों में रंगमंचीय निर्देशों का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया गया है। यदि इन नाटकों में रंगमंचीय संभावनाओं को दिखाया जाता तो विषय अधिक स्पष्ट हो जाता।

'प्रसाद' के नाटक तथा रंगमंच
लेखक—डॉ. सुषमा पाल मलहोत्रा, प्रकाशक—राजपाल एँड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली : पृष्ठ—१८३; मूल्य—२०.०० रुपये.

वचन वीथी

मानवता और सज्जनता के स्वप्न देखिए तो आपके स्वप्न देवदूत बन जाएंगे। —बुल्वर

इसके पहले कि दौलत लालची बना दे, आपको दानशील हो जाना चाहिए। —सर टी. ब्राउन

हम दूसरों की बुरी बातों पर रोक नहीं लगा सकते, लेकिन हमारा अच्छा जीवन हमें उनसे घृणा करने में समर्थ बनाता है। —कैटो

सफल मनुष्य वही है जिसे परिस्थितियों के थपेड़ों ने बनाया है। —जिम तुली

अपराध करने के बाद व्यक्ति भयग्रस्त हो जाता है, यही उसकी सबसे बड़ी सजा है। —वाल्तेयर

झूठ बोलने का केवल यह परिणाम होता है कि हम किसी के विश्वासपात्र नहीं रह जाते, यहां तक कि जब हम सच बोलते हैं तब भी हमारी बात पर कोई व्यक्ति विश्वास नहीं करता। —सर डब्ल्यू. रैले

सपने : इस संग्रह में लक्ष्मीनारायण 'शोभन' रचित कविताएं संग्रहीत हैं। 'और पास बढ़ आए साए जलजात के', 'शहर जीने की विवशता'—जैसी कुछ कविताओं को छोड़कर अधिकांश कविताएं परंपरागत हैं। कहीं-कहीं भावों की उपमा सुंदर बन पड़ी है। गीतों की अपेक्षा मुक्त छंद में लिखी कविताएं अधिक संवेदनीय बन पड़ी हैं।

सपने
लेखक—लक्ष्मीनारायण 'शोभन', प्रकाशक—सूर्य प्रकाशन, नयी सड़क, दिल्ली-६, पृष्ठ—८७, मूल्य—४ रुपये

गुलाब सौ खिले : इसमें हिंदी गजलें संग्रहीत हैं। हिंदी में गजलों की रचना अपेक्षाकृत बहुत कम हुई है। गुलाब रचित ये गजलें इस दिशा में उपयुक्त कदम है। 'न होंठ तक कभी आई न मन के द्वार गई', 'चुप यों तो किसी बात में रहते नहीं हैं हम', आदि कुछ गजलें सुंदर हैं। हिंदी में गजलों की रवानगी लाने का यह अच्छा प्रयास है।

गुलाब सौ खिले
लेखक—गुलाब,--प्रकाशन—अर्चना प्रकाशन, कलकत्ता-६, पृष्ठ—१०८, मूल्य—१० रुपये

आधुनिक हिंदी उपन्यास : इसमें उपन्यास विधा के विभिन्न पक्षों पर विद्वानों द्वारा लिखे गये लेख संकलित है। आधुनिक हिंदी उपन्यासों के विवेचन के लिए बेहतर होता कि संपादक न केवल पुराने एवं प्रतिष्ठित उपन्यासकारों की प्रतिनिधि रचनाओं को, वरन नयी पीढ़ी के लेखकों के बहुचर्चित उपन्यासों को भी लेता। किंतु ऐसा नहीं किया गया फलतः यह विवेचन एकांगी ही कहा जाएगा।

इसके अतिरिक्त उपन्यास के किसी भी पक्ष पर कोई ठोस बात न कहते हुए नामों की गणना मात्र करा दी गयी है। फलतः पाठक किसी एक निष्कर्ष पर नहीं पहुंच पाता। प्रस्तावना में उठाये गये प्रश्नों का भी निबंधों में स्पष्टीकरण नहीं मिलता।

आधुनिक हिंदी उपन्यास
संपादन—डॉ. नरेन्द्रमोहन, प्रकाशक—मैकमिलन कंपनी, दिल्ली, पृष्ठ—३००, मूल्य—२८ रुपये

संघर्षरत इजरायल : यहूदियों द्वारा अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए सैकड़ों वर्षों से किये जा रहे संघर्ष का विस्तृत इतिहास है। इसमें लेखक ने प्राचीनकाल अर्थात ईसा से १६०० पूर्व, से लेकर चतुर्थ अरब-इजरायल युद्ध तक की घटनाओं का अच्छा विवेचन किया है।

—डॉ. शशि शर्मा

संघर्षरत इजरायल
लेखक—डॉ. रामनाथ भल्ला, प्रकाशक—लोकहित प्रकाशन, राजेंद्र नगर, लखनऊ ४, पृष्ठ—३८०, मूल्य—३२ रुपये।

बंद दरवाजों के पार

बारबरा कार्टलैंड

प्रणय-त्रिकोण एवं रहस्य-रोमांच से पूर्ण उपन्यास लिखने में सिद्धहस्त बारबरा कार्टलैंड ने अभी तक चालीस से अधिक उपन्यास लिखे हैं और वे सभी युवा-पाठक-पाठिकाओं द्वारा बेहद पसंद किये गये हैं। इस बार सार-संक्षेप के अंतर्गत प्रस्तुत है बारबरा कार्टलैंड की एक बहुचर्चित कृति 'द् एनचैंटिंग इविल' का सार—'बंद दरवाजों के पार', प्रस्तोता हैं —हरपाल कौर

अचानक कमरे का दरवाजा खुला और शारलेट ने भीतर प्रवेश करते हुए अपनी चचेरी बहन से तीखे स्वरों में पूछा—"मिलेंडा, तुमने अभी तक मेरी पोशाक तैयार नहीं की ?"

खिड़की के पास बैठी मिलेंडा शारलेट की पोशाक पर कढ़ाई कर रही थी। उसने कढ़ाई करते हुए ही उत्तर दिया, "बस, अभी तैयार हुई जाती है। हुआ यह था कि मैं इसे जल्दी नहीं शुरू कर पायी।"

"हां, जल्दी कैसे शुरू करतीं ? तुम्हें अस्तबल से फुरसत मिले तब न ! देखो, मिलेंडा, यदि तुमने अपना रवैया न बदला तो मैं पापा से शिकायत कर दूंगी। वह तुम्हारा अस्तबल में जाना ही बंद कर देंगे।"

शारलेट क्षण भर मिलेंडा की ओर घूरती रही। सहसा उसकी आंखों में अपनी चचेरी बहन के प्रति प्यार उमड़ आया। वह बोली, "मिलेंडा, मुझे माफ करना। मैं आपे में नहीं रही। दरअसल मुझे पापा से अच्छी-खासी फटकार मिली है।"

"क्यों ?" मिलेंडा ने पूछा।

"तुम्हारे कारण ! पापा हमेशा तुमसे मेरी तुलना करते हैं। कहते हैं, मिलेंडा को देखो ! कितने करीने से वस्त्र पहनती है। और एक तुम हो ! उधर मां भी तुम्हें लेकर परेशान है। उन्हें डर है कि इस घर में जो भी विवाह-योग्य लड़का आता है, वह तुमसे ही प्रभावित होता है। इसी कारण मेरा विवाह नहीं हो पा रहा है," शारलेट ने कहा।

मिलेंडा के पास इसका कोई उत्तर नहीं था। वह अपने चाचा सर हेक्टर की दया पर जीवित थी। एक दुर्घटना में उसके माता-पिता दोनों की मृत्यु हो गयी थी। माता-पिता की मृत्यु के बाद मिलेंडा का सपनों-सा जीवन टूटे हुए कांच की तरह बिखर गया था। पिता ने उसे लड़कों की तरह पाला था। उन्होंने उसे शिकार, घुड़सवारी, निशानेबाजी सिखायी थी और मां ने घरेलू कामकाज में उसे प्रवीण बना दिया था। माता-पिता की मृत्यु के बाद मिलेंडा को उसके चाचा अपने घर ले आये थे। हालांकि शुरू में उन्होंने उससे बहुत प्यार जतलाया था, पर मिलेंडा को शीघ्र ही मालूम हो

गया था कि इस घर में उसकी स्थिति एक नौकरानी से अधिक नहीं है । इस घर में केवल शारलेट उससे सहानुभूति रखती थी ।

वह शारलेट से कुछ कहने ही जा रही थी कि एक नौकरानी ने सूचना दी कि उसे सर हेक्टर बुला रहे हैं ।

सर हेक्टर उस समय अपने पुस्तकालय में थे, मिलेंडा ने पुस्तकालय के द्वार पर खड़े होकर बड़े अदब से धीरे-से पूछा, "आपने मुझे बुलवाया था, अंकल ?"

सर हेक्टर ने घूमकर देखा, और फिर मुसकराते हुए कहा, "आओ मिलेंडा, मैं तुम्हें एक खुशखबरी सुनाना चाहता हूं ।" फिर क्षण भर रुककर सर हेक्टर ने खंखारकर कहा, "मिलेंडा, तुम अत्यंत भाग्यवान लड़की हो । स्वयं कर्नल गिलिंघम ने तुम्हारे साथ विवाह की इच्छा व्यक्त की है ।"

"क्या !" मिलेंडा के मुंह से चीख निकल गयी, "अंकल, मैं कर्नल के साथ विवाह नहीं कर सकूंगी ?"

"क्यों ?"

"क्योंकि वे बहुत बूढ़े हैं, अंकल !"

"क्या कहा ? कर्नल बूढ़े हैं ? बिलकुल गलत । कर्नल तो मेरे समवस्यक हैं, और क्या मैं तुम्हें बूढ़ा नजर आता हूं," सर हेक्टर ने शान से कहा, फिर स्वर को कठोर करते हुए वे बोले, "मिलेंडा, मैं चाहता हूं कि समाज में तुम्हें सम्मान मिले और यह सम्मान तुम्हें कर्नल गिलिंघम के साथ विवाह करने के बाद ही प्राप्त हो सकता है ।"

मिलेंडा ने कहा, "अंकल, मैं कर्नल की आभारी हूं, पर मैं उनके साथ विवाह नहीं कर सकूंगी । मुझे बहुत खेद है, पर मेरा निर्णय यही है ।"

मिलेंडा की इस अस्वीकृति ने सर हेक्टर को पागल-सा कर दिया । उन्होंने मेज पर रखे कोड़े को उठाकर मिलेंडा को पीटना शुरू कर दिया ।

आखिर मिलेंडा बेहोश हो गयी । अब सर हेक्टर को होश आया । उन्होंने उसे
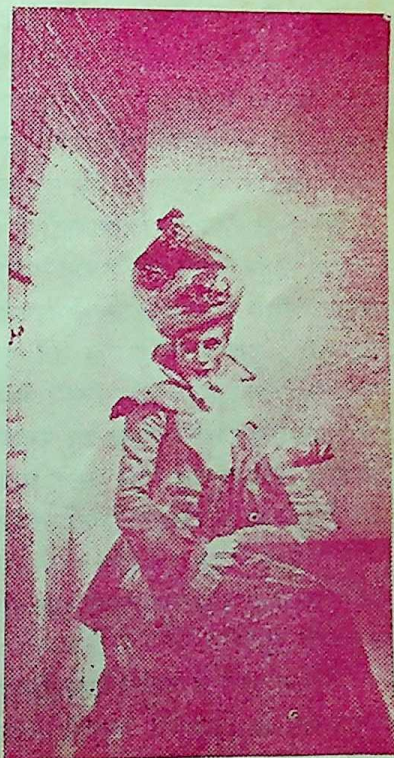
सोफे पर लिटाया और पानी के छींटे देकर उसे होश में लाना चाहा।

कुछ क्षण बाद मिलेंडा ने आंखें खोलीं तो सर हेक्टर ने उसे डांटते हुए कहा, "उठो, और अपने कमरे में जाओ। अब फिर विवाह करने के लिए इनकार किया तो मैं चमड़ी उधेड़ दूंगा।"

मिलेंडा किसी तरह उठ खड़ी हुई और धीरे-धीरे चलकर अपने कमरे में पहुंची। उसने आंसू पोंछे और रात होते ही सर हेक्टर का घर छोड़ने का निश्चय कर लिया।

कुछ मिनटों के बाद वह सर हेक्टर की बड़ी हवेली के बाहर पहुंच चुकी थी। मिलेंडा किसी तरह लंदन पहुंचना चाहती थी। कारण, एक बार उसने अपनी चाची से सुना था कि वहां एक फर्म है, जो लोगों को नौकरी दिलवाती है।

काफी दूर निकल आने के बाद मिलेंडा थकान मिटाने के लिए एक तने से टिककर बैठ गयी। कुछ मिनटों के बाद उसे एक घोड़ागाड़ी नजर आयी। वह निकट आयी तो मिलेंडा ने उसके चालक को पहचान लिया। उसका चालक जिम उसके चाचा सर हेक्टर के काश्तकार जेंकिंस का बेटा था। मिलेंडा ने उसे पुकारा।

"मिस! आप इस समय यहां क्या कर रही हैं?"

"जिम, कुछ न पूछो। बहुत विवश होकर घर से निकलना पड़ा है। पर देखो, किसी को मेरे बारे में कुछ न बताना। मैं कस्बे में जाकर उतर जाऊंगी।"

जिम ने उसे गाड़ी में बैठा लिया और घोड़े भागने लगे। मिलेंडा ऊंघने लगी। जब उसकी आंख खुली तब घोड़ागाड़ी कस्बे के पास पहुंच गयी थी। रेलवे-स्टेशन के निकट मिलेंडा घोड़ागाड़ी से उतरी। उसने जिम को धन्यवाद दिया और टिकट-घर से लंदन का टिकट खरीदकर बेचैनी से गाड़ी की प्रतीक्षा करने लगी।

गाड़ी आ गयी तब मिलेंडा की लंबी यात्रा का दूसरा चरण शुरू हुआ। मिलेंडा गाड़ी के डब्बे में अपनी सीट पर दुबकी बैठी रही। भविष्य की आशंकाओं से ग्रस्त भूखी-प्यासी मिलेंडा आशाओं के दीप को मन में जलाये यात्रा करती रही।

जब गाड़ी लंदन पहुंची तो रात घिर आयी थी। सहमी-सहमी-सी मिलेंडा सबसे अंत में गाड़ी से नीचे उतरी। उसका दिल तेजी से धड़क रहा था। मिलेंडा के सामने तात्कालिक समस्या रात बिताने की थी। उसने अपने साथ यात्रा कर रहे एक वृद्ध-दंपति से कुछ पूछना चाहा, पर वृद्धा ने उसे झिड़क दिया। निराश मिलेंडा भीड़ में किसी पादरी को ढूढ़ने लगी। किसी सहृदय व्यक्ति को तलाशती मिलेंडा मुसाफिरखाने जा पहुंची। वहां कीमती और सुंदर वस्त्र पहने एक प्रौढ़ महिला की मिलेंडा पर नजर पड़ी, उसने उसके पास आकर पूछा, "बेटी, क्या मैं तुम्हारी कुछ मदद कर सकती हूं?"

मिलेंडा ने उसकी ओर देखा—"मैं लंदन में पहली बार नौकरी की तलाश में आयी हूं।"

प्रौढ़ा क्षण भर सोचती रही। फिर उसने कहा, "तुम मेरे साथ चलो। मैं तुम्हारे रहने का प्रबंध कर देती हूं।"

थकी-हारी मिलेंडा को इन शब्दों से बड़ी सांत्वना मिली। कुछ देर बाद जब गाड़ी अपने गंतव्य पर पहुंची तब हारकोर्ट उसे झंझोड़ रही थी, "उठो मेरी बच्ची!" चौंककर मिलेंडा ने आंखें खोलीं। जब वह हारकोर्ट के साथ उस घर में जाने लगी तो एक व्यक्ति उन्हें देखकर रुक गया। हारकोर्ट भी उसे देखते ही अदब से झुक गयी।

"बहुत खूब," उस व्यक्ति ने कहा, "इस लड़की का मुझसे परिचय कराओ न!"

हारकोर्ट ने बेमन से दोनों का परिचय कराया, "माई लार्ड . . . मिलेंडा स्टेनयॉन और यह हैं लार्ड रॉथम।"

लार्ड रॉथम ने आगे बढ़कर मिलेंडा के दोनों हाथ पकड़ लिये और कहा, "लंदन में तुम्हारा आगमन सुखदायक सिद्ध होगा। हम तुम्हें लंदन की सैर करायेंगे।"

"माई लार्ड, लड़की थकी हुई है। अब इजाजत दें . . ." हारकोर्ट ने कहा।

"देखो इस पर हमारा अधिकार है। केट से कह देना, मैं कल आऊंगा।"

मिलेंडा इस वार्तालाप का अर्थ समझ न सकी। हारकोर्ट के साथ सीढ़ियां चढ़ने

लगी। उसे एक कमरा दे दिया गया। बिस्तर पर लेटते ही उसे नींद आ गयी।

●●

केट हेमिलटन लंदन के भद्रसमाज में काफी लोकप्रिय थी। वह स्वयं भी कम सुंदर न थी। लंदन के प्रतिष्ठित नागरिक उसके निवास के चक्कर काटा करते। रात होते ही, जब लंदन नींद की चादर ओढ़ लेता तब केट के निवास-स्थान पर एक नये दिन की शुरूआत होती। उस रात भी उसका निवास रोशनी से जगमगा रहा था।

केट प्रशंसकों से घिरी हुई थी।

तभी उसकी नजर कमरे में प्रवेश करते एक युवक पर पड़ी। वह सीधे उसी की ओर आ रहा था। केट ने उसे पुकार कर कहा, "कैप्टेन वेस्ट, कहां रहे इतने दिन ?"

उत्तर में कैप्टेन वेस्ट ने व्यग्रता से कहा, "केट, तुमसे एक बहुत जरूरी बात करना है। क्या हम किसी एकांत जगह चल सकते हैं ?"

केट कैप्टेन वेस्ट की व्यग्रता भांप गयी। रोजी नामक एक अन्य युवती को अपने स्थान पर बैठाकर वह कैप्टेन वेस्ट को एक एकांत कमरे में ले गयी। वहां पहुंचकर वह बोली, "अब कहो, किस बात ने तुम्हें परेशान कर रखा है ?"

"यह मेरी नहीं, चार्ड की समस्या है। और तुम्हीं उसे इस मुसीबत से उबार सकती हो।"

चार्ड कैप्टेन वेस्ट का मित्र और इंगलैंड के एक कुलीन वंश का एकमात्र उत्तराधिकारी था। वह अपने मित्रों में ड्रोगो नाम से भी जाना जाता था।

केट ने कुछ तेजी से पूछा, "कैसी समस्या ? धन की या किसी लड़की की ?"

"नहीं, समस्या ड्रोगो की सौतेली मां ने पैदा की है," कैप्टेन वेस्ट ने कहा। फिर उसने केट को पूरी बात बतायी। उसने धीमे स्वरों में कहना शुरू किया, "मार्क्विस ड्रोगो इस समय बड़े संकट में फंसा हुआ है। तुम जानती हो कि उसके स्वर्गीय पिता को उससे स्नेह न था। ड्रोगो की मां की मृत्यु के बाद उसने दूसरी शादी कर ली और सारी संपत्ति अपनी दूसरी पत्नी के नाम कर दी। अब ड्रोगो की सौतेली मां सख्त बीमार है। अधिक से अधिक कुछ दिनों की मेहमान है। उसका कहना है कि ड्रोगो के विवाह करने के बाद ही वह उसे सारी संपत्ति का उत्तराधिकारी बनायेगी। उधर ड्रोगो इस तरह जबरन विवाह करने के विरुद्ध है।"

इस पर केट हंस पड़ी, "क्या अभी तक वह लेडी एलिस के पीछे पागल है ?"

कैप्टेन वेस्ट चौंक उठा, "तुम्हें कैसे मालूम ? खैर, जब जान ही गयी हो तब पूरा किस्सा सुनो। मार्क्विस का कहना है कि वह शादी करेगा तो लेडी एलिस से। उधर उसकी मां कहती है कि वह उसे अपनी होनेवाली पत्नी दिखाये। यही नहीं, वह चाहती है कि उसके सामने ही ड्रोगो उस लड़की से विवाह करे। यों हमने ड्रोगो की मां को चकमा देने की योजना बना ली है। उसके अनुसार ड्रोगो अपनी मां के सामने विवाह तो करेगा, पर विवाह करानेवाला पादरी नकली होगा और उसी तरह उसकी पत्नी भी नकली होगी। पादरी का तो हमने इंतजाम कर लिया है। हमारा एक मित्र इस काम को पूरा कर देगा। पर समस्या लड़की की है। ऐसी लड़की की, जो कुलीन वंश की दीखे, भोली-भाली, सुशील, सुंदर ! अब ड्रोगो के लिए ऐसी लड़की का तुम्हीं प्रबंध कर सकती हो। ड्रोगो की मां के निधन के बाद हम

इस लड़की को छुट्टी दे देंगे ।"

केट कुछ सोच में पड़ गयी । उसके पास लड़कियों की कमी नहीं थी । उसका काम ही लंदन के भद्र रसिकों को लड़कियां पहुंचाना था। पर उसकी परिचित लड़कियां रात में ही सुंदर लगा करती थीं। दिन की रोशनी में उनके चेहरे पर छाया बाजारूपन साफ-साफ मालूम दे जाता था। सहसा उसे हारकोर्ट का स्मरण हो आया। उसने उसे तुरंत बुलवा भेजा ।

हारकोर्ट भोली-भाली लड़कियों को फांसने में प्रवीण थी। कुछ मिनटों के बाद हारकोर्ट आ गयी । केट ने मुसकराते हुए कैप्टेन वेस्ट से कहा, "आप दूसरे कमरे में चले जाएं। मैं हारकोर्ट से एकांत में बात करना चाहती हूं।"

जब कैप्टेन वेस्ट उठकर दूसरे कमरे में चला गया तब केट ने सारी कहानी सुनायी और पूछा कि क्या वह तत्काल किसी ऐसी लड़की की व्यवस्था कर सकती है जो लोगों की इन सभी आवश्यकताओं को पूरा कर सके।

हारकोर्ट सोचने लगी। सहसा उसका चेहरा दमक उठा। वह उसे निद्रामग्न मिलेंडा को दिखाने ले गयी।

उसके बाद उसने केट को बताया कि मिलेंडा उसे कहां और किस हाल में मिली, वह किसलिए लंदन आयी है। केट ने कुछ ईर्ष्या से पूछा, "बातचीत करने का ढंग कैसा है ?"

"एक सम्मानित और पढ़ी-लिखी युवती-जैसा। मेरा खयाल है कि यह किसी कुलीन वंश की लड़की है।"

"ठीक है। इसे सुबह ही किसी अच्छी दूकान पर ले जाओ और अच्छे कीमती वस्त्र दिलवा दो। उन सबका मूल्य मार्क्विस ड्रोगो चुकायेगा। इसलिए कंजूसी से काम न लेना।"

उधर कैप्टेन वेस्ट बेचैनी से प्रतीक्षा में था। जब केट ने उसे बताया कि सारा प्रबंध हो गया है तब उसकी जान में जान आयी। वह बोला, "केट, तुम्हारा जवाब नहीं! कल दोपहर तक उसे ड्रोगो के पास पहुंचवा दो।"

"इतनी जल्दी ?" केट ने पूछा।

"हां, ड्रोगो की सौतेली मां मर रही है। इसलिए यह काम कल ही हो जाना चाहिए।"

●●

मिलेंडा की आंख खुली तो उसे भारीपन-सा महसूस हुआ। उसका शरीर अब भी दुख रहा था। सर हेक्टर के कोड़ों के निशान उसकी पीठ पर ही नहीं, उसकी आत्मा पर भी पड़ गये थे। तभी दरवाजा खुला और हारकोर्ट ने कमरे में प्रवेश किया। उसके हाथों में नाश्ते की ट्रे थी। उसने नाश्ता मिलेंडा के सामने रख दिया और कहा, "क्या तुमने कभी अभिनय किया है ?"

मिलेंडा ने विस्मित होकर पूछा, "क्यों ?" हारकोर्ट ने मिलेंडा को बताया कि वह उसके लिए एक समुचित वेतनवाला
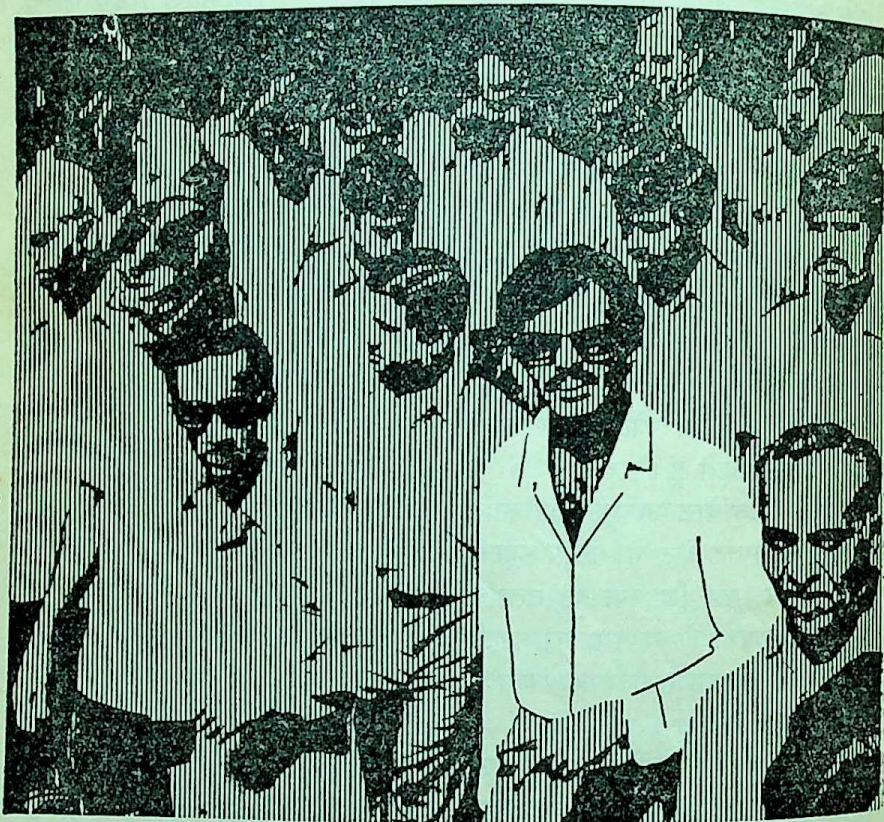
काम ढूंढ़ चुकी है। एक संपन्न व्यक्ति को एक ऐसी लड़की की आवश्यकता है जो उसकी पत्नी का अभिनय अदा कर सकें। उसने किसी व्यक्ति से एक शर्त लगा ली है और वह यह शर्त जीतना चाहता है। यदि तुम यह काम कर सको तो वह तुम्हें पांच सौ पौंड पारिश्रमिक दे सकता है।

मिलेंडा के मुंह से चीख निकल गयी, "पांच सौ पौंड! इतनी बड़ी रकम! क्या वह पागल है?"

हारकोर्ट ने मुसकराकर कहा, "बेटी, बड़े लोगों की बातें निराली होती हैं!"

मिलेंडा की नजरों में पांच सौ पौंड घूम रहे थे। वह सोच रही थी कि इतनी राशि मिलने पर तो उसकी सारी दरिद्रता दूर हो जाएगी। उसने हारकोर्ट का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

दोपहर को हारकोर्ट उसे सिले-सिलाये वस्त्रों की एक बहुत बड़ी दूकान में ले गयी। वहां उसने मिलेंडा के लिए कीमती वस्त्र खरीदे। विवाह के अवसर पर पहना जानेवाला जोड़ा भी खरीदा। दूकान की मालकिन मिलेंडा के व्यक्तित्व से बेहद प्रभावित हुई थी। उसने कहा, "विवाह का यह जोड़ा आप पर बहुत फबता है!" राह में हारकोर्ट ने उसे कैप्टेन वेस्ट एवं मार्क्विस के बारे में विस्तार से समझा दिया। साथ ही वह यह भी कहना न भूली कि जब कैप्टेन वेस्ट उसे पांच सौ पौंड देने लगे तब वह कहे कि यह रकम उसे यानी हारकोर्ट को दे दी जाए।

क्षण भर के लिए मिलेंडा घबरा गयी। उसने सोचा, आखिर मैं क्यों यह सब कर रही हूं? क्या ऐसा करना ठीक भी होगा? उसे एक अनजाने खतरे का आभास भी हुआ, पर अब वह बहुत आगे निकल आयी थी।

मिलेंडा इन्हीं विचारों में खोयी थी कि सहसा फिटन के एकाएक रुक जाने से चौंक पड़ी। फिटन एक विशाल भवन के आगे खड़ी थी।

तभी एक नौकर ने फिटन का दर-वाजा खोला। उसने शानदार वरदी पहन रखी थी। वह सिर झुकाकर बड़े आदर से बोला, "मिस, आपकी प्रतीक्षा की जा रही है।"

मिलेंडा गाड़ी से उतरी और उसके साथ चल दी। उसने आसपास नजर डाली, प्रत्येक वस्तु से उस भवन में रहने-वालों की संपन्नता प्रकट हो रही थी। नौकर के पीछे-पीछे चलती हुई वह पुस्त-कालय में पहुंच गयी, जहां कैप्टेन वेस्ट उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। उसने तत्काल उठकर मिलेंडा का स्वागत करते हुए अपना परिचय दिया, "मैं वेस्ट हूं, कैप्टन गरवासे वेस्ट! और ये हैं मेरे मित्र लार्ड, चार्ड, जिनकी सहायता के लिए आपको आना पड़ा है।" यह कहते हुए कैप्टेन वेस्ट ने पुस्तकालय के एक कोने में उनकी ओर पीठ किये खड़े मार्क्विस लोगों की ओर संकेत किया। इसी समय

ड्रोगो घूमा और मिलेंडा की ओर बढ़ा। मिलेंडा की नजरें उस पर पड़ीं। क्षण भर के लिए उसके शरीर में एक कंपन-सा हुआ। इतना सुंदर, प्रभावशाली व्यक्तित्व उसने पहले कभी नहीं देखा था। सहसा मिलेंडा को लगा, सामने खड़ा व्यक्ति उसका यों निरीक्षण कर रहा है मानो वह कोई पशु हो। और यह विचार आते ही उसका स्वाभिमान जाग्रत हो उठा। उसने कुछ अकड़ से कहा, "मेरा नाम मिलेंडा स्टेनयॉन है।"

सहसा ड्रोगो को अपनी भूल महसूस हुई। उसने हाथ बढ़ाकर मिलेंडा का स्वागत किया और कहा, "मिस स्टेनयॉन, आप मेरी सहायता के लिए आयीं, बहुत-बहुत धन्यवाद! मेरा खयाल है, आपको सारी बातें बता दी गयी होंगी।"

मिलेंडा ने अस्वीकृति में सिर हिलाया तो वेस्ट ने कहा, "हमारे पास ज्यादा समय नहीं है, फिर भी मैं संक्षेप में आपको सारी स्थिति समझाता हूं। आप विवाह के वस्त्र पहनिए। ड्रोगो अभी कर्मचारियों के सामने अपने विवाह की घोषणा करेगा। पर साथ ही उन्हें यह भी निर्देश होगा कि इस विवाह की खबर को अभी गुप्त रखा जाए। जब मार्क्विओनेस का निधन हो जाएगा तब आप आसानी से यहां से चली जाइएगा। इधर हम घोषणा कर देंगे कि एक दुर्घटना में आपकी मृत्यु हो गयी है।"

"पर ये मार्क्विओनेस कौन हैं? और इन बातों से उनकी मृत्यु का क्या संबंध है?"

"तुम्हें सब बातें बतायी नहीं गयी हैं?" ड्रोगो ने चिढ़कर पूछा।

"मुझे तो केवल यही बताया गया था कि कुछ लोगों ने एक शर्त बदी है और इसीलिए मुझे ऐसा अभिनय करना पड़ेगा।"

कैप्टेन वेस्ट और ड्रोगो ने एक दूसरे की ओर देखा। फिर कैप्टेन वेस्ट ने कहा, "हां, उन्होंने ठीक ही कहा था। एक शर्त लगायी गयी है। जिन लोगों ने हमसे यह शर्त लगायी है, बस उन्हें विश्वास दिलाना है कि सचमुच ही ड्रोगो का विवाह हो रहा है।"

मिलेंडा ने कहा, "ठीक है, पर एक बात बताइए। क्या आप पांच सौ पौंड की मेरी राशि मेरे नाम से किसी बैंक में जमा करवा देंगे?"

कैप्टेन वेस्ट ने कहा, "क्यों नहीं, यह तो बहुत आसान काम होगा!

●●

सुहाग-जोड़ा पहने हुए मिलेंडा कमरे से बाहर निकली। वह डर रही थी कि यद्यपि यह सब एक 'खेल' है, पर कहीं यह खेल खतरनाक रूप धारण न कर ले! जैसे ही मिलेंडा कमरे में प्रविष्ट हुई, कैप्टेन वेस्ट और मार्क्विस ड्रोगो क्षण भर के लिए स्तब्ध रह गये। कैप्टेन वेस्ट ने प्रशंसाभरी नजरों से मिलेंडा को देखा। उसने लज्जा से नजरें झुका लीं। क्षण भर के लिए

उसके कपोल आरक्त हो उठे।

मार्क्विस ड्रोगो ने समझा कि मिलेंडा अभिनय कर रही है। उसने व्यंग्य से कहा, "बहुत खूब ! काश, मैं तुम्हारे लिए एक थियेटर किराये पर ले लेता तो माला-माल हो जाता !"

मिलेंडा उसके इस व्यवहार से क्रुद्ध हो उठी। उसने सोचा, भले ही यह सुंदर हो, पर है अभद्र !

इसी समय कैप्टेन वेस्ट ने कहा, "हम लोग ऊपर चलें, 'पादरी' प्रतीक्षा कर रहे होंगे।"

परंपरा के अनुसार मार्क्विस ड्रोगो ने मिलेंडा का हाथ थाम लिया और कैप्टेन वेस्ट के साथ एक शयनकक्ष की ओर बढ़ा। मिलेंडा ने अनुभव किया, मार्क्विस का शरीर एक विचित्र से तनाव के कारण सख्त हो गया है। उसने सोचा, 'शर्त मार्क्विस के लिए शायद बहुत महत्त्व-पूर्ण है।'

शयनकक्ष के द्वार खुले हुए थे। कमरे में अंधेरा-सा छाया हुआ था। मिलेंडा ने ध्यान से देखा तो उसे एक बहुत बड़े बिस्तर पर ढेर-सारे तकियों के सहारे एक बूढ़ी महिला बैठी हुई दिखायी पड़ी। पास ही दो व्यक्ति खड़े थे। 'इनमें से एक शायद डॉक्टर है,' मिलेंडा ने सोचा। बिस्तर के पायताने पादरी खड़ा था।

कमरे में मौन छाया हुआ था। वृद्धा की दृष्टि मिलेंडा और ड्रोगो पर टिकी

थी। धीरे-धीरे दोनों पादरी के सामने जा खड़े हुए। मिलेंडा ने अनुभव किया, पादरी भी बेहद डरा-डरा-सा है। इसी बीच 'पादरी' ने विवाह-पूर्व की प्रार्थना शुरू कर दी और अगले पल आ पहुंची सबसे नाजुक, सबसे खतरनाक घड़ी!

पादरी ने पूछा, "क्या तुम, एलेक्जेंडर ड्रॉगो फ्रेडरिक जॉन, मिलेंडा को अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार करते हो?" और फिर उसने ड्रॉगो को विवाह की शपथ दिलायी। ड्रॉगो ने भावहीन स्वरों में यह शपथ दोहरा दी। मिलेंडा अपनी बारी आने के विचार से ही कांप उठी। उसे यह भी मालूम था कि वृद्धा की पैनी दृष्टि उस पर जमी हुई है। उसके पैर कंपकपाने लगे। तभी उसे अनुभव हुआ, 'कहीं ड्रॉगो यह न समझे कि मैं ऐन वक्त पर उसे धोखा दे गयी!' अगले पल उसका आत्म-विश्वास लौट आया। उसने पादरी द्वारा कही गयी शपथ दोहरा दी।

क्षण भर बाद वृद्धा ने मिलेंडा को अपने पास बुलाया। मिलेंडा के हाथों को अपने रूखे-सूखे हाथों में लेती हुई वृद्धा ने कहा, "तो तुमने मेरे सौतेले बेटे से विवाह कर लिया! तुम एक साहसी लड़की हो।"

इसी समय पास खड़े व्यक्तियों में से एक ने आगे बढ़कर एक वसीयतनामा वृद्धा के सामने रखते हुए कहा, "आप यहां हस्ताक्षर कर दीजिए।"

वृद्धा ने चुपचाप हस्ताक्षर कर दिये और बाहरी लोगों को जाने का संकेत करते हुए कहा, "यह अब पारिवारिक मिलन का अवसर है। आप सब जाएं।"

जब सब चले गये तो वृद्धा ने मिलेंडा को और करीब आने का संकेत किया और उसके कानों में फुसफुसाकर बोली, "ड्रोगो का खयाल रखना। मैंने पूरे जीवन उसके साथ बुरा व्यवहार किया। वह कभी सुखी नहीं रह पाया। तुम भी उसे धोखा मत देना। वचन दो मुझे, ऐसा करोगी।"

मिलेंडा को कुछ सूझ न पड़ा। उसने अटकते हुए कहा, "मैं वचन देती हूं।"

वृद्धा के पीले चेहरे पर मुसकान तैर गयी। संतोष से उसने आंखें मूंद लीं।

ड्रोगो मिलेंडा को कमरे से बाहर ले आया। दूसरे कमरे में पहुंचकर मिलेंडा को वास्तविकता का ज्ञान हुआ--यह शर्त का खेल नहीं, एक धोखा था। उसने ड्रोगो से कहा, "मैं सब समझ गयी हूं।"

ड्रोगो ने भी कड़वाहट से जवाब दिया, तुम्हें हमारे व्यक्तिगत भामलों में हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं।"

मिलेंडा ने पहली बार पैनी नजरों से ड्रोगो की ओर देखा। फिर बोली, "मेरा काम खत्म हो चुका। अब मुझे जाने दीजिए।"

शायद दोनों में बात बढ़ जाती, पर वेस्ट ने अपनी बुद्धिमानी से मामला बिगड़ने से बचा लिया और मिलेंडा एक बार फिर उसके साथ सहयोग करने पर तैयार हो गयी। जब वह चली गयी तब ड्रोगो ने बड़े विस्मय से कहा, "यह लड़की बड़ी अजीब है! मैं इसे अभी तक नहीं समझ सका। जिस बाजारू इलाके से यह संबंध रखती है, वहां की लड़कियां तो ऐसी नहीं होतीं।" रात को भोजन के समय कैप्टन वेस्ट ने प्रस्ताव किया कि रात किसी महफिल में व्यतीत की जाए। मिलेंडा ने तत्काल कहा, "लंदन में मैं सबके लिए अजनबी हूं।"

मार्क्विस ड्रोगो ने एक बार फिर संदिग्ध नजरों से मिलेंडा की ओर देखा और पूछा, "कैरोलिन वाल्टर्स को जानती हो?" मिलेंडा ने इनकार किया तो ड्रोगो चिढ़ गया—"तुम झूठ बोलती हो।"

मिलेंडा ने चिढ़कर कहा, "ऐसी बातचीत करना आपको ही शोभा देता है। जहां तक मेरा संबंध है, मैंने आज तक झूठ नहीं कहा।" कुछ देर बाद वे सब एक अत्यंत विशाल भवन में पहुंचे। वहां नशे में चूर स्त्री-पुरुष बड़ी अभद्रता से एक-दूसरे से व्यवहार कर रहे थे। कुलीन संस्कारों की मिलेंडा को इस वातावरण में अपनी सांस घुटती-सी महसूस हुई।

दूर खड़ा मार्क्विस बड़ी सावधानी से मिलेंडा के चेहरे के भावों को पढ़ रहा

था। एक ओर तो मिलेंडा का यह सभ्य-सुशील लड़कियों-जैसा व्यवहार था, दूसरी ओर उसका संबंध केट और हारकोर्ट-जैसी वेश्याओं से था। ड्रोगो के लिए मिलेंडा एक अबूझ पहेली बन गयी थी।

मार्क्विस ड्रोगो को चुप रहने के सिवा कोई दूसरा रास्ता नजर न आया। जब दोनों वापस घर पहुंचे तब वकील उनकी प्रतीक्षा में था। उसने ड्रोगो को उसकी मां के निधन की सूचना दी। उसके हाथ में वसीयत के कागजात थे। ड्रोगो नहीं चाहता था कि मिलेंडा वहां उपस्थित रहे, पर वकील ने उसकी उपस्थिति का आग्रह करते हुए कहा, "वसीयतनामा शर्तों से भरपूर है। वसीयत के अनुसार जब तक आप छह माह अपनी पत्नी के साथ नहीं रहेंगे, आपको उस समय तक संपत्ति पर पूरा स्वामित्व-अधिकार नहीं मिल सकता।"

इस शर्त को सुनकर ड्रोगो क्रोध से भर उठा, पर वह विवश था। रात को ड्रोगो, वेस्ट और मिलेंडा फिर मिले तो मिलेंडा ने साफ-साफ कह दिया, "अब मैं इस धोखे में अधिक समय तक भाग लेने के लिए तैयार नहीं।" उधर ड्रोगो और वेस्ट उसे विश्वास दिला रहे थे कि वे पारिश्रमिक बढ़ा देंगे। किसी को खबर तक न होगी की उसकी शादी हुई है। शोक के छह महीने समाप्त होने के बाद वह पूर्णतः स्वतंत्र होगी, पर मिलेंडा किसी भी कीमत पर रुकने के लिए तैयार नहीं थी। ड्रोगो और वेस्ट को आश्चर्य हुआ कि यह कैसी लड़की है, जिसे धन का लोभ नहीं है!

ड्रोगो की वह रात बड़ी बेचैनी से कटी। मिलेंडा के व्यवहार ने उसे बेचैन कर दिया था। वह अभी तक उसे समझने में सफल न हो सका था।

सुबह जब मिलेंडा की आंख खुली तब वह लंदन में दूसरी रात बिता चुकी थी। उसे लग रहा था, जैसे जो कुछ हुआ वह वास्तविक न था। एक सपना था। इसी समय दरवाजे पर दस्तक हुई। "कौन ?" मिलेंडा ने पूछा।

"मैं वेस्ट... कैप्टेन वेस्ट।"

वेस्ट ने अंदर प्रवेश कर याचना के स्वरों में कहा, "मिलेंडा! हठ छोड़ दो और मान जाओ। छह महीने की बात है। पलक झपकते बीत जाएंगे। हम तुम्हें कोई कष्ट न होने देंगे। आज ही ड्रोगो की मां का अंतिम संस्कार हो रहा है। शाम को ड्रोगो तुम्हें लेकर अपनी जागीर पर चले जाएंगे। वहां तुम प्रसन्न रहोगी। यदि तुमने अभी साथ छोड़ दिया तो अब तक के किये-कराये पर पानी फिर जाएगा।"

मिलेंडा कुछ क्षण सोचती रही, फिर उसने स्वीकृति में सिर हिला दिया।

●●

ड्रोगो की जागीर की शानदार इमारत देखकर मिलेंडा को अपना घर याद आ गया। वह भी इसी तरह प्राचीन शैली का था।

दूसरे दिन ड्रोगो के साथ वह घुड़साल

में गयी। जीवन में मिलेंडा को यदि किसी से प्यार था तो घोड़ों से। घोड़े देखकर वह मचल उठती। उसने काले रंग के एक शानदार घोड़े पर सवारी करने की इच्छा व्यक्त की तो ड्रोगो ने कहा, "इस घोड़े पर अभी तक किसी ने सवारी नहीं की है। यह एक बिगड़ैल घोड़ा है। मैंने इसका नाम 'तूफान' रखा है।"

"मैं 'तूफान' पर सवारी करूंगी," मिलेंडा ने उत्तर दिया।

दूसरे दिन ड्रोगो के निवास पर काफी लोग एकत्र हुए। उनमें कैरोलिन वाल्टर्स भी थी। वह अतिथियों के सामने अपनी घुड़सवारी की शेखी बघार रही थी। उसने कहा, "मार्क्विस ड्रोगो की यह जागीर तो एक रेसकोर्स से कम नहीं है। कोई मेरे साथ घुड़दौड़ के लिए तैयार है ? पांच सौ पौंड की शर्त बदती हूं।"

किसी ने आगे बढ़कर यह चुनौती स्वीकार नहीं की।

मिलेंडा से न रहा गया। उसने कहा, "मैं तैयार हूं।"

मिलेंडा की बात सुनकर सब लोग हंसने लगे। कैरोलिन ने बड़ी उपेक्षा से मिलेंडा की ओर देखते हुए कहा, "तो तुम मेरा मुकाबला करोगी ! ठीक है, अगर मैं हार गयी तो तुम्हें पांच सौ पौंड दूंगी।"

"ठीक है," मिलेंडा ने दो टूक उत्तर दिया और उठकर चली गयी।

दूसरे दिन उसने ड्रोगो के विरोध के बावजूद 'तूफान' को घुड़सवारी के लिए चुना। उधर कैरोलिन उसे घोड़े पर देखकर उत्तेजित हो गयी। उसने भी घोड़ा मंगवाया और फिर दोनों साथ-साथ खड़ी हो गयीं। घुड़दौड़ का क्षण आ गया। वेस्ट ने अपने हाथ से रूमाल गिराया और दोनों घोड़े दौड़ पड़े। कैरोलिन का घोड़ा आगे निकल गया। हर व्यक्ति यह समझ रहा था कि मिलेंडा हार जाएगी, पर मिलेंडा को अपनी जीत का विश्वास था। सचमुच जब कैरोलिन का घोड़ा मैदान के अंतिम सिरे पर पहुंचने वाला था तभी मिलेंडा ने 'तूफान' के मुंह के पास चाबुक लहरायी। 'तूफान' ने इशारे को समझ लिया और सरपट भागने लगा। कुछ ही क्षणों में वह कैरोलिन के घोड़े से आगे था। मिलेंडा दौड़ जीत गयी थी। ड्रोगो विस्मय से मिलेंडा को देख रहा था। उसने एक बिगड़े हुए और उद्दंड घोड़े पर पहली बार सवारी कर कैरोलिन-जैसी कुशल घुड़-सवार को हरा दिया था। पराजय से कैरोलिन का चेहरा काला पड़ गया था। उसने उसी समय वापस जाने की घोषणा की। ड्रोगो उसे रोकता रहा, पर वह न मानी और जाते-जाते मिलेंडा से कह गयी, "शर्त की रकम तुम्हें शाम से पहले मिल जाएगी।"

शाम के समय जब वे सब ड्राइंग-रूम में बैठे चाय पी रहे थे, एक नौकर ने लार्ड रॉथम के आने की सूचना दी। ड्रोगो उठकर खड़ा हो गया था। लार्ड रॉथम ने ड्राइंग-रूम में प्रवेश करते हुए

मिलेंडा को देखा तो चौंककर कहा, "मैं तो तुम्हारी तलाश में था। अच्छा हुआ, तुम मिल गयीं। मैंने तो उसी रात हारकोर्ट से कह दिया था कि तुम मेरे लिए 'सुरक्षित' हो।"

"लार्ड रॉथम! यह मेरी मेहमान हैं," ड्रोगो ने कहा।

"मार्क्विस ड्रोगो, इस पर मेरा अधिकार है। मैं इसे अपने साथ लेकर जाऊंगा। मुझे क्या पता था कि कैरोलिन वाल्टर्स ने जिस लड़की के लिए शर्त के पांच सौ पौंड भिजवाये हैं, यह वही लड़की है जिसे मैंने हारकोर्ट के घर देखा था।"

"मैं आपके साथ नहीं जाऊंगी।"

"तुम्हें मेरे साथ चलना होगा।"

"उन्होंने आपके साथ जाने से इनकार कर दिया है। अब आप भी यहां से तशरीफ ले जाएं," ड्रोगो ने गंभीरता से कहा।

"मार्क्विस ड्रोगो! तुमने इसे फुसलाकर अपने पास रखा है। मैं इसका बदला लूंगा। इसका फैसला 'डुएल' में होगा।"

ड्रोगो ने लार्ड रॉथम का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

●●

मिलेंडा अकेली रह गयी, चिंतातुर और व्याकुल। ड्रोगो और वेस्ट के ऊपर छायी चिंता ने उसे कंपा दिया। सहसा उसे एक उपाय सूझ गया। उसने तुरंत ड्रोगो के कमरे में जाकर पिस्तौल की खोज की। एक दराज में उसे पिस्तौल पड़ी मिल गयी। उस पर ड्रोगो के वंश का चिह्न अंकित था। पिस्तौल हाथ में लेते ही मिलेंडा ने एक अद्भुत साहस का अनुभव किया।

पिस्तौल लेकर मिलेंडा नीचे उतरी और उसने ड्रोगो के एक विश्वासपात्र सेवक ट्रेवर्स को सारी स्थिति से अवगत कराया। उसने कहा, "ट्रेवर्स, तुम्हारे स्वामी के प्राण संकट में हैं। तुम मुझे उस स्थान तक ले चलो, जहां यह 'युद्ध' होनेवाला है।"

ट्रेवर्स तुरंत स्थिति की गंभीरता भांप गया। लार्ड रॉथम के अचूक निशानेबाजी और बेईमानी के बारे में उसने भी सुना था। उसने मिलेंडा को उस स्थान तक पहुंचाने का वचन दिया।

●●

सुबह हो चुकी थी। एक झाड़ी में छिपी मिलेंडा ने देखा, ड्रोगो और वेस्ट 'डुएल' के लिए आ पहुंचे हैं। कुछ ही देर में लार्ड रॉथम भी अपने साथियों के साथ वहां पहुंच गया। 'डुएल' के नियम के अनुसार तय हुआ कि दोनों प्रतिस्पर्धी दस कदम चलने के बाद गोली चलाएंगे।

जब वे दोनों पिस्तौल लेकर चल पड़े तो मिलेंडा का दिल धड़कने लगा। गिनती शुरू हुई—एक . . . दो... तीन... चार... पांच... छह... सात... आठ. . . नौ... ,अभी नौ का शब्द निकला ही था कि लार्ड रॉथम ने घूमकर गोली चला दी। इस क्षण के लिए मिलेंडा भी तैयार थी। उसने भी गोली चला दी। गोली लार्ड रॉथम के कंधे में घुस गयी। वह चीख मारकर जमीन पर गिर

गया। दूसरी ओर ड्रोगो भी जमीन पर गिर गया था। गोली उसके माथे की त्वचा को छूकर निकल गयी थी। मिलेंडा दौड़कर उसके पास पहुंच गयी। गाड़ी मौजूद थी। ड्रोगो को उस में लिटाकर वे फौरन डॉक्टर के पास पहुंचे।

इसी बीच ड्रोगो बेहोश हो गया था। जब तक वह बेहोश रहा, मिलेंडा उसके सिरहाने बैठी रही। उसकी पट्टियां बदलती रही। उसके मुंह में दवा डालती रही। वेस्ट, मिलेंडा के इस रूप को देखकर और परेशान हो गया।

ड्रोगो को होश आया तो सबसे पहले उसकी दृष्टि मिलेंडा पर पड़ी। मिलेंडा उसे होश में आते देख उठकर चली गयी।

दो दिन बीत गये। वेस्ट एक दिन कुछ घंटों के लिए मिलेंडा को घुमाने-फिराने ले गया। जब वह घर लौटे तो नौकर ने सूचना दी, "सर हैक्टर स्टानयॉन आपसे मुलाकात करना चाहते हैं।" अपने चाचा का नाम सुनते ही मिलेंडा के चेहरे का रंग उड़ गया। इसी समय सर हेक्टर ने कमरे में प्रवेश किया। मिलेंडा को देखते ही उन्होंने उसे डांटना शुरू कर दिया—

"तुम समझती थीं कि घर से भागकर सदा को गायब हो जाओगी। मैंने अभी तुम्हें गाड़ी से उतरते देखा। तुमने मेरी इज्जत मिट्टी में मिला दी। मैं तुम्हें कभी क्षमा न करूंगा। चलो मेरे साथ। तुम्हारा विवाह कर्नल गिलिंघम से होगा।"

ड्रोगो ने उठकर कुछ कदम चलते हुए सर हेक्टर से कहा, "आप इस लड़की को मजबूर कर अपने साथ नहीं ले जा सकते।"

"क्यों नहीं ले जा सकता। यह मेरी भतीजी है। एक सप्ताह हुआ, यह घर से भाग आयी थी। मैं कानूनी तौर पर इसका अभिभावक हूं।"

"आप इसे यहां से लेकर नहीं जा सकते। यह मेरी पत्नी है," ड्रोगो ने उत्तर दिया। इस उत्तर को सुनकर मिलेंडा को भी विस्मय हुआ। पहली बार ड्रोगो ने उसे प्रेमभरी नजरों से देखा था।

"आपकी पत्नी, मार्क्विस ड्रोगो!"

"जी हां, अब भी यदि आप किसी गलतफहमी में हैं तो अदालती काररवाई के दरवाजे सबके लिए खुले हैं।"

सर हेक्टर बड़बड़ाते हुए वहां से चले गये। ड्रोगो के सामने स्थिति स्पष्ट हो चुकी थी। मिलेंडा का केट और हार-कोर्ट-जैसी स्त्रियों से कोई संबंध नहीं। यह उच्च परिवार की बेटी है। मुसीबत के मारे उसे घर छोड़ना पड़ा। किंतु अगले क्षण ड्रोगो को लगा कि वह एक बड़े षड्यंत्र का शिकार हो गया है। मिलेंडा ने बड़ी चतुराई से उसे फांस लिया है। इसीलिए जब रात्रि के भोजन के समय उसकी मिलेंडा से भेंट हुई तो उसने व्यंग्य से कहा, "आखिर तुम अपनी चाल में सफल हो गयीं! बड़ी खूबसूरती से तुमने मुझे फांस लिया। तुम्हारा चाचा सारी दुनिया में गाता फिरेगा कि उसकी भतीजी

लार्ड चार्ड की पत्नी है।"

मिलेंडा भी उत्तेजित हो गयी, "आप सदा से मुझे गलत समझते रहे। स्वयं मुझे बहुत देर के बाद मालूम हुआ था कि मैं किसी मुसीबत में फंस गयी हूं। मुझे पता था कि हारकोर्ट वेश्यालय चलाती है। मैंने यदि आपके साथ छह महीने तक रहने का निश्चय किया था तो इसलिए नहीं किया था कि मैं आपको अपनाना चाहती थी, बल्कि इसलिए कि मैं आश्रयहीन थी। पर, आपने मुझे सदा गलत समझा। मैं पांच सौ पौंड भी नहीं लेती। मैं यह सहन करने के लिए तैयार नहीं।" मिलेंडा की आंखों में आंसू थे। वह तेजी से उठी और कमरे से बाहर निकल गयी।

इसी समय वेस्ट ने कमरे में प्रवेश किया। उसने उसे बताया कि लार्ड रॉथम की एक बांह काट दी गयी है और इसका सारा श्रेय मिलेंडा को है। फिर उसने मिलेंडा के साहस की कहानी उसे सुनायी। उसने कहा, 'ड्रोगो, वह लड़की निर्दोष है। वह तुमसे प्रेम भी करती है। उसे अपना लो।"

ड्रोगो भी मिलेंडा को चाहने लगा था, पर नारी जाति के प्रति जो घृणा का भाव उसके मन में भर गया था उसके कारण वह यह बात स्वीकार नहीं कर पा रहा था। पर अब उसने मिलेंडा को अपनाने का निश्चय कर लिया।

उसने एक नौकर से मिलेंडा को बुलाने के लिए कहा, पर तब तक वह उसका घर छोड़कर जा चुकी थी। उसके स्थान पर एक पत्र था, मिलेंडा ने अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए आत्महत्या के निश्चय की सूचना दी थी ताकि ड्रोगो को वसीयत के अनुसार सारी संपत्ति मिल जाए।

मिलेंडा के पत्र ने ड्रोगो को व्यथित कर दिया। वह तुरंत उसे ढूंढने निकल पड़ा। उसे आशंका हुई कि कहीं मिलेंडा आत्महत्या के लिए नदी की ओर न गयी हो।

उसकी आशंका सच थी। जब ड्रोगो नदी-तट पर पहुंचा तब उसे मिलेंडा दिखायी दी। उसका उदास चेहरा ड्रोगो के हृदय को मथ-सा गया। उसने पुकारा, "मिलेंडा!"

मिलेंडा ने चौंककर उसकी ओर देखा, फिर जल की ओर जाते हुए बोली, "नहीं, नहीं, मुझे मत रोको! मैंने तुम्हें अकारण बहुत कष्ट दिया।"

ड्रोगो ने उसका हाथ थामते हुए कहा, "नहीं मिलेंडा, दुःख तो तुम्हें मैंने दिया। मैंने ही तुम्हें हमेशा गलत समझा, पर अब तुम्हें मेरे साथ लौटना ही होगा।"

मिलेंडा कुछ कह न सकी।

एक अनाथ, आश्रयहीन लड़की की एक नयी सुखमय जिंदगी शुरू हो गयी थी। ●

दी हिन्दुस्तान टाइम्स लिमिटेड की ओर से रामनन्दन सिन्हा द्वारा हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नयी दिल्ली में मुद्रित तथा प्रकाशित।

चलते चलते
सुशील कालिश
गृहस्थी में रह कर भी मनुष्य सत्य की खोज कर सकता है, आज से यह शुभ कार्य आरम्भ लेकिन मुझे पहले स्वयं घर में सत्य का वातावरण बनाना पड़ेगा
सत्य की खोज
देखा, पकवान का स्वाद, मैंने बड़ी मेहनत से बनाया है
प्रिये, सत्य तो यह है कि इनका स्वाद बिलकुल बेकार है, इससे अच्छे पकवान तो मेरी अम्मा बना लेती थी
उस दिन इन झुमकों में मुझे देख कर आपने एक कविता लिखी थी क्या आज भी... ?
भगवान मिथ्या न बुलाये वह तो उड़ायी हुई कविता थी, तुम्हें देख कर तो मुझे कभी एक मुक्तक तक नहीं सूझा
यह रही खुशी की खबर.. आज आपकी सास, साले और सालियां बच्चों समेत पधार रहे हैं
इसे खुशी की खबर कह रही हो .... ?
कान खोल कर सुन लो...
तुम क्या सुनाओगे, सुनाऊंगी तो अब मैं
गृहस्थ-जीवन में डांट-फटकार ही भोगा हुआ सत्य है जिससे न तो कोई भाग सकता है और न ही जिसे झुठलाया जा सकता है

रजि नं. डी.-(सी)-१७२

फ़ैशन-किंग बनने गए; ठन ठन गोपाल बन गए

कमला वस्त्रों के सस्ते दाम-धनवान सी शान